श्रीमदाचार्यशिवशर्मसूरिप्रणीता

गिरिविरचितसंपूर्णटीकासंयुक्ता न्यायविशारदन्यायाचार्यमहोपाध्याय-

यशोविजयगणिविरचितटीकासत्कविशेषाधिकारयुक्ता च

श्रीकर्मप्रकृतिः ॥

यन्त्रटिप्पणीगूर्जरगाथार्थादिविभूषिता

प्रकाशकौः—

मंगलदास मनसुखराम शाह.

मफतलाल झवेरचंद गांधी.

प्रथमावृत्तिः

वि० सं० १९९१

इत्येताभ्यां प्राकाश्यं नीता

वीरसंवत् २४६१

मूल्यं रु. ७-०-०

प्रति ७५०

इ. स. १९३४

आ पुस्तक शरुआतथी पृष्ट ३२८ सुधी रतनपोल-गोलवाडमां श्रीजैन अभ्युदय प्रेसमां पटेल गरबडदास पुंजीदासे छाप्युं.
तथा आ॥१॥ थी अ ॥१२॥ सुधी फरनान्डीझ पूलपासे श्रीउत्कृष्ट प्रेसमां पटेल परसोतमदास शंकरदासे छाप्युं.
तथा अ ॥१३॥ थी-अ ॥६४॥ सुधी घीकांटा जेसींगभाईनी वाडीमां श्रीजैन एडवोकेट प्रेसमां
शा. वाडीलाल बापुलाले छाप्युं.

आ पुस्तक मळवानुं ठेकाणुं :-

मंगलदास मनसुखराम शाह
ठे. हाजा पटेलनी पोळमां
लांबेसर—अमदाबाद
देरासरनी खडकी बहार.

अथवा—

शेठ. दलपतभाई मगनभाई शारदाभुवन
ठे. जेसींगभाईनी वाडी घीकांटा-अमदावाद

२—मफतलाल झवेरचंद गांधी
ठे. भट्टीनी बारी
फतासानी पोल
अमदाबाद.

बे बोल.

जगतभरना साहित्यमां संख्याए अल्प छतां जैनोनो फाळो नानो सुनो नथी, आर्यावर्तमां एके साहित्य एवुं नथी जेमां जैनोनी पुरोगामिता न होय. दरेक साहित्य विभाग तरफ नजर नांखतां आपणने जणाशे के सकल स्वार्थत्यागी मुनिओए तेमां पोतानो अपूर्व फाळो आप्यो छेज. काव्य, व्याकरण, न्याय, मन्त्र, तन्त्र, ज्योतिष, शिल्प, निमित्त, इतिहास वगेरे व्यवहारोपयोगी तेमज आगमसाहित्यना अने कर्मकांडना नाना मोटा तमाम ग्रन्थोने आत्मोपयोगी बनाववा पुरेपुरी महेनत लीधी छे. आ प्राचीन महर्षिओए रचेला अनेकविध साहित्य ग्रन्थोमां पापथी पाछा हठाववामां मुख्य कारणभूत तेमज मनुष्य मात्रने पोतानी भूमिकानुं भान करावववामां जळहळती ज्योत समान कर्मसाहित्य छे ते निर्विवाद छे. कारण के कर्मसाहित्यना ज्ञानथी कर्मना शुभाशुभपणाने विचारी मनुष्य गर्विष्ट के दीन बन्या सिवाय पोतानुं जीवन उन्नत बनाववा सहेजे कटिबद्ध थइ शके छे. आजे पण ए भाववाही विचारने अनुसरी धर्मानुष्ठानना प्रारंभिक अभ्यास पछी क्रमे आगळ वधनारा धर्माभिलाषीओनी आगळ कर्मसाहित्य मूकवामां आवे छे. आगम साहित्यमां आ कर्मसाहित्य पूर्णपणे छे छतां पण तेना अनधिकारी पुरुषो पण तेनाथी वंचित न रहे, तेम तेनो लाभ मेळवे, तेटला माटे ते साहित्यना नाना मोटा अनेक ग्रंथो बनावी आचार्य महर्षिओए जगतभर उपर उपकार वर्षाव्यो छे. आ सर्व कर्मसाहित्यना ग्रंथोमां कर्मप्रकृति अने पंचसंग्रह ए बे ग्रन्थो मुकुटमणि समान छे के जेमां–कर्म शुं छे, तेनी जीव उपर केवी केवी असरो थाय छे, कया कया उंची हदे वधेला जीवोने पण क्यां क्यां घसडी जाय छे, कर्म बंध थया पछी तेनी जीव वीर्य-विशेषथी केवी केवी अवस्थाओ थाय छे–विगेरे सूक्ष्म विचारो सुंदर रीते निरूपण करेला छे.

आ कर्मप्रकृति उपर पूर्वाचार्यकृत चूर्णि, आचार्यश्री मलयगिरिजीकृत टीका, तथा उ०श्रीयशोविजयजीकृत टीका छे ए तेनी

महत्वता अने उपयोगितानी साबिती छे. आ त्रण पैकी बंने टीका श्रीजैनधर्म प्रसारक सभा भावनगर तरफथी छपाइ चूकेल छे. जे आजे केटलाक वर्षोथी दुष्प्राप्य थइ पडवाथी अमने एक वर्ष पर सहेज उद्भवेलुं के आ टीकाओ फरीथी बहार पाडवानी घणी जरुर छे तेथी अमे ते छपाववानुं साहस कर्युं जे लगभग एक वर्षे पूर्ण थाय छे. बंने टीकाओनो एकज ग्रंथमां साथे अभ्यास थइ शके ते उद्देश लक्षमां राखी आ०मलयगिरिजी कृत संपूर्ण टीका, तथा उ०यशोविजयजी कृत टीकानो मलयगिरिजी टीकाथी जुदो पडतो तथा वधारानो तमाम भाग दाखल करेल छे. ते विशेष भाग जुदो जणाववाने पेजनी नीचे रुल मूकी ×(य०उ०) ए निशानी करेली छे. तेमज गाथाओनो अर्थ सरळताथी जाणवा माटे गाथाओनो गुजराती अर्थ पण दाखल करेल छे. विशेषमां अभ्यासमां उपयोगी थाय तेटला माटे तेमां यन्त्रो, समजुतीओ, नोंधो वगेरे द्वारा स्पष्टीकरण करवामां आवेल छे. ए रीते आ ग्रंथने उपयोगी अने सुंदर बनाववा माटे अमे यथाशक्ति प्रयत्न कर्यो छे. वळी आचार्यश्री विजयनेमिसूरीश्वरजीना विद्वान शिष्यरत्न महोपाध्यायश्रीपद्मविजयजी-गणि महाराजे आ ग्रंथनी प्रस्तावना लखी ग्रंथनी उपयोगीतामां वृद्धि करी अमारा उपर जे उपकार कर्यो छे ते अमे न भूली शकीए.

आ ग्रंथने हस्तलिखित जुनी प्रत साथे राखी सरखाववामां आवेल छे अने ज्यां ज्यां विशेषता जणाइ छे, ते विशेषता कौंसमां मूकी तेनी उपर० पोलुं मींडुं मूकवामां आव्युं छे. ए प्रमाणे ग्रन्थनी शुद्धि माटे पूरतुं ध्यान यथाशक्ति आपेल छे छतां पण मति-मंदता, दृष्टिदोष, प्रेसदोष के सहज स्खलनाथी जे कांइ त्रुटिओ, भूलो वगेरे रहेवा पामी होय ते माटे 'मिथ्यादुष्कृत'देवा साथे सज्जन पुरुषोनी क्षमा चाहीए छीए. एज.

ली. प्रकाशकोः—
मंगलदास मनसुखराम शाह.
मफतलाल झवेरचंद गांधी.

॥ प्रस्तावना ॥

॥ णमो सिद्धचक्कस्स ॥

॥ णमो परमोवयारिसिरिगुरुणेमिसूरीणं ॥

अविच्छिन्न प्रभावशालि त्रिकालाबाधित श्रीजैनदर्शन सर्व दर्शनोमां प्रधानपद भोगवे छे ते योग्यज छे. कारण के ते जैन दर्शनज अन्य सर्व दर्शनोने उचित न्याय आपवा समर्थ छे. तेथी ज जैनदर्शन "निष्पक्षपाति दर्शन" "अनेकान्त दर्शन" एवा नामथी ओळखाय छे. एटलाज माटे महर्षि भगवंतोए ते लोकोत्तर दर्शनने समुद्रनी उपमा आपी छे अने अन्य दर्शनोने नदीओ समान कह्या छे.

आवा परम प्रभावसंपन्न श्रीजैन साहित्यमां आगमरूपे गणातां सिद्धांतोनो साधुवर्ग सिवाय अन्य वर्ग लाभ लइ शक्तो नथी. कारण के दरेक सिद्धांतना अभ्यासमां कारणभूत पवित्र योगोद्वहननी क्रिया छे, जेनो साधुवर्गज अधिकारी छे तेथी दरेक वर्गने तेमां कहेल भावोनो बोध थाय ते माटे श्री अंग–उपांगादिमांथी रहस्य ग्रहण करीने पूर्वाचार्य महर्षि भगवंतोए श्रीतत्त्वार्थ–संग्रहणि–धर्मसंग्रहणि–प्रवचनसारोद्धार–क्षेत्रसमास–पंचसंग्रह–कर्मप्रकृति आदि अनेक ग्रन्थो बनाव्या छे.

प्रस्तुत कर्मप्रकृति ग्रन्थनी प्रस्तावनामां कर्म संबंधि विवेचनने अंगे उत्पन्न थता (१) आत्मस्वरूप, (२) कर्मसिद्धि, (३) आठ करण अने उदय सत्तानुं स्वरूप तथा (४) मूल ग्रन्थकारनो अने टीकाकारोनो टुंक परिचय एम चार मुद्दाओ विषे विवेचन करी आ प्रस्तावना पूर्ण करवी योग्य धारु छुं.

१ आत्मस्वरूपः–" यः कर्ता कर्मभेदानां, भोक्ता कर्मफलस्य च । संसर्ता परिनिर्वाता स ह्यात्मा नान्यलक्षणः ॥१॥" अहीं एम शंका थाय के 'कर्मना वर्णनमां आत्मसिद्धिनी शी जरुर छे' तेना समाधानमां जणाववानुं के आत्माने मान्या सिवाय कर्म मानी शकायज नहि अने ते आ श्लोकज साबित करे छे. जो के चार्वाक सिवाय बधा दर्शनकारो आत्माने माने छे ज, तो पण तेमनी मान्यतामां तफावत रहेलो छे. कोइक आत्माने ईश्वरकृत, कोइक क्षणिक, कोइक पंचभूतथी उत्पन्न थएलो एम जुदा जुदा स्वरूपे माने छे. ते विषेनी तेमनी दलिलो केटली पोकळ छे ते जैन दर्शनकारोए घणीज सचोट दलिलोथी अनेक ग्रन्थोमां साबित करेलुं छे. अहीं ते सर्वनुं विवेचन करतां प्रस्तुत प्रस्तावना घणीज लांबी थइ जवानो संभव होवाथी टुंकमां जैन दर्शनकारो आत्माने केवा स्वरूपे जणावे छे तेज संक्षेपथी कहुं छुंः–आ जीव कोइए बनाव्यो नथी पण अनादि कालथी स्वयंसिद्ध छे. कोइ पण जीव नवीन उत्पन्न थतो नथी तेम संपूर्ण नाश पण पामतो नथी एटले आ लोकमां जेटला जीवो अनादि कालथी छे तेमां एक पण संख्यानी वृद्धि हानि थती नथी. आ जीव अनंत ज्ञान दर्शनमय चेतनावाळो छे पण तेने अनादि काळथी वळगेल कर्मो तेना ते गुणोने हीनाधिक पणे ढांके छे. ज्यारे जीव ते आवरणोनो संपूर्ण नाश करे छे त्यारे तेनुं केवलज्ञान केवलदर्शनमय मूळ शुद्ध स्वरूप प्रगट थाय छे. अने तेनी ते अवस्था तेज परमात्मदशा अथवा सिद्धदशा छे. ते दशामां रह्या थका ते पोताना गुणोपयोगमां वर्तता अनंत अव्याबाध सुखमां अनंतो काल रहे छे अने फरीथी तेमने आ संसारनी उपाधिओ वळगी शकती नथी. जन्ममरणनो अभाव थाय छे.

२ कर्मसिद्धिः–उपर कहेल स्वरूपवाला आत्माने अनादि कालथी संसारमां रखडावनार कर्म छे. कारण के ज्यां सुधी कर्मसंबंध रहेल छे त्यां सुधी जीवने मुक्ति अशक्य छे. माटे कर्म शी वस्तु छे ते जणाववुं आवश्यक छे. दरेक जीवमां जीवत्व समान

छतां पण कोइक मनुष्य, कोइक नारकी, कोइक तिर्यंच, कोइक देव, मनुष्यमां पण राजा, रंक, रोगी, निरोगी, सुखी दुःखी विगेरे विचित्रता जणाय छे. तेनो कोइ पण हेतु अवश्य होवो जोइए. हेतु न मानीए तो जीव तेज रूपे रहेवो जोइए पण तेम बनतुं नथी माटे हेतु अवश्य मानवो जोइए अने ते हेतु तेज कर्म छे. बौद्ध, पौराणिक, वेदांती वगेरे अन्य मतवाळाओ पण जुदा जुदा नामे कर्मने तो माने छे. पण कर्मना स्वरूपमां मतभेद छे. तेओ कर्मने वासना अदृष्ट वगेरे नाम आपे छे अने तेने अरूपी माने छे. पण जैनो कर्मने पौद्गलिक होवाथी रूपी माने छे. कारण के जेम अरूपी आकाशथी आत्माने अनुग्रह उपघात थतो नथी तेम अरूपी कर्मथी आत्माने अनुग्रह उपघात घटे नहि पण ते बंने प्रत्यक्ष अनुभवाय छे, माटे कर्म रूपी छे एम साबित थाय छे.

३ **अष्टकरणोः**—आ कर्म बंधाया पछी ते सत्तामां रहेलां कर्मोनी उपर जीववीर्य विशेष रूप योगथी केवी केवी असरो थाय छे ते आठ करणो वडे प्रस्तुत ग्रंथमां विस्तारथी जणाववामां आवी छ. तेनुं अहींआं टुंकमां कांइक स्वरूप जणावुं छुं. (१) बन्धकरणः—कर्मवर्गणाओनो आत्मप्रदेशो साथे संबंध करवामां हेतुरूप जे योग ते बन्धनकरण. आ करण सौथी प्रथम आप्युं छे कारण के कर्मबन्ध थया पछीज तेने विषे बीजा करणो पोतानी असर करवाने समर्थ छे. आ कारणथी ग्रहण कराएल कर्म वर्गणामां प्रकृतिबन्ध, स्थितिबंध, रसबन्ध अने प्रदेशबंध एम चार प्रकारे बंध थतो होवाथी बन्धनकरणनी पण चार विभागमां वहेंचण करी ते ते बन्धनुं विस्तारपूर्वक वर्णन करवामां आव्युं छे. जो के चारे प्रकारना बंध एकज समयमां थाय छे तो पण तेनुं वर्णन एक साथे करी शकातुं नथी माटे प्रथम योगनी मुख्यताथी थता प्रकृति बन्ध अने प्रदेश बन्धनुं वर्णन करी पछी योग साथे सहकारी लेश्या जनित अध्यवसायथी थता रसबन्धनुं अने काषायिक अध्यवसायथी थता स्थितिबन्धनुं विस्तारपूर्वक वर्णन कर्युं छे

(२) संक्रमकरणः–बन्धाएल कर्मनी प्रकृत्यादिकने अन्य कर्मनी प्रकृत्यादिक पणे जे रूपान्तर ते संक्रम. अने संक्रम थवामां हेतुरूप योग ते संक्रमकरण. बन्ध थया पछी सत्तामां रहेल कर्म उपर एक आवलिका सुधी कोइ करण असर करी शकतुं नथी. पण एक आवलि गया बाद संक्रमकरणनी शक्ति चाली शके छे तेथी जो के ते बन्धाएला कर्मना मूलप्रकृतिपणाने दूर करी शकतुं नथी पण सजातीय अवांतर भेदोमां अन्य अन्य रूपे फेरफार करे छे. जेमके मतिज्ञानावरणीय रूपे बन्धाएल कर्मना दलिक संक्रमकरणनी असरथी श्रुतज्ञानावरणीयादि ४ ज्ञानावरणरूपे परिणमे छे पण असल ज्ञानावारकपणाने मूकीने दर्शनावारकपणादिकने पामतां नथी. आ सामान्य नियम आयुष्यमां बिलकुल लागु थतो नथी. कारणके बद्धायुष्यनां दलिकनुं अन्य आयुष्यपणे परिणमन थतुं नथी. तेमज मोहनीय कर्ममां पण दर्शनमोहनीयनो चारित्रमोहनीयमां अने चारित्रमोहनीयनो दर्शनमोहनीयमां संक्रम थतो नथी. आ करणमां पण प्रकृति संक्रमादि चार प्रकारना संक्रमनुं स्वरूप विस्तारथी जणाव्युं छे. (३–४) उद्वर्तना–अपवर्तनाः–आ बे करणो स्थिति अने रस उपरज असर करी शके छे. बन्धाएल कर्मनी स्थिति तथा रसमां वृद्धि करनार ते उद्वर्तना अने हानि करनार ते अपवर्तना. जो के संक्रममां पण आनो समावेश थइ शके छे पण विशेषता ए छे के उद्वर्तनाकरण अने अपवर्तनाकरण बद्ध प्रकृतिना दलिकना स्थिति–रसमां हीनाधिकपणुं करे छे पण तेना स्वभावमां फेरफार करी शकतां नथी. जेम मतिज्ञानावरणीयरूपे बंधाएल कर्मना दलिक संक्रणकरणनी असरथी श्रुतज्ञानावरणादि प्रकृतिपणे परिणमे छे तेम आ बे करणो करी शकतां नथी पण मतिज्ञानावरणरूपे रहेलां दलिकना स्थिति अने रसमां हानि वृद्धि करे छे. (५) उदीरणाकरणः–जे योगरूप शक्ति उदयवती प्रकृतिनां उदयावलिका बाहेरनां दलिकोने स्थिति घटाडीने उदयावलिकानी अंदर लावे ते उदीरणाकरण. आ करण रसोदयवती प्रकृतिमांज प्रवर्ते छे.

अहीं एम शंका थाय के अपवर्तनाथी पण स्थिति घटे छे अने उदीरणाथी पण घटे छे तो उदीरणामां विशेषता शी छे. तेनुं समाधान आ प्रमाणेः–उदय होय अथवा न होय तो पण अपवर्तना थाय छे अने उदीरणा तो उदय छतेज प्रवर्ते छे वळी उदयावलिका उपरांतना गमे ते निषेकनां दलिको उदयावलिमां दाखल थाय त्यारे उदीरणा कहेवाय. अने उदयावलिका उपरनीं गमे ते स्थितिमां दाखल थाय त्यारे अपवर्तना कहेवाय. जेमके असत्कल्पनाए ४ समयनी उदयावलिका छे तेमां २५ मा निषेकमांथी जे दलिक प्रवेशे ते उदीरणा थइ कहेवाय. अने ५ थी २० सुधीना गमे ते निषेकमां प्रवेशे ते अपवर्तना कहेवाय. आ उदीरणा तेमज आगळ आवतां उपशमनादि वगेरे ३ करणो प्रकृत्यादि ४ प्रकारमां प्रवर्ते छे. (६) **उपशमना करणः**–जे शक्ति पूर्वबद्ध कर्मदलिकमां एवा संस्कार करे के जेथी तेनी उपर उदीरणा, निद्धत्ति ने निकाचना करणो असर करी शके नहि तेमज जेनो उदय पण न प्रवर्ते. उपशमनाना सर्वोपशमना अने देशोपशमना एम बे प्रकार छे. सर्वोपशमना मोहनीयमांज होय छे अने देशोपशमना सर्वे कर्ममां होय छे. देशोपशमनामां तो उदय होय पण खरो. (७) **निद्धत्तिकरणः**–आ करण रूप शक्ति पूर्वबद्ध तेमज बंधाता कर्म परमाणुने विषे एवी असर करे छे के जेथी उद्वर्तना–अपवर्तना सिवाय कोइ करण तेने विषे प्रवर्ती शकतुं नथी परंतु उदय संभवे पण खरो. (८) **निकाचना करणः**–आ करण पण पूर्वबद्ध तेमज बंधाता कर्म परमाणुनी एवी गाढ मजबुताइ करे छे के जेथी तेना उपर कोइ पण करण असर करी शकतुं नथी. पण जेवा स्वरूपे निकाचित थयां छे तेज स्वरूपे भोगववां पडे छे.

उदय–सत्ताः–ए प्रमाणे आत्मानी पुद्गल जन्य शक्तिरूप आठ करणो जणाव्या बाद उदय अने सत्ता ए बे अधिकारोनुं स्वरूप जणाव्युं छे, आ बे करणो नथी कारण के बंधायेल कर्म दलिक ज्यां सुधी आत्माथी जुदुं पडे नहि अथवा अन्यरूपे परिणमे

नहि त्यां सुधी तेनी सत्ता कहेवाय छे. बंध तथा संक्रमथी सत्ता थाय छे. तेमज उदय अने संक्रमथी सत्तानो नाश थाय छे. उदय पण स्वाभाविक छे. कारण के बंधाएल कर्मनी अबाधा पूर्ण थये ते कर्म जीव उपर पोतानी असर जणावे त्यारे उदय थयो कहेवाय छे. उदय थवाथी ते कर्मनी निर्जरा शरू थाय छे.

ए प्रमाणे कुल १० अधिकारोनुं प्रस्तुत ग्रंथमां वर्णन करेलुं छे ते उपरथी कर्मो आत्मा उपर केवी केवी असरो करे छे. कइ कइ स्थितिमां वर्ततो जीव कइ कइ स्थितिमां आवी पडे छे तेनी समजण पडे छे. एटलुंज नहि पण आत्मानी योगरूप शक्ति पण ते कर्म पुद्गलोनां केवां केवां विचित्र विचित्र रूपान्तरो करे छे ए पण जणाय छे. आ प्रमाणे जीव अने कर्मनुं अथवा चेतन अने जडनुं परस्पर युद्ध अनादि कालथी चाल्युं आवे छे अने ते युद्धमांथी कोईक पुण्यशाळी जीव कर्मनो संपूर्ण नाश करी छूटो पण थाय छे.

ग्रन्थकार तथा टीकाकार संबंधी टुंक परिचय.

ग्रन्थकार श्रीशिवशर्मसूरिजी–मूलग्रन्थकार श्रीमान् शिवशर्मसूरिजी महाराजना जन्म, दीक्षा सूरिपद वगेरेनी बीना घणो प्रयत्न कर्या छतां पण हजी सुधी मळी शकी नथी. छतां तेओश्री पूर्वधर हता तेवुं अनेक ग्रन्थो उपरथी जाणी शकाय छे. तेओश्रीए बीजा अग्रायणी पूर्वमांथी शतक नामनो कर्मग्रन्थ पण बनाव्यो छे. जेना उपरथी देवेन्द्रसूरि महाराजे नवीन शतक नामे पांचमो कर्मग्रन्थ बनाव्यो अने एटलाज माटे देवेन्द्रसूरिजी पांचमा कर्मग्रन्थनी टीकाना मंगलाचरणमां तेओश्रीनी स्तुति करतां आ प्रमाणे जणावे छे के:–"अग्रायणीयपूर्वादुद्धृत्य परोपकारसारधिया । येनाभ्यधायि शतकः स जयति शिवशर्मसूरिवरः ॥१॥"

टीकाकार आचार्य श्रीमलयगिरिजी महाराज–तेओश्रीना पण जन्मक्षेत्रादि प्राप्त थता नथी. परंतु कुमारपाल भूपालने प्रतिबोध पमाडनार कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजना समयमां तेओश्री हयात हता एम श्रीजिनमंडनगणिए बनावेल कुमारपाल भूपाल चरित्रमां आपेल नीचेनी हकीकतथी जाणी शकाय छेः–"एक वखत पूज्यपाद श्रीहेमचन्द्रसूरीश्वरजीए बीजा गच्छना श्रीदेवेन्द्रसूरिजी अने श्रीमलयगिरिजी साथे कला कुशलतादि प्रयोजनथी गौडदेशमां विहार शरू कर्यो. ते प्रसंगे श्रीरैवतक (गिरनार)गिरिनी उपर उत्तरसाधक पद्मिनी स्त्रीनी साक्षीए श्रीसिद्धचक्रनी साधना करी. इन्द्रना सामानिक देव श्रीसिद्धचक्राधिष्ठायक श्रीविमलेश्वरदेवे प्रत्यक्ष थइ वरदान मागवा कह्युं. श्रीहेमचन्द्राचार्ये 'राजाने प्रतिबोध करी शकवानुं' देवेन्द्रसूरिए 'उपद्रववाळी कान्तिनगरीथी जिनप्रासादने निरुपद्रववाला स्थानके लइ जवानुं' तेमज प्रस्तुत कर्मप्रकृतिना टीकाकार श्रीमलयगिरिजी महाराजे 'जैन सिद्धान्तोनी उपर टीका करवानु' वरदान माग्युं." आ पाठ उपरथी बारमा सैकाना छेवटना भागमां अने तेरमा सैकानी शरुआतमां श्रीमान् मलयगिरिजीनी हयाति मानी शकाय. ऐतिहासिक ग्रन्थोना अवलोकनथी जाणी शकाय छे के तेओश्री प्रसिद्ध टीकाकार हता. अनुभवसिद्ध एम पण कही शकाय के आ आचार्यनी टीका बनाववानी प्राणालिका मारा जेवा घणा बाल जीवोने स्पष्ट बोधदायक छे. तेओश्रीए नीचे जणावेली उंडा रहस्यवाली टीकाओ बनावी छेः–

श्रीव्यवहारसूत्र (छेदग्रन्थनी)वृत्ति, पंचसंग्रहवृत्ति, नंद्यध्ययनवृत्ति, षष्ठकर्मग्रन्थवृत्ति, प्रज्ञापनावृत्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति (उपांगसूत्रनी)वृत्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति(उपांगसूत्रनी) वृत्ति,ज्योतिष्करंडकवृत्ति,जीवाभिगमवृत्ति, क्षेत्रसमासवृत्ति, धर्मसंग्रहणिवृत्ति,व्याकरण (शब्दानुशासन),रायपसेणीवृत्ति, बृहत्कल्पनी अर्ध पीठिकानी वृत्ति(जे क्षेमकीर्ति नामना आचार्ये पूर्ण करी छे)आवश्यकवृत्ति, भगवतीना २०मा शतकनी वृत्ति.

छट्ठा कर्मग्रन्थनं टीकानी प्रशस्तिमां चूर्णिनो प्रभाव जणावतां तेओश्री लखे छे के मंदबुद्धिवाला पण चूर्णिग्रन्थोनो उंडो

विचार करवाथी टीका बनाववा समर्थ थइ शके छे. हु पण चूर्णिकारना वचनबलथी टीका बनावुं छुं. आवा भव्यजीवोपकारक टीका ग्रन्थोना बनाववनार सूरिजी भव्य जीवोने ग्रन्थना अंते एज आशीर्वाद आपे छे के आ ग्रंथ बनाववाथी प्राप्त थएल पुण्यना प्रभावे 'भव्यजीवो मुक्तिपदने पामो, मुनिओ सिद्धान्तना बोधने पामो' इत्यादि भावनाथी तेओश्रीनी आशय विशालता केवी पवित्र हती ते याद करवाथी आपणा आशयनी संकुचित दशा जरूर दूर करी शकाय. अनेक टीकानी शरुआतमां तेओश्री चूर्णिकार महाराजने; तथा पोताना समयथी पूर्वे थएला प्राचीन टीकाकार, चारे दिशामां भूवलय प्रसिद्ध श्रीहरिभद्रसूरि महाराजने नमस्कार करे छे, ते तेओश्रीनुं कृतज्ञपणुं तथा प्राचीन पुरुषोना वचनने आधारे टीका बनाववापणुं साबित करे छे.

न्यायविशारद महोपाध्याय श्रीयशोविजयजीः–थोडाज समय उपर थइ गएल आ महान् पुरुषनो जन्म क्यारे अने क्यां थयो वगेरे विना हजु पण चोकस निर्णयपूर्वक जाणी शकाइ नथी, छतां पण केटलाक तेमनो जन्म वि. सं. १६७०–८० लगभग कल्पे छे. परंतु तेमणे करेल 'लोकनालि' नामना ग्रन्थना बालावबोधनी १६६५ नी साल जोतां तेम संभवतुं नथी. तेओ वणिक कुलना हता अने लगभग आठमे वर्षे दीक्षित थएला हता एम केटलाकनुं मानवुं छे. तेमज लोकनालि बालावबोधनी शब्दरचना उपरथी जन्मस्थल गुजरातमां होय तेम संभवे छे. एक प्राचीन रासमां एम पण कह्युं छे के 'कम्होडु' (कनोडु) ए गाममां तेमनो जन्म. त्यां पाटणनी नजीकमां वर्तता 'कुणगिरि' गामथी पूज्यश्रीनां गुरु नयविजयजी पधार्या. तेआश्रीनी स्मरणशक्ति बिषे घणी किं वदंतिओ चाले छे. जेमांनी एक अहीं टुंकमां रजु करुं छुं–"दीक्षा लीधा पछी तेओश्री न्यायशास्त्रनो अभ्यास करवा पोताना गुरुनी साथे काशी गया हता. त्यां १२ वर्ष सुधी अभ्यास करी अनेक वादीओने जितवाथी त्यांना विद्वानोए 'न्यायविशारद' एवी पदवी आपी हती. काशीमां तेओ जे ब्राह्मण गुरुनी पासे अभ्यास करता हता ते सात हजार श्लोक

प्रमाण कोइक ग्रन्थ तेओने भणावता न होता. विनयथी गुरुने प्रसन्न करी तेमनी पासेथी ते ग्रन्थ मेळवी तेओश्रीए एक रात्रीमां मोढे करी ते गुरुने पाछो आप्यो. बीजा ग्रन्थोमां एम पण छे के त्रण हजार श्लोक श्रीविनयविजयजी महाराजे अने चार हजार श्लोको तेओश्रीए मोढे कर्या अने सवारे गुरुने ते ग्रन्थ सोंप्यो. आ उपरथी काशीमां अभ्यास वखते श्रीविनयविजयजी महाराज पण साथे हता तेम जाणी शकाय छे. अभ्यास काले अन्यत्र पोताना गुरुजीनुं नाम पण कहेल छे. वळी तेओए बाल्यावस्थामां भक्ता-मरस्तोत्र संभलावी तेमनी मातानो अभिग्रह पूर्ण कर्यो हतो. (विशेष हकीकत माटे 'जैन गुर्जरकविओ' जुओ.) तेओए सरस्वती-नी अने ऐंकार मन्त्रनी आराधना करी हती. तेओना बनावेला घणा खरा ग्रन्थोमां 'ऐंकार', 'रहस्य', तथा 'यशःश्री' एवा शब्द आवे छे. एम कहेवाय छे के एमणे न्यायना १०८ ग्रन्थो बनाव्या छे. आवा समर्थ विद्वान यशोविजयजी महाराजने वि. सं. १७१९ मां आ०श्रीविजयप्रभसूरिए उपाध्याय पदवी आपी हती. उ०मानविजयजीए अमदावादमां बनावेल 'धर्मसंग्रह' ग्रन्थनुं तेओए १७३१ मां संशोधन कर्युं छे. श्रीदेवचंद्रजी, अने श्रीज्ञानविमलजी तेओना समकालीन हता एम तेओश्रीना नामथी प्रसिद्ध नवपदजीनी पूजानां आधारे जणाय छे. त्रणे जणाए साथे मळीने ए पूजा बनावी छे एम पण कहेवाय छे. ते उपरथी एकता (संप)नो पण बोध मळी शके छे. श्रीविनयविजयजी महाराजनो अधुरो रहेल 'श्रीपालरास' १७३८ मां तेओश्रीए पुरो कर्यो. वि. सं. १७०९ मां कालधर्म पामेल आ०विजयसिंहसूरिजीनी आज्ञाथी पं०सत्यविजयगणिए करेल क्रियोद्धारना कार्यमां तेओ साथे हता.

तेओश्रीना गुरु आदिना परिचय परत्वे एम जाणी शकाय छे के पट्टपरंपराना क्रमे ५८मी पाटे थएला आ०हीरविजय-सूरिना शिष्य उ०कल्याणविजयजी, तेमना शिष्य पं०लाभविजयजी, तेमना नयविजयजी तथा जितविजयजी नामे बे शिष्यो. अने नयविजयजीना शिष्य उ०यशोविजयजी. तेओश्रीनां शिष्य समुदायनी बीना विषे एम जणाय छे के तेमना शिष्य पं०

गुणविजयगणि, तेमना शिष्य पं०केसरविजयजी, तेमना शिष्य पं०विनीतविजयगणि अने तेमना शिष्य पं०देवविजयगणि. आवी परंपरा पं०देवविजयगणिए 'योगदृष्टि स्वाध्यायमां' छेवटे जणावी छे. तेओश्रीए संस्कृत, प्राकृत तेमज गूर्जरभाषामां अनेक ग्रन्थो बनाव्या छे. तेओ नय निक्षेप अने सप्तभंगीना सूक्ष्म बोधवाला अने जैन न्यायमां अद्वितीय निपुण हता. केवलीने १ समये एकज उपयोग होय ए विषे 'ज्ञान बिन्दुमां' नय विचारथी करेलुं स्पष्ट विवेचन तेओनुं जैन सिद्धान्तना रहस्योनुं उंडुं अने अपूर्व ज्ञान साबित करे छे. गुंचवण भरेला विषयोनुं तेओए युक्ति अने दाखला दलिकपूर्वक समाधन कर्युं छे. आवा जैनशासनना स्थंभ समान उपाध्यायजी महाराज वि. सं. १७४५ ना महा सुद ५मे डभोईमां स्वर्गवास पाम्या.

अन्ते जणाववानुं के आ ग्रन्थना पठन पाठन अने मनन द्वारा भव्य जीवो कर्म स्वरूप अने आत्मस्वरूप ओलखे, तत्वोनो यथार्थ बोध मेळवे. हित मार्गमां प्रवर्ते. अहित मार्गथी पाछा हठी पवित्र वीतराग परमात्माना मार्गनी आराधना करी मुक्तिपद मेलवे. एम हार्दिक निवेदन करी आ टुंक प्रस्तावना संक्षेपी लउं छुं. छद्मस्थ जीवोनो ज्ञानावारक कर्मना प्रतापे अनाभोगजन्य स्खलना अनिवार्य छे. कह्युं छे के-"अवश्यं भाविनो दोषाः छद्मस्थत्वानुभावतः। समाधिं तन्वते सन्तः किं नराश्चात्र वक्रगाः ॥१॥" तेथी आ ग्रन्थमां संशोधनजन्य तथा मुद्रणजन्य जे कांइ भूलचूक जणाय तेने गुणग्राही वाचकवर्ग सुधारीने वांचशे. इत्यलम्.

राजनगर
कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा
सं. १९९१.

निवेदक :—
तपोगच्छाधिपतिश्रुतयोगसंपत्संपादक परमोपकारशिरोमणि आचार्य-
श्रीविजयनेमिसूरीश्वरचरणकिङ्करमहोपाध्यायश्रीपद्मविजयजीगणि.

अनुक्रमणिका.

पृष्ठाङ्क	विषय	गाथाङ्क
१	मंगलाचरणं, अभिधेयादि	१
२–७	कर्माष्टकस्वरूपम्	
८–१७	ध्रुवबन्धित्वादि ३१ द्वाराणि	
१७–१८	अष्टकरणनामानि लक्षणं च	२
	बन्धनकरणेः—	
१८–३१	योगस्वरूपादि–अविभागस्वरूपादि	३-१७
३२–३९	पुद्गलवर्गणादिप्ररूपणा	१८–२१
४०–४७	स्नेहप्रत्ययस्पर्धकादिप्ररू०	२२–२३
४८–५७	मूलोत्तरप्रकृतिषु दलिकविभागप्ररूपणा प्रदेशाल्पबहुत्वं साद्यादि–स्वामित्वप्र० च	२४–४८
५८–६०	अनुभागबन्धेः—अविभागप्ररूपणादि–कण्डकप्ररूपणां यावत्	२९–३२
६१–७७	षट्स्थानप्ररूपणा, तस्यां च १४ चतुर्दशानुयोगद्वारप्ररूपणा	३२–४३
७७–८२	अनुभागस्थानेषु जीवानाश्रित्याष्टानुयोगद्वारप्ररू०	४३–५१
८३–८५	स्थितिस्थानाध्यवसायेषु अनु०स्थानप्र०	५१–५६
८५–१०८	अनुभागेः—अनुकृष्टिप्ररूपणा–तीव्रमन्दता साद्यनादि–स्वामित्वप्ररूपणा च	५७–५८
१०९-१२२	स्थितिबन्धेः–स्थितिस्थानप्र०,संक्लेशविशोधिस्थानानि-ज०उ०स्थित्यबाधाप्रमाणादि	६८–८२
१२३-१२७	निषेकप्ररूपणा, अबाधाकंडकादिप्ररूपणा	८३–८६
१२८-१३८	स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानप्ररूपणायां परम्परोपनिधादि–प्रगणनादि–समुदाहारा-	

पृष्ठाङ्क	विषय	गाथाङ्क
	दिप्र०, स्थितिबन्धे साद्यादि स्वामित्वप्र० च	८७-१०२
	संक्रमकरणे :—	
१३९-१४१	प्रकृतिसंक्रमे संक्रमलक्षणं–अपवादनियमौ	१—४
१४१-१४३	संक्रमपतद्ग्रहयोः साद्यादिप्ररूपणा	५—८
१४४-१६०	उत्तरप्रकृतिसंक्रमपतद्ग्रहस्थानानि	९–२७
१६१-१६६	स्थितिसंक्रमेः–भेदविशेषः–विशेषलक्षणं, उत्कृष्टजघन्यस्थितिसंक्रमप्रमाणं, यत्स्थितिपरिमाणादि	२८–३५
१६७-१७१	साद्यनादिप्ररूपणा. जघन्योत्कृष्टस्थितिसंक्रमस्वामित्वं च	३६–४३
१७१-१७४	अनुभागसंक्रमेः–भेद–विशेषलक्षण–स्पर्धकादि उत्कृष्टजघन्यानुभागसंक्रमाश्च	४४–४६
१७५-१८१	साद्यनादिप्र०, उत्कृष्टजघन्यानुभागसंक्रमस्वामित्वं	४७–५९
१८१-१८६	प्रदेशसंक्रमेः–लक्षणभेदादिः, उद्वलनादिपञ्चविधसंक्रमस्व०–अपहारकालश्च	६०–७१
१८६-१९४	उत्तरप्रकृतिषु साद्यनादिप्र०, गुणितकर्मांशस्वरूपं, उत्कृष्टप्रदेशसंक्रमस्वामित्वं च	७२–९३
१९५-२०१	क्षपितकर्मांशस्व०-ज०प्र०संक्रमस्वामित्वं	९४-१११
	उद्वर्तनापवर्तनयोः—	
२०१-२०३	उद्वर्तनायां–स्थित्युद्वर्तना निक्षेपश्च	१–३
२०४-२०५	अपवर्तनायां–स्थित्यपवर्तना	४–६
२०६	अनुभागोद्वर्तनापवर्तना च	७
२०७-२०८	उद्वर्तनापवर्तनयोरल्पबहुत्वं कालनियमश्च	८–१०
	उदीरणाकरणेः—	
२०८-२०९	प्रकृत्युदीरणायां:—लक्षण–साद्यनादि च	१–३
२१०-२१५	मूलोत्तरप्रकृत्युदीरणास्वामित्वं	४–२१
२१५-२१७	उदीरणास्थानानि स्वामित्वं च	२२–२८

पृष्ठाङ्क	विषय	गाथाङ्क
२२७-२२९	स्थित्युदीरणायां:—लक्षणभेदौ-साद्यनादि	२९–३१
२२९-२३५	अद्धाच्छेद-उत्कृष्टजघन्यस्थित्युदीरणास्वा०	३२–४२
२३६-२३९	अनुभागोदीरणायां—संज्ञा शुभाशुभप्र०	४३–४७
२३९-२४०	विपाकस्वरूपं प्रत्ययस्वरूपं च	४८–५३
२४१-२५०	मूलोत्तरप्रकृतिषु साद्यनादिप्र०स्वामित्वं च	५४–७९
२५०-२५२	प्रदेशोदीरणायां—मूलोत्तरप्रकृतिनां साद्यनादिप्र०	८०–८१
२५१-२५४	उत्कृष्टजघन्यप्रदेशोदीरणास्वामित्वं	८१–८९
	उपशमनाकरणे:—	
२५४	करणाकरणकृतोपशमनास्वरूपं	१–२
२५५-२५६	सर्वोपशमनायां:—प्रथमोपशमसम्यक्त्वप्र०	३–८
२५७-२६१	यथाप्रवृत्तापूर्वकरणानिवृत्तिकरणत्रयस्व०	९–१७
२६१-२६३	प्रथमौपशमिकलाभस्वरूपं दृष्टित्रिकस्व०	१८–२६
२६४-२६५	अविरतिदेशविरतिसर्वविरतिस्वरूपम्	२७–३०
२६६	अनन्तानुबन्धिविसंयोजना	३१
२६७-२६९	दर्शनमोहनीयक्षपणाविधिः	३२–३३
२६९-२८१	उपशमश्रेणेः स्वरूपम्	३४–५७
२८१-२८४	उपशमश्रेणेः प्रतिपातक्रमः	५८–६५
२८४-२८६	देशोपशमनायां:-प्रकृतिदेशोपशमना	६६-६९
२८६-२८७	स्थित्यनुभागप्र देशदेशोपशमनास्वरूपम्	७०-७१
२८७-२८८	निधत्तिनिकाचनाकरणस्वरूपम्	७२-७४
	उदयाधिकारे:—	
२८८-२८९	प्रकृत्युदयः, स्थित्युदयः अनुभागोदयश्च	१–५
२९०-२९१	प्रदेशोदये मूलोत्तरप्रकृतीनां साद्यनादिप्ररू०	६-७
२९१-२९२	गुणश्रेणिस्वरूपम्	८–११
२९३-२९५	उत्कृष्टप्रदेशोदयस्वामित्वम०	१२–१९
२९५-२९९	जघन्यप्रदेशोदयस्वामित्वप्र०	२०–३२
३००	भेदप्र०मूलोत्तरप्रकृतीनां साद्यनादिप्र०	१–२

पृष्ठाङ्क	विषय	गाथाङ्क
३००–३०३	एकैकप्रकृतिगतं स्वामित्वम्	३–९
३०३–३०६	प्रकृतिस्थानसत्कर्मप्ररूपणा	१०–१५
३०६–३०७	स्थितिसत्कर्मणि भेद–साद्यनादि च	१६
३०७–३०९	उत्कृष्टजघन्यस्थितिसत्कर्मस्वामित्वं	१७–१९
३१०	स्थितिस्थानभेदप्र०	२०
३११–३१२	अनुभागसत्कर्मप्र०	२१–२४
३१२–३१३	प्रदेशसत्कर्मणि-मूलोत्तरप्रकृतिषुसा०प्र०	२५–२६
३१३–३१८	उत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मस्वामित्वं	१७–४३
३१९–३२४	प्रदेशसत्कर्मस्थान प्ररूपणार्थं स्पर्धक प्ररू.	४४–५०
३२५	भूयस्कारादीनां स्वरूपम्	५१–५२
३२६–३२९	सत्तासमाप्तिः उपसंहारश्च	५३–५६

अ ॥१॥ थी–अ ॥१२॥ मूलोत्तरप्रकृतीनां बन्धस्थानादिचतुष्क

भूयस्कारादिचतुष्कं च

अ ॥१३॥ थी–अ ॥५८॥ बन्धोदयसत्तास्थानानां संवेधः

पृष्ठाङ्क	विषय	गाथाङ्क
अ ॥५९॥ थी–अ ॥६४॥	क्षपकश्रेणिस्वरूपम्	

लघु अनुक्रमणिका.

नाम	पृष्ठसंख्या	गाथासंख्या	य०उ०संख्या
बन्धनकरण	१–१३८	१०२	५५
संक्रमकरण	१३९–२००	१११	३८
उद्वर्तनापवर्तनाकरण	२०१–२०७	१०	१०
उदीरणाकरण	२०८–२५४	८९	३२
उपशमना निधत्तिनिकाचना	२५५–२८७	७४	२८
उदयाधिकारः	२८८–२९९	३२	७
सत्ता प्रकरण	३००–३२८	५७	२१
अ ॥१॥ थी–अ ॥६४॥		४७५	१९१

॥ ॐ श्रीपार्श्वनाथाय नमः ॥

श्रीमलयगिरिकृत–टीका–संयुक्ता

कर्मप्रकृतिः

श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायटीकान्तर्गतविशेषाधिकारयुक्ता च

प्रणम्य कर्मद्रुमचक्रनेमिं, नमत्सुराधीशमरिष्टनेमिम् । कर्मप्रकृत्याः कियतां पदानां, सुखावबोधाय करोमि टीकाम् ॥ १ ॥
अयं गुणश्चूर्णिकृतः समग्रो, यदस्मदादिर्वदतीह किञ्चित् । उपाधिसंपर्कवशाद्विशेषो, लोकेऽपि दृष्टः स्फटिकोपलस्य ॥ २ ॥

इह शिष्टाः क्वचिदिष्टे वस्तुनि प्रवर्तमानाः सन्त इष्टदेवतानमस्कारपुरःसरमेव प्रवर्तन्ते । न चायमाचार्यो न शिष्ट इति शिष्टसमयपरिपालनाय, तथा श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ति, उक्तं च–"श्रेयांसि बहुविघ्नानि, भवन्ति महतामपि । अश्रेयसि प्रवृत्तानां, क्वापि यान्ति विनायकाः ॥ १ ॥" इति । इदं च प्रकरणं सम्यग्ज्ञानहेतुत्वाच्छ्रेयोभूतमतो मा भूदत्र विघ्न इति विघ्नविनायकोपशान्तये चेष्टदेवतानमस्कारं । तथा न च प्रेक्षापूर्वकारिणः क्वचिदपि प्रयोजनादिविरहे प्रवर्तन्त इति प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यर्थं प्रयोजनादिकं च प्रतिपिपादयिषुरादाविदमाह—

सिद्धं सिद्धत्थसुयं, वंदिय निद्धोयसव्वकम्ममलं । कम्मट्ठगस्स करणट्ठमुदयसंताणि वोच्छामि ॥१॥

सिद्धमिति–इह पूर्वार्धेनेष्टदेवतानमस्कारस्याभिधानं, उत्तरार्धेन तु प्रयोजनादीनां । तत्र सितं बद्धं ध्मातं भस्मीकृतमष्टप्रकारं कर्म येन स सिद्धः । पृषोदरादित्वादिष्टरूपनिष्पत्तिः यथा ब्रुवन्तः सीदन्त्यस्यामिति बृसीत्यत्र । तं वन्दित्वेति क्रियायोगः । स च नामतोऽपि कश्चिद्भवति, विद्यासिद्धादिर्वा सिद्ध इति लोके प्रतीतस्ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं यथोक्तान्वर्थसूचकमेव विशेषणमाह–निर्धौतसर्वकर्ममलं, नितरामपुनर्भावेन धौतः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपःसलिलप्रभावेणापगमितः सर्व एव कर्मैवाष्टप्रकारं जीवमालिन्यहेतुत्वात् मल इव मलो येन स निर्धौतसर्वकर्ममलः (तं) । अनेनानादिशुद्धपुरुषप्रवादप्रतिक्षेप आवेदितो द्रष्टव्यः । विशेष्यमाह–सिद्धार्थसुतं सिद्धार्थस्य सिद्धार्थनरेन्द्रस्य, सुतमपत्यं वर्धमानस्वामिनमित्यर्थः । अनेन भगवत उत्तमजात्यैश्वर्यादिगुणसंपत्प्रकर्षमाह । अथवा सिद्धमिति विशेष्यं, सिद्धत्थसुयमिति विशेषणं । तत्र सिद्धार्थं सिद्धप्रयोजनं संसारान्निस्तारणस्य कृतत्वात् श्रुतं द्वादशांगं यस्याभूत् स सिद्धार्थश्रुतस्तं । अनेन श्रुतस्य संसारनिस्तारणं प्रत्यविकलं सामर्थ्यमावेद्यते । यद्वा सिद्धार्थाः सिद्धप्रयोजना मोक्षप्राप्तिभावात् सुता इव सुताः शिष्या गणधरादयो यस्य स सिद्धार्थसुतस्तं । अनेन भगवतः संततेरपि विशिष्टफलातिशयभाक्त्वमावेदयति । अत एव च भगवान् प्रेक्षावतां प्रणामार्हः । तमित्थंभूतं वन्दित्वा । किमित्या-

---

गाथार्थः—निद्धोयसव्वकम्ममलं=सर्व कर्मरूप मल दूर कर्यो छे, अने सिद्धं=सिद्धिपद पामेला, सिद्धत्थसुयं=सिद्धार्थ राजाना पुत्रने, वंदिय=नमस्कार करीने, कम्मट्ठगस्स=आठ कर्मोनां, करणट्ठं=आठ करणो, उदयसंताणि=उदय अने सत्ता, वोच्छामि=कहुं छुं.१

ह–वक्ष्यामि प्रतिपादयिष्यामि। कर्माष्टकस्य बन्धसंक्रमादिहेतुभूतं करणाष्टकं उदयसत्ते च। तत्र कर्माष्टकं ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायरूपं। एतच्चान्यत्र पञ्चसंग्रहादौ सप्रपंचमभिहितमिति नेह प्रतन्यते, केवलं तत एवावधारणीयं। तस्य बन्धसंक्रमादिकारणभूतं। करणानां वीर्यविशेषरूपाणामष्टकं करणाष्टकं बन्धनादि वक्ष्यमाणं। तथा कर्मपुद्गलानां यथास्थितिबद्धानामबाधाकालक्षयेणापवर्तनादिकरणविशेषतो वा उदयसमयप्राप्तानामनुभवनमुदयः। तेषामेव कर्मपुद्गलानां बन्धसंक्रमाभ्यां लब्धात्मलाभानां निर्जरणसंक्रमकृतस्वरूपप्रच्युत्यभावे सति सद्भावः सत्ता। इह करणाष्टकोदयसत्ता अभिधेयाः। तत्परिज्ञानं श्रोतॄणामनन्तरं प्रयोजनं, आचार्यस्य त्वनन्तरं प्रयोजनं परानुग्रहः। परंपराप्रयोजनं तूभयोरपि निःश्रेयसावाप्तिः। संबन्धस्तूपायोपेयभावलक्षणः। तथाहि–वचनरूपापन्नं प्रकरणमुपायः, तत्परिज्ञानाद्यु (नं चो) पेयमिति ॥ १ ॥

×(य०उ०) तत्र कर्माष्टकस्वरूपमिह बहूपयोगीति सप्रभेदं पञ्चसङ्ग्रहानुसारेण लिख्यते–ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाख्याः कर्मणोऽष्टौ मूलप्रकृतयः। तत्र सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि विशेषग्रहणात्मको बोधो ज्ञानं, तदाव्रियते आच्छाद्यतेऽनेनेति ज्ञानावरणं। सामान्यग्रहणात्मको बोधो दर्शनं, तदाव्रियतेऽनेनेति दर्शनावरणं। वेद्यते आह्लादादिरूपेण यत्तद्वेदनीयं। यद्यपि सर्वं कर्म वेद्यते तथापि पङ्कजादिपदवद्वेदनीयपदस्य रूढिविषयत्वात्सातासातरूपमेव कर्म वेदनीयमुच्यते, न शेषं। मोहयति सदसद्विवेकविकलं करोत्यात्मानमिति मोहनीयं, कृदुबहुल (सि० ५–१–१०–२) मिति कर्त्तर्यनीयः। एत्यागच्छति प्रतिबन्धकतां कुगतिनिर्यियासोर्जन्तोरित्यायुः, यद्वा समन्तादेति गच्छति भवान्तरसङ्क्रान्तौ जन्तूनां विपाकोदयमित्यायुः, उभयत्राप्यौणादिक

उस् प्रत्ययः। नामयति गत्यादिपर्यायानुभवनं प्रति प्रवणयति जीवमिति नाम। गूयते शब्द्यते उच्चावचैः शब्दैर्यत्तद्गोत्रं उच्चनीचकुलोत्पत्त्यभिव्यङ्ग्यः पर्यायविशेषः, तद्विपाकवेद्यं कर्मापि गोत्रं। यद्वा गूयते शब्द्यते उच्चावचैः शब्दैरात्मा यस्मात्तद्गोत्रं। जीवं दानादिकं चान्तरा व्यवधानापादनायेति गच्छतीत्यन्तरायं। पञ्च नव द्वे अष्टाविंशतिश्चतस्रो द्विचत्वारिंशत् द्वे पञ्च च यथाक्रममुत्तरप्रकृतयः।

तत्र मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलज्ञानावरणभेदात् पञ्च ज्ञानावरणोत्तरप्रकृतयः। मतिश्रुतादिस्वरूपं च सुव्यक्तं।

चक्षुर्दर्शनावरणाचक्षुर्दर्शनावरणावधिदर्शनावरणकेवलदर्शनावरणनिद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानर्द्धिभेदान्नव दर्शनावरणोत्तरप्रकृतयः। तत्र चक्षुषा दर्शनं चक्षुर्दर्शनं, तदावरणं चक्षुर्दर्शनावरणं। शेषेन्द्रियमनोभिर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनं, तदावरणमचक्षुर्दर्शनावरणं। अवधिरेव दर्शनमवधिदर्शनं, तदावरणमवधिदर्शनावरणं। केवलमेव दर्शनं केवलदर्शनं, तदावरणं केवलदर्शनावरणं। 'द्रा कुत्सायां' नियतं द्राति अविस्पष्टतया कुत्सितत्वं गच्छति चैतन्यं यस्यां स्वापावस्थायां सा निद्रा नखच्छोटिकामात्रसाध्यप्रबोधास्वापावस्थेत्यर्थः। निद्रातोऽतिशायिनी निद्रा निद्रानिद्रा, मध्यमपदलोपी समासः, तस्यां ह्यत्यन्तमस्फुटीभूतं चैतन्यं बहुभिर्यत्नैः प्रबोधमुपयाति। उपविष्ट ऊर्ध्वस्थितो वा प्रचलति घूर्णते यस्यां स्वापावस्थायां सा प्रचला। प्रचलातोऽतिशायिनी (प्रचला) प्रचलाप्रचला, इयं हि चङ्क्रमणादि कुर्वतोऽप्युदयमागच्छतीति प्रचलातोऽस्या अतिशायिनीत्वं। स्त्याना पिण्डीभूता ऋद्धिरात्मशक्तिरूपा यस्यां स्वापावस्थायां सा स्त्यानर्द्धिः, तद्भावे हि प्रथमसंहननस्यार्द्धचक्रवर्द्धबलसदृशी शक्तिरुपजायते। अत्र निद्रादयः

समधिगताया एव दर्शनलब्धेरुपघाते वर्तन्ते, दर्शनावरणचतुष्टयं तूद्गमोच्छेदित्वात्समूलघातं हन्ति दर्शनलब्धिमिति गन्धहस्ती। तथा च प्राप्तस्य दर्शनस्य नाशकत्वेनाप्राप्तस्य च प्रतिबन्धकत्वेन नवानामपि प्रकृतीनां दर्शनावरणत्वं परिभाषितं भवति।

वेदनीयस्य द्वे प्रकृती सातमसातं च। तत्र यदुदयादारोग्यविषयोपभोगादिजनितमाह्लादलक्षणं सातं वेद्यते तत्सातवेदनीयं, तद्विपरीतमसातवेदनीयं।

मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं षोडश कषाया नव नोकषायाश्चेत्यष्टाविंशतिर्मोहनीयप्रकृतयः। तत्र यदुदयाज्जिनप्रणीततत्त्वाश्रद्धानं तन्मिथ्यात्वं, यदुदयाज्जिनप्रणीततत्त्वं न सम्यक् श्रद्धत्ते नापि निन्दति तत्सम्यग्मिथ्यात्वं, यदुदयवशाज्जिनप्रणीततत्त्वं सम्यक् श्रद्धत्ते तत्सम्यक्त्वं। एतच्च प्रकृतित्रयं दर्शनमोहनीयमुच्यते। कषस्य संसारस्यायो लाभो येभ्यस्ते कषायाः क्रोधमानमायालोभाः, ते च प्रत्येकमनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनभेदाच्चतुर्धेति षोडश। तत्रानन्तं संसारमनुबध्नन्तीत्येवंशीला अनन्तानुबन्धिनः, एषां च संयोजना इति द्वितीयमप्यस्ति नाम। संयोज्यन्ते संबध्यन्तेऽनन्तैर्भवैर्जन्तवो यैस्ते संयोजना इति व्युत्पत्तेः। न विद्यते स्वल्पमपि प्रत्याख्यानं येषामुदयात्तेऽप्रत्याख्यानाः। प्रत्याख्यानं सर्वविरतिरूपमाव्रियते यैस्ते प्रत्याख्यानावरणाः। परीषहोपसर्गनिपाते सति चारित्रिणमपि सं ईषज्ज्वलयन्तीति संज्वलनाः। नोकषाया इत्यत्र नोशब्दः साहचर्ये, ततः कषायैः सहचारिणः सहवर्त्तिनो ये ते नोकषायाः। कैः कषायैः सहचारिण इति चेदाद्यैर्द्वादशभिः। तथाहि—नाद्येषु द्वादशसु कषायेषु क्षीणेषु नोकषाया अवतिष्ठन्ते, तदनन्तरमेव तेषामपि क्षपणाय क्षपकस्य प्रवृत्तेः। यद्वैते समुज्जृम्भमाणा अवश्यं कषायानुद्दीपयन्ति ततः कषायसहचारिणः।

उक्तं च—"कषायसहवर्त्तित्वात्कषायप्रेरणादपि। हास्यादिनवकस्योक्ता नोकषायकषायता ॥ १ ॥" ते च नोकषाया नव—वेदत्रिकं हास्यादिषट्कं च। तत्र वेदत्रिकं स्त्रीवेदः पुरुषवेदो नपुंसकवेदश्च। तत्र यदुदये स्त्रियाः पुंस्यभिलाषः पित्तोदये मधुराभिलाषवत्स स्त्रीवेदः, यदुदयात्पुंसः स्त्रियामभिलाषः श्लेष्मोदयादम्लाभिलाषवत्स पुरुषवेदः, यदुदयात्स्त्रीपुंसयोरुपर्यभिलाषः पित्तश्लेष्मोदये मज्जिकाभिलाषवत्स नपुंसकवेदः। हास्यादिषट्कं हास्यरत्यरतिभयशोकजुगुप्सालक्षणं। तत्र यदुदयात्सनिमित्तमनिमित्तं वा हसति तद्धास्यमोहनीयं, यदुदयाद्बाह्याभ्यन्तरेषु वस्तुषु प्रीतिस्तद्रतिमोहनीयं, यदुदयात्तेष्वप्रीतिस्तदरतिमोहनीयं, प्रीत्यप्रीती सातासातात्मके एवेति वेदनीयकर्मणैवानयोरन्यथासिद्धिरिति नाशङ्कनीयं, तदुपनीतसुखदुःखहेतुसंनिधानेऽपि चित्तान्यथाभावस्यैतद्व्यापारत्वात्, यदुदयात् प्रियविप्रयोगादावाक्रन्दति भूपीठे लुठति दीर्घं निःश्वसिति तच्छोकमोहनीयं, यदुदयात्सनिमित्तमनिमित्तं वा स्वसङ्कल्पतो बिभेति तद्भयमोहनीयं, यदुदयाच्छुभमशुभं वा वस्तु जुगुप्सते तद्जुगुप्सामोहनीयं। एते षोडश कषाया नव च नोकषायाश्चारित्रमोहसंज्ञाः।

सुरायुर्नरायुस्तिर्यगायुर्निरयायुश्चेति चतस्र आयुषः प्रकृतयः।

चतुर्दश पिण्डप्रकृतयोऽष्टाऽप्रतिपक्षाः प्रत्येकप्रकृतयस्त्रसाद्या दश च सप्रतिपक्षा विंशतिरिति द्विचत्वारिंशन्नामकर्मप्रकृतयः। तत्र गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गबन्धनसङ्घातसंहननसंस्थानवर्णगन्धरसस्पर्शानुपूर्वीविहायोगतयश्चतुर्दश पिण्डप्रकृतयः। पिण्डत्वमवान्तरभेदयुक्तत्वं। तत्र गम्यते तथाविधकर्मसचिवैर्जीवैः प्राप्यत इति गतिः नारकत्वादिपर्यायपरिणतिः, सा चतुर्धा नरकगतिस्तिर्य-

ग्गतिर्मनुष्यगतिर्देवगतिश्च, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि गतिः, साऽपि चतुर्द्धा । एकेन्द्रियादीनामेकेन्द्रियादिशब्दप्रवृत्तिनिबन्धनं तथाविधसमानपरिणतिलक्षणं सामान्यं जातिः, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि जातिः । अयमत्र पूर्वसूरीणामभिप्रायः—द्रव्यरूपमिन्द्रियमङ्गोपाङ्गनामेन्द्रियपर्याप्तिनामसामर्थ्यात्सिद्धं, भावरूपं तु स्पर्शनादीन्द्रियावरणक्षयोपशमसामर्थ्यात् "क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणीति" वचनात् । यत्पुनरेकेन्द्रियादिशब्दप्रवृत्तिनिमित्तं सामान्यं तदन्यासाध्यत्वाज्जातिनामनिबन्धनमिति । अत्र कश्चिदाह—शब्दप्रवृत्तिनिमित्ततया न जातिसिद्धिः, अन्यथा हर्यादिपदप्रवृत्तिनिमित्ततया हरित्वादिकमपि जातिः सिद्ध्येत्, तत एकेन्द्रियादिव्यवहार उपाधिविषय एवास्त्विति कृतं जातिनाम्ना । यदि चैवमप्येकेन्द्रियादिव्यवहारहेतुतयैकेन्द्रियत्वादिजातिरभ्युपगम्यते तदा नारकत्वादिकमपि नारकादिव्यवहारनिमित्तपञ्चेन्द्रियत्वादिव्याप्या जातिरेवास्त्विति कृत गतिनाम्नेति । तत्र ब्रूमः—अपकृष्टचैतन्यादिनियामकतयैकेन्द्रियत्वादिजातिसिद्धिस्तदेव चैकेन्द्रियादिव्यवहारनिमित्तं लाघवात्तन्निबन्धनतया च जातिनामसिद्धिः । नारकत्वादिकं च न जातिरूपं, तिर्यक्त्वस्य पञ्चेन्द्रियत्वादिना साङ्कर्यात्, किं तु सुखदुःखविशेषोपभोगनियामकपरिणामविशेषरूपं तन्निबन्धनतया च गतिनामसिद्धिरिति कृतं प्रसंगेन । जातिः पञ्चधा—एकेन्द्रियजातिर्द्वीन्द्रियजाति स्त्रीन्द्रियजातिश्चतुरिन्द्रियजातिः पञ्चेन्द्रियजातिरिति, तद्विपाकवेद्यं जातिनामकर्मापि पञ्चधा । शीर्यत इति शरीरं, तच्च पञ्चधा—औदारिकं वैक्रियं आहारकं तैजसं कार्मणं च । एतद्विपाकवेद्यं कर्मापि शरीरनाम पञ्चधा । तत्र यदुदयादौदारिकशरीरयोग्यान् पुद्गलानादायौदारिकशरीररूपतया परिणमयति, परिणमय्य च जीवप्रदेशैः सहान्योऽन्यानुगमरूपतया संबन्धयति तदौदारिकशरीरनाम, एवं शेषशरीरनामान्यपि भावनीयानि । अङ्गान्यष्टौ शिरःप्रभृतीनि । उक्तं च—"सीसमुरोयरपिट्ठी दो बाहू ऊरुया य अट्ठंगा" ।

तदवयवभूतान्यङ्गुल्यादीन्युपाङ्गानि । शेषाणि तु तत्प्रत्यवयवभूतान्यङ्गुलिपर्वरेखादीन्यङ्गोपाङ्गानि । ततोऽङ्गानि चोपाङ्गानि चाङ्गोपाङ्गानि, अङ्गोपाङ्गानि चाङ्गोपाङ्गानि चाङ्गोपाङ्गानि, "स्यादावसङ्ख्येय" (सि०. ३-१-११९) इत्येकशेषः, तन्निमित्तं कर्माङ्गोपाङ्गं, तत्त्रिधा-औदारिकोपाङ्गं वैक्रियोपाङ्गं आहारकोपाङ्गं च । तत्र यदुदयवशादौदारिकशरीरत्वेन परिणतानां पुद्गलानामङ्गोपाङ्गविभागपरिणतिरुपजायते तदौदारिकोपाङ्गनाम । एवं वैक्रियाहारकोपाङ्गनाम्नी अपि भावनीये । तैजसकार्मणयोस्तु जीवप्रदेशसमानसंस्थानत्वान्नास्त्यङ्गोपाङ्गसंभवः । बध्यतेऽनेनेति बन्धनं, यदुदयादौदारिकादिपुद्गलानां गृहीतानां गृह्यमाणानां च परस्परमेकत्वमुपजायते काष्ठद्वयस्येव जतुसम्बन्धात्, तच्चौदारिकबन्धनादिभेदेन पञ्चप्रकारं । सङ्घात्यन्ते गृहीत्वा पिण्डीक्रियन्ते औदारिकादिपुद्गला येन तत्सङ्घातनं, तदप्यौदारिकसङ्घातनादिभेदेन पञ्चविधं । अथ कोऽस्य व्यापारः ? पुद्गलसंहतिमात्रमिति चेन्न, पुद्गलसंहतिमात्रस्य ग्रहणमात्रादेव सिद्धत्वात् तत्र सङ्घातननामकर्मणोऽनुपयोगाद्, औदारिकादिशरीररचनानुकारिसङ्घातविशेषस्तद्व्यापार इति संप्रदायमतं, तदपि न, तन्तुसंहतेः पट इवौदारिकादिवर्गणाप्रभवपुद्गलसंहतेरेवौदारिकशरीरादौ हेतुत्वात् तत्राधिकविशेषानाश्रयणादिति चेत्सत्यं, प्रतिनियतप्रमाणौदारिकादिशरीररचनार्थं संहतिविशेषस्यावश्याश्रयणीयत्वात्तन्निमित्ततारतम्यभागितया सङ्घातननामकर्मसिद्धिरिति संप्रदायाभिप्रायस्यैव युक्तत्वात् । संहननं नामास्थिरचनाविशेषः, तत् षोढा—वज्रर्षभनाराचं ऋषभनाराचं नाराचं अर्द्धनाराचं कीलिका सेवार्त्तं च। तत्र वज्रं कीलिका, ऋषभः परिवेष्टनपट्टः, नाराचमुभयतो मर्कटबन्धः, ततश्च द्वयोरस्थ्नोरुभयतो मर्कटबन्धेन बद्धयोः पट्टाकृतिना तृतीयेनास्था परिवेष्टितयोरुपरि तदस्थित्रयभेदिकीलिकाख्यवज्रनामकमस्थि यत्र भवति तद्वज्रर्षभनाराचसंज्ञमाद्यं संहननं, यत्पुनः कीलिकारहितं तदृषभनाराचं द्वितीयं, यत्रास्थ्नोर्मर्कटबन्ध एव केवल-

स्तन्नाराचसंज्ञं तृतीयं, यत्र पुनरेकपार्श्वे मर्कटबन्धो द्वितीयपार्श्वे च कीलिकाबन्धस्तदर्द्धनाराचं चतुर्थं, यत्रास्थीनि कीलिकामात्रबद्धान्येव भवन्ति तत्कीलिकाख्यं पञ्चमं, यत्र पुनः परस्परं पर्यन्तस्पर्शमात्रलक्षणां सेवामागतान्यस्थीनि भवन्ति नित्यमेव स्नेहाभ्यङ्गादिरूपां सेवां प्रतीच्छन्ति वा तत्सेवार्त्ताख्यं षष्ठं । एतन्निबन्धनं संहननमपि षोढा । संस्थानमाकारविशेषः, सङ्गृहीतसङ्घातितबद्धेष्वौदारिकादिपुद्गलेषु यदुदयाद् भवति तत्संस्थाननाम, तच्च षोढा—समचतुरस्रं न्यग्रोधपरिमण्डलं सादि कुब्जं वामनं हुंडं चेति। तत्र यदुदयात्समचतुरस्रं संस्थानं स्यात्तत्समचतुरस्रसंस्थाननाम, एवमग्रेऽपि भावनीयं । समाः सामुद्रिकशास्त्रोक्तप्रमाणलक्षणाविसंवादिन्यश्चतस्रोऽस्रयश्चतुर्दिग्भागोपलक्षिताः शरीरावयवा यस्य तत्समचतुरस्रं । नाभेरुपरि संपूर्णप्रमाणत्वादधस्त्वतथात्वादुपरिसंपूर्णप्रमाणाधोहीनन्यग्रोधवत्परिमंडलत्वं यस्य तन्न्यग्रोधपरिमंडलं । आदिरिहोत्सेधाख्यो नाभेरधस्तनो देहभागो गृह्यते, ततः सह आदिना नाभेरधस्तनभागेन यथोक्तप्रमाणलक्षणेन वर्तत इति सादि, विशेषणान्यथानुपपत्त्या विशिष्टार्थलाभः। अपरे तु साचीति पठन्ति, तत्र साचीति समर्यादः शाल्मलीतरुमाचक्षते, ततः साचीव यत्संस्थानं तत्साचि, यथा शाल्मलीतरोः स्कन्धकाण्डमतिपुष्टं उपरि च न तदनुरूपा महाविशालता तद्वदस्यापि संस्थानस्याधोभागः परिपूर्णो भवति उपरिभागस्तु न तथेति भावः। यत्र शिरोग्रीवं हस्तपादादिकं च यथोक्तप्रमाणलक्षणोपेतं उरउदरादि च मडभं तत्कुब्जं । यत्र पुनरुदरादि प्रमाणलक्षणोपेतं हस्तपादादिकं च हीनं तद्वामनं। यत्र तु सर्वेऽप्यवयवाः प्रमाणलक्षणपरिभ्रष्टास्तत् हुंडं । वर्ण्यतेऽलङ्क्रियते शरीरमनेनेति वर्णः, स च पञ्चधा—श्वेतपीतरक्तनीलकृष्णभेदात्, तन्निबन्धनं नामापि पञ्चधा । तत्र यदुदयाज्जन्तूनां शरीरे श्वेतवर्णः प्रादुर्भवेत् यथा बलाकादीनां तच्छ्वेतवर्णनाम । एवमग्रेऽपि भावनीयं। "वस्त गंध अर्दने" (वस्ति गन्धिणू अर्दने चौरादिक आत्मनेपदी)

गन्ध्यते आघ्रायते इति गन्धः, स द्विधा—सुरभिगन्धो दुरभिगन्धश्च तन्निबन्धनं नामापि द्विधा। तत्र यदुदयाज्जन्तूनां शरीरेषु सुरभिगन्ध उपजायते यथा शतपत्रादीनां तत्सुरभिगन्धनाम, एतद्विपरीतं दुरभिगन्धनाम भावनीयं। "रस आस्वादनस्नेहनयोः" रस्यते आस्वाद्यते इति रसः, स च पञ्चधा—तिक्तकटुकषायाम्लमधुरभेदात्, तन्निबन्धनं नामापि पञ्चधा। तत्र यदुदयाज्जन्तूनां शरीरेषु तिक्तो रसो भवति यथा मरिचादीनां तत्तिक्तरसनाम। एवमग्रेऽपि भावनीयं। "छुप स्पृश संस्पश (स्पृशंत् संस्पर्शे तौदादिकः) स्पृश्यते इति स्पर्शः, स च कर्कशमृदुलघुगुरुस्निग्धरुक्षशीतोष्णभेदादष्टप्रकारः, तन्निबन्धनं नामाप्यष्टभेदं। तत्र यदुदयाज्जन्तूनां शरीरेषु पाषाणादीनामिव कार्कश्यं भवति तत्कर्कशस्पर्शनाम। एवमग्रेऽपि भावनीयं। विग्रहेण भवान्तरोत्पत्तिस्थानं गच्छतो जीवस्यानुश्रेणिनियता गमनपरिपाट्यानुपूर्वी, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरप्यानुपूर्वी, सा चतुर्धा—नरकगत्यानुपूर्वी तिर्यग्गत्यानुपूर्वी मनुष्यगत्यानुपूर्वी देवगत्यानुपूर्वी चेति। विहायसा गतिर्विहायोगतिः, प्रथमप्रकृतिव्यवच्छेदाय विहायसेति विशेषणं। सा प्रशस्ताऽप्रशस्ता च, (तत्र) प्रशस्ता हंसगजवृषभादीनां, अप्रशस्ता खरोष्ट्रमहिषादीनां, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि द्विप्रकारा विहायोगतिः। उक्ताः पिण्डप्रकृतयः। एतासां चावान्तरभेदाः पञ्चषष्टिः।

अथ प्रत्येकप्रकृतयो वक्तव्याः, ताश्च सप्रतिपक्षा अप्रतिपक्षाश्चेति द्विधा। तत्र पूर्वमल्पवक्तव्यत्वादप्रतिपक्षा उच्यन्ते, ताश्चागुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासातपोद्योतनिर्माणतीर्थकरनामभेदादष्ट। (तत्र) यदुदयात्प्राणिनां शरीराणि न गुरूणि न लघूनि नापि गुरुलघूनि किं त्वगुरुलघुपरिणामपरिणतानि भवन्ति तदगुरुलघुनाम। यदुदयात्स्वशरीरावयवैरेव प्रतिजिह्वागलवृन्दलंबकचौरदन्तादिभिर्जन्तुरुपहन्यते स्वयंकृतोद्बन्धनभैरवप्रपातादिभिर्वा तदुपघातनाम। यदुदयादोजस्वी दर्शनमात्रेण

वाक्सौष्ठवेन वा महासभागतः सभ्यानामपि त्रासमुत्पादयति प्रतिवादिनश्च प्रतिभां प्रतिहन्ति तत्पराघातनाम। यदुदयादुच्छ्वासनिःश्वासलब्धिरुपजायते तदुच्छ्वासनाम। यदुदयाज्जन्तुशरीराणि स्वरूपेणानुष्णान्यप्युष्णप्रकाशलक्षणमातपं कुर्वन्ति तदातपनाम, तद्विपाकश्च भानुमण्डलगतभूकायिकेष्वेव, न वह्नौ, प्रवचने निषेधात्। तत्रोष्णत्वमुष्णस्पर्शोदयादुत्कटलोहितवर्णनामोदयाच्च प्रकाशकत्वमिष्यत इति। यदुदयाज्जन्तुशरीराण्यनुष्णप्रकाशरूपमुद्योतं कुर्वन्ति यथा यतिदेवोत्तरवैक्रियचन्द्रग्रहनक्षत्रताराविमानरत्नौषधयस्तदुद्योतनाम। यदुदयाज्जन्तुशरीरेष्वङ्गप्रत्यङ्गानां प्रतिनियतस्थानवर्त्तिता भवति तन्निर्माणनाम सूत्रधारकल्पं, तदभावे हि तद्भूतककल्पैरङ्गोपाङ्गनामादिभिर्निर्वर्त्तितानामपि शिरउरउदरादीनां स्थानप्रवृत्तेरनियमः स्यात्। यदुदयादष्टमहाप्रातिहार्याद्यतिशयाः प्रादुर्भवन्ति तत्तीर्थकरनाम। उक्ता अप्रतिपक्षाः प्रत्येकप्रकृतयः। अथ सप्रतिपक्षास्ता उच्यन्ते, ताश्च त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभसुस्वरसुभगादेययशःकीर्त्तयः स्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधरणास्थिराशुभदुःस्वरदुर्भगानादेययशःकीर्त्तिरूपप्रतिपक्षसहिता विंशतिः। तत्र त्रसन्त्युष्णाद्यभितप्ताः स्थानान्तरं गच्छन्तीति त्रसा द्वीन्द्रियादयः, तद्विपाकवेद्या कर्मप्रकृतिरपि त्रसनाम। तद्विपरीतं स्थावरनाम, यदुदयादुष्णाद्यभितापेऽपि स्थानपरिहारासमर्थाः पृथिव्यादयः स्थावरा भवन्ति। यदुदयाज्जीवानां चक्षुर्ग्राह्यशरीरत्वलक्षणं बादरत्वं भवति तद्बादरनाम, पृथिव्यादेरेकैकशरीरस्य चक्षुर्ग्राह्यत्वाभावेऽपि बादरत्वपरिणामविशेषाद् बहूनां समुदाये चक्षुषा ग्रहणं भवति। तद्विपरीतं सूक्ष्मनाम, यदुदयाद् बहूनां समुदितानामपि जन्तुशरीराणां चक्षुर्ग्राह्यता न भवति। यदुदयात्स्वयोग्यपर्याप्तिनिर्वर्त्तनसमर्थो भवति तत्पर्याप्तनाम। तद्विपरीतमपर्याप्तनाम, यदुदयात्स्वयोग्यपर्याप्तिनिर्वर्त्तनसमर्थो न भवति। यदुदयात्प्रतिजीवं भिन्नशरीरमुपजायते तत् प्रत्येकनाम। ननु कपित्थाश्वत्थपीलुप्रभृतीनां मूलस्कन्धत्वक्छाखादयः प्रत्येकमसङ्ख्येयजीवाः प्रवचने प्रोच्यन्ते, मूलादयश्च देवदत्तश-

रीरवदखण्डैकशरीराकारा उपलभ्यन्त इति कथं तेषां प्रत्येकशरीरत्वं ? प्रतिजीवं शरीरभेदाभावात्, इति चेन्नैवं, तन्मूलादिष्वसङ्ख्येयानामपि जीवानां भिन्नभिन्नशरीराभ्युपगमात्, केवलं श्लेषद्रव्यमिश्रितसकलसर्षपवर्त्तिवत्प्रबलरागद्वेषोपचितविचित्रप्रत्येकनामकर्मपुद्गलोदयात्तेषां परस्परविमिश्रशरीरसंभवात्। यदुदयादनन्तानां जीवानामेकं शरीरं भवति तत्साधारणनाम। यदुदयाच्छिरोऽस्थिदन्तादीनां शरीरावयवानां स्थिरता भवति तत् स्थिरनाम। तद्विपरीतमस्थिरनाम, यदुदयाज्जिह्वादीनां शरीरावयवानामस्थिरता। यदुदयान्नाभेरुपरितना अवयवाः शुभा जायन्ते तच्छुभनाम। तद्विपरीतमशुभनाम, यदुदयान्नाभेरधस्तनाः पादादयोऽवयवा अशुभा भवन्ति, तथाहि—शिरसा स्पृष्टस्तुष्यति मनुष्यः पादेन तु रुष्यति, कामिन्याः पादस्पर्शेनापि च यस्तोषः स मोहनिबन्धनो न तु वास्तव इति न तेन व्यभिचारः। यदुदयाज्जीवस्वरः श्रोतृप्रीतिहेतुर्भवति तत्सुस्वरनाम। तद्विपरीतं दुःस्वरनाम, यदुदयात्स्वरः श्रोतृणामप्रीतिहेतुर्भवति। यदुदयादनुपकृदपि सर्वस्य मनःप्रियो भवति तत्सुभगनाम। तद्विपरीतं दुर्भगनाम, यदुदयादुपकारकृदपि जनस्य द्वेष्यो भवति। यच्च तीर्थकरोऽप्यभव्यानां द्वेष्यो भवति तत्र न तीर्थकरगतदुर्भगत्वं निमित्तं, किं तु तद्गतमिथ्यात्वदोष एवेत्यवधेयं। यदुदयाल्लोको यत्तदपि वचनं प्रमाणीकरोति दर्शनसमनन्तरमेव चाभ्युत्थानाद्याचरति तदादेयनाम। तद्विपरीतमनादेयनाम, यदुदयादुपपन्नमपि ब्रुवाणो नोपादेयवचनो भवति, नाप्यभ्युत्थानादियोग्यः। तपःशौर्यत्यागादिना समुपार्जितेन यशसा कीर्त्तनं यशःकीर्त्तिः, यद्वा यशः सामान्येन ख्यातिः कीर्त्तिर्गुणोत्कीर्त्तनरूपा प्रशंसा, अथवा "एकदिग्गामिनी कीर्त्तिः सर्वदिग्गामुकं यशः। दानपुण्यभवा कीर्त्तिः पराक्रमकृतं यशः ॥ १ ॥" ते यशःकीर्त्ती यदुदयाद्भवतस्तद्यशःकीर्त्तिनाम। तद्विपरीतमयशःकीर्त्तिनाम, यदुदयान्मध्यस्थस्यापि जनस्याप्रशस्तो भवति। उक्ताः सप्रतिपक्षाः प्रत्येकप्रकृतयः। अत्र त्रसादयो दश प्रकृतयस्त्रसादिदशकं, स्थावरादयश्च दश

स्थावरादिदशकमिति संज्ञा ग्राह्या ।

गोत्रस्य द्वे उत्तरप्रकृती—उच्चैर्गोत्रं नीचैर्गोत्रं च । यदुदयादुत्तमजातिकुलबलतपोरूपैश्वर्यश्रुतसत्काराभ्युत्थानासनप्रदानाञ्जलिग्रहादिसंभवस्तदुच्चैर्गोत्रं । यदुदयात् पुनर्ज्ञानादिसंपन्नोऽपि निन्दां लभते हीनजात्यादिसंभवं च तन्नीचैर्गोत्रं ।

अन्तरायस्य दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायभेदात् पञ्चोत्तरप्रकृतयः । तत्र यदुदयात् सति विभवे समागते च गुणवति पात्रे दत्तमस्मै महाफलमिति जानन्नपि दातुं नोत्सहते तद्दानान्तरायं । यदुदयाद्दातुर्गृहे विद्यमानमपि देयं गुणवानपि याचमानोऽपि न लभते तल्लाभान्तरायं । यदुदयाद्विशिष्टाहारादि प्राप्तावप्यसति च प्रत्याख्यानादिपरिणामे कार्पण्यान्नोत्सहते भोक्तुं तद्भोगान्तरायं । एवमुपभोगान्तरायमपि भावनीयं, नवरं भोगोपभोगयोरयं विशेषः—सकृद् भुज्यत इति भोगः, पुनः पुनरुपभुज्यत इत्युपभोगः । यदुदयात्सत्यपि नीरुजि शरीरे यौवनेऽपि वर्तमानोऽल्पप्राणो भवति तद्वीर्यान्तरायं ।

अत्र च पिण्डप्रकृतीनां पंचषष्ट्याऽवान्तरभेदैस्त्रिनवतिर्नामकर्मप्रकृतयो भवन्ति । तत्र बन्धे उदये च बन्धनसंघातनानि स्वशरीरान्तर्गतान्येव विवक्ष्यन्ते, न पृथक्, वर्णादिचतुष्कं च भेदरहितं सामान्यत एव विवक्ष्यते, तथा च बन्धचिन्तायां नाम्नस्त्रिनवतेर्बन्धनपञ्चकसङ्घातनपञ्चकवर्णादिषोडशकापनयनात् सप्तषष्टिः परिगृह्यते । मोहनीये च सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वे बन्धे नाधिक्रियेते, मिथ्यात्वपुद्गलानामेव सम्यक्त्वानुगुणविशोधिविशेषेण त्रिधा कृतानां शुद्धयर्द्धविशुद्धिसर्वाविशुद्धिभिः सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वमिथ्यात्वव्यपदेशसंभवात् । ततो बन्धे विंशत्युत्तरं प्रकृतीनां शतं भवति (१२०) । उदये च द्वाविंशं शतमधिक्रियते सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्या-

त्वयोरप्युदयसंभवात् (१२२)। सत्तायां च पूर्वापनीतषड्विंशतिप्रकृतीनामपि ग्रहणादष्टचत्वारिंशं शतं (१४८) ग्रन्थकारमते। गर्गर्षिप्रभृतिमते च बन्धनपञ्चदशकग्रहणादष्टपञ्चाशं शतं (१५८)।

अथ कथं पञ्चदश बन्धनानि भवन्तीति चेदुच्यते—औदारिकवैक्रियाहारकाणां स्वकतैजसकार्मणैः प्रत्येकं सहितानां नव बन्धनानि, तैजसकार्मणद्वययुक्तानां च तेषां त्रीणि, तैजसतैजसबन्धनं तैजसकार्मणबन्धनं कार्मणकार्मणबन्धनं चेति त्रीणि चेत्येवं पञ्चदश भवन्ति। तत्र पूर्वगृहीतानामौदारिकपुद्गलानामौदारिकपुद्गलैरेव गृह्यमाणैः सह यः सम्बन्धः स औदारिकौदारिकबन्धनं। तेषामेवौदारिकपुद्गलानां पूर्वगृहीतानां गृह्यमाणानां च तैजसपुद्गलैर्गृह्यमाणैः पूर्वगृहीतैश्च सह सम्बन्ध औदारिकतैजसबन्धनं। तेषामेवौदारिकपुद्गलानां पूर्वगृहीतानां गृह्यमाणानां च कार्मणपुद्गलैर्गृह्यमाणैः पूर्वगृहीतैश्च सह सम्बन्ध औदारिककार्मणबन्धनं। पूर्वगृहीतवैक्रियपुद्गलानां स्वैरेव वैक्रियपुद्गलैर्गृह्यमाणैः सह सम्बन्धो वैक्रियवैक्रियबन्धनं। तेषामेव वैक्रियपुद्गलानां पूर्वगृहीतानां गृह्यमाणानां च तैजसपुद्गलैर्गृह्यमाणैः पूर्वगृहीतैश्च सह सम्बन्धो वैक्रियतैजसबन्धनं। तेषामेव वैक्रियपुद्गलानां पूर्वगृहीतानां गृह्यमाणानां च कार्मणपुद्गलैर्गृहीतैर्गृह्यमाणैश्च सह सम्बन्धो वैक्रियकार्मणबन्धनं। पूर्वगृहीतानामाहारकपुद्गलानां स्वैरेवाहारकपुद्गलैर्गृह्यमाणैः सह सम्बन्ध आहारकाहारकबन्धनं। तेषामेवाहारकपुद्गलानां पूर्वगृहीतानां गृह्यमाणानां च तैजसपुद्गलैर्गृहीतैर्गृह्यमाणैश्च सह सम्बन्ध आहारकतैजसबन्धनं। तेषामेवाहारकपुद्गलानां गृहीतानां गृह्यमाणानां च कार्मणपुद्गलैर्गृह्यमाणैर्गृहीतैश्च सह सम्बन्ध आहारककार्मणबन्धनं। औदारिकपुद्गलानां तैजसपुद्गलानां कार्मणपुद्गलानां च गृहीतगृह्यमाणानां यो मिथः सम्बन्धस्तदौदारिकतैजसकार्मणबन्धनं। एवं वैक्रियतैजसकार्मणाहारकतैजसकार्मणबन्धने अपि भावनीये। तैजसपुद्गलानां पूर्वगृहीतानां गृह्यमाणैः स्वैरेव तैजसपुद्गलैः सह सम्बन्ध-

स्तैजसतैजसबन्धनं। तेषामेव गृहीतानां गृह्यमाणानां च तैजसपुद्गलानां कार्मणपुद्गलैर्गृह्यमाणैर्गृहीतैश्च सह सम्बन्धस्तैजसकार्मणबन्धनं। कार्मणपुद्गलानां प्राग्गृहीतानां स्वैरेव गृह्यमाणैः कार्मणपुद्गलैः सह सम्बन्धः कार्मणकार्मणबन्धनं। ननु ये पञ्च बन्धनानीच्छन्ति परपुद्गलसंयोगरूपस्य बन्धनस्य सतोऽप्यविवक्षणात्तन्मते सङ्घातनान्यपि पञ्च संभवन्ति। ये तु पञ्चदश बन्धनानीच्छन्ति तन्मते "नासंहतस्य बन्धनमिति" न्यायात्सङ्घातनान्यपि पञ्चदश प्राप्नुवन्तीत्युक्तसङ्ख्याविप्लव इति चेन्न, न हि तन्मते बन्धानुगुणपुद्गलैकीकरणमात्रलक्षणं सङ्घातनं, किं त्वौदारिकादिरचनानुगुणपुद्गलैकीकरणलक्षणमित्यदोषात्। तदेवमुक्ताः सर्वकर्मोत्तरप्रकृतयः॥

अथैतासां ध्रुवबन्धित्वध्रुवोदयत्वध्रुवसत्ताकत्वसर्वघातित्वपरावर्त्तनमानत्वाशुभत्वैः सप्रतिपक्षैः पुद्गलविपाकित्वभवविपाकित्वक्षेत्रविपाकित्वजीवविपाकित्वभेदैः स्वानुदयबन्धिस्वोदयबन्ध्युभयबन्धिसकलव्यवच्छिद्यमानबन्धोदयक्रमव्यवच्छिद्यमानबन्धोदयोत्क्रमव्यवच्छिद्यमानबन्धोदयसान्तरबन्धसान्तरनिरन्तरबन्धनिरन्तरबन्धोदयसंक्रमोत्कृष्टानुदयसंक्रमोत्कृष्टोदयबन्धोत्कृष्टानुदयबन्धोत्कृष्टोदयवत्यनुदयवतीसंज्ञाभिश्च (३१) यो विशेषः स विभाव्यते—

तत्र निजहेतुसंभवे यासामवश्यंभावी बन्धस्ता ध्रुवबन्धिन्यः, ताश्च ज्ञानावरणपञ्चकमन्तरायपञ्चकं दर्शनावरणनवकं षोडश कषाया मिथ्यात्वभयजुगुप्सा इत्यष्टात्रिंशद् घातिप्रकृतयोऽगुरुलघु उपघातं निर्माणं तैजसं वर्णादिचतुष्कं कार्मणं चेति नव नामप्रकृतय इति सर्वसङ्ख्यया सप्तचत्वारिंशत् (४७)। एतासां ह्यबन्धकालव्यवच्छेदाद्ध्रुवो बन्धः। तत्र मिथ्यात्वं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं यावत् निरन्तरं बध्यते, परतस्तूदयाभावान्न तद्बन्धः, तद्धि यावद्वेद्यते तावदेव बध्यते "जे वेयइ से बज्झइ त्ति" वचनात्। अनन्तानुबन्धिचतुष्टयं स्त्यानर्द्धित्रिकं च सासादनं यावत्, परतोऽनन्तानुबन्ध्यनुदयेन तद्बन्धाभावात्। एवमप्रत्याख्याना अविरतसम्य-

ग्दृष्टिं यावत् । प्रत्याख्यानावरणा देशविरतिं यावत्। निद्राप्रचले अपूर्वकरणप्रथमभागं यावत्, परतस्तद्बन्धयोग्याध्यवसायाभावात् । एवं नव नामध्रुवबन्धिन्योऽपूर्वकरणषष्ठभागं यावत्। भयजुगुप्से अपूर्वकरणचरमसमयं यावत् । संज्वलनक्रोधमानमायालोभा अनिवृत्तिबादरं यावत्, परतो बादरकषायोदयाभावेन तद्बन्धासंभवात् । ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कानि सूक्ष्मसंपरायं यावत्, परतः कषायोदयाभावेन तद्बन्धायोगात् (१) ।

निजबन्धहेतुसंभवेऽपि भजनीयबन्धा अध्रुवबन्धिन्यः, ताश्चोक्तशेषा औदारिकवैक्रियाहारकत्रिकायोगतिगोत्रवेदनीययुगलद्विकवेदत्रिकायुर्गत्यानुपूर्वीचतुष्टयजातिपञ्चकसंस्थानसंहननषट्कत्रसादिविंशत्युच्छ्वासतीर्थकरातपोद्योतपराघातरूपाहिंसप्रकृतिः,(७३)एता हि स्वबन्धहेतुसाम्राज्येऽपि नावश्यं बन्धमायान्ति । पराघातोच्छ्वासनाम्नोरविरत्यादिस्वहेतुसत्त्वेऽप्यपर्याप्तनामकाले* बन्धाभावात्पर्याप्तनामबन्ध एव तद्बन्धादातपनाम्नोऽप्येकेन्द्रियप्रायोग्यप्रकृतिबन्ध एव बन्धात्, उद्योतस्यापि तिर्यग्गतिप्रायोग्यप्रकृतिबन्ध एव बन्धात्, जिननाम्न आहारकद्विकस्य च सम्यक्त्वे संयमे च निजबन्धहेतौ विद्यमानेऽपि कदाचिदेव बन्धात्, शेषाणां च औदारिकद्विकादीनां सविपक्षत्वादेव । यद्यपि यत्किञ्चिद्बन्धहेतुसत्त्वे बन्धाभावोऽतिप्रसक्तो, यावद्बन्धहेतुसत्त्वे बन्धाभावश्चासंभवी, तथापि मिथ्यात्वादिपरिगणितसामान्यबन्धहेतुसत्त्वेऽवश्यं बन्धेन ध्रुवबन्धित्वं वैपरीत्ये चाध्रुवबन्धित्वमिति परिभाषारहस्यं (२) ।

उदयकालव्यवच्छेदादर्वाग्ध्रुवो निरन्तर उदयो यासां ता ध्रुवोदयास्ताश्च निर्माणस्थिरास्थिरतैजसकार्मणवर्णादिचतुष्कागुरुलघुशुभाशुभरूपा नामकर्मणो द्वादश, ज्ञानावरणान्तरायदशकं दर्शनावरणचतुष्टयं मिथ्यात्वं चेति घातिप्रकृतयः पञ्चदशेति सर्वस-

* अपर्याप्तप्रायोग्यबन्धकाले. १ पर्याप्तप्रायोग्यबन्धकाले.

ध्रुवया सप्तविंशतिः (२७)। तत्र मिथ्यात्वं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं यावत् ध्रुवोदयं, शेषा घातिप्रकृतयः क्षीणमोहचरमसमयं यावत्, नाम-प्रकृतयश्च द्वादश सयोगिकेवलिचरमसमयं यावत् (३)।

व्यवच्छिन्नोदया अपि सत्यो याः प्रकृतयो हेतुसंपत्त्या भूयोऽप्युदयमायान्ति ता अध्रुवोदयाः, ताश्च स्थिरास्थिरशुभाशुभ-रहिता अध्रुवबन्धिन्यः, मिथ्यात्वं विना च मोहनीयध्रुवबन्धिन्यः, निद्राः उपघातनाम मिश्रं सम्यक्त्वं चेति पञ्चनवतिः (९५)। नन्वेवं मिथ्यात्वमपि किं नाध्रुवोदयं ?, सन्यक्त्वलाभे व्युच्छिन्नस्यापि तदुदयस्य मिथ्यात्वगमने पुनः संभवात्, उच्यते—यासां प्रकृतीनां गुणप्रत्ययादुदयव्युच्छेदो येषु गुणस्थानेषु नास्ति, द्रव्यक्षेत्राद्यपेक्षया तेष्वेव कदाचिदसौ भवति कदाचिच्च न ता अध्रुवोदयाः, यथा क्षीणमोहं यावदविच्छिन्नोदया अपि निद्राः कादाचित्कोदयाः, मिथ्यात्वं तु स्वोदयाविच्छेदं यावत्सततोदयमेवेति नाध्रुवोदयं। नन्वेवं मिश्रमपि मिश्रगुणस्थाने सततोदयमिति ध्रुवोदयं स्यात्, न, गुणप्रत्ययोदयविच्छेदात् प्रागुदयभावाभावाभ्यां तस्याध्रुवोदय-त्वपरिभाषणात्। यद्येकगुणस्थानावच्छेदेनोदयभावाभावप्रतियोगित्वमध्रुवोदयत्वं परिभाष्येत तदैव हि स दोषः स्यात् (४)।

विशिष्टगुणप्राप्तिं विना ध्रुवा निरन्तरा सत्ता यासां ता ध्रुवसत्ताकाः, ताश्च त्रसविंशतिर्वर्णादिविंशतिस्तैजस (शरीर) कार्मण (शरीर) तैजसतैजसबन्धनतैजसकार्मणबन्धनकार्मणकार्मणबन्धनतैजससंघातनकार्मणसंघातनरूपं तैजसकार्मणसप्तकं वर्णचतुष्कतैजसकार्मणा-नामुक्तत्वाच्छेषा एकचत्वारिंशद् ध्रुवबन्धिन्यः। वेदत्रिकं संस्थानषट्कं संहननषट्कं जातिपञ्चकं सातासातवेदनीयं हास्यरत्यरति-शोकरूपं युगलद्वयं औदारिकाङ्गोदारिकाङ्गोपाङ्गौदारिकसङ्घातनौदारिकौदारिकबन्धनौदारिकतैजसबन्धनौदारिककार्मणबन्धनौदारिकतै-

जसकार्मणबन्धनरूपमौदारिकसप्तकं उच्छ्वासोद्योतातपपराघातचतुष्कं विहायोगतिद्विकं तिर्यग्द्विकं नीचैर्गोत्रं चेति त्रिंशं शतं । (१३०) एता हि सम्यक्त्वलाभादर्वाक् सर्वजन्तूनां सदैव संभवन्तीति (५) ।

कदाचिद्भवन्ति कदाचिन्न भवन्तीत्येवमनियता सत्ता यासां ता अध्रुवसत्ताकाः, ताश्च उच्चैर्गोत्रं तीर्थकरनाम सम्यक्त्वं सम्यग्मिथ्यात्वं देवगतिदेवानुपूर्वीनरकगतिनरकानुपूर्वीवैक्रियशरीरवैक्रियाङ्गोपाङ्गलक्षणं वैक्रियषट्कं चत्वार्यायूंषि मनुजगतिमनुष्यानुपूर्वी लक्षणं मनुजद्विकं आहारकशरीराहारकाङ्गोपाङ्गलक्षणमाहारक द्विकं चेत्यष्टादश (१८)। तथाहि–उच्चैर्गोत्रं वैक्रियषट्कं चेत्येताः सप्त त्रसत्वा प्राप्तौ न भवन्ति, तत्प्राप्तौ च भवन्ति । यद्वा त्रसत्वावस्थायां लब्धा अपि स्थावरभावं गतेनावस्थाविशेषं प्राप्योद्वल्यन्त इत्यध्रुवसत्ताकाः । सम्यक्त्वं सम्यग्मिथ्यात्वं च यावत्तथाभव्यत्वपरिपाकं नायाति तावन्न भवति, तथाभव्यत्वपरिपाकेन प्राप्तं वा सम्मिथ्यात्वगतेन भूयोऽप्युद्वल्यते, अभव्यानां च तत्सर्वथा न भवतीत्यध्रुवसत्ताकं। तीर्थकरनाम विशुद्ध (द्धे) सम्यक्त्वे सति भवति, नान्यदा । आहारकद्विकमपि तथाविधसंयमे सति बन्धमायाति, न तदभावे, बद्धमपि च तदविरतिप्रत्ययत उद्वल्यते । मनुष्यद्विकमपि तेजोभवं वायुभवं वा गतेनोद्वल्यते । तथा देवनारकायुषी स्थावराणां, तिर्यगायुष्कं त्वहमिन्द्राणां, मनुष्यायुष्कं च तेजोवायुसहमपृथिवीनारकाणां सर्वथा बन्धाभावात्सत्तायां न लभ्यते, अन्येषां तु संभवत्यपीति तीर्थकरनामादीनामध्रुवसत्ताकता । नन्वेता आयुश्चतुष्ट-

* अहीं अध्रुवसत्ता प्रकृतिओ १८ कही पण ते घटती नथी कारण के ध्रुवसत्तामां गणावेली १३० प्रकृतिओ १५८ अपेक्षाए छे पण १४८ नी अपेक्षाए नथी. १४८ नी अपेक्षाए ध्रुवसत्तामां १२६ अने अध्रुवसत्तामां २२ होय. माटे १५८ अपेक्षाए अध्रुवसत्तामां २८ प्रकृतिओ घटे. वैक्रियषट्कने बदले वैक्रिय एकादशक अने आहारकद्विकने बदले आहारकसप्तक कहेवुं.

तीर्थकरनामवर्जा अनन्तानुबन्धिसहिताः सप्तदश श्रेण्यारोहाभावेऽप्युद्वलनयोग्या अभिहिताः, तथा चानन्तानुबन्धिनामप्युद्वलनासंभवात्कथं ध्रुवसत्कर्मतेति चेन्मैवं वादीः, सम्यक्त्वादिगुणानवाप्तौ कदाचिद्भावित्वस्यैवाध्रुवसत्कर्मलक्षणत्वाद्, उत्तरगुणप्राप्तौ सत्तोपरमादध्रुवसत्ताकत्वोक्तौ तु सर्वा अपि प्रकृतयस्तथा भवेयुरित्युक्तलक्षणस्यैव युक्तत्वात् सम्यक्त्वगुणेनोद्वल्यमानानामप्यनन्तानुबन्धिनां तदनवाप्तौ कादाचित्कत्वाभावेन ध्रुवसत्ताकत्वानपायात्[1]।

स्वविषयं कात्स्न्र्येन घ्नन्ति यास्ताः सर्वघातिन्यः, ताश्च केवलज्ञानावरणं केवलदर्शनावरणमाद्यद्वादशकषाया मिथ्यात्वं निद्राश्च पञ्चेति विंशतिः (२०)। एता हि प्रकृतयो यथायोगमात्मघात्यं गुणं सम्यक्त्वं ज्ञानं दर्शनं चारित्रं वा सर्वात्मना घातयन्तीति। उक्तशेषा घातिकर्मप्रकृतयः पञ्चविंशतिर्देशघातिन्यः,तासां ज्ञानादिगुणैकदेशविघातित्वात् (२४)। इयमत्र भावना–इह यद्यपि केवलज्ञानावरणीयं कर्म ज्ञानलक्षणं गुणं सर्वात्मना हन्तुं प्रवर्त्तते तथापि न तत्तेन समूलं हन्तुं शक्यते तथास्वभावत्वात्, यथा महीयसापि घनपटलेन रविचन्द्रकिरणावरणप्रवृत्तेनापि तत्प्रभा, अन्यथा दिनरजनीविभागानुभवानुपपत्तेः, ततः केवलज्ञानावरणीयेनावृतेऽपि सर्वात्मना केवलज्ञाने यः कोऽपि तद्गतमन्दविशिष्टविशिष्टतरप्रकाशरूपो ज्ञानैकदेशो मतिज्ञानादिसंज्ञितस्तं यथायोगं मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानावरणानि घ्नन्ति, ततस्तानि देशघातीनि। एवं केवलदर्शनावरणीयेनावृतेऽपि सर्वात्मना केवलदर्शने या तद्वता मन्दमन्दतमविशिष्टादिरूपा प्रभा चक्षुर्दर्शनादिसंज्ञा तां यथायोगं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणान्यावृण्वन्ति, ततस्तान्यपि दर्शनैकदेशघातित्वाद्देशघातीनि। निद्रादयश्च पञ्च प्रकृतयो यद्यपि केवलदर्शनावरणावृतकेवलदर्शनगतप्रभामात्रं दर्शनैकदेशमुपघ्नन्ति, तथापि ताश्चक्षुर्दर्शनावर-

---

१ सम्यक्त्वानवाप्तौ. २ अनपगमात्.

णादिकर्मक्षयोपशमसमुत्थां दर्शनलब्धिं समूलकाषं कषन्तीति सर्वघातिन्य उक्ताः । संज्वलनकषाया नोकषायाश्चाद्यद्वादशकषायक्षयोपशमसमुत्थां चारित्रलब्धिं देशतो घ्नन्ति, तेषामतीचारमात्रसंपादनार्थत्वात् । उक्तं च—"सव्वेऽवि य अइआरा संजलणाणं तु उदयओ हुंति । मूलच्छेज्जं पुण होइ बारसण्हं कसायाणं ॥ १ ॥" तथा—"घाइखओवसमेणं सम्मचरित्ताइं जाइं जीवस्स । ताणं हणंति देसं संजलणा णोकसाया य ॥ १ ॥" ततस्तेऽपि देशघातिनः । तथा इह यद्वस्तु जीवो ग्रहणधारणादियोग्यं न ददाति न लभते न भुङ्क्ते नोपभुंक्ते न करोति वा तद्दानान्तरायादिविषयः । तच्च सर्वद्रव्याणामनन्ततमो भागः, ततस्तथारूपसर्वद्रव्यैकदेशविषयदानादिविघातकारित्वाद्देशघाति दानान्तरायादीति । इह च देशघातिलक्षणं सर्वघात्यन्यत्वगर्भं द्रष्टव्यं, तेन न चारित्रैकदेशरूपदेशविरतिप्रतिबन्धकानामप्रत्याख्यानानां देशघातित्वं । यद्वा चारित्रापेक्षया देशघातित्वं चारित्रगतापकर्षजनकत्वमेव, तच्च नाप्रत्याख्यानानामित्यदोषः । तदेवं घातिकर्मप्रकृतयः काश्चित्सर्वघातिन्यः काश्चिच्च देशघातिन्य इति स्थितं (७) ।

नामगोत्रवेदनीयायुरन्तर्गतास्तु प्रकृतयो हन्तव्याभावान्न किमपि घ्नन्तीति ता अघातिन्यो द्रष्टव्याः (७५)। घातिनीनां हि रसस्ताम्रभाजनवन्निश्छिद्रो घृतवदतिस्निग्धो द्राक्षावत्तनुप्रदेशोपचितःस्फटिकाभ्रवच्चातीव निर्मलः सकलस्वविषयघातित्वेन सर्वघाती भवति। देशघातिनीनां तु रसः कश्चिच्छदलनिर्मापितकटवदतिस्थूलच्छिद्रशतसंकुलः, कश्चित्कम्बलवन्मध्यमविवरशतसंकुलः, कोऽपि मसृणवासोवदतिसूक्ष्मविवरसंवृतोऽल्पस्नेहो विमलश्च स्वविषयैकदेशघातित्वाद्देशघाती भवति । अघातिनीनां च उभयविलक्षणत्वादघाती रसः । केवलमघातिनीनामपि प्रकृतीनां घातिप्रकृतिसंपर्कतस्तद्रसविपाकोपदर्शकत्वं भवति, स्वयमचौराणामपि चौरसंपर्कत इव चौरत्वं (८) ।

याः प्रकृतयः प्रकृत्यन्तरस्य बन्धमुदयं वा विनिवार्य बन्धमुदयं वाऽऽगच्छन्ति ताः परावर्त्तमानाः, इतरा अपरावर्त्तमानाः। तत्र

ज्ञानावरणपञ्चकमन्तरायपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्टयं पराघाततीर्थकरोच्छ्वासमिथ्यात्वभयजुगुप्सानामध्रुवबन्धिनवकं चेत्येकोनत्रिंशत्प्रकृतयो (२९) बन्धमुदयं चाश्रित्यापरावर्त्तमानाः (९)। आसां बन्धस्योदयस्य वा शेषप्रकृतिभिर्बध्यमानाभिर्वेद्यमानाभिर्वा हन्तुमशक्यत्वात्। शेषा बन्धमधिकृत्यैकनवतिसङ्ख्याः (९१) उदयमधिकृत्य च ता एव सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वसहितास्त्रिनवतिः परावर्त्तमानाः (१०)।

जीवप्रमोदहेतुरसोपेताः प्रकृतयः शुभाः। नास्ति शुभो रसो यासु ता अशुभाः। तत्र मनुजत्रिकं देवत्रिकं तिर्यगायुरुच्छ्वासनाम शरीरपञ्चकमङ्गोपाङ्गत्रयं शुभविहायोगतिः शुभं वर्णादिचतुष्कं त्रसादिदशकं तीर्थकरनाम निर्माणं आद्यसंस्थानसंहनने आतपनाम पराघातनाम पञ्चेन्द्रियजातिरगुरुलघु सातवेदनीयमुच्चैर्गोत्रमुद्योतनाम चेत्येता द्विचत्वारिंशत्प्रकृतयः (४२) शुभाः, शेषाश्च द्व्यशीतिप्रकृतयोऽशुभाः। वर्णादिचतुष्कं हि शुभप्रकृतिसङ्ख्यायामशुभप्रकृतिसङ्ख्यायां च परिगृह्यते, तस्य द्विधा संभवादिति, शेषा द्व्यशीतिरशुभाः (८२) संभवन्ति। सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वे तूदयमाश्रित्यैवाशुभे, न बन्धमाश्रित्य, तद्बन्धासंभवादिति ते पृथक्कृते (११–१२)।

पुद्गले पुद्गलविषये विपाकः फलदानाभिमुख्यं यासां ताः पुद्गलविपाकिन्यः, ताश्च षट्त्रिंशत् (३६)। तद्यथा—आतपनाम उद्योतनाम संस्थानषट्कं संहननषट्कं द्वादश नामध्रुवोदयप्रकृतयः त्रीण्याद्यशरीराणि त्रीण्यङ्गोपाङ्गानि उपघातं पराघातं प्रत्येकं साधारणमिति। एता हि स्वविपाकं पुद्गलेषु दर्शयन्ति तथास्पष्टलक्षणत्वादतः पुद्गलविपाकिन्यः। ननु रत्यरत्योरप्युदयः पुद्गलान् संप्राप्य भवति। तथाहि—कण्टकादिस्पर्शादरतेर्विपाकोदयः, स्रक्चन्दनादिसंस्पर्शात्तु रतेः, ततस्ते अपि पुद्गलविपाकिन्यौ किं नोक्ते ? इति चेन्मैवं, कण्टकादिस्पर्शव्यतिरेकेऽपि प्रियाप्रियदर्शनस्मरणादिना रत्यरत्योर्विपाकोदयदर्शनेन पुद्गलव्यभिचारात्तयोः पुद्गलविपाकित्वासिद्धेः। एवं क्रोधादावपि प्रश्नसमाधाने भावनीये (१३)।

भवे नारकादिरूपे स्वयोग्ये विपाकः फलदानाभिमुख्यं यासां ता भवविपाकिन्यः। ताश्चायुश्चतुष्टयप्रकृतयः(४)। तथाहि—बद्धमप्यायुर्यावन्नाद्यापि पूर्वभवक्षयेण स्वयोग्यो भवः प्राप्तो भवति तावन्नोदयमायाति, ततो भवविपाकीति। नन्वायूंषीव गतयोऽपि स्वयोग्यभवप्राप्तावेवोदयमागच्छन्तीति ता अपि कथं न भवविपाका व्यपदिश्यन्ते? सत्यं, आयुषां परभवे संक्रमेणाप्युदयो नास्तीति सर्वथा स्वभवव्यभिचाराभावादायूंषि भवविपाकानि व्यपदिश्यन्ते, गतीनां पुनः परभवेऽपि संक्रमेणोदयोऽस्ति, ततस्ताः स्वभवव्यभिचारान्न भवविपाकिन्यः (१४)।

क्षेत्रे गत्यन्तरसंक्रमणहेतुनभःपथे विपाकः फलदानाभिमुख्यं यासां ताः क्षेत्रविपाकिन्यः। ताश्च नरकानुपूर्व्याद्याश्चतस्र आनुपूर्व्यः(४)। एता हि पूर्वस्या गतेरुद्धृत्य गत्यन्तरे संक्रामतोऽपान्तराले उदयमायान्ति, न शेषकाले। यद्यपि स्वयोग्यक्षेत्रव्यतिरेकेण न्यत्राप्यासां संक्रमोदयः संभवति तथापि यथाऽऽसां क्षेत्रहेतुकः स्वविपाकोदयप्रादुर्भावस्तथा नान्यासामिति प्रकृत्यन्तरासंस्पर्शिनाऽसाधारणक्षेत्रहेतुकत्वेनासां क्षेत्रविपाकिनीत्वव्यपदेशः (१५)।

जीवे जीवगते ज्ञानादिलक्षणे स्वरूपे विपाकस्तदनुग्रहोपघातादिसंपादनाभिमुख्यलक्षणो यासां ता जीवविपाकिन्यः। ताश्चेमाः—ज्ञानावरणपञ्चकं दर्शनावरणनवकं सातासातवेदनीये सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्ववर्जाः षड्विंशतिर्मोहनीयप्रकृतयः अन्तरायपञ्चकं गतिचतुष्टयं जातिपञ्चकं विहायोगतिद्विकं त्रसत्रिकं स्थावरत्रिकं सुस्वरदुःस्वरसुभगदुर्भगादेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तितीर्थकरनामोच्छ्वासनामानि नीचैर्गोत्रं उच्चैर्गोत्रं चेति (७६) षट्सप्ततिर्बन्धयोग्या उद्दिश्य पञ्चसङ्ग्रहे उक्ताः। अन्यत्र तूदययो या अधिकृत्य सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोरपि ग्रहादष्टसप्ततिः। एता हि जीव एव स्वविपाकमादर्शयन्ति नान्यत्र। तथाहि—ज्ञानावरणपञ्चकं जीवस्य

ज्ञानगुणमुपहन्ति। दर्शनावरणनवकं दर्शनगुणं, मिथ्यात्वमोहनीयं सम्यक्त्वगुणं, चारित्रमोहनीयप्रकृतयश्चारित्रगुणं, दानान्तरायादयो दानादिलब्धीः, सातासातवेदनीये सुखदुःखे जनयतः, गतिचतुष्टयादिकास्तु गत्यादिपर्यायानिति। ननु भवविपाकादयोऽपि तत्त्वतो जीवविपाका एव, यत आयूंषि स्वयोग्यभवे विपाकं दर्शयन्ति, तद्भवधारणलक्षणं, तच्च जीवस्यैव, न तद्व्यतिरिक्तस्य। आनुपूर्व्योऽपि क्षेत्रे विपाकं दर्शयन्त्यो जीवस्यानुश्रेणिगमनविषयं स्वभावमादधति।। पुद्गलविपाकिन्योऽप्यातपसंस्थाननामाद्या उदयप्राप्तास्तथारूपां जीवस्य शक्तिं जनयन्ति, यया स जीवस्तथारूपानेव पुद्गलान् गृह्णाति, गृहीतानां च रचनाविशेषं करोति ततो जीवविपाका एव सर्वाः। सत्यमेतत् केवलं भवादिप्राधान्यविवक्षया भवविपाकादन्यत्वेन जीवविपाकत्वं परिभाष्यत इति (१६)।

विपाकमाश्रित्यायमन्योऽप्यस्त्यनुयोगः, तथाहि–द्विविधा विपाकतः प्रकृतयो–हेतुविपाका रसविपाकाश्च। तत्र हेतुमधिकृत्य विपाको निर्दिश्यमानो यासां ता हेतुविपाकाः, ताश्च पुद्गलक्षेत्रभवजीवहेतुभेदाच्चतुर्विधाः प्रागेवोक्ताः। रसं मुख्यीकृत्य विपाको निर्दिश्यमानो यासां ता रसविपाकाः, ताश्चतुर्धा–एकस्थानकरसा द्विस्थानकरसास्त्रिस्थानकरसाश्चतुःस्थानकरसाश्चेति। तत्र रसः शुभप्रकृतीनां क्षीरखण्डादिरसोपमोऽशुभप्रकृतीनां तु निम्बघोषातक्यादिरसोपमः स्वाभाविक एकस्थानक उच्यते। द्वयोः कर्षयोरावर्त्तितयोर्य एकः कर्षोऽवशिष्यते तदुपमो द्विस्थानकः। त्रयाणां कर्षाणामावर्त्तितानां य एकः कर्षोऽवशिष्यते तदुपमस्त्रिस्थानकः। चतुर्णां कर्षाणामावर्त्तने कृते सत्युद्धरितैककर्षोपमश्चतुःस्थानकः। एकस्थानकादिरसा द्विस्थानकादिरसा इह यथोत्तरमनन्तगुणा द्रष्टव्याः। अत्र च मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानावरणानि चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणानि पुरुषवेदश्चत्वारः संज्वलनाः पञ्चविधमन्तरायं चेति सप्तदश प्रकृतय एकद्वित्रिचतुःस्थानकपरिणताः प्राप्यन्ते बन्धमधिकृत्य। तत्र यावन्न श्रेणिप्रतिपत्तिस्तावदासां सप्तदशप्रकृतीनां

यथाध्यवसायं द्विस्थानकस्य त्रिस्थानकस्य चतुःस्थानकस्य वा रसस्य बन्धः। श्रेणिप्रतिपत्तौ त्वनिवृत्तिबादराद्धायाः सङ्ख्येयेषु भागेषु गतेषु तदनन्तरमेतासामशुभत्वादत्यन्तविशुद्धाध्यवसाययोगेनैकस्थानकस्यैव रसस्य बन्ध इत्येता बन्धमधिकृत्य चतुःस्थानपरिणताः प्राप्यन्ते। शेषास्तु शुभा अशुभा वा द्विस्थानकरसास्त्रिस्थानकरसाश्चतुःस्थानकरसाश्च प्राप्यन्ते, न तु कदाचनाप्येकस्थानकरसाः। यत उक्तसप्तदशव्यतिरिक्तानां हास्याद्यानामशुभप्रकृतीनामेकस्थानकरसबन्धयोग्या शुद्धिरपूर्वकरणप्रमत्ताप्रमत्तानां न भवत्येव, यदा त्वेकस्थानकरसबन्धयोग्या परमप्रकर्षप्राप्ता शुद्धिरनिवृत्तिबादराद्धायाः सङ्ख्येयेभ्यो भागेभ्यः परतो जायते तदा बन्धमेव न ता आयान्तीति न तासामेकस्थानको रसः। न च यथा श्रेण्यारोहेऽनिवृत्तिबादराद्धायाः सङ्ख्येयेषु भागेषु गतेषु परतोऽतिविशुद्धत्वान्मतिज्ञानावरणादीनामेकस्थानकरसबन्धस्तथा क्षपकश्रेण्यारोहे सूक्ष्मसंपरायस्य चरमद्विचरमादिसमयेषु वर्त्तमानस्यातीव विशुद्धत्वात्केवलद्विकस्य संभवद्बन्धस्यैकस्थानकरसबन्धसंभवः कथं न भवतीति शङ्कनीयं, स्वल्पस्यापि केवलद्विकरसस्य सर्वघातित्वात्, सर्वघातिनां च जघन्यपदेऽपि द्विस्थानकरसस्यैव संभवात्। शुभानामपि प्रकृतीनां मिथ्यादृष्टिः संक्लिष्टो नैकस्थानकरसं बध्नाति, मनागविशुध्यमान एव तद्बन्धसंभवाद्, अतिसंक्लिष्टे मिथ्यादृष्टौ तद्बन्धासंभवात्, संक्लेशोत्कर्षे च शुभप्रकृतीनामेकस्थानकरसबन्धसंभावनानवकाशात्। यास्त्वतिसंक्लिष्टेऽपि मिथ्यादृष्टौ नरकगतिप्रायोग्या वैक्रियतैजसाद्याः शुभप्रकृतयो बन्धमायान्ति, तासामपि तथास्वाभाव्यात् जघन्यतोऽपि द्विस्थानक एव रसो बन्धमायाति, नैकस्थानक इति। ननूत्कृष्टस्थितिमात्रं संक्लेशोत्कर्षेण भवति, ततो यैरेवाध्यवसायैः शुभप्रकृतीनामुत्कृष्टा स्थितिर्भवति तैरेवैकस्थानकोऽपि रसः किं न स्यादिति चेत् श्रृणु-इह हि प्रथमस्थितेरारभ्य समयवृद्ध्याऽसङ्ख्येयाः स्थितिविशेषा भवन्ति, एकैकस्यां च स्थितावसङ्ख्येया रसस्पर्द्धकसङ्घातविशेषाः, तत उत्कृष्टस्थितौ

बध्यमानायां प्रतिस्थितिविशेषमसङ्ख्यया ये रसस्पर्द्धकसङ्घातविशेषास्ते तावन्तो द्विस्थानकरसस्यैव घटन्ते, नैकस्थानकस्येति न शुभप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिबन्धेऽप्येकस्थानकरसबन्धः । उक्तं च—" उक्कोसठिईअज्झवसाणेहिं एगठाणिओ होही । सुभियाण तं न जं ठिइ असङ्खगुणियाओ अणुभागा ॥ १ ॥" अत्र सर्वघातिनीनां देशघातिनीनां वा प्रकृतीनां यानि चतुःस्थानकरसानि त्रिस्थानकरसानि वा स्पर्द्धकानि तानि नियमतः सर्वघातीनि भवन्ति । द्विस्थानकरसानि तु सर्वघातिनीनां सर्वघातीन्येव, देशघातिनीनां तु कानिचित्सर्वघातीनि कानिचिद्देशघातीनीत्येवं मिश्राणि । एकस्थानकरसानि च देशघातिनीनामेव भवन्ति, तानि च देशघातीन्येव। अत्र च देशघातिनामवधिज्ञानावरणादीनां सर्वघातिरसस्पर्धकेषु विशुद्धाध्यवसायतो देशघातिरूपतया परिणमनेन निहतेषु, देशघातिरसस्पर्द्धकेषु चातिस्निग्धेष्वल्परसीकृतेषु, तदन्तर्गतकतिपयरसस्पर्द्धकभागस्योदयावलिकाप्रविष्टस्य क्षये शेषस्य च विपाकोदयविष्कम्भलक्षणे उपशमे, जीवस्यावधिमनःपर्यायज्ञानचक्षुर्दर्शनादयो गुणाः क्षायोपशमिकाः प्रादुर्भवन्ति; तदाऽवधिज्ञानावरणादीनां कतिपयदेशघातिरसस्पर्द्धकक्षयोपशमात्कतिपयदेशघातिरसस्पर्द्धकानां चोदयात् क्षयोपशमानुविद्ध औदयिको भावः प्रवर्तते। यदा चावधिज्ञानावरणादीनां सर्वघातीनि रसस्पर्धकानि विपाकोदयमागतानि भवन्ति तदा तद्विषय औदयिको भावः केवलः प्रवर्तते । मतिश्रुतावरणाचक्षुर्दर्शनावरणान्तरायप्रकृतीनां तु सदैव देशघातिनामेव रसस्पर्धकानामुदयो न सर्वघातिनां, ततः सर्वदैव तासामौदयिकक्षायोपशमिकौ भावौ संमिश्रौ प्राप्येते, न केवल औदयिकः । तदेवं ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणामुदयेऽपि क्षयोपशमोऽविरुद्ध इति स्थितम् । मोहनीयस्य तु अनन्तानुबन्ध्यादिप्रकृतीनां प्रदेशोदये क्षायोपशमिको भावोऽविरुद्धो न विपाकोदये, यतोऽनन्तानुबन्ध्यादिप्रकृतयः सर्वघातिन्यः, सर्वघातिनीनां च रसस्पर्द्धकानि सर्वाण्यपि सर्वघातीन्येवेति तेषां विपाकोदये न

क्षयोपशमसंभवः, किं तु प्रदेशोदये । न च सर्वघातिरसस्पर्द्धकप्रदेशा अपि सर्वस्वघात्यगुणघातनस्वभावा इति तत्प्रदेशोदयेऽपि कथं क्षायोपशमिकभावसंभव इति वाच्यं, तेषां सर्वघातिरसस्पर्द्धकप्रदेशानामध्यवसायविशेषेण मनाग्मन्दानुभावीकृतविरलवेद्यमानदेशघातिरसस्पर्द्धकेष्वन्तःप्रवेशितानां यथास्थितस्वबलप्रकटनासमर्थत्वात् । मिथ्यात्वाद्यद्वादशकषायरहितानां शेषमोहनीयप्रकृतीनां तु प्रदेशोदये विपाकोदये वा क्षयोपशमोऽविरुद्धस्तासां देशघातित्वात्, परं ताः प्रकृतयोऽध्रुवोदया इति तद्विपाकोदयाभावे क्षायोपशमिकभावे विजृम्भमाणे प्रदेशोदयवत्योऽपि ता न मनागपि देशविघातिन्यः । विपाकोदये तु प्रवर्त्तमाने क्षायोपशमिकभावसंभवे मनाग्मालिन्यमात्रकारित्वाद्देशघातिन्यो भवन्तीति कृतं प्रसङ्गेन ।

स्वस्यानुदय एव बन्धो यासां ताः स्वानुदयबन्धिन्यस्ताश्च देवायुर्नरकायुर्देवगतिर्देवानुपूर्वी नरकगतिर्नरकानुपूर्वी वैक्रियशरीरं वैक्रियाङ्गोपाङ्गं आहारकद्विकं जिननाम चेत्येकादश (११)। तथाहि–देवगतित्रिकस्य देवगतावुदयः, नरकत्रिकस्य नरकगतौ, वैक्रियद्विकस्योभयत्र । न च देवा नारका वा एताः प्रकृतीर्बध्नन्ति। तथाभवस्वाभाव्यात्, तीर्थकरनामापि केवलज्ञानप्राप्तावुदययोग्यं, न च तदा तद्बन्धोऽपूर्वकरण एव तद्बन्धव्यवच्छेदात् । आहारककरणकाले लब्ध्युपजीवनप्रमादात्, तदुत्तरकालं च मन्दसंयमस्थानवर्त्तित्वान्नाहारकद्विकोदये तद्बन्ध इत्येताः सर्वा अपि स्वानुदयबन्धिन्यः । स्वोदय एव बन्धो यासां ताः स्वोदयबन्धिन्यः, ताश्च ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयान्तरायपञ्चकमिथ्यात्वनिर्माणतैजसकार्मणस्थिरास्थिरवर्णादिचतुष्कागुरुलघुशुभाशुभलक्षणाः, (२७) सप्तविंशतिर्ध्रुवोदयतया तासां सर्वदोदयभावात् । उभयस्मिन्नुदयेऽनुदये वा बन्धो यासां ता उभयबन्धिन्यः, ताश्च निद्रापञ्चकजातिपञ्चकसंस्थानषट्कसंहननषट्ककषायषोडशकनोकषायनवकपराघातोपघातातपोद्योतोच्छ्वाससातासातवेदनीयोच्चनीचैर्गोत्रमनुष्यत्रिकतिर्यक्-

त्रिकौदारिकद्विकप्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणसुस्वरसुभगादेययशःकीर्त्तिदुःस्वरदुर्भगानादेययशःकीर्त्तिरूपा द्व्यशीतिः (८२)। एतासां तिरश्चां मनुष्याणां वा यथायोगमुदयेऽनुदये वा बन्धसंभवात् (१७–१८–१९)।

समकमेककालं व्यवच्छिद्यमानौ बन्धोदयौ यासां ताः समकव्यवच्छिद्यमानबन्धोदयाः, ताश्च संज्वलनलोभहीनपञ्चदशकषायमिथ्यात्वभयजुगुप्साहास्यरतिमनुजानुपूर्वीसूक्ष्मत्रिकातपपुरुषवेदलक्षणाः षड्विंशतिः(२६)। तथाहि—सूक्ष्मत्रिकातपमिथ्यात्वानां मिथ्यादृष्टौ, अनन्तानुबन्धिनां सासादने, मनुष्यानुपूर्वीद्वितीयकषायाणामविरते, प्रत्याख्यानावरणानां देशविरते, हास्यरतिभयजुगुप्सानामपूर्वकरणे, संज्वलनत्रिकपुंवेदयोरनिवृत्तिबादरे बन्धोदयौ समकमेव व्यवच्छिद्येते। तत एताः समकव्यवच्छिद्यमानबन्धोदयाः। क्रमेण पूर्वं बन्धः पश्चादुदय इत्येवंरूपेण व्यवच्छिद्यमानौ बन्धोदयौ यासां ताः क्रमव्यवच्छिद्यमानबन्धोदयाः, ताश्चोक्तवक्ष्यमाणव्यतिरिक्ताः षडशीतिः(८६)। तथाहि—ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयानां सूक्ष्मसंपरायचरमसमये बन्धव्यवच्छेदः, उदयव्यवच्छेदः क्षीणकषायचरमसमये। निद्राप्रचलयोर्बन्धव्यवच्छेदोऽपूर्वकरणप्रथमभागे, उदयव्यवच्छेदः क्षीणकषायद्विचरमसमये। असातवेदनीयस्य प्रमत्ते, सातवेदनीयस्य सयोगिचरमसमये बन्धव्यवच्छेदः, उदयव्यवच्छेदः पुनरुभयोरपि सयोगिकेवलिचरमसमयेऽयोगिचरमसमये वा। तथा चरमसंस्थानस्य मिथ्यादृष्टौ, मध्यमसंस्थानचतुष्टयाप्रशस्तविहायोगतिदुःस्वरनाम्नां सासादने, औदारिकद्विकप्रथमसंहननयोरविरते, अस्थिराशुभयोः प्रमत्ते, तैजसकार्मणसमचतुरस्रवर्णादिचतुष्कागुरुलघुचतुष्टयप्रत्येकस्थिरशुभसुस्वरशुभविहायोगतिनिर्माणानामपूर्वकरणषष्ठभागे बन्धव्यवच्छेदः, उदयव्यवच्छेदः पुनरासामेकोनत्रिंशत्संख्यानां सयोगिचरमसमये। तथा मनुजगतिमनुजायुष्कस्य बन्धव्यवच्छेदोऽविरते, पञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरपर्याप्तसुभगादेयतीर्थकरनाम्नामपूर्वकरणषष्ठांशे, यशः-

कीर्त्युच्चैर्गोत्रयोः सूक्ष्मसंपरायचरमसमये, उदयव्यवच्छेदः पुनरासां एकादशानामप्ययोगिचरमसमये । तथा स्थावरैकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातीनां नरकत्रिकस्यान्त्यसंहननस्य नपुंसकवेदस्य च मिथ्यादृष्टौ बन्धव्यवच्छेदः, उदयव्यवच्छेदः पुनर्यथाक्रमं सासादनेऽविरतेऽप्रमत्तेऽनिवृत्तिबादरे च । तथा स्त्रीवेदस्य सासादने बंधव्यवच्छेदः, उदयव्यवच्छेदः पुनः अनिवृत्तिबादरे । तथा तिर्यगानुपूर्वीदुर्भगानादेयानां तिर्यग्गतितिर्यगायुरुद्योतनीचैर्गोत्राणां स्त्यानर्धित्रिकस्य तुर्यपञ्चमसंहननयोर्द्वितीयतृतीयसंहननयोश्च बन्धव्यवच्छेदः पुनर्यथासङ्ख्यमविरते देशविरते प्रमत्तेऽप्रमत्त उपशान्तमोहे च । तथाऽरतिशोकयोर्बन्धव्यवच्छेदः प्रमत्ते, उदयव्यवच्छेदोऽपूर्वकरणे । संज्वलनलोभस्य बन्धव्यवच्छेदोऽनिवृत्तिबादरचरमसमये, उदयव्यवच्छेदः सूक्ष्मसंपरायान्त्यसमये । तत एताः षडशीतिः प्रकृतयः क्रमव्यवच्छिद्यमानबन्धोदयाः । पूर्वमुदयः पश्चाबन्ध इत्येवमुत्क्रमेण व्यवच्छिद्यमानौ बन्धोदयौ यासां ता उत्क्रमव्यवच्छिद्यमानबन्धोदयाः, ताश्चायशःकीर्त्तिसुरत्रिकवैक्रियद्विकाहारकद्विकरूपा अष्टौ, येनायशःकीर्त्तेः प्रमत्ते,देवायुषोऽप्रमत्ते, देवद्विकवैक्रियद्विकयोरपूर्वकरणे बन्धव्यवच्छेदः, उदयव्यवच्छेदस्तु षण्णामप्यविरते । आहारकद्विकस्य पुनरपूर्वकरणे बन्धस्योदयस्य चाप्रमत्तसंयते व्यवच्छेद इति (२०–२१–२२)।

यासां प्रकृतीनां जघन्यतः समयमात्रं बन्धः, उत्कर्षतः समयादारभ्य यावदन्तर्मुहूर्तं न परतः, ताः सान्तरबन्धाः, अन्तर्मुहूर्त्तमध्येऽपि सान्तरो विच्छेदलक्षणान्तरसहितो बन्धो यासां ताः सान्तरा इति व्युत्पत्तेः । अन्तर्मुहूर्तोपरि विच्छिद्यमानबन्धवृत्तिजातिमत्यः सान्तरबन्धा इति फलितार्थः। ताश्च सातवेदनीयस्त्रीवेदनपुंसकवेदहास्यरत्यरतिशोकनरकद्विकाहारकद्विकाद्यरहितसंस्थानसंहननपञ्चकाद्यजातिचतुष्टयातपोद्योताप्रशस्तविहायोगतिस्थिरशुभयशःकीर्त्तयः स्थावरदशकं च । एता हि (४१) जघन्यतः समय-

मात्रं बध्यन्ते, उत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, परतस्तु निजबन्धहेतुसद्भावेऽपि तथास्वाभाव्यात्तद्योग्याध्यवसायपरावृत्त्या नियमात्प्रतिपक्षप्रकृतयो बध्यन्त इति सान्तरा उच्यन्ते। यासां जघन्यतः समयमात्रं बन्ध उत्कर्षतस्तु समयादारभ्य नैरन्तर्येणान्तर्मुहूर्त्तस्योपर्यपि कालमसङ्ख्येयं यावत्ताः सान्तरनिरन्तरबन्धाः, अन्तर्मुहूर्त्तमध्येऽपि सान्तराश्च निरन्तराश्चेतिकृत्वाऽन्तर्मुहूर्त्तमध्यविच्छिन्नबन्धतदुपरिविच्छिन्नबन्धोभयवृत्तिजातिमत्य इति यावत्। ताश्च समचतुरस्रं वज्रर्षभनाराचं पराघातोच्छ्वासौ पुरुषवेदः पञ्चेन्द्रियजातिः सातवेदनीयं शुभविहायोगतिर्वैक्रियौदारिकसुरमनुजतिर्यग्गोत्रद्विकानि सौभाग्यत्रिकं त्रसचतुष्कं चेति सप्तविंशतिः (२७)। एता हि जघन्यतः समयमात्रं बध्यन्त इति सान्तराः, उत्कर्षतस्तु अनुत्तरसुरादिभिरसङ्ख्येयमपि कालं बध्यन्त इत्यन्तर्मुहूर्त्तमध्ये व्यवच्छेदाभावान्निरन्तरा इति। जघन्येनापि या अन्तर्मुहूर्त्तं यावन्नैरन्तर्येण बध्यन्ते ता निरन्तरबन्धा निर्गतमन्तरमन्तर्मुहूर्त्तमध्ये व्यवच्छेदलक्षणं यस्य तादृशो बन्धो यासामिति व्युत्पत्तेः, अन्तर्मुहूर्त्तमध्याविच्छिन्नबन्धवृत्तिजातिमत्य इतियावत्। ताश्च ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकदर्शनावरणनवककषायषोडशकमिथ्यात्वभयजुगुप्साऽगुरुलघुनिर्माणतैजसकार्मणोपघातवर्णादिचतुष्टयरूपाः सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबन्धिन्यः जिननामायुश्चतुष्टयं चेति द्विपञ्चाशत् (५२)। एतासां बन्धो ह्यन्तर्मुहूर्त्तमध्ये न विच्छिद्यत इति (२३-२४-२५)।

यासां विपाकोदये प्रवर्त्तमाने सङ्क्रमत उत्कृष्टं स्थितिसत्कर्म लभ्यते, न बन्धतः, ता उदयसङ्क्रमोत्कृष्टाः, ताश्च मनुजगतिः सातवेदनीयं सम्यक्त्वं स्थिरादिषट्कं हास्यादिषट्कं वेदत्रिकं शुभविहायोगतिराद्यानि पञ्च संहननानि पञ्च संस्थानानि उच्चैर्गोत्रं चेति त्रिंशत् (३०)। आसां हि प्रकृतीनामुदयप्राप्तानां या विपक्षभूता नरकगत्यसातवेदनीयमिथ्यात्वाद्याः प्रकृतयस्तासामुत्कृष्टां स्थितिं बध्वा भूय आसामेवोदयप्राप्तानां बन्धमारभते, बध्यमानासु चैतासु पूर्वबद्धनरकगत्यादिविपक्षप्रकृतिदलिकं संक्रमयति, शुभप्रकृतीनां च

स्थितिः स्वबन्धेन स्तोकैव भवतीति सङ्क्रमत आसामुत्कृष्टा स्थितिः प्राप्यते । यासां प्रकृतीनामनुदये सङ्क्रमत उत्कृष्टस्थितिलाभस्ता अनुदयसङ्क्रमोत्कृष्टाः,ताश्च मनुजानुपूर्वीसम्यग्मिथ्यात्वाहारकद्विकदेवद्विकविकलत्रिकसूक्ष्मत्रिकतीर्थकरनामलक्षणास्त्रयोदश (१३)। यत एतासां स्वबन्धत उत्कृष्टा स्थितिर्नावाप्यते, किं तु सङ्क्रमतः । सङ्क्रमतोऽप्युत्कृष्टा स्थितिस्तदाऽवाप्यते यदैतद्विपक्षप्रकृतीरुत्कृष्टस्थितीर्बध्वा तदुत्तरमेतासु बध्यमानासु तद्दलिकं संक्रमयति । एतद्विपक्षप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिबन्धकश्च प्रायो मिथ्यादृष्ट्यादिर्मनुष्यः । न च तदानीमासामुदयोऽस्तीत्यनुदयसङ्क्रमोत्कृष्टा एताः । यासां प्रकृतीनां विपाकोदये सति बन्धादुत्कृष्टं स्थितिसत्कर्मावाप्यते ता उदयबन्धोत्कृष्टाः । यासां तु विपाकोदयाभावे बन्धादुत्कृष्टस्थितिसत्कर्मावाप्तिस्ता अनुदयबन्धोत्कृष्टाः । तत्र नरकद्विकतिर्यग्द्विकौदारिकद्विकसेवार्त्तसंहननैकेन्द्रियजातिस्थावरनामातपनामानि निद्राश्च पञ्चेत्येताः पञ्चदश(१५) प्रकृतयोऽनुदयबन्धोत्कृष्टाः । शेषाः पुनरायुश्चतुष्टयरहिताः पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकं हुण्डं पराघातोच्छ्वासोद्योताप्रशस्तविहायोगतयोऽगुरुलघुतैजसकार्मणनिर्माणोपघातवर्णादिचतुष्काणि अस्थिरादिषट्कं त्रसादिचतुष्कमसातवेदनीयं नीचैर्गोत्रं षोडश कषाया मिथ्यात्वं ज्ञानावरणपञ्चकमन्तरायपञ्चकं दर्शनावरणचतुष्टयमित्येताः षष्टिः(६०) प्रकृतय उदयबन्धोत्कृष्टाः। एतासां ह्युदयप्राप्तानां स्वबन्धत उत्कृष्टा स्थितिरवाप्यत इति। आयुषां तु नान्योऽन्यं सङ्क्रमो, नापि बध्यमानमायुर्दलिकं पूर्वबद्धायुष उपचयायालं । ततस्तिर्यग्मनुष्यायुषोरुत्कृष्टा स्थितिर्न कथमपीति ते अनुदयबन्धोत्कृष्टादिसंज्ञाचतुष्टयातीते । देवनारकायुषी त्वनुदयबन्धोत्कृष्टे अपि प्रयोजनाभावात् पूर्वाचार्यैः संज्ञाचतुष्टयातीते विवक्षिते (२६–२७–२८–२९) ।

यासां प्रकृतीनां दलिकं चरमसमयेऽन्यासु प्रकृतिषु स्तिबुकसङ्क्रमेण सङ्क्रमय्यान्यप्रकृतिव्यपदेशेनानुभवेत्, न स्वोदयेन, ता

अनुदयवतीसंज्ञाः । यासां च दलिकं चरमसमये स्वविपाकेन वेदयते ता उदयवत्यः । ताश्च ज्ञानावरणपञ्चकमन्तरायपञ्चकमायुश्चतुष्टयं दर्शनचतुष्टयं सातासातवेदनीये स्त्रीवेदनपुंसकवेदौ मनुष्यगतिः पञ्चेन्द्रियजातिस्त्रसबादरपर्याप्तशुभसुस्वरादेयजिननामलक्षणं चरमोदयसंज्ञं नामनवकं उच्चैर्गोत्रं वेदकसम्यक्त्वं संज्वलनलोभ इति चतुस्त्रिंशत् (३४)। तथाहि–ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयरूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां क्षीणकषायचरमसमये, उक्तनामनवकस्य सातासातवेदनीययोरुच्चैर्गोत्रस्य चायोगिचरमसमये, संज्वलनलोभस्य सूक्ष्मसंपरायान्त्यसमये, वेदकसम्यक्त्वस्य स्वक्षपणपर्यवसानसमये, स्त्रीनपुंसकवेदयोः क्षपकश्रेण्यामनिवृत्तिबादराद्धायाः सङ्ख्येयेषु भागेष्वतिक्रान्तेषु तदुदयान्त(न्त्य)समये, आयुषां च स्वस्वभवचरमसमये स्ववेदनमस्ति, तत एता उदयवत्योऽभिधीयन्ते । यद्यपि सातासातवेदनीययोः स्त्रीनपुंसकवेदयोश्चानुदयवतीत्वमपि संभवति, तथापि 'प्राधान्येनैव व्यपदेश' इत्युदयवत्य एता उक्ता इति संप्रदायः, उदयवत्यवृत्तिजातिमत्त्वलक्षणमनुदयवतीत्वं तासु नास्तीति तदभिप्रायः । उक्तशेषाश्चतुर्दशोत्तरशतसङ्ख्या (११४)अनुदयवत्यस्तासां दलिकस्य चरमसमयेऽन्यत्र सङ्क्रमणाद्यौव्येण स्वविपाकवेदनाभावात्।तथाहि-चरमोदयसंज्ञनामनवकनरकद्विकतिर्यग्द्विकैकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिस्थावरसूक्ष्मसाधारणातपोद्योतवर्जा नाम्न एकसप्ततिप्रकृतयो नीचैर्गोत्रं चेन्येता द्विसप्ततिप्रकृतीः(७२) सजातीयासु परप्रकृतिषूदयमागतासु चरमसमये स्तिबुकसङ्क्रमेण प्रक्षिप्य परप्रकृतिव्यपदेशेनानुभवत्ययोगिकेवली । एवं निद्राप्रचले क्षीणकषायः । मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वे तच्च सम्यक्त्वे प्रक्षिप्य सप्तकक्षयकालेऽनुभूयते । अनन्तानुबन्धिनां क्षपणसमये तद्दलिकं बध्यमानासु चारित्रमोहनीयप्रकृतिषु गुणसङ्क्रमेण सङ्क्रमय्योदयावलिकागतमुदयवतीषु प्रकृतिषु स्तिबुकसङ्क्रमेण संक्रमय्य तद्व्यपदेशेनानुभवति। स्थावरसूक्ष्मसाधारणातपोद्योतैकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिनरकद्विकतिर्यग्द्विकरूपा नामत्रयोदशप्रकृतीर्बध्यमानायां यशःकी-

॥ ध्रुवबन्ध्यादि २१ द्वारयन्त्रकम् ॥

अनुक्रम	द्वारनामानि	ज्ञानावर०	दर्शनावर०	वेदनीय	मोहनीय	आयुष	नाम	गोत्र	अन्तराय	कुल
१	ध्रुवबन्धि	५	९	०	१९	०	९	०	५	४७
२	अध्रुवबन्धि	०	०	२	७	४	५८	२	०	७३
३	ध्रुवोदयी	५	४	०	१	०	१२	०	५	२७
४	अध्रुवोदयी	०	५	२	२७	४	५५	२	०	९५
५	ध्रुवसत्ता	५	९	२	२६	०	८२	१	५	१३०
६	अध्रुवसत्ता	०	०	०	२	४	२१	१	०	२८
७	घातिनी	५	९	०	२६।२८	०	०	०	५	४५।४७
८	अघातीनि	०	०	२	०	४	६७	२	०	७५
९	परावर्तमान	०	५	२	२३	४	५५	२	०	९१
१०	अपरावर्तमान	५	४	०	३	०	१२	०	५	२९
११	शुभ	०	०	१	०	३	३७	१	०	४२
१२	अशुभ	५	९	१	२६	१	३४	१	५	८२
१३	पुद्गलविपाकी	०	०	०	०	०	३६	०	०	३६

स्तौ यथाप्रवृत्त्यादियथा-
योग्यसङ्क्रमेण संक्रमय्य
तासामुदयावलिकागतं द-
लिकं नाम्न उदयमागतासु
प्रकृतिषु स्तिबुकसंक्रमेण
प्रक्षिप्य तद्व्यपदेशेनानुभ-
वति । स्त्यानर्द्धित्रिकम-
प्यादौ दर्शनावरणचतुष्टये
गुणसङ्क्रमेण संक्रमयति ।
तत उदयावलिकागतं स्ति-
बुकसङ्क्रमेण संक्रमयति ।
एवमष्टौ कषायान् हास्या-
दिषट्कं पुरुषवेदं संज्वलन-

१४	भवविपाकी	०	०	०	०	४	०	०	०	४
१५	क्षेत्रविपाकी	०	०	०	०	०	४	०	०	४
१६	जीवविपाकी	५	९	२	२८	०	२७	२	५	७८
१७	स्वानुदयबन्धि	०	०	०	०	२	९	०	०	११
१८	स्वोदयबन्धि	५	४	०	१	०	१२	०	५	२७
१९	उभयबन्धि	०	५	२	२५	२	४६	२	०	८२
२०	समकव्यवच्छिद्यमानबन्धोदय	०	०	०	२१	०	५	०	०	२६
२१	क्रमव्यवच्छिद्यमान बन्धोदय	५	९	२	५	३	५५	२	५	८६
२२	उत्क्रमव्यवच्छिद्यमानबन्धो०	०	०	०	०	१	७	०	०	८
२३	सान्तरबन्ध	०	०	१	६	०	३४	०	०	४१
२४	सान्तरनिरन्तरबन्ध	०	०	१	१	०	२३	२	०	२७
२५	निरन्तरबन्ध	५	९	०	१९	४	१०	०	५	५२
२६	उदयसंक्रमोत्कृष्ट	०	०	१	१०	०	१८	१	०	३०
२७	अनुदयसंक्रमोत्कृष्ट	०	०	०	१	०	१२	०	०	१३
२८	उदयबन्धोत्कृष्ट	५	४	१	१७	०	२७	१	५	६०
२९	अनुदयबन्धोत्कृष्ट	०	५	०	०	०	१०	०	०	१५
३०	उदयवती	५	४	२	४	४	९	१	५	३४
३१	अनुदयवती	०	५	०	२४	०	८४	१	०	११४

क्रोधादित्रिकमुत्तरोत्तरमकृतिषु मध्ये प्रक्षिपति। तत एताःसर्वा अप्यनुदयवत्यः (३०–३१)। "वक्ष्यमाणगभीरार्थनीरराशिप्रवेशकृत्। कर्माष्टकस्वरूपस्य, नौरिवेयं प्ररूपणा ॥ १॥"

* २जा तथा ६ ठ्ठा कर्मग्रन्थमां 'शुभ' अने 'सुस्वरने' बदले 'सौभाग्य' अने 'यशःकीर्ति' साथे ९ अयोगीना अन्त्य समये उदयविच्छेद पामनारी गणावी छे.

तत्र यथोद्देशं निर्देश इतिन्यायात्प्रथमतः करणाष्टकमभिधित्सुराह—

बंधण १ संकमणु २ व्वट्टणा य ३ अववट्टणा ४ उदीरणया ५ ।
उवसामणा ६ निहत्ती ७ निकायणा ८ च त्ति करणाइं ॥ २ ॥

बंधणेति—इह करणशब्देन सह पर्यन्ते सामानाधिकरण्याभिधानात्प्रत्येकं करणशब्दोऽभिसंबन्धनीयः। तद्यथा—बन्धनकरणं संक्रमकरणमित्यादि । तत्र बन्धो नाम कर्मपुद्गलानां जीवप्रदेशैः सह वह्नयःपिंडवदन्योऽन्यानुगमः १ । संक्रमः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानामन्यकर्मरूपतया स्थितानामन्यकर्मस्वरूपेण व्यवस्थापनं २ । स्थित्यनुभागयोर्बृहत्करणमुद्वर्तना ३ । तयोरेव ह्रस्वीकरणमपवर्तना ४ । कर्मपुद्गलानामकालप्राप्तानामुदयावलिकायां प्रवेशनमुदीरणा ५ । कर्मपुद्गलानामुदयोदीरणानिधत्तिनिकाचनाकरणायोग्यत्वेन व्यवस्थापनमुपशमना ६ । उद्वर्तनापवर्तनावर्जशेषकरणायोग्यत्वेन व्यवस्थापनं निधत्तिः ७ । समस्तकरणायोग्यत्वेन व्यवस्थापनं निकाचना ८ ।

उक्तस्वरूपबन्धादिनिबन्धनभूताश्च जीववीर्यविशेषा बन्धनादीनीत्युच्यन्ते, तथाव्युत्पत्तिभावात् । तथाहि—बध्यतेऽष्टप्र-

गाथार्थः—बंधण=बंधनकरण, संकमण=संक्रमणकरण, उव्वट्टणाय=उद्वर्तनाकरण, अववट्टणा=अपवर्तनाकरण, उदीरणया=उदीरणाकरण, उवसामणा=उपशामनाकरण, निहत्ती=निधत्तीकरण, निकायणा चत्ति=अने निकाचनाकरण ए प्रमाणे, करणाइं=(आठज) करणो छे.२

कारं कर्म येन तद्बन्धनं १ । संक्रम्यतेऽन्यप्रकृत्यादिरूपतया व्यवस्थाप्यते येन तत्संक्रमणं २ । उद्वर्त्यते प्राबल्येन प्रभूतीक्रियते स्थित्यादि यया जीववीर्यविशेषपरिणत्या सोद्वर्तना ३ । अपवर्त्यते ह्रस्वीक्रियते स्थित्यादि यया साऽपवर्तना ४ । अनुदयप्राप्तं (उदयाप्राप्तं) सत्कर्मदलिकमुदीर्यत उदयावलिकायां प्रवेश्यते यया सोदीरणा ५ । उपशम्यते उदयोदीरणानिधत्तिनिकाचनाकरणायोग्यत्वेन व्यवस्थाप्यते कर्म यया सोपशमना ६ । निधीयत उद्वर्तनापवर्तनावर्जकरणायोग्यत्वेन व्यवस्थाप्यते यया सा निधत्तिः ७ । पृषोदरादित्वाच्छब्दरूपनिष्पत्तिः । तथा कच बन्धने, नितरां कच्यते स्वयमेव बन्धमायाति कर्म जीवस्य तथाविधसंक्लिष्टाध्यवसायपरिणतस्य, तत्प्रयुंक्ते जीव एव तथानुकूल्येन भवनात्, ततः प्रयोक्तृव्यापारे णिच् (श्रीमे. आ–६–५) ततो निकाच्यतेऽवश्यवेद्यतया व्यवस्थाप्यते कर्म जीवेन यया सा निकाचना ।८ अथवा कच बन्धने इति चौरादिकोऽप्यस्ति, ततो निकाच्यतेऽवश्यवेद्यतया निबध्यते यया कर्म सा निकाचना जीववीर्यविशेषपरिणतिः ८ । चः समुच्चये । इतिः परिसमाप्तौ, एतावन्त्येव करणानि, नाधिकानि । इति ॥ २ ॥

करणानि चामूनि जीववीर्यविशेषरूपाणीति प्रथमतो वीर्यमेव प्ररूपयति—

---

१ श्रीमत्प्रणीतं रुचिरतरमस्त्येव शब्दानुशासनं सवृत्तिकं, तत्र नामाख्यातकृदाख्यं यथार्थाख्यं प्रकरणत्रयं क्रमेण नवदशषट्पादप्रमाणं, ततश्चात्र श्रीमलयगिरिपूज्यपादकृतिप्रकरणपादसूत्रसङ्ख्यासूचनं क्रमेणावसेयमध्यवसितवाङ्मयसारैः ।

विरियंतरायदेसक्खएण सव्वक्खएण वा लद्धी। अभिसंधिजमियरं वा, तत्तो विरियं सलेसस्स ॥३॥

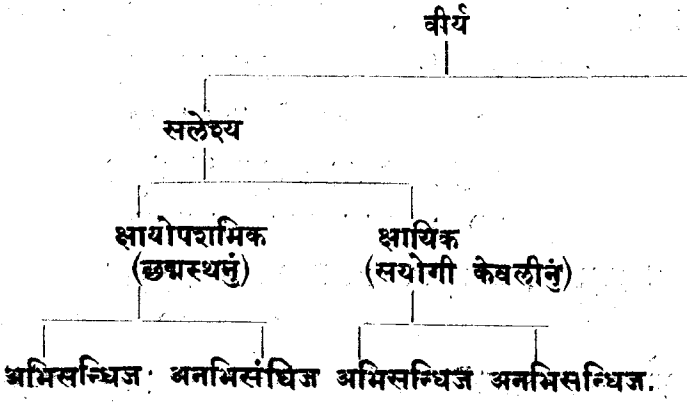
विरियमिति–वीर्यान्तरायस्य देशक्षयेण सर्वक्षयेण वा लब्धिर्वीर्यलब्धिरसुमतामुपजायते। तत्र देशक्षयेण छद्मस्थानां सर्वक्षयेण (च) केवलिनां। तस्याश्च वीर्यलब्धेः सकाशादुपजायमानं वीर्यं सलेश्यस्यापि च भवति, अलेश्यस्यापि च। केवलमिह सलेश्यवीर्येणाधिकार इति तदेवोपदर्शयति–'अभिसंधिजमियरं वा तत्तो विरियं सलेसस्स' ततस्तस्याः क्षायिकक्षायोपशमिकरूपाया वीर्यलब्धेः सकाशात् सलेश्यस्य वीर्यमभिसन्धिजमितरद्वा भवति। तत्र यद् बुद्धिपूर्वकं धावनवल्गनादिक्रियासु नियुज्यते तदभिसन्धिजं, इतरदनभिसन्धिजं यद् भुक्तस्याहारस्य धातुमलत्वरूपपरिणामापादनकारणं एकेन्द्रियाणां वा तत्तत्क्रियानिबन्धनं। एतच्चाभिसन्धिजमनभिसन्धिजं वा वीर्यमवश्यं यथासंभवं सूक्ष्मबादरपरिस्पन्दरूपक्रियासहितं, योगसंज्ञमप्येतदेव। एकार्थिकानि चास्यामूनि–"जोगो विरियं थामो, उच्छाहपरिक्कमो तहा चि(चे)ट्ठा। सत्ती सामत्थं चिय, जोगस्स हवंति पज्जाया ॥१॥" इति ॥ ३ ॥

संप्रत्यस्यैव योगस्य परिणामादिहेतुतां भेदं च; तथा जीवप्रदेशेष्वस्य वैषम्येणावस्थाने कारणं च प्रतिपिपादयिषुरिदमाह–

गाथार्थः—विरियंतरायदेसक्खएण=वीर्यान्तराय कर्मना देशक्षयथी सव्वक्खएण=अने सर्वक्षयथी, जा लद्धी=जे लब्धि थाय, तत्तो=तेनाथी, सलेसस्स=सलेश्य जीवनुं, विरियं=वीर्य अभिसंधिजमियरं वा=अभिसन्धिज अथवा इतर (अनभिसन्धिज) होय छे. ३

परिणामालंबणगहणसाहणं तेण लद्धनामातिगं । कज्जप्पासन्नोन्नप्पवेसविसमीकयपएसं ॥ ४ ॥

परिणामेति–परिणमनं परिणामः । अन्तर्भूतणिजन्तात् घञ्प्रत्ययः (श्रीम. कृ. ५–३) परिणामापादनमित्यर्थः । आलंब्यत इत्यालंबनं, भावेऽनट् (श्रीम. कृ.६–२)। गृहीतिर्ग्रहणं । तेषां साधनं, साध्यतेऽनेनेति साधनं योगसंज्ञं वीर्यं, करणेऽनट् (श्रीम. कृ. ६–४) । तथाहि—तेन वीर्यविशेषेण योगसंज्ञकेनौदारिकादिशरीरप्रायोग्यान् पुद्गलान् प्रथमतो गृह्णाति, गृहीत्वा चौदारिकादिरूपतया परिणमयति । तथा प्राणापानभाषामनोयोग्यान् पुद्गलान् प्रथमतो गृह्णाति, गृहीत्वा च प्राणापानादिरूपतया



गाथार्थः—परिणामालंबणगहणसाहणं=परिणाममां, आलंबनमां अने ग्रहणमां साधनरूप योग छे, तेण=ते योग वडे, लद्धनामतिगं=त्रण नाम प्राप्त कराया छे. कज्ज०पएसं=कार्यनी निकटता अने अन्योन्य प्रवेशवडे विषम कर्या छे जीवप्रदेशो एवो योग छे. ४

परिणमयति । परिणमय्य च तन्निसर्गहेतुसामर्थ्यविशेषसिद्धये तानेव पुद्गलानवलंबते । यथा मन्दशक्तिः कश्चिन्नगरे परिभ्रमणाय यष्टिमवलंबते (मवष्टंभते)। ततस्तदवष्टंभतो जातसामर्थ्यविशेषः सन् तान् प्राणापानादिपुद्गलान् विसृजतीति परिणामालंबनग्रहणसाधनं वीर्यं । तेन च वीर्येण योगसंज्ञकेन मनोवाक्कायावष्टंभतो जायमानेन। 'लद्धनामतिगं ति' लब्धं नामत्रिकं । तद्यथा—मनोयोगो वाग्योगः काययोग इति । तत्र मनसा करणभूतेन योगो मनोयोगः, वाचा योगो वाग्योगः, कायेन योगः काययोगः । स्यादेतत्, सर्वेषु जीवप्रदेशेषु तुल्यक्षायोपशमिक्यादिलब्धिभावेऽपि किमिति क्वचित्प्रभूतं क्वचित् स्तोकं क्वचित्स्तोकतरमित्येवं वैषम्येण वीर्यमुपलभ्यत इत्यत आह—कज्जेत्यादि, यदर्थं चेष्टते तत्कार्यं, तस्याभ्याशः,अभ्यशनमभ्याशः,अशूङ् व्याप्तावित्यस्याभिपूर्वस्य घञन्तस्य प्रयोगः, कार्याभ्याशः कार्यस्यासन्नता निकटीभवनमित्यर्थः। तथा जीवप्रदेशानामन्योऽन्यं परस्परं प्रवेशः शृंखलावयवानामिव परस्परं संबन्धविशेषः । ताभ्यां कृत्वा विषमीकृताः (स्व)प्रभूताल्पाल्पतरसद्भावतो विसंस्थुलीकृताः प्रदेशा जीवप्रदेशा येन जीववीर्येण तत्कार्याभ्याशान्योऽन्यप्रवेशविषमीकृतप्रदेशं । तथाहि—येषामात्मप्रदेशानां हस्तादिगतानामुत्पाट्यमानघटादिलक्षणकार्यनैकट्यं, तेषां प्रभूततरा चेष्टा । दूरस्थानामंसा (शा) दिगतानां स्वल्पा । दूरतरस्थानां तु पादादिगतानां स्वल्पतरा । अनुभवसिद्धं चैतत् । अपि च लोष्टादिनाऽभिघाते सति यद्यपि सर्वप्रदेशेषु युगपद्वेदनोपजायते, तथापि येषामात्मप्रदेशानामभिघातकलोष्टादिद्रव्यनैकट्यं तेषां तीव्रतरा वेदना, शेषाणां तु मन्दा मन्दतरा । तथेहापि जीवप्रदेशेषु परिस्पन्दात्मकं वीर्यमुपजायमानंकार्यं द्रव्याभ्याशवशतः केषुचित्प्रभूतमन्येषु मन्दमपरेषु तु मन्दतमं भवति । एतच्चैवं जीवप्रदेशानांपरस्परं संबन्धविशेषे सति भवति, नान्यथा, यथा शृंखलावयवानां । तथाहि—तेषां

शृंखलावयवानां परस्परं संबन्धविशेषे सति एकस्मिन्नवयवे परिस्पन्दमानेऽपरेऽप्यवयवाः परिस्पन्दन्ते । केवलं केचित् स्तोकमपरे स्तोकतरमिति । संबन्धविशेषाभावेत्वेकस्मिन् चलति नापरस्यावश्यं यंभावि चलनं, यथा गोपुरुषयोः, तस्मात्कार्यद्रव्याभ्याशवशतो जीवप्रदेशानां परस्परं संबन्धविशेषतश्च वीर्यं जीवप्रदेशेषु केषुचित्प्रभूतमन्येषु स्तोकमपरेषु तु स्तोकतरमित्येवं वैषम्येणोपजायमानं न विरुध्यत इति ॥ ४ ॥

तदेवं वीर्यं प्रतिपाद्य संप्रत्यस्यैव जघन्याजघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टत्वपरिज्ञापनाय प्ररूपणां चिकीर्षुरिमानर्थाधिकारानाह—

अविभागवग्गफड्डगअंतरठाणं अणंतरोवणिहा । जोगे परंपरावुड्ढिसमयजीवप्पबहुगं च ॥ ५ ॥

+ (य०उ०२) ननु यत्प्रदेशावच्छेदेन लोष्टाद्यभिघातस्तत्प्रदेशावच्छेदेन वेदनोत्कर्ष इति संभवति, तस्य तद्धेतुत्वात्। यत्प्रदेशावच्छेदेन घटाद्युत्पाटनक्रिया तत्प्रदेशावच्छेदेन तद्वीर्योत्कर्ष इति तु न संभवति, तस्यास्तदहेतुत्वात्, प्रत्युतघटोत्पाटनेच्छाजनितघटोत्पाटनाप्रवृत्त्यात्मकवीर्येणैव घटोत्पाटनक्रियोत्पत्तेरिति कार्यद्रव्यनैकट्याद्वीर्योत्कर्ष इत्ययुक्तमिति चेन्न, औदारिकादिवर्गणाग्रहणाद्याश्रयस्य वीर्यस्यैवात्राधिकृतत्वात्, तदुत्कर्षे च कार्यद्रव्यनैकट्यस्यैव हेतुत्वात्, एकप्रदेशा हि ता ग्रहणादिगोचरमायान्ति, ततो येषु प्रदेशेषु ताः साक्षात्सन्निहितास्तेषु तद्ग्रहणादिवीर्योत्कर्षः,परंपरासन्निहितेषु तु तदपकर्षो,बाह्यप्रयत्नस्य तदवयवावच्छिन्नोत्कर्षे तु तदवयवावच्छिन्नक्रियाविशेषेच्छादिनियामकं,प्रदेशान्तरेषु तद्वैषम्ये च तत्सम्बन्धवैषम्यमिति न कोऽपि दोष इति यथागमं भावनीयं कृतं प्रसङ्गेन ॥

गाथार्थः—जोगे=योगने विषे, अविभाग=अविभागप्ररूपणा, वग्ग=वर्गप्ररू०, फड्डग=स्पर्धकप्ररू०, अंतर=अन्तरप्ररू०, ठाणं=स्थानप्ररू०, अणंतरोवणिहा=अनन्तरोपनिधा परू०, परंपरा=परम्परोपनिधाप्ररू०, वुड्ढि=वृद्धिप्ररू०, समय=समप्ररू०, जीवप्पबहुगं च=अने

अविभागेति–योगे योगविषये । प्रथमतोऽविभागप्ररूपणा कार्या १ । ततो वर्गणाप्ररूपणा २ । ततः स्पर्धकस्य प्ररूपणा ३ । तदनन्तरमन्तरप्ररूपणा ४ । ततः स्थानप्ररूपणा ५ । ततोऽनन्तरोपनिधा ६ । ततः परंपरोपनिधा ७ । तदनन्तरं वृद्धिप्ररूपणा ८ । ततः समयप्ररूपणा ९ । ततो जीवानामल्पबहुत्वप्ररूपणेति १० । तत्र यस्यांशस्य प्रज्ञाच्छेदनकेन विभागः कर्तुं न शक्यते सोऽंशोऽविभाग उच्यते । किमुक्तं भवति ? इह जीवस्य वीर्यं केवलिप्रज्ञाच्छेदनकेन छिद्यमानं छिद्यमानं यदा विभागं न प्रयच्छति, तदा सोऽन्तिमोंऽशोऽविभाग इति ॥ ५ ॥

ते (१) चाविभागा एकैकस्मिन् जीवप्रदेशे यावन्तो भवन्ति तावन्त(त) आह—

पण्णाछेयणछिन्ना, लोगासंखेज्जगप्पएससमा । अविभागा एक्केक्के, होंति पएसे जहन्नेणं ॥ ६ ॥

पण्णेति–प्रज्ञाच्छेदनकेन छिन्नाः सन्तो ये वीर्यस्याविभागा जातास्ते एकैकस्मिन् जीवप्रदेशे चिन्त्यमाना जघन्येनाप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा भवन्ति । उत्कर्षतोऽप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा एव । किं तु ते जघन्यपदभाविवीर्याविभागापेक्षयाऽसंख्येयगुणा द्रष्टव्या इति ॥ ६ ॥

उक्ताऽविभागप्ररूपणा, संप्रति (२) वर्गणाप्ररूपणामाह—

जेसिं पएसाण समा, अविभागा सव्वतो य थोवतमा । ते वग्गणा जहन्ना, अविभागाहिया परंपरओ॥७॥

जीव संबन्धि अल्पबहुत्वप्ररूपणा. ५ एक्केक्के पएसे=जीवना एक एक प्रदेशमां, जहन्नेणं=जघन्यथी, पन्नाछेयणछिन्ना=सर्वज्ञनी बुद्धिरूपी शस्त्रवडे छेदाएला, अविभागा=अविभागो, लोगासं०=असंख्य लोकाकाश प्रदेश प्रमाण छे. ६ जेसिं=जे, पएसाण=

जेसिमिति–येषां जीवप्रदेशानां समास्तुल्यसंख्या वीर्याविभागा भवन्ति । सर्वतश्च सर्वेभ्योऽपि चान्येभ्योऽपि जीवप्रदेशगतवीर्याविभागेभ्यः स्तोकतमाः । ते जीवप्रदेशा घनीकृतलोकासंख्येयभागवर्त्यसंख्येयप्रतरगतप्रदेशराशिप्रमाणाः समुदिता एका वर्गणा । सा च जघन्या, स्तोकाऽविभागयुक्तत्वात् । अविभागाधिका परंपरत इति, ततः परा वर्गणा एकैकेनाविभागेनाधिका वक्तव्या । तद्यथा–जघन्यवर्गणातः परे ये जीवप्रदेशा एकेन वीर्याविभागेनाभ्यधिका घनीकृतलोकासंख्येयभागवर्त्यसंख्येयप्रतरगतप्रदेशराशिप्रमाणा वर्तन्ते, तेषां समुदायो द्वितीया वर्गणा । ततः परं द्वाभ्यां वीर्याविभागाभ्यामधिकानामुक्तसंख्याकानामेव जीवप्रदेशानां समुदायस्तृतीया वर्गणा । ततोऽपि त्रिभिर्वीर्याविभागैरधिकानां तावत्संख्याकानामेव जीवप्रदेशानां समुदायश्चतुर्थी वर्गणा । एवमेकैकवीर्याविभागवृद्ध्या वर्धमानानां तावतां तावतां जीवप्रदेशानां समुदायरूपा वर्गणा असंख्येया वक्तव्या इति ॥ ७ ॥

ताश्च कियत्य इति तन्निरूपणार्थं (३) स्पर्धकप्ररूपणामाह—

सेढिअसंखिअमित्ता, फड्डगमेत्तो अणंतरा नत्थि। जाव असंखा लोगा, तो बीयाई य पुव्वसमा ॥ ८॥

सेढीति–इह घनीकृतस्य लोकस्य या एकैकप्रदेशपंक्तिरूपा श्रेणिरतस्याः श्रेणेरसंख्येयतमे भागे यावन्त आकाशप्रदेशास्तावन्मात्रास्तावत्प्रमाणा यथोक्तस्वरूपा वर्गणाः समुदिता एकं स्पर्धकं, स्पर्धन्त इवोत्तरोत्तरवृद्ध्या वर्गणा अत्रेति स्पर्धकं ।

प्रदेशोना, समा अविभागा=अविभागो सरखा, सव्वतो य थोवतमा=अने सर्वथी थोडा, ते=ते प्रदेशोनी, वग्गणा जहन्ना=जघन्य वर्गणा, अधिभागहिया=एकेक अविभागे वधती, परंपरओ=परंपराए वर्गणाओ छे. ७ सेढि०त्ता=श्रेणिना असंख्यातमा

कृद्बहुलमिति (श्रीम- कृ. १-११) वचनादधिकरणे वुञ् । उक्ता स्पर्धकप्ररूपणा । सांप्रत (४) मन्तरप्ररूपणामाह- 'एत्तो अणंतरा नत्थि' इतः पूर्वोक्तस्पर्धकगतचरमवर्गणायाः परतो जीवप्रदेशा अनन्तरा न सन्ति । किमुक्तं भवति ? इत ऊर्ध्वमेकैकवीर्याविभागवृद्ध्या निरन्तरं वर्धमाना जीवप्रदेशा न लभ्यन्ते, किं तु सान्तरा एव । तथाहि-पूर्वोक्तस्पर्धकगतचरमवर्गणायाः परतो जीवप्रदेशा नैकेन वीर्याविभागेनाधिकाः प्राप्यन्ते, नापि द्वाभ्यां, नापि त्रिभिः, नापि चतुर्भिः, यावन्नापि संख्येयैः, किं त्वसंख्येयैरेवासंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणैरभ्यधिकाः प्राप्यन्ते । ततस्तेषां समुदायो द्वितीयस्य स्पर्धकस्य प्रथमा वर्गणा । 'तो बीयाई य पुव्वसम त्ति' ततो द्वितीयस्पर्धकप्रथमवर्गणातः परतो द्वितीयादयो वर्गणाः पूर्वसमाः पूर्वस्पर्धकस्येव वक्तव्या इत्यर्थः । तथाहि-प्रथमवर्गणाया परतो जीवप्रदेशानामेकेन वीर्याविभागेनाधिकानां समुदायो द्वितीया वर्गणा । द्वाभ्यां वीर्याविभागाभ्यामधिकानां समुदायस्तृतीया वर्गणा । एवं तावद्वाच्यं यावत् श्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणा वर्गणा भवन्ति, तासां च समुदायो द्वितीयं स्पर्धकं । ततः परं पुनरप्येकेन वीर्याविभागेनाधिका जीवप्रदेशा न लभ्यन्ते, नापि द्वाभ्यां, नापि त्रिभिः, यावन्नापि संख्येयैः, किं त्वसंख्येयैरेवासंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणैरभ्यधिकाः प्राप्यन्ते, ततस्तेषां समुदायस्तृतीयस्य स्पर्धकस्य प्रथमा वर्गणा । तत एकैकवीर्याविभागवृद्ध्या द्वितीयादयो वर्गणास्तावद्वाच्या यावच्छ्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणा भवन्ति, तासां च समुदायस्तृतीयं स्पर्धकं । एवमसंख्येयानि स्पर्धकानि वाच्यानीति ॥ ८ ॥

भाग प्रमाण वर्गणाओनुं, फड्डगं=स्पर्धक थाय छे. एत्तो=अहींथी, जाव असंखा लोगा=असंख्यात लोकाकाश प्रदेश सुधी, अणंतरा नत्थि=अनंतर वर्गणाओ नथी, तो० त्यारपछी, बीयाई य=द्वितीयादिक स्पर्धकनी वर्गणाओ, पुव्वसमा-प्रथम स्पर्धक पेठे छे. ८

तदेवं कृताऽन्तरप्ररूपणा, संप्रति (५) स्थानप्ररूपणां करोति—

सेढिअसंखिअमेत्ताइं, फड्डगाइं जहन्नयं ट्ठाणं। फड्डगपरिवुड्ढिअओ, अंगुलभागो असंखतमो ॥ ९ ॥

सेढीति–इह पूर्वोक्तानि स्पर्धकानि श्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणानि जघन्यं योगस्थानं भवन्ति। एतच्च सूक्ष्मनिगोदस्य सर्वाल्पवीर्यस्य भवप्रथमसमये वर्त्तमानस्य प्राप्यते। ततोऽन्यस्य जीवस्याधिकतरवीर्यस्य येऽल्पतरवीर्या जीवप्रदेशास्तेषां समुदायः प्रथमा वर्गणा। तत एकेन वीर्याविभागेन वृद्धानां समुदायो द्वितीया वर्गणा। द्वाभ्यां वीर्याविभागाभ्यामधिकानां समुदायस्तृतीया वर्गणा। त्रिभिर्वीर्याविभागैरधिकानां समुदायश्चतुर्थी वर्गणा। एवं तावद्वाच्यं यावच्छ्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणा भवन्ति। तासां समुदायः प्रथमं स्पर्धकं। ततः प्राक्तनयोगस्थानप्रदर्शितप्रकारेण द्वितीयादीन्यपि स्पर्धकानि वाच्यानि। तानि च तावद्वाच्यानि यावच्छ्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणानि भवन्ति, ततस्तेषां समुदायो द्वितीयं योगस्थानं। ततोऽन्यस्य जीवस्याधिकतमवीर्यस्योपदर्शितप्रकारेण तृतीयं योगस्थानं वाच्यं। एवमन्यान्यजीवापेक्षया तावद्योगस्थानानि वाच्यानि यावत्सर्वोत्कृष्टं योगस्थानं भवति। इह द्वितीये योगस्थाने प्रथमे स्पर्धके प्रथमवर्गणायां जीवप्रदेशाः प्रथमयोगस्थानचरमस्पर्धकचरमवर्गणागतवीर्याविभागापेक्षया असंख्येयैर्वीर्याविभागैरधिकाः प्राप्यन्ते। तृतीयेऽपि योगस्थाने प्रथमस्पर्धके प्रथमवर्गणायां जीवप्रदेशा द्वितीययोगस्थानचरमस्पर्धकचरमवर्गणागत-

---

गाथार्थः–सेढिअसंखिअमेत्ताइं=श्रेणिना असंख्यातमा भाग प्रमाण, फड्डगाइं=स्पर्धकोनुं, जहन्नयं ठाणं=जघन्य स्थान थाय छे. फड्डगपरिवुड्ढिअओ=आगळना सर्व योगस्थानमां स्पर्धकनी वृद्धि, अंगुलभागो असंखतमो=अंगुलना असंख्यातमा भाग प्रमाण छे. ९

वीर्याविभागापेक्षयाऽसंख्येयैर्वीर्याविभागैरधिकाः प्राप्यन्ते । एवं सर्वेष्वपि द्रष्टव्यं । तानि च योगस्थानानि सर्वाण्यपि कियन्ति भवन्तीति चेदुच्यते–श्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणानि । ननु जीवानामनन्तत्वात्प्रतिजीवं च योगस्थानस्य प्राप्यमाणत्वादनन्तानि योगस्थानानि प्राप्नुवन्ति, कथमुच्यते श्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशप्रमाणानीति ? नैष दोषः, यत एकैकस्मिन् योगस्थाने सदृशे सदृशे वर्तमानाः स्थावरजीवा अनन्ताः प्राप्यन्ते । ततः सर्वजीवापेक्षयापि सर्वाणि योगस्थानानि केवलिप्रज्ञया परिभाव्यमानानि यथोक्तप्रमाणान्येव प्राप्यन्ते, नोना(ततो ना)धिकानीति । कृता स्थानप्ररूपणा ।

सांप्रत(६)मनन्तरोपनिधावसरः । तत्रोपनिधानमुपनिधा । धातूनामनेकार्थत्वान्मार्गणमित्यर्थः । तदेवाह–फड्डुगेत्यादि । अतः प्रथमाद्योगस्थानात् द्वितीयादिषु योगस्थानेषु प्रत्येकं स्पर्धकानां परिवृद्धिरंगुलभागोऽसंख्येयतमः, अंगुलमात्रक्षेत्रसत्केऽसंख्येयतमे भागे यावान् प्रदेशराशिस्तावत्प्रमाणानि पूर्वपूर्वयोगस्थानगतस्पर्धकापेक्षयोत्तरस्मिन्नुत्तरस्मिन् योगस्थाने स्पर्धकान्यधिकानि भवन्तीत्यर्थः । कथमेवं ज्ञा(जा)यत इति चेदुच्यते–इह प्रथमयोगस्थानगतवर्गणापेक्षया द्वितीययोगस्थानगतवर्गणा मूलत एव सर्वा अपि हीनहीनतरजीवप्रदेशा भवन्ति, प्रभूतप्रभूततरवीर्याणां जीवप्रदेशानां स्तोकस्तोकतरतया प्राप्यमाणत्वात् । ततोऽत्र विचित्रवर्गणाबाहुल्यसंभवतो यथोक्तं स्पर्धकबाहुल्यमुपपद्यत एव । एवमुत्तरोत्तरेष्वपि योगस्थानेषु पूर्वपूर्वयोगस्थानगतस्पर्धकापेक्षया स्पर्धकबाहुल्यं परिभावनीयमिति ॥ ९ ॥

तदेवं कृताऽनन्तरोपनिधा, सांप्रतं (७) परंपरोपनिधाया अवसरः, तत्र परंपराया उपनिधा मार्गणं परंपरोपनिधा, तां चिकीर्षुराह—

सेढिअसंखियभागं, गंतुं गंतुं हवंति दुगुणाइं । पल्लासंखियभागो, नाणागुणहाणिठाणाणि ॥ १० ॥

सेढीति—प्रथमाद्योगस्थानादारभ्य श्रेणेरसंख्येयतमे भागे यावन्त आकाशप्रदेशास्तावन्मात्राणि योगस्थानानि गत्वा गत्वाऽतिक्रम्यातिक्रम्य यद्यत्परं योगस्थानं तत्र तत्र पूर्वयोगस्थानापेक्षया स्पर्धकानि द्विगुणानि भवन्ति । एतदुक्तं भवति—प्रथमे योगस्थाने यावन्ति स्पर्धकानि भवन्ति तदपेक्षया श्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणानि योगस्थानान्यतिक्रम्यानन्तरे योगस्थाने द्विगुणानि स्पर्धकानि भवन्ति । ततः पुनरपि ततो योगस्थानात्परतस्तावन्ति योगस्थानान्युल्लंघ्यापरस्मिन् योगस्थाने द्विगुणानि स्पर्धकानि प्राप्यन्ते । एवं भूयो भूयस्तावद्वाच्यं यावदन्तिमं योगस्थानं । कियन्ति पुनर्योगस्थानानि पूर्वपूर्वयोगस्थानापेक्षया द्विगुणद्विगुणस्पर्धकानि भवन्त्यत आह—'पल्लासंखियभागो'त्ति सूक्ष्मस्याद्धापल्योपमस्यासंख्येयतमे भागे यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणानि द्विगुणवृद्धिस्थानानि भवन्ति । 'नाणागुणहाणिठाणाणि'त्ति नानारूपाणि यानि गुणहानिस्थानानि द्विगुणहानिस्थानानि तान्यपि पल्योपमासंख्येयभागगतसमयप्रमाणानि भवन्ति । तथाहि—उत्कृष्टाद्योगस्थानादारभ्याधोऽधोऽवतरणे सति यदा श्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणानि योगस्थानान्युल्लंघितानि भवन्ति, तदाऽनन्तरेऽधस्तने योगस्थानेऽन्तिमयोगस्थानगतस्पर्धकापेक्षयाऽर्धानि स्पर्धकानि प्राप्यन्ते । ततः पुनरपि श्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणेषु योगस्थानेष्वतिक्रान्तेष्वधस्तने योगस्थानेऽर्धानि प्राप्यन्ते । एवं तावद्वाच्यं यावज्जघन्यं योगस्थानमिति द्विगुणवृद्धिस्थानतुल्यानि

गाथार्थः—सेढि असंखिय भागं=श्रेणिना असंख्यातमा भाग प्रमाण (योगस्थानको) गंतुं गंतुं=ओळंगतां ओळंगतां (आवता योगस्थानकोमां स्पर्धको) दुगुणाइं हवंति=बमणां बमणां थाय छे. नाणा०ठाणाणि=द्विगुणवृद्धि ने हानिनां स्थानको. पल्लासंखियभागो=पल्योपमना

द्विगुणहानिस्थानानि । यानि चामूनि द्विगुणवृद्धिस्थानानि द्विगुणहानिस्थानानि वा तानि सर्वस्तोकानि। तेभ्यः पुनरेकस्मिन् द्विगुणवृद्धिस्थानयोर्द्विगुणहानिस्थानयोर्वाऽन्तरे यानि योगस्थानानि तान्यसंख्येयगुणानि इति ॥ १० ॥

तदेवं कृता परंपरोपनिधा, (८) सांप्रतं वृद्धिप्ररूपणां चिकीर्षुराह—

वुड्ढीहाणिचउक्कं, तम्हा कालोत्थ अंतिमल्लीणं। अंतोमुहुत्तमावलि–असंखभागो य सेसाणं ॥११॥

+ (य०उ०३) ननु द्विगुणानां हानिर्द्विगुणहानिरित्यर्थोऽर्द्धहानावनुपपन्न इति चेत्सत्यं, तत्तद्विगुणवृद्ध्यवधिसमाप्त्यवच्छिन्नहानेरेवेह द्विगुणहानेर्विवक्षितत्वात्, एतत्सूचार्थमेव सूत्रे नानेति पदं ।

वुड्ढीति–क्षयोपशमो हि वीर्यान्तरायस्य क्वचित्कदाचित्कथंचिद्भवतीति तन्निबन्धनानि योगस्थानानि कदाचित्प्रवर्धमानानि भवन्ति कदाचिद्धीयमानानि । तत्र वृद्धिश्चतुर्धा, तद्यथा–असंख्येयभागवृद्धिः,(१) संख्येयभागवृद्धिः,(२) संख्येयगुणवृद्धिः,(३) असंख्येगुणवृद्धिः(४)। एवं हानिरपि चतुर्धा, तद्यथा–असंख्येयभागहानिः,(१) संख्येयभागहानिः,(२) संख्येयगुणहानिः(३) असंख्येयगुणहानिः(४)। यस्मादेवं वृद्धिहान्योश्चतुष्कं वर्तते तस्मादत्र प्रत्येकं कालो नियतो वक्तव्यः। तत्रान्तिमयोर्वृद्धिहान्योरसंख्येयगुणलक्षणयोः प्रत्येकं 'कालो त्ति' (कालो)अन्तर्मुहूर्तं। शेषाणां त्वाद्यानां तिसृणां वृद्धीनां हानीनां चावलिकाया असंख्ये-

असंख्यातमा भाग प्रमाण छे. १० वुड्ढिहाणिचउक्कं=(योगस्थानोनी) वृद्धि हानि चार प्रकारनी छे. तम्हा=ते माटे, अत्थ=अहीं, अंतिमल्लीणं=अन्त्यनी (वृद्धिहानि)नो, कालो=काल, अंतोमुहुत्तं=अन्तर्मुहूर्त प्रमाण, य=अने, सेसाणं=बाकीनी त्रणनो, आवलिअसंखभागो= आवलिना असंख्यातमा भाग प्रमाण छे. ११

यभागमात्रः । एतदुक्तं भवति–तथाविधक्षयोपशमभावतो विवक्षितात् योगस्थानात् प्रतिसमयमपरस्मिन्नपरस्मिन्नसंख्येयगुणवृद्धे योगस्थाने यद्वर्तते जीवः साऽसंख्येयगुणवृद्धिः । यत्पुनः क्षयोपशमस्य मन्दमन्दतमभावतः प्रतिसमयमपरस्मिन्नसंख्येयगुणहीने योगस्थाने वर्तते साऽसंख्येयगुणहानिः । सा चासंख्येयगुणवृद्धिरसंख्येयगुणहानिर्वोत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्तं कालं यावन्निरन्तरं भवति। आद्याः पुनस्तिस्रो वृद्धयो हानयो वोत्कर्षत आवलिकाया असंख्येयभागमात्रं कालं, जघन्यतस्तु चतस्रोऽप्येकं द्वौ वा समयौ यावद् भवन्ति ॥ ११ ॥

स्यादेतत्, कियन्तं कालं यावत्पुनर्यथोक्तवृद्धिहानिरहिता जीवा योगस्थानेष्ववस्थिताः प्राप्यन्त इति प्रश्नावकाशमाशंक्य (९) समयप्ररूपणामाह—

चउराई जावट्ठग–मित्तो जाव दुगं ति समयाणं । पज्जत्तजहन्नाओ, जावुक्कोसं ति उक्कोसो ॥१२॥

चउराईति–चत्वार आदिर्यस्याः सा चतुरादिः समयानामवस्थितिकालनियामकानां वृद्धिः, सा च तावद्वाच्या यावदष्टकं। इत ऊर्ध्वं पुनः समयानां हानिर्वक्तव्या, सा च तावद्यावद्द्विकं । सा च चतुरादिका वृद्धिः 'पर्याप्तजघन्यात्' पर्याप्तसूक्ष्मनिगोदसत्कजघन्ययोगस्थानादारभ्य तावदवसेया यावदष्टकं । ततः परं हानिः, सापि तावद्यावदुत्कृष्टं योगस्थानं । एष उत्कृष्टोऽवस्थितिकालः । एतदुक्तं भवति–पर्याप्तसूक्ष्मनिगोदस्य सर्वाल्पवीर्यस्य सत्काज्जघन्याद्योगस्थानादारभ्य क्रमेण यानि योगस्थानानि श्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणानि तान्युत्कर्षतश्चतुरः समयान् यावदवस्थितानि प्राप्यन्ते । ततः परं यानि योग-

---

गाथार्थः–पज्जत्तजहन्नाओ=पर्याप्त (सूक्ष्मनिगोद) ना जघन्य योगस्थानथी, जावुक्कोसंति=उत्कृष्ट योगस्थान सुधीनां योगस्थानोनो, उक्को-

स्थानानि श्रेण्यसङ्ख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणानि तान्युत्कर्षतः पञ्च समयान् , ततः परं यानि योगस्थानानि पूर्वोक्तप्रमाणानि तान्युत्कर्षतः षट् समयान् । ततोऽ(ऽपि)पराणि यानि योगस्थानानि पूर्वोक्तप्रमाणानि तान्युत्कर्षतः सप्त समयान्। ततोऽपि पराणि यानि क्रमेण योगस्थानानि पूर्वोक्तसंख्याकानि तान्युत्कर्षतोऽष्टौ समयान् । ततः पराणि पुनर्यानि क्रमेण योगस्थानानि श्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणान्येव तान्युत्कर्षतः सप्त समयान् यावदवस्थितानि प्राप्यन्ते । तदनन्तरं यथोक्तसंख्याकान्येव योगस्थानान्युत्कर्षतः षट् समयान् । ततोऽपि पराणि यथोक्तप्रमाणान्येव योगस्थानानि पञ्च समयान् । एवं तावद्वाच्यं यावदन्तिमानि श्रेण्यसंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणान्युत्कर्षतो द्वौ समयौ यावदवस्थितानि प्राप्यन्ते ॥ १२ ॥

तदेवमुक्तमुत्कृष्टमवस्थानकालमानं, सांप्रतं जघन्यमवस्थानकालमानमाह—

एगसमयं जहन्नं ठाणाणप्पाणि अट्ठ समयाणि। उभओ असंखगुणियाणि समयसो ऊण ठाणाणि ॥१३॥

एगेति–सर्वेषामुक्तस्वरूपाणां योगस्थानानां जघन्यत एकसमयं यावदवस्थानं । तथा यान्यप्यपर्याप्तसूक्ष्मनिगोदयोग्यान्यसंख्येयानि योगस्थानानि पूर्वमनुक्तकालनियमानि तेषां (तेषामपि) जघन्यत उत्कर्षतो वा एकं समयं यावदवस्थानं । यतः सर्वोऽप्यपर्याप्तोऽपर्याप्तावस्थायां वर्तमानःप्रतिसमयमसंख्येयगुणरूपया योगवृद्ध्या वर्धते,ततस्तद्योगस्थानानामजघन्योत्कृष्टकमेकमेव समयं यावदवस्थानं । तदेवमुक्ता समयप्ररूपणा, सांप्रतमेतेषामेव चतुरादिसमयानां योगस्थानानामल्पबहुत्वमाह–ठाणाणी-

सो=उत्कृष्ट काल, चउराइ जावट्ठगं=चार समयथी आठ समय सुधी, इत्तो=अहींथी (८ समयथी) घटतो, जाव दुगंति समयाणं= यावत् बे समय सुधी. १२ गाथार्थः—जहन्नं=(सर्वे योगस्थानोनो) जघन्य काल, एग समयं=एक समयनो छे. अट्ठ समयाणि

त्यादि। अष्टसामयिकानि स्थानानि योगस्थानानि, (अल्पानि शेष) सप्तसामयिकादियोगस्थानानि प्रतीत्य स्तोकान्येव प्राप्यन्ते इति कृत्वा, तेभ्यः प्रत्येकसमय(प्रत्येक)मसंख्येयगुणानि पूर्वोत्तररूपोभयपार्श्ववर्तीनि सप्तसामयिकानि, अल्पतरस्थितिकत्वात्। स्वस्थाने तु तानि द्वयान्यपि परस्परं तुल्यानि। तेभ्योऽप्यसंख्येयगुणानि उभयपार्श्ववर्तीनि षट्सामयिकानि, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यानि। तेभ्योऽप्यसंख्येयगुणानि पञ्चसामयिकानि उभयपार्श्ववर्तीनि, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यानि। तेभ्योऽप्यसंख्येयगुणानि चतुःसामयिकानि उभयपार्श्ववर्तीनि, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यानि। तेभ्योऽप्यसंख्येयगुणानि त्रिसामयिकानि, तेभ्योऽप्यसंख्येयगुणानि द्विसामयिकानि। 'समयसो ऊणठाणाणि त्ति' समयशः समयेन समयेन ऊनानि अष्टसामयिकेभ्यो व्यतिरिक्तानि सप्तसामयिकादीनि स्थानानि योगस्थानानि ॥ १३ ॥

तदेवमुक्तं चतुरादिसमयानां योगस्थानानामल्पबहुत्वं, संप्रति तेषु योगस्थानेषु वर्तमानानां सूक्ष्मबादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्तापर्याप्तानां जघन्योत्कृष्टयोगविषये(१०)ऽल्पबहुत्वमभिधित्सुराह—

सव्वत्थोवो जोगो साहारणसुहुमपढमसमयम्मि। बायरबियतियचउरमणसन्नपज्जत्तगजहन्नो ॥ १४ ॥

ठाणाणप्पाणि=अष्टसामयिक योगस्थानो अल्प, उभओ=बंने तरफनां,समयसो ऊण ठाणाणि=समय समय घटती स्थितिनां स्थानको असंखगुणियाणि=असंख्य गुणां छे. १३ साहा० म्मि=(अपर्याप्ता) साधारण सूक्ष्म वनस्पतिकायनो प्रथम समयमां, सव्वत्थोवो जोगो =सर्वथी अल्प योग, बायर० जहन्नो=(तेथी अनुक्रमे) बादर एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइंद्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञि पंचेन्द्रिय अने संज्ञि पंचेन्द्रिय ए छ अपर्याप्तानो जघन्य योग असंख्यातगुणो होय छे. १४

असत्कल्पनाद्वारा योगस्थाननी समजुती.

१ एक जीवना प्रदेशो असंख्याता (लोकाकाश प्रदेश प्रमाण) छे. पण असत्कल्पनाए १२०००

२ जघन्यथी असंख्य लोकाकाश प्रदेश प्रमाण वीर्य अविभागवाळा आत्मप्रदेशो होय अने उत्कृष्टथी पण असंख्य लोकाकाश प्रदेश प्रमाण वीर्य अविभागवाळा आत्मप्रदेशो होय पण असत्कल्पनाए जघन्यथी १ क्रोड १, अने उत्कृष्टथी घणा क्रोड सुधी जाणवा.

३ जघन्य वीर्याविभागवाळा आत्म प्रदेशो घनीकृत लोकना असंख्येय भागवर्ती असंख्येय प्रतरगत प्रदेशराशि प्रमाण होय पण असत्कल्पनाए ७०० होय.

४ श्रेणिना असंख्यातमा भाग प्रमाण वर्गणाओनु एक स्पर्धक थाय छे पण असत्क० ४ वर्गणाओनुं स्पर्धक गणवुं.

५ श्रेणिना असंख्यातमा भाग प्रमाण स्पर्धकनुं एक योगस्थान थाय छे. असत्कल्पनाए प्रथम योगस्थान ६ स्पर्धकनुं जाणवुं. अधिक अधिक वीर्यवाळा योगस्थानमां स्पर्धको अंगुलना असंख्यातमा भाग प्रमाण वधता वधता जाणवा. कारण के अधिक अधिक वीर्यवाळा आत्म प्रदेशो हीन हीन होय तेथी तेमां वर्गणा तथा स्पर्धको अधिक अधिक होय. अहीं असत्कल्पनाए जणावाता स्थानमां एक एक स्पर्धक बधे ते अंगुलना असंख्यातमा भाग प्रमाण समजवुं.

६ प्रथम योगस्थानना अन्त्य स्पर्धकनी अन्त्य वर्गणामां जेटला वीर्याविभागो छे तेनाथी द्वितीय योगस्थाननी प्रथम स्पर्धकनी प्रथम वर्गणामां असंख्यातगुणा वीर्याविभागो छे. पण अहीं असत्कल्पनाए ते लगभग त्रण गुणा लीधा छे.

१ लुं योगस्थानक. (असत्कल्पनाए)

प्रथम स्पर्धक.

१ क्रोड	१	वीर्याविभागवाळा	७००	आत्मप्रदेशनी	१ ली वर्गणा.
,,	२	,,	६७०	,,	२ जी ,,
,,	३	,,	६३०	,,	३ जी ,,
,,	४	,,	६००	,,	४ थी ,,

ए प्रमाणे प्रथम स्पर्धकमां कुल २६०० आत्मप्रदेशो ४ वर्गणा.

२ जुं स्पर्धक

२ क्रोड	१ वीर्या०	५८०	आत्म प्र० नी	१ ली वर्गणा.
,,	२ ,,	५७०	,,	२ जी ,,
,,	३ ,,	५६०	,,	३ जी ,,
,,	४ ,,	५५०	,,	४ थी ,,

ए प्रमाणे २ जा स्पर्ध० २२८० आत्मप्रदेशो ४ वर्गणा.

३ जुं स्पर्धक

३ क्रोड	१ वी०	५२०	आ० प्र० नी	१ ली वर्गणा
,,	२ ,,	५१०	,,	२ जी ,,
,,	३ ,,	५००	,,	३ जी ,,
,,	४ ,,	४९०	,,	४ थी ,,

२०२० आत्म प्र० ४ वर्गणा

४ थुं स्पर्धक

४ क्रोड	१ वी०	४८०	आ० प्र०	१ ली वर्गणा
,,	२ ,,	४७०	,,	२ जी ,,
,,	३ ,,	४६०	,,	३ जी ,,
,,	४ ,,	४५०	,,	४ थी ,,

१८६० ४ वर्गणा.

५ मुं. स्पर्धक

५ क्रोड	१ वी०	४४०	आ० प्र०	१ ली वर्गणा
,,	२ ,,	४३०	,,	२ जी ,,
,,	३ ,,	४२०	,,	३ जी ,,
,,	४ ,,	४१०	,,	४ थी ,,

१७०० ४ वर्गणा.

६ ठुं स्पर्धक.

६ क्रोड	१ वी०	४००	आ० प्र०	१ ली वर्गणा
,,	२ ,,	३९०	,,	२ जी ,,
,,	३ ,,	३८०	,,	३ जी ,,
,,	४ ,,	३७०	,,	४ थी ,,

१५४० ४ वर्गणा.

२ जुं योगस्थानक (असत्क०)

१ लुं स्पर्धक

वीर्या०	आ० प्र०	वर्गणा.
१८ क्रो०१	५८०	१
,, २	५७०	२
,, ३	५६०	३
,, ४	५५०	४
	२२८०	४वर्ग०

२ जुं स्पर्धक

वीर्या०	आ० प्रा०	वर्ग०
१९ क्रो०१	५२०	१
,, २	५१०	२
,, ३	५००	३
,, ४	४९०	४
	२०२०	४ वर्ग०

३ जुं स्पर्धक

वीर्या०	आ० प्र०	वर्ग०
२० क्रो०१	४८०	१
,, २	४७०	२
,, ३	४६०	३
,, ४	४५०	४
	१८६०	४ वर्ग०

४ थुं स्पर्धक

वीर्या०	आ० प्र०	वर्ग०
२१ क्रो० १	४४०	१
,, २	४३०	२
,, ३	४२०	३
,, ४	४१०	४
	१७००	४वर्ग०

५ मुं स्पर्धक

वीर्या०	आ० प्र०	वर्ग०
२२ क्रो०१	४००	१
,, २	३९०	२
,, ३	३८०	३
,, ४	३७०	४
	१५४०	४वर्ग०

६ ठुं स्पर्धक

वीर्या०	आ० प्र०	वर्ग०
२३ क्रो० १	३६०	१
,, २	३५०	२
,, ३	३४०	३
,, ४	३३०	४
	१३८०	४ वर्ग०

७ मुं स्पर्धक

वीर्या०	आ० प्र०	वर्ग०
२४ क्रो०१	३२०	१
,, २	३१०	२
,, ३	३००	३
,, ४	२९०	४
	१२२०	४ वर्ग०

३ जुं योगस्थानक. (असत्क०)

१ लुं स्पर्धक

वीर्या०	आ० प्र०	वर्ग०
७२ क्रो०१	५२०	१
,, २	५१०	३
,, ३	५००	४
,, ४	४९०	२
	२०२०	४ व०

२ जुं स्पर्धक

वीर्या०	आ० प्र०	वर्ग०
७३ क्रो०१	४८०	१
,, २	४७०	२
,, ३	४६०	३
,, ४	४५०	४
	१८६०	४वर्ग०

३ जुं स्पर्धक

वीर्या०	आ० प्र०	वर्ग०
७४ क्रो०१	४४०	१
,, २	४३०	२
,, ३	४२०	३
,, ४	४१०	४
	१७००	४ व०

४ थुं स्पर्धक

वीर्या०	आ० प्र०	वर्ग०
७५ क्रो०१	४००	१
,, २	३९०	२
,, ३	३८०	३
,, ४	३७०	४
	१५४०	४ व०

५ मुं स्पर्धक

वीर्या०	आ० प्र०	वर्ग०
७६ क्रो०१	३६०	१
,, २	३५०	२
,, ३	३४०	३
,, ४	३३०	४
	१३८०	४ व०

६ ठुं स्पर्धक

वीर्या०	आ० प्र०	वर्ग०
७७ क्रो०१	३२०	१
,, २	३१०	२
,, ३	३००	३
,, ४	२९०	४
	१२२०	४ व०

७ मुं स्पर्धक

वीर्या०	आ० प्र०	वर्ग०
७८ क्रो०१	२८९	१
,, २	२८८	२
,, ३	२८७	३
,, ४	२८६	४
	११५०	४ व०

८ मुं स्पर्धक

वीर्या०	आ० प्र०	वर्ग०
७९ क्रो०१	२८४	१
,, २	२८३	२
,, ३	२८२	३
,, ४	२८१	४
	११३०	४ व०

४ थुं योगस्थानक (असत्क०)

१ लुं स्पर्धक

वीर्या०		आ० प्र०	वर्ग०
२४१	क्रो० १	४८०	१
,,	२	४७०	२
,,	३	४६०	३
,,	४	४५०	४
		१८६०	४ व०

२ जुं स्पर्धक

वीर्या०		आ० प्र०	वर्ग०
२४२	क्रो० १	४४०	१
,,	२	४३०	२
,,	३	४२०	३
,,	४	४१०	४
		१७००	४ व०

३ जुं स्पर्धक

वीर्या०		आ० प्र०	वर्ग०
२४३	क्रो० १	४००	१
,,	२	३९०	२
,,	३	३८०	३
,,	४	३७०	४
		१५४०	४ व०

४ थु स्पर्धक

वीर्या०		आ० प्र०	वर्ग०
२४४	क्रो० १	३६०	१
,,	२	३५०	२
,,	३	३४०	३
,,	४	३३०	४
		१३८०	४ व०

५ मुं स्पर्धक

वीर्या०		आ० प्र०	वर्ग०
२४५	क्रो० १	३२०	१
,,	२	३१०	२
,,	३	३००	३
,,	४	२९०	४
		१२२०	४ व०

६ ठुं स्पर्धक

वीर्या०		आ० प्र०	वर्ग०
२४६	क्रो० १	२८९	१
,,	२	२८८	२
,,	३	२८७	३
,,	४	२८६	४
		११५०	४ व०

७ मुं स्पर्धक

वीर्या०		आ० प्र०	वर्ग०
२४७ क्रो०	१	२८४	१
,,	२	२८३	२
,,	३	२८२	३
,,	४	२८१	४
		११३०	४ व०

८ मुं स्पर्धक

वीर्या०		आ० प्रा०	वर्ग०
२४८ क्रो०	१	२६९	१
,,	२	२६८	२
,,	३	२६७	३
,,	४	२६६	४
		१०७०	४ व०

९ मुं स्पर्धक

वीर्या०		आ० प्र०	वर्ग०
२४९ क्रो०	१	२३९	१
,,	२	२३८	२
,,	३	२३७	३
,,	४	२३६	४
		९५०	४व०

प्रथम योगस्थानमां

स्पर्धक	आत्मप्रदेशो	वर्गणा.
१ लुं	२६००	४
२ जुं	२२८०	४
३ थुं	२०२०	४
४ मुं	१८६०	४
५ छुं	१७००	४
६ ठुं	१५४०	४
७ मुं		
८ मुं		
९ मुं		
६	१२०००	२४

बीजा योगस्थानमां

स्पर्धक	आ० प्र०	वर्गणा
१ लुं	२२८०	४
२ जुं	२०२०	४
३ थुं	१८६०	४
४ मुं	१७००	४
५ छुं	१५४०	४
६ ठुं	१३८०	४
७ मुं	१२२०	४
८ मुं		
९ मुं		
७	१२०००	२८

त्रीजा योगस्थानमां

स्पर्धक	आ० प्र०	वर्गणा
१ लुं	२०२०	४
२ जुं	१८६०	४
३ थुं	१७००	४
४ मुं	१५४०	४
५ छुं	१३८०	४
६ ठुं	१२२०	४
७ मुं	११५०	४
८ मुं	११३०	४
९ मुं		
८	१२०००	३२

चोथा योगस्थानमां

स्पर्धक	आ० प्र०	वर्गणा
१ लुं	१८६०	४
२ जुं	१७००	४
३ थुं	१५४०	४
४ मुं	१३८०	४
५ छुं	१२२०	४
६ ठुं	११५०	४
७ मुं	११३०	४
८ मुं	१०७०	४
९ मुं	९५०	४
९	१२०००	३६

सव्वेति—इहासंख्येयगुण इति उत्तरगाथातः संबध्यते । साधारणस्य सूक्ष्मस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्य प्रथमसमये वर्तमानस्य जघन्यो योगः सर्वस्तोकः१। ततो बादरैकेन्द्रियस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्य प्रथमसमये वर्तमानस्य जघन्यो योगोऽसंख्येयगुणः२। ततो द्वीन्द्रियस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्य प्रथमसमये वर्तमानस्य जघन्यो योगोऽसंख्येयगुणः ३ । ततस्त्रीन्द्रियस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्य प्रथमसमये वर्तमानस्य जघन्यो योगोऽसंख्येयगुणः ४ । ततश्चतुरिन्द्रियस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्य प्रथमसमये वर्तमानस्य जघन्यो योगोऽसंख्येयगुणः ५ । ततोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्य प्रथमसमये वर्तमानस्य जघन्यो योगोऽसंख्येयगुणः ६ । ततः संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्य प्रथमसमये वर्तमानस्य जघन्यो योगोऽसंख्येयगुणः ७ ॥ १४ ॥

आइदुगुक्कोसो सिं, पज्जत्तजहन्नगेयरे य कमा । उक्कोसजहन्नियरो, असमत्तियरे असंखगुणो ॥ १५ ॥

आईति—आदिद्विकमपर्याप्तसूक्ष्मबादरैकेन्द्रियलक्षणं तस्योत्कृष्टो योगः परिपाट्याऽसंख्येयगुणो वक्तव्यः । तद्यथा—लब्ध्यपर्याप्तकसंज्ञिपञ्चेन्द्रियजघन्ययोगात् सूक्ष्मनिगोदस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्यैवोत्कृष्टो योगोऽसंख्येयगुणः ८ । ततोऽपि बादरैकेन्द्रियस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्योत्कृष्टोऽसंख्येयगुणः ९ । 'सिं पज्जत्तजहन्नगेयरे य कमा' अनयोः सूक्ष्मबादरैकेन्द्रिययोः पर्याप्तयोर्जघन्य इतरश्चोत्कृष्टः क्रमात् क्रमेणासंख्येयगुणो वक्तव्यः । तद्यथा—लब्ध्यपर्याप्तकबादरैकेन्द्रियोत्कृष्टयोगात् सूक्ष्मनिगोदस्य पर्याप्तस्य

गाथार्थः—आइदुगुक्कोसो=तेथी प्रथमना बे जीवभेद (सूक्ष्म एकेन्द्रिय १ बादर एकेन्द्रिय २) नो उत्कृष्ट योग, तेथी सिं=ते बे, पज्जतगजहन्नगेयरे य=पर्याप्तानो वळी जघन्य अने उत्कृष्ट, तेथी असमत्तियरे उक्कोसजहन्नियरो=अपर्याप्ता (पांच)नो उत्कृष्ट, पर्याप्ता (पांच)नो जघन्य अने (ए नो) उत्कृष्ट, कमा=अनुक्रमे, असंखगुणो=असंख्यातगुणो. १५

जघन्यो योगोऽसंख्येयगुणः १० । ततो बादरैकेन्द्रियस्य पर्याप्तकस्य जघन्ययोगोऽसंख्येयगुणः ११ । ततः सूक्ष्मनिगोदस्य पर्याप्तस्योत्कृष्टो योगोऽसंख्येयगुणः १२ । ततोऽपि बादरैकेन्द्रियस्य पर्याप्तस्योत्कृष्टो योगोऽसंख्येयगुणः १३ । 'उक्कोसजहन्नियरो असमत्तियरे असंखगुणो' त्ति असमाप्तोऽपर्याप्तो द्वीन्द्रियादिस्तस्मिन्नुत्कृष्ट इतरस्मिंश्च पर्याप्ते द्वीन्द्रियादौ जघन्य इतरश्चोत्कृष्टः परिपाट्याऽसंख्येयगुणो वक्तव्यः । तद्यथा—पर्याप्तबादरैकेन्द्रियोत्कृष्टयोगात् द्वीन्द्रियस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्योत्कृष्टो योगोऽसंख्येयगुणः १४ । ततस्त्रीन्द्रियस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्योत्कृष्टो योगोऽसंख्येयगुणः १५ । ततश्चतुरिन्द्रियस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्योत्कृष्टो योगोऽसंख्येयगुणः १६ । ततोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्योत्कृष्टो योगोऽसंख्येयगुणः १७ । ततोऽपि संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्योत्कृष्टो योगोऽसंख्येयगुणः १८ । ततो द्वीन्द्रियस्य पर्याप्तकस्य जघन्यो योगोऽसंख्येयगुणः १९ । ततस्त्रीन्द्रियस्य पर्याप्तकस्य जघन्यो योगोऽसंख्येयगुणः २० । ततश्चतुरिन्द्रियस्य पर्याप्तकस्य जघन्यो योगोऽसंख्येयगुणः २१ । ततोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य पर्याप्तकस्य जघन्यो योगोऽसंख्येयगुणः २२ । ततः संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य पर्याप्तकस्य जघन्यो योगोऽसंख्येयगुणः २३ । ततो द्वीन्द्रियस्य पर्याप्तकस्योत्कृष्टो योगोऽसंख्येयगुणः २४ । ततस्त्रीन्द्रियस्य पर्याप्तकस्योत्कृष्टो योगोऽसंख्येयगुणः २५ । ततोऽपि चतुरिन्द्रियस्य पर्याप्तकस्योत्कृष्टो योगोऽसंख्येयगुणः २६ । पर्याप्तकाश्च सर्वत्रापि करणपर्याप्ता वेदितव्याः ॥ १५ ॥

अमणाणुत्तरगेविज्ज—भोगभूमिगय तइयतणुगेसुं । कमसो असंखगुणिओ सेसेसु य जोगु उक्कोसा॥१६॥

गाथार्थः—अमणा० तणुगेसुं=तेथी असंज्ञी, अनुत्तर, ग्रैवेयक, अकर्मभूमि युगलिक अने तृतीय (आहारक) शरीरीनो, कमसो=अनुक्रमे, असंखगुणिओ=असंख्यातगुणो, सेसेसु य=बाकीना जीवोमां, जोगु उक्कोसा=उत्कृष्ट योग असंख्य गुण छे. १६

अमणेति—'अमण त्ति' अमना असंज्ञी, पर्याप्तचतुरिन्द्रियोत्कृष्टयोगात् असंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकस्योत्कृष्टो योगोऽसंख्येयगुणः २७। ततोऽनुत्तरोपपातिनां देवानामुत्कृष्टो योगोऽसंख्येयगुणः २८। ततो ग्रैवेयकाणां देवानामुत्कृष्टो योगोऽसंख्येयगुणः २९। ततो भोगभूमिजा(गता)नां तिर्यङ्मनुष्याणामुत्कृष्टो योगोऽसंख्येयगुणः ३०। ततोऽप्याहारकशरीरिणामुत्कृष्टो योगोऽसंख्येयगुणः ३१। ततः शेषाणां देवनारकतिर्यङ्मनुष्याणामुत्कृष्टो योगोऽसंख्येयगुणः ३२। असंख्येयगुणकारश्च सर्वत्रापि सूक्ष्मक्षेत्रपल्योपमासंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणो द्रष्टव्यः। 'तइयतणुगेसुं'ति तृतीया तनुराहारकशरीरं ॥१६॥

योगने विषे आवेला १० अधिकारोनी टुंक समजुती.

१ अविभाग प्ररूपणा=जघन्यथी अने उत्कृष्टथी एक जीवप्रदेशे असंख्य लोकाकाश प्रदेश प्रमाण अविभागो (सरखा नहि.)

२ वर्गणा प्ररूपणा=एक एक वर्गणामां घनीकृत लोकना असंख्येय भागवर्ती असंख्य प्रतर प्रमाण आत्मप्रदेशो (सरखा नहि परंतु अविभागे वधती वधती वर्गणामां हीन हीन.

३ स्पर्धक प्ररूपणा=श्रेणिना असंख्यात भाग प्रमाण वर्गणानुं एक स्पर्धक.

४ अन्तर प्ररूपणा=पूर्वस्पर्धकनी चरम वर्गणाथी पछीना स्पर्धकनी प्रथम वर्गणा वच्चे असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण अविभागोनुं अन्तर.

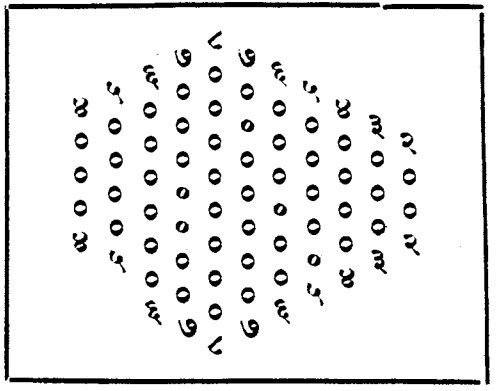
५ स्थान प्ररूपणा=श्रेणिना असंख्यात भाग प्रमाण स्पर्धकनुं एक स्थान एवा योगस्थानो पण श्रेणिना असंख्यातमा भाग प्रमाण.

६ अनन्तरोपनिधा प्ररूपणा=पूर्व पूर्व स्थान करतां उत्तरोत्तर स्थानमां अंगुलना ससंख्यातमा भाग प्रमाण स्पर्धक वृद्धि.

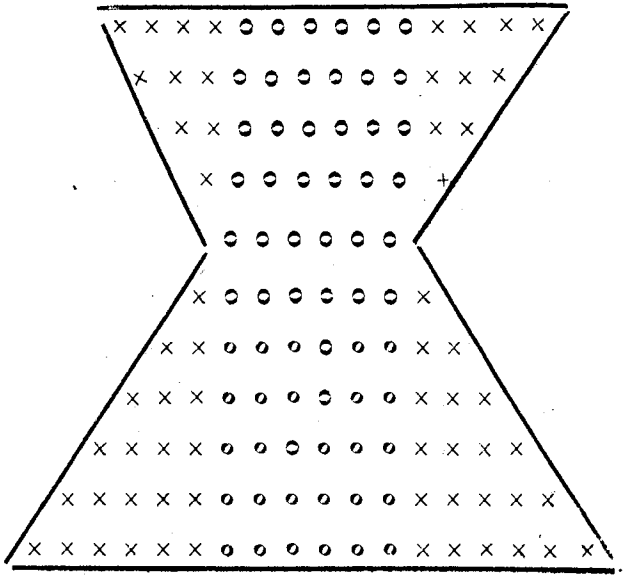
७ परम्परोपनिधा प्ररूपणा=प्रथम योगस्थानकथी श्रेणिना असंख्यातमा भाग प्रमाण योगस्थानमां स्पर्धक द्विगुण ए प्रमाणे फरीथी श्रेणिना असंख्यातमा भाग प्रमाण योगस्थानो ओळंग्या पछीना स्थानमां तेनाथी बमणां. ए प्रमाणे अन्त्य सुधी कहेवुं.

८ वृद्धि प्ररूपणा=वृद्धि ४ प्रकारनी-१ असंख्येयभागवृद्धि, २ संख्येयभागवृद्धि, ३ संख्येयगुणवृद्धि, ४ असंख्येयगुणवृद्धि. ए रीते हानि पण ४ प्रकारनी-१ असंख्येयभागहानि २ संख्येयभागहानि ३ संख्येयगुणहानि ४ असंख्येयगुणहानि.

९ समय प्ररूपणा=पर्याप्त सूक्ष्म निगोदना जघन्य योगस्थानकथी आ प्ररूपणा जाणवी. केटलांक (श्रेणिना असंख्यातमा भाग प्रमाण) उत्कृष्टथी ४ समयनी स्थितिवाळां, केटलांक (श्रे०अ०भाग प्रमाण) उत्कृष्टथी ५ समयनी स्थितिवाळां. ए प्रमाणे ६-७-८-७-६-५-४-३ समयनी स्थितिवाळां अने छेवटनां उत्कृष्ट योगस्थानो बे समयनी स्थितिवाळां. सघळांनो जघन्यथी १ समयनो काल. समयनी अपेक्षाए आ योगस्थानोनो आकार यव जेवो छे ते जणावनारो यन्त्रः—


४ ० ० ०

स्थाननी अपेक्षाए आ योगस्थानोनो आकार डमरुक जेवो छे. एटले वच्चमां सांकडो अने बंने बाजुए वधतो वधतो पहोळो ते जणावनार यन्त्रः—



— ४ सा० यो०
— ५ सा० यो०
— ६ सा० यो०
— ७ सा० यो०
— ८ सा० यो०
— ७ सा० यो०
— ६ सा० यो०
— ५ सा० यो०
— ४ सा० यो०
— ३ सा० यो०
— २ सा० यो०

डमरुक आकृतिनी समजुतीः—

०००० बिन्दुओ रूप योगस्थानो. अष्ट सामयिक योगस्थानो थोडा छे ते जणावनार ६ बिन्दुओ श्रेणिना असंख्यातमा भाग प्रमाण जाणवा. तेथी बंने बाजुना सप्त सामयिक असंख्यातगुणा छे ते जणाववा छ बिन्दुओना छेडे +...+ बंने बाजु चोकडी रूप निशानी जाणवी. तेथी बंने बाजु असंख्यातगुण जणाववा बिंदुओनी बंने बाजु एक एक चोकडी वधती वधती जाणवी.

जीवभेदने विषे योगना अल्पबहुत्वनो यन्त्र.

अनुक्रम	जीवभेदनुं नाम	योगप्रकार	
१	लब्धि अप० सूक्ष्म निगोदनो	जघन्ययोग	सर्वाल्प
२	,, ,, बादर निगोदनो	,,	असंख्य०
३	,, ,, द्वीन्द्रियनो	,,	,,
४	,, ,, त्रीन्द्रियनो	,,	,,
५	,, ,, चतुरिन्द्रियनो	,,	,,
६	,, ,, असंज्ञि पंचें०	,,	,,
७	,, ,, संज्ञिपंचें०	,,	,,
८	,, ,, सूक्ष्मनिगोदनो	उत्कृष्टयोग	,,
९	,, ,, बादरनिगोदनो	,,	,,
१०	पर्याप्त सूक्ष्मनिगोद०	जघन्ययोग	,,
११	,, बादर निगोद०	,,	,,
१२	,, सूक्ष्मनिगोदनो	,,	,,
१३	,, बादर निगोदनो	उत्कृष्टयोग	,,
१४	लब्धि अप० द्वीन्द्रियनो	,,	,,
१५	,, ,, त्रीन्द्रियनो	,,	,,
१६	,, ,, चतुरिन्द्रीयनो	,,	,,
१७	,, ,, असंज्ञि पंचे०	,,	,,
१८	,, ,, संज्ञि पंचे०	,,	,,
१९	पर्याप्ता द्वीन्द्रियनो	जघन्ययोग	,,
२०	,, त्रीन्द्रियनो	,,	,,
२१	,, चतुरिन्द्रियनो	,,	,,
२२	,, असंज्ञि पंचे०	,,	,,
२३	,, संज्ञि ,,	,,	,,
२४	,, द्वीन्द्रियनो	उत्कृष्टयोग	,,
२५	,, त्रीन्द्रियनो	,,	,,
२६	,, चतुरिन्द्रियनो	,,	,,
२७	,, असंज्ञि पंचे०	,,	,,
२८	,, अनुत्तरनो	,,	,,
२९	,, ग्रैवेयकनो	,,	,,
३०	,, युगलिक ति० म०	,,	,,
३१	,, आहारकशरीरीनो	,,	,,
३२	,, शेष देवोनो	,,	,,
३३	,, शेष नारकीनो	,,	,,
३४	,, शेष तिर्यंचनो	,,	,,
३५	,, शेष मनुष्यनो	,,	,,

तदेवं कृता सप्रपञ्चं योगप्ररूपणा, सांप्रतमेभिर्योगैर्यत्करोति तदाह—

जोगेहिं तयणुरूवं परिणमइ गिण्हिऊण पंच तणू । पाउग्गे वालंबइ, भासाणुमणत्तणे खंधे ॥ १७ ॥

जोगेहिं ति–योगैरनन्तरोक्तस्वरूपैः प्रायोग्यान् स्कन्धान् पुद्गलस्कन्धान् गृहीत्वा यथायोगं । 'पंचतणु त्ति' पञ्च शरीराणि परिणमयति औदारिकादिपञ्चशरीरतया परिणमयतीत्यर्थः । कथं पुनर्गृह्णातीति चेदत आह–तदनुरूपं योगानुरूपं । तथाहि–जघन्ययोगे वर्तमानः स्तोकान् पुद्गलस्कन्धान् गृह्णाति, मध्यमे मध्यमान् , उत्कृष्टे च योगे वर्तमानः प्रभूतानिति । उक्तं चान्यत्रापि–" जोगणुरूवं जीवा परिणामंतीह गिण्हिउं दलियन्ति " । अथवा तच्छब्देन पञ्च शरीराणि संबध्यन्ते । ततश्च तदनुरूपं पञ्चशरीरानुरूपं शरीरपञ्चकप्रायोग्यतयेत्यर्थः । पुद्गलस्कन्धान् गृह्णाति । तथा भाषाप्राणापानमनस्त्वप्रायोग्यान् पुद्गलस्कन्धान् प्रथमतो गृण्हाति । गृहीत्वा च भाषादित्वेन परिणमयति । परिणमय्य च तन्निसर्गहेतुसामर्थ्यविशेषसिद्धये तान् पुद्गलस्कन्धानालंबते । ततस्तदवष्टंभतो जातसामर्थ्यविशेषः सन् विसृजति, नान्यथा । तथाहि–यथा वृषदंशः स्वान्यंगान्यूर्ध्वं गमनाय प्रथमतः संकोचव्याजेनावलंबते, ततस्तदवष्टंभतो जातसामर्थ्यविशेषः सन् तान्यंगान्यूर्ध्वं प्रक्षिपति, नान्यथा शक्नोति, द्रव्यनिमित्तं वीर्यं संसारिणामुपजायत इति वचनप्रामाण्यात् , तथेहापि भावनीयमिति ॥ १७ ॥

गाथार्थः—जोगेहिं=योगोवडे, तयणुरूवं=योगना अनुसारे, पाउग्गे=(औदारिकादि) प्रायोग्य, खंधे=स्कन्धोने, गिण्हिऊण=ग्रहण करीने, पंचतणू=पांच शरीररपणे, परिणमइ=परिणमावे छे. वा=तथा, भासाणुमणत्तणे खंधे=भाषा, श्वासोश्वास अने मनपणे परिणमेला खंधोने, आलंबइ= अवलंबे छे. १७

ननु जीवो योगैस्तदनुरूपपुद्गलस्कन्धान् गृण्हाति आलंबते चेत्युक्तं, तत्र के पुद्गला ग्रहणप्रायोग्याः, के चाग्रहणप्रायोग्या इति विनेयजनप्रश्नावकाशमाशंक्य ग्रहणाग्रहणप्रायोग्याः पुद्गलवर्गणाः प्ररूपयति—

परमाणुसंखऽसंखाऽ–णंतपएसा अभव्वणंतगुणा । सिद्धाणणंतभागो, आहारगवग्गणा तितणू ॥१८॥
अग्गहणंतरियाओ, तेयगभासामणे य कम्मे य । धुवअधुवअच्चित्ता–सुन्नाचउअंतरेसुप्पिं ॥ १९ ॥
पत्तेगतणुसु बायर–सुहुमनिगोए तहा महाखंधे । गुणनिप्फन्नसनामो, असंखभागंगुलवगाहो ॥२०॥

परमाणु त्ति–एकैकपरमाणुरूपास्तथा संख्यातानां परमाणूनामसंख्यातानामनन्तानां च परमाणूनां समुदायरूपा वर्गणा

गाथार्थः—परमाणु=परमाणुरूप वर्गणा, संख०पएसा=संख्यात प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी,अने अनंत प्रदेशी वर्गणा(अग्रहण योग्य छे.) अभव्वणंतगुणा=अभव्यथी अनंतगुण, सिद्धाणणंतभागो=सिद्धना अनंतमाभाग प्रमाण प्रदेशी वर्गणा, तितणु=त्रण शरीररूपे, आहारगवग्गणा=आहार(ग्रहण योग्य) वर्गणा छे. १८ य=वळी, अग्गहणंतरियाओ=अग्रहण वर्गणाना आंतरे, तेयग=तैजस, भासा=भाषा मणे य=मन अने, कम्मे=कार्मण वर्गणाओ छे. धुव०अचिता=त्यारपछी ध्रुवाचित्त, अध्रुवाचित वर्गणा पछी, सुन्नाचउ=चार शून्य वर्गणाओ, अंतरेसुप्पिं=आंतरामां (एक एक शून्यथी) उपर. १९ पत्तेगतणुसु=प्रत्येकशरीरी, बायरसुहुमनिगोए=बादर निगोद, सूक्ष्म निगोद, तहा=तथा, महाखंधे=महास्कंध वर्गणाओ छे. गुणनिप्फन्नसनामो=ते (वर्गणाओ) गुण निष्पन्न नामवाळी, असंख०गाहो=अंगुलना असंख्यातमा भाग प्रमाण अवगाहनावाळी छे. २०

भवन्ति । तत्रैकैकपरमाणवः परमाणुवर्गणा । इह वर्गणाशब्दः समुदायवाची । तत एकैकस्मिन् परमाणौ वर्गणाशब्दोऽनेकपर्यायोपनिपातापेक्षया द्रष्टव्यः । यदि पुनः परमाणूनां वर्गणा परमाणुवर्गणेत्युच्येत, तर्हि जगति ये केचन परमाणवस्तेषां समुदायः परमाणुवर्गणेत्यापद्येत । तथा च सति " असंखभागंगुलवगाहो " इति विरुध्येत, एकैकपरमाणूनां सर्वलोकगतत्वात् । तथा द्वयोः परमाण्वोः समुदायो द्विप्रदेशस्कन्धवर्गणाः । त्रयाणां परमाणूनां समुदायस्त्रिप्रदेशस्कन्धवर्गणाः । चतुर्णां परमाणूनां समुदायश्चतुःप्रदेशस्कन्धवर्गणाः । एवं तावद्वाच्यं यावत्संख्येया वर्गणा भवन्ति । असंख्यातानां च परमाणूनां समुदायरूपा असंख्येया वर्गणा वाच्याः, असंख्यातस्यासंख्यातभेदात्मकत्वात् । ततोऽनन्तानां परमाणूनां समुदायरूपा अनन्ता वर्गणा वाच्याः, अनन्तस्यानन्तभेदात्मकत्वात् । एताश्च मूलत आरभ्य सर्वा अपि जीवानामल्पपरमाणुतया स्थूलपरिणामत्वेन चाग्रहणप्रायोग्याः१, अनन्तानन्तानां च परमाणूनां समुदायरूपाः काश्चिद् ग्रहणप्रायोग्याः काश्चिदग्रहणप्रायोग्याः । तत्राभव्येभ्योऽनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तभागकल्पा ये परमाणवस्तत्समुदायात्मकाः स्कन्धाः 'आहारवग्गण त्ति' आहरणं आहारः ग्रहणमित्यर्थः । आहार एवाहारकः, तत्प्रायोग्या वर्गणा आहारकवर्गणा भवन्ति, ग्रहणप्रायोग्या वर्गणा भवन्तीत्यर्थः । किंविषया इत्यत आह–' तितणू ' इति, औदारिकवैक्रियाहारकरूपतनुत्रयविषये ॥ १८ ॥

×१ (य० उ० ४) वर्गणायोग्यत्वमादायेति. ×२ (य० उ० ५) ता अप्यनन्ताः सकललोकव्यापिन्यश्च । एवं सर्वा अपि वर्गणाः प्रत्येकमनन्ताः सकललोकव्यापिन्यश्चावगन्तव्याः ॥

ग्रहणप्रायोग्या वर्गणा अग्रहणान्तरिता अग्रहणप्रायोग्यवर्गणान्तरिताः । तथा तैजसभाषाप्राणापानमनःकर्मणि च विषयेऽग्रहणप्रायोग्यवर्गणान्तरिता ग्रहणप्रायोग्या वर्गणा भवन्ति । तथाहि—अभव्यानन्तगुणसिद्धानन्तभागकल्पपरमाणुसमुदायरूपा वर्गणा औदारिकशरीरनिष्पादनाय ग्रहणप्रायोग्या भवति । सा च जघन्या । तत एकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीया ग्रहणप्रायोग्या वर्गणा । द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा तृतीया ग्रहणप्रायोग्या वर्गणा । एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा वर्गणास्तावद्वाच्या यावदुत्कृष्टा औदारिकशरीरग्रहणप्रायोग्या वर्गणा भवति । जघन्यायाश्च वर्गणायाः सकाशादुत्कृष्टा वर्गणा विशेषाधिका । विशेषश्च तस्या एव जघन्याया वर्गणाया अनन्ततमो भागः २ । औदारिकशरीरग्रहणप्रायोग्योत्कृष्टवर्गणापेक्षया चैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा वर्गणाऽग्रहणप्रायोग्या, सा जघन्या । ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीयाऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा । एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा वर्गणास्तावद्वाच्या यावदुत्कृष्टाऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा भवति । जघन्यायाश्च वर्गणायाः सकाशादुत्कृष्टा वर्गणा अनन्तगुणाः । गुणकारश्चाभव्यानन्तगुणसिद्धानन्तभागकल्पराशिप्रमाणो द्रष्टव्यः । एतासां चाग्रहणप्रायोग्यता औदारिकं प्रति प्रभूतपरमाणुनिष्पन्नत्वात् सूक्ष्मपरिणामत्वाच्च वेदितव्या, वैक्रियं प्रति पुनः स्वल्पपरमाण्वात्मकत्वात् स्थूलपरिणामत्वाच्चावसेया । एवमुत्तरत्रापि भावना कार्या ३। अग्रहणप्रायोग्योत्कृष्टवर्गणापेक्षया चैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा वर्गणा वैक्रियशरीरप्रायोग्या जघन्या वर्गणा । ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीया वैक्रियशरीरस्य ग्रहणप्रायोग्या वर्गणा । एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा वर्गणा वैक्रियशरीरविषये ग्रहणप्रायोग्यास्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टा ग्रहणप्रायोग्या वर्गणा भवति । जघन्यायाश्चोत्कृष्टा विशेषाधिकाः । विशेषश्च तस्या एव जघन्याया वर्गणाया अनन्ततमो भागः ४ । वैक्रि-

यशरीरोत्कृष्टवर्गणापेक्षया चैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा जघन्याऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा । ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीयाऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा। एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा अग्रहणप्रायोग्या वर्गणास्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टाऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा । जघन्यायाश्चोत्कृष्टा वर्गणा अनन्तगुणाः । गुणकारश्चाभव्यानन्तगुणसिद्धानन्तभागकल्पराशिप्रमाणो द्रष्टव्यः ५ । तत उत्कृष्टाग्रहणप्रायोग्यवर्गणापेक्षया एकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा वर्गणा आहारकशरीरप्रायोग्या जघन्या वर्गणा । ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीया आहारकशरीरविषये ग्रहणप्रायोग्या वर्गणा । एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा आहारकशरीरविषये ग्रहणप्रायोग्या वर्गणास्तावद्वाच्या यावदुत्कृष्टा ग्रहणप्रायोग्या वर्गणा भवति । जघन्यायाश्चोत्कृष्टा विशेषाधिका । विशेषश्च तस्या एव जघन्यायाः वर्गणायाः अनन्ततमो भागः ६। आहारकशरीरप्रायोग्योत्कृष्टवर्गणापेक्षया चैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपाऽग्रहणप्रायोग्या जघन्यवर्गणा । ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीयाऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा । एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा अग्रहणप्रायोग्या वर्गणास्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टाऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा भवति । जघन्यायाश्चोत्कृष्टाऽनन्तगुणा । गुणकारश्चाभव्यानन्तगुणसिद्धानन्तभागकल्पराशिप्रमाणो द्रष्टव्यः । 'इह चूर्णिकृदादयः औदारिकवैक्रियाहारकशरीरप्रायोग्याणां वर्गणानामपान्तराले ऽग्रहणवर्गणा नेच्छन्ति, परं जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणादिभिरिष्यन्त इति तन्मतेनोक्ताः' ७ । आहारकशरीराग्रहणप्रायोग्योत्कृष्टवर्गणापेक्षया चैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा वर्गणा तैजसशरीरप्रायोग्या जघन्या वर्गणा भवति । ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीया तैजसशरीरप्रायोग्या वर्गणा । एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपास्तैजसशरीरविषये ग्रहणप्रायोग्यवर्गणास्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टा ग्रहणप्रायोग्या वर्गणा भवति। जघन्यायाश्चोत्कृष्टा विशेषाधिका । विशेषश्च तस्या एव जघ-

न्याया अनन्ततमो भागः८। तैजसशरीरप्रायोग्योत्कृष्टवर्गणापेक्षया चैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा जघन्याऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा। ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीयाऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा। एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा अग्रहणप्रायोग्या वर्गणास्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टाऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा। जघन्यायाश्चोत्कृष्टाऽनन्तगुणा। गुणकारश्चाभव्यानन्तगुणसिद्धानन्तभागकल्पराशिप्रमाणो द्रष्टव्यः ९। अग्रहणप्रायोग्योत्कृष्टवर्गणापेक्षया चैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा जघन्या भाषाप्रायोग्या वर्गणा। यानि पुद्गलद्रव्याणि गृहीत्वा जन्तवः सत्यादिभाषारूपतया परिणमय्यालंब्य च विसृजन्ति तानि भाषाप्रायोग्या वर्गणा। ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीया भाषाप्रायोग्या वर्गणा। एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा भाषाप्रायोग्यास्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टा भाषाप्रायोग्या वर्गणा भवति। जघन्यायाश्चोत्कृष्टा विशेषाधिका। विशेषश्च तस्या एव जघन्याया वर्गणाया अनन्ततमो भागः १०। उत्कृष्टभाषाप्रायोग्यवर्गणापेक्षया चैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा जघन्याऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा। ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीयाऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा। एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा अग्रहणप्रायोग्या वर्गणास्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टाऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा। जघन्यायाश्चोत्कृष्टाऽनन्तगुणा। गुणकारश्चाभव्यानन्तगुणसिद्धानन्तभागकल्पराशिप्रमाणो द्रष्टव्यः ११। अग्रहणप्रायोग्योत्कृष्टवर्गणापेक्षया चैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा जधन्या प्राणापानयोग्या वर्गणा। यानि पुद्गलद्रव्याणि गृहीत्वा जन्तवः प्राणापानरूपतया परिणमय्यालंब्य च विसृजन्ति तानि प्राणापानयोग्या वर्गणा। ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीया प्राणापानयोग्या वर्गणा। एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपाः प्राणापानयोग्या वर्गणास्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टा प्राणापानयोग्या वर्गणा भवति। जधन्यायाश्चोत्कृष्टा विशेषाधिका। विशेषश्च

तस्या एव जघन्याया अनन्ततमो भागः १२। प्राणापानयोग्योत्कृष्टवर्गणापेक्षया चैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा जघन्याऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा। ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीयाऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा। एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा अग्रहणप्रायोग्या वर्गणास्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टाऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा भवति। जघन्यायाश्चोत्कृष्टाऽनन्तगुणा। गुणकारश्चाभव्यानन्तगुणसिद्धानन्तभागकल्पराशिप्रमाणो द्रष्टव्यः १३। ततोऽग्रहणप्रायोग्योत्कृष्टवर्गणापेक्षया एकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा मनःप्रायोग्या जघन्या वर्गणा। इह यानि पुद्गलद्रव्याणि जन्तवः सत्यादिमनोरूपतया परिणमय्यालंब्य च विसृजन्ति तानि मनःप्रायोग्या वर्गणा। ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीया मनःप्रायोग्या वर्गणा। एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा मनःप्रायोग्या वर्गणास्तावद्वाच्या यावदुत्कृष्टा मनःप्रायोग्या वर्गणा भवति। जघन्यायाश्चोत्कृष्टा विशेषाधिका। विशेषश्च तस्या एव जघन्याया वर्गणाया अनन्ततमो भागः १४। तत उत्कृष्टमनःप्रायोग्यवर्गणापेक्षया एकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा वर्गणा जघन्याऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा। ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीयाऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा। एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा अग्रहणप्रायोग्या वर्गणास्तावद्वाच्या यावदुत्कृष्टाऽग्रहणप्रायोग्या वर्गणा। जघन्यायाश्चोत्कृष्टाऽनन्तगुणा। गुणकारश्चाभव्यानन्तगुणसिद्धानन्तभागकल्पराशिप्रमाणो द्रष्टव्यः १५। ततोऽग्रहणप्रायोग्योत्कृष्टवर्गणापेक्षयैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा कर्मप्रायोग्या जघन्या वर्गणा। इह यानि पुद्गलद्रव्याणि जन्तवो ज्ञानावरणीयादिरूपतया परिणमयन्ति, तानि कर्मप्रायोग्या वर्गणा। ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीया कर्मप्रायोग्या वर्गणा। एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपाः कर्मप्रायोग्या वर्गणास्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टा कर्मप्रायोग्या वर्गणा भवति। जघन्यायाश्चोत्कृष्टा विशेषा-

धिका । विशेषश्च तस्या एव जघन्याया वर्गणाया अनन्ततमो भागः १६ । 'भासामणे य' इत्यत्र चशब्दस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वाद् भाषावर्गणानन्तरमग्रहणवर्गणान्तरिताः प्राणापानवर्गणा द्रष्टव्याः । ताश्च भाविता एव । 'कम्मे य' इत्यत्र चशब्दः समुच्चये।

इदानीमेतासामेवौदारिकादिप्रायोग्यवर्गणानां वर्णादि निरूप्यते–तत्रौदारिकशरीरप्रायोग्या वर्गणा अनन्तानन्तपरमाण्वात्मकाः पञ्चवर्णा द्विगन्धाः पंचरसा अष्टस्पर्शाश्च । एवं वैक्रियाहारकशरीरप्रायोग्या अपि वर्गणा द्रष्टव्याः । तैजसशरीरप्रायोग्या वर्गणाः पञ्चवर्णा द्विगन्धाः पञ्चरसा चतुःस्पर्शाः। तत्र मृदुलघुरूपौ द्वौ स्पर्शाववस्थितौ, अन्यौ तु द्वौ स्पर्शौ स्निग्धोष्णौ स्निग्धशीतौ रूक्षोष्णौ रूक्षशीतौ वा । एवं भाषाप्राणापानमनःकर्मप्रायोग्या अपि वर्गणा द्रष्टव्याः ।

तथौदारिकवर्गणाः प्रदेशार्थतया सर्वस्तोकाः । ताभ्यो वैक्रियशरीरप्रायोग्या वर्गणा अनन्तगुणाः । ताभ्य आहारकशरीरप्रायोग्या वर्गणा अनन्तगुणाः । ताभ्योऽपि तैजसशरीरप्रायोग्या वर्गणा अनन्तगुणाः । एवं भाषाप्राणापानमनःकर्मप्रायोग्या अपि वर्गणा यथोत्तरमनन्तगुणा वाच्याः ।

×(य०उ०६) तत्रौदारिकवैक्रियाहारकवर्गणाः पञ्चवर्णाः द्विगन्धाः पञ्चरसा अष्टस्पर्शाश्च। यद्यपि परमाणोरेक एव वर्ण एक एव रस एक एव गन्धो द्वावेव चाविरुद्धौ स्पर्शौ भवतस्तथापि समुदाये कोऽपि परमाणुः केनापि वर्णादिना युक्तो भवतीति समुदाये पञ्चवर्णादित्वप्रतिपादनमविरुद्धं तैजसप्रायोग्याद्याश्च वर्गणाः पञ्चवर्णाः पञ्चरसा द्विगन्धाश्च ज्ञातव्याः, स्पर्शचिन्तायां तु चतुः स्पर्शाः । तत्र मृदुलघुरूपौ द्वौ स्पर्शाववस्थितौ, अन्यौ तु द्वौ स्निग्धोष्णौ स्निग्धशीतौ रूक्षोष्णौ रूक्षशीतौ वाऽनियतौ । तदिदमुक्तं—"पंचरसपंचवण्णेहिं परिणया अट्ठफास दोगंधा । जावाहारगजोग्गा चउफासविसेसिया उवरिं ॥ १ ॥ "

'ध्रुवअध्रुवेत्यादि' कर्मप्रायोग्योत्कृष्टवर्गणानन्तरं ध्रुवाचित्तद्रव्यवर्गणास्तदनन्तरं चाध्रुवाचित्तवर्गणाः । ततः 'सुन्ना चउत्ति' चतस्रो ध्रुवशून्यवर्गणाः । तासां च चतसृणां ध्रुवशून्यवर्गणानामन्तरे उपरिष्टात् प्रत्येकतनुषु बादरसूक्ष्मनिगोदे (दयोः) महास्कन्धे च वर्गणा यथासंख्यं भवन्ति । तद्यथा—प्रथमध्रुवशून्यवर्गणाया उपरि प्रत्येकशरीर (रि) वर्गणा, द्वितीयध्रुवशून्यवर्गणाया उपरि बादरनिगोदवर्गणा, तृतीयध्रुवशून्यवर्गणाया उपरि सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, चतुर्थध्रुवशून्यवर्गणाया उपरि महास्कन्धवर्गणा ।

तत्र कर्मप्रायोग्योत्कृष्टवर्गणानन्तरमेकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा जघन्या ध्रुवाचित्तद्रव्यवर्गणा । ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीया ध्रुवाचित्तद्रव्यवर्गणा । एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा ध्रुवाचित्तद्रव्यवर्गणास्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टा ध्रुवाचित्तद्रव्यवर्गणा । ध्रुवाचित्तद्रव्यवर्गणा नाम याः सर्वदैव लोके प्राप्यन्ते । तथाहि—एतासां मध्येऽन्या उत्पद्यन्तेऽन्या विनश्यन्ति, न पुनरेताभिः कदाचनापि लोको विरहितो भवति । अचित्तत्वं चासां जीवेन कदाचनापि अग्रहणादवसेयं । जीवसंबन्धाद्धि सचित्तत्वमपि कथञ्चित् स्यात् यथौदारिकादिशरीराणामिति । जघन्यायाश्च वर्गणायाः सकाशादुत्कृष्टा वर्गणा अनन्तगुणाः । गुणकारश्च सर्वजीवानन्तगुणराशिप्रमाणो द्रष्टव्यः १७ ।

---

१ भिन्नक्रमः कथञ्चिदित्यस्मादग्रे योज्यश्च । यद्वा यथौदारिकादिशरीराणां जीवसंबंधात्कथंचित्सचित्तत्वमस्ति तथा भवेदासामपि, परं नैवास्त्याभिर्जीवसंबन्ध इत्यचित्ता एवैताः, कथंचित्सचित्तता तु स्वरूपतोऽचित्तत्वादौदारिकादिशरीराणाम् ।

×(य० उ० ७) न पुनरेतासां यथास्थितसंख्यानामन्यतमयाऽपि कदाचनापि लोको विरहितो भवति ।

तत एकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा जघन्याऽध्रुवाचित्तद्रव्यवर्गणा। ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीयाऽध्रुवाचित्तद्रव्यवर्गणा। एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा अध्रुवाचित्तद्रव्यवर्गणास्तावद्वाच्या यावदुत्कृष्टाऽध्रुवाचित्तद्रव्यवर्गणा भवति । अध्रुवाचित्तद्रव्यवर्गणा नाम यासां मध्ये काश्चिद् वर्गणाः कदाचिल्लोके भवन्ति, कदाचिच्च न भवन्ति । अत एवैताः सान्तरनिरन्तरा आप्युच्यन्ते । जघन्यायाश्च वर्गणायाः सकाशादुत्कृष्टा वर्गणाऽनन्तगुणा । गुणकारश्च सर्वजीवानन्तगुणराशिप्रमाणो द्रष्टव्यः १८ । तत एकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा जघन्या प्रथमध्रुवशून्यवर्गणा । ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीया प्रथमध्रुवशून्यवर्गणा । एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपाः प्रथमध्रुवशून्यवर्गणास्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टा प्रथमध्रुवशून्यवर्गणा भवति । ध्रुवशून्यवर्गणा नाम याः कदाचनापि लोके न भवन्ति। केवलमुपरितनवर्गणानां बाहुल्यपरिज्ञानार्थं प्ररूपणामात्रमेव क्रियते । जघन्यायाश्च वर्गणायाः सकाशादुत्कृष्टा वर्गणाऽनन्तगुणा । गुणकारश्च सर्वजीवानन्तगुणराशिप्रमाणो द्रष्टव्यः १९ (१)।

तत एकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा जघन्या प्रत्येकशरीरिद्रव्यवर्गणा । अथ केयं प्रत्येकशरीरिद्रव्यवर्गणा नाम ? उच्यते—प्रत्येकशरीरिणां यथासंभवमौदारिकवैक्रियाहारकतैजसकार्मणेषु शरीरनामकर्मसु ये प्रत्येकं विश्रसा परिणामेनोपचयमापन्नाः सर्वजीवानन्तगुणाः पुद्गलास्ते प्रत्येकशरीरिद्रव्यवर्गणा । तत एकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीया प्रत्येकशरीरिद्रव्यवर्गणा । एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपाः प्रत्येकशरीरिद्रव्यवर्गणास्तावद्वाच्या यावदुत्कृष्टा प्रत्येकशरीरिद्रव्यवर्गणा भवति । जघन्यायाश्चोत्कृष्टाऽ-

---

× (य० उ० ८) उक्तं च शतकबृहच्चूर्णौ "पत्तेयवग्गणा इह पत्तेयाणंतउरलमाईणं । पंचण्हसरीराणं तणुकम्मपएसगा जे उ॥ १ ॥ तत्थेक्केक्कपएसे वीससपरिणामउवचिया हुंति। सव्वजियाणंतगुणा पत्तेया वग्गणा ताओ ॥ २॥"

संख्येयगुणा । गुणकारश्च सूक्ष्मक्षेत्रपल्योपमासंख्येयभागलक्षणः । कथमेतदवसीयत इति चेदुच्यते—इह सर्वोऽपि कर्मप्रदेशोपचयो योगाद् भवति, 'जोगा पयडिपएसं' इति वचनात् । ततो जघन्ये योगे सति जघन्यः कर्मप्रदेशोपचयो भवति, उत्कृष्टे चोत्कृष्टः । जघन्याच्च योगस्थानादुत्कृष्टं योगस्थानं सूक्ष्मक्षेत्रपल्योपमासंख्येयभागगुणितमेव प्राप्यते नाधिकं । ततः कर्मप्रदेशोपचयादपि जघन्यादुत्कृष्टः कर्मप्रदेशोपचयः सूक्ष्मक्षेत्रपल्योपमासंख्येयभागगुणित एव भवति, नाधिकः तदाश्रिता च प्रत्येकशरीरिद्रव्यवर्गणा। ततः प्रत्येकशरीरिद्रव्यवर्गणाऽप्युत्कृष्टा जघन्यप्रत्येकशरीरिद्रव्यवर्गणापेक्षया सूक्ष्मक्षेत्रपल्योपमासंख्येयभागगुणितैव भवति २० ।

ततोऽनन्तरमेकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा जघन्या द्वितीयध्रुवशून्यवर्गणा । ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीया द्वितीयध्रुवशून्यवर्गणा । एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीयध्रुवशून्यवर्गणास्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टा द्वितीयध्रुवशून्यवर्गणा । जघन्यायाश्चोत्कृष्टाऽसंख्येयगुणा । गुणकारश्चासंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणो द्रष्टव्यः २१ (२) ।

तत एकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा जघन्या बादरनिगोदवर्गणा । अथ केयं बादरनिगोदद्रव्यवर्गणा नाम ? उच्यते—बादरनिगोदजीवानामौदारिकतैजसकार्मणेषु शरीरनामकर्मसु प्रत्येकं ये सर्वजीवानन्तगुणाः पुद्गला विश्रसापरिणामेनोपचयमायान्ति ते बादरनिगोदद्रव्यवर्गणा । तत्र बादरनिगोदजीवानां यद्यपि केषांचित् कियत्कालं वैक्रियाहारकशरीरनामकर्मणी अपि संभवतः, तथापि ते प्रथमसमयादेव निरन्तरमुद्वल्यमानत्वादत्यन्तमसारे इति न विवक्ष्येते । ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा वर्गणा द्वितीया बादरनिगोदद्रव्यवर्गणा । एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा वर्गणास्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टा बादरनिगोदद्रव्यवर्गणा ।

× (य० उ० ९) जघन्ये कर्मप्रदेशोपचये जघन्या तत्र वैश्रसिकी प्रत्येकशरीरिद्रव्यवर्गणोत्कृष्टे चोत्कृष्टा ।

जघन्यायाश्चोत्कृष्टाऽसंख्येयगुणा । गुणकारश्च क्षेत्रपल्योपमासंख्येयभागलक्षणः । अत्र युक्तिः प्रत्येकशरीरिद्रव्यवर्गणायामिव परिभावनीया २२ ।

तत एकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा जघन्या तृतीयध्रुवशून्यवर्गणा । ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीया तृतीयध्रुवशून्यवर्गणा । एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा वर्गणास्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टा तृतीयध्रुवशून्यवर्गणा भवति। जघन्यायाश्चोत्कृष्टाऽसंख्येयगुणा । गुणकारश्चांगुलमात्रे क्षेत्रे आवलिकाया असंख्येयतमे भागे यावन्तः समयास्तावन्ति वर्गमूलानि गृह्यन्ते, गृहीत्वा च चरमस्य वर्गमूलस्यासंख्येयतमे भागे यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत्प्रमाणो द्रष्टव्यः २३ (३) ।

तत एकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा वर्गणा जघन्या सूक्ष्मनिगोदद्रव्यवर्गणा । सा च सूक्ष्मनिगोदवर्गणा बादरनिगोदद्रव्यवर्गणावदविशेषेणावगन्तव्या यावदुत्कृष्टा । जघन्यायाश्चोत्कृष्टाऽसंख्येयगुणा । गुणकारश्चावलिकाया असंख्येयतमे भागे यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणो द्रष्टव्यः । यतः सूक्ष्मनिगोदजीवानां जघन्याद्योगस्थानादुत्कृष्टं योगस्थानं आवलिकाऽसंख्येयभागगुणितमेव प्राप्यते, नाधिकं । योगाधीना च कर्मप्रदेशोपचयवृद्धिः, तदधीना च सूक्ष्मनिगोदवर्गणेति २४ ।

तत एकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा वर्गणा जघन्या तुरीयध्रुवशून्यवर्गणा । ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीया तुरीयध्रुवशून्यवर्गणा । एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा वर्गणास्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टा तुरीयध्रुवशून्यवर्गणा । जघन्यायाश्चोत्कृष्टाऽसंख्येयगुणा । गुणकारश्च प्रतरासंख्येयभागवर्त्यसंख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणो द्रष्टव्यः २५ (४) ।

तत एकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा वर्गणा जघन्या महास्कन्धवर्गणा । महास्कन्धवर्गणा नाम ये पुद्गलस्कन्धा विश्रसापरिणामेन

टंककूटपर्वतादिसमाश्रिताः । ततो द्विपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा द्वितीया महास्कन्धवर्गणा । एवमेकैकपरमाण्वधिकस्कन्धरूपा वर्गणास्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टा भवति । जघन्यायाश्चोत्कृष्टाऽसंख्येयगुणा । गुणकारश्च पल्योपमासंख्येयभागरूपो द्रष्टव्यः।इमाश्च महास्कन्धवर्गणा यदा भूयान् त्रसकायो भवति तदा स्तोकाः प्राप्यन्ते, यदा त्वल्पस्तदा प्रभूता इति वस्तुस्वभाव एषः २६ ॥

एताश्च परमाणुवर्गणाद्या महास्कन्धवर्गणापर्यवसानाः 'गुणणिप्फण्णसनाम' त्ति गुणैः कृत्वा निष्पन्नं स्वं स्वकीयं नाम यासां ता गुणनिष्पन्नस्वनामानः । तथाहि–एकैकपरमाणवः परमाणुवर्गणा, द्वयोः परमाण्वोर्वर्गणाः द्विपरमाणुवर्गणाः, इत्येवं नाम्नां यथार्थता विद्यते एव । तथा 'असंखभागंगुलवगाहो' त्ति सर्वासामपि वर्गणानामवगाहोऽङ्गुलस्यासंख्येयो भागः । तथाहि–एता वर्गणाः सर्वा अपि सर्वोत्कृष्टमहास्कन्धवर्गणापर्यवसानाः प्रदेशापेक्षया यथोत्तरं महत्यः । महत्तरा अपि भवन्त्यः प्रत्येक मेकैकाः सत्योऽङ्गुलासंख्येयभागमात्रक्षेत्रावगाहा एव विद्यन्ते । यदा पुनः सामस्त्येन प्रत्येकं विवक्ष्यन्ये, तदा सर्वा अप्येताः परमाणुवर्गणाद्याः सर्वोत्कृष्टमहास्कन्धवर्गणापर्यवसानाः प्रत्येकमनन्तानन्ताः सकललोकाश्रिता अवगन्तव्याः । तथा कार्मणशरीरप्रायोग्यवर्गणात आरभ्यार्वाक् यावदौदारिकशरीरप्रायोग्या वर्गणास्तावत् क्षेत्रावगाहोऽसंख्येयगुणो द्रष्टव्यः, तद्यथा–कर्मवर्गणावगाहक्षेत्रान्मनोवर्गणावगाहक्षेत्रं प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं । ततोऽप्यानप्राणावगाहक्षेत्रं प्रदेशतोऽसंख्येयगुण-मित्यादि ॥१९–२०॥

×(य०उ०१०) तदुक्तं शतकबृहच्चूर्णौ—"महखंधवग्गणा टंककूड तह पव्वयाइठाणेसु । जे पोग्गला समसिया महखंधा ते उ वुच्चंति ॥ १ ॥ तत्थ तसकायरासी जम्मि य कालम्मि होंति बहुगो अ । महखंधवग्गणाओ तम्मि य काले भवे थोवा ॥२॥ जं पुण होइ अ काले रासी तसकाइयाण थोवो उ । महखंधवग्गणाओ तहिं काले होंति बहुगाओ ॥ ३ ॥"

पुद्गल सम्बन्धि २६ वर्गणानो यन्त्र.

अनुक्रम	वर्गणानुं नाम	उत्तर वर्गणा संख्या प्रमाण	स्वजघन्य वर्गणाना प्रदेशथी स्वोत्कृष्ट वर्गणामां केटला प्रदेश अधिक.	जीवने ग्रहण प्रायोग्य के ग्रहणायोग्य.
१	अग्रहण	अनंती (अभव्यथी अनंतगुण)	अभव्यथी अनंतगुणा	अग्रहणप्रायोग्य
२	औदारिक	,, (अभव्यानंतगुणना अनंतमा भाग प्रमाण)	अनंतभागाधिक (विशे०)	ग्रहणप्रायोग्य
३	अग्रहण	,, (अभव्यथी अनंतगुण)	अभव्यथी अनंतगुण	अग्रहण प्रायोग्य
४	वैक्रिय	,, (अभव्यानंतगुणना अनंतमा भाग प्रमाण)	अनंतभागाधिक (विशे०)	ग्रहणप्रायोग्य
५	अग्रहण	,, (अभव्यथी अनंतगुण)	अभव्यथी अनंत०	अग्रहणप्रायोग्य
६	आहारक	,, (अभव्यानंतगुणना अनंतमा भाग प्रमाण)	अनंतभागाधिक (विशे०)	ग्रहणप्रायोग्य
७	अग्रहण	,, (अभव्यथी अनंत०)	अभव्यथी अनंत०	अग्रहणप्रायोग्य
८	तैजस	,, (अभव्यानंतगुणना अनंतमा भाग प्रमाण)	अनंतभागाधिक (विशे०)	ग्रहणप्रायोग्य
९	अग्रहण	,, (अभव्यथी अनंतगुण)	अभव्यथी अनंत०	अग्रहणप्रायोग्य
१०	भाषा	,, (अभव्यानंतगुणना अनंतमा भाग प्रमाण)	अनंतभागाधिक (विशे०)	ग्रहणप्रायोग्य
११	अग्रहण	,, (अभव्यथी अनंतगुण)	अभव्यथी अनंत०	अग्रहणप्रायोग्य
१२	उश्वास	,, (अभव्यानंतगुणना अनंतमा भाग प्रमाण)	अनंतभागाधिक (विशे०)	ग्रहणप्रायोग्य
१३	अग्रहण	,, (अभव्यथी अनंतगुण)	अभव्यथी अनंत०	अग्रहणप्रायोग्य
१४	मन	,, (अभव्यानंतगुणना अनंतमा भाग प्रमाण)	अनंतभागाधिक	ग्रहणप्रायोग्य
१५	अग्रहण	,, (अभव्यथी अनंतगुण)	अभव्यथी अनंतगुण	अग्रहणप्रायोग्य
१६	कार्मण	,, (अभव्यानंतगुणना अनंतमा भाग प्रमाण)	अनंतभागाधिक	ग्रहणप्रायोग्य

१७	ध्रुवाचित्त	,, (सर्वजीवथी अनंतगुण)	सर्वजीवथी अनंतगुण	अग्रहणप्रयोग्य
१८	अध्रुवाचित्त (सान्तर-निरन्तर)	,, ,,	,,	,,
१९	ध्रुवशून्य(१) (अविद्यमान)	,, ,;	,,	,,
२०	प्रत्येकशरीरवर्गणा	,, स्वजघन्य वर्गणाना प्रदेशने सूक्ष्म क्षेत्र पल्यो०ना असंख्यातमा भागे गुणतां आवे तेटली)	सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपमना असंख्यातमा भाग गुण.	,,
२१	ध्रुवशून्य(२) (अविद्यमान	,, (स्वजघन्य वर्गणाना प्रदेशने असंख्य लोकाकाशना प्रदेश गुणतां आवे तेटली)	असंख्यलोकाकाशप्रदेशगुण	,,
२२	बादरनिगोदवर्गणा	,, (स्वजघन्य वर्गणाना प्रदेशने सू० क्षेत्र पल्यो० ना असंख्यातमाभागे गुणतां आवे तेटली)	सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपमना असंख्यातमा भाग गुण	,,
२३	ध्रुवशून्य(३) (अविद्यमान)	,, (स्वजघन्यवर्गणाना प्रदेशने अंगुल क्षेत्र प्रदेशना आवलिना असंख्यातमा भाग प्रमाण वर्गमूल करतां आवेल चरम वर्गमूलना असंख्यातमा भागे गुणतां आवे तेटली)	अंगुल क्षेत्र प्रदेशना आवलिना असंख्यातमा भाग प्रमाण वर्गमूल करतां आवेल चरम वर्गमूलना असंख्यातमा भाग गुण	,,
२४	सूक्ष्म निगोदवर्गणा	,, (स्वजघन्य वर्गणाना प्रदेशने आवलिना असंख्यातमा भागे गुणतां आवे तेटली)	आवलिना असंख्यातमा भागगुण	,,

इह योगैस्तदनुरूपपुद्गलस्कन्धान् गृहीत्वा शरीरादिरूपतया परिणमयतीत्युक्तं, तत्र तान् पुद्गलान् किं जीवो देशेन गृह्णाति उत सर्वात्मनेत्येवं प्रश्नावकाशमाशंक्योत्तरं वितितीर्षुराह—

एगमवि गहणदव्वं, सव्वप्पणयाए जीवदेसम्मि। सव्वप्पणया सव्वत्थ वावि सव्वे गहणखंधे ॥२१॥

एग त्ति—इह जीवः स्वप्रदेशावगाढमेव दलिकं गृह्णाति, न त्वनन्तरपरंपरप्रदेशावगाढं। तत्रैकस्मिन् जीवप्रदेशे यदवगाढं ग्रहणद्रव्यं ग्रहणप्रायोग्यं दलिकं तदेकमपि गृह्णाति। 'सव्वप्पणयाए' त्ति सर्वात्मना गृह्णाति सर्वैरेवात्मप्रदेशैर्गृह्णातीत्यर्थः। जीवप्रदेशानां सर्वेषामपि शृंखलावयवानामिव परस्परं संबन्धविशेषभावात्। तथाहि—एकस्मिन् जीवप्रदेशे स्वक्षेत्रावगाढग्रहण-

२५	ध्रुवशून्य(४) (अविद्यमान)	,, (स्वजघन्य वर्गणाना प्रदेशने प्रतरना असंख्यातमाभागवर्ती असंख्य श्रेणिना प्रदेशवडे गुणता आवे तेटली)	प्रतर असंख्य भागवर्ती असंख्य श्रेणिगत प्रदेशगुण	,,
२६	अचित्तमहास्कंधवर्गणा	,, (स्वजघन्य वर्गणाना प्रदेशने पल्योपमना असंख्यातमा भागे गुणतां आवे तेटली)	पल्योपमना असंख्यातमा भाग गुण	,,

गाथार्थः—जीवदेसम्मि=एक जीवप्रदेशावगाहित, एगमवि गहणदव्वं=एक ग्रहण योग्य द्रव्यने, सव्वप्पणयाए=सर्व प्रदेशोवडे जीव ग्रहण करे छे. सव्वत्थ वावि=सर्व जीव प्रदेशोने अवगाहित, सव्वे गहणखंधे=सर्व ग्रहण योग्य स्कन्धोने, सव्वप्पणया=सर्व आत्म प्रदेशो वडे ग्रहण करे छे. २१

प्रायोग्यद्रव्यग्रहणाय व्याप्रियमाणे सर्वेऽप्यात्मप्रदेशा अनन्तरपरंपरतया तद्द्रव्यग्रहणाय व्याप्रियन्ते। यथा हस्ताग्रेण कस्मिंश्चिद्ग्राह्ये घटादिके गृह्यमाणे मणिबन्धकूर्परांसादयोऽपि तद्ग्रहणायानन्तरपरंपरतया व्याप्रियन्ते, तथा 'सव्वत्थ वावि' त्ति सर्वत्रापि सर्वेष्वपि जीवप्रदेशेषु येऽवगाढा ग्रहणप्रायोग्याः स्कन्धाः, तानपि ग्रहणप्रायोग्यान् स्कन्धान् सर्वान् गृह्णाति जीवः सर्वात्मना सर्वैरेवात्मप्रदेशैः एकैकस्कन्धग्रहणं प्रति सर्वजीवप्रदेशानामनन्तरपरंपरतया व्याप्रियमाणत्वात् इति ॥ २१ ॥

इह पुद्गलद्रव्याणां परस्परं संबन्धः स्नेहतो भवति। ततोऽवश्यं स्नेहप्ररूपणा कर्तव्या। सा च त्रिधा। तद्यथा-स्नेहप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा, (१) नामप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा, (२) प्रयोगप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा (३) च। तत्र स्नेहप्रत्ययस्य स्नेहनिमित्तस्य स्पर्धकस्य प्ररूपणा स्नेहप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा (१)। तथा शरीरबन्धननामकर्मोदयतः परस्परं बद्धानां शरीरपुद्गलानां स्नेहमधिकृत्य स्पर्धकप्ररूपणा नामप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा। शब्दार्थश्चायं-नामप्रत्ययस्य बन्धननामनिमित्तस्य शरीरप्रदेशस्पर्धकस्य प्ररूपणा नामप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा (२)। तथा प्रकृष्टो योगः प्रयोगः, तेन प्रत्ययभूतेन कारणभूतेन ये गृहीताः पुद्गलास्तेषां स्नेहमधिकृत्य स्पर्धकप्ररूपणा प्रयोगप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा (३)। तत्र प्रथमतः स्नेहप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणार्थमाह—

नेहप्पच्चयफड्डगमेगं अविभागवग्गणा णंता। हस्सेण बहू बद्धा असंखलोगे दुगुणहीणा ॥ २२ ॥

गाथार्थः—नेह० मेगं=स्नेह प्रत्यय स्पर्धक एक छे. अवि० णंता=तेमां अविभाग वर्गणाओ अनंत छे. हस्सेण=अल्प स्नेहवडे बद्धा=युक्त पुद्गलो, बहू=घणा छे. असंखलोगे=असंख्य लोकाकाश प्रदेश प्रमाण वर्गणा अतिक्रमतां, दुगुणहीणा=पुद्गलो द्विगुणहीन होय छे. २२

नेहत्ति–स्नेहप्रत्ययं स्नेहनिमित्तं एकैकस्नेहाविभागवृद्धानां पुद्गलवर्गणानां समुदायरूपं स्पर्धकं स्नेहप्रत्ययस्पर्धकं । तच्चैकमेव भवति । तस्मिंश्च स्पर्धकेऽविभागवर्गणा एकैकस्नेहाविभागाधिकपरमाणुसमुदायरूपा वर्गणा अनन्ता द्रष्टव्याः । तत्र ह्रस्वेनाल्पेन स्नेहेन ये बद्धा युक्ताः पुद्गलास्ते बहवः, अर्थाच्च प्रभूतेन स्नेहेन बद्धाः स्तोकाः । तथा 'असंखलोगे दुगुणहीण' त्ति आदिवर्गणायाः परतोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा वर्गणा अतिक्रम्य याऽनन्तरा वर्गणा तस्यां पुद्गलाः प्रथमवर्गणागतपुद्गलापेक्षया द्विगुणहीना भवन्ति । पुनरपि ततोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा वर्गणा अतिक्रम्यानन्तरायां वर्गणायां पुद्गला द्विगुणहीना भवन्ति । एवं तावद्वाच्यं यावद्रश्यमाणासंख्येयभागहानिगता चरमा वर्गणा । इयमत्र भावना–इह यः सर्वोत्कृष्टः स्नेहः स केवलिप्रज्ञाच्छेदनकेन छिद्यते, छित्वा छित्वा च निर्विभागा भागाः पृथक् पृथक् व्यवस्थाप्यन्ते । तत्र जगति ये केचित् परमाणव एकेन स्नेहस्य निर्विभागेन युक्ताः सन्ति, तेषां समुदायः प्रथमा वर्गणा । ये पुनर्द्वाभ्यां स्नेहाविभागाभ्यां युक्ताः परमाणवः सन्ति, तेषां समुदायो द्वितीया वर्गणा । एवं त्रिभिः स्नेहाविभागैर्युक्तानां समुदायस्तृतीया वर्गणा । एवं संख्येयैः स्नेहाविभागैर्युक्तानां संख्येया वर्गणा वाच्याः । असंख्येयैः स्नेहाविभागैर्युक्तानां पुनरसंख्येया वर्गणाः । अनन्तैः स्नेहाविभागैर्युक्तानां त्वनन्ता वर्गणाः ।

×(य० उ० ११) सर्वाभिश्चाभिरेकमेव स्पर्धकं भवति, अपान्तराले एकैकाविभागवृद्धिव्यवच्छेदाभावात् । एकैकाविभागवृद्धिव्यवच्छेदो हि स्पर्धकपर्यवसानं । उक्तं च–"रूवुत्तरवुड्ढीए छेओ फड्डगाणं" ति ।

द्विधा चात्र प्ररूपणा, तद्यथा–अनन्तरोपनिधया परंपरोपनिधया च। तत्र तावत्प्रथमतोऽनन्तरोपनिधया प्ररूपणा क्रियते–प्रथमायां वर्गणायामेकस्नेहाविभागयुक्तपुद्गलसमुदायरूपायां यावन्तः पुद्गलास्तदपेक्षया द्वितीयस्यां वर्गणायां स्नेहाविभागद्वययुक्तपुद्गलसमूहरूपायां पुद्गला असंख्येयभागहीना भवन्ति। ततोऽपि तृतीयस्यां वर्गणायामसंख्येयभागहीनाः। एवं प्रति वर्गणामसंख्येयभागहान्या पुद्गलास्तावद्वाच्या यावदनन्ता वर्गणा गता भवन्ति (१)। ततोऽनन्तरायां पुद्गलाः प्राक्तनवर्गणागतपुद्गलापेक्षया संख्येयभागहीना भवन्ति। ततोऽग्रेतन्यामपि वर्गणायां पुद्गलाः संख्येयभागहीनाः। एवं संख्येयभागहान्यापि वर्गणा अनन्ता वाच्याः (२)। ततोऽनन्तरायां वर्गणायां पुद्गलाः प्राक्तनवर्गणागतपुद्गलापेक्षया संख्येयगुणहीना भवन्ति। ततोऽग्रेतन्यामपि वर्गणायां पुद्गलाः संख्येयगुणहीनाः। एवं संख्येयगुणहान्याप्यनन्ता वर्गणा वाच्याः (३)। ततोऽनन्तरायां वर्गणायां पुद्गला प्राक्तनवर्गणागतपुद्गलापेक्षयाऽसंख्येयगुणहीना भवन्ति। ततोऽग्रेतन्यामपि वर्गणायां पुद्गला असंख्येयगुणहीनाः। एवमसंख्येयगुणहान्याप्यनन्ता वर्गणा वक्तव्याः (४)। ततोऽनन्तरायां वर्गणायां पुद्गलाः प्राक्तनवर्गणागतपुद्गलापेक्षयाऽनन्तगुणहीना भवन्ति। ततोऽग्रेतन्यामपि वर्गणायां पुद्गला अनन्तगुणहीनाः। एवमनन्तगुणहान्याप्यनन्ता वर्गणा वाच्या यावत्सर्वोत्कृष्टा वर्गणाः (५)। तदेवं कृताऽनन्तरोपनिधया प्ररूपणा।

संप्रति परंपरोपनिधया (प्ररूपणा) क्रियते। तत्र प्रथमवर्गणायाः परतोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा वर्गणा अतिक्रम्य या पराऽन्या वर्गणा तस्यां पुद्गलाः प्रथमवर्गणागतपुद्गलापेक्षया द्विगुणहीना भवन्ति, अर्धा भवन्तीत्यर्थः। ततः पुनरप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा वर्गणा अतिक्रम्य या पराऽनन्तरा वर्गणा तस्यां पुद्गला अर्धा भवन्ति। एवं भूयो

भूयस्तावदवगन्तव्यं यावदसंख्येयभागहानिगता चरमा वर्गणा । ततः परं संख्येयभागहानिगता वर्गणाः संख्येया अतिक्रम्यानन्तरायां वर्गणायां पुद्गला असंख्येयभागहानिगतचरमवर्गणापुद्गलापेक्षयाऽर्धा भवन्ति । ततः पुनरपि संख्येया वर्गणा अतिक्रम्यानन्तरायां वर्गणायां पुद्गला अर्धा भवन्ति । एवं भूयो भूयस्तावद्वक्तव्यं यावत्संख्येयभागहानावपि चरमा वर्गणा । उपरितनीषु चतसृषु (य० उ० तिसृषु) हानिषु इयं परंपरोपनिधा न संभवति । यतः प्रथमायामपि संख्येयगुणहानिवर्गणायां पुद्गलाः संख्येयभागहानिसत्कचरमवर्गणान्तर्गतपुद्गलापेक्षया संख्येयगुणहीनाः प्राप्यन्ते । संख्येयगुणहीनाश्च जघन्यतोऽपि त्रिगुणहीनाश्चतुर्गुणहीना वा गृह्यन्ते, न तु द्विगुणहीनाः, यतः संख्येयं प्रायः सर्वत्राप्यजघन्योत्कृष्टं त्रिप्रभृत्येव गृह्यते, न तु द्वौ, नापि सर्वोत्कृष्टं तदुक्तमनुयोगद्वारचूर्णौ—"सिद्धंते य जत्थ जत्थ संखेज्जगगहणं तत्थ तत्थ अजहण्णमणुक्कोसयं दट्ठव्वं ति" । तत इत ऊर्ध्वं द्विगुणहीना न प्राप्यन्ते, किंतु त्रिगुणचतुर्गुणादिना इति नेयं द्विगुणहान्या परंपरोपनिधा संभवति ।

तस्मान्मूलत आरभ्यान्यथात्र परंपरोपनिधया प्ररूपणा क्रियते—असंख्येयभागहानौ प्रथमान्तिमवर्गणयोरपान्तराले प्रथमवर्गणापेक्षया काश्चिद्वर्गणा असंख्येयभागहीनाः काश्चित्संख्येयभागहीनाः काश्चित्संख्येयगुणहीनाः काश्चिदसंख्येयगुणहीनाः काश्चिदनन्तगुणहीनाः । एवमसंख्येयभागहानौ प्रथमवर्गणापेक्षया पञ्चापि हानयः संभवन्ति । संख्येयभागहानौ पुनरसंख्येयभागहानिवर्जाः शेषाश्चतस्रोऽपि हानयः संभवन्ति । तद्यथा—संख्येयभागहानिप्रथमान्तिमवर्गणयोरपान्तराले

प्रथमवर्गणापेक्षया काश्चिद्वर्गणा संख्येयभागहीनाः, काश्चित्संख्येयगुणहीनाः, काश्चिदसंख्येयगुणहीनाः काश्चिदनन्तगुणहीनाः। संख्येयगुणहानौ पुनरसंख्येयभागहानिसंख्येयभागहानिवर्जाः शेषास्तिस्रो हानयः संभवन्ति। तद्यथा–संख्येयगुणहानौ प्रथमान्तिमवर्गणयोरपान्तराले प्रथमवर्गणापेक्षया काश्चिद्वर्गणाः संख्येयगुणहीनाः, काश्चिदसंख्येयगुणहीनाः, काश्चिदनन्तगुणहीनाः। असंख्येयगुणहानौ पुनर्द्वे एव हानी। तथाहि–असंख्येयगुणहानौ प्रथमान्तिमवर्गणयोरपान्तराले प्रथमवर्गणापेक्षया काश्चिद्वर्गणा असंख्येयगुणहीनाः, काश्चिदनन्तगुणहीनाः। अनन्तगुणहानौ त्वनन्तगुणहानिरेवैका। तदेवं कृता परंपरोपनिधया प्ररूपणा।

साम्प्रतमल्पबहुत्वमुच्यते–तत्रासंख्येयभागहानौ वर्गणाः स्तोकाः। ताभ्यः संख्येयभागहानौ वर्गणा अनन्तगुणाः। ताभ्योऽपि संख्येयगुणहानौ वर्गणा अनन्तगुणाः। ताभ्योऽप्यसंख्येयगुणहानौ वर्गणा अनन्तगुणाः। ताभ्योऽप्यनन्तगुणहानौ वर्गणा अनन्तगुणाः। तथाऽनन्तगुणहानौ पुद्गलाः सर्वस्तोकाः। तेभ्योऽसंख्येयगुणहानौ पुद्गला अनन्तगुणाः। तेभ्योऽपि संख्येयगुणहानौ पुद्गला अनन्तगुणाः। तेभ्योऽपि संख्येयभागहानौ पुद्गला अनन्तगुणाः तेभ्योऽप्यसंख्येयभागहानौ पुद्गला अनन्तगुणाः ॥ २२ ॥

तदेवमुक्तं सप्रपञ्चं स्नेहप्रत्ययं स्पर्धकं, इदानीं नामप्रत्ययस्पर्धकप्रयोगप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणां चिकीर्षुरिदमाह—

× (य० उ० १२) उक्तं च–"थोवा उ वग्गणाउं पढमहाणीइ उवरिमासु कमा। होंति अणंतगुणाउ अनन्तभागो पएसाणं ॥१॥"

नामप्पओगपच्चयगेसु वि नेया अनंतगुणणाए । धणिया देसगुणा सिं, जहन्नजेट्ठे सगे कट्टु ॥ २३ ॥

नाम त्ति–इह नामप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणायां षडनुयोगद्वाराणि । तद्यथा–अविभागप्ररूपणा १, वर्गणाप्ररूपणा २, स्पर्धकप्ररूपणा ३, अन्तरप्ररूपणा ४, वर्गणापट्टलस्नेहाविभागसकलसमुदायप्ररूपणा ५, स्थानप्ररूपणा ६, चेति । तत्र प्रथमतोऽविभागप्ररूपणा क्रियते–औदारिकादिशरीरपञ्चकप्रायोग्यानां परमाणूनां यो रसः, स केवलिप्रज्ञाछेदनकेन छिद्यते । छित्त्वा च निर्विभागा भागाः क्रियन्ते, ते च निर्विभागा भागा गुणपरमाणवो वा भावपरमाणवो वा प्रोच्यन्ते । एषाऽविभागप्ररूपणा (१) । तत्रैकेन स्नेहाविभागेन युक्ताः शरीरयोग्याः पुद्गला न भवन्ति । किमुक्तं भवति ? औदारिकौदारिकबन्धनादीनां पञ्चदशानां बन्धनानामन्यतमस्यापि बन्धनस्य विषया न भवन्तीत्यर्थः । नापि द्वाभ्यां स्नेहाविभागाभ्यां युक्ता । नापि त्रिभिर्नापि संख्येयैर्नाप्यसंख्येयैर्नाप्यनन्तैः, किं त्वनन्तानन्तैरेव सर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणैः, तत्तस्तेषां पुद्गलानां समुदायः प्रथमा वर्गणा, सा च जघन्या । तत एकेन स्नेहाविभागेनाधिकानां पुद्गलानां समुदायो द्वितीया वर्गणा । द्वाभ्यां स्नेहाविभागाभ्यामधिकानां समुदायस्तृतीया वर्गणा । एवमेकैकाविभागवृद्ध्या निरन्तरं तावद्वर्गणा वाच्या यावदभव्येभ्योऽनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तभागकल्पा भवन्ति । एतासां च समुदाय एकं स्पर्धकं । तत इत

गाथार्थः—नाम० सुवि=स्नेह प्रत्यय, नाम प्रत्यय अने प्रयोग प्रत्यय स्पर्धकने विषे, सगे=पोत पोतानी, जहन्नजेट्ठे० कट्टु= जघन्य उत्कृष्ट वर्गणाने पृथक् पृथक् स्थापीने, सिं=तेमना, धणिया देसगुणा=पुद्गलगत संग्रहित स्नेहाविभ ागो, अणंतगुणए= (अनुक्रमे) अनंतगुणा, नेया=जाणवा. २३

ऊर्ध्वमेकेन स्नेहाविभागेनाधिकाः परमाणवो न प्राप्यन्ते, नापि द्वाभ्यां, नापि त्रिभिः, नापि संख्येयैः, नाप्यसंख्येयैः, नाप्यनन्तैः, किंत्वनन्तानन्तैरेव सर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणैरधिकाः प्राप्यन्ते । ततस्तेषां समुदायो द्वितीयस्य स्पर्धकस्य प्रथमा वर्गणा । तस्यां कियन्तः स्नेहाविभागा इति चेदुच्यते–यावन्तः प्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणायां स्नेहाविभागास्तावन्तो द्विगुणाः । तत एकेन स्नेहाविभागेनाधिकानां परमाणूनां समुदायो द्वितीया वर्गणा । द्वाभ्यां स्नेहाविभागाभ्यामधिकानां समुदायस्तृतीया वर्गणा । एवमेकैकस्नेहाविभागवृध्द्या निरन्तरं वर्गणास्तावद्वाच्या यावदभव्येभ्योऽनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तभागकल्पा भवन्ति । ततस्तासां समुदायो द्वितीयं स्पर्धकं । ततः पुनरप्यत ऊर्ध्वमेकेन स्नेहाविभागेनाधिकाः परमाणवो न प्राप्यन्ते, नापि द्वाभ्यां, नापि त्रिभिः, यावन्नापि संख्येयैः, नाप्यसंख्येयैः, नाप्यनन्तैः, किंत्वनन्तानन्तैरेव सर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणैः । ततस्तेषां परमाणूनां समुदायस्तृतीयस्पर्धकस्य प्रथमा वर्गणा । तस्यां कियन्तः स्नेहाविभागा इति चेदुच्यते–यावन्तः प्रथमस्पर्धकसत्कप्रथमवर्गणायां तावन्तस्त्रिगुणाः । तत एकेन स्नेहाविभागेनाधिकानां परमाणूनां समुदायो द्वितीया वर्गणा । द्वाभ्यां स्नेहाविभागाभ्यामधिकानां समुदायस्तृतीया वर्गणा । एवमेकैकस्नेहाविभागवृध्द्या निरन्तरं वर्गणास्तावद्वाच्या यावदभव्येभ्योऽनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तभागकल्पा भवन्ति । ततस्तासां समुदायस्तृतीयं स्पर्धकं । ततः पुनरप्यत ऊर्ध्वमेकेन स्नेहाविभागेनाधिकाः परमाणवो न प्राप्यन्ते, नापि द्वाभ्यां, नापि त्रिभिः, यावन्नापि संख्येयैः, नाप्यसंख्येयैः, नाप्यनन्तैः किंत्वनन्तानन्तैरेव सर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणैरधिकाः प्राप्यन्ते । ततस्तेषां समुदायश्चतुर्थस्य स्पर्धकस्य प्रथमा वर्गणा । तस्यां कियन्तः स्नेहाविभागा इति चेदुच्यते–प्रथमस्पर्धकसत्क-

प्रथमवर्गणायां यावन्तः स्नेहाविभागास्तावन्तश्चतुर्गुणाः । एवं यतिसंख्यं यतिसंख्यं स्पर्धकं चिन्तयितुमारभ्यते, तद्यथा–पञ्चमं दशमं विंशतितमं सहस्रतमं लक्षतमं तावत्संख्यागुणिताः प्रथमस्पर्धकसत्कप्रथमवर्गणागताः स्नेहाविभागास्ततिसंख्यस्य ततिसंख्यस्य स्पर्धकस्यादिवर्गणायां द्रष्टव्याः । तानि च स्पर्धकानि कियन्ति भवन्तीति चेदुच्यते–अभव्येभ्योऽनन्तगुणानि सिद्धानामनन्तभागकल्पानि । अन्तराणि कियन्ति भवन्तीति चेदुच्यते–रूपोनस्पर्धकतुल्यानि । तथाहि–चतुर्णामन्तराणि त्रीण्येव भवन्ति, नोनाधिकानि । एवमत्रापि भावनीयं ।

वर्गणास्वानन्तर्येण द्वे वृद्धी भवतः । तद्यथा–एकैकाविभागवृद्धिः (१) अनन्तानन्तविभागवृद्धिश्च (२) । तत्रैकैकाविभागवृद्धिः स्पर्धकगतानां वर्गणानां यथोत्तरं (१), अनन्तानन्तविभागवृद्धिः पाश्चात्यस्पर्धकगतचरमवर्गणापेक्षयोत्तरस्पर्धकस्यादिवर्गणायाः (२) । पारंपर्येण पुनः प्रथमस्पर्धकसत्कप्रथमवर्गणापेक्षया षडपि वृद्धयोऽवगन्तव्याः । तद्यथा–अनन्तभागवृद्धिः, असंख्येयभागवृद्धिः, संख्येयभागवृद्धिः, संख्येयगुणवृद्धिः, असंख्येयगुणवृद्धिः, अनन्तगुणवृद्धिश्चेति । तदेवं कृता वर्गणाप्ररूपणा (१) स्पर्धकप्ररूपणा (२) अन्तरप्ररुपणा (३) च ।

सांप्रतं वर्गणागतपुद्गलस्नेहाविभागसमुदायप्ररूपणा क्रियते–तत्र प्रथमस्य शरीरस्थानस्य प्रथमायां वर्गणायां स्नेहाविभागाः स्तोकाः । ततो द्वितीयस्य शरीरस्थानस्य प्रथमवर्गणायामनन्तगुणाः। तेभ्योऽपि तृतीयशरीरस्थानस्य प्रथमवर्गणायामनन्तगुणाः। एवमनन्तगुणया श्रेण्या सर्वाण्यपि स्थानानि नेतव्यानि। शरीरस्थानानि च वक्ष्यमाणस्पर्धकसंख्याप्रमाणानि।

संप्रति शरीरपरमाणूनामेव तत्तद्बन्धनयोग्यानामल्पबहुत्वमभिधीयते–तत्रौदारिकौदारिकबन्धनयोग्याः पुद्गलाः सर्वस्तोकाः।

तेभ्य औदारिकतैजसबन्धनयोग्या अनन्तगुणाः । तेभ्योऽप्यौदारिककार्मणबन्धनयोग्या अनन्तगुणाः । तेभ्योऽप्यौदारिकतैजसकार्मणबन्धनयोग्या अनन्तगुणाः । तथा वैक्रियवैक्रियबन्धनयोग्याः पुद्गलाः सर्वस्तोकाः । तेभ्योऽपि वैक्रियतैजसबन्धनयोग्या अनन्तगुणाः । तेभ्योऽपि वैक्रियकार्मणबन्धनयोग्या अनन्तगुणाः । तेभ्योऽपि वैक्रियतैजसकार्मणबन्धनयोग्या अनन्तगुणाः । तथा आहारकाहारकबन्धनयोग्याः पुद्गलाः सर्वस्तोकाः । तेभ्योऽप्याहारकतैजसबन्धनयोग्या अनन्तगुणाः । तेभ्योऽप्याहारककार्मणबन्धनयोग्या अनन्तगुणाः । तेभ्योऽप्याहारकतैजसकार्मणबन्धनयोग्या अनन्तगुणाः । तेभ्योऽपि तैजसतैजसबन्धनयोग्या अनन्तगुणाः । तेभ्योऽपि तैजसकार्मणबन्धनयोग्या अनन्तगुणाः । तेभ्योऽपि कार्मणकार्मणबन्धनयोग्या अनन्तगुणा इति (५)।

सांप्रतं स्थानप्ररूपणावसरः । तत्र प्रथमं स्पर्धकमादौ कृत्वाऽभव्येभ्योऽनन्तगुणैः सिद्धानन्तकल्पैर्भागैरनन्तैः स्पर्धकैरेकं प्रथमं शरीरप्रायोग्यं स्थानं भवति । ततस्ततिभिरेव स्पर्धकैरनन्तभागवृद्धैर्द्वितीयं शरीरस्थानं भवति । पुनस्ततिभिरेव स्पर्धकैरनन्तभागवृद्धैस्तृतीयं शरीरस्थानं । एवं निरन्तरं पूर्वस्मात् पूर्वस्मादुत्तरोत्तराणि अनन्तभागवृद्धानि शरीरस्थानान्यंगुलमात्रक्षेत्रासंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणानि वाच्यानि । एतानि च समुदितानि एकं कंडकमभिधीयते । तस्माच्च कंडकादुपरि यदन्यच्छरीरस्थानं तत्कंडकगतचरमशरीरस्थानापेक्षयाऽसंख्येयभागवृद्धं । तस्मात्पराणि पुनर्यान्यन्यानि शरीरस्थानानि अंगुलमात्रक्षेत्रासंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणानि तानि सर्वाण्यपि यथोत्तरमनन्तभागवृद्धान्यवसेयानि । एतानि च समुदितानि द्वितीयं कंडकं । तस्माच्च द्वितीयात्कंडकादुपरि यदन्यच्छरीरस्थानं तत्पुनरपि द्वितीयकंडकगतचरमशरीरस्थानापेक्षयाऽसंख्येयभागवृद्धं । ततः पराणि पुनरप्यन्यानि यानि शरीरस्थानानि अंगुलमात्रक्षेत्रासंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणानि तानि

सर्वाण्यपि यथोत्तरमनन्तभागवृद्धान्यवसेयानि । एतानि च समुदितानि तृतीयं कंडकं । ततः पुनरप्येकमसंख्येयभागवृद्धं । ततः पुनरपि कंडकमात्राणि शरीरस्थानानि यथोत्तरमनन्तभागवृद्धान्यवसेयानि । एवमसंख्येयभागान्तरितानि अनन्तभागवृद्धकंडकानि तावद्वाच्यानि यावदसंख्येयभागवृद्धानामपि स्थानानामन्तरान्तराभाविनां कंडकं भवति । कंडकं नाम समयपरिभाषयाऽङ्गुलमात्रक्षेत्रासंख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणा संख्याऽभिधीयते । ततः पराणि यथोत्तरमनन्तभागवृद्धानि कंडकमात्राणि शरीरस्थानानि वाच्यानि । ततः परमेकं संख्येयभागवृद्धं स्थानं । ततो मूलादारभ्य यावन्ति स्थानानि प्रागतिक्रान्तानि तावन्ति तथैवा (तत्रैवा) भिधाय पुनरप्येकं संख्येयभागवृद्धं स्थानमभिधानीयं । एवं वक्ष्यमाणक्रमेण षट्स्थानकवृध्द्या शरीरस्थानानि तावद्वक्तव्यानि यावदसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि भवन्ति । (१) उक्ता नामप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा ।

×(य०उ०१३)एतानि चैवं सङ्ख्येयभागाधिकानि तावद्वाच्यानि यावत् कण्डकं परिपूर्यते। तत उक्तक्रमेण भूयोपि सङ्ख्येयभागाधिकस्थानप्रसङ्गे सङ्ख्येयगुणाधिकं स्थानमेकं वाच्यं । ततो भूयोऽपि मूलादारभ्य तावन्ति शरीरस्थानानि वाच्यानि । ततः पुनरप्येकं सङ्ख्येयगुणाधिकं स्थानं वाच्यं । अमून्यप्येवं सङ्ख्येयगुणाधिकानि स्थानानि तावद्वक्तव्यानि यावत्कण्डकमात्राणि भवन्ति । ततः पूर्वपरिपाट्या सङ्ख्येयगुणाधिकस्थानप्रसङ्गेऽसङ्ख्येयगुणाधिकं स्थानं वक्तव्यं । ततः पुनरपि मूलादारभ्य प्रागतिक्रान्तान्यभिधेयानि । ततो भूयोऽप्येकमसङ्ख्येयगुणाधिकं वक्तव्यं । एवममून्यसङ्ख्येयगुणाधिकानि स्थानानि कण्डकमात्राणि वक्तव्यानि । ततः पूर्वपरिपाट्याऽसङ्ख्येयगुणाधिकस्थानप्रसङ्गेऽनन्तगुणाधिकमेकं वक्तव्यं । ततः प्रागतिक्रान्तसर्वाभिधानादिक्रमेणानन्तगुणाधिकान्यपि कण्डकमात्राणि वक्तव्यानि । तेषामुपरि पञ्चवृद्ध्यात्मकानि स्थानानि भूयोऽपि वक्तव्यानि । यत्त्वनन्तगुणवृद्धं स्थानं तन्न प्राप्यते, षट्स्थानकस्य परिसमाप्तत्वात् । एवमसङ्ख्येयानि षट्स्थानकानि शरीरस्थानेषु भवन्ति । सर्वाण्यपि च शरीरस्थानान्यस-

सांप्रतं प्रयोगप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणा क्रियते–तत्र प्रयोगो योगः तत्स्थानवृद्ध्या यो रसः कर्मपरमाणुषु केवलयोगप्रत्ययतो बध्यमानेषु परिवर्धते स्पर्धकरूपतया तत्प्रयोगप्रत्ययस्पर्धकं । उक्तं च–"होइ पओगो जोगो तट्ठाणविवद्धणाए जो उ रसो । परिवड्ढेई जीवे पयोगफड्डुं तयं बेंति ॥ १ ॥" तस्य पञ्चानुयोगद्वाराणि। तद्यथा–अविभागप्ररूपणा (१), वर्गणाप्ररूपणा(२), स्पर्धकप्ररूपणा (३), अन्तरप्ररूपणा (४), स्थानप्ररूपणा (५) चेति । एताश्च यथा नामप्रत्ययस्पर्धके प्रागभिहितास्तथैवात्राप्यवगन्तव्याः । तथाऽत्र प्रथमस्थानसत्कप्रथमवर्गणायां सकलपुद्गलस्नेहाविभागाः सर्वस्तोकाः । तेभ्यो द्वितीयस्थानसत्कप्रथमवर्गणायामनन्तगुणाः । तेभ्योऽपि तृतीयस्थानसत्कप्रथमवर्गणायामनन्तगुणाः । एवं तावन्नेयं यावदन्तिमं स्थानं । तथा च प्रयोगप्रत्ययस्पर्धकमेवाधिकृत्यान्यैत्राप्युक्तं–" अविभागवग्गफड्डुग अंतरठाणाइँ एत्थ जहपुव्वि । ठाणाइँ वग्गणाओ अणंतगुणणाऍ गच्छंति ॥ १ ॥" अत्रादिशब्दात्कंडकादिपरिग्रहः । इदानीमल्पबहुत्वमुच्यते–स्नेहप्रत्ययस्पर्धकस्य जघन्यवर्गणायां सकलपुद्गलगताः स्नेहाविभागाः सर्वस्तोकाः । ततस्तस्यैव स्नेहप्रत्ययस्पर्धकस्योत्कृष्टवर्गणायामनन्तगुणाः । तेभ्योऽपि नामप्रत्ययस्पर्धकस्य जघन्यवर्गणायामनन्तगुणाः । तेभ्योऽपि तस्यैवोत्कृष्टवर्गणायामनन्तगुणाः । तेभ्योऽपि प्रयोगप्रत्ययस्पर्धकस्य जघन्यवर्गणायामनन्तगुणाः । तेभ्योऽपि तस्यैवोत्कृष्टवर्गणायामनन्तगुणाः । उक्तं च–"तिण्हं पि फड्डुगाणं जहण्ण उक्कोसगा कमा ठविउं । णेयाणंतगुणाओ उ वग्गणा णेहफड्डाओ ॥१॥" संप्रति गाथार्थो विव्रियते–नामप्रत्ययेषु प्रयोगप्रत्ययेषु

ङ्क्ष्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि भवन्ति । × (य० उ० १४) अत एवैतदाधिक्यान्नामप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणायां प्रयोगप्रत्ययस्पर्धकप्ररूपणायां च प्रत्येकमष्टावप्यनुयोगद्वाराणि भण्यन्ते । १ पञ्चसंग्रहे । २ षट्स्थानक ।

ष्वपि च स्पर्धकेषु अविभागवर्गणादयः प्राग्वन्नेयाः । तथाहि–स्नेहप्रत्ययस्पर्धक इवात्रापि अविभागवर्गणा एकैकस्नेहाविभाग-वृद्धपरमाणु वर्गणा अनन्ताः । तथा स्तोकेन स्नेहेन बद्धाः पुद्गला बहव इतरे स्तोकाः स्तोकतराः । यच्च 'असंखलोगे दुगुणहीणा' इति तदत्रासंभवान्न संबध्यते । स्नेहप्रत्ययस्पर्धकेऽपि हि तत् यथासंभवं स्तोकमेव कालं यावत् योजितं । न पुनः सर्वत्रापि । तथा 'सिं ति' एषां स्नेहप्रत्ययनामप्रयोगप्रत्ययस्पर्धकानां प्रत्येकं स्वके आत्मीये जघन्योत्कृष्टे वर्गणे बुद्धया पृथक् कृत्वा ततः क्रमेण तासु । 'धणिया देसगुण त्ति' धणिया निचिता देशगुणा निर्विभागभागरूपाः सकलपुद्गलगतस्नेहाविभागा इत्यर्थः । तेऽनन्तगुणनयाऽनन्तगुणिततया ज्ञातव्याः । तदेवं कृता पुद्गलानां परस्परसंबन्धहेतुभूतस्य स्नेहस्य प्ररूपणा ।

संप्रति बन्धनकरणसामर्थ्यतो बध्यमानकर्मपुद्गलानां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशविभागो मन्दमतीनां सुखावबोधाय मोदकदृष्टान्तेन विभाव्यते–यथा किल कश्चिन्मोदको वातविनाशिद्रव्यनिष्पन्नः प्रकृत्या वातमुपशमयति, पित्तोपशमकद्रव्यनिष्पन्नः पित्तं, कफापहारिद्रव्यनिष्पन्नः कफमित्येवंस्वरूपा प्रकृतिर्मोदकस्य । तथा तस्यैव स्थितिः कस्यचिद्दिनमेकं, अपरस्य दिनद्वयं, अन्यस्य मासादिकं कालं यावत् । तथा तस्यैव रसः स्निग्धमधुरादिः कस्यचिदेकस्थानकोऽपरस्य द्विस्थानक इत्यादि । तथा तस्यैव प्रदेशाः कणिक्कादिरूपाः कस्यचिदेकप्रसृतिमाणाः कस्यचिद्विप्रसृतिप्रमाणा इत्यादि । तथा कर्मणोऽपि किञ्चिज्ज्ञानमावृणोति, किञ्चिदर्शनं, किञ्चित्सुखदुःखे जनयति, किञ्चिन्मोहयतीत्येवं स्वरूपा प्रकृतिः । तथा स्थितिस्तस्यैव कर्मणः कस्यचित्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा, अपरस्य सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा इत्यादि । तथा रसः कस्यचिदेकस्थानकोऽपरस्य द्विस्थानक इत्यादि । तथा प्रदेशाः कस्यचिद् बहुतराः कस्यचिच्च बहुतमा इति ॥ २३ ॥

पुद्गलद्रव्यनो परस्पर सम्बन्ध करनार स्नेहप्ररूपणानी समजुती.

१ स्नेहप्रत्यय स्पर्धक प्ररूपणा, २ नामप्रत्यय स्पर्धक प्ररूपणा, ३ प्रयोगप्रत्यय स्पर्धक प्ररूपणा. एम त्रण प्रकारे स्नेहप्ररूपणा

(१) स्नेहप्रत्यय स्पर्धक प्ररूपणा.

(स्नेहप्रत्यय=परमाणुमां रहेला स्नेह (स्निग्ध-रुक्षपणा)ना निमित्तवाळा स्पर्धकनी प्ररूपणा.

१	स्नेहविभागयुक्त अनंता परमाणुनी	१ ली वर्गणा	एम एक एक स्नेहाविभाग वधारतां वधारतां अनंत स्नेहाविभाग युक्त अनंत परमणुनी अनंतमी वर्गणा. ए अनंती वर्गणानुं १ स्नेह-प्रत्यय स्पर्धक.
२	,, ,, ,,	२ जी वर्गणा	
३	,, ,, ,,	३ जी वर्गणा	

आ स्पर्धकमां १ अनंतरोपनिधा अने २ परंपरोपनिधा. एम बे प्रकारनी प्ररूपणा.

(१) अनंतरोपनिधा=अनुक्रमे आवती वर्गणामां पूर्व वर्गणाना परमाणुनी अपेक्षाए पछीनी तरतनी वर्गणामां परमाणुनुं हीनाधिकपणुं कहेवुं ते.

प्रथम वर्गणाथी अनंती वर्गणाओ अनुक्रमे			असंख्येयभागहीन	१
त्यार पछीनी	,,	,,	संख्येयभागहीन	२
,,	,,	,,	संख्येयगुणहीन	३
,,	,,	,,	असंख्येयगुणहीन	४
,,	,,	,,	अनंतगुणहीन	५

ए प्रमाणे स्नेहप्रत्ययस्पर्धकनी वर्गणाओमां अनंतरपणे पांच हानिओ छे.

(२) परंपरोपनिधा=प्रथम वर्गणाना परमाणुनी अपेक्षाए वचमां अमुक वर्गणाओ मूकीने पछीनी वर्गणाना परमाणुनुं हीनाधिकपणुं कहेवुं ते. ते बे प्रकारे (१) पूर्वोक्त पांच हानिने विषे दरेकनी प्रथमनी वर्गणानी अपेक्षाए द्विगुणहानि (२) पूर्वोक्त पांच हानिने विषे प्रथमनी वर्गणानी अपेक्षाए संभवती हानिओ.

(१) असंख्येभागहानिमां असंख्यातलोकाकाश प्रदेश प्रमाण वर्गणा गये थके द्विगुणहीन (अर्धा) परमाणु. संख्येयभाग हानिमां संख्याती वर्गणाओ गये थके द्विगुणहीन (अर्धा) परमाणु. बाकीनी त्रण हानिओमां द्विगुणहानि संभवे नहि.

(२) असंख्येयभाग हानिमां प्रथम वर्गणानी अपेक्षाए केटलीक असंख्येय भागहीन १, केटलीक संख्येयभागहीन २, केटलीक संख्येयगुणहीन ३, केटलीक असंख्येयगुणहीन ४, केटलीक अनंतगुणहीन ५ (एम पांच हानिओ)

संख्येयभाग हानिमां	प्रथम वर्गणानी अपेक्षाए असंख्येयभागहानि विना पछीनी ४ हानिओ.									
संख्येयगुणहानिमां	,,	,,	,,	प्रथमनी	२	हानि	,,	,,	३	,,
असंख्येयगुणहानिमां	,,	,,	,,	,,	३	,,	,,	,,	२	,,
अनंतगुणहानिमां	,,	,,	,,	,,	४	,,	,,	,,	१	हानि.

(२) नामप्रत्यय स्पर्धक प्ररूपणा.

नामप्रत्यय स्पर्धक=बन्धननामकर्मना उदयथी परस्पर बंधाएला शरीरपुद्गलोना स्नेहना निमित्तवाळा स्पर्धकनी प्ररूपणा. आ प्ररूपणामां ६ अनुयोगद्वार नीचे प्रमाणेः—

(१) अविभागप्ररूपणा=औदारिकादि पांच शरीरप्रायोग्य परमाणुओना रसनो निर्विभाज्य अंश ते अविभाग (गुणपरमाणु-भाव पर०)

(२) वर्गणाप्ररूपणा=सर्व जीवथी अनंतगुणा अविभागोनी प्रथम वर्गणा (प्रथम शरीरस्थानमां सौथी ओछा अने समान स्नेहवाळा जेटला परमाणुओ तेना समुदाय रूप)

(३) स्पर्धकप्ररूपणा=प्रथम वर्गणा पछी एक एक स्नेहाविभागे वधता वधता पुद्गलोना समुदायरूप अभव्यथी अनन्तगुणी वर्गणाओनुं प्रथम स्पर्धक.'प्रथम स्पर्धकनी १ ली वर्गणा करतां द्वितीय स्पर्धकनी पहेली वर्गणामां बमणा स्नेहाविभाग, त्रीजा स्पर्धकनी पहेलीमां त्रणगुणां, ए प्रमाणे जेटलामुं स्पर्धक तेटला गुणा स्नेहाविभाग ते स्पर्धकनी प्रथम वर्गणामां होय.

(४) अन्तरप्ररूपणा=पूर्व स्पर्धकनी अन्त्य वर्गणा अने द्वितीय स्पर्धकनी प्रथम वर्गणा वच्चे सर्वजीवथी अनन्तगुण रसाविभाग जेटलु अन्तर. एक स्थानमां स्थानना एक हीन स्पर्धक प्रमाण अन्तरो.

(अनंतरवृद्धि) स्पर्धकगत वर्गणाओमां अनंतरपणे एक एक अविभागनी वृद्धि अने प्रथम स्पर्धकनी अन्त्य अने पर स्पर्धकनी प्रथम वर्गणामां अनंतरपणे सर्वजीवथी अनंतगुण अविभागनी वृद्धि.

(परंपरवृद्धि) प्रथम स्पर्धकनी प्रथम वर्गणानी अपेक्षाए परंपराए ६ वृद्धिओ (१) अनंतभागवृद्धि (२) असंख्यातभागवृद्धि (३) संख्यातभागवृद्धि (४) संख्यातगुणवृद्धि (५) असंख्यातगुणवृद्धि (६) अनन्तगुणवृद्धि.

(५) वर्गणागतपुद्गलस्नेहाविभागसमुदायप्ररूपणा=प्रथम शरीरस्थाननी प्रथम वर्गणामां स्नेहाविभाग अल्प, तेथी बीजा शरीरस्थाननी प्रथम वर्गणामां अनन्तगुण, ए प्रमाणे अन्त्य शरीरस्थान सुधी कहेवुं.

(६) स्थानप्ररूपणा=अभव्यथी अनंतगुण स्पर्धकनुं प्रथम स्थान, त्यार पछीना स्थानोमां षट्स्थानना क्रमथी स्पर्धक वृद्धि जाणवी. सर्व शरीरस्थानो असंख्यलोकाकाश प्रदेश प्रमाण. सर्व षट्स्थानो असंख्य.

(३) प्रयोगप्रत्यय स्पर्धक प्ररूपणा.

प्रयोगप्रत्यय स्पर्धक प्ररूपणा=योगना निमित्त वडे ग्रहण करेलां पुद्गलोना स्नेहसंबंधी स्पर्धकनी प्ररूपणा.

आ प्ररूपणामां पांच अनुयोगो नीचे प्रमाणेः—(१) अविभागप्ररूपणा (२) वर्गणाप्ररूपणा (३) स्पर्धकप्ररूपणा (४) अन्तरप्ररूपणा (५) स्थानप्ररूपणा. आ पांचे प्ररूपणाओ नामप्रत्यय स्पर्धकमां कह्या प्रमाणे जाणवी. प्रथम स्थानसंबन्धि प्रथम वर्गणामां सर्व पुद्गलना स्नेहाविभाग थोडा, तेथी बीजा शरीरस्थाननी प्रथम वर्गणाना सर्व स्नेहाविभाग अनंतगुण. ए प्रमाणे सर्वान्तिम शरीरस्थाननी प्रथम वर्गणा सुधी अनुक्रमे अनंतगुण अनंतगुण कहेवा.

त्रण स्नेह स्पर्धकोमां प्रथमान्तिम वर्गणागत सर्व स्नेहनुं अल्पबहुत्व.

१ स्नेहप्रत्यय स्पर्धकनी प्रथम वर्गणामां अल्प तेथी २ तेनी अन्त्य वर्गणामां अनंतगुण स्नेहाविभाग.
३ तेथी नाम ,, ,, ,, ,, अनंतगुण ,, ४ ,, ,, ,, ,, ,,
५ ,, प्रयोग ,, ,, ,, ,, ,, ,, ६ ,, ,, ,, ,, ,,

१५ बन्धनयोग्य शरीरपुद्गलोना अल्पबहुत्वनो यन्त्र.

१	औदारिक औदारिक बंधन योग्य	स्तोक	१	आहारक आहारक बंधन योग्य	स्तोक
२	,, तैजस ,, ,,	अनंतगुण	२	,, तैजस ,, ,,	अनंतगुण
३	,, कार्मण ,, ,,	,,	३	,, कार्मण ,, ,,	,,
४	,, तैजस कार्मण ,, ,,	,,	४	,, तैजस कार्मण ,, ,,	,,
१	वैक्रिय वैक्रिय बंधन योग्य	स्तोक	५	तैजस तैजस ,, ,,	,,
२	,, तैजस ,, ,,	अनंतगुण	६	,, कार्मण ,, ,,	,,
३	,, कार्मण ,, ,,	,,	७	कार्मण ,, ,, ,,	,,
४	,, तैजस कार्मण ,, ,,	,,			

तत्र प्रकृतिभेदत एव कर्मणां मूलोत्तरविभागो भवति नान्यथेत्यावेदयन्नाह—

मूलुत्तरपगईणं, अणुभागविसेसओ हवइ भेओ। अविसेसियरसपगइउ, पगईबंधो मुणेयव्वो ॥२४॥

मूलु त्ति—इह प्रकृतिशब्दो भेदपर्यायोऽप्यस्ति। तथा चाह भाष्यकृत्—"अहवा पयडी भेओ" इति। ततो मूलोत्तरप्रकृतीनां मूलोत्तरभेदानां कर्मणः संबन्धिनामनुभागविशेषतः स्वभावविशेषतो ज्ञानावारकत्वादिलक्षणात् भेदो भवति, नान्यथा। अनुभागशब्दश्चात्र स्वभावपर्यायोऽवगन्तव्यः। तदुक्तं चूर्णौ—" अनुभागो त्ति सहावो "[×] इति। इह बन्धनकरणे प्रकृतिबन्धादयः प्रत्येकमुपरि सप्रपञ्चं वक्तव्याः। प्रकृत्यादयश्च प्रतिकर्म संकीर्णा इति कश्चिद्व्यामुह्येत, अतस्तन्मोहापनोदाय प्रकृतिबन्धं तुशब्दोपलक्षणद्वारेण अन्यांश्च स्थितिबन्धादीन् वैचित्र्येन (वैचिच्येण) (वैविक्त्येनं) स्पष्टयन्नाह—'अविसेसियेत्यादि'। रसः स्नेहोऽनुभाग इत्येकार्थः। तस्य प्रकृतिः स्वभावः। अविशेषिताऽविवक्षिता रसप्रकृतिः, उपलक्षणत्वात् स्थित्यादयोऽपि, यस्मिन्न विवक्षितो रसबन्धोऽविशेषितरसप्रकृतिः प्रकृतिबन्धो ज्ञातव्यः। तुशब्दस्याधिकार्थसंसूचनात् अविवक्षितरसप्रकृतिप्रदेशः स्थितिबन्धः, अविवक्षितप्रकृतिस्थितिप्रदेशो रसबन्धः, अविवक्षितप्रकृतिस्थितिरसः प्रदेशबन्ध इत्यपि द्रष्टव्यं। प्रकृतिबन्धे च

×(य० उ० १५) भवति हि स्वभावभेदाद्वस्तुभेदो यथा तृणदुग्धादीनां, तथेह दलिकस्य कर्मरूपतया तुल्यस्यापि स्वभावभेदाद् भेद इति। × १ (य० उ० १६) यत्तु—" ठिइबंधु दलस्स ठिई पएसबंधो पएसगहणं जं। ताण रसो अणुभागो तस्समुदाओ पगइबंधो

गाथार्थः—मूलुत्तरपगईणं=(कर्मना) मूलभेद अने उत्तरभेदनो, भेओ=भेद, अणुभागविसेसओ=अनुभाग (स्वभाव) विशेषथी हवइ=थाय छे. अवि० इउ=अविवक्षित रस प्रकृत्यादिरूप, पगईबंधो=प्रकृतिबंध मुणेयव्वो=जाणवो. २४

स्थित्याद्यंशाविवक्षणस्य कर्तुमशक्यत्वादिति । प्रकृतिबन्धे च विंशत्यधिकं शतमधिक्रियते, भूयस्कारादिविशेषश्चात्रत्योऽग्रे वक्ष्यते । यावन्त्यः प्रकृतयो बन्धमायान्ति, यश्च यासां बन्धं प्रति स्वामी, तदेतत्सर्वं शतकादवसेयं । प्रकृतिप्रदेशबन्धौ च योगतो भवतः "जोगा पयडिपएसं" इतिवचनात् । तत्र प्रकृतिबन्ध उक्तः । साम्प्रतं प्रदेशबन्धो वक्तुमवसरप्राप्तः । तत्राष्टविधबन्धकेन जन्तुना यदेकेनाध्यवसायेन चित्रतागर्भेण गृहीतं दलिकं तस्याष्टौ भागा भवन्ति, सप्तविधबन्धकस्य तु सप्त भागाः, षड्विधबन्धकस्य षड्भागाः, एकविधबन्धकस्य एको भागः ॥ २४ ॥

॥१॥" इति पञ्चसंग्रहे प्रकृतिबन्धलक्षणमुक्तं, तत्कार्षायिककर्म प्रतीत्य संभवदपि नेहोपयुज्यते, स्थित्यादिसमुदायरूपप्रकृतिबन्धचिन्तने अयं च प्रकृतिबन्धश्चतुर्धा—जघन्योऽजघन्य उत्कृष्टोऽनुत्कृष्टश्च । तत्र जघन्यः प्रकृतिबन्ध उपशान्तमोहादिगुणस्थानत्रये, तत्रैकस्या एव प्रकृतेर्बन्धात्, प्रकृतिबन्धमाश्रित्य चैकप्रकृतिबन्धस्यैव सर्वस्तोकत्वेन जघन्यत्वात् । उपशान्तमोहाद् भ्रष्टस्याजघन्यो बन्धः, मूलप्रकृतीरधिकृत्य षडादीनामुत्तरप्रकृतीरधिकृत्य सप्तदशादीनां बन्धसंभवात् । संज्ञिनि मिथ्यादृष्टावुत्कृष्टः, मूलप्रकृतीनामष्टानामुत्तरप्रकृतीनां चतुःसप्ततेर्बन्धात् । ततः स्तोकस्तोकतराणां मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां वा यो बन्धः सोऽनुत्कृष्टः । उत्कृष्टबन्धात् परिणामह्रासेन पततोऽनुत्कृष्टो बन्धः सादिः । जघन्यबन्धादबन्धाद्वा प्रतिपततोऽजघन्यो बन्धः सादिः । इत्येवं सादित्वविशेषादजघन्यानुत्कृष्टयोर्भेदो भावनीयः । यद्वा पूर्वपश्चिमदिशोरिवावधिभेदाज्जघन्यमवधीकृत्य हि यावदुत्कृष्टस्तावदजघन्यः, उत्कृष्टमवधीकृत्य च यावज्जघन्यस्तावदनुत्कृष्ट इति । अनेनैव विशेषहेतुना सादित्वविशेषाभावेऽप्यजघन्यानुत्कृष्टभेद उपलक्ष्यते । यत्तु—"उक्कोसा परिवडिए साइ अणुक्कोसओ जहन्नाओ । अब्बंधाओ वियरो तदभावे दो वि अविसेसा ॥१॥" इत्युक्तं तत्सादित्वकृत-

स्फुटविशेषोपलम्भाभावाभिप्रायेण । तत्राध्रुवबन्धिनीनां सातवेदनीयादीनां ७३ जघन्यादयश्चत्वारोऽपि भेदाः सादयोऽध्रुवाश्च भवन्ति । ध्रुवबन्धिनीनां तु संभविनावजघन्यानुत्कृष्टावनादी ध्रुवौ साद्यध्रुवावपि च भवतः । जघन्योत्कृष्टौ तु ध्रुवबन्धिनीनामपि कादाचित्कत्वेन साद्यध्रुवावेव भवतः । तथा मूलप्रकृतिष्वायुषो बन्धः सादिरध्रुव एव च, अध्रुवबन्धित्वात् । वेदनीयस्यानादिरध्रुवो ध्रुवश्च, तत्रानादित्वं सार्वदिकत्वात्, ध्रुवोऽभव्यानां कदापि व्यवच्छेदाभावात्, अध्रुवो भव्यानां अयोगिनि व्यवच्छेदात् । शेषकर्मणां साद्यादिश्चतुर्विधः । तत्रोपशान्तमोहगुणस्थानात् पततः सादिः, तत्स्थानमप्राप्तस्यानादिः, ध्रुवाध्रुवावभव्यभव्यापेक्षया । उत्तरप्रकृतिषु ध्रुवबन्धिनीनां सर्वासामपि ४७ साद्यादिश्चतुर्विधः । तत्र स्वस्वाबन्धस्थानभ्रष्टानां सादिः, अबन्धस्थानं च तासां मध्ये मिथ्यात्वस्त्यानर्द्धित्रिकानन्तानुबन्धिनां मिश्रादिगुणस्थानजातं, द्वितीयकषायाणां देशविरतादि, तृतीयकषायाणां प्रमत्तादि, निद्राप्रचलागुरुलघुनिर्माणतैजसोपघातवर्णादिचतुष्टयकार्मणभयजुगुप्सानामनिवृत्तिबादरादि, संज्वलनानां सूक्ष्मसंपरायादि, ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयानामुपशान्तमोहगुणस्थानमिति । सादित्वे चानादित्वं ध्रुवं । तथा स्वस्वावबन्धस्थानमप्राप्तानामनादिः । ध्रुवोऽभव्यानां । भव्यानां ध्रुवः । अध्रुवबन्धिनीनां तु ७३ साद्यध्रुव एवेत्युक्तमेव । तथा नरकत्रिकदेवत्रिकवैक्रियद्विकमित्यष्टानां प्रकृतीनां बन्धे विकलेन्द्रियैकेन्द्रिया न योग्या इति तदितरासामेव ते बन्धस्वामिनः । तथा मनुष्यत्रिकमुच्चैर्गोत्रं प्रागुक्ताश्चाष्टाविति द्वादशानां बन्धे तेजस्कायिकवायुकायिका अयोग्याः । आहारकद्विकजिननामबन्धे सर्वेऽपि तिर्यञ्चोऽयोग्याः । वैक्रियद्विकाहारकद्विकनरकत्रिकदेवत्रिकसूक्ष्मत्रिकविकलजातित्रिकरूपाणां षोडशप्रकृतीनां बन्धे देवा अयोग्याः । एतासामेवातपस्थावरैकेन्द्रियजातिसहितानां बन्धे नारका अयोग्याः । तथा च तेजस्कायिकवायुकायिकाः पञ्चोत्तरशतप्रकृतीनां बन्धस्वामिनः । शेषैके-

संप्रत्युत्तरप्रकृतीनां भागविभागोपदर्शनार्थमाह—

जं सव्वघाइपत्तं, सगकम्मपएसणंतमो भागो। आवरणाण चउद्धा, तिहा य अह पंचहा विग्घे ॥२५॥

जं ति--यत् कर्मदलिकं सर्वघातिप्राप्तं केवलज्ञानावरणीयादिरूपसर्वघातिप्रकृतिषु गतं तत् स्वकर्मप्रदेशानामनन्ततमो भागःस्वकीयाया ज्ञानावरणादिरूपाया मूलप्रकृतेर्यो मौलो भागस्तस्यानन्ततमो भाग इत्यर्थः। कात्र युक्तिरिति चेदुच्यते—इह्हाष्टानामपि मूलप्रकृतीनां प्रत्येकं ये स्निग्धतराः परमाणवस्ते स्तोकाः।ते च स्वस्वमूलप्रकृतिपरमाणूनामनन्ततमो भागः।त एव च सर्वघातिप्रकृतियोग्या इति यत्सर्वघातिप्राप्तं तत् स्वमूलप्रकृतिप्रदेशानामनन्ततमो भागः । तस्मिंश्चानन्ततमे भागेऽपसारिते शेषं यद्दलिकं तत्सर्वघातिप्रकृतिव्यतिरिक्तेभ्यः तत्कालबध्यमानेभ्यः स्वस्वमूलप्रकृत्यवान्तरभेदेभ्यो विभज्य विभज्य दीयते। तथाहि-'आवरणेत्यादि' आवरणयोर्ज्ञानावरणदर्शनावरणयोःप्रत्येकं सर्वघातिप्रकृतिनिमित्तमनन्ततमे भागेऽपसारिते सति शेषस्य दलिकस्य यथाक्रमं चतुर्धा त्रिधा च विभागः क्रियते, कृत्वा च शेषदेशघातिप्रकृतिभ्यो दीयते । तथा विघ्नान्तराये यो मूलभागः स समग्रोऽपि पञ्चधा कृत्वा

न्द्रियविकलेन्द्रिया नवोत्तरशतप्रकृतीनां, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः सप्तदशोत्तरशतप्रकृतीनां, देवाश्चतुरुत्तरशतसङ्ख्यानां, नारकाश्चैकोत्तरशतसङ्ख्यानामिति स्थितं । अन्योऽपि विशेषो ग्रन्थान्तरादभ्यूह्यः, विस्तरभयान्नेह तन्यते ॥

गाथार्थ—जं=जे (कर्मदल), सव्वघाइपत्तं=सर्वघातीने प्राप्त थयुं ते, सग० भागो=स्वकर्मप्रदेशना अनन्तमा भागे छे. (शेष कर्मदल) आवरणाण=ज्ञानावरण अने दर्शनावरणमां (अनुक्रमे), चउद्धा तिहा य=चार अने त्रण भागे, अह=अने, विग्घे=अन्तराय कर्ममां, पंचहा=पांच भागे वहेंचाय. २५

दानान्तरायादिभ्यो दीयते। इयमत्र भावना--ज्ञानावरणीयस्य स्थित्यनुसारेण यो मूलभाग आभजति, तस्यानन्ततमो भागः केवलज्ञानावरणाय दीयते। शेषस्य चत्वारो भागाः क्रियन्ते, ते च मतिज्ञानावरणश्रुतज्ञानावरणावधिज्ञानावरणमनःपर्यवज्ञानावरणेभ्यो दीयन्ते। दर्शनावरणीयस्यापि यो मूलभाग आभजति तस्यानन्ततमं भागं षोढा कृत्वा निद्रापञ्चककेवलदर्शनावरणाभ्यां सर्वघातिभ्यां प्रयच्छति (जीवः)। शेषस्य च त्रयो भागाः क्रियन्ते, ते च चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणेभ्यो दीयन्ते। अन्तरायस्य पुनर्यो मूलभाग आभजति स समग्रोऽपि सर्वघात्यवान्तरभेदाभावात् पञ्चधा कृत्वा दानान्तरायादिभ्यो दीयते ॥ २५ ॥

मोहे दुहा चउद्धा य, पंचहा वा वि बज्झमाणीणं। वेयणियाउयगोएसु, बज्झमाणीण भागो सिं ॥२६॥

मोहे त्ति--मोहे मोहनीये स्थित्यनुसारेण यो मूलभाग आभजति तस्यानन्ततमो भागः सर्वघातिप्रकृतियोग्यो द्विधा क्रियते, अर्धं दर्शनमोहनीयस्य, अर्धं चारित्रमोहनीयस्य। तत्रार्धं दर्शनमोहनीयस्य सत्कं समग्रमपि मिथ्यात्वमोहनीयस्य ढौकते। चारित्रमोहनीयस्य तु सत्कमर्धं द्वादशधा क्रियते ते च द्वादशभागा आद्येभ्यो द्वादशकषायेभ्यो दीयन्ते। संप्रति शेषदलिकभागविधिरुच्यते--'मोहे दुहेत्यादि' शेषस्य च मूलभागस्य द्वौ भागौ क्रियंते, एकः कषायमोहनीयस्य, अपरो नोकषायमोहनीयस्य (भागः)। तत्र कषायमोहनीयस्य भागः पुनश्चतुर्धा क्रियते, ते च चत्वारोऽपि (भागाः) संज्वलनक्रोधादिभ्यो दीयन्ते। नोकषायमोहनीयस्य तु भागः

गाथार्थ—मोहे=मोहनीय कर्मने विषे, दुहा=(शेष दलना) बे विभाग, बज्झमाणीणं=बध्यमान प्रकृतिमां अनुक्रमे, चउद्धा य पंचहा वावि=चार अने पांच भागे वहेंचाय. वेयणियाउयगोएसु=वेदनीय, आयुष्य अने गोत्र कर्मने विषे, सिं=एमनी, बज्झमाणीण= बध्यमानने, भागो=(सर्व) भाग मळे छे (विभाग पडता नथी.) २६

पञ्चधा क्रियते, ते च पञ्चापि भागा यथाक्रमं त्रयाणां वेदानामन्यतमस्मै वेदाय बध्यमानाय हास्यरतियुगलारतिशोकयुगलयोरन्यतरस्मै युगलाय भयजुगुप्साभ्यां च दीयन्ते। नान्येभ्यः, बन्धाभावात्। न हि नवापि नोकषाया युगपद्बन्धमायान्ति, किं तु यथोक्ताः पञ्चैव। तथा वेदनीयायुर्गोत्रेषु यो मूलभाग आभजति स एतेषामेव एकैकस्याः प्रकृतेर्बध्यमानाया ढौकते। द्विप्रभृतीनाममीषां युगपद्बन्धाभावात् ॥ २६ ॥

पिंडपगईसु बज्झंतिगाण, वण्णरसगंधफासाणं। सव्वासिं संघाए, तणुम्मि य तिगे चउक्के वा ॥२७॥

पिंड त्ति–पिंडप्रकृतयो नामप्रकृतयः। यदाह चूर्णिकृत्–"पिंडपगईओ नामपगईओ त्ति"। तासु मध्ये बध्यमानानामन्यतमगतिजातिशरीरबन्धनसंघातनसंहननसंस्थानांगोपांगानुपूर्वीणां वर्णगन्धरसस्पर्शागुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासनिर्माणतीर्थकराणामातपोद्योतप्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतित्रसस्थावरबादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तप्रत्येकसाधारणस्थिरास्थिरशुभाशुभसुस्वरदुःस्वरसुभगदुर्भगादेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्त्यन्यतराणां च मूलभागो विभज्य समर्पणीयः। अत्रैव विशेषमाह–'वण्णेत्यादि' वर्णगन्धरसस्पर्शानां प्रत्येकं यद्भागलब्धं दलिकमायाति तत्सर्वेभ्यस्तेषामवान्तरभेदेभ्यो विभज्य विभज्य दीयते। तथाहि–वर्णनाम्नो यद्भागलब्धं दलिकं तत्पञ्चधा कृत्वा शुक्लादिभ्योऽवान्तरभेदेभ्यो विभज्य प्रदीयते। एवं गन्धरसस्पर्शानामपि यस्य यावन्तो भेदास्तस्य संबन्धिनो भागस्य तति भागाः कृत्वा तावद्भ्योऽवान्तरभेदेभ्यो दातव्याः। तथा संघाते तनौ च प्रत्येकं यद्भागलब्धं दलिकमायाति

गाथार्थ—(नामकर्मने विषे) पिंडपगईसु=पिंडप्रकृतिओने विषे, बज्झंतिगाण=बंधाती प्रकृतिओने, वन्न०सव्वासिं=वर्ण, गंध, रस अने स्पर्शमां सर्व उत्तरभेदने, संघाए तणुम्मि य=संघात अने शरीरने विषे, तिगे चउक्के वा=त्रण अथवा चार भागे वहेंचाय छे. २७

तत्त्रिधा चतुर्धा वा कृत्वा त्रिभ्यश्चतुर्भ्यो वा दीयते। तत्रौदारिकतैजसकार्मणानि वैक्रियतैजसकार्मणानि वा त्रीणि शरीराणि संघातानि वा युगपद् बध्नता त्रिधा क्रियते, वैक्रियाहारकतैजसकार्मणरूपाणि चत्वारि शरीराणि संघातानि वा बध्नता चतुर्धा क्रियते ॥२७॥

सत्तेक्कारविगप्पा, बंधणनामाण मूलपगईणं। उत्तरसगपगईण य, अप्पबहुत्ता विसेसो सिं ॥ २८ ॥

सत्तेति—बन्धननाम्नां भागलब्धं यद्दलिकमायाति तस्य सप्त विकल्पाः सप्तभेदा एकादश वा विकल्पाः क्रियन्ते। तत्रौदारिकौदारिक १ औदारिकतैजस २ औदारिककार्मण ३ औदारिकतैजसकार्मण ४ तैजसतैजस ५ तैजसकार्मण ६ कार्मणकार्मण ७ रूपाणि वैक्रियचतुष्कतैजसत्रिकरूपाणि वा सप्त बन्धनानि बध्नता सप्त। वैक्रियचतुष्काहारकचतुष्कतैजसत्रिकलक्षणान्येकादश बन्धनानि बध्नता एकादश। अवशेषाणां च प्रकृतीनां यद् भागलब्धं दलिकमायाति, तन्न भूयो विभज्यते, तासां युगपदवान्तरद्विध्यादिभेदबन्धाभावात्। तेन तासां तदेव परिपूर्णं दलिकं भवति।

इहैकाध्यवसायगृहीतस्य कर्मदलिकस्य परमाणवो विभागशः कृत्वा मूलप्रकृतिभ्य उत्तरप्रकृतिभ्यश्च दत्ताः। तत्र न ज्ञायते जघन्यपदे उत्कृष्टपदे वा कस्याः (कस्याः) कियान् भागस्ततो विशेषपरिज्ञानार्थमाह-'मूलपगईणमित्यादि' आसां मूलप्रकृतीनामुत्तरस्वप्रकृतीनां च परस्परं भागस्य विशेषोऽल्पबहुत्वात् शास्त्रान्तरोक्तात् द्रष्टव्यः। तत्र मूलप्रकृतीनामल्पबहुत्वं दर्श्यते—इह कर्मणां स्थित्यनुसारतो भाग आभजति, यस्य बृहती स्थितिः तस्य बृहद्भागः, यस्य स्तोका तस्य स्तोक इति। तत्रायुषो

गाथार्थ—बंधणनामाण=बन्धन नामकर्मनी, मूलपगईणं=मूलप्रकृतिना दलिकना, सत्तेक्कारविगप्पा=सात अथवा अगियार विकल्पो थाय छे. य=वळी, सिं=ए मूल प्रकृतिओमां, उत्तरसगपगईण=स्व उत्तर प्रकृतिओना, अप्पबहुत्ता विसेसो=अल्पबहुत्वनी विशेषता कहीए छीए. २८

भागः सर्वस्तोकः । तस्य सर्वस्या (सर्वेभ्योऽ) प्यन्येभ्यः स्तोकस्थितिकत्वात् । तत्स्थितेरुत्कर्षतोऽपि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणत्वात् । ततो नामगोत्रयोर्भागो बृहत्तरः । तयोः स्थितेर्विंशतिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणत्वात् । स्वस्थाने तु द्वयोरपि परस्परं तुल्यः, समानस्थितिकत्वात् । ततोऽपि ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणां बृहत्तमः । तेषां स्थितेस्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्य एव, तुल्यस्थितिकत्वात् । ततोऽपि मोहनीयस्य बृहत्तमः, तस्य स्थितेः सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणत्वात् । वेदनीयं यद्यपि ज्ञानावरणीयादिभिः सह समस्थितिकं, तथापि तस्य भागः सर्वोत्कृष्ट एव वेदितव्यः । अन्यथास्पष्टतरस्वफलसुखदुःखोपदर्शकत्वानुपपत्तेः ।

इदानीं स्वस्वोत्तरप्रकृतीनामुत्कृष्टपदे जघन्यपदे चाल्पबहुत्वमभिधीयते—तत्रोत्कृष्टपदे सर्वस्तोकं केवलज्ञानावरणस्य प्रदेशाग्रं । ततो मनःपर्यवज्ञानावरणीयस्यानन्तगुणं । ततोऽवधिज्ञानावरणीयस्य विशेषाधिकं । ततः श्रुतज्ञानावरणीयस्य विशेषाधिकं । ततोऽपि मतिज्ञानावरणीयस्य विशेषाधिकं (१) । तथा दर्शनावरणीये उत्कृष्टपदे सर्वस्तोकं प्रचलायाः प्रदेशाग्रं । ततो निद्राया विशेषाधिकं । ततोऽपि प्रचलाप्रचलाया विशेषाधिकं । ततोऽपि निद्रानिद्राया विशेषाधिकं । ततः स्त्यानर्धेर्विशेषाधिकं । ततः केवलदर्शनावरणीयस्य विशेषाधिकं । ततोऽवधिदर्शनावरणीयस्यानन्तगुणं । ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणीयस्य विशेषाधिकं । ततोऽपि चक्षुर्दर्शनावरणीयस्य विशेषाधिकं (२) । तथा सर्वस्तोकमुत्कृष्टपदे प्रदेशाग्रमसातवेदनीयस्य । ततो विशेषाधिकं सातवेदनीयस्य (३) । तथा मोहनीये सर्वस्तोकमुत्कृष्टपदे प्रदेशाग्रमप्रत्याख्यानावरणमानस्य । ततोऽप्रत्याख्यानावरणक्रोधस्य विशेषाधिकं । ततोऽप्रत्याख्यानावरणमायाया विशेषाधिकं । ततोऽप्रत्याख्यानावरणलोभस्या विशेषाधिकं । ततः प्रत्याख्यानावरणमानस्य विशे-

षाधिकं । ततः प्रत्याख्यानावरणमायाया विशेषाधिकं । ततः प्रत्याख्यानावरणलोभस्य विशेषाधिकं । ततोऽनन्तानुबन्धिमानस्य विशेषाधिकं । ततोऽनन्तानुबन्धिक्रोधस्य विशेषाधिकं । ततोऽनन्तानुबन्धिमायाया विशेषाधिकं । ततोऽनन्तानुबन्धिलोभस्य विशेषाधिकं । ततो मिथ्यात्वस्य विशेषाधिकं । ततो जुगुप्साया अनन्तगुणं । ततो भयस्य विशेषाधिकं । ततो हास्यशोकयोर्विशेषाधिकं, स्वस्थाने तु द्वयोरपि परस्परं तुल्यं । ततो रत्यरत्योर्विशेषाधिकं, तयोः पुनः स्वस्थाने तुल्यं । ततः स्त्रीवेदनपुंसकवेदयोर्विशेषाधिकं, स्वस्थाने तु द्वयोरपि परस्परं तुल्यं । ततः संज्वलनक्रोधस्य विशेषाधिकं । ततः संज्वलनमानस्य विशेषाधिकं । ततः पुरुषवेदस्य विशेषाधिकं । ततः संज्वलनमायाया विशेषाधिकं । ततः संज्वलनलोभस्यासंख्येयगुणं (४)। तथा चतुर्णामप्यायुषामुत्कृष्टपदे प्रदेशाग्रं परस्परं तुल्यं (५)। नामकर्मणि उत्कृष्टपदे प्रदेशाग्रं गतौ देवगतिनरकगत्योः सर्वस्तोकं। ततो मनुजगतौ विशेषाधिकं । ततस्तिर्यग्गतौ विशेषाधिकं । तथा जातौ चतुर्णां द्वीन्द्रियादिजातिनाम्नामुत्कृष्टपदे प्रदेशाग्रं सर्वस्तोकं, स्वस्थाने तु तेषां परस्परं तुल्यं । तत एकेन्द्रियजातेर्विशेषाधिकं । तथा शरीरनाम्नि सर्वस्तोकमुत्कृष्टपदे प्रदेशाग्रमाहारकशरीरस्य। ततो वैक्रियशरीरनाम्नो विशेषाधिकं। तत औदारिकशरीरनाम्नो विशेषाधिकं ततस्तैजसशरीरनाम्नो विशेषाधिकं। ततोऽपि कार्मणशरीरनाम्नो विशेषाधिकं। एवं संघातननाम्न्यपि द्रष्टव्यं। तथाबन्धननाम्निसर्वस्तोकमुत्कृष्टपदे प्रदेशाग्रमाहारकबन्धननाम्नः।तत आहारकतैजस(बन्धन)नाम्नो विशेषाधिकं । तत आहारककार्मणबन्धननाम्नो विशेषाधिकं। तत आहारकतैजसकार्मणबन्धननाम्नो विशेषाधिकं। ततो वैक्रियवैक्रियशरीरबन्धननाम्नो विशेषाधिकं । ततो वैक्रियतैजसबन्धननाम्नो विशेषाधिकं। ततो वैक्रियकार्मणबन्धननाम्नो विशेषाधिकं। ततो वैक्रियतैजसकार्मणबन्धननाम्नो विशेषाधिकं। तत औदारिकौदारिकबन्धननाम्नो विशे-

षाधिकं । तत औदारिकतैजसबन्धननाम्नो विशेषाधिकं । तत औदारिककार्मणबन्धननाम्नो विशेषाधिकं । ततोऽप्यौदारिकतैजसकार्मणबन्धननाम्नो विशेषाधिकं । ततस्तैजसतैजसबन्धननाम्नो विशेषाधिकं । ततस्तैजसकार्मणबन्धननाम्नो विशेषाधिकं । ततः कार्मणकार्मणबन्धननाम्नो विशेषाधिकं । तथा संस्थाननाम्नि संस्थानानामाद्यन्तवर्जानां चतुर्णामुत्कृष्टपदे प्रदेशाग्रं सर्वस्तोकं, स्वस्थाने तु तेषां परस्परं तुल्यं । ततः समचतुरस्रसंस्थानस्य विशेषाधिकं । ततोऽपि हुंडसंस्थानस्य विशेषाधिकं । तथांगोपांगनाम्नि सर्वस्तोकमुत्कृष्टपदे प्रदेशाग्रमाहारकांगोपांगनाम्नः। ततो वैक्रियांगोपांगनाम्नो विशेषाधिकं । ततोऽप्यौदारिकांगोपांगनाम्नो विशेषाधिकं । तथा संहनननाम्नि सर्वस्तोकमाद्यानां पञ्चानां संहननानामुत्कृष्टपदे प्रदेशाग्रं, स्वस्थाने तु तेषां परस्परं तुल्यं । ततः सेवार्तसंहननस्य विशेषाधिकं । तथा वर्णनाम्नि सर्वस्तोकमुत्कृष्टपदे प्रदेशाग्रं कृष्णवर्णनाम्नः । ततो नीलवर्णनाम्नो विशेषाधिकं । ततो लोहितवर्णनाम्नो विशेषाधिकं । ततो हारिद्रवर्णनाम्नो विशेषाधिकं । ततोऽपि शुक्लवर्णनाम्नो विशेषाधिकं। तथा गन्धनाम्नि सर्वस्तोकं सुरभिगन्धनाम्नः।ततो विशेषाधिकं दुरभिगन्धनाम्नः। तथा रसनाम्नि सर्वस्तोकं कटु(कं)रसनाम्नः।ततस्तिक्तरसनाम्नो विशेषाधिकं। ततःकषायरसनाम्नो विशेषाधिकं। ततः अम्लरसनाम्नो विशेषाधिकं। ततोऽपि मधुररसनाम्नो विशेषाधिकं। तथा स्पर्शनाम्नि सर्वस्तोकमुत्कृष्टपदे कर्कशगुरुस्पर्शनाम्नोः प्रदेशाग्रं, स्वस्थाने तु द्वयोरपि परस्परं तुल्यं । ततो मृदुलघुस्पर्शनाम्नोर्विशेषाधिकं, स्वस्थाने तु द्वयोरपि तयोः परस्परं तुल्यं । ततो रूक्षशीतस्पर्शनाम्नोर्विशेषाधिकं, स्वस्थाने तु तयोर्द्वयोरपि परस्परं तुल्यं । ततः स्निग्धोष्णस्पर्शनाम्नोर्विशेषाधिकं, स्वस्थाने तु तयोरपि द्वयोः परस्परं तुल्यं । तथानुपूर्वीनाम्नि सर्वस्तोकं प्रदेशाग्रं देवगतिनरकगत्यानुपूर्व्योः, स्वस्थाने तु द्वयोरपि परस्परं तुल्यं । ततो मनुज-

गत्यानुपूर्व्या विशेषाधिकं । ततस्तिर्यगानुपूर्व्या विशेषाधिकं । तथा सर्वस्तोकमुत्कृष्टपदे प्रदेशाग्रं त्रसनाम्नः । ततो विशेषाधिकं स्थावरनाम्नः। तथा सर्वस्तोकं प्रदेशाग्रं पर्याप्तनाम्नः। ततो विशेषाधिकमपर्याप्तनाम्नः। एवं स्थिरास्थिरयोः शुभाशुभयोः सुभगदुर्भगयोः आदेयानादेययोः सूक्ष्मबादरयोः प्रत्येकसाधारणयोर्वाच्यं । तथा सर्वस्तोकमयशःकीर्तिनाम्नः प्रदेशाग्रं । ततो यशःकीर्तिनाम्नः संख्येयगुणं । शेषाणामातपोद्योतप्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिसुस्वरदुःस्वराणां परस्परं तुल्यमुत्कृष्टपदे प्रदेशाग्रं। निर्माणोच्छ्वासपराघातोपघातागुरुलघुतीर्थकराणां त्वल्पबहुत्वं नास्ति, यत इदमल्पबहुत्वं सजातीयप्रकृत्यपेक्षया, यथा कृष्णादिवर्णनाम्नः शेषवर्णापेक्षं, प्रतिपक्षप्रकृत्यपेक्षया वा यथा सुभगदुर्भगयोः । न चैताः परस्परं सजातीया अभिन्नैकमूलपिंडप्रकृत्यभावात् । नापि विरुद्धा युगपदपि बन्धसम्भवात् (६) । तथा गोत्रे सर्वस्तोकमुत्कृष्टपदे प्रदेशाग्रं नीचैर्गोत्रस्य । ततो विशेषाधिकमुच्चैर्गोत्रस्य (७)। तथाऽन्तराये सर्वस्तोकं दानान्तरायस्य । ततो लाभान्तरायस्य विशेषाधिकं । ततो भोगान्तरायस्य विशेषाधिकं । तत उपभोगान्तरायस्य विशषोधिकं । ततो वीर्यान्तरायस्य विशेषाधिकं (८)। तदेवमुक्तमुत्तरप्रकृतीनामुत्कृष्टपदे प्रदेशाल्पबहुत्वं ।

संप्रति जघन्यपदे तदभिधीयते—तत्र सर्वस्तोकं जघन्यपदे प्रदेशाग्रं केवलज्ञानावरणीयस्य । ततो मनःपर्यवज्ञानावरणीयस्या-

१ अत्र च श्रीमद्भिर्देवेन्द्रसूरिभिः स्वोपज्ञशतकवृत्तावन्यथा व्याख्यातं प्रस्तुतप्रकरणाभिधया, तद्भविष्यति तदानीं कापि लेखकदोषमूला शोधकदोषमूला वा तादृशी काचन प्रतिष्टीका प्रतीवान्ये, दृश्यमानेषु त्वादर्शेषु न तथाविधः पाठः, युक्तिस्त्वेवंविधेऽतीन्द्रियेऽर्थेऽकिञ्चित्करैवेत्युपलभ्यमानः पाठ एव शरणम् ।

नन्तगुणं। ततोऽवधिज्ञानावरणीयस्य विशेषाधिकं। ततः श्रुतज्ञानावरणीयस्य विशेषाधिकं। ततोऽपि मतिज्ञानावरणीयस्य विशेषाधिकं(१)। तथा दर्शनावरणीये सर्वस्तोकं जघन्यपदे प्रदेशाग्रं निद्रायाः। ततः प्रचलाया विशेषाधिकं। ततो निद्रानिद्राया विशेषाधिकं। ततः प्रचलाप्रचलाया बिशेषाधिकं। ततः स्त्यानर्धेर्विशेषाधिकं। ततः केवलदर्शनावरणस्य विशेषाधिकं। ततोऽवधिदर्शनावरणस्यानन्तगुणं। ततोऽचक्षुर्दर्शनावरणीयस्य विशेषाधिकं। ततोऽपि चक्षुर्दर्शनावरणीयस्य विशेषाधिकं (२)।तथा मोहनीये सर्वस्तोकं जघन्यपदे प्रदेशाग्रमप्रत्याख्यानावरणमानस्य । ततोऽप्रत्याख्यानावरणस्य क्रोधस्य विशेषाधिकं । ततोऽप्रत्याख्यानावरणमायाया विशेषाधिकं । ततोऽप्रत्याख्यानावरणलोभस्य विशेषाधिकं । तत एवमेव प्रत्याख्यानावरणमानक्रोधमायालोभानन्तानुबन्धिमानक्रोधमायालोभानां यथोत्तरं विशेषाधिकं वक्तव्यं । ततो मिथ्यात्वस्य विशेषाधिकं । ततो जुगुप्साया अनन्तगुणं । ततो भयस्य विशेषाधिकं। ततो हास्यशोकयोर्विशेषाधिकं, स्वस्थाने तु तयोः परस्परं तुल्यं । ततो रत्यरत्योर्विशेषाधिकं । स्वस्थाने तु तयोरपि परस्परं तुल्यं । ततोऽन्यतरवेदस्य विशेषाधिकं । ततः संज्वलनमानक्रोधमायालोभानां यथोत्तरं विशेषाधिकं (४) । तथायुषि सर्वस्तोकं जघन्यपदे प्रदेशाग्रं तिर्यग्मनुष्यायुषोः । ततो देवनारकायुषोरसंख्येयगुणं (५) । तथा नाम्नि गतौ सर्वस्तोकं जघन्यपदे प्रदेशाग्रं तिर्यग्गतेः । ततो विशेषाधिकं मनुजगतेः। ततो देवगतेरसंख्येयगुणं। ततो निरयगतेरसंख्येयगुणं। तथा जातौ सर्वस्तोकं चतुर्णां द्वीन्द्रियादिजातिनाम्नां। तत एकेन्द्रियजातेर्विशेषाधिकं । तथा शरीरनाम्नि सर्वस्तोकमौदारिकशरीरनाम्नः । ततस्तैजसशरीरनाम्नो विशेषाधिकं । ततः कार्मणशरीरनाम्नो विशेषाधिकं । ततो वैक्रि-

× (य० उ० १७) तत्र ज्ञानावरणदर्शनावरणप्रकृतीनां यथोत्कृष्टपदे तथैवावमन्तव्यम् ।

यशरीरनाम्नोऽसंख्येयगुणं। ततोऽप्याहारकशरीरनाम्नोऽसंख्येयगुणं। एवं संघातननाम्नोऽपि वाच्यं। अंगोपांगनाम्नि सर्वस्तोकं जघन्यपदे प्रदेशाग्रमौदारिकांगोपांगनाम्नः। ततो वैक्रियांगोपांगनाम्नोऽसंख्येयगुणं। ततोऽप्याहारकांगोपांगनाम्नोऽसंख्येयगुणं। तथा सर्वस्तोकं जघन्यपदे नरकगतिदेवगत्यानुपूर्व्योः प्रदेशाग्रं। ततो मनुजगत्यानुपूर्व्या विशेषाधिकं। ततोऽपि तिर्यग्गत्यानुपूर्व्या विशेषाधिकं। तथा सर्वस्तोकं त्रसनाम्नः। ततो विशेषाधिकं स्थावरनाम्नः। एवं बादरसूक्ष्मयोः पर्याप्तापर्याप्तयोः प्रत्येकसाधारणयोश्च। शेषाणां तु नामप्रकृतीनामल्पबहुत्वं न विद्यते (६)। तथा सातासातवेदनीययोरुच्चैर्गोत्रनीचैर्गोत्रयोरपि (३–७)। अन्तराये पुनर्यथोत्कृष्टपदे तथैवावगन्तव्यं (८)।

इह यदा जन्तुरुत्कृष्टे योगस्थाने वर्तते, यदा च मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां च स्तोकतराणां बन्धकः, तथा यदा संक्रमकाले प्रकृत्यन्तरदलिकानामुत्कृष्टः प्रदेशसंक्रमो भवति, तदोत्कृष्टप्रदेशाग्रसंभवः। तथाहि–उत्कृष्टे योगे वर्तमानो जीव उत्कृष्टं प्रदेशाग्रहणं करोति। तथा स्तोकतराणां मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां च यदा बन्धकस्तदा शेषाबध्यमानप्रकृतिलभ्योऽपि भागस्तासां बध्यमानानामाभजति। तथा प्रकृत्यन्तरदलिकानामुत्कृष्टप्रदेशसंक्रमकाले विवक्षितासु प्रकृतिषु बध्यमानासु प्रभूताः कर्मपुद्गलाः प्रविशन्ति। तत एतेषु कारणेषु सत्सूत्कृष्टप्रदेशाग्रसंभवो भवति। विपर्यासे तु जघन्यप्रदेशाग्रसंभवः ॥ २८ ॥

×(य० उ० १८)नन्वयं प्रतिसमयं बध्यमानानां प्रतिसमयं विभागविधिरुक्तः, यदा तु तत्तद्गुणस्थाने स्वस्वबन्धोच्छेदः स्यात् तदा तद्भागद्रव्यं कस्या भागे समायातीति चेदुच्यते–तद्भागलभ्यं द्रव्यं यावदेकापि तत्सजातीयप्रकृतिर्बध्यते तावत्तस्या एव विभज्य देयं। यदा तु तत्सजातीयसर्वप्रकृतिबन्धोच्छेदो यस्या वा मिथ्यात्वप्रकृतेः सजातीया नापरा प्रकृतिरस्ति, तदा तद्भागलभ्यं

द्रव्यं सर्वं मूलप्रकृत्यन्तर्गतानां विजातीयप्रकृतीनां विभज्य दीयते। तासामप्युच्छेदे तद्दलिकमन्यस्या एव मूलप्रकृतेः संपद्यते। एवं तावज्ज्ञेयं यावत्सूक्ष्मसंपराये गृहीतं दलिकं षड्भागीभवति। तदूर्ध्वं तु सर्वदलिकं सातस्योपतिष्ठत इति॥

अथ च साद्यादिप्ररूपणा स्वाम्यादिप्ररूपणा च कर्त्तव्या। तत्र मोहायुर्वर्जानां षण्णां मूलप्रकृतीनामनुत्कृष्टः प्रदेशबन्धः साद्यादितया चतुर्विधः। तथाहि—एतेषां षण्णां कर्मणां सूक्ष्मसंपरायस्थस्योत्कृष्टयोगे वर्त्तमानस्यैकं द्वौ वा समयावुत्कृष्टः प्रदेशबन्धो भवति। ततोऽसौ सादिरध्रुवश्च। ततोऽन्यः सर्वोऽप्यनुत्कृष्टः। स चोत्कृष्टात् प्रदेशबन्धात् पततो बन्धव्यवच्छेदं कृत्वा वा पततो मन्दयोगस्थानवर्त्तिनः प्रवर्त्तमानः सादिः। तत्स्थानमप्राप्तस्यानादिः। ध्रुवाध्रुवावभव्यभव्यापेक्षयेति। एषामेव षण्णां कर्मणामुत्कृष्टजघन्याजघन्यविकल्पाः साद्यध्रुवाः। तत्रोत्कृष्टः साद्यध्रुवो भावित एव। जघन्यः सूक्ष्मनिगोदस्यापर्याप्तस्योत्पत्तिसमये सर्वाल्पवीर्यस्य सप्तविधबन्धकस्य समयमेकं लभ्यते। ततो द्वितीयसमये तस्यैवाजघन्यः। ततो भूयोऽपि सङ्ख्येयकालेऽसङ्ख्येयकाले वाऽतिक्रान्ते प्रागुक्तलक्षणसूक्ष्मनिगोदभावं प्राप्तस्याद्यसमये जघन्यः। तदनन्तरसमये त्वजघन्यः। एवमनेकधा संसारिणां जघन्येऽजघन्ये च परावर्त्तनात् द्वावप्येतौ साद्यध्रुवौ। आयुर्मोहनीययोश्च जघन्यादयश्चत्वारोऽपि साद्यध्रुवाः। तत्राध्रुवबन्धित्वादायुषश्चतुर्णामपि भेदानां साद्यध्रुवता स्फुटा। मोहनीयस्य तूत्कृष्टः प्रदेशबन्धः सप्तविधबन्धकस्योत्कृष्टयोगस्थानवर्त्तिन एकं द्वौ वा समयौ भवति। ततोऽनुत्कृष्ट एवेति द्वावप्येतौ साद्यध्रुवौ। जघन्याजघन्ययोः साद्यध्रुवता तु ज्ञानावरणीयादिवद्भावनीया। उत्तरप्रकृतिषु ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकनिद्राद्यद्वादशकषायभयजुगुप्सादर्शनावरणचतुष्टयप्रचलारूपाणां ध्रुवबन्धिनीनां त्रिंशत्प्रकृतीनामनुत्कृष्टः प्रदेशबन्धश्चतुःप्रकारः—सादिरनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्चेति। तथाहि—ज्ञानावरणान्तरायपञ्चकचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणरूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां सूक्ष्मसंपरा-

यस्थस्योत्कृष्टयोगस्य समयमेकं द्वौ वा समयावुत्कृष्टः प्रदेशबन्धः प्राप्यते, योगोत्कर्षेण बहुदलिकग्रहणादायुर्मोहबन्धव्यवच्छेदेन तद्भागस्याधिकस्य प्रवेशाच्चतसृणां दर्शनावरणप्रकृतीनां सजातीयाबध्यमानप्रकृतिभागोपनमनाच्च । स च प्रतिनियतकालभावित्वात्साद्यध्रुवः । ततः समयान्तरे तस्यैव मन्दयोगस्थानवृत्तेर्बन्धव्यवच्छेदं कृत्वा वा प्रतिपततोऽनुत्कृष्टः सादिः, तत्स्थानमप्राप्तस्यानादिः, ध्रुवाध्रुवावभव्यभव्यापेक्षया। तथा निद्राप्रचलयोरविरतसम्यग्दृष्ट्यादेरपूर्वकरणान्तस्योत्कृष्टयोगस्थानवृत्तेः सप्तविधबन्धकस्योत्कृष्टः प्रदेशबन्ध एकं द्वौ वा समयौ, योगस्थानोत्कर्षेण भूयिष्ठदलिकग्रहणात् स्त्यानर्द्धित्रिकलभ्यमानप्रकृतिभागप्रवेशादायुषा भागानादानाच्च । स च नियतकालभावित्वात्साद्यध्रुवः । ततः समयान्तरेऽनुत्कृष्टः, स च सादिः। बन्धव्यवच्छेदस्थानं गत्वा प्रतिपततो मन्दयोगस्थानस्य बन्धमारभमाणस्य वाऽनुत्कृष्टः, सोऽपि सादिः । तत्स्थानमप्राप्तस्यानादिः, ध्रुवाध्रुवौ प्राग्वत् । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्टयस्याविरतसम्यग्दृष्टेरुत्कृष्टयोगस्थानवर्त्तिनः समयमेकं द्वौ वा समयावुत्कृष्टः प्रदेशबन्धः,योगस्थानोत्कर्षाद्बहुदलिकग्रहणान्मिथ्यात्वानन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानलभ्यमानभागप्रवेशाच्च। तत उत्कृष्टात्प्रदेशबन्धाद् बन्धव्यवच्छेदस्थानाद्वा प्रतिपततो मन्दपरिणामस्यानुत्कृष्टः, स च सादिः। अप्राप्ततत्स्थानस्यानादिः। ध्रुवाध्रुवौ प्राग्वत् । प्रत्याख्यानावरणचतुष्टयस्य देशविरतस्योत्कृष्टयोगस्थानवृत्तेरेकं द्वौ वा समयावुत्कृष्टः प्रदेशबन्धः, योगोत्कर्षाद्बहुदलिकग्रहणान्मिथ्यात्वानन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानलभ्यमानभागप्रवेशाच्च । स च प्रतिनियतकालभावित्वात्साद्यध्रुवः। तत उत्कृष्टप्रदेशबन्धाद् बन्धव्यवच्छेदस्थानाद्वा च्युतस्य मन्दयोगस्थानस्यानुत्कृष्टः, स च सादिः । अप्राप्ततत्स्थानस्यानादिः, ध्रुवाध्रुवौ पूर्ववत् । भयजुगुप्सयोरपूर्वकरणस्योत्कृष्टयोगिन एकं द्वौ वा समयावुत्कृष्टः प्रदेशबन्धः, योगोत्कर्षेण बहुदलिकग्रहणान्मिथ्यात्वादिसजातीयाबध्यमानप्रकृतिभागप्रवेशाच्च । स च साद्यध्रुवः, उत्कृष्टतोऽपि समयद्वयभा-

वित्वात् । तत उत्कृष्टाद् बन्धव्यवच्छेदस्थानाद्वा प्रतिपततो मन्दपरिणामस्यानुत्कृष्टः । स च सादिः । अप्राप्ततत्स्थानस्यानादिः । ध्रुवाध्रुवता प्राग्वत्। संज्वलनक्रोधस्यानिवृत्तिबादरसंपरायस्योत्कृष्टयोगस्य चतुर्विधबन्धकस्यैकं द्वौ वा समयावुत्कृष्टः प्रदेशबन्धः, योगोत्कर्षेण प्रभूतदलिकग्रहणान्मिथ्यात्वादीनां पुरुषवेदस्य च प्रा(भा)गप्रवेशाच्च । स च प्रतिनियतकालभावित्वात्साद्यध्रुवः। तथा तस्यैवोत्कृष्टयोगस्थानवर्त्तिनस्त्रिविधबन्धकस्यैकं द्वौ वा समयौ संज्वलनमानस्योत्कृष्टः प्रदेशबन्धः,संज्वलनक्रोधस्यापि भागप्रवेशात्। तस्यैवोत्कृष्टयोगस्य द्विविधबन्धकस्योत्कर्षतः समयद्वयं संज्वलनमायाया उत्कृष्टः प्रदेशबन्धः,संज्वलनमानस्यापि भागप्रवेशात्। तस्यैवोत्कृष्टयोगस्यैकविधबन्धकस्योत्कर्षतः समयद्वयं संज्वलनलोभस्योत्कृष्टः प्रदेशबन्धः । स चैवं संज्वलनचतुष्कस्योत्कृष्टः प्रदेशबन्धः प्रतिनियतकालभावित्वात्साद्यध्रुवः,ततोऽन्यः सर्वोऽप्यनुत्कृष्टः। स चोत्कृष्टप्रदेशबन्धस्थानात्प्रतिपततो बन्धव्यवच्छेदस्थानमारुह्य वा प्रतिपततो मन्दपरिणामस्य सादिः। अप्राप्ततत्स्थानस्यानादिः। ध्रुवाध्रुवौ प्राग्वत् । एतासामेव त्रिंशत्प्रकृतीनां जघन्याजघन्योत्कृष्टाः साद्यध्रुवाः। तत्रोत्कृष्टः साद्यध्रुवतयाऽन्तराल एव भावितः। जघन्याजघन्ययोः साद्यध्रुवता तु प्रागुक्तनिगोदावस्थामधिकृत्य भावनीया। शेषाणां तु मिथ्यात्वानन्तानुबन्धिस्त्यानर्द्धित्रिकागुरुलघुतैजसकार्मणोपघातवर्णादिचतुष्टयनिर्माणरूपाणां सप्तदशध्रुवबन्धिप्रकृतीनां जघन्यादयश्चत्वारोऽपि साद्यध्रुवाः । तथाहि—स्त्यानर्धित्रिकमिथ्यात्वानन्तानुबन्धिनां मिथ्यादृष्टेः सप्तविधबन्धकस्योत्कृष्टयोगस्थानवर्तिनः समयमेकं द्वौ वा समयौ यावदुत्कृष्टः प्रदेशबन्धः। सम्यग्दृष्टेरेताः प्रकृतयो बन्धमेव नायान्तीति मिथ्यादृष्टिग्रहण । उत्कृष्टाच्च प्रतिपतितस्यानुत्कृष्टः । ततो भूयोऽपि समयान्तरे उत्कृष्ट इति द्वावपि साद्यध्रुवौ। तैजसकार्मणागुरुलघूपघातवर्णादिचतुष्टयनिर्माणरूपाणां नामध्रुवबन्धिनीनां नवानां प्रकृतीनां त्रयोविंशतिबन्धकस्य मिथ्यादृष्टेरुत्कृष्टयोगस्थानवर्तिनः समयमेकं द्वौ वा समयावुत्कृष्टः प्रदेशबन्धः, अन्यस्या-

ग्रन्थकृतः समादधते। मलयगिरिचरणास्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टेरुत्कृष्टयोगस्थानहीनत्वे " सासाण सम्मामीच्छेसुक्कोसो जोगो न हवइ त्ति" पूर्वाचार्यवचनमेव प्रमाणमाहुः। मिश्रस्य व्यञ्जनावग्रहमप्रख्यत्वान्न तत्रोत्कृष्टप्रदेशबन्ध इत्यपि युक्तमीक्षामहे। ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयनामगोत्रान्तरायाणामुत्कृष्टयोगस्थानवर्ती सूक्ष्मसंपराय उत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामी आयुर्मोहनीयभागयोरपि तत्र लभ्यमानत्वात्। एतन्मूलप्रकृतिविषयमुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामित्वं भावितं।

अथोत्तरप्रकृतिविषयं तद् भाव्यते–तत्र ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयसातवेदनीययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रान्तरायपञ्चकलक्षणानां सप्तदशप्रकृतीनां सूक्ष्मसंपराय उत्कृष्टयोगे वर्त्तमान उत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामी। मोहायुषी असौ न बध्नातीति तद्भागोऽत्राधिको लभ्यते। दर्शनावरणभागो नामभागश्च सर्वोऽपि यथासङ्ख्यं दर्शनावरणचतुष्कस्य यशःकीर्त्तेश्चैकस्या भवतीति सूक्ष्मसंपरायस्यैव ग्रहणं। अविरतसम्यग्दृष्टयः सप्तविधबन्धका उत्कृष्टयोगे वर्त्तमाना अप्रत्याख्यानावरणानामुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः। मिथ्यात्वमनन्तानुबन्धिनश्चैते न बध्नन्तीति तद्भागद्रव्यमधिकं लभ्यत इत्यमीषामेव ग्रहणं। देशविरता उक्तरूपाः प्रत्याख्यानावरणानामप्रत्याख्यानावरणानामप्यमी अबन्धका इति तद्भागाधिकद्रव्यलाभात्। पुरुषवेदसंज्वलनचतुष्टयानामनिवृत्तिबादरः सर्वोत्कृष्टयोगः पञ्चचतुस्त्रिद्व्येकबन्धक उत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामी बन्धमधिकृत्य व्यवच्छिन्नानां प्रकृतीनां यथायथं भागप्रवेशात्। प्रशस्तविहायोगतिमनुजायुःसुरत्रिकसुभगत्रिकवैक्रियद्विकसमचतुरस्रसंस्थानासातवेदनीयवज्रर्षभनाराचसंहननलक्षणानां त्रयोदशप्रकृतीनामिथ्यादृष्टिः सम्यग्दृष्टिर्वोत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामी। तथाहि–असातं मिथ्यादृष्टिसम्यग्दृष्टी द्वावपि प्रकृतिलाघवादिविशेषाभावादुत्कृष्टयोगावुत्कृष्टप्रदेशं बध्नीतः। देवमनुष्यायुषोरप्यष्टविधबन्धकावुत्कृष्टयोगावविशेषेणोत्कृष्टप्रदेशबन्धं कुरुतः। देवद्विकवै-

सामुत्कृष्टप्रदेशबन्धासंभवात् केवलज्ञानिना तथैव दृष्टत्वात् । ततः समयान्तरेऽनुत्कृष्टो भूयोऽपि कालान्तरे उत्कृष्ट इति द्वावपि साद्यध्रुवौ । जघन्याजघन्यभावना तु प्राग्वत् । अध्रुवबन्धिनीनां चाध्रुवबंधित्वादेव चत्वारोऽपि विकल्पाः साद्यध्रुवा इति सर्वं सुस्थं ।'

स्वामित्वप्ररूपणा च द्विविधा—उत्कृष्टप्रदेशविषया जघन्यप्रदेशविषया च । तत्राल्पतरप्रकृतिबन्ध उत्कटयोगश्च संज्ञिपर्याप्त उत्कृष्टप्रदेशबन्धकोऽल्पतरप्रकृतिबन्धे भागानामल्पत्वात् उत्कटयोगत्वे च बहुप्रदेशग्रहणात् । एतद्विपर्यये जघन्यप्रदेशबंधकः। तत्रायुषो मिथ्यादृष्टिरयताद्याश्च चत्वार उत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामिनः, सर्वेषामेतेषामुत्कृष्टयोगस्थानस्यायुर्बन्धस्य च लभ्यमानत्वात् । सासादनः कस्मादुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामी नेति चेदुच्यते—अल्पकालभावित्वादिना तस्योत्कृष्टयोगस्थानासंभवात् । अन्यथा मिथ्यात्वभागलाभेनानन्तानुबन्धिनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धः सासादन एव लभ्येतेति तेषामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धः साद्यादिरूपतया चतुर्विधः स्यात् । न चैतदिष्टं, साद्यध्रुवतयैव तस्य प्रागभिधानात् । शेषप्रकृतीनां मिथ्यादृष्टिरेव चोत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामी वाच्य इत्यतोऽपि न सासादनस्योत्कृष्टयोगसंभव इति न तद्ग्रहणं । सास्वादनसम्यग्मिथ्यादृष्टी विना मिथ्यादृष्ट्याद्या अनिवृत्तिबादरान्ताः सप्तविधबन्धका मोहनीयस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामिनः । सर्वेषामप्येतेषामुत्कृष्टयोगस्थानस्य मोहनीयबन्धस्य च लभ्यमानत्वात् । सासादनसम्यग्मिथ्यादृष्टी कस्मान्यक्ताविति चेत्तयोरुत्कृष्टयोगाभावात् । तत्र सासादनस्योत्कृष्टयोगाभावे युक्तिरुक्तैव । मिश्रेऽप्युत्कृष्टयोगाभ्युपगमे तत्र द्वितीयकषायाणामुत्कृष्टप्रदेशबन्धाभ्युपगमप्रसङ्गः । न चैतदिष्यते, तदुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामिनोऽविरतसम्यग्दृष्टेरेवाभिधास्यमानत्वात् । न च मिश्रादल्पतरप्रकृतिबन्धकोऽविरतसम्यग्दृष्टिरिति तस्यैव तथाभिधास्यमानत्वं युक्तं । मूलप्रकृत्यपेक्षया सप्तविधबन्धकत्वस्योत्तरप्रकृत्यपेक्षया च सप्तदशमोहनीयप्रकृतिबन्धकत्वस्योभयोरविशेषात् । तस्मादुत्कृष्टयोगाभाव एव मिश्रपरित्यागे कारणमिति केचिद्

क्रियद्विकाद्यसंस्थानप्रशस्तविहायोगतिसुभगत्रिकलक्षणा नव नामप्रकृतयो नाम्नोऽष्टाविंशतिबन्धकाल एव बन्धमायान्ति । तां चाष्टाविंशतिं देवद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजातितैजसकार्मणाद्यसंस्थानवर्णचतुष्कागुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरैकतरशुभाशुभैकतरसुभगत्रिकयशःकीर्त्ययशःकीर्त्त्येकतरनिर्माणलक्षणां देवगतिप्रायोग्यां सम्यग्दृष्टिर्मिथ्यादृष्टिश्च बध्नातीति द्वयोरप्युत्कृष्टयोगयोः सप्तविधबन्धकयोरष्टाविंशतिबन्धकाले उक्तानां नवप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धकत्वं । एकोनत्रिंशदादिबन्धस्थानेष्वप्येता नव प्रकृतयो बध्यन्ते, परं तत्र भागबाहुल्यादुत्कृष्टप्रदेशबन्धासंभव इति तदग्रहणं । वज्रर्षभनाराचस्यापि सम्यग्दृष्टिर्मिथ्यादृष्टिर्वा सप्तविधबन्धकः । नाम्नो वज्रर्षभनाराचपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकतैजसकार्मणाद्यसंस्थानसंहननवर्णचतुष्कागुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतित्रसचतुष्कसुभगत्रिकस्थिरास्थिरैकतरशुभाशुभैकतरयशःकीर्त्ययशःकीर्त्येकतरनिर्माणलक्षणा(२९)मनुष्यद्विकपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकद्विकतैजसकार्मणाद्यसंस्थानसंहननवर्णचतुष्कागुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतित्रसचतुष्कसुभगत्रिकस्थिरास्थिरैकतरशुभाशुभैकतरयशःकीर्त्ययशःकीर्त्येकतरनिर्माणलक्षणा (२९) वा एकोनत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नन्नुत्कृष्टयोग उत्कृष्टप्रदेशबन्धकः । त्रिंशद्बन्धादौ भागबाहुल्यात्तदग्रहणं । निद्राप्रचलाहास्यरत्यरतिभयशोकजुगुप्सातीर्थकरनामप्रकृतीनां सम्यग्दृष्टिरुत्कृष्टयोगस्तथा । तत्र निद्राप्रचलयोरविरतसम्यग्दृष्ट्यादयोऽपूर्वकरणान्ताः सप्तविधबन्धकोत्कृष्टयोगा एकं द्वौ वा समयावुत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः, आयुर्द्रव्यभागोऽधिको लभ्यत इति सप्तविधबन्धकग्रहणं, स्त्यानर्द्धित्रिकभागलाभाय सम्यग्दृष्टिग्रहणं । मिश्रस्त्वेतदबन्धकत्वेऽप्युत्कृष्टयोगाभावान्नेहाधिकृतः । हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सानां त्वविरताद्यपूर्वकरणान्ता ये ये उत्कृष्टयोगास्ते ते उत्कृष्टप्रदेशबन्धकाः । मिथ्यात्वभागलाभाय सम्यग्दृष्टिग्रहणं । तीर्थकरनाम्नोऽप्येत एव

देवगतिप्रायोग्यामष्टाविंशतिं तीर्थकरनामसहितां बध्नन्तः सप्तविधमूलप्रकृतिबन्धकाः। तथा त्रिंशदेकत्रिंशद्बन्धौ तु भागबाहुल्यात्त्यज्येते। आहारकद्विकस्याप्रमत्तापूर्वकरणौ केवलस्थिरशुभयशःकीर्तिसहितमागुक्ताष्टाविंशतावाहारकद्विकप्रक्षेपेण त्रिंशन्नामोत्तरप्रकृतिबन्धकौ तथा। तीर्थकरनामसहिते एकत्रिंशद्बन्धेऽप्येतद् बध्यते, किं तु तत्र भागबाहुल्यात्तस्येहाग्रहणं। शेषाणां स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वानन्तानुबन्धिस्त्रीक्लीववेदनारकतिर्यगायुर्नरकद्विकतिर्यग्द्विकमनुजद्विकौदारिकद्विकपञ्चेन्द्रियजातितैजसकार्मणवर्णचतुष्कगुरुलघुपराघातोपघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कस्थिरास्थिरशुभाशुभायशःकीर्तिनिर्माणाद्यजातिचतुष्टयप्रथमवर्जसंस्थानसंहननातपोद्योताप्रशस्तविहायोगतिस्थावरचतुष्कदुर्भगत्रिकनीचैर्गोत्रलक्षणानां षट्षष्टिप्रकृतीनां मिथ्यादृष्टिरुत्कृष्टप्रदेशबन्धकः। तथाहि—मनुष्यद्विकादिपञ्चविंशतिप्रकृतीर्विना शेषाः सम्यग्दृष्टेरिह बन्ध एव नायान्ति। सासादनस्तु काश्चिद्बध्नाति, परं तस्योत्कृष्टयोगो न लभ्यते, अत एता एकचत्वारिंशन्मिथ्यादृष्टिरेवोत्कृष्टयोगोऽल्पतरबन्धक उत्कृष्टप्रदेशाः करोति। या अपि पञ्चविंशतिः सम्यग्दृष्टिबन्धयोग्यास्तासामपि मध्ये औदारिकतैजसकार्मणवर्णचतुष्कागुरुलघूपघातबादरप्रत्येकास्थिराशुभायशःकीर्तिनिर्माणलक्षणानां पञ्चदशानामपर्याप्तैकेन्द्रिययोग्यत्रयोविंशतिबन्ध एव। शेषाणां च दशानां पर्याप्तप्रायोग्यपञ्चविंशतिबन्ध एवोत्कृष्टप्रदेशबन्धो लभ्यते, नाधिकबन्धे, भागबाहुल्यात्। तौ च त्रयोविंशतिपञ्चविंशतिबन्धौ सम्यग्दृष्टेर्न भवत इत्येतासामपि मिथ्यादृष्टिरेवोत्कृष्टबन्धस्वामी। उक्तमुत्तरप्रकृतिषूत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामित्वं।

अथ जघन्यप्रदेशबन्धस्वामित्वमुच्यते—तत्रायुर्वर्जानां सप्तानां मूलप्रकृतीनां सूक्ष्मनिगोदो लब्ध्यपर्याप्तक आद्यसमये जघन्यप्रदेशबन्धस्वामी। द्वितीयादिसमयेऽसङ्ख्ययगुणयोगस्थानवृद्धेरादिसमयग्रहणं। आयुषोऽपि स एव शेषसूक्ष्मनिगोदापेक्षया सर्वमन्दयोगस्था-

नवर्ती स्वायुःशेषत्रिभागाद्यसमयस्थस्तथा। उत्तरप्रकृतिष्वाहारकद्विकस्य परावर्त्तमानयोगोऽष्टविधबन्धकः, सर्वजघन्यवीर्योऽप्रमत्तयतिर्देवद्विकवैक्रियद्विकपञ्चेन्द्रियजात्याद्यसंस्थानोच्छ्वासपराघातप्रशस्तविहायोगतित्रसदशकवर्णचतुष्कतैजसकार्मणागुरुलघूपघातनिर्माणतीर्थकरनामाहारकद्विकलक्षणैकत्रिंशन्नामोत्तरप्रकृतिबन्धकस्तथा, भागाल्पत्वात्त्रिंशद्बन्धत्यागः। तथाऽसंज्ञी घोलमानयोगः सर्वजघन्यवीर्यो नरकत्रिकसुरायुषोस्तथा, पृथिव्यादीनामसंज्ञ्यपर्याप्तस्य चैतदबन्धकत्वादसंज्ञिपर्याप्तग्रहणं। सोऽपि यद्येकस्मिन्नेव योगे चिरमवतिष्ठमानो गृह्यते तदा तीव्रचेष्टो भवेदिति घोलमानयोगग्रहणं, परावर्त्तमानयोग इति तदर्थः। योगाद्योगान्तरसंक्रान्तौ च स्वभावादल्पैव चेष्टा भवति। पर्याप्तसंज्ञी च प्रभूतयोगत्वान्नात्राधिकृतः, जघन्यस्यापि पर्याप्तसंज्ञियोगस्योत्कृष्टासंज्ञिपर्याप्तयोगादसङ्ख्येयगुणत्वात्। सुरद्विकवैक्रियद्विकजिननाम्नां सम्यग्दृष्टिर्भवाद्यसमये वर्त्तमानस्तथा। तथाहि—तीर्थकरनामकर्मणो मनुष्यस्तीर्थकरनामकर्मबन्धकः कालं कृत्वा देवेषूत्पन्नः, तत्र प्रथमसमये वर्त्तमानो मनुष्यगतिप्रायोग्यजिननामसहितत्रिंशद्बन्धकः,सर्वजघन्ययोगोऽविरतसम्यग्दृष्टिर्जघन्यप्रदेशबन्धं विधत्ते। नारकोऽपि श्रेणिकादिवदेवं तद्बन्धकः संभवति, परमिह देवोऽल्पयोगत्वादनुत्तरवासी गृह्यते, नारकेषु त्वेवंभूतो जघन्ययोगो न लभ्यत इति तेषु समुत्पन्नो नेह गृहीतः। तिर्यञ्चस्तु तीर्थकरनाम न बध्नन्तीत्युपेक्षिताः। मनुष्यास्तु भवाद्यसमये तीर्थकरनामसहिता नाम्न एकोनत्रिंशत्प्रकृतीर्बध्नन्ति, परं तत्राल्पा भागा इति तेऽप्युपेक्षिताः। एकत्रिंशद्बन्धस्तु जिननामसहितः संयतस्यैव भवति, तत्र वीर्यमल्पं न लभ्यत इति तस्यापि त्यागः। देवद्विकवैक्रियद्विकयोर्देवो नैरयिको वा तीर्थकरनामबन्धको यथासङ्ख्यं देवभवान्नारकभवाच्च च्युतो मनुष्यभवे समुत्पद्यमान उत्पत्तिप्रथमसमयस्थो देवगतिप्रायोग्यास्तीर्थकरनामसहिता एकोनत्रिंशत्प्रकृतीर्बन्धन सम्यग्दृष्टिर्जघन्ययोगस्थानवर्त्ती जघन्यप्रदेशबन्धकर्ता। देवनारका भवप्रत्ययादेवैतत्प्रकृतिचतुष्टयं न

संप्रति **स्थित्यनुभागबन्धप्ररूपणावसरः** । तत्र बहुवक्तव्यत्वात् प्रथमतोऽनुभागबन्धस्यैव प्ररूपणा क्रियते । तत्र चतुर्दशानुयोगद्वाराणि। तद्यथा–अविभागप्ररूपणा १, वर्गणाप्ररूपणा २, स्पर्धकप्ररूपणा ३, अन्तरप्ररूपणा ४, स्थानप्ररूपणा ५,

---

बध्नन्तीति नेहाधिकृताः। तिर्यञ्चश्चाभोगभूमिजा भवाद्यसमये बध्नन्ति एतत्केवलं देवगतिप्रायोग्यामष्टाविंशतिं बध्नन्तीति भागाल्पत्वात्तेऽपि नाधिकृताः। मनुष्यस्याप्यष्टाविंशतिबन्धकस्य भागा बहवो न लभ्यन्ते। त्रिंशदेकत्रिंशद्बन्धौ तु देवगतिप्रायोग्यौ संयतस्य भवतः, परं तत्र वीर्यमल्पं न लभ्यते, अन्ये च देवगतिप्रायोग्या बन्धा एव न सन्तीत्येकोनत्रिंशद्बन्धकस्य मनुष्यस्यैव ग्रहणं । ननु तिर्यक्षु पर्याप्तासंज्ञी देवगतिप्रायोग्यं बध्नन्नेतत्प्रकृतिचतुष्टयबन्धकः कस्मान्न गृहीतः? उच्यते–प्रभूतयोगत्वादपर्याप्तसंज्ञियोगाद्धि पर्याप्तासंज्ञी योगो जघन्यतोऽप्यसङ्ख्येयगुण इति। शेषाणां तु मनुष्यायुस्तिर्यगायुर्वर्जितानां नवो(सप्तो)त्तरशतसङ्ख्यानां प्रकृतीनां सूक्ष्मनिगोदो लब्ध्यपर्याप्तः सर्वाल्पवीर्य उत्पत्तिप्रथमसमये जघन्यप्रदेशबन्धस्वामी। नवरमपर्याप्तकसूक्ष्मसाधारणनाम्नां पञ्चविंशतिबन्धकः, एकेन्द्रियातपस्थावराणां षड्विंशतिबन्धको, मनुष्यद्विकस्यैकोनत्रिंशद्बन्धकः, शेषाणां (९९) तु त्रिंशद्बन्धकः,उक्तविशेषणस्तथा । मनुष्यतिर्यगायुषोः स एव स्वायुःशेषत्रिभागसमये तथा, कारणं तु प्रागुक्तमेव ॥

---

१ सूक्ष्मनाम अने साधारणनामना जघन्यबंधमां एकेन्द्रिय प्रायोग्य २५ बांधतां, अने अपर्याप्तनामनो द्वीन्द्रियादि अपर्याप्त प्रायोग्य २५ बांधतां, पण एकेन्द्रिय प्रायोग्य २५ बांधतां नहि, कारणके एकेन्द्रिय प्रायोग्य २५ बांधतां अपर्याप्तनामनो बंध नथी.

कंडकप्ररूपणा ६, षट्स्थानप्ररूपणा ७, अधस्तनस्थानप्ररूपणा ८, वृद्धिप्ररूपणा ९, समयप्ररूपणा १०, यवमध्यप्ररूपणा ११, ओजोयुग्मप्ररूपणा १२, पर्यवसानप्ररूपणा १३, अल्पबहुत्वप्ररूपणा १४। तत्राविभागप्ररूपणार्थमाह—

गहणसमयम्मि जीवो, उप्पाएई गुणं सपच्चयओ। सव्वजियाणंतगुणे, कम्मपएसेसु सव्वेसुं ॥ २९ ॥

गहणेति—इहानुभागस्य कारणं काषायिका अध्यवसायाः, "ठिइअणुभागं कसायाओ कुणइ" इतिवचनात्। ते च द्विधा—शुभा अशुभाश्च। तत्र शुभैः क्षीरखंडरसोपममाह्लादजननमनुभागं कर्मपुद्गलानामाधत्ते, निंबघोषातकीरसोपमं चाशुभैः। ते च शुभा अशुभा वा काषायिका अध्यवसायाः प्रत्येकमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणाः, केवलं शुभा विशेषाधिका द्रष्टव्याः। तथाहि—यानेवानुभागबन्धाध्यवसायान् क्रमशः स्थापितान् संक्लिश्यमानः क्रमेणाधोऽध आस्कन्दति, तानेव विशुध्यमानः क्रमेणोर्ध्वोर्ध्वमारोहति। ततो यथा प्रासादादवतरतो यावन्ति सोपानस्थानानि भवन्ति तावन्त्येवारोहतोऽपि, तथाऽत्रापि यावन्त एव संक्लिश्यमानस्याशुभाध्यवसायास्तावन्त एव विशुध्यमानस्यापि शुभाध्यवसायाः। उक्तं च—"क्रमशः स्थितासु काषायिकीषु जीवस्य भावपरिणतिषु। अवपतनोत्पतनाद्धे संक्लेशाद्धाविशोध्यद्धे ॥ १ ॥" केवलं क्षपको येष्वध्यवसायेषु वर्तमानः क्षपकश्रेणिमारोहति, तेभ्यः पुनर्न निवर्तते, तस्य प्रतिपाताभावात्, अतस्तेऽधिका इति तदपेक्षया विशेषाधिकाः शुभाध्यवसायाः। तत्र शुभेनाशुभेन वा एकेन केनचिदध्यवसायेन स्वप्रत्ययत इति स्वस्यात्मनः संबन्धिनानुभागबन्धं प्रति प्रत्ययेन

गाथार्थः—जीवो=जीव, गहणसमयम्मि=ग्रहण समये, सव्वेसु कम्मपएसेसु=सर्व कर्मप्रदेशोने विषे, सपच्चयओ=स्व प्रत्ययथी, सव्वजियाणंतगुणे=सर्वजीवथी अनंतगुणा, गुणे=रसाणुने, उप्पाएई=उपजावे छे. २९

प्रत्ययभूतेन कारणभूतेन जीवो ग्रहणसमये [1]योग्यपुद्गलादानसमये सर्वेषु कर्मप्रदेशेषु एकैकस्मिन् कर्मपरमाणावित्यर्थः । गुणान् रसस्य निर्विभागान् [2]भागानुक्तस्वरूपान् सर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणानुत्पादयति (१)। इयमत्र भावना–इह पूर्वं कर्मप्रायोग्यवर्गणान्तःपातिनः सन्तः कर्मपरमाणवो न तथाविधविशिष्टरसोपेता आसीरन्, किंतु प्रायो नीरसा एकस्वरूपाश्च । यदा तु जीवेन गृह्यन्ते, तदानीं ग्रहणसमये एव तेषां काषायिकेणाध्यवसायेन सर्वजीवेभ्योऽप्यनन्तगुणा रसाविभागा आप(पाँ)द्यन्ते, ज्ञानावरणकत्वादिविचित्रस्वभावता च । अचिन्त्यत्वात् जीवानां पुद्गलानां च शक्तेः । न चैतदनुपपन्नं, तथादर्शनात् । तथाहि–शुष्कतृणादिपरमाणवोऽत्यन्तनीरसा अपि गवादिभिर्गृहीत्वा विशिष्टक्षीरादिरसरूपतया सप्तधातुरूपतया च परिणम्यन्ते इति॥२९॥

अत्राह–ननु तान् रसस्याविभागान् किं सर्वेष्वपि [3]कर्मपरमाणुषु तुल्यानुत्पादयति आहोश्विद्विषमान् ? उच्यते–विषमान् । तथाहि–केषुचित्परमाणुषु स्तोकान् । तांश्च जघन्यतोऽपि सर्वजीवानन्तगुणान् । केषुचित्तेभ्योऽपि प्रभूतान् । केषुचिच्च प्रभूततमान् । तत्र न ज्ञायते केषु कियन्त इति तन्निरूपणार्थं वर्गणादिप्ररूपणामाह—

सव्वप्पगुणा ते पढम–वग्गणा सेसिया विसेसूणा । अविभागुत्तरियाओ सिद्धाणमणंतभागसमा ॥ ३० ॥

सव्वेति–येषां परमाणूनां समस्तान्यपरमाण्वपेक्षयाऽल्पे गुणाः स्तोका रसाविभागास्ते सर्वाल्पगुणाः परमाणवः समुदिताः

गाथार्थः—सव्वप्पगुणा=सर्वथी अल्प रसाणुवाला, ते=ते कर्म परमाणुओनी, पढमवग्गणा=प्रथम वर्गणा, सेसिया=बाकीनी, अविभागुत्तरियाओ=एकेक रसाणुए वधती, सिद्धाणमणंतभागसमा=सिध्धना अनन्तमा भाग जेटली, विसेसूणा=विशेषहीन विशेषहीन परमाणुवाळी जाणवी. ३० ॥ १ अत्र–'योग्य' शब्दः, २ 'भागान्' शब्दः, ३ 'कर्म' शब्दश्च–प्रत्यन्तरे न ।

प्रथमा वर्गणा । तस्यां च कर्मपरमाणवोऽतिशयेन प्रभूताः । शेषाश्च वर्गणा विशेषहीनाः कर्मपरमाण्वपेक्षया । तथाहि–प्रथमवर्गणापेक्षया द्वितीयवर्गणायां कर्मपरमाणवो विशेषहीनाः । ततोऽपि तृतीयस्यां वर्गणायां विशेषहीनाः । एवं तावद्वाच्यं यावत्सर्वोत्कृष्टा वर्गणा । एताश्च कथंभूता इत्याह–'अविभागुत्तरियाउ त्ति' अविभागोत्तरा एकैकस्नेहाविभागाधिका इत्यर्थः । तथाहि–प्रथमवर्गणापरमाण्वपेक्षया ये परमाणव एकेन रसाविभागेनाभ्यधिकास्तेषां समुदायो द्वितीया वर्गणा । तेभ्योऽप्येकेन रसाविभागेनाधिकानां समुदायस्तृतीया वर्गणा । एवमेकैकाविभागवृद्ध्या वर्गणास्तावद्वक्तव्या यावदभव्येभ्योऽनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तभागकल्पा भवन्ति इति (२) ॥ ३० ॥

कृता वर्गणाप्ररूपणा, संप्रति स्पर्धकप्ररूपणामाह—

फड्डगमणंतगुणियं, सव्वजिएहिं पि अंतरं एवं । सेसाणि वग्गणाणं, समाणि ठाणं पढममित्तो ॥ ३१ ॥

फड्डगेति–अभव्येभ्योऽनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तभागकल्पा अनन्ता वर्गणा (ताः समुदिताः) एकं स्पर्धकं । एषा स्पर्धकप्ररूपणा (३) । संप्रत्यन्तरप्ररूपणा क्रियते–इत ऊर्ध्वमेकेन रसाविभागेनाभ्यधिकाः परमाणवो न प्राप्यन्ते, नापि द्वाभ्यां,

गाथार्थः—फड्डगं=अभव्यथी अनन्तगुणी वर्गणानुं एक स्पर्धक, इत्तो=प्रथम स्पर्धक पछी, सव्वजिएहिंपि=सर्व जीवोथी, अणंतगुणियं=अनन्त गुणुं, अंतरं=अंतर होय, एवं=ए प्रमाणे, वग्गणाणं=वर्गणाओना, समाणि=समान, सेसाणि=शेष स्पर्धको तथा अंतरो थाय त्यारे, पढमं ठाणं=प्रथम स्थान थाय. ३१

नापि त्रिभिः नापि संख्येयैः, नाप्यसंख्येयैः, नाप्यनन्तैः, किं त्वनन्तानन्तैरेव सर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणैरभ्यधिकाः प्राप्यन्ते। ततस्तेषां समुदायो द्वितीयस्य स्पर्धकस्य प्रथमा वर्गणा। तत एकेन रसाविभागेनाधिकानां परमाणूनां समुदायो द्वितीया वर्गणा। द्वाभ्यां रसाविभागाभ्यामधिकानां परमाणूनां समुदायस्तृतीया वर्गणा। एवमेकैकरसाविभागवृद्ध्या वर्गणास्तावद्वाच्या यावदभव्येभ्योऽनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तभागकल्पा भवन्ति। ततस्तासां समुदायो द्वितीयं स्पर्धकं। ततः पुनरप्यत ऊर्ध्वमेकेन रसाविभागेनाभ्यधिकाः परमाणवो न प्राप्यन्ते, नापि द्वाभ्यां, नापि त्रिभिः, नापि संख्येयैः, नाप्यसंख्येयैः, नाप्यनन्तैः, किं त्वनन्तानन्तैरेव सर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणैः। ततस्तेषां समुदायस्तृतीयस्य स्पर्धकस्य प्रथमा वर्गणा। ततः पुनरप्यत ऊर्ध्वं यथोत्तरमेकैकरसाविभागवृद्ध्या द्वितीयादिका वर्गणास्तावद्वाच्या यावदभव्येभ्योऽनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तभागकल्पा भवन्ति। ततस्तासां समुदायस्तृतीयं स्पर्धकं। एवं स्पर्धकानि तावद्वाच्यानि यावदभव्येभ्योऽनन्तगुणानि सिद्धानामनन्तभागकल्पानि (तुल्यानि) भवन्ति। तेषां समुदाय एकमनुभागबन्धस्थानं। तथा चाह–"अणंतगुणियं सव्वजिएहिं पि" इत्यादि। प्रथमस्पर्धकचरमवर्गणाया द्वितीयस्पर्धकप्रथमवर्गणायाश्चान्तरमपि सर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणितं द्रष्टव्यं। एषान्तरप्ररूपणा (४)। एवं शेषाण्यपि स्पर्धकान्यन्तराणि च यथोक्तप्रमाणान्यवगन्तव्यानि। तानि च स्पर्धकानि एकानि[1] एकस्पर्धकसत्कवर्गणानां समानि अभव्येभ्योऽनन्तगुणानि सिद्धानामनन्तभागकल्पानीत्यर्थः, एकं प्रथमं सर्वजघन्यमनुभागबन्धस्थानं भवति। अनुभागबन्धस्थानं नामैकेन कषायिकेणाध्यवसायेन गृहीतानां कर्मपरमाणूनां रसस्पर्धकसमुदायपरिमाणं (५)॥३१॥

१ अत्र ' एकानि ' शब्दः प्रत्यन्तरे नास्ति।

कृता स्थानप्ररूपणा । कंडकप्ररूपणार्थमाह—

[1]एत्तो अंतरतुल्लं अंतरमणंतभागुत्तरं बिइयमेवं । अंगुलअसंखभागो अणंतभागुत्तरं कंडं ॥ ३२ ॥

एत्तो त्ति–इतः प्रथमस्थानादारभ्य द्वितीयस्थानादर्वाक् अन्तरमन्तरतुल्यं प्रागुक्तप्रमाणान्तरतुल्यं द्रष्टव्यं । इदमुक्तं भवति–यथा प्रथमस्पर्धकचरमवर्गणाया द्वितीयस्पर्धकादिवर्गणायाश्चान्तरं सर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणं समुद्दिष्टं, एवमिहापि प्रथमस्थानान्तिमस्पर्धकचरमवर्गणाया द्वितीयस्थानाद्यस्पर्धकप्रथमवर्गणायाश्चान्तरं सर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणमवगन्तव्यं । तच्च द्वितीयस्थानं स्पर्धकापेक्षयाऽनन्तभागोत्तरमनन्तभागवृद्धं । यावन्ति प्रथमे स्थाने स्पर्धकानि तावद्भ्योऽनन्तभागाधिकानि द्वितीये स्थाने स्पर्धकान्यवसेयानीत्यर्थः । एवं यथोत्तरमनन्तभागवृद्धान्युपदर्शितप्रकारेण स्थानानि तावद्वाच्यानि यावदङ्गुलासंख्येयभागगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणानि भवन्ति । एतेषां च समुदायः एकं कंडकं । 'अणंतभागुत्तरं ति' अनन्तभागोत्तरं–अनन्तभागोत्तरस्थानसमुदायरूपत्वात्कंडकमप्यनन्तभागोत्तरमुक्तं । एषा कंडकप्ररूपणा (६) ।

संप्रति षट्स्थानप्ररूपणा क्रियते–तस्मात् प्रथमात् कंडकात् परं यदन्यदनुभागबन्धस्थानं भवति तत्स्पर्धकापेक्षयाऽसंख्ये-

---

गाथार्थः—एत्तो=प्रथम स्थान पछी, अंतरं=बीजा स्थान वच्चेनुं अंतर, अंतरतुल्लं=स्पर्धक अन्तर जेटलुं छे. एवं=ए प्रमाणे, अणंतभागुत्तरं=अनन्तभाग स्पर्धके वधतुं, बिइयं=बीजुं स्थान ए प्रमाणे, अंगुल असंखभागो=अंगुलना असंख्यातमा भाग प्रमाण स्थानोनुं, अणंतभागुत्तरं=अनन्तमाभागे वधतुं, कंडं=कंडक छे. ३२। १ अत्र 'एत्तो' शब्दः प्रत्यन्तरे नास्ति ।

यभागाधिकं । तस्मात्पराणि तु कंडकमात्राणि स्थानानि यथोत्तरमनन्तभागवृद्धानि । ततः परं पुनरप्येकमन्यदनुभागबन्धस्थानमसंख्येयभागाधिकं । ततः पुनरपि कंडकमात्राणि स्थानानि यथोत्तरमनन्तभागवृद्धानि । ततो भूयोऽप्येकमसंख्येयभागाधिकं स्थानं । एवमनन्तभागाधिकैः कंडकप्रमाणैः स्थानैर्व्यवहितान्यसंख्येयभागाधिकानि स्थानानि तावद्वक्तव्यानि यावत्तान्यपि कंडकमात्राणि भवन्ति । कंडकं च समयपरिभाषयाऽङ्गुलमात्रक्षेत्रासंख्येयभागगतप्रदेशराशिसंख्याप्रमाणमभिधीयते। ततश्चरमादसंख्येयभागाधिकात् स्थानात् पराणि यथोत्तरमनन्तभागवृद्धानि कंडकमात्राणि स्थानानि वाच्यानि। ततः संख्येयभागाधिकमेकं स्थानं वक्तव्यं । ततो मूलादारभ्य यावन्ति स्थानानि प्रागतिक्रान्तानि तावन्ति पुनरपि तथैवाभिधाय पुनरप्येकं संख्येयभागाधिकं स्थानं वक्तव्यं । अमूनि चैवं संख्येयभागाधिकानि स्थानानि तावद्वक्तव्यानि यावत्कंडकमात्राणि भवन्ति। तत उक्तक्रमेण भूयोऽपि संख्येयभागाधिकस्थानप्रसंगे संख्येयगुणाधिकमेकं स्थानं वक्तव्यं । ततः पुनरपि मूलादारभ्य यावन्त्यनुभागबन्धस्थानानि प्रागतिक्रान्तानि तावन्ति तथैव वाच्यानि । ततः पुनरप्येकं संख्येयगुणाधिकं स्थानं वक्तव्यं । ततो भूयोऽपि मूलादारभ्य यावन्ति स्थानानि प्रागतिक्रान्तानि तावन्त्यनुभागबन्धस्थानानि तथैव वक्तव्यानि । ततः पुनरप्येकं संख्येयगुणाधिकं स्थानं वक्तव्यं । अमून्यप्येवं संख्येयगुणाधिकानि स्थानानि तावद्वक्तव्यानि यावत्कंडकमात्राणि भवन्ति । ततः पूर्वपरिपाट्या पुनः संख्येयगुणाधिकस्थानप्रसंगेऽसंख्येयगुणाधिकं स्थानं वक्तव्यं । ततः पुनरपि मूलादारभ्य यावन्त्यनुभागबन्धस्थानानि प्रागतिक्रान्तानि तावन्ति तथैव पुनरपि वाच्यानि। ततः पुनरप्येकमसंख्येयगुणाधिकं स्थानं वक्तव्यं । ततो भूयोऽपि मूलादारभ्य तावन्त्यनुभागबन्धस्थानानि वक्तव्यानि । ततः पुनरप्येकमसंख्येयगुणाधिकं स्थानं वक्तव्यं । अमूनि चैवमसंख्येयगुणाधिकानि

स्थानानि तावद्वाच्यानि यावत्कंडकमात्राणि भवन्ति । ततः पूर्वपरिपाट्या पुनरप्यसंख्येयगुणाधिकस्थानप्रसंगेऽनन्तगुणाधिकं स्थानं वक्तव्यं । ततः पुनरपि मूलादारभ्य यावन्त्यनुभागबन्धस्थानानि प्रागभिहितानि तावन्ति पुनरपि तथैव वाच्यानि । ततो भूयोऽप्येकमनन्तगुणाधिकं स्थानं वक्तव्यं । ततो भूयोपि मूलादारभ्य तावन्ति स्थानानि तथैव वक्तव्यानि । ततः पुनरप्येकमनन्तगुणाधिकं स्थानं वक्तव्यं।एवमनन्तगुणाधिकानि स्थानानि तावद्वक्तव्यानि यावत्कंडकमात्राणि भवन्ति इति॥३२॥

इदानीं सूत्रमनुस्रियते—

एगं असंखभागे–णणंतभागुत्तरं पुणो कंडं । एवं असंखभागु–त्तराणि जा पुव्वतुल्लाणि ॥ ३३ ॥

एगं ति–ततः प्रथमात् कंडकादुपरि एकमनुभागबन्धस्थानं 'असंखभागेण' असंख्येयेन भागेनाधिकं द्रष्टव्यं । पूर्वस्थानगतस्पर्धकापेक्षयाऽसंख्येयभागाधिकैः स्पर्धकैरधिकं द्रष्टव्यमित्यर्थः । ततः पुनरप्यनन्तभागोत्तरं कंडं यथोत्तरमनन्तभागवृद्धानां स्थानानां कंडकं । ततः पुनरप्येकमसंख्येयभागाधिकं स्थानं । एवमनन्तभागवृद्धकंडकव्यवहितान्यसंख्येयभागाधिकानि स्थानानि तावद्वक्तव्यानि यावत्पूर्वतुल्यानि भवन्ति, कंडकमात्राणि भवन्तीत्यर्थः । ततः पुनरप्यनन्तभागवृद्धस्थानानां कंडकमभिधाय ततः परमेकं संख्येयभागोत्तरं संख्येयभागाधिकमेकं स्थानं द्रष्टव्यं ॥ ३३ ॥

गाथार्थः—एगं=(ते प्रथम कंडकथी आगळ) एक असंख्येय भागाधिक स्थान, पुणो=वळी आगळ, अणंतभागुत्तरं कंडं=अनन्तभागाधिक स्थाननुं कंडक. एवं=ए प्रमाणे, असंखभागुत्तराणि=असंख्यभागाधिक स्थानो, जा पुव्वतुल्लाणि=यावत् पूर्वतुल्य (कंडक प्रमाण) थाय त्यां सुधी कहेवां. ३३

तथा चाह—

एगं संखेज्जुत्तरमेत्तो तीयाण तित्थिया बीयं। ताण वि पढमसमाइं, संखेज्जगुणोत्तरं एक्कं ॥३४॥

एगं ति–इतः संख्येयभागाधिकात् स्थानात् परतो मूलादारभ्य यावन्त्यनुभागबन्धस्थानानि प्रागतिक्रान्तानि तावन्त्यतिक्रम्य गत्वा द्वितियं संख्येयभागाधिकं स्थानं वक्तव्यं। तान्यपि संख्येयभागाधिकानि स्थानान्युपदर्शितप्रकारेण तावद्वाच्यानि यावत्प्रथमसमानि भवन्ति प्रथमकंडकतुल्यानि भवन्तीत्यर्थः। ततः पूर्वपरिपाट्या संख्येयभागाधिकस्थानप्रसंगे संख्येयगुणोत्तरं संख्येयगुणाधिकं स्थानमेकं वक्तव्यं ॥ ३४ ॥

एत्तो तीयाणि अइत्थियाणि बिइयमवि ताणि पढमस्स। तुल्लाणसंखगुणियं, एक्कं तीयाण एक्कस्स ॥३५॥

गाथार्थः—एत्तो=त्यार पछी, एगं=एक, संखेज्जुत्तरं=संख्यातभाग वृद्धिनुं स्थान, अतीयाण=प्रथमथी अतिक्रम्यां, तित्थिया=तेटलां ओळंगीए त्यारे, बीयं=बीजुं, ताणवि=तेओ (संख्यातभागवृद्धिनां स्थानो) पण, पढमसमाइं=प्रथम समान (कंडक प्रमाण) कहेवां, एक्कं=(त्यार पछी संख्येयभागाधिकने स्थाने) एक संखेज्जगुणोत्तरं=संख्येयगुणाधिक स्थान कहेवुं. ३४ एत्तो=त्यां (संख्येयगुणाधिक)थी आगळ, अतीयाणि=प्रथमथी आळंग्यां तेटलां, अइत्थियाणि=अतिक्रमीने, बिइयमवि=संख्येयगुणाधिकनुं बीजुं स्थान कहेवुं. ताणि=ते (संख्येयगुणाधिकस्थानो) पढमस्स तुल्लाण=प्रथम (अनंतभागाधिकस्थान) तुल्य कहेवां, त्यांथी आगळ, एक्कं=एक, असंखगुणियं=असंख्यातगुणाधिक कहीने, तीयाण=पूर्वातीत स्थानो अतिक्रमीने, एक्कस्स=एक असंख्यातगुणाधिकनुं स्थान कहेवुं. ३५

एत्तो त्ति–इतः संख्येयगुणोत्तरादनुभागबन्धस्थानात् यावन्ति मूलत आरभ्य प्रागतीतान्यतिक्रान्तान्यनुभागबन्धस्थानानि तावन्त्यतिक्रम्य द्वितीयं संख्येयगुणाधिकं स्थानं वक्तव्यं। तान्यप्येवं तावद्वक्तव्यानि यावत्प्रथमस्यानन्तभागवृद्धस्थानकंडकस्य तुल्यानि भवन्ति। ततः पूर्वपरिपाट्या पुनः संख्येयगुणाधिकस्थानप्रसंगेऽसंख्येयगुणाधिकं स्थानमेकं वक्तव्यं। ततो मूलत आरभ्य यावन्त्यतीतानि तावन्ति भूयोऽप्यतिक्रम्य गत्वा द्वितीयकमसंख्येयगुणाधिकं स्थानं वक्तव्यं ॥ ३५ ॥

बिइयं ताणि समाइं, पढमस्साणंतगुणियमेगं तो। तीयाण इत्थियाणं–ताण वि पढमस्स तुल्लाइं ॥३६॥

बिइयं ति–तान्यप्यसंख्येयगुणाधिकानि स्थानानि प्रथमस्य मूलभूतस्यानन्तभागवृद्धकंडकस्य समानि तुल्यानि भवन्ति। ततः पूर्वपरिपाट्या पुनरप्यसंख्येयगुणाधिकस्थानप्रसंगेऽनन्तगुणितमनन्तगुणाधिकं स्थानमेकं वक्तव्यं। ततो मूलत आरभ्य यान्यभागबन्धस्थानानि अतीतानि तानि भूयोऽप्यतिक्रम्य गत्वा द्वितीयमनन्तगुणाधिकं स्थानं वक्तव्यं। एवं तान्यप्यनन्तगुणाधिकानि स्थानानि तावद्वक्तव्यानि यावत्प्रथमस्यानन्तभागवृद्धस्थानकंडकस्य तुल्यानि भवन्ति। ततः पूर्वपरिपाट्या पञ्चकवृद्ध्यनन्तरं पुनरप्यनन्तगुणाधिकं स्थानमुत्पद्यते किं वा नेति चेदुच्यते–नोत्पद्यते, षट्स्थानकस्य परिसमाप्तत्वात्। एतत्प्रथमं षट्स्थानकं ॥ ३६ ॥

गाथार्थः—बिइयं=बीजुं, ताणि=ते (असंख्येयगुणाधिक) स्थानो, पढमस्स तुल्लाइं=प्रथम कंडक तुल्य कहेवां, त्यांथी आगळ, एगं=एक, अणंतगुणियं=अनंत गुणाधिकस्थान कहेवुं. तो=त्यांथी आगळ, तीयाण=पूर्वातीत स्थानो जेटलां स्थानोने, इत्थियाणं=आळंगीने, ताणवि=ते (अनंतगुणाधिक) स्थानो पण, पढमस्स=प्रथम कंडकना, तुल्लाइं=तुल्य कहेवां ३६

(६३/२ पानामां आपेल) षट्स्थानक यन्त्रनी समजुती.

१ षट्स्थानकना यन्त्रमां आपेलो एक एक संख्या रूप आंक एक एक अध्यवसाय रूप जाणवो जेम के १, २ वगेरे.

२ जेटलामो आंक तेटलामुं अध्यवसायस्थान. जेमके १५मो आंक ते १५मुं अध्यवसायस्थान, २४मो आंक ते २४ मुं अध्यव०स्थान;

३ जे आंकनी आगळ कोइ जातनी निशानी न होय ते आंकवाळु अध्य० तेनी पूर्वना अध्य०स्थानथी अनन्तभागाधिक जाणवुं. जेमके २, ३, ४, ६ वगेरे. एटले १लाथी २जुं अनन्तभागाधिक, २जाथी ३जुं अनन्तभागाधिक, ५माथी ६ठुं अनन्तभागाधिक.

४ अंगुलना असंख्यातमा भागमां जेटला आकाश प्रदेश ते संख्यानुं नाम कंडक. अहीं असत्कल्पनाए कंडक संख्या ४ समजवी.

५ 'अ' असंख्यभागाधिकनी निशानी समजवी जेमके 'अ५' एटले ४था स्थानथी ५मुं असंख्यभागाधिक. ए प्रमाणे 'अ१०' एटले १०मुं ९माथी, 'अ२०' एटले २०मुं १९माथी असंख्यभागाधिक.

६ 'क' संख्यातभागाधिकनी निशानी छे. जेमके 'क२५' एटले २४मा स्थानथी २५मुं संख्यातभागाधिक. ए प्रमाणे 'क५०' ते ४९मा स्थानथी, अने 'क१५०' ते १४९मा स्थानथी संख्यातभागाधिक.

७ 'ख' संख्यातगुणाधिकनी निशानी छे. जेमके 'ख१२५' ते १२४माथी संख्यातगुणाधिक. 'ख३७५' ते ३७४माथी संख्यातगुणाधिक.

८ 'ग' असंख्यातगुणाधिकनी निशानी. जेमके 'ग६२५' ते ६२४माथी असंख्यातगुणाधिक, 'ग१२५०' ते १२४९माथी असंख्यातगुणा०

९ 'घ' अनंतगुणनी निशानी छे जेमके 'घ३१२५' ते ३१२४माथी अनंतगुणाधिक 'घ'६२५०' ते ६२४९माथी अनंतगुणाधिक.

१० जे बे आंकनी वच्चे आवुं+वत्तानुं चिह्न होय त्यां ते बेनी वच्चे अनंतभागाधिकनां एक कंडक प्रमाण (असत्कल्पनाए ४) स्थानो छे एम समजवुं. जेमके 'अ२५५ +अ२६०' त्यां अ२५५-२५६-२५७-२५८-२५९-अ२६० ए प्रमाणे जाणवुं.

११ जे बे आंकनी वच्चे आवुं × गुण्यानुं चिह्न होय त्यां अनन्तभागाधिकनुं १ कंडक, पछी १ स्थान असंख्यभागाधिकनुं, पछी अनंतभागाधिकनुं १ कंडक, पछी १ असंख्यभागाधिकनु स्थान ए प्रमाणे आंतरे आंतरे आवेली असंख्यातभागाधिकनी संख्या १ कंडक प्रमाण (अस०४) थाय अने उपर अनंतभागनुं एक कंडक थाय. असत्कल्पनाए २४स्थान समजवां. जेमके 'क३१५०'×'क३१७५'= ३१५१, ३१५२, ३१५३, ३१५४, अ३१५५, +अ३१६०+अ३१६५+अ३१७०+क३१७५

असत्कल्पनाद्वारा षट्स्थानक प्ररूपणा. (यन्त्रकम्)

(आ यन्त्र समजवा माटे पाने ६३।१ मां आपेली षट्स्थानकनी समजुती वांचो.)

१ २ ३ ४ अ५ ६ ७ ८ ९ अ१० ११ १२ १३ १४ अ१५ १६ १७ १८ १९ अ२० २१ २२ २३ २४ क२५ २६ २७ २८ २९ अ३० ३१ ३२ ३३ ३४ अ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ अ४० ४१ ४२ ४३ ४४ अ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ क५० ५१ ५२ ५३ ५४ अ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ अ६० ६१ ६२ ६३ ६४ अ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ अ७० ७१ ७२ ७३ ७४ क७५ ७६ ७७ ७८ ७९ अ८० ८१ ८२ ८३ ८४ अ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ अ९० ९१ ९२ ९३ ९४ अ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ क१०० १०१ १०२ १०३ १०४ अ१०५ १०६ १०७ १०८ १०९ अ११० १११ ११२ ११३ ११४ अ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ अ१२० १२१ १२२ १२३ १२४ ख१२५ १२६ १२७ १२८ १२९ अ१३० १३१ १३२ १३३ १३४ अ१३५ १३६ १३७ १३८ १३९ अ१४० १४१ १४२ १४३ १४४ अ१४५ १४६ १४७ १४८ १४९ क१५० १५१ १५२ १५३ १५४ अ१५५ १५६ १५७ १५८ १५९ अ१६० १६१ १६२ १६३ १६४ अ१६५ १६६ १६७ १६८ १६९ अ१७० १७१ १७२ १७३ १७४ क१७५ १७६ १७७ १७८ १७९ अ१८० १८१ १८२ १८३ १८४ अ१८५ १८६ १८७ १८८ १८९ अ१९० १९१ १९२ १९३ १९४ अ१९५ १९६ १९७ १९८ १९९ क२०० २०१ २०२ २०३ २०४ अ२०५ २०६ २०७ २०८ २०९ अ२१०

२११ २१२ २१३ २१४ अ२१५ २१६ २१७ २१८ २१९ अ२२० २२१ २२२ २२३ २२४ क२२५ २२६ २२७ २२८ २२९
अ२३० २३१ २३२ २३३ २३४ अ२३५ २३६ २३७ २३८ २३९ अ२४० २४१ २४२ २४३ २४४ अ२४५ २४६ २४७ २४८
२४९ ख२५० २५१ २५२ २५३ २५४ अ२५५+अ२६०+अ२६५+अ२७०+क२७५+अ२८०+अ२८५+अ२९०+अ२९५+क३००+अ३०५
+अ३१०+अ३१५+अ३२०+क३२५+अ३३०+अ३३५+अ३४०+अ३४५+क३५०+अ३५५+अ३६०+अ३६५+अ३७०+ख३७५+अ३८०+अ-
३८५+अ३९०+अ३९५+क४००+अ४०५+अ४१०+अ४१५+अ४२०+क४२५+अ४३०+अ४३५+अ४४०+अ४४५+क४५०+अ४५५+अ४६०
+अ४६५+अ४७०+क४७५+अ४८०+अ४८५+अ४९०+अ४९५+ख५००+अ५०५+अ५१०+अ५१५+अ५२०+क५२५+अ५३०+ अ५३५+
अ५४०+अ५४५+क५५०+अ५५५+अ५६०+अ५६५+अ५७०+क५७५+अ५८०+अ५८५+अ५९०+अ५९५+ क६००+अ६०५+अ६१०+अ-
६१५+अ६२०+ग६२५+अ६३०+अ६३५+अ६४०+अ६४५+क६५०+अ६५५+अ६६०+अ६६५+अ६७०+क६७५+अ६८०+अ६८५+अ६९-
०+अ६९५+क७००+अ७०५+अ७१०+अ७१५+अ७२०+क७२५+अ७३०+अ७३५+अ७४०+अ७४५+ख७५०+अ७५५+अ+७६०+अ७६-
५+अ७७०+क७७५+अ७८०+अ७८५+अ७९०+अ७९५+क८००+अ८०५+अ८१०+अ८१५+अ८२०+क८२५+अ८३०+ अ८३५+ अ८४०
+अ८४५+क८५०+अ८५५+अ८६०+अ८६५+अ८७०+ख८७५+अ८८०+अ८८५+अ८९०+अ८९५+क९००+अ९०५+ अ९१०+ अ९१५
+अ९२०+क९२५+अ९३०+अ९३५+अ९४०+अ९४५+क९५०+अ९५५+अ९६०+अ९६५+अ९७०+क९७५+अ९८०+अ९८५+अ९९०+
अ९९५+ख१०००+अ१००५+अ१०१०+अ१०१५+अ१०२०+क१०२५+अ१०३०+अ१०३५+अ१०४०+अ१०४५+क१०५०+अ१०५५+ अ-
१०६०+अ१०६५+अ१०७०+क१०७५+अ१०८०+अ१०८५+अ१०९०+अ१०९५+क१११००+अ१११०५+ अ१११०+अ१११५+ अ१११२०+ख-
१११२५+अ१११३०+अ१११३५+अ१११४०+अ१११४५+क१११५०+अ१११५५+अ१११६०+अ१११६५+अ१११७०+क१११७५+अ१११८०+अ१११८५+अ१११९०+
१११९५+क११२००+अ११२०५+अ११२१०+अ११२१५+अ११२२०+क११२२५+अ११२३०+अ११२३५+अ११२४०+अ११२४५+ग११२५०+अ११२५५+अ११२६०

+ अ१२६५ + अ१२७० + क१२७५ + अ१२८० + अ१२८५ + अ१२९० + अ१२९५ + क१३०० + अ१३०५ + अ१३१० + अ१३१५ + अ१३२०
+ क१३२५ + अ१३३० + अ१३३५ + अ१३४० + अ१३४५ + क१३५० + अ१३५५ + अ१३६० + अ१३६५ + अ१३७० + ख१३७५
+ अ१३८० + अ१३८५ + अ१३९० + अ१३९५ + क१४०० + अ१४०५ + अ१४१० + अ१४१५ + अ१४२० + क१४२५ + अ१४३० +
अ१४३५ + अ१४४० + अ१४४५ + क१४५० + अ१४५५ + अ१४६० + अ१४६५ + अ१४७० + क१४७५ + अ१४८० + अ१४८५ + अ१४९०
+ अ१४९५ + ख१५०० + अ१५०५ + अ१५१० + अ१५१५ + अ१५२० + क१५२५ + अ१५३० + अ१५३५ + अ१५४० + अ१५४५ + क-
१५५० + अ१५५५ + अ१५६० + अ१५६५ + अ१५७० + क१५७५ + अ१५८० + अ१५८५ + अ१५९० + अ१५९५ + क१६०० + अ१६०५
+ अ१६१० + अ१६१५ + अ१६२० + ख१६२५ + अ१६३० + अ१६३५ + अ१६४० + अ१५४५ + क१६५० + अ१६५५ + अ१६६० + अ१६-
६५ + अ१६७० + क१६७५ + अ१६८० + अ१६८५ + अ१६९० + अ१६९५ + क१७०० + अ१७०५ + अ१७१० + अ१७१५ + अ१७२० + क१७२५ + अ१७३०
+ अ१७३५ + अ१७४० + अ१७४५ + ख१७५० + अ१७५५ + अ१७६० + अ१७६५ + अ१७७० + क१७७५ + अ१७८० + अ१७८५ + अ१७९० + अ१७९५ +
क१८०० + अ१८०५ + अ१८१० + अ१८१५ + अ१८२० + क१८२५ + अ१८३० + अ१८३५ + अ१८४० + अ१८४५ + क१८५० + अ१८५५ + अ१८६० + अ१-
८६५ + अ१८७० + ग१८७५ + अ१८८० + अ१८८५ + अ१८९० + अ१८९५ + क१९०० + अ१९०५ + अ१९१० + अ१९१५ + अ१९२० + क१९२५ + अ१९३०

अ१९३५ + अ१९४० + अ१९४५ + क१९५० + अ१९५५ + अ१९६० + अ१९६५ + अ१९७० + क१९७५ + अ१९८० + अ१९८५ + अ१९९० + अ१९९५ + ख२-
००० + अ२००५ + अ२०१० + अ२०१५ + अ२०२० + क२०२५ + अ२०३० + अ२०३५ + अ२०४० + अ२०४५ + क२०५० + अ२०५५ + अ२०६० + अ२०६५
+ अ२०७० + क२०७५ + अ२०८० + अ२०८५ + अ२०९० + अ२०९५ + क२१०० + अ२१०५ + अ२११० + अ२११५ + अ२१२० + ख२१२५ + अ२१३०
+ अ२१३५ + अ२१४० + अ२१४५ + क२१५० + अ२१५५ + अ२१६० + अ२१६५ + अ२१७० + क२१७५ + अ२१८० + अ२१८५ + अ२१९० + अ२१९५ + क-
२२०० + अ२२०५ + अ२२१० + अ२२१५ + अ२२२० + क२२२५ + अ२२३० + अ२२३५ + अ२२४० + अ२२४५ + ख२२५० + अ२२५५ + अ२२६० + अ-
२२६५ + अ२२७० + क२२७५ + अ२२८० + अ२२८५ + अ२२९० + अ२२९५ + क२३०० + अ२३०५ + अ२३१० + अ२३१५ + अ२३२० + क२३२५ + अ-

२३३०+अ२३३५+अ२३४०+अ२३४५+क२३५०+अ२३५५+अ२३६०+अ२३६५+अ२३७०+ख२३७५+अ२३८०+अ२३८५+अ२३९०+अ-
२३९५+क२४००+अ२४०५+अ२४१०+अ२४१५+अ२४२०+क२४२५+अ२४३०+अ२४३५+अ२४४०+अ२४४५+क२४५०+अ२४५५+ अ-
२४६०+अ२४६५+अ२४७०+क२४७५+अ२४८०+अ२४८५+अ२४९०+अ२४९५+ग२५००+अ२५०५+अ२५१०+अ२५१५+अ२५२०+ क-
२५२५+अ२५३०+अ२५३५+अ२५४०+अ२५४५+क२५५०+अ२५५५+अ२५६०+अ२५६५+अ२५७०+क२५७५+अ२५८०+अ२५८५+अ-
२५९०+अ२५९५+क२६००+अ२६०५+अ२६१०+अ२६१५+अ२६२०+ख२६२५+अ२६३०+अ२६३५+अ२६४०+अ२६४५+क२६५०+ अ-
२६५५+अ२६६०+अ२६६५+अ२६७०+क२६७५+अ२६८०+अ२६८५+अ२६९०+अ२६९५+क२७००+अ२७०५+अ२७१०+अ२७१५+ अ-
२७२०+क२७२५+अ२७३०+अ२७३५+अ२७४०+अ२७४५+ख२७५०+अ२७५५+अ२७६०+अ२७६५+अ२७७०+क२७७५+अ२७८०+अ-
२७८५+अ२७९०+अ२७९५+क२८००+अ२८०५+अ२८१०+अ२८१५+अ२८२०+क२८२५+अ२८३०+अ२८३५+अ२८४०+अ२८४५+ क-
२८५०+अ२८५५+अ२८६०+अ२८६५+अ२८७०+ख२८७५+अ२८८०+अ२८८५+अ२८९०+अ२८९५+क२९००+अ२९०५+अ२९१०+अ-
२९१५+अ२९२०+क२९२५+अ२९३०+अ२९३५+अ२९४०+अ२९४५+क२९५०+अ२९५५+अ२९६०+अ२९६५+अ२९७०+क२९७५+अ-
२९८०+अ२९८५+अ२९९०+अ२९९५+ख३०००+अ३००५+अ३०१०+अ३०१५+अ३०२०+क३०२५+अ३०३०+अ३०३५+अ३०४०+अ-
३०४५ + क३०५० + अ३०५५ + अ३०६० + अ३०६५ + अ३०७० + क३०७५ + अ३०८० + अ३०८५ + अ३०९० + अ३०९५ +क-
३१०० + अ३१०५ + अ३११० + अ३११५ + अ३१२० + घ३१२५ + अ३१३० + अ३१३५ + अ३१४० + अ३१४५ + क-
३१५० × क३१७५ × क३२०० × क३२२५ × ख३२५० × क३२७५ × क३३०० × क३३२५ × क३३५० × ख३३७५ × क३४०० × क३४२५ × क-
३४५०×क३४७५×ख३५००×क३५२५×क३५५०×क३५७५×क३६००×ख३६२५×क३६५०×क३६७५×क३७००×क३७२५×ग३७५० × क३७७५ × क-
३८००×क३८२५×क३८५०×ख३८७५×क३९००×क३९२५×क३९५०×क३९७५×ख४०००×क४०२५×क४०५०×क४०७५×क४१००× ख४१२५×क-
४१५०×क४१७५×क४२००×क४२२५×ख४२५०×क४२७५×क४३००×क४३२५×क४३५०×ग४३७५×क४४००×क४४२५×क४४५०× क४४७५×ख४-
५००×क४५२५×क४५५०×क४५७५×क४६००×ख४६२५×क४६५०×क४६७५×क४७००×क४७२५×ख४७५०×क४७७५×क४८००× क४८२५×क४८-

५०×ख४८७५×क४९००×क४९२५×क४९५०×क४९७५×ग५०००×क५०२५×क५०५०×क५०७५×क५१००×ख५१२५×क५१५०×क५१७५× क५२००
×क५२२५×ख५२५०×क५२७५×क५३००×क५३२५×क५३५०×ख५३७५×क५४००×क५४२५×क५४५०×क५४७५×ख५५००×क५५२५×क५५५०×क-
५५७५×क५६००×ग५६२५×क५६५०×क५६७५×क५७००×क५७२५×ख५७५०×क५७७५×क५८००×क५८२५×क५८५०×ख५८७५×क५९००×क५९२-
५×क५९५०×क५९७५×ख६०००×क६०२५×क६०५०×क६०७५×क६१००×ख६१२५×क६१५०×क६१७५×क६२००×क६२२५× घ६२५०×क६२७५
×क६३००×क६३२५×क६३५०×ख६३७५×क६४००×क६४२५×क६४५०×क६४७५×ख६५००×क६५२५×क६५५०×क६५७५× क६६००×ख६६२५×
क६६५०×क६६७५×क६७००×क६७२५×ख६७५०×क६७७५×क६८००×क६८२५×क६८५०×ग६८७५×क६९००×क६९२५×क६९५०×क६९७५×ख-
७०००×क७०२५×क७०५०×क७०७५×क७१००×ख७१२५×क७१५०×क७१७५×क७२००×क७२२५×ख७२५०×क७२७५×क७३००× क७३२५×क७-
३५०×ख७३७५×क७४००×क७४२५×क७४५०×क७४७५×ग७५००×क७५२५×क७५५०×क७५७५×क७६००×ख७६२५×क७६५०×क७६७५×क७७०-
०×क७७२५×ख७७५०×क७७७५×क७८००×क७८२५×क७८५०×ख७८७५×क७९००×क७९२५×क७९५०×क७९७५×ख८०००×क८०२५×क८०५०×
क८०७५ × क८१०० × ग८१२५ × क८१५० × क८१७५ × क८२०० × क८२२५ × ख८२५०×क८२७५ × क८३००×क८३२५×क८३५०×
ख८३७५ × क८४०० × क८४२५ × क८४५० × क८४७५ × ख८५०० × क८५२५ × क८५५० × क८५७५ × क८६०० × ख८६२५ ×
क८६५० × क८६७५ × क८७०० × क८७२५ × ग८७५० × क८७७५ × क८८०० × क८८२५ × ग८८५० × ख८८७५ × क८९०० × क८९२५
× क८९५० × क८९७५ × ख९००० × क९०२५ × क९०५० × क९०७५ × क९१०० × ख९१२५ × क९१५० × क९१७५ × क९२००क९२२५
× ख९२५० × क९२७५ × क९३०० × क९३२५ × क९३५० × घ९३७५ × क९४०० × क९४२५ × क९४५० × क९४७५ × ख९५०० × क९५२५
× क९५५० × क९५७५ × क९६०० × ख९६२५ × क९६५० × क९६७५ × क९७०० × क९७२५ × ख९७५० × क९७७५ × क९८०० × क९८२५
× क९८५० × ख९८७५ × क९९०० × क९९२५ × क९९५० × क९९७५ × ग१०००० × क१००२५ × क१००५० × क१००७५ × क१०१०० × ख-
१०१२५ × क१०१५० × क१०१७५ × क१०२०० × क१०२२५ × ख१०२५० × क१०२७५ × क१०३०० × क१०३२५ × क१०३५० × ख१०३७५
× क१०४०० × क१०४२५ × क१०४५० × क१०४७५ × ख१०५०० × क१०५२५ × क१०५५० × क१०५७५ × क१०६०० × ग१०६२५ × क१-

०६५० × क१०६७५ × क१०७०० × क१०७२५ × ख१०७५० × क१०७७५ × क१०८०० × क१०८२५ × क१०८५० × ख१०८७५ × क१०९००
× क१०९२५ × क१०९५० × क१०९७५ × ख११००० × क११०२५ × क११०५० × क११०७५ × क१११०० × ख१११२५ × क१११५०×क११-
१७५ × क११२०० × क११२२५ × ग११२५० × क११२७५ × क११३०० × क११३२५ × क११३५० × ख११३७५ × क११४०० × क११४२५ ×
क११४५०×क११४७५×ख११५००×क११५२५×क११५५०×क११५७५×क११६००×ख११६२५×क११६५०×क११६७५ × क११७०० ×क११७२५ ×
ख११७५०×क११७७५×क११८००×क११८२५×क११८५०×ग११८७५×क११९००×क११९२५×क११९५०×क११९७५×ख१२०००×क१२०२५×क१-
२०५०×क१२०७५×क१२१००×ख१२१२५×क१२१५०×क१२१७५×क१२२००×क१२२२५×ख१२२५०×क१२२७५×क१२३००×क१२३२५×क१२३५०
×ख१२३७५×क१२४००×क१२४२५×क१२४५०×क१२४७५×घ१२५००×क१२५२५×क१२५५०×क१२५७५×क१२६००×ख१२६२५×क१२६५०×क-
१२६७५×क१२७००×क१२७२५×ख१२७५०×क१२७७५×क१२८००×क१२८२५×क१२८५०×ख१२८७५×क१२९००×क१२९२५×क१२९५०×क१२-
९७५×ख१३०००×क१३०२५×क१३०५०×क१३०७५×क१३१०००×ग१३१२५×क१३१५०×क१३१७५×क१३२००×क१३२२५×ख१३२५० × क१३-
२७५×क१३३००×क१३३२५×क१३३५०×ख१३३७५×क१३४००×क१३४२५×क१३४५०×क१३४७५×ख१३५००×क१३५२५×क१३५५० × क१३५-
७५×क१३६००×ख१३६२५×क१३६५०×क१३६७५×क१३७००×क१३७२५×ग१३७५०×क१३७७५×क१३८००×क१३८२५×क१३८५० × ख१३८७५
×क१३९००×क१३९२५×क१३९५०×क१३९७५×ख१४०००×क१४०२५×क१४०५०×क१४०७५×क१४१००×ख१४१२५×क१४१५० × क१४१७५ ×
क१४२००×क१४२२५×ख१४२५०×क१४२७५×क१४३००×क१४३२५×क१४३५०×ग१४३७५×क१४४००×क१४४२५×क१४४५०×क१४४७५ × ख-
१४५०० × क१४५२५ × क१४५५० × क१४५७५ × क१४६०० × ख१४६२५ × क१४६५० × क१४६७५ × क१४७००×क१४७२५×ख१४७५०×क-
१४७७५ × क१४८०० × क१४८२५ × क१४८५० × ख१४८७५ × क१४९०० × क१४९२५ × क१४९५० × क१४९७५ × ग१५०००×क१५०२५ ×
क१५०५०×क१५०७५×क१५१००×ख१५१२५×क१५१५०×क१५१७५×क१५२००×क१५२२५×ख१५२५०×क१५२७५×क१५३००×क१५३२५×क१-
५३५०×ख१५३७५×क१५४००×क१५४२५×क१५४५०×क१५४७५×ग१५५०००×क१५५२५ × क१५५५० × क१५५७५ × क१५६०० १५६०१ १५६०२
१५६०३ १५६०४ १५६०५ १५६०६ १५६०७ १५६०८ १५६०९ १५६१० १५६११ १५६१२ १५६१३ १५६१४ १५६१५ १५६१६ १५६१७
१५६१८ १५६१९ १५६२० १५६२१ १५६२२ १५६२३ १५६२४–O (मींडुं षट्स्थानकनी समाप्ति सूचवे छे.)

अस्मिंश्च षट्स्थानकेऽनन्तभागवृद्धिः (१), असंख्येयभागवृद्धिः (२), संख्येयभागवृद्धिः (३), संख्येयगुणवृद्धिः (४), असंख्येयगुणवृद्धिः (५), अनन्तगुणवृद्धिश्चोक्ता (६),। तत्र कियन्मात्रेणानन्तासंख्येयसंख्येयतमेन भागेन कियन्मात्रेण वाऽनन्तासंख्येयसंख्येयगुणकारेण वृद्धिर्भवतीति तत्परिज्ञानार्थमाह—

सव्वजियाणमसंखेज्जलोग संखेज्जगस्स जेट्ठस्स। भागो तिसु गुणणा तिसु छट्ठाणमसांखिया लोगा ॥३७॥

सव्वेति–आद्यासु तिसृषु वृद्धिष्वनन्तासंख्येयसंख्येयानां भागो यथाक्रमं सर्वजीवानामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशानामुत्कृष्टस्य च संख्येयस्य द्रष्टव्यः।उत्तरासु च तिसृषु वृद्धिषु गुणना गुणकारोऽनन्तासंख्येयसंख्येयानां यथाक्रममेतेषामेव सर्वजीवादीनामवगन्तव्या। इदमुक्तं भवति–प्रथमस्यानुभागबन्धस्थानस्य सर्वजीवसंख्याप्रमाणेन राशिना भागे हृते सति यल्लब्धं सोऽनन्तभाग इह ग्राह्यः, तेनाभ्यधिकं द्वितीयमनुभागस्थानं। तस्यापि सर्वजीवसंख्याप्रमाणेन राशिना भागे हृते सति यल्लब्धं तेनाभ्यधिकं तृतीयमनुभागबन्धस्थानं। एवं यद्यदनुभागबन्धस्थानमनन्तभागवृद्धमुपलभ्यते तत्तत्पाश्चात्यस्य पाश्चात्यस्यानुभागबन्धस्थानस्य सर्वजीवसंख्याप्रमाणेन राशिना भागे हृते सति यल्लभ्यते तेन तेनानन्ततमेन भागेनाभ्यधिकमवगन्तव्यं। तथाऽसंख्येयभागाधिकं नाम पाश्चात्यस्यानुभागबन्धस्थानस्यासंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणेन राशिना भागे हृते सति यल्लभ्यते सोऽसंख्येयतमो

गाथार्थः—तिसु=प्रथम त्रण वृद्धिने विषे, सव्वजियाणं=सर्व जीव प्रमाणथी, असंखेज्जलोग=असंख्यात लोकाकाश प्रमाणथी, जेट्ठस्स संखेज्जगस्स=उत्कृष्ट संख्यातथी, भागो=भागाकार, तिसु=पाछली त्रणवृद्धिने विषे, गुणणा=गुणाकार; छट्ठाणं=षट्स्थानो, असंखिया लोगा=असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण छे. ३७

भागः । तेनासंख्येयतमेन भागेनाभ्यधिकमसंख्येयभागाधिकं द्रष्टव्यं । तथा संख्येयभागाधिकं नाम पाश्चात्यस्यानुभागबन्धस्थानस्य उत्कृष्टेन संख्येयेन भागे हृते सति यल्लभ्यते स संख्येयतमो भागः । तेन संख्येयतमेन भागेनाभ्यधिकमवगन्तव्यं । तथा संख्येयगुणवृद्धं नाम पाश्चात्यमनुभागबन्धस्थानमुत्कृष्टसंख्येयकप्रमाणेन राशिना गुण्यते । गुणिते च सति यावान् राशिर्भवति एतावत्प्रमाणमवगन्तव्यं । तथाऽसंख्येयगुणवृद्धं नाम पाश्चात्यमनुभागबन्धस्थानमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशसंख्याप्रमाणेन राशिना गुण्यते । गुणिते च सति यावान् राशिर्भवति तावत्प्रमाणमवसेयं । एवमनन्तगुणवृद्धमपि भावनीयं । प्रथमस्य षट्स्थानकस्य परिसमाप्तौ सत्यामुपरि यदन्यदनुभागस्थानमुपजायतेऽनन्तभागवृद्धं तत् द्वितीयस्य षट्स्थानकस्य प्रथममवगन्तव्यं । तदपि च द्वितीयं षट्स्थानकं पूर्वक्रमेण सकलमपि वक्तव्यं । एवं शेषाण्यपि षट्स्थानकानि वक्तव्यानि । तानि च तावद्वक्तव्यानि यावदसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणानि भवन्ति । तथा चाह–'छट्ठाणमसंखिया लोगा' ।

अत्र कश्चित्प्रश्नयति–"ननु प्रथमानुभागबन्धस्थानस्य सर्वजीवप्रमाणेन राशिना भागोऽपह्रियते किं रसाविभागापेक्षया उत परमाण्वपेक्षया यद्वा स्पर्धकापेक्षया ? तत्र न तावद्रसाविभागापेक्षया, प्रथमस्थानात् द्वितीयस्थानेऽपि रसाविभागानां संख्येयादिगुणनया प्राप्यमाणत्वात् । तथाहि–प्रथमे स्थाने प्रथमे स्पर्धके प्रथमवर्गणायामनन्ता अपि रसाविभागाः किलासत्कल्पनया सप्त । ततो द्वितीयस्यां वर्गणायामष्टौ । तृतीयस्यां नव । चतुर्थ्यां दश । इदमेकं स्पर्धकं (७+८+९+१०=३४) । इत ऊर्ध्वं त्वेकोत्तरवृद्ध्या रसाविभागा न प्राप्यन्ते, किंतु सर्वजीवानन्तगुणाधिकाः । ते च किलासत्कल्पनया सप्तदश । एते च द्वितीयस्य स्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां । ततो द्वितीयस्यां वर्गणायामष्टादश । तृतीयस्यामेकोनविंशतिः । चतुर्थ्यां विंशतिः । इदं द्वितीयं

स्पर्धकं। (१७+१८+१९+२०=७४)। ततः पुनरप्यत ऊर्ध्वमेकोत्तरवृद्ध्या रसाविभागा न प्राप्यन्ते, किंतु सर्वजीवानन्तगुणाधिकाः। ते च किलासत्कल्पनया सप्तविंशतिः। एते च तृतीयस्य स्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां। ततो द्वितीयस्यां वर्गणायामष्टाविंशतिः। तृतीयस्यामेकोनत्रिंशत्। चतुर्थ्यां त्रिंशत्। इदं तु तृतीयं स्पर्धकं। (२७+२८+२९+३०=११४) ततः पुनरप्यत ऊर्ध्वमेकोत्तरवृद्ध्या रसाविभागा न प्राप्यन्ते, किंतु सर्वजीवानन्तगुणाभ्यधिकाः। ते च किलासत्कल्पनया सप्तत्रिंशत्। एते चतुर्थस्य स्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां। ततो द्वितीयस्यां वर्गणायामष्टात्रिंशत्। तृतीयस्यामेकोनचत्वारिंशत्। चतुर्थ्यां चत्वारिंशत्। इदं चतुर्थं स्पर्धकं। (३७+३८+३९+४०=१५४)। एतानि च किलासत्कल्पनया प्रथममनुभागबन्धस्थानं। अत्र च रसाविभागाः सर्वसंख्यया षट्सप्तत्यधिकानि त्रीणि शतानि। (३४+७४+११४+१५४=३७६)। इत ऊर्ध्वं त्वेकोत्तरवृद्ध्या रसाविभागा न प्राप्यन्ते, किंतु सर्वजीवानन्तगुणाभ्यधिकाः। ते च किलासत्कल्पनया सप्तचत्वारिंशत्। एते च द्वितीयस्य स्थानस्य प्रथमस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां। ततो द्वितीयस्यां वर्गणायामष्टचत्वारिंशत्। तृतीयस्यामेकोनपञ्चाशत्। चतुर्थ्यां पञ्चाशत्। इदं द्वितीये स्थाने प्रथमं स्पर्धकं (४७+४८+४९+५०=१९४)। इत ऊर्ध्वं त्वेकोत्तरवृद्ध्या रसाविभागा न प्राप्यन्ते, किंतु सर्वजीवानन्तगुणाधिकाः। ते च किलासत्कल्पनया सप्तपञ्चाशत्। एते च द्वितीयस्थाने द्वितीयस्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां। ततो द्वितीयस्यां वर्गणायामष्टपञ्चाशत्। तृतीयस्यामेकोनषष्टिः। चतुर्थ्यां षष्टिः। इदं द्वितीयस्थाने द्वितीयं स्पर्धकं (५७+५८+५९+६०=२३४)। इत ऊर्ध्वमेकोत्तरवृद्ध्या रसाविभागा न प्राप्यन्ते, किंतु सर्वजीवानन्तगुणाधिकाः। ते च किलासत्कल्पनया सप्तषष्टिः। एते च द्वितीये स्थाने तृतीयस्य स्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां। ततो द्वितीयस्यां वर्गणायामष्टषष्टिः।

तृतीयस्यामेकोनसप्ततिः। चतुर्थ्यां सप्ततिः। इदं द्वितीये स्थाने तृतीयं स्पर्धकं। (६७+६८+६९+७०=२७४)। तत इत ऊर्ध्वं पुनरप्येकोत्तरवृद्ध्या रसाविभागा न प्राप्यन्ते, किंतु सर्वजीवानन्तगुणाधिकाः।ते च किलासत्कल्पनया सप्तसप्ततिः।(एते च द्वितीये स्थाने चतुर्थस्य स्पर्धकस्य प्रथमवर्गणायां) ततो द्वितीयस्यां वर्गणायामष्टसप्ततिः। तृतीयस्यामेकोनाशीतिः। चतुर्थ्यामशीतिः। इदं च द्वितीयस्थाने चतुर्थं स्पर्धकं (७७,७८,७९,८०=३१४)। एतानि च किलासत्कल्पनया द्वितीयं स्थानं। अत्र च रसाविभागाः सर्वसंख्यया षोडशाधिकं सहस्रं (१९४,२३४,२७४,३१४=१०१६)। तदेवं प्रथमस्थानगतरसाविभागापेक्षया द्वितीयस्थाने रसाविभागाः संख्येयगुणाः प्राप्यन्ते। उत्तरस्मिन्नुत्तरस्मिंस्तु स्थाने पूर्वपूर्वस्थानापेक्षया प्रभूताः प्रभूततमा इति न क्वापि रसाविभागापेक्षया पूर्वस्थानादुत्तरस्य स्थानस्यानन्तभागाधिकत्वं प्राप्यते। नापि परमाण्वपेक्षयाऽनन्तभागाधिकत्वसंभवः, यतो यथा यथाऽनुभागो वर्धते तथा तथा पुद्गलाः स्तोकाः स्तोकतराः प्राप्यन्ते। ततः प्रथमस्थानगतपरमाण्वपेक्षया द्वितीये स्थाने परमाणवः किंचिदूना एव भवन्ति, नानन्तभागाधिकाः। एवमुत्तरेष्वपि स्थानेषु पूर्वपूर्वस्थानापेक्षया हीनहीनतरपरमाणुत्वं द्रष्टव्यं। नापि स्पर्धकापेक्षया प्रथमस्थानादीनां सर्वजीवप्रमाणेन राशिना भागापहारः संभवति, प्रथमस्थानादिगतस्पर्धकानामभव्यानन्तगुणसिद्धानन्तभागकल्पनयाऽतीव स्तोकत्वादिति ॥ ”

अत्रोच्यते–“इयं हि षट्स्थानकप्ररूपणा संयमश्रेण्यादिगतसकलषट्स्थानकव्यापकलक्षणतया प्ररूप्यते। ततो यद्यप्यनन्तगुणवृद्धात् स्थानादर्वाक्कृतनेषु स्थानेषु सर्वजीवप्रमाणेन राशिना स्पर्धकापेक्षया भागहारो न संभवति, तथाप्युत्तरेषु स्थानेष्वन्येष्वपि च द्वितीयादिषु षट्स्थानेषु तथा सर्वेष्वपि संयमश्रेण्यादिगतेषु संभवतीति न कश्चिद्विरोधः, बाहुल्येन सर्वत्रापि संभवात्, सर्व-

जीवप्रमाणेन राशिना भागो ह्रियत इतिवचनाच्च अनन्तगुणवृद्धात् स्थानादर्वागपि (पूर्वं)पूर्वस्थानेभ्य उत्तरोत्तरस्थानानां सर्वस्तोकानन्तभागाधिकत्वमवसेयं । यद्यपि च पूर्वपूर्वस्थानापेक्षयोत्तरोत्तरस्थानेषु किंचिद्धीनहीनतराः परमाणवः प्राप्यन्ते तथापि स्तोकस्तोकतरैः परमाणुभिर्वर्गणादीनां संभवादुक्तस्वरूपस्पर्धकबाहुल्यं न विरुध्यते।" तदेवमुक्ता षट्स्थानकप्ररूपणा (७)।

सांप्रतमधस्तनस्थानप्ररूपणा क्रियते-तत्र प्रथमादसंख्येयभागवृद्धात्स्थानादधः कियन्त्यनुभागबन्धस्थानान्यनन्तभागवृद्धानि? उच्यते-कंडकमात्राणि । तथा प्रथमात्संख्येयभागवृद्धात्स्थानादधः कियन्त्यसंख्येयभागवृद्धानि स्थानानि ? उच्यते-कंडकमात्राणि । तथा प्रथमात्संख्येयगुणवृद्धात्स्थानादधः कियन्ति संख्येयभागवृद्धानि स्थानानि ? उच्यते-कंडकमात्राणि । तथा प्रथमादसंख्येयगुणवृद्धात् स्थानादधः कियन्ति संख्येयगुणवृद्धानि स्थानानि ? उच्यते-कंडकमात्राणि । तथा प्रथमादनन्तगुणवृद्धात्स्थानादधः कियन्त्यसंख्येयगुणवृद्धानि स्थानानि ? उच्यते—कंडकमात्राणि । इयमुत्तरोत्तरस्थानादधोऽध आनन्तर्येण मार्गणा×१ । इदानीमेकान्तरिता मार्गणा क्रियते-तत्र प्रथमात्संख्येयभागवृद्धात् स्थानादधः कियन्त्यनन्तभागवृद्धानि स्थानानि ? उच्यते—कंडकवर्गः कंडकं च । तथा प्रथमात्संख्येयगुणवृद्धात्स्थानादधः कियन्त्यसंख्येयभागवृद्धानि स्थानानि ? उच्यते-कंडकवर्गः कंडकं च । तथा प्रथमादसंख्येयगुणवृद्धात् स्थानादधः कियन्ति संख्येयभागवृद्धानि स्थानानि ? उच्यते—कंडकवर्गः कंडकं च । तथा प्रथमादनन्तगुणवृद्धात्स्थानादधः कियन्ति संख्येयगुणवृद्धानि स्थानानि ? उच्यते-कंडकवर्गः कंडकं

×(य०उ०१९)तत्र पञ्च मार्गणा आनन्तर्येणैकाद्यन्तरिततया च। ×१(२०) तदुक्तम 'सव्वासिं वुड्ढीणं कंडकमेत्ता अणंतरा वुड्ढि'।

र्चे । एवमुक्तप्रकारेण द्व्यन्तरिता त्र्यन्तरिता चतुरन्तरिता च मार्गणा स्वधिया परिभावनीया (८) ॥३७॥

×(य० उ० २१) एषा एकान्तरिता मार्गणा । उक्तं च—"एगंतराउ वुड्ढी वग्गो कंडस्स कंडं च।" विवक्षितप्रथमस्थानादनन्तराधस्तनस्थानानां कण्डकमात्राणां प्रत्येकमधस्तादधस्तनस्थानानि कण्डकमात्राणि प्राप्यन्ते इति। कण्डकं कण्डकगुणितं कण्डकवर्गो भवति उपरि चैकं कण्डकमित्येकान्तरितमार्गणायां कण्डकवर्गः कण्डकं चेत्यस्य भावना ।

प्रथमात्सङ्ख्येयगुणवृद्धात्स्थानादधः कियन्त्यनन्तभागवृद्धानि स्थानानि ? उच्यते—कण्डकधनो द्वौ कण्डकवर्गौ कण्डकं चैवं प्रथमादसङ्ख्येयगुणवृद्धादधोऽसङ्ख्येयभागवृद्धानि स्थानानि तावन्त्येव । प्रथमादनन्तगुणवृद्धस्थानादधः संख्येयभागवृद्धस्थानान्यपि तावन्त्येवेत्यवसेयं । काऽत्र भावनेति चेदुच्यते—इह प्रथमात्सङ्ख्येयगुणवृद्धात्स्थानादध एकैकस्य सङ्ख्येयभागवृद्धस्थानस्याधः प्रत्येकमेकैककण्डकाधिकः कण्डकवर्गोऽनन्तभागवृद्धानां स्थानानां प्राप्यते । सङ्ख्येयभागवृद्धानि च स्थानानि कण्डकमात्राणि । ततः कण्डकवर्गः कण्डकेन गुणितः कण्डकघनो भवति । कण्डकं च कण्डकगुणितं कण्डकवर्गः । अन्त्यसङ्ख्येयभागवृद्धाच्चोपरि कण्डकवर्ग एकं च कण्डकं प्राप्यते । ततो द्व्यन्तरितमार्गणायामनन्तभागवृद्धानां कण्डकघनो द्वौ कण्डकवर्गावेकं च कण्डकं भवति । एवमग्रेऽप्यूह्यं । एषा द्व्यन्तरितमार्गणा । उक्तं च—" कंडं कंडस्स घणो वग्गो दुगुणो दुयंतराएओ" । प्रथमादसङ्ख्येयगुणवृद्धात्स्थानादधः कियन्त्यनन्तभागवृद्धानि स्थानानि ? उच्यते—कण्डकवर्गवर्गस्त्रयः कण्डकघनास्त्रयः कण्डकवर्गा एकं च कण्डकं । एवं प्रथमादनन्तगुणवृद्धात्स्थानादधोऽसङ्ख्येयभागवृद्धानि स्थानान्यप्येतावन्त्येवेत्यवसेयं। काऽत्र भावनेति चेदुच्यते—इह प्रथमादसङ्ख्येयगुणवृद्धात्स्थानादध एकैकस्य सङ्ख्येयगुणवृद्धस्य स्थानस्याधः प्रत्येकमनन्तभागवृद्धानां स्थानानां कण्डकघनो द्वौ कण्डकवर्गावेकं च कण्डकं प्राप्यते ।

असङ्ख्येयगुणवृद्धानि च स्थानानि कण्डकमात्राणि। ततः कण्डकघनः कण्डकेन गुणितः कण्डकवर्गवर्गो भवति। तथाहि—चतुष्कस्य घनश्चतुःषष्टिप्रमाणः, स चतुष्केण गुण्यते, ततो द्विशती षट्पञ्चाशदधिका भवति, अयं चतुष्कस्य वर्गवर्गः, चतुष्कस्थानीयं चेह कण्डकं द्रष्टव्यमिति। द्वौ कण्डकवर्गौ कण्डकेन गुणितौ द्वौ कण्डकघनौ भवतः, वर्गस्य वर्गमूलेन गुणने घनस्य निष्पत्तेः। कण्डकं च कण्डकेन गुणितं कण्डकवर्गः। असङ्ख्येयगुणवृद्धस्थानस्योपर्येकः कण्डकघनो द्वौ च कण्डकवर्गावेकं च कण्डकं प्राप्यते, तत्पूर्वराशौ प्रक्षेप्यं। ततस्त्र्यन्तरितमार्गणायामनन्तभागवृद्धानां स्थानानां कण्डकवर्गवर्गत्रयः कण्डकघनात्रयः कण्डकवर्गा एकं च कण्डकं प्राप्यते। एवमसङ्ख्येयभागवृद्धानामपि भावनीयं। उक्तं च—"कंडगस्स वग्गवग्गो घणवग्गा तिगुणिया कंडं" एषा त्र्यन्तरिता मार्गणा।

प्रथमादनन्तगुणवृद्धात्स्थानादधः कियन्त्यनन्तभागवृद्धानि स्थानानि ? उच्यते—अष्टौ कण्डकवर्गवर्गाः षट् कण्डकघनाश्चत्वारः कण्डकवर्गा एकं च कण्डकं। कथमिति चेदुच्यते—इह कण्डकमसत्कल्पनया चतुःसङ्ख्यात्मकं कल्प्यते। तत्र प्रथमादनन्तगुणवृद्धात्स्थानादध एकैकस्यासङ्ख्येयगुणवृद्धस्य स्थानस्याधः प्रत्येकमनन्तभागवृद्धानां स्थानानामेकः कण्डकवर्गः त्रयः कण्डकघनाः त्रयः कण्डकवर्गा एकं च कण्डकं प्राप्यते। असङ्ख्येयगुणवृद्धानि च स्थानानि कण्डकमात्राणि। ततः कण्डकवर्गवर्गाः असङ्ख्येयाः कण्डकमात्राः प्राप्यन्ते, तथापि कण्डकमिह चतुःसङ्ख्यात्मकं कल्पितमिति चत्वारः कण्डकवर्गवर्गाः लब्धाः त्रयश्च कण्डकघनाः चतुःसङ्ख्यात्मकेन कण्डकेन गुणिता जाता द्वादश। कण्डकघनश्चतुष्केण गुणितः कण्डकवर्गवर्गो भवति। ततोऽत्र लब्धास्त्रयः कण्डकवर्गवर्गाः, सर्वसङ्ख्यया जाताः सप्त कण्डकवर्गवर्गाः। कण्डकवर्गाश्च त्रयः चतुःसङ्ख्यात्मकेन कण्डकेन गुणिता जाता द्वादश। कण्डकघनश्चतुष्केण गुणितः कण्डकवर्गवर्गो भवति। ततोऽत्र लब्धास्त्रयः कण्डकवर्गवर्गाः, सर्वसंख्यया जाताः सप्त कण्डकवर्गवर्गाः। कण्ड-

कवर्गश्च त्रयः चतुःसंख्यात्मकेन कण्डकेन गुणिता जाता द्वादश । कण्डकवर्गश्च कण्डकेन गुणितः कण्डकघनो भवति। यथा चतुष्कवर्गः षोडशात्मा चतुष्केण गुणितश्चतुःषष्ट्यात्मकश्चतुष्कघनः, ततो लब्धास्त्रयः कण्डकघनाः। कण्डकं च कण्डकेन गुणितं कण्डकवर्ग एकोऽसङ्ख्येयगुणवृद्धस्थानकण्डकाच्चोपरि एकः कण्डकवर्गस्त्रयः कण्डकघनास्त्रयः कण्डकवर्गा एकं च कण्डकं प्राप्यते । तच्च पूर्वराशौ प्रक्षिप्यते, तत उक्तप्रमाणं संपद्यते । उक्तं च—"अडकंडकवग्गवग्गा वग्गा चत्तारि छग्घणं कंडं। चउअंतरवुड्ढीए हेट्ठट्ठाणप्परूवणय ॥१॥ त्ति" एतच्चासत्कल्पनयोक्तं। वस्तुगत्या तु चतुरुत्तरकण्डकमिताः कण्डकवर्गवर्गाः षट् कण्डकघनाश्चत्वारः कण्डकवर्गा एकं च कण्डकं भवति। उक्ता चतुरन्तरमार्गणा। तदेवं कृता पञ्चभिर्मार्गणाभिरधस्तनस्थानप्ररूपणा ॥

षट्स्थानकने विषे अधस्तनस्थान प्ररूपणानी समजुती.

अधस्तनस्थानप्ररूपणा=विवक्षित वृद्धिनी अपेक्षाए नीचेनी वृद्धिनी विवक्षा करवी ते. आ प्ररूपणाना ५ प्रकार—(१) आनन्तरमार्गणा (२) एकान्तरितमा० (३) द्यन्तरितमा० (४) त्र्यन्तरितमा० (५) चतुरन्तरितमार्गणा.

(१) आनन्तरमार्गणा=विवक्षित वृद्धिनी नीचेनी तरतनी वृद्धिमां (वचमां कोईपण वृद्धि मूक्या सिवाय) प्ररूपणा करवी ते. जेमके प्रथम असंख्यातभाग वृद्धिनी अपेक्षाए अनंतभागवृद्धिनां स्थाननी विचारणा (१) प्रथम संख्यातभागवृद्धिनी अपेक्षाए असंख्यातभागवृद्धिनां स्थाननी विचारणा. (२) ए प्रमाणे पांचमी प्रथम अनंतगुणनी अपेक्षाए असंख्यातगुणवृद्धिनां स्थाननी विचारणा. ए प्रमाणे आ मार्गणामां पांच स्थान.

(२) एकान्तरितमार्गणा=विवक्षित वृद्धिनी नीचे वचमां एक वृद्धि मूकीने जे प्ररूपणा करवी ते. जेमके प्रथम संख्यातभागवृद्धिनां स्थाननी पूर्वे अनन्तभागवृद्धिनां स्थाननी प्ररूपणा. आ मार्गणामां ४ स्थान.

(३) द्व्यन्तरितमार्गणा=विवक्षित वृद्धिनी नीचे वचमां बे वृद्धि मूकीने जे प्ररूपणा करवी ते. जेमके प्रथम संख्यातगुणवृद्धिनां स्थाननी पूर्वे अनन्तभागवृद्धिनां स्थाननी प्ररूपणा. आ मार्गणामां ३ स्थान.

(४) त्र्यन्तरितमार्गणा=विवक्षित वृद्धिनी नीचे वचमां त्रण वृद्धि मूकीने जे प्ररूपणा करवी ते. जेमके प्रथम असंख्यातगुणवृद्धिनां स्थाननी पूर्वे अनन्तभागवृद्धिनां स्थाननी प्ररूपणा. आ मार्गणामां २ स्थान.

(५) चतुरन्तरितमार्गणा=विवक्षित वृद्धिनी नीचे वचमां चार वृद्धि मूकीने जे प्ररूपणा करवी ते. जेमके प्रथम अनन्तगुणवृद्धिनां स्थाननी पूर्वे अनन्तभागवृद्धिनां स्थाननी प्ररूपणा. आ मार्गणामां १ स्थान.

कइ कइ मार्गणामां केटलां केटलां स्थान होय ते नीचे प्रमाणे.

(१) आनन्तरमार्गणामां=१ कंडक प्रमाण स्थानो जाणवां. कारण के अनन्तभागवृद्धिनां १कंडक प्रमाण स्थान व्यतीत थए असंख्यातभागवृद्धिनुं प्रथम स्थान आवे छे. (असत्कल्पनाए ४ स्थानो. असंख्यातभागवृद्धिना पांचडा पूर्वे अनन्तभाग-

(२) एकान्तरितमार्गणामां-कंडकवर्ग अने कंडक प्रमाण. (असत्क० कंडकवर्ग=४×४=१६+४=२०)।[वृद्धिनां ४ स्थानो होवाथी.)

(३) द्व्यन्तरितमार्गणामां-कंडकघन, बे कंडकवर्ग अने कंडक प्रमाण. (असत्क० कंडकघन=४×४×४=६४+१६+१६+४=१००)

(४) त्र्यन्तरितमार्गणामां=कंडकवर्गवर्ग, ३ कंडकघन, ३ कंडकवर्ग अने कंडक प्रमाण. (असत्क० कंडकवर्गवर्ग=१६ × १६ = २५६ + १९२ + ४८ + ४ = ५००) [+ ३८४ + ६४ + ४ = २५००)

(५) चतुरन्तरितमार्गणामां=८ कंडकवर्गवर्ग, ६ कंडकघन, ४ कंडकवर्ग अने १ कंडक प्रमाण (असत्क० २५६ × ८ = २०४८ ए प्रमाणे प्रथम अनन्तगुणवृद्धिना स्थान पूर्वे कुल (४+२०+१००+५००+२५००=) ३१२४ स्थान असत्कल्पनाए होय

तदेवं कृताऽधस्तनस्थानप्ररूपणा। सांप्रतं वृद्धिस्थानप्ररूपणा क्रियते—

वुड्ढी हाणी छक्कं, तम्हा दोण्हं पि अंतमिल्लाणं । अंतोमुहुत्तमावलि, असंखभागा(गो) उ सेसाणं ॥३८॥

वृद्धि त्ति–इह जीवाः परिणतिविशेषतः कर्मपरमाणुष्वनुभागस्य षड्विधामुक्तस्वरूपां वृद्धिं हानिं वा कुर्वन्ति। तस्मात् कां वृद्धिं कियन्तं कालं यावत् कुर्वन्तीत्यवश्यं कालप्रमाणमभिधानीयं। तत्र द्वयोर्वृद्धिहान्योरन्तिमयोरनन्तगुणवृद्ध्यनन्तगुणहानिरूपयोरन्तर्मुहूर्तमवगन्तव्यं। किमुक्तं भवति ? अन्तर्मुहूर्तं कालं यावन्निरन्तरं जीवाः परिणामविशेषतः प्रतिसमयमनुभागान् पूर्वस्मात् पूर्वस्मादनन्तगुणवृद्धाननन्तगुणहीनान् वा बध्नन्ति। तथा शेषाणां पञ्चानामाद्यानां वृद्धीनां हानीनां वा आवलिकाया असंख्येयभागमात्रः कालो वेदितव्यः। इदमुक्तं भवति–अनुभागानामाद्याः पञ्च वृद्धीर्हानीर्वा आवलिकाया असंख्येयभागमात्रं कालं यावन्निरन्तरं जीवाः परिणामविशेषतः कुर्वन्ति। एषा च हानिवृद्धिकालप्ररूपणोत्कर्षतोऽवगन्तव्या। जघन्यतस्तु सर्वा अपि वृद्धयो हानयो वा एकं द्वौ वा समयौ यावदवगन्तव्याः (९) ॥ ३८ ॥

इदानीमेतेष्वनुभागस्थानेषु बन्धमाश्रित्यावस्थाने कालमानमाह—

चउराई जावट्ठग–मेत्तो जावं दुगं तिसमयाणं। ठाणाणं उक्कोसो, जहण्णओ सव्वहिं समओ ॥३९॥

गाथार्थः—वुड्ढी हाणी छक्कं=षट् प्रकारनी वृद्धि अने हानि थाय छे. तम्हा=ते माटे (तेमनो काल कहे छे), अंतमिल्लाणं= अन्त्यनी, दोण्हंपि=बंने (हानि वृद्धि) पण अंतोमुहुत्तं=अंतर्मुहूर्तनी, उ=वळी, सेसाणं=बाकीनी (वृद्धि हानि)नो, आवलिअसंखभागा= आवलिना असंख्यातमा भाग प्रमाण. ३८ ठाणाणं=स्थानोनो, चउराई जावट्ठग=चार समयथी आठ समय प्रमाण, एत्तो=अहींथी

चउराइ त्ति–चत्वार आदिर्यस्याः सा चतुरादिः वृद्धिः। सा च समयानामवस्थितकालनियामकानां तावद् द्रष्टव्या यावदष्टौ समयाः। इत ऊर्ध्वं पुनः समयानां हानिर्वक्तव्या। सा च तावद्वक्तव्या यावद् द्विकं। सा च वृद्धिर्हानिर्वा चतुरादिका स्थानानामनुभागबन्धस्थानानामुत्कर्षतो द्रष्टव्या। जघन्यतस्तु सर्वेषामपि समयः। इयमत्र भावना–यानि अनुभागबन्धस्थानानि जीवाः पुनः पुनस्तान्येव चतुरः समयान् यावद् बध्नन्ति तानि चतुःसामयिकानि। तानि च मूलादारभ्यासंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणानि भवन्ति। तेभ्य उपरितनानि स्थानानि पञ्चसामयिकानि, तान्यप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणानि। तेभ्य उपरितनानि स्थानानि षट्सामयिकानि, तान्यप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणानि। तेभ्य उपरितनानि स्थानानि सप्तसामयिकानि, तान्यप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणानि। तेभ्य उपरितनान्यष्टसामयिकानि, तान्यप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणानि। तेभ्य उपरितनानि पुनः स्थानानि सप्तसामयिकानि, तान्यप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणानि। तेभ्य उपरितनानि षट्सामयिकानि,तान्यप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणानि। एवं तावद्वाच्यं यावद्द्विसामयिकानि (१०)॥३९॥

तदेवं कृता समयप्ररूपणा। इदानीं यान्यनुभागबन्धस्थानानि अष्टसामयिकानि तानि यस्यां वृद्धौ हानौ वा प्राप्यन्ते तामाह–

दुसु जवमज्झं थोवा-णि अट्ठसमयाणि दोसु पासेसु। समऊणियाणि कमसो असंखगुणियाणि उप्पिं च ॥४०॥

आगळ; जावं=यावत्, दुगंतिसमयाणं=बे समय प्रमाण, उक्कोसो=उत्कृष्ट काल छे. जहन्नओ=जघन्यथी, सव्वहिं=सर्वे अनुभागोनो, समओ=एक समय छे. ३९ गाथार्थः—दुसु=बे (अनंतगुणवृद्धि अने अनंतगुणहानि)ने विषे, जवमज्झं=यवमध्यरूप, अट्ठसमयाणि=अष्ट सामयिक अनुभागस्थानो, थोवाणि=स्तोक छे. दोसु पासेसु=(यवमध्यनी) बंने बाजुए, कमसो=अनुक्रमे, समऊणियाणि=समय

दुसु त्ति–द्वयोर्विकल्पयोरनन्तगुणवृद्ध्यनन्तगुणहानिरूपयोर्यवमध्यं वर्तते । यवस्य मध्यमिव यवमध्यं अष्टसामयिकान्यनुभागबन्धस्थानानीत्यर्थः । (तथा हि–) यथा यवस्य मध्यं पृथुलमुभयतः पार्श्वे च हीने हीनतरे, तथात्रापि कालतः पृथुलानि अष्टसामयिकानि अनुभागबन्धस्थानानि, उभयपार्श्ववर्तीनि च सप्तसामयिकादीनि कालतो हीनानि हीनतराणि । ततोऽष्टसामयिकानि यवस्य मध्यमिव यवमध्यं । तानि च प्रथमादष्टसामयिकात् स्थानादारभ्य सर्वाण्यप्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणानि अनन्तगुणवृद्धौ (अनन्तगुणहानौ च) प्राप्यन्ते । सप्तसामयिकानां हि चरमादनुभागबन्धस्थानात् प्रथममष्टसामयिकं स्थानमनन्तगुणवृद्धं । ततः शेषाण्यपि तदपेक्षयाऽनन्तगुणवृद्धान्येव भवन्ति । तथाऽष्टसामयिकानां चरमादनुभागबन्धस्थानादुपरितनं सप्तसामयिकं स्थानमनन्तगुणवृद्धं । ततस्तदपेक्षया पाश्चात्यान्यष्टसामयिकान्यनुभागबन्धस्थानानि सर्वाण्यप्यनन्तगुणहीनान्येव भवन्ति । तदेवमष्टसामयिकान्यनन्तगुणवृद्धौ अनन्तगुणहानौ च प्राप्यन्ते । अष्टसामयिकानि चोपलक्षणं, तेनाद्यानि चतुःसामयिकानि सर्वान्तिमानि च द्विसामयिकानि वर्जयित्वा शेषाणि सर्वाण्यपि पञ्चसामयिकादीनि प्रत्येकमुक्तप्रकारेणानन्तगुणवृद्धावनन्तगुणहानौ च वेदितव्यानि । आद्यानि पुनः चतुःसामयिकान्यनन्तगुणहानावेव । तथाहि–पञ्चसामयिकमाद्यमनुभागबन्धस्थानं चतुःसामयिकचरमानुभागबन्धस्थानापेक्षयाऽनन्तगुणवृद्धं । ततस्तदपेक्षया पाश्चात्यानि चतुःसामयिकानि सर्वाण्यप्यनुभागबन्धस्थानान्यनन्तगुणहानावेव प्राप्यन्ते । द्विसामयिकानि त्वनन्तगुणवृद्धावेव । तथाहि—त्रिसामयिकानां चरमादनुभागबन्धस्थानादाद्यं द्विसामयिकमनुभागबन्धस्थानमनन्तगुणवृद्धं, ततस्तदपेक्षया सर्वाण्यप्यनन्तगुणवृद्धान्येव । कृता

समय ओछी स्थितिवाळां, उप्पिं च=अने उपरनां, असंखगुणियाणि=असंख्यातगुणा छे. ४०

यवमध्यप्ररूपणा(११)।

सांप्रतं चतुःसामयिकादीनां स्थानानामल्पबहुत्वमाह–' थोवाणीत्यादि ' सर्वस्तोकानि यवमध्यभूतानि अष्टसामयिकानि स्थानानि । अतिचिरबन्धकालयोग्यानि हि स्थानानि स्तोकान्येव प्राप्यन्ते इति कृत्वा। तेभ्योऽसंख्येयगुणानि पूर्वोत्तरलक्षणोभयपार्श्ववर्तीनि सप्तसामयिकानि, अल्पतरबन्धकालविषयत्वात् । स्वस्थाने तु द्वयान्यपि परस्परं तुल्यानि। तेभ्योऽप्यसंख्येयगुणानि उभयपार्श्ववर्तीनि षट्सामयिकानि । स्वस्थाने तु द्वयान्यपि परस्परं तुल्यानि। तेभ्योऽप्यसंख्येयगुणानि उभयपार्श्ववर्तीनि पञ्चसामयिकानि। स्वस्थाने तु द्वयान्यपि परस्परं तुल्यानि । तेभ्योऽप्यसंख्येयगुणानि उभयपार्श्ववर्तीनि चतुःसामयिकानि । स्वस्थाने तु द्वयान्यपि परस्परं तुल्यानि। तेभ्योऽप्यसंङ्ख्येयगुणानि त्रिसामयिकानि। तेभ्योऽप्यसंख्येयगुणानि द्विसामयिकानि। ' दोसु पासेसु त्ति ' अष्टसामयिकेभ्योऽनन्तरं द्वयोः पार्श्वयोः क्रमशः क्रमेण समयोनानि समयोनानि सप्तसामयिकादीनि स्थानानि असंख्येयगुणानि तावद्वक्तव्यानि यावच्चतुःसामयिकानि । तेभ्य उपरि च त्रिसामयिकानि द्विसामयिकानि च क्रमशोऽसंख्येयगुणानि वक्तव्यानीति गाथार्थः ॥ ४० ॥

संप्रति सर्वेषामेवानुभागबन्धस्थानानां समुदायमधिकृत्य विशेषसंख्यानिरूपणार्थमाह—

सुहुमगणि पवेसणया, अगणिक्काया य तेसिं कायठिई। कमसो असंखगुणियाण(अ) ज्झवसाणाणि चणुभागे॥४१॥

गाथार्थः—सुहु०णया=सूक्ष्म अग्निकायमां प्रवेश करता, अगणिक्काया=अग्निकायपणे रहेला, य=अने, तेसिं=तेमनी, कायठिई =कायस्थिति, कमसो=अनुक्रमे, असंखगुणियाण=असंख्यातगुण छे. तेथी, अज्झ०भागे=अनुभागना अध्यवसायो (अनुभागबन्धस्थानो)

सुहुमेति–सूक्ष्माग्नौ सूक्ष्माग्निकाये प्रवेशनमुत्पादो येषां ते सूक्ष्माग्निप्रवेशनकाः । तथाऽग्निकाया अग्निकायत्वेनावस्थिताः । तथा तेषामग्निकायानां कायस्थितिः कायस्थितिकालः । एते क्रमशः क्रमेणासंख्येयगुणिताः । तथाऽनुभागेऽनुभागविषयेऽध्यवसानानि, कार्ये कारणोपचारादध्यवसायनिर्वर्त्यानि यान्यनुभागबन्धस्थानानि, तान्यसंख्येयगुणानि।उक्तं च–"सुहुमगणिपविसंता चिट्ठंता तेसि कायठिइकालो । कमसो असंखगुणिओ तत्तो अणुभागठाणाइं ॥ १ ॥ " इयमत्र भावना–य एकस्मिन् समये सूक्ष्माग्निकायेषु मध्ये प्रविशन्ति उत्पद्यन्ते ते स्तोकाः, ते चासंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणाः । तेभ्योऽपि येऽग्निकायत्वेनावतिष्ठन्ते तेऽसंख्येयगुणाः । तेभ्योऽप्यग्निकायस्थितिकालोऽसंख्येयगुणः । ततोऽप्यनुभागबन्धस्थानान्यसंख्येयगुणानि ॥ ४१ ॥

संप्रत्योजोयुग्मप्ररूपणावसरः–तत्रौजो विषमं, समं युग्मं । तत्प्ररूपणा चैवं–इह कश्चिद्विवक्षितो राशिः स्थाप्यते, तस्य कलिद्वापरत्रेताकृतयुगसंज्ञैश्चतुर्भिर्भागो ह्रियते । भागे च हृते सति यद्येकः शेषो भवति तर्हि स राशिः पूर्वपुरुषपरिभाषया कल्योज उच्यते, यथा त्रयोदश । अथ द्वौ शेषौ तर्हि द्वापरयुग्मः, यथा चतुर्दश । अथ त्रयः शेषास्ततस्त्रेतौजो यथा पञ्चदश । यदा तु न किञ्चिदवतिष्टते, किं तु सर्वात्मना निर्लेप एव भवति, तदा स कृतयुगो यथा षोडश । उक्तं च–"चउदस[१] दावरजुम्मा तेरस कलिओज तह य कडजुम्मा । सोलस तेओजो खलु पन्नरसेवं खु विन्नेया ॥ १ ॥"

तत्राविभागादयो यादृग्राशिरूपा वर्तन्ते तादृग्राशिरूपमा(पार्ना)ह—

कडजुम्मा अविभागा, ठाणाणि य कंडगाणि अणुभागे । पज्जवसाणमणंत-गुणाओ उप्पिं न (अ)णंतगुणं ॥४२॥

असंख्यातगुणा छे. ४१ [१ किमिति षट् दश च विहायाश्रीयन्ते चतुर्दशेति चेच्चतुर्थचतुष्कत्वेनेत्यनुमन्ये। गाथार्थः–अणुभागे=अनु-

कडजुम्मेति–अनुभागेऽनुभागविषयेऽविभाग(गाः)स्थानानि कंडकानि च कृतयुग्मानि कृतयुग्मराशिरूपाणि द्रष्टव्यानि। कृतौजोयुग्मप्ररूपणा (१२)। संप्रति पर्यवसानद्वारमाह–' पज्जवसाणेत्यादि'। अनन्तगुणादनन्तगुणवृद्धिकंडकादुपरि पञ्चवृद्ध्यात्मकानि सर्वाणि स्थानानि गत्वा पुनरनन्तगुणवृद्धं स्थानं न प्राप्यते, षट्स्थानस्य परिसमाप्तत्वात्। ततस्तदेव सर्वान्तिमं स्थानं षट्स्थानकस्य पर्यवसानमिति (१३) ॥ ४२ ॥

संप्रत्यल्पबहुत्वप्ररूपणार्थमाह—

अप्पबहुमणंतरओ, असंखगुणियाण णंतगुणमाई। तव्विवरीयमियरओ, संखेज्जवखेसु संखगुणं ॥ ४३ ॥

अप्पेति–इह द्विधाऽल्पबहुत्वप्ररूपणा–अनन्तरोपनिधया परंपरोपनिधया च। तत्रैकस्मिन् षट्स्थानकेऽन्तिमस्थानादारभ्य पश्चानुपूर्व्याऽन्तरोपनिधया प्ररूपणा क्रियते–अनन्तगुणान्यनन्तगुणवृद्धानि स्थानान्यादौ कृत्वा शेषाण्यसंख्येयगुणितानि वक्तव्यानि। तद्यथा–सर्वस्तोकान्यनन्तगुणवृद्धानि स्थानानि, कंडकमात्रत्वात्तेषां। तेभ्योऽसंख्येयगुणवृद्धानि स्थानान्यसंख्येयगुणानि। को गुणकारः ? भण्यते–कंडकं एककंडकप्रक्षेपश्च। कुत एतदवसीयत इति चेदुच्यते–इह यस्मादेकैकस्यानन्तगुणवृद्धस्य स्थानस्याधस्तादसंख्येयगुणवृद्धानि स्थानानि कंडकमात्राणि प्राप्यन्ते, तेन कंडकं गुणकारः। अनन्तगुणवृद्धस्थानकंड-

भागने विषे, अविभागा ठाणाणि=अविभागस्थानको, य=अने, कंडगाणि=कंडको, कडजुम्मा=कृतयुग्म संख्याए छे. अणंतगुणाओ उप्पिं=अनन्तगुणवृद्धिना कंडकथी उपर, अणंतगुणं न=अनन्तगुणवृद्धिनुं स्थान नथी माटे, पज्जवसाणं=तेज पर्यवसान (छेडो) जाणवो. ४२। अणंतरओ=अनंतरोपनिधामां अनन्तगुणवृद्धिस्थानोने आदिमां करीने, (पश्चानुपूर्वीए) असंखगुणियाण=असंख्यात-

काच्चोपरि कंडकमात्राण्यसंख्येयगुणवृद्धानि स्थानानि प्राप्यन्ते, न त्वनन्तगुणवृद्धं स्थानं, तेनोपरितनकंडकस्याधिकस्य तत्र प्रक्षेपः । तेभ्योऽप्यसंख्येयगुणवृद्धेभ्यः स्थानेभ्यः संख्येयगुणवृद्धानि स्थानानि असंख्येयगुणानि । तेभ्योऽपि संख्येयभागाधिकानि स्थानान्यसंख्येयगुणानि । तेभ्योऽप्यसंख्येयभागाधिकानि स्थानान्यसंख्येयगुणानि । तेभ्योऽप्यनन्तभागवृद्धानि स्थानान्यसंख्येयगुणानि । गुणकारश्च सर्वत्रापि कंडकं उपरि चैककंडकप्रक्षेपः । तथाहि–एकैकस्यासंख्येयगुणवृद्धस्य स्थानस्याधस्तात् संख्येयगुणवृद्धानि स्थानानि कंडकमात्राणि प्राप्यन्ते । तेन कंडकं गुणकारः । असंख्येयगुणवृद्धकंडकाच्चोपरि कंडकमात्राणि संख्येयगुणवृद्धानि स्थानानि प्राप्यन्ते। तदनन्तरं त्वनन्तगुणवृद्धमेव स्थानं भवति, न त्वसंख्येयगुणवृद्धं । प्रथमाच्चानन्तगुणवृद्धात् स्थानादर्वाक् असंख्येयगुणवृद्धस्थानापेक्षया संख्येयगुणवृद्धानि स्थानानि चिन्त्यन्ते । न तत ऊर्ध्वमपि । तेनोपर्येकस्यैव कंडकस्याधिकस्य प्रक्षेपः । एवं संख्येयभागवृद्धादीनामपि स्थानानामसंख्येयगुणत्वे गुणकारभावना द्रष्टव्या । तदेवं कृताऽनन्तरोपनिधयाऽल्पबहुत्वप्ररूपणा । ”

संप्रति परंपरोपनिधया तां कुर्वन्नाह–‘ तव्विवरीयमियरओ त्ति’ इतरत इतरस्यां परंपरोपनिधायां तद्विपरीतं येन क्रमेणोक्तमनन्तरोपनिधायां तद्विपरीतं द्रष्टव्यं । इहादित आरभ्य वक्तव्यमित्यर्थः । तथाहि–सर्वस्तोकानि अनन्तभागवृद्धानि स्थानानि यस्मादाद्यानुभागबन्धस्थानादारभ्यानन्तभागवृद्धानि स्थानानि कंडकमात्राण्येव प्राप्यन्ते, नाधिकानि ।

गुण, अप्पबहुं=अल्पबहुत्व कहेवुं. इयरथा=इतर(परंपरोपनिधा)मां, तव्विवरीयं=तेथी विपरीत जाणवुं. संखेज्जक्खेसु=संख्यातगुणवृद्धि अने संख्यातभागवृद्धिमां, संखगुणं=संख्यातगुण कहेवुं. ४३

तेभ्योऽप्यसंख्येयभागवृद्धानि स्थानानि असंख्येयगुणानि । कथमिति चेदुच्यते–अनन्तभागवृद्धकंडकादुपरितनं प्रथममसंख्येयभागवृद्धं स्थानं यदि पाश्चात्यकंडकसत्कचरमस्थानापेक्षयाऽसंख्येयेन भागेनाधिकं; तत उपरितनमनन्तभागवृद्धं स्थानं तदपेक्षया सुतरामसंख्येयभागवृद्धं भवति । अनन्तभागवृद्धं हि तत्प्रथमासंख्येयभागवृद्धस्थानापेक्षया । अनन्तभागवृद्धकंडकसत्कचरमस्थानापेक्षया त्वसंख्येयभागाधिकमेव । तत उपरितनानि स्थानानि विशेषतो विशेषतरतोऽसंख्येयभागाधिकानि तावद् द्रष्टव्यानि यावत्संख्येयभागाधिकं स्थानं न भवति । तदेवं यतः प्रथमादसंख्येयभागवृद्धात् स्थानादारभ्य प्रथमात् संख्येयभागवृद्धात् स्थानादर्वागपान्तराले यानि स्थानानि तानि सर्वाण्यप्यसंख्येयभागवृद्धानि प्राप्यन्ते । तस्मादनन्तभागवृद्धेभ्यः स्थानेभ्योऽसंख्येयभागवृद्धानि स्थानान्यसंख्येयगुणानि[×१] भवन्ति ।

तेभ्योऽपि संख्येयभागवृद्धानि स्थानानि संख्येयगुणनि। कुत एतदवसीयत इति चेदुच्यते–प्रथमे संख्येयभागवृद्धे स्थाने पाश्चात्यमनन्तरस्थानमधिकृत्य संख्येयभागवृद्धिः प्राप्यते। तद्यदि प्रथमेऽपि संख्येयभागवृद्धे स्थाने संख्येयभागवृद्धिः प्राप्ता,तर्हि ततः प्रथमात् स्थानादुत्तरेषामनन्तभागवृद्धासंख्येयभागवृद्धानां स्थानानां सुतरां संख्येयभागवृद्धिर्भवति । यतोऽनन्तभागवृद्धिरसंख्येयभागवृद्धिर्वा पूर्वपूर्वा(न)न्तरस्थानापेक्षया । प्रथमसंख्येयभागवृद्धात्पुनः प्राक्तनमनन्तरं स्थानमधिकृत्य सर्वाण्यप्यनन्तभागवृद्धानि असंख्येयभागवृद्धानि च स्थानानि यथोत्तरं सविशेषविशेषतरं संख्येयभागवृद्धानि भवन्ति । सविशेषतरसंख्येयभाग-

× (य० उ० २२) पाश्चात्यकंडकसत्कचरमस्थानापेक्षया. × १ (य० उ० २३) आनन्तर्येणानन्तभागवृद्धेऽपि परंपरागतमसंख्येयभागवृद्धत्वमाश्रितमित्ययं परंपरोपनिधावकाशः । एवमग्रेऽप्यूह्यं ।

वृद्धिश्च तावद्वक्तव्या यावन्मौलं द्वितीयं संख्येयभागाधिकं स्थानं न भवति । द्वितीयं मौलं संख्येयभागाधिकं स्थानं द्वाभ्यां सातिरेकाभ्यां संख्येयभागाभ्यामधिकमवगन्तव्यं। तृतीयं त्रिभिः सातिरेकैः। चतुर्थं चतुर्भिः सातिरेकैः। एवं तावद्वाच्यं यावदुत्कृष्टसंख्येयतुल्यान्यन्तरान्तराभावीनि मौलानि संख्येयभागवृद्धानि स्थानानि भवन्ति । एतावन्ति चान्तराले यावन्ति स्थानानि तावन्ति सर्वाण्यपि संख्येयभागवृद्धानि स्थानानि किंत्वेकेन सर्वान्तिमेन स्थानेन न्यूनानि द्रष्टव्यानि । यत उत्कृष्टसंख्यात-(तं)मसंख्येयभागवृद्धं स्थानं संख्येयगुणं भवति, (द्विगुणत्वात्), ततस्तत्परित्यज्यते । तत्रेह यावन्ति असंख्येयभागवृद्धानि स्थानान्यनन्तरमुक्तानि तावन्ति एकैकस्मिन्नन्तरान्तराभाविनां संख्येयभागवृद्धानां स्थानानामन्तरे प्राप्यन्ते। तानि चान्तरान्तराभावीनि मौलानि संख्येयभागवृद्धानि स्थानानि प्रस्तुतचिन्तायामुत्कृष्टसंख्यातकतुल्यानि गृह्यन्ते। केवलं तदेवैकं सर्वान्तिमं संख्येयभागवृद्धं परित्यज्यते। ततोऽसंख्येयभागवृद्धेभ्यः स्थानेभ्यःसंख्येयभागवृद्धानि स्थानानि संख्येयैर्गुणान्येव भवन्ति ।।

तेभ्योऽपि संख्येयगुणवृद्धानि स्थानानि संख्येयगुणानि । कथमिति चेदुच्यते–प्रथमात्संख्येयभागवृद्धात् स्थानात्प्राक्तनं यदनन्तरं स्थानं तदधिकृत्योत्तराणि अन्तरान्तराभावीनि मौलानि संख्येयभागवृद्धानि स्थानानि उत्कृष्टसंख्यातकतुल्यानि गत्वा चरमं स्थानं द्विगुणं साधिकमुपलब्धं । ततः पुनरपि तावन्मात्राण्येव स्थानानि गत्वा चरमं स्थानं सातिरेकं त्रिगुणं । एवमेव चतुर्गुणं । एवं तावद्वाच्यं यावदुत्कृष्टसंख्येयगुणं भवति । ततः पुनरप्युत्कृष्टसंख्यातकतुल्यानि स्थानानि गत्वा चरमं यदेकेन गुणेन वृद्धं भवति, तज्जघन्यासंख्येयगुणं भवति । तस्मात्संख्येयभागवृद्धेभ्यः स्थानेभ्यः संख्येयगुणवृद्धानि स्थानानि संख्येय-

× (य० उ० २४) प्राक्तनराशिप्रमाणानां तेषां संख्यातानामेवोत्तरोत्तरमभिवृद्धेः ।

गुणान्येव भवन्ति । तथा चाह–'संखेज्जक्खेसु संखगुणं' संख्येयाख्येषु संख्येयभागवृद्धसंख्येयगुणरूपेषु स्थानेषु संख्येयगुणं संख्येयगुणता ×वक्तव्या ।

तेभ्योऽपि संख्येयगुणवृद्धेभ्यः स्थानेभ्योऽसंख्येयगुणवृद्धानि स्थानानि असंख्येयगुणानि । कथमिति चेदुच्यते–इह यतः प्रागुक्तादनन्तराज्जघन्यासंख्येयगुणात् स्थानात् पराणि सर्वाण्यप्यनन्तभागवृद्धासंख्येयभागवृद्धसंख्येयभागवृद्धसंख्येयगुणवृद्धासंख्येयगुणवृद्धानि स्थानान्यसंख्येयगुणानि प्राप्यन्ते, ततः संख्येयगुणवृद्धेभ्यः स्थानेभ्योऽसंख्येयगुणवृद्धानि स्थानानि असंख्येयगुणानि भवन्ति । तेभ्योऽप्यनन्तगुणवृद्धानि स्थानान्यसंख्येयगुणानि । कथमिति चेदुच्यते–इह प्रथमादनन्तगुणवृद्धात् स्थानादारभ्य यावत् षट्स्थानकपरिसमाप्तिस्तावत् सर्वाण्यपि स्थानानि अनन्तगुणवृद्धानि । तथाहि–यदि प्रथममनन्तगुणवृद्धं स्थानं पाश्चात्यमनन्तरस्थानमधिकृत्यानन्तगुणाधिकं जातं । तत उत्तराणि अनन्तभागवृद्धादीनि स्थानानि तदपेक्षया सुतरामनन्तगुणवृद्धानि भवन्ति । यावन्ति च स्थानानि प्रागतिक्रान्तानि तावन्ति एकैकस्मिन्ननन्तगुणवृद्धानामन्तरान्तराभाविनां स्थानानामन्तरे भवन्ति । कंडकमात्राणि च तान्यन्तराणि । ततः प्रागुक्तेभ्योऽसङ्ख्येयगुणवृद्धेभ्यः स्थानेभ्योऽनन्तगुणवृद्धानि स्थानान्यसङ्ख्येयगुणानि भवन्ति इति ॥ ४३ ॥

×(य० उ० २५) संख्येयगुणमिति क्रियाविशेषणं, संख्येयगुणनया परंपरोपनिधा वाच्येत्यर्थः । तद्विपरीतमितरत इत्यस्य विशेषनियमोऽयं ।

अनुभागबन्धने विषे आवता १४ अनुयोगद्वारनी टुंक समजुती.

१ अविभागप्ररूपणा	६ कंडकप्ररूपणा	११ यवमध्यप्ररूपणा.
२ वर्गणाप्ररूपणा	७ षट्स्थानप्ररूपणा	१२ ओजोयुग्मप्ररूपणा
३ स्पर्धकप्ररूपणा	८ अधस्तनस्थानप्ररूपणा	१३ पर्यवसानप्ररूपणा
४ अन्तरप्ररूपणा	९ वृद्धिप्ररूपणा	१४ अल्पबहुत्व प्ररूपणा
५ स्थानप्ररूपणा	१० समयप्ररूपणा	

१ अविभागप्ररूपणा=कर्म परमाणुने विषे कषाय जनित रसनो निर्विभाज्य अंश ते अविभाग. एकेक (सर्व जघन्य रसयुक्त अने सर्वोत्कृष्ट रसयुक्त) कर्म परमाणुने विषे सर्व जीवथी अनंतगुण रसाविभाग होय छे.

२ वर्गणाप्ररूपणा=समान रसाविभाग युक्त कर्म परमाणुनो समुदाय ते वर्गणा. सर्व जघन्य रसाविभाग युक्त कर्मप्रदेशोनो समुदाय ते प्रथम वर्गणा. तेमां परमाणु सर्वाधिक, तेथी एक रसाणु अधिक कर्मप्रदेशोनो समुदाय ते द्वितीय वर्गणा. तेमां परमाणु हीन. ए प्रमाणे एक एक रसाविभागे वधती वधती अने परमाणुए घटती घटती वर्गणाओ जाणवी.

३ स्पर्धकप्ररूपणा=अभव्यथी अनन्तगुण, अथवा सिद्धना अनंतमा भाग प्रमाण वर्गणानुं एक स्पर्धक.

४ अन्तरप्ररूपणा=पूर्व स्पर्धकनी अन्त्य वर्गणा अने पर स्पर्धकनी प्रथम वर्गणानी वच्चे सर्वजीवथी अनंतगुण रसाविभागनुं अन्तर.

५ स्थानप्ररूपणा=अभव्यथी अनंतगुण अथवा सिद्धना अनंतमा भाग प्रमाण स्पर्धकोनुं प्रथम रसस्थान, त्यार पछीनां स्थानोमां स्पर्धको अनंतभागादि षट्वृद्धिवाळां जाणवां. (एक समये जीवे ग्रहण करेल कर्मस्कन्धना रसनो समुदाय ते स्थान)

६ कंडकप्ररूपणा=अंगुलना असंख्यातमा भाग प्रमाण स्थानोनुं १ कंडक.

७ षट्स्थानप्ररूपणा=रसस्थानोमां एक स्थानथी बीजा स्थानमां स्पर्धक अपेक्षाए १ अनंतभागवृद्धि, २ असंख्यातभागवृद्धि, ३ संख्यातभागवृद्धि, ४ संख्यातगुणवृद्धि, ५ असंख्यातगुणवृद्धि अने ६ अनंतगुणवृद्धि ए छ प्रकारनी वृद्धिनां स्थाननी प्ररूपणा. एक षट्स्थानमां असंख्यलोकाकाश प्रदेश प्रमाण स्थानो जाणवां. एवां षट्स्थानो पण असंख्याता छे. (जुओ षट्स्थान यंत्र पृ० ६३-६४-६५)

८ अधस्तनस्थानप्ररूपणा=रसस्थानोने विषे विवक्षित वृद्धिनां स्थाननी अपेक्षाए तेनी नीचे आवतां अनंतर वृद्धिनां अथवा एकान्तरादिक वृद्धिनां स्थाननी विचारणा (जुओ अधस्तनस्थान समजुती पृ० ७०)

९ वृद्धिप्ररूपणा=छ प्रकारनी वृद्धि अने हानिमांथी अनन्तगुणवृद्धि अने अनन्तगुण हानिनो काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण छे. एटले एक जीव निरन्तरपणे अनन्तगुणवृद्धि अथवा अनन्तगुणहानिमां अन्तर्मुहूर्त काल सुधी वर्ते. बाकीनी अनन्तभागाधिक वगेरे पांच वृद्धि हानिमां आवलिना असंख्यातमा भाग जेटलो काल निरन्तरपणे वर्ते.

१० समयप्ररूपणा=सर्वे स्थानोनो जघन्यथी एक समयनो काल. तथा उत्कृष्ट काल नीचें प्रमाणेः—जघन्य स्थानथी असंख्य लोकाकाश प्रमाण स्थानो ४ समयनी स्थीतिवाळां. त्यारपछीनां असंख्य लोकाकाश प्रदेश प्रमाण स्थानो ५ समयनी स्थितिवाळां. ए प्रमाणे असंख्य असंख्य लोकाकाश प्रमाण स्थानो अनुक्रमे ६-७-८ समयनी स्थितिवाळां. त्यारथी आगळ समयनी हानि करवी. एटले ७-६-५-४-३ अने छेवटनां असंख्य लोकाकाश प्रदेश प्रमाण स्थानो २ समयनी स्थितिवाळां जाणवां.

११ यवमध्यप्ररूपणा=जेम यवनो मध्यभाग पहोळो होय अने बंने तरफनी बाजुए धीमे धीमे सांकडो थतो जाय छे. तेम अहीं अष्ट सामयिक अध्यवसायो यवमध्य समान जाणवां. केमके समयनी अपेक्षाए तेमनो काल सर्वाधिक छे. अने पछी बंने तरफ घटतो छे. आ अष्टसामयिकस्थानो अनंतगुणवृद्धि अने अनंतगुणहानिमां वर्ते छे. कारण के पूर्व सप्त सामायिकना छेल्ला स्थान करतां अष्ट सामायिकनुं प्रथम स्थान अनंतगुण वृद्धिवाळुं होवाथी तेनी अपेक्षाए बाकीनां अष्टसामयिक सर्व-

स्थानो अनंतगुणवृद्धिवाळां छे. तथा अष्टसामयिकना छेल्ला स्थान करतां पर सप्तसामयिक प्रथम स्थान अनंतगुणवृद्धिवालुं होवाथी ते सप्तसामयिक प्रथम स्थाननी अपेक्षाए अष्ट सामयिक सर्वस्थानो अनंतगुणहीन होय छे. ए प्रमाणे प्रथमनां ५–६ अने ७ सामयिक स्थानो अने पछीना ७–६–५–४–३ सामयिक स्थानो अनंतगुणवृद्धि अने अनंतगुणहानिवाळां छे. तथा प्रथमना ४ सामयिक अनंतगुणहानिमां अने सर्वान्तिम २ सामयिकस्थानो अनंतगुणवृद्धिमांज होय छे.

स्थानोनुं अल्पबहुत्व.

१ यवमध्य अष्ट सामयिक अनु० स्थानो				सर्वस्तोक तेथी			
२ पूर्वोत्तर सप्त सामयिक	,,			असंख्यातगुणा परस्पर तुल्य तेथी			
३ ,, षट् ,,	,,			,,	,,	,,	,,
४ ,, पंच ,,	,,			,,	,,	,,	,,
५ ,, चतुः ,,	,,			,,	,,	,,	,,
६ त्रिसामयिक	,,			,,			,,
७ द्विसामयिक	,,			,,			

आ अनुभागस्थानोनो समय संख्यानी अपेक्षाए यव जेवो तथा स्थान संख्यानी अपेक्षाए डमरुक जेवो आकार थाय छे ते पूर्वे (पृ० ३० मां) आपेल योगस्थानना यंत्रनी जेम जाणवो.

१२ ओजोयुग्मप्ररूपणा=जे संख्याने ४ वडे भागतां १ शेष रहे ते कल्योज, २ शेष रहे ते द्वापरयुग्म, ३ शेष रहे ते त्रैतोज अने कांइ न वधे ते कृतयुग्म. जेमके ४)१३(३ १२ १ | ४)१४(३ १२ २ | ४)१५(३ १२ ३ | ४)१६(४ १६ ०

रसस्थानमां आवतां अविभागो, स्थानो अने कंडको कृतयुग्मराशिमां होय छे.

तदेवं कृताऽल्पबहुत्वप्ररूपणा (१४) तत्करणाच्चोक्तान्यनुभागबन्धस्थानानि । सांप्रतमेतेष्वनुभागबन्धस्थानेषु निष्पादकत्वेन यथा जीवा वर्तन्ते तथा प्ररूपणा कर्तव्या। तत्र चाष्टावनुयोगद्वाराणि । तद्यथा–एकैकस्मिन् स्थाने जीवप्रमाणप्ररूपणा[१], अन्तरस्थानप्ररूपणा[२], निरन्तरस्थानप्ररूपणा[३], नानाजीवकालप्रमाणप्ररूपणा[४], वृद्धिप्ररूपणा[५], यवमध्यप्ररूपणा[६], स्पर्शनाप्ररूपणा[७], अल्पबहुत्वप्ररूपणा[८], च । तत्र प्रथमत एकैकस्मिन् स्थाने नानाजीवप्रमाणप्ररूपणार्थमाह—

थावरजीवाणंता, एक्केक्के तसजिया असंखेज्जा । लोगा सिमसंखेज्जा, अंतरमह थावरे नत्थि ॥ ४४ ॥

---

१३ पर्यवसानप्ररूपणा=अनन्तगुणवृद्धिनां एक कंडक प्रमाण स्थान अतिक्रम्या पछी अनन्तभागाधिकादि पांच वृद्धिनां सर्व स्थानको गया पछी अनन्तगुणवृद्धिनुं स्थान आवतुं नथी. एटले त्यां षट्स्थानकनी समाप्ति थाय छे.

१४ अल्पबहुत्वप्ररूपणा=बे प्रकारे अल्पबहुत्वप्ररुपणाः—१ अनंतरोपनिधाप्ररु०, २ परंपरोपनिधा प्ररूपणा.

(१) अनंतरोपनिधाप्ररूपणा आ प्रमाणेः—अनंतगुणवृद्धिनां स्थान सर्वस्तोक (कंडक मात्र होवाथी) तेथी असंख्यातगुणवृद्धिनां असंख्यातगुणां (कंडकगुणां अने उपर कंडक) तेथी संख्यातगुण०नां असंख्यातगुणां, तेथी संख्यातभागवृद्धिनां असंख्यातगुणां, तेथी असंख्यात भागवृद्धिनां असंख्यातगुणां, तेथी असंख्यातभागवृद्धिनां असंख्यातगुणां, तेथी अनंतभागवृद्धिनां असंख्यातगुणां. गुणाकार कंडकगुणां अने कंडक प्रमाण.

(२) परंपरोपनिधाप्ररूपणा आ प्रमाणेः—अनंतभागवृद्धिनां स्थानो सर्वस्तोक, तेथी असंख्यातभागवृद्धिनां असंख्यातगुणां, तेथी संख्येयभागवृद्धिनां संख्यातगुणां, तेथी असंख्येयगुणवृद्धिनां असंख्यातगुणां, तेथी अनंतगुणवृद्धिनां असंख्यातगुणां.

गाथार्थः—एक्केक्के=एक एक, अध्यवसायस्थाने, थावरजीवा=स्थावरजीवो, अणंता=अनन्ता वर्ते अने=तसजिया=त्रसजीवो अ-

थावरेति–एकैकस्मिन् स्थावराणां बन्धं प्रति प्रायोग्येऽनुभागबन्धस्थानेऽनन्ताः स्थावरजीवा बन्धकत्वेन प्राप्यन्ते। त्रसप्रायोग्ये चैकैकस्मिन्ननुभागबन्धस्थाने जघन्येनैको द्वौ वोत्कर्षतोऽसंख्येया आवलिकाया असंख्येयभागमात्रास्त्रसजीवाः प्राप्यन्ते (१)। सांप्रतमन्तरस्थानप्ररूपणार्थमाह 'लोगा सिमेत्यादि' एषां त्रसजीवानामसंख्येया लोका असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि अनुभागबन्धस्थानानि अन्तरं, एतावन्ति बन्धं नायान्तीत्यर्थः। इदमुक्तं भवति–त्रसप्रायोग्याणि यानि स्थानानि त्रसजीवानां बन्धं नायान्ति, तानि जघन्यपदे एकं द्वे वा उत्कर्षतोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि भवन्ति। अथ स्थावरे स्थावरप्रायोग्येषु स्थानेषु अन्तरं न विद्यते, सर्वाण्यपि स्थावरप्रायोग्याणि स्थानानि सर्वदैव स्थावरजीवैर्बध्यमानानि प्राप्यन्त इत्यर्थः। कथमेवं गम्यत इति चेदुच्यते–इह स्थावरजीवा अनन्ताः, स्थावराणां बन्धं प्रति प्रायोग्याणि च स्थानानि पुनरसंख्येयानि ततोऽन्तरं न प्राप्यन्ते (२) ॥४४॥

संप्रति निरन्तरस्थानप्ररूपणार्थमाह—

आवलिअसंखभागो, तसा निरंतरं अहेगठाणम्मि। नाणा जीवा एवइ-कालं एगिंदिया निच्चं ॥ ४५ ॥

आवलीति–अत्र तृतीयार्थे प्रथमा। बन्धमाश्रित्य त्रसजीवैर्निरन्तराणि। किमुक्तं भवति ? त्रसजीवैर्निरन्तरं बध्यमानानि

संखेज्जा=असंख्याता वर्ते, अहे=वळी, लोगासिमसंखेज्जा०=असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण, अतरं=(त्रसप्रायाग्य अध्यवसायस्थानमां) अन्तर छे. थावरे=स्थावरयोग्य अध्यवसायोमां, नत्थि=अन्तर नथी. ४४ तसा=त्रसजीवो वडे, निरंतरं=निरन्तर बंधाता स्थानो, आवलिअसंखभागो=आवलिना असंख्यातमा भाग प्रमाण छे. अहे=वळी, नाणा जीव=विविध त्रस जीवो वडे, एग ठाणम्मि=एक

अनुभागबन्धस्थानानि जघन्येन द्वे त्रीणि वा प्राप्यन्ते, उत्कर्षत आवलिकाया असंख्येयभागमात्राणि। कथमेतदवसेयमिति चेदुच्यते–स्तोकास्त्रसजीवाः स्थानानि पुनस्त्रसप्रायोग्याणि असंख्येयानि, ततो न सर्वाणि त्रसजीवैः क्रमेण निरन्तरं बध्यमानानि प्राप्यन्ते, किं तूत्कर्षतोऽपि यथोक्तप्रमाणान्येव (३)। संप्रति नानाजीवकालप्ररूपणार्थमाह–'अहेगठाणम्मीत्यादि'। एकैकमनुभागबन्धस्थानं नानाजीवैर्बध्यमानं कियन्तं कालं यावदविरहितं प्राप्यते इति प्रश्ने सति उत्तरं (दीयते)–त्रसप्रायोग्ये एकैकस्मिन्ननुभागबन्धस्थाने नानारूपास्त्रसा जीवा जघन्येनैकं समयं, उत्कर्षतः 'एवइकालं ति' एतावन्तं कालं पूर्वोक्तस्वरूपं आवलिकाया असंख्येयभागमात्रं कालं यावदित्यर्थः।निरन्तरं बन्धकत्वेन प्राप्यन्ते। परतोऽवश्यं तद्बन्धशून्यं भवतीत्यर्थः। इयमत्र भावना–एकैकं त्रसप्रयोग्यमनुभागबन्धस्थानमन्यैरन्यैश्च त्रसजीवैर्निरन्तरं बध्यमानं जघन्येनैकं समयं द्वौ वा समयौ यावत्प्राप्यते। उत्कर्षतस्त्वावलिकाया असंख्येयभागमात्रं कालं। 'एगिंदिया निच्चं ति' स्थावरप्रायोग्य एकैकस्मिन्ननुभागबन्धस्थाने नानाविधा एकेन्द्रिया नित्यं सर्वकालमविरहितं बन्धकत्वेन प्राप्यन्ते, न कदाचनापि तद्बन्धशून्यं भवतीत्यर्थः। अत्रापीयं भावना–एकैकं स्थावरप्रायोग्यमनुभागबन्धस्थानमन्यैरन्यैश्च स्थावरजीवैर्निरन्तरं बध्यमानं सर्वकालमवाप्यते, न तु कदाचनापि बन्धरहितं भवतीति (४)॥ ४५॥

तदेवं कृता नानाजीवानाश्रित्य कालप्ररूपणा, संप्रति वृद्धिप्ररूपणावसरः। तत्र च द्वे अनुयोगद्वारे। तद्यथा--अनन्तरोपनिधा परंपरोपनिधा च। तत्रानन्तरोपनिधामाह—

स्थानमां, काल=बन्धकाल, एवइ=एटलो छे. एगिंदिया=एकेन्द्रिय जीवो, निच्चं=नित्य बन्धक छे. ४५

थोवा जहन्नठाणे, जा जवमज्झं विसेसओ अहिया। एत्तो हीणा उक्कोसगं ति जीवा अणंतरओ ॥४६॥

थोवेति--जघन्येऽनुभागबन्धस्थाने बन्धकत्वेन वर्तमाना जीवाः सर्वस्तोकाः। ततो द्वितीयेऽनुभागबन्धस्थाने विशेषाधिकाः। ततोऽपि तृतीयेऽनुभागबन्धस्थाने विशेषाधिकाः। एवं तावद्वाच्यं यावद्यवमध्यं सर्वमध्यं सर्वमध्यान्यष्टसामयिकानीत्यर्थः। इत ऊर्ध्वं पुनर्जीवा अनन्तरत आनन्तर्येण क्रमेणेत्यर्थः। विशेषतो हीना विशेषहीना वक्तव्याः। ते च तावद्यावदुत्कृष्टं द्विसामयिकं स्थानमिति ॥ ४६ ॥

गताऽनन्तरोपनिधा। परंपरोपनिधामाह—

गंतूणमसंखेज्जे, लोगे दुगुणाणि जाव जवमज्झं। एत्तो य दुगुणहीणा, एवं उक्कोसगं जाव ॥४७॥

गंतूणमिति–जघन्यानुभागबन्धस्थानबन्धकेभ्यो जीवेभ्यो जघन्यानुभागबन्धस्थानादारभ्यासंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि स्थानान्यतिक्रम्य परं यदनुभागबन्धस्थानं तद्बन्धका जीवा द्विगुणा वृद्धा भवन्ति। ततः पुनरपि तावन्ति स्थानान्यतिक्रम्या-

---

गाथार्थ—जहन्नठाणे=जघन्य अनुभागस्थानमां वर्तता जीवो, थोवा=थोडा, जावजवमज्झं=तेथी यवमध्य सुधीना स्थानोमां, अणंतरओ=अनन्तरपणे, विससओ अहिया=विशेषाधिक छे. एत्तो=अहींथी आगळ अनन्तरपणे, हीणा=विशेषहीन हीन, उक्कोसगंति=उत्कृष्ट स्थान सुधी जाणवा. ४६. असंखेज्जे लोगे=(जघन्य अनुभागबंधस्थानकथी) असंख्याता लोकप्रमाण स्थानो, गंतूण=ओळंगीए त्यार पछीना स्थानमां, दुगुणाणि=बमणा जीवो होय ए प्रमाणे ओळंगतां बमणां बमणां, जाव जवमज्झं=यवमध्य सुधी जाणवां. एवं=ए प्रमाणे, एत्तो य=त्यार पछी, दुगुणहीणा=द्विगुण द्विगुण हीन जीवो, जाव उक्कोसगं=उत्कृष्ट स्थान सुधी कहेवा. ४७

परस्यानुभागबन्धस्थानस्य बन्धका द्विगुणवृद्धा भवन्ति । एवं द्विगुणवृद्धिस्तावद्वक्तव्या यावद्यवमध्यं । ततोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि स्थानान्यतिक्रम्यापरस्यानुभागबन्धस्थानस्य ये बन्धका जीवास्तेऽनन्तरमुक्तेभ्यो जीवेभ्यः सकाशात् द्विगुणहीना भवन्ति । ततः पुनरपि तावन्ति स्थानान्यतिक्रम्यापरस्यानुभागबन्धस्थानस्य बन्धका द्विगुणहीना भवन्ति । एवं द्विगुणहानिस्तावद्वक्तव्या यावत्स्वस्वप्रायोग्यं सर्वोत्कृष्टमनुभागबन्धस्थानं इति ॥ ४७ ॥

नाणंतराणि आवलिय–असंखभागो तसेसु इयरेसुं । एगंतरा असंखिय–गुणाइँ ठाणंतराइं तु ॥ ४८ ॥

नाणंतराणीति–नानान्तराणि नानाप्रकाराणि द्विगुणवृद्धिद्विगुणहान्यपान्तरालरूपाणि यानि तानि त्रसेषु त्रसकायेषु आवलिकाया असंख्येयतमे भागे यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणानि भवन्ति[×]। ननु "आवलिकाया असंख्येयभागमात्राण्येवानुभागबन्धस्थानानि त्रसजीवैर्निरन्तरं बध्यमानानि प्राप्यन्ते एतच्च प्रागेवोक्तं। तत्कथं त्रसेषु द्विगुणवृद्धिद्विगुणहान्यन्तराणि यथोक्तप्रमाणानि भवन्ति। एवं ह्येकापि द्विगुणवृद्धिर्द्विगुणहानिर्वा न प्राप्नोतीति भावः"। "नैष दोषः, यतः प्रागावलिकाऽसंख्येयभागमात्राणि त्रसजीवैर्निरन्तरं बध्यमानतया प्राप्यमाणान्युक्तानि । इह तु यद्यप्यावलिकाऽसंख्येयभागमात्रेभ्यः स्थानेभ्यः पराणि स्थानानि

×(य० उ०२६) तथा चान्यत्राप्युक्तं " आवलि असंखभागो तसेसु हाणीण होइ परिमाणं।

गाथार्थ—तसेसु=त्रसकायने विषे, आवलियअसंखभागो=आवलिनाअसंख्यातमा भाग प्रमाण, नाणंतराणि=अन्तराभावी द्विगुण वृद्धि हानिनां स्थानो छे. इयरेसुं=स्थावर जीवोमां, एगंतरा=एक अन्तरनां स्थानोथी, असंखियगुणाइं=असंख्यातगुणां, ठाणंतराइं तु=अन्तरा भावी द्विगुणवृद्धि हानि स्थानो छे.

बध्यमानानि संप्रति न प्राप्यन्ते, तथापि कदाचित्प्राप्यन्ते। तेषु च जीवा उत्कृष्टपदे क्रमेण विशेषाधिका लभ्यन्ते। ततो यथोक्तप्रमाणानि द्विगुणवृद्धिद्विगुणहानिस्थानानि न विरुध्यन्ते"। तथा इतरेषु स्थावरेषु एकस्मादन्तरात्रसकायसत्कादसंख्येयगुणानि नानारूपाण्यन्तराणि भवन्ति। किमुक्तं भवति ? त्रसकायिकानामेकस्मिन् द्वयोर्द्विगुणवृध्योर्द्विगुणहान्योर्वाऽपान्तराले यानि स्थानानि तेभ्योऽसंख्येयगुणानि स्थावरकायिकानां द्विगुणवृद्धिद्विगुणहान्यन्तराणि। इह त्रसजीवेषु द्विगुणवृद्धिद्विगुणहान्यन्तराणि स्तोकानि। एकस्मिन् द्विगुणवृद्धिस्थानयोर्द्विगुणहानिस्थानयोर्वाऽपान्तराले यानि स्थानानि तान्यसंख्येयगुणानि। एवं त्रसानां। स्थावराणां पुनर्द्वयोर्द्विगुणवृध्योर्द्विगुणहान्योर्वा एकस्मिन्नपान्तराले यानि स्थानानि तानि स्तोकानि। द्विगुणवृद्धिद्विगुणहान्यन्तराणि पुनरसंख्येयगुणानि (५) ॥ ४८ ॥

कृता वृद्धिप्ररूपणा। संप्रति यवमध्यप्ररूपणा क्रियते—यवमध्यस्थानानि अष्टसामयिकानि शेषस्थानापेक्षयाऽसंख्येयभागमात्राणि। तथा यवमध्यस्याधस्तनानि स्थानानि स्तोकानि। ततो यवमध्यस्योपरितनानि असंख्येयगुणानि। उक्तं च "जवमज्झे ठाणाइं असंखभागो उ सेसठाणाणं। हेठम्मि होंति थोवा उवरिम्मि असंखगुणियाणि ॥ १ ॥" कृता यवमध्यप्ररूपणा (६)। संप्रति स्पर्शनाप्ररूपणामाह—

फासणकालो तीए, थोवो उक्कोसगे जहन्ने उ। होइ असंखेज्जगुणो, यउ कंडगे तत्तिओ चेव ॥ ४९ ॥

× (य० उ०२७) नानान्तराणि यवमध्यादर्वाक्तन्यः परभाविन्यश्च द्विगुणवृद्धिहानय इत्यर्थः असंख्येयगुणानि। उक्तं च "हाणिदुगंतरठाणा थावरहाणी असंखगुणत्ति"।

गाथार्थ—तीए=अतीतकाळमां, उक्कोसगे=उत्कृष्ट (द्विसामायिक) स्थानमां, फासणकालो=स्पर्शना काळ, थोवो=सर्वथी थोडो

जवमज्झकंडगोवरि, हेट्ठो जवमज्झओ असंखगुणो। कमसो जवमज्झुवरिं, कंडगहेट्ठा य तावइओ ॥५०॥
जवमज्झुवरि विसेसो, कंडगहेट्ठा य सव्वहिं चेव। जीवप्पाबहुमेवं, अज्झवसाणेसु जाणेज्जा ॥ ५१ ॥

फासणेति–अतीते काले एकस्य जीवस्योत्कृष्टे द्वे सामयिके इत्यर्थः। अनुभागबन्धस्थाने स्पर्शनाकालः स्तोकः। अतीते काले परिभ्रमता जन्तुना द्विसामयिकान्यनुभागबन्धस्थानानि स्तोकमेव कालं स्पृष्टानीत्यर्थः। जघन्ये पुनरनुभागबन्धस्थाने प्राथमिकेषु चतुःसामयिकेष्वित्यर्थः। अतीते काले स्पर्शनाकालोऽसंख्येयगुणः। 'कंडगे तत्तिओ चेव' कंडकं उपरितनानि चतुःसामयिकानि स्थानानि, तेषु तावन्मात्रः स्पर्शनाकालो यावन्मात्र आद्येषु चतुःसामयिकेषु। ततो यवमध्येषु स्थानेषु अष्टसामयिकेष्वित्यर्थः, स्पर्शनाकालोऽसंख्येयगुणः। ततः कंडकस्योपरिवर्तिचतुःसामयिकस्थानसंघातरूपस्योपरितनेषु स्थानेषु त्रिसा-

तेथी, जहन्ने उ=जघन्य (प्रथम चारसामयिक) स्थानमां तो, असंखेज्जगुणो होइ=असंख्यातगुणो छे. कंडगे उ=वळी कंडकमां (यवमध्य पछीनां चतुःसामायिक स्थानोमां) तत्तिओ चेव=तेटलोज स्पर्शना काळ. ४९. तेथी जवमज्झ=यवमध्यस्थाननो तेथी, कंडगोवरि=कंडक उपरना (त्रिसामयिक) स्थाननो, तेथी, जवमज्झओ हेट्ठो=यवमध्यथी नीचेना (सप्त, षट् अने पांच सामयिक) स्थानोनो, कमसो=अनुक्रमे, असंखगुणो=असंख्यातगुणो तेथी, जवमज्झुवरिं=यवमध्यथी उपर, कंडगहेट्ठाय=अने कंडकनी पूर्वनां (यवमध्य पछीना सप्त, षट् अने पांच सामयिक) स्थानोनो, तावइओ=तेटलो. ५० जवमज्झुवरि विसेसो=तेथी यवमध्यथी उपरनां सर्व स्थानोनो (स्पशना काल) विसेसो=विशेषाधिक, तेथी, कंडगहेट्ठा य=कंडग पूर्वेनां सर्व स्थानोनो विशेषाधिक तेथी, सव्वहिं चेव=सर्व स्थानोनो विशेषाधिक. एवं=ए प्रमाणे, अज्झवसाणेसु=अध्यवसायोने विषे, जीवप्पाबहु=जीवोनुं अल्पबहुत्व जाणेज्जा=जाणवुं. ५१.

मयिकेष्वित्यर्थः, स्पर्शनाकालोऽसंख्येयगुणः । ततो यवमध्यस्याधस्तात् पञ्चषट्सप्तसामयिकेष्वसंख्येयगुणः । स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यः । ततः क्रमशः क्रमेण यवमध्यादुपरितनेषु कंडकाच्चतुःसामयिकस्थानसंघातरूपादधस्तनेषु पञ्चषट्सप्तसामयिकेषु स्थानेषु तावन्मात्र एव स्पर्शनाकालो यावन्मात्रः पाश्चात्येषु पञ्चषट्सप्तसामयिकेषु। ततो यवमध्यस्योपरितनेषु द्विसामयिकपर्यन्तेषु सर्वेष्वपि स्थानेषु यः स्पर्शनाकालः स विशेषाधिकः । ततोऽपि कंडकस्य यवमध्यस्योपरिवर्तिचतुःसामयिकस्थानसंघातरूपस्याधस्तात् सर्वेष्वपि स्थानेषु जघन्यचतुःसामयिकपर्यन्तेषु स्पर्शनाकालः समुदितो विशेषाधिकः । [1]ततोऽपि सर्वेष्वपि स्थानेषु स्पर्शनाकालो विशेषाधिकः । कृता स्पर्शनाप्ररूपणा (७)।

संप्रत्यल्पबहुत्वप्ररूपणामाह–'जीवप्पाबहु' इत्यादि । यथा स्पर्शनाकालस्याल्पबहुत्वमुक्तं, एवं जीवानामपि अध्यवसानेषु अनुभागबन्धस्थाननिमित्तभूतेषु वर्तमानानामल्पबहुत्वं जानीयात् । तद्यथा–उत्कृष्टेष्वध्यवसानेषु द्विसामयिकानुभागनिबन्धनभूतेषु वर्तमाना जीवाः स्तोकाः । ततो जघन्येषु चतुःसामयिकानुभागबन्धनिबन्धनभूतेष्वसंख्येयगुणाः । एतावन्त एव चोपरिवर्तिचतुःसामयिकानुभागबन्धस्थाननिबन्धनेष्वध्यवसानेषु । ततोऽपि यवमध्यकल्पानुभागबन्धस्थाननिबन्धनेष्वसंख्येयगुणाः । ततोऽपि त्रिसामयिकानुभागबन्धस्थाननिमित्तेष्वसंख्येयगुणाः । ततोऽप्याद्यपञ्चषट्सप्तसामयिकानुभागबन्धस्थानहेतु-

---

× (य० उ० २८) उपरितनत्रिसामयिकस्पर्शनापेक्षया समुदितानि प्राथमिकानि पञ्चषट्सप्तसामयिकान्यसंख्येयगुणकालं स्पृष्टानीत्यर्थः ।

१ " ततोऽपि सर्वाण्यपि स्थानानि विशेषाधिकं कालं यावत् स्पृष्टानि । प्राक्तनस्य स्पर्शनाकालापेक्षया सर्वेषां स्थानानां स्पर्शनाकालः समुदितो विशेषाधिकः" इति प्रत्यन्तरे ।

अनुभागस्थानने विषे वर्तता जीवोनी प्ररूपणाने विषे ८ अनुयोगद्वारनो टुंक सार.

१ जीवप्रमाणप्ररूपणा.	३ निरन्तरस्थानप्ररूपणा.	५ वृद्धिप्ररूपणा.	७ स्पर्शनाप्ररूपणा.
२ अन्तरस्थानप्ररूपणा.	४ नानाजीवकालप्रमाणप्ररूपणा.	६ यवमध्यप्ररूपणा.	८ अल्पबहुत्वप्ररूपणा.

१ जीवप्रमाणप्ररूपणाः—स्थावरप्रायोग्य एक एक अनुभागबन्धस्थानने विषे अनन्ता स्थावर जीवो वर्तता होय. त्रसप्रायोग्य एक एक अध्यवसायने विषे जघन्यथी १-२ अने उत्कृष्टथी आवलिना असंख्यातमा भाग प्रमाण त्रस जीवो वर्तता होय.

२ अन्तरप्ररूपणाः—स्थावरप्रायोग्य अनु०स्थानोने विषे अन्तर नथी. त्रस प्रायोग्य अनु०स्थानोने विषे जघन्यथी १-२ अने उत्कृष्टथी असंख्यलोकाकाशप्रदेश प्रमाण स्थानोनुं अन्तर एटले तेटलां स्थानो बन्धशून्य होय. (भाग प्रमाण.

३ निरन्तरस्थानप्ररूपणाः—त्रस जीव वडे निरंतर बन्धाता अनु०स्थानो जघन्यथी एक बे अने उत्कृष्टथी आवलिना असंख्यातमा

४ नानाजीवकालप्रमाणप्ररूपणाः—त्रस प्रायोग्य एक एक अनुभागबन्धस्थान अन्य अन्य त्रस जीवोवडे जघन्यथी निरन्तर एक बे समय अने उत्कृष्टथी आवलिना असंख्यातमा भाग प्रमाण कालसुधी निरंतरपणे बंधाय. अने स्थावर प्रायोग्य अनु०स्थान अन्य अन्य स्थावर जीवो वडे निरंतर सदा काल बंधातुं होय.

५ वृद्धिप्ररूपणाः—बे प्रकारे (१) अनन्तरोपनिधा (२) परंपरोपनिधा.

(१) अनन्तरोपनिधाः—जघन्य अनुभागना बन्धक थोडा, तेथी आगळ आगळना निरंतर अनुभागे विशेषाधिक विशेषाधिक यवमध्य एटले अष्टसामयिक स्थानको सुधी कहेवां. त्यारपछी आगळना स्थानमां निरंतरपणे विशेषहीन विशेषहीन जीवो द्विसामायिक स्थान सुधी कहेवां.

(२) परंपरोपनिधाः—जघन्य अनुभागस्थान बन्धक जीवो करतां ते स्थानथी असंख्यलोकाकाश उदेश प्रमाण स्थान अतिक्रम्या पछीना स्थानमां बन्धकपणे वर्तता जीवो द्विगुण, त्यांथी आगळ तेटलां स्थान अतिक्रम्या पछी द्विगुण. ए प्रमाणे

यवमध्य सुधी कहेवुं. त्यांथी आगळ तेटलां तेटलां स्थानो अतिक्रमतां द्विगुणहीन द्विगुणहीन करतां उत्कृष्ट स्थानपर्यंत जवुं. त्रसजीवने विषे द्विगुणहानिवृद्धिनां स्थानो आवलिना असंख्यातमा भाग प्रमाण अने स्थावरने विषे असंख्यातलोकाकाशथी असंख्यातगुणां छे.

६ यवमध्यप्ररूपणाः—यवमध्यरूप अष्ट सामयिक स्थानो अल्प छे. बाकीनां स्थानोथी असंख्यातमा भाग प्रमाण छे. यवमध्यथी नीचेनां स्थानो थोडां तेथी उपरनां असंख्यातगुणां.

७ स्पर्शनाप्ररूपणाः—अतीतकाल आश्री एक जीवे कया अनुभागस्थानो वधारे ओछा काल स्पर्श्या ते नीचे प्रमाणेः—

एक जीवआश्री अनुभागस्थानोना स्पर्शना कालनो यंत्र.

स्थाननु नाम			स्थाननुं नाम		
१ द्विसामयिक स्थानोनो	स्पर्शना काल	सर्वाल्प	८ यवमध्यथी पूर्वना सप्त	सामायिकनो	पूर्वतुल्य
२ प्रथम चतुःसामायिकनो	,,	असंख्यातगुणो	९ कंडकथी पूर्वना पांच	,,	,,
३ कंडक (उत्तर चतुःसामयिकनो)	,,	पूर्वतुल्य	१० ,, ,, षट्	,,	,,
४ अष्टसामायिकनो	,,	असंख्यगुण	११ ,, ,, सप्त	,,	,,
५ त्रिसामयिकनो	;,	,,	१२ यवमध्यथी उत्तरनां सर्वस्थानोनो		विशेषाधिक
६ यवमध्यथी पूर्वना पांच सामयिकनो	,,	,,	१३ कंडकथी पूर्वनां	,, ,,	,,
७ ,, ,, षट्	,,	पूर्व तुल्य	१४ सर्व स्थानोनो		,,

८ अल्पबहुत्वप्ररूपणाः—कया प्रकारना अनुभागबन्धमां वर्तता जीवो ओछा वत्ता होय तेनी विचारणा करवी ते. जेम स्पर्शना कालनुं अल्पबहुत्व कह्युं तेम अहीं पण कहेवुं. एटले द्विसामयिक अध्यवसायोमां वर्तता जीवो थोडा १ तेथी प्रथम चतुः सामयिक अध्यवसायोमां वर्तता असंख्यातगुणा २, ए प्रमाणे अन्तना (१४मा) स्थान सुधी कहेवुं.

ष्वध्यवसानेषु असंख्येयगुणाः । एतावन्त एवोपरितनपञ्चषट्सप्तसामयिकानुभागबन्धस्थाननिबन्धनेष्वध्यवसानेषु । ततो यवमध्योपरिवर्तिनिःशेषानुभागबन्धस्थाननिबन्धनभूतेष्वध्यवसानेषु वर्तमाना जीवा विशेषाधिकाः । ततोऽप्युपरिवर्तिपञ्चसामयिकपर्यवसानप्राथमिकचतुःसामयिकप्रभृतिसमस्तानुभागबन्धस्थाननिबन्धनेषु विशेषाधिकाः । ततोऽपि सर्वेष्वपि अनुभागबन्धस्थाननिबन्धनेषु विशेषाधिकाः (८) । इति ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

तदेवमनुभागबन्धस्थानेषु तन्निबन्धनेषु चाध्यवसानेषु यथा जीवा वर्तन्ते तथा प्ररूपणा कृता । संप्रत्येकैकस्मिन् स्थितिस्थानाध्यवसाये नानाजीवापेक्षया कियन्तोऽनुभागबन्धाध्यवसायाः प्राप्यन्त इति तन्निरूपणार्थमाह—

एक्केक्कम्मि कसायो–दयम्मि लोगा असंखिया होंति। ठिइबंधट्ठाणेसु वि, अज्झवसाणाण ठाणाणि ॥५२॥

एक्केक्कम्मि त्ति–एकैकस्मिन् कषायोदये स्थितिस्थाननिबन्धनभूते नानाजीवापेक्षयाऽनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि कृष्णादिलेश्यापरिणामविशेषरूपाणि "सकषायोदया हि कृष्णादिलेश्यापरिणामविशेषा अनुभागबन्धहेतव" इतिवचनात् असंख्येया लोका भवन्ति, असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि भवन्तीत्यर्थः । तथा जघन्यस्थितेरारभ्योत्कृष्टां स्थितिं यावद्यावन्तः समयास्तावन्ति स्थितिस्थानानि । तथाहि–जघन्या स्थितिरेकं स्थितिस्थानं । सैव समयोत्तरा द्वितीयं स्थितिस्थानं । द्विसमयोत्तरा तृतीयं स्थितिस्थानं । एवं समयवृद्ध्या तावद्वाच्यं यावदुत्कृष्टा स्थितिः । एवं चासंख्येयानि स्थितिस्थानानि भवन्ति । तेषु

गाथार्थ—एक्केक्कम्मि=एक एक, कसायोदयम्मि=(स्थितिस्थानहेतुभूत) कषायोदयने विषे, असंखिया लोगा=असंख्यात लोक प्रमाण अध्यवसाय स्थानो छे. ठिइबंधट्ठाणेसु वि=स्थितिबन्धस्थानोमां पण, अज्झवसाणाण ठाणाणि=अध्यवसाय स्थानो (असंख्यलोकप्रमाण छे.) ५२.

चासंख्येयेषु स्थितिबन्धस्थानेषु प्रत्येकमेकैकस्मिन् स्थितिबन्धस्थानेऽध्यवसायस्थानानि तीव्रतीव्रतरमन्दमन्दतरादिकषायोदयविशेषरूपाणि असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि भवन्ति ॥ ५२ ॥

संप्रत्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानां वृद्धिमार्गणा क्रियते । सा द्विधा–अनन्तरोपनिधया परंपरोपनिधया च । तत्रानन्तरोपनिधया तावद् वृद्धिमार्गणां चिकीर्षुराह—

थोवाणि कसा(य)उदये, अज्झवसाणाणि सव्वडहरम्मि । बिइयाइ विसेसहिया–णि जाव उक्कोसगं ठाणं ॥५३॥

थोवाणि त्ति–'सव्वडहरम्मि त्ति' सर्वजघन्ये कषायोदये स्थितिबन्धहेतावनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि कृष्णादिलेश्यापरिणामविशेषरूपाणि स्तोकानि । ततो द्वितीयादौ यथोत्तरं विशेषाधिकानि तावद्वाच्यानि यावदुत्कृष्टं स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानं । एतदुक्तं भवति–द्वितीये कषायोदये विशेषाधिकानि । ततोऽपि तृतीये विशेषाधिकानि । ततोऽपि चतुर्थे विशेषाधिकानि । एवं

×(य० उ० २९) एकैकस्मिंश्च कषायोदये सति असङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यनुभागबन्धस्थानानि कृष्णादिलेश्यापरिणामविशेषरूपाणि भवन्ति । ' सकषायोदया हि कृष्णादिलेश्यापरिणामविशेषा अनुभागबन्धहेतव ' इतिवचनादिति मिलितोऽर्थः । यत्तु ' स्थितिपाकविशेषस्तस्य भवति लेश्याविशेषेण'ति वाचकवचनं तत्रापि पाकपदमहिम्नाऽनुभाग एव ग्राह्य इति वृद्धवादः ॥ ५२ ॥

गाथार्थ—सव्वडहरम्मि=सर्व जघन्य कसाउदये=कषायोदयने विषे, थोवाणि=स्तोक, अज्झवसाणाणि=(अनुभागबन्ध) अध्यवसाय स्थानो छे. बिइयाइ=बीजा (कषायोदय)ने विषे, विसेसहियाणि=विशेषाधिक, जाव उक्कोसगं ठाणं=ए प्रमाणे उत्कृष्ट स्थान

तावद्वाच्यं यावदुत्कृष्टं कषायोदयरूपं स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानं इति ॥ ५३ ॥

कृताऽनन्तरोपनिधया वृद्धिमार्गणा, संप्रति परंपरोपनिधया तामभिधित्सुराह—

गंतूणमसंखेज्जे, लोगे दुगुणाणि जाव उक्कोसं । आवलिअसंखभागो, नाणागुणवुड्ढिठाणाणि ॥ ५४ ॥

'गंतूणं' ति–जघन्यात् कषायोदयादारभ्यासंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि कषायोदयस्थानानि गत्वाऽतिक्रम्य परं यद् भवति स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानं तस्मिन्ननुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि जघन्यकषायोदयस्थानसत्कानुभागबन्धाध्यवसायस्थानापेक्षया द्विगुणानि भवन्ति । पुनरपि तावन्ति कषायोदयस्थानानि गत्वा यदपरं स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानं तस्मिन् द्विगुणानि भवन्ति । एवं भूयो भूयस्तावद्वाच्यं यावदुत्कृष्टं कषायोदयस्थानं । यानि चान्तरान्तरा नानारूपाणि द्विगुणवृद्धिस्थानानि भवन्ति तानि कियन्तीति चेदुच्यते–आवलिकाया असंख्येयभागः आवलिकाया असंख्येयभागे यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणानि भवन्तीत्यर्थः ॥ ५४ ॥

सव्वासुभपगईणं, सुभपगईणं विवज्जयं जाण । ठिइबंधट्ठाणेसु वि, आउगवज्जाण पगडीणं ॥ ५५ ॥

सुधी कहेवुं. ५३ असंखेज्जे लोगे=(प्रथम कषायोदयथी) असंख्यात लोकप्रमाण स्थान, गंतूणं=अतिक्रम्या पछीना स्थानमां दुगुणाणि=द्विगुण अध्यवसायस्थानो, जाव उक्कोसं=ए प्रमाणे उत्कृष्ट अध्यवसाय स्थान सुधी कहेवुं. नाणागुणवुड्ढिठाणाणि=नाना वृद्धिगुण अने हानिनां स्थानो, आवलिअसंखभागो=आवलिना असंख्यातमा भाग प्रमाण छे. ५४ सव्वासुभपगईणं=(पूर्वोक्त वृद्धि) सर्व अशुभ प्रकृति ओनी छे. शुभपगईणं=शुभ प्रकृतिओनी वृद्धि प्ररूपणा, विवज्जयं=विपरित, जाण=जाणवी. आउगवज्जाण पगडीणं

सव्वेति—सर्वासामशुभप्रकृतीनां ज्ञानावरणपञ्चकनवदर्शनावरणासातवेदनीयमिथ्यात्वषोडशकषायनवनोकषायनरकायुःपञ्चेन्द्रियजातिवर्जजातिचतुष्टयसमचतुरस्रवर्जसंस्थानपञ्चकवज्रर्षभनाराचवर्जसंहननपञ्चककृष्णनीलवर्णदुरभिगन्धतिक्तकटुरसकर्कशगुरुरूक्षशीतस्पर्शरूपाशुभकुवर्णादिनवकनरकगतिनरकानुपूर्वीतिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्व्यप्रशस्तविहायोगत्युपघातस्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणास्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेययशःकीर्तिनीचैर्गोत्रान्तरायपञ्चकलक्षणानां (८७) सप्ताशीतिसंख्यानामेषाऽनन्तरोक्ताऽनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानां वृद्धिमार्गणा द्रष्टव्या ।

'सुभपगईण मित्यादि' प्रकृतीनां शुभानां सातवेदनीयतिर्यगायुर्मनुष्यायुर्देवायुर्देवगतिमनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजातिशरीरपञ्चकसंघातपञ्चकबन्धनपञ्चदशकसमचतुरस्रसंस्थानांगोपांगत्रयवज्रर्षभनाराचसंहननशुभवर्णाद्येकादशकदेवानुपूर्वीमनुष्यानुपूर्वीपराघातागुरुलघूच्छ्वासातपोद्योतप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तिनिर्माणतीर्थकरोच्चैर्गोत्रलक्षणानामेकोनसप्ततिसंख्यानां (६९) विपर्ययं जानीहि। तद्यथा—उत्कृष्टे कषायोदयेऽनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि सर्वस्तोकानि। द्विचरमे कषायोदये विशेषाधिकानि। त्रिचरमे कषायोदये विशेषाधिकानि। चतुश्चरमे कषायोदये विशेषाधिकानि। एवं तावद्वाच्यं यावत्सर्वजघन्यं कषायोदयस्थानं । इयमनन्तरोपनिधया वृद्धिमार्गणा।

परंपरोपनिधया तु वृद्धिमार्गणेयं—उत्कृष्टकषायोदयस्थानादारभ्यासंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणानि कषायोदयस्थानानि अधोभागेनातिक्रम्य यदपरमधः कषायोदयस्थानं तस्मिन्ननुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि उत्कृष्टकषायोदयसत्कानुभागबन्धाध्य-

=आयुः सिवायनी प्रकृतिओना, ठिइबंधट्ठाणेसु वि=स्थितिबंधस्थानोमां पण वृद्धि प्ररूपणा कषायोदयनी जेम. ५५

वसायस्थानापेक्षया द्विगुणानि भवन्ति । पुनरपि तावन्ति कषायोदयस्थानानि ततः प्रभृत्यधोभागेनातिक्रम्य यदपरमधःकषायोदयस्थानं तस्मिन् द्विगुणानि भवन्ति । एवं भूयो भूयस्तावद्वाच्यं यावज्जघन्यं कषायोदयस्थानं । यानि चान्तरान्तरा नानारूपाणि द्विगुणवृद्धिस्थानानि तान्यावलिकाया असंख्येयभागे यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणानि भवन्ति । अमूनि चावलिकाया असंख्येयभागमात्राणि शुभप्रकृतीनां अशुभप्रकृतीनां च प्रत्येकं द्विगुणवृद्धिस्थानानि स्तोकानि । एकस्मिन्नपि द्विगुणवृद्ध्यपान्तराले कषायोदयस्थानानि असंख्येयगुणानि । तदेवं स्थितिबन्धहेतुष्वध्यवसायेषु अनुभागबन्धहेतूनामध्यवसायानां प्ररूपणा कृता ।

संप्रति स्थितिबन्धस्थानेष्वनुभागबन्धप्ररूपणां चिकीर्षुराह–'ठिइबंधेत्यादि' स्थितिबन्धस्थानेष्वपि आयुर्वर्जानां सर्वासां प्रकृतीनां कषायोदयेष्वनुभागबन्धाध्यवसायस्थानवदनुभागबन्धस्थानानि वक्तव्यानि । तद्यथा–तत्र पूर्वोक्तानामायुर्वर्जानामशुभप्रकृतीनां(८६) जघन्यस्थितावनुभागबन्धस्थानान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि, तानि च स्तोकानि। ततो द्वितीयस्थितौ विशेषाधिकानि। ततोऽपि तृतीयस्थितौ विशेषाधिकानि। एवं तावद्वाच्यं यावदुत्कृष्टा स्थितिः। तथा पूर्वोक्तानामायुर्वर्जानां(६६) शुभप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितावनुभागबन्धस्थानान्यसंख्येयलोकाकाशप्रदेश(राशि)प्रमाणानि, तानि च स्तोकानि । तेभ्यः समयोनायामुत्कृष्टस्थितौ विशेषाधिकानि । ततोऽपि द्विसमयोनायामुत्कृष्टस्थितौ विशेषाधिकानि । एवं तावद्वाच्यं यावज्जघन्या स्थितिः । इति ॥ ५५ ॥

तदेवं कृताऽनन्तरोपनिधया वृद्धिमार्गणा, संप्रति परंपरोपनिधया तां चिकीर्षुराह—

पल्लासंखियभागं, गंतुं दुगुणाणि आउगाणं तु। थोवाणि पढमबंधे, ठि(बि)इयाइ असंखगुणियाणि ॥५६॥

पल्लेति–पूर्वोक्तानामायुर्वर्जानामशुभप्रकृतीनां (८६) जघन्यस्थितेरारभ्य पल्योपमासंख्येयभागमात्राणि स्थितिस्थानान्यतिक्रम्य यदपरं स्थितिस्थानं तस्मिन् अनुभागबन्धस्थानानि जघन्यस्थितिसत्कानुभागबन्धस्थानेभ्यो द्विगुणानि भवन्ति। ततः पुनरपि तावन्ति स्थितिस्थानान्यतिक्रम्य यदपरं स्थितिस्थानं तस्मिन् द्विगुणान्यनुभागबन्धस्थानानि भवन्ति। एवं भूयो भूयस्तावद्वाच्यं यावदुत्कृष्टा स्थितिः। तथा पूर्वोक्तानामायुर्वर्जानां (६६) शुभप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितेरारभ्य पल्योपमासंख्येयभागमात्राणिस्थितिस्थानान्यतिक्रम्य यदपरमधःस्थितिस्थानं तस्मिन्ननुभागबन्धस्थानान्युत्कृष्टस्थितिस्थानसत्कानुभागबन्धस्थानेभ्यो द्विगुणानि भवन्ति। ततः पुनरपि तावन्ति स्थितिस्थानान्यधोऽवतीर्याधस्तनं यदपरं स्थितिस्थानं तस्मिन् द्विगुणानि भवन्ति। एवं तावद्वाच्यं यावज्जघन्या स्थितिः। एतानि च शुभप्रकृतीनां अशुभप्रकृतीनां च प्रत्येकं द्विगुणवृद्धिस्थानानि आवलिकाया असंख्येयभागे यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणानि भवन्ति। तथा द्विगुणवृद्धिस्थानानि स्तोकानि आवलिकाया असंख्येयभागमात्रत्वात्। एकस्मिन् द्विगुणवृद्ध्योरपान्तराले स्थितिस्थानानि असंख्येयगुणानि पल्योपमासंख्येयभागमात्रत्वात्। तथा चतुर्णामप्यायुषां जघन्यायां स्थितौ सर्वस्तोकान्यनुभागबन्धस्थानानि। ततः समयाधिकायां जघन्यस्थितौ असंख्येयगुणानि। ततोऽपि

गाथार्थः–पल्लासंखियभागं=पल्योपमना असंख्यातमा भाग प्रमाण स्थितिस्थानो, गंतु=आळंग्या पछीना स्थानमां, दुगुणाणि= अनुभागस्थानो बमणां थाय. आउगाणं तु=आयुष्यने विषे तो, पढमबंधे=प्रथम स्थितिबंधमां, थोवाणि=थोडां, ठिइयाई=द्वितीयादि स्थितिमां असंख्यगुणियाणि=असंख्यातगुणां अनुभाग बंधस्थानो. ५६

द्विसमयाधिकायामसंख्येयगुणानि । एवं तावद्वाच्यं यावदुत्कृष्टा स्थितिः इति ॥ ५६ ॥

सांप्रतमनुभागबन्धस्थानानां तीव्रमन्दतापरिज्ञानार्थमनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिमभिधातुकाम आह—

घाईणमसुभवण्णरसगंधफासे जहन्नठिइबंधे । जाणज्झवसाणाइं तदेगदेसो य अन्नाणि ॥ ५७ ॥
पल्लासंखियभागो जावं बिइयस्स होइ बिइयम्मि । आ उक्कस्सा एवं उवघाए वा वि अणुकड्ढि ॥५८॥

घाईणमिति–इह प्रायो ग्रन्थिदेशे वर्तमानस्याभव्यजीवस्य यो जघन्यस्थितिबन्धस्तस्मात् स्थितिवृद्धौ अनुकृष्टिरभिधीयमानाऽनुसर्तव्या। सातवेदनीयमनुजद्विकदेवद्विकतिर्यग्द्विकपञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहननप्रशस्तविहायोगतिस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रनीचैर्गोत्राणाम(२३)भव्यप्रायोग्यजघन्यबन्धादधोऽपि अनुसर्तव्या ।

गाथार्थः–घाईणं=घाती प्रकृतिओना, असुभ०फासे=तथा अशुभ वर्ण गंध रस अने स्पर्शना, जहन्नठिइबंधे=जघन्य स्थिति बन्धमां, जाणज्झवसाणाइं=जे अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानो छे, तदेगदेसो=तेनो एक देश, य=अने, अन्नाणि=अन्य, अनु०अध्यवसाय स्थानो पण द्वितीय स्थितिस्थानमां जाणवां. ५७। पल्लासंखियभागो जावं=ए प्रमाणे पल्योपमना असंख्यातमा भाग प्रमाण स्थितिस्थानो गये छते प्रथम स्थितिस्थानना अध्यवसायोनी अनुकृष्टि पूर्ण थाय. बिइयस्स=बीजा स्थितिस्थानना अनु०अध्यवसायोनी अनुकृष्टि, बिइयंमि होइ=(प्रथम स्थिति स्थाननी अनुकृष्टि पूर्ण थया पछीना) बीजा स्थानमां होय. आ उक्कसा=ए प्रमाणे उत्कृष्ट स्थिति स्थान सुधी कहेवुं. उवघाए वावि=उपघात नाम कर्मने विषे पण, अणुकड्ढि=अनुकृष्टि, एवं=ए प्रमाणे कहेवी. ५८

तत्र घातिनां× पञ्चविधज्ञानावरणनवविधदर्शनावरणमिथ्यात्वषोडशकषायनवनोकषायपञ्चविधान्तरायलक्षणानां कर्मणामशुभगन्धवर्णरसस्पर्शे (५४) च । अत्र षष्ठ्यर्थे सप्तमी । अशुभानां वर्णगन्धरसस्पर्शानां च कृष्णनीलदुरभिगन्धतिक्तकटुकगुरुकर्कशरूक्षशीतरूपाणां जघन्यस्थितिबन्धे यान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि तेषामेकदेशो द्वितीये स्थितिबन्धेऽनुवर्तते, अन्यानि च ×१भवन्ति। इदमुक्तं भवति—जघन्यस्थितिबन्धारंभे यान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि, तेषामसंख्येयतमं भागं मुक्त्वा शेषाणि सर्वाण्यपि द्वितीयस्थितिबन्धारंभे प्राप्यन्ते, अन्यानि च भवन्ति। द्वितीयस्थितिबन्धारंभे च यान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि,

---

×(य०उ० ३०) इह च वर्गे वर्गेऽनुकृष्टिस्तीव्रमन्दत्वानि च स्वस्थाने तुल्यानीति चत्वारो वर्गाः परिगृह्यन्ते—अपरावर्त्तमानाशुभप्रकृतिवर्गः, अपरावर्त्तमानशुभप्रकृतिवर्गः, परावर्त्तमानशुभप्रकृतिवर्गः, परावर्त्तमानाशुभप्रकृतिवर्गश्चेति। तत्र घातिप्रकृतय (४५) उपघातमशुभवर्णनवकं (५५) चेत्यपरावर्त्तमानाशुभप्रकृतिवर्गः(१)। पराघातबन्धनतनुसङ्घाताङ्गोपाङ्गसुवर्णाद्येकादशकतीर्थकरनिर्माणागुरुलघूच्छ्वासातपोद्योता(४६)अपरावर्त्तमानशुभप्रकृतिवर्गः (२) । सातवेदनीयस्थिरादिषट्कोच्चैर्गोत्रदेवद्विकमनुजद्विकपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रवज्रर्षभनाराचप्रशस्तविहायोगतयः(१६)परावर्त्तमानशुभप्रकृतिवर्गः (३) । असातस्थावरदशकनरकद्विकाप्रशस्तविहायोगत्याद्यजातिचतुष्टयानाद्यसंस्थानसंहननानि (२८) परावर्त्तमानाशुभप्रकृतिवर्गः (४) । तत्र प्रथमं वर्गमधिकृत्येदमभिधीयते—

×१ (य० उ० ३१) जघन्यस्थितिबन्धे यान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि तदेकदेशस्तदेकदेशप्रमाणान्यन्यानि द्वितीयस्थितिबन्धेऽधिकान्यायान्ति तावन्ति चासंख्येयं भागं मुक्त्वा द्वितीयस्थितिबन्धारम्भे प्राप्यन्त एव ।

यतमं भागं मुक्त्वा शेषाणि सर्वाण्यपि तृतीयस्थितिबन्धारंभे प्राप्यन्ते, अन्यानि च भवन्ति । तृतीयस्थितिबन्धारंभे च यान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि, तेषामसंख्येयतमं भागं मुक्त्वा शेषाणि सर्वाण्यपि चतुर्थस्थितिबन्धारंभे प्राप्यन्ते, अन्यानि च भवन्ति । एवं तावद्वाच्यं यावत्पल्योपमासंख्येयभागमात्राः स्थितयो गता भवन्ति । अत्र जघन्यस्थितिबन्धारंभभाविनामनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिः परिसमाप्ता। (यत्र च जघन्यस्थितिबन्धारम्भभाविनामनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिः परिसमाप्ता) ततोऽनन्तरमुपरितने स्थितिबन्धे द्वितीयस्थितिबन्धारंभभाविनामनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिः परिसमाप्तिमियर्ति। तथा चाह–'बिइयस्स होइ बिइयंमि' द्वितीयस्य स्थितिबन्धस्य संबन्धिनामनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिर्द्वितीये यत्र जघन्यस्थितिबन्धारंभभाविनामनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिः परिसमाप्ता ततोऽनन्तरे परिनिष्ठां याति । तृतीयस्थितिबन्धारंभभाविनां चानुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिस्ततोऽप्यनन्तरे परिसमाप्तिं याति । एवं तावद्वाच्यं यावदुक्तप्रकृतीनामात्मीयात्मीयोत्कृष्टा स्थितिर्भवति । तथा चाह–'आउक्कस्सा एवं' एवममुना प्रकारेण आ उत्कर्षादवगन्तव्यं । तथोपघातेऽप्येवमेवानुकृष्टिरभिधातव्या, यथा घातिप्रकृतीनामभिहिता । अनुकृष्टिरिति अनुकर्षणमनुकृष्टिरनुवर्तनमित्यर्थः ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

परघाउज्जोउस्सासायवधुवनाम तणुउवंगाणं । पडिलोमं सायस्स उ उक्कोसे जाणि समऊणे ॥ ५९ ॥
ताणि य अन्नाणेवं ठिइबंधो जा जहन्नगमसाए । हेट्ठुज्जोयसमेवं परित्तमाणीण उ सुभाणं ॥ ६० ॥

(य०उ० ३२) तदुक्तम्—"मोत्तुमसंखं भागं जहन्नठिइठाणगाण सेसाइं । गच्छंति उवरिमाए तदेक्कदेसेण अण्णाइं ॥१॥

परघेति–परघातोद्योतोच्छ्वासातपानां शुभवर्णाद्येकादशकागुरुलघुनिर्माणरूपाणां(९) ध्रुवनाम्नां । 'तणुउवंगाणं ति' इह तनुग्रहणेन शरीरसंघातबन्धनानि गृह्यन्ते । ततश्च शरीरपञ्चकसंघातपञ्चकबन्धनपञ्चदशकांगोपांगत्रयाणां चानुकृष्टिः प्रतिलोममभिधातव्या । तद्यथा–एतासां(४५) प्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिबन्धारंभे यान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि, तेषामसंख्येयं भागं मुक्त्वा शेषाणि सर्वाण्यपि एकसमयोनोत्कृष्टस्थितिबन्धारंभे प्राप्यन्ते, अन्यानि च भवन्ति । एकसमयोनोत्कृष्टस्थितिबन्धारंभे च यान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि, तेषामसंख्येयतमं भागं मुक्त्वा शेषाणि सर्वाण्यपि द्विसमयोनोत्कृष्टस्थितिबन्धारंभे प्राप्यन्ते, अन्यानि च भवन्ति । एवं तावद्वाच्यं यावत्पल्योपमासंख्येयभागमात्राः स्थितयोऽधोऽधोऽतिक्रान्ता भवन्ति । अत्रोत्कृष्टस्थितिबन्धारंभभाविनामनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानां स्थितिस्थाने स्थितिस्थानेऽसंख्येयासंख्येयभागमोचनेनानुकृष्टिः परिसमाप्ता । ततोऽनन्तरमधस्तने स्थितिस्थाने एकसमयोनोत्कृष्टस्थितिबन्धारंभभाविनामनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिः परिनिष्ठां याति । ततोऽप्यधस्तनतरे द्विसमयोनोत्कृष्टस्थितिबन्धारंभभाविनामनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिः परिसमा-

---

गाथार्थः–परघा०उवंगाणं=पराघात, उद्योत, उच्छ्वास, आतप, नामनी शुभ ध्रुवबन्धिनी (१३), पांच शरीर अने त्रण अंगोपांगनी पडिलोमं=प्रतिलोम (पश्चानुपूर्वीए) कहेवी. सायस्स उ=वळी शातावेदनीयना, उक्कोसे=उत्कृष्ट स्थिति स्थानमां, जाणि=जेटलां अनु०स्थानो, समऊणे=समयोन उत्कृष्टमां, ताणि य अन्नाणि=ते अने अन्य, एवं=ए प्रमाणे, असाए=अशाताना, ट्ठिइबंधो जा जहन्नगं=जघन्य स्थिति स्थान सुधी शातानी अनुकृष्टि कहेवी. हेट्ठुज्जोयसमं=तेथी नीचेना स्थितिस्थानोमां उद्योत नामनी जेम कहेवी. एवं=ए प्रमाणे, परित्तमाणीण उ सुभाणं=परावर्तमान शुभ प्रकृतिनी जाणवी. ५९-६०.

प्तिमियर्ति । एवं तावद्वाच्यं यावदुक्तप्रकृतीनां सर्वासामपि आत्मीया (आंत्मीया) जघन्या स्थितिर्भवति × ।

'सायस्सेत्यादि' सातस्योत्कृष्टां स्थितिं बध्नतो यान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि समयोनोत्कृष्टस्थितिबन्धारंभेऽपि तानि भवन्ति अन्यानि च । यानि समयोनोत्कृष्टस्थितिबन्धारंभे भवन्ति द्विसमयोनोत्कृष्टस्थितिबन्धारंभेऽपि तानि भवन्ति अन्यानि च । एवं तावद्वाच्यं यावदसातेऽसातस्य जघन्यः स्थितिबन्धः । किमुक्तं भवति ? यावत्प्रमाणाः स्थितयोऽसातस्य जघन्यानुभागबन्धप्रायोग्याः सातेन च सह परावर्त्य परावर्त्य बध्यन्ते, तावत्प्रमाणासु सातस्य स्थितिषु तानि चान्यानि चेत्येवंक्रमोऽनुसरणीयः । 'हेट्ठुज्जोयसमं ति' अधस्तादुद्योतसमं वक्तव्यं, यथा प्रागुद्योतस्याभिहितं तथात्रापि वक्तव्य-

× (य० उ० ३३) तीर्थकरनामातिदेशेनाग्रे वक्ष्यमाणमप्यत्र दृश्यं, "परघायबंधणतणू अंगसुवन्नाइ तित्थ निम्माणं । अगुरुलहूसासतिगं संघायं छयल सुभवग्गो ॥ १ ॥" इत्येवं षट्चत्वारिंशत्प्रकृतिसमुदायरूपस्यापरावर्त्तमानशुभप्रकृतिवर्गस्य परिगणनात्, तत्र च सामस्त्येनेहानुकृष्टेरभिधित्सितत्वात् । उक्ता द्वितीयवर्गेऽनुकृष्टिः । × १ (य० उ० ३४) अयमिह भावार्थः—सप्रतिपक्षाणां प्रकृतीनामन्तःकोटाकोट्यादीनि स्थितिस्थानानि स्थापनीयानि, अभव्यस्य हि जघन्यः स्थितिबन्धः सर्वस्तोकोऽप्यन्तःकोटीकोटिप्रमाणः, तस्मादारभ्य च प्रायोऽनुकृष्टिर्वक्तव्येति हेतोः । स्थापनायां च सातस्योपरिभागादारभ्याधोमुखमसातस्य चाधोभागादारभ्योर्ध्वमुखं सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाणाः स्थितयः परस्परमाक्रान्ताः स्थापयितव्याः । एतावत्यो हि स्थितयः परावर्त्य परावर्त्य बध्यन्ते, तत आक्रान्ताः स्थाप्याः । शेषास्तु सातस्याधोमुखा असातस्य चोर्ध्वमुखाः स्थाप्याः, यावत्पर्यन्तवर्त्तिनी निजनिजा स्थितिः । एताश्चान्तराले प्रतिपक्षप्रकृतिबन्धाभावाच्छुद्धा इत्युच्यन्ते । ततोऽसातस्य जघन्यस्थितिबन्धं यावदधोमुखतया सातस्य स्थितयः प्रतिपक्षाक्रान्ताः सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाणा लभ्यन्ते । तत एतावत्प्रमाणासु सातस्य स्थितिषु तानि चान्यानि चेत्येवं क्रमोऽनुसरणीयः ।

मित्यर्थः । तद्यथा–असातस्य जघन्यस्थितिबन्धादधस्तने स्थितिस्थाने यान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि तानि कानिचिदुपरितनस्थितिस्थानसत्कानि, कानिचिदन्यानि । तस्मादप्यधस्तने स्थितिस्थाने यानि अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि तानि कानिचित्प्राक्तनस्थितिस्थानसत्कानि, कानिचिदन्यानि । अनेन च क्रमेणाधोमुखं तावन्नेयं यावत्पल्योपमासंख्येयभागमात्राः स्थितयो गता भवन्ति । तत्र चासातजघन्यस्थितिबन्धतुल्यस्थितिस्थानसत्कानामनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिः परिसमाप्तिं याति । एतदुक्तं भवति–असातजघन्यस्थितिबन्धतुल्यस्थितिस्थानसत्कानामनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामधोऽधएकैकस्मिन् स्थितिस्थानेऽसंख्येये भागे व्यवच्छिद्यमाने पल्योपमासंख्येयभागमात्रासु स्थितिष्वतिक्रान्तासु सर्वात्मना परिसमाप्तिर्भवतीति । ततोऽसातजघन्यबन्धतुल्यस्थितिस्थानादधस्तनस्थितिस्थानसत्कानामनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिः पल्योपमासंख्येयभागमात्रादधःस्थितौ निष्ठामेति । एवं तावद्वाच्यं यावत्सातस्य जघन्या स्थितिः । 'एवं परित्तमाणीण उ सुभाणं' यथा सातवेदनीयस्योक्तं, तथा सर्वासां परावर्तमानप्रकृतीनां शुभानां मनुजद्विकदेवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहननप्रशस्तविहायोगतिस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्ररूपाणां पञ्चदशसंख्यानां नामग्राहमनुकृष्टिरभिधातव्या इति ॥ ५९–६० ॥

इदानीमसातस्योच्यते—

जाणि असायजहन्ने, उदहिपुहुत्तं ति ताणि अण्णाणि। आवरणसमुप्पेवं, परित्तमाणीणमसुभाणं ॥ ६१ ॥

गाथार्थ—असायजहन्ने=अशाताना जघन्य स्थितिबन्धमां, जाणि=जे अनु०अध्यवसायो छे त्यांथी, उदहिपुहुत्तंति=शत पृथ-

जाणि त्ति–असातस्य जघन्यस्थितिबन्धारंभे यान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि तानि समयाधिकजघन्यस्थितिबन्धारंभेऽपि भवन्ति, अन्यानि च । यानि समयाधिकजघन्यस्थितिबन्धारंभेऽनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि तानि द्विसमयाधिकजघन्यस्थितिबन्धारंभेऽपि भवन्ति, अन्यानि च । एवं तावद्वाच्यं यावत्सागरोपमशतपृथक्त्वं भवति । यावन्मात्रासु सातवेदनीयस्य स्थितिषु तानि चान्यानि चेत्येवंक्रमोऽनुकृष्टेरभिहितस्तावत्प्रमाणास्वेवासातवेदनीयस्थितिष्वपि जघन्यस्थितेरारभ्य तानि चान्यानि चेत्येवमनुकृष्टिरभिधातव्या । एता एव च स्थितयः सर्वजघन्यानुभागबन्धप्रायोग्याः । यत एतावत्यः स्थितयः सातात्परावृत्य परावृत्य बध्यन्ते । परावर्तमानश्च प्रायो मन्दपरिणामो भवति । तत एतासु जघन्यानुभागबन्धसंभवः । इत ऊर्ध्वं त्वसातमेव केवलं बध्नाति । तदपि च तीव्रतरेण परिणामेन । ततो न तत्र जघन्यानुभागबन्धसंभव इति । 'आवरणसमं उप्पिति' तत उपरितनीनां स्थितीनां यथा ज्ञानावरणीयादेरुक्तं तदेकदेशोऽन्यानि चेति तथैवाभिधातव्यं । तद्यथा–असातस्य जघन्यानुभागबन्धप्रायोग्यानां स्थितीनां या चरमा स्थितिस्तद्बन्धारंभे यान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि, तेषामेकदेशस्तदुपरितनस्थितिबन्धारंभेऽनुवर्तते, अन्यानि च भवन्ति । ततोऽप्युपरितनस्थितिबन्धारंभे प्राक्तनस्थितिस्थानसत्कानुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामेकदेशोऽनुवर्तते, अन्यानि च भवन्ति । एवं तावद्वाच्यं यावत्पल्योपमासंख्येयभागमात्राः स्थितयो गता भवन्ति । अत्र जघन्यानुभागबन्धप्रायोग्यचरमस्थितिसत्कानुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिः परिसमाप्तिमेति । ततोऽप्युपरितन-

क्त्व सागरोपम प्रमाण स्थितिस्थानो सुधी, ताणि अन्नाणि=ते सर्व अने अन्य ए क्रमे अनुकृष्टि जाणवी. आवरणसमुप्पेवं=त्यांथी उपर ज्ञानावरण समान अनुकृष्टि. ए प्रमाणे असुभाणं=अशुभ, परित्तमाणीणं=परावर्तमान प्रकृतिओनी अनुकृष्टि जाणवी. ६१

स्थितिबन्धे जघन्यानुभागबन्धप्रायोग्यस्थित्यनन्तरस्थितिसत्कानुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिः परिसमाप्तिं याति। एवं तावद्वाच्यं यावदसातस्योत्कृष्टा स्थितिर्भवति। 'एवं परित्तमाणीणमसुभाणं' यथाऽसातवेदनीयस्योक्तं एवं शेषाणामपि परावर्तमानप्रकृतीनामशुभानां नरकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवर्जशेषजातिचतुष्टयप्रथमवर्जसंस्थान(पँञ्चक)प्रथमवर्जसंहनना(नपँञ्चका) प्रशस्तविहायोगतिस्थावरसूक्ष्मसाधारणापर्याप्तास्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेययशःकीर्तिरूपाणां (२७) सप्तविंशतिसंख्यानां प्रत्येकं नामग्राहमनुकृष्टिरभिधातव्या। इति ॥ ६१ ॥

इदानीं तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्राणामनुकृष्टिमभिधातुकाम आह—

सेकाले सम्मत्तं, पडिवज्जंतस्स सत्तमखिईए। जो ठिइबंधो हस्सो, इत्तो आवरणतुल्लो य ॥ ६२ ॥

जा अभवियपाउग्गा, उप्पिमसायसमया उ आ(जा) जेट्ठा। एसा तिरियगतिदुगे नीयागोए य अणुकड्ढी॥६३॥

से त्ति—सप्तमपृथिव्यां वर्तमानस्य नारकस्य 'सेकाले' अनन्तरसमये सम्यक्त्वं प्रतिपत्तु(प्राप्तु)कामस्य यो ह्रस्वो जघन्यः स्थितिबन्ध इत ऊर्ध्वं स्थितिबन्धोऽनुकृष्टिमधिकृत्यावरणतुल्यो (ज्ञानावरणतुल्यो) ज्ञातव्यः। स च तावद्यावदभव्यप्रायोग्या जघन्या स्थितिः। तत्र तिर्यग्गतिमधिकृत्य भावना क्रियते—सप्तमपृथिव्यां वर्तमानस्य नारकस्य सम्यक्त्वं प्रतिपत्तुकामस्य तिर्य-

---

गाथार्थ—तिरियगतिदुगे=तिर्यग्द्विक, नीयागोए य=अने नीचगोत्रनी, एसा=आ, अणुकड्ढी=अनुकृष्टि—से काले=जे अनन्तर समये, सम्मत्तं पडिवज्जंतस्स=सम्यक्त्व प्राप्त करनार, सत्तमखिईए=सप्तम पृथ्वीना नारकीनो, जो ठिइबंधो हस्सो=जे जघन्य स्थितिबंध, इत्तो=त्यांथी, जा अभवियपाउग्गा=अभव्य प्रायोग्य जघन्य स्थितिबंध सुधी, आवरणतुल्ला य=ज्ञानावरणनी जेम अनुकृष्टि कहीने, उप्पि=तेथी उपर, असायसमया उ आ जेट्ठा=उत्कृष्ट स्थिति सुधी अशातानी पेठे अनुकृष्टि कहेवी. ६२, ६३.

ग्गतेर्जघन्यां स्थितिं बध्नतो यान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि, तेषामसंख्येयतमं भागं मुक्त्वाऽन्यानि सर्वाण्यपि द्वितीयस्थितिबन्धारंभेऽनुवर्तन्ते, अन्यानि च भवन्ति । द्वितीयां च स्थितिं बध्नतो यानि अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि, तेषामसंख्येयतमं भागं मुक्त्वाऽन्यानि सर्वाण्यपि तृतीयस्थितिबन्धारंभेऽनुवर्तन्ते, अन्यानि च भवन्ति । एवं तावद्वाच्यं यावत्पल्योपमासंख्येयभागमात्राः स्थितयो गता भवन्ति। अत्र जघन्यस्थितिसत्कानुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिः परिसमाप्तिमियर्ति । तत उपरितनस्थितिबन्धारंभे द्वितीयस्थितिस्थानसत्कानुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिः परिसमाप्तिं याति । ततोऽप्युपरितनस्थितिबन्धारंभे तृतीयस्थितिसत्कानुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिः परिसमाप्तिमेति । एवं तावद्वाच्यं यावदभव्यप्रायोग्यो जघन्यस्थितिबन्धः । 'उप्पिं असायेति' तत उपरिष्टादभव्यप्रायोग्यजघन्यस्थितिबन्धादारभ्येत्यर्थः । असातेन समता तुल्यता ज्ञातव्या । 'आ जेट्ठ त्ति' यावज्ज्येष्ठोत्कृष्टा स्थितिः । एतदुक्तं भवति—अभव्यप्रायोग्यां जघन्यां स्थितिं बध्नतो यानि अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि तानि तत उपरितनस्थितौ सर्वाणि भवन्ति, अन्यानि च । तस्यामपि यानि अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि तानि(तत)उपरितनस्थितौ सर्वाणि भवन्ति,अन्यानि च । एवं तावद्वाच्यं यावत्सागरोपमशतपृथक्त्वं । एताश्च प्रायोऽभव्यप्रायोग्यजघन्यानुभागबन्धविषयाः स्थितयः। एता हि मनुष्यगतिरूपया प्रतिपक्षप्रकृत्या सह परावृत्य परावृत्य बध्यन्ते । परावृत्य बन्धे च प्रायः परिणामो मन्द उपजायते । तत एता जघन्यानुभागबन्धविषयाः। एतासां चरमस्थितौ यान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि तेषामसंख्येयं भागं मुक्त्वा शेषाणि सर्वाण्यपि तदुपरितनस्थितिबन्धारंभेऽनुवर्तन्ते,

---

× (य० उ० ३५) तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्राणां हि स्थापनायां स्वप्रतिपक्षप्रकृतिजघन्यस्थितिबन्धादभव्यप्रायोग्याज्जघन्यतरः स्थितिबन्धः स्थापनीयः । ततोऽभव्यप्रायोग्यजघन्यस्थितिं यावज्ज्ञानावरणतुल्यता द्रष्टव्येत्यर्थः ।

अन्यानि च भवन्ति। तत्रापि यानि अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि, तेषामसंख्येयं भागं मुक्त्वा शेषाणि सर्वाण्यपि तत उपरितनस्थितिबन्धा(बंधे)रंभेऽनुवर्तन्ते, अन्यानि च भवन्ति। एवं तावद्वाच्यं यावत्पल्योपमासंख्येयभागमात्राः स्थितयो गता भवन्ति। अत्र जघन्यानुभागबन्धविषयचरमस्थितिसत्कानुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिः परिसमाप्ता। तत उपरितने स्थितिबन्धे जघन्यानुभागबन्धविषयचरमस्थित्यनन्तरस्थितिसत्कानुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिः परिसमाप्तिं याति। एवं तावद्वाच्यं यावदुत्कृष्टा स्थितिः। 'एसातिरियेति' एषाऽनन्तरोक्ताऽनुकृष्टिः तिर्यग्गतिद्विके तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीलक्षणे नीचैर्गोत्रे च द्रष्टव्या। तत्र यथा तिर्यग्गतौ भाविता तथा तिर्यगानुपूर्व्यां नीचैर्गोत्रे च स्वयमेव भावनीयेति।। ६२–६३ ॥

संप्रति त्रसादिचतुष्कस्यानुकृष्टिमभिधातुकाम आह—

तसबायरपज्जत्तगपत्तेयगाण परघायतुल्लाउ। जाव ट्ठारसकोडाकोडी हेट्ठा य साएणं ॥ ६४ ॥

तस त्ति–त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकनाम्नामनुकृष्टिः पराघाततुल्या पराघातस्येव द्रष्टव्या। सा चोपरितनात् स्थितिस्थानादारभ्याधोऽधोऽवतरणेन यावदधस्तादष्टादशकोटीकोट्यः सागरोपमाणां तिष्ठन्ति। ततोऽधस्तात् सातेन तुल्यानुकृष्टिरभिधातव्या। तत्र त्रसनाम्नो भाव्यते–तत्र त्रसनाम्न उत्कृष्टस्थितिबन्धारंभे यान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि तेषामसंख्येयं भागं मुक्त्वा शेषाणि सर्वाण्यपि समयोनोत्कृष्टस्थितिबन्धारंभेऽनुवर्तन्ते, अन्यानि च भवन्ति।समयोनोत्कृष्टस्थितिबन्धारंभेऽपि च यान्यनुभाग(यांन्यनुवर्तन्ते)

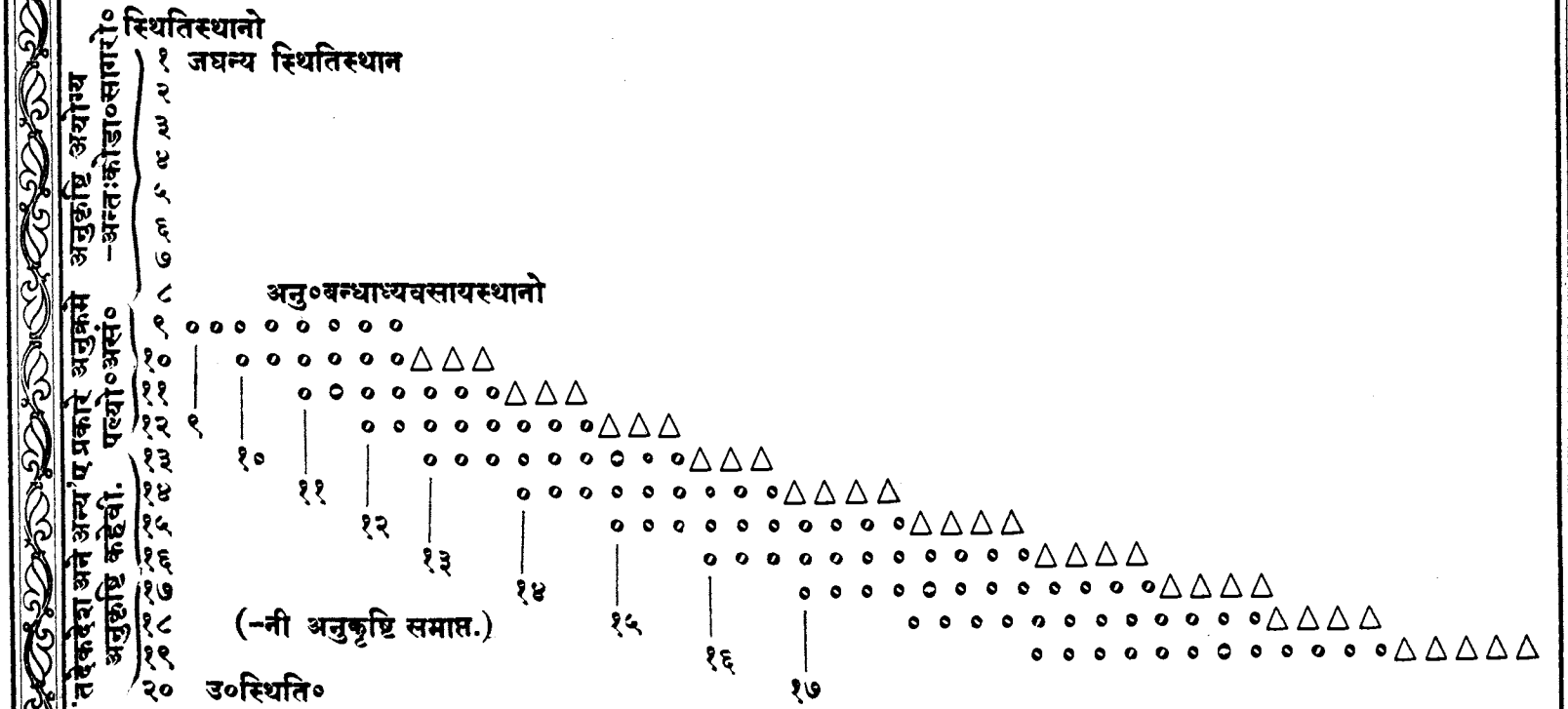
गाथार्थ—तस०पत्तेयगाण=त्रस, बादर, पर्याप्त अने प्रत्येकनी, जाव अट्ठारस कोडाकोडी=उत्कृष्टथी १८ कोडाकोडी सुधी, परघायतुल्लाउ=पराघात तुल्य अनुकृष्टि कहेवी. हेट्ठा य साएणं=१८ कोडाकोडीथी नीचेनी स्थितिमां शातानी तुल्य कहेवी. ६४

बन्धाध्यवसायस्थानानि तेषामसंख्येयं भागं मुक्त्वा शेषाणि सर्वाण्यपि द्वि समयोनोत्कृष्टस्थितिबन्धारंभेऽपि अनुवर्तन्ते,अन्यानि च भवन्ति। एवं तावद्वाच्यं यावत्पल्योपमासंख्येयभागमात्राः स्थितयो गता भवन्ति। अत्रोत्कृष्टस्थितिसत्कानुभाग बन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिःपरिसमाप्ता।ततोऽधस्तनेस्थितिस्थाने समयोनोत्कृष्टस्थितिसत्कानुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिःपरिसमाप्तिं याति।ततोऽप्यधस्तने स्थितिस्थाने द्विसमयोनोत्कृष्टस्थितिसत्कानुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामनुकृष्टिः परिसमाप्तिमेति।एवमधोऽधोऽवतरणेन तावद्वाच्यं यावदधस्तादष्टादशसागरोपमकोटीकोट्यस्तिष्ठन्ति। ततोऽष्टादशसागरोपमकोटीकोटीचरमस्थितौ यान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि तान्यधस्तनस्थितिबन्धारंभे सर्वाण्यपि भवन्ति, अन्यानि च। यानि चाधस्तनस्थितिबन्धारंभेऽनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि तानि ततोऽप्यधस्तनस्थितिबन्धारंभे सर्वाण्यपि भवन्ति, अन्यानि च। एवं तावद्वाच्यं यावदभव्यप्रायोग्यजधन्यानुभागबन्धविषयस्थावरनामसत्कस्थितिप्रमाणाः स्थितयो गता भवन्ति। ततोऽनन्तरमधस्तने स्थितिस्थाने प्राक्तनानन्तरस्थितिस्थानसत्कानामनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामसंख्येयं भागं मुक्त्वा सर्वाण्यपि तान्यनुवर्तन्ते,अन्यानि च भवन्ति। ततोऽप्यधस्तनतरे स्थितिबन्धे प्राक्तनानन्तरस्थितिस्थानसत्कानामनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानामसंख्येयं भागं मुक्त्वा शेषाणि तानि सर्वाण्यप्यनुवर्तन्ते, अन्यानि च भवन्ति । एवं तावद्वाच्यं यावत्पल्योपमासंख्येयभागमात्राः स्थितयो गता भवन्ति । अत्र जधन्यानुभागबन्धविषयस्थावरनामसत्कस्थितिप्रमाणतयाऽभिहितानां (स्थितीनां) प्रथमस्थितेर्यान्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि तेषामनुकृष्टिः परिसमाप्ता । ततोऽधस्तने स्थितिस्थाने द्वितीयस्थितिस्थानसत्कानुभागबन्धाध्यवसायस्थानामनुकृष्टिः परिनिष्ठामेति । एवं तावद्वाच्यं यावज्जघन्या स्थितिः । एवं बादरपर्याप्तप्रत्येकनाम्नामपि भावना कार्या ॥ ६४ ॥

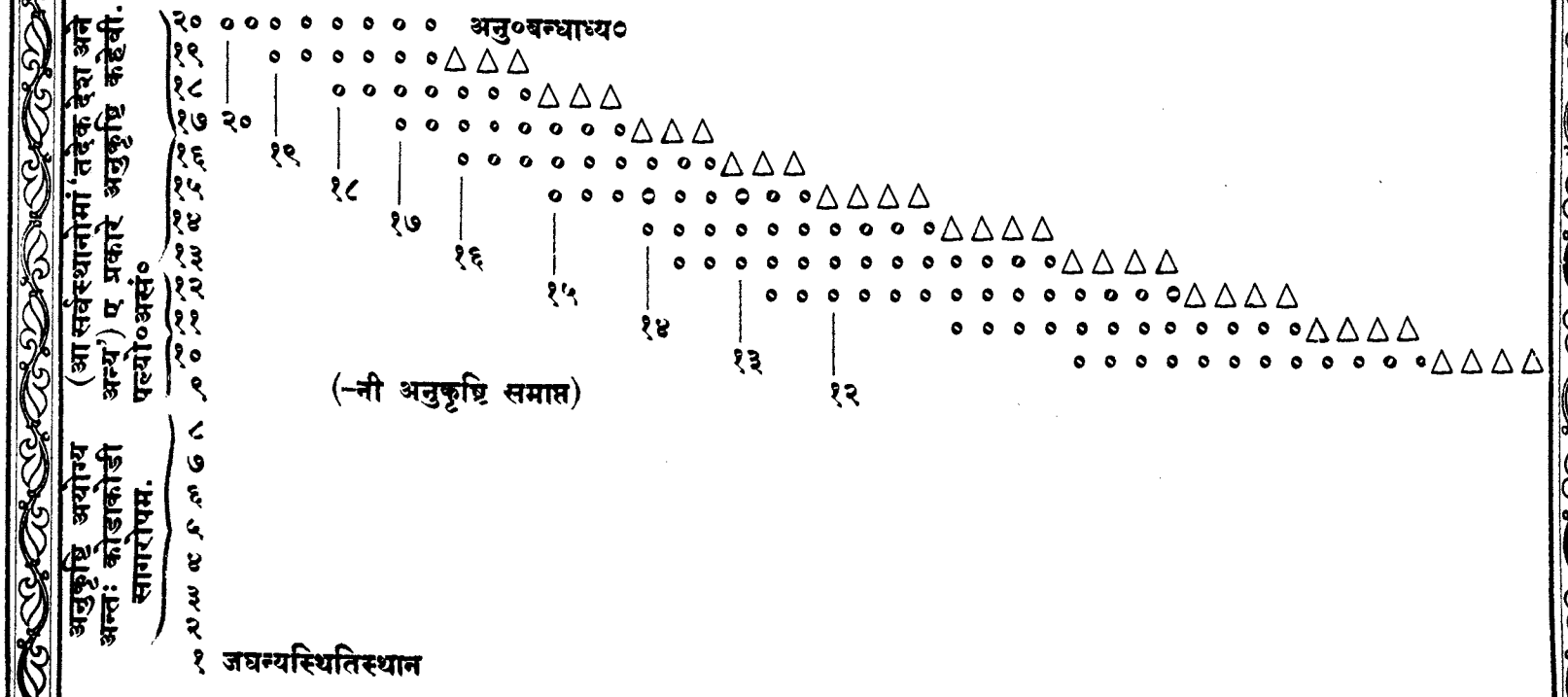
असत्कल्पनाद्वारा अनुकृष्टिनी समजुती.

(१) ५५ अपरा० प्रकृतिओमां कोइकनी ३० कोडाकोडीसागरोपम प्रमाण, कोइकनी २० को०को० सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति छे, ते अहीं असत्क० १ थी २०ना आंक वडे जणावी छे. १ नुं जघन्य स्थितिस्थान अने २० नुं उत्कृष्ट स्थितिस्थान. (२) अभव्य प्रायोग्य जघन्यस्थितिस्थान (अन्तःकोडाकोडी)थी नीचेनां स्थितिस्थानो अनुकृष्टि अयोग्य छे ते जणावतां १ थी ८ सुधीनां अंको जाणवां. (३) ९मा अङ्कथी अनुकृष्टिनी शरुआत थायछे. अङ्कनी सामे मूकेलां (०) शून्योने तथा (△) त्रिकोणने अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानो रूप समजवां. शून्योथी मूलनां अनु०स्थानो अने △ त्रिकोणथी मूळ उपरांतनां स्थानो जणाव्यां छे. (४) पल्योपमना असंख्यातमा भागरूप स्थानो ४ जाणवां. (५) प्रत्येक स्थितिस्थाने (हीनाधिक) असंख्यलोकाकाश प्रदेश प्रमाण अनु०स्थानो छे. अहीं ८ शून्योवडे तेटलां अनु०स्थानो जाणवां. (६) अहीं ९ना अङ्कथी अनुकृष्टिनी शरुआत गणवी. त्यां जेटलां अनु०स्थानो छे, तेनो 'तदेक देश अने अन्य' एटलां अनु०स्थानो १०मा स्थानमां होय. 'तदेकदेश' एटले पूर्वस्थानना अध्यवसायोनो असंख्यातमो भाग मूकीने सर्व अने बीजां पण. ९ मा स्थितिस्थानमां ८ अनु०स्थानो छे तेमांनाज १०मा स्थितिस्थानमां ('तदेकदेश'रूप) ६ स्थानो छे ते जणाववा ८ शून्योमांथी प्रथमनी २ शून्यो खाली मूकी बाकीनी ६ शून्योनी नीचे फरीथी ६ शून्यो मूकी छे. एटले पूर्व स्थितिस्थानमांना ६ अनु०स्थानोनी पछीना स्थिति स्थानमां अनुकृष्टि जाणवी. तथा △ △ △ त्रण त्रिकोण वडे 'अन्य' बीजा नवीन अनु०स्थानो जणाव्यां. ११ मा स्थितिस्थानमां 'तदेक देश अने अन्य' एटले १०मा स्थितिस्थानना ९ अनु०स्थानोमांना प्रथमना २ सिवायना ७ अने अन्य त्रण नवीन मळी कुल १० अनु०स्थानो छे. १२मा स्थि०स्थानमां ११मा स्थितिस्थानमांना 'तदेकदेश' रूप ८ अने 'अन्यरूप ३ त्रिकोण मळी ११ अनु०स्थानो छे. अहीं ९मा स्थितिस्थानना अनु०स्थाननी अनुकृष्टि समाप्त थइ. कारणके ९मा स्थितिस्थानना ८ अनु०स्थानोमांना अहीं २ स्थानो छे. पण १३ मा स्थितिस्थानमां तेमांनु एक पण अध्यवसायस्थान नथी. अहीं ९मा स्थाननी अनुकृष्टि समाप्त थई ते जणाववा ९मा स्थानना अध्य० नीचे सीधी लीटी १२मा स्थितिस्थान सुधी. तेवीज रीते १०मानी १३मा स्थाने. ए प्रमाणे विचारवुं. (७) ४६ अपरा० शुभ प्रकृतिओमां उत्कृष्ट स्थितिस्थानथी आरंभी जघन्य सुधी एज रीते समजवुं.

५५ अपरावर्तमान अशुभ प्रकृतिओनी अनुकृष्टिनो यन्त्र.

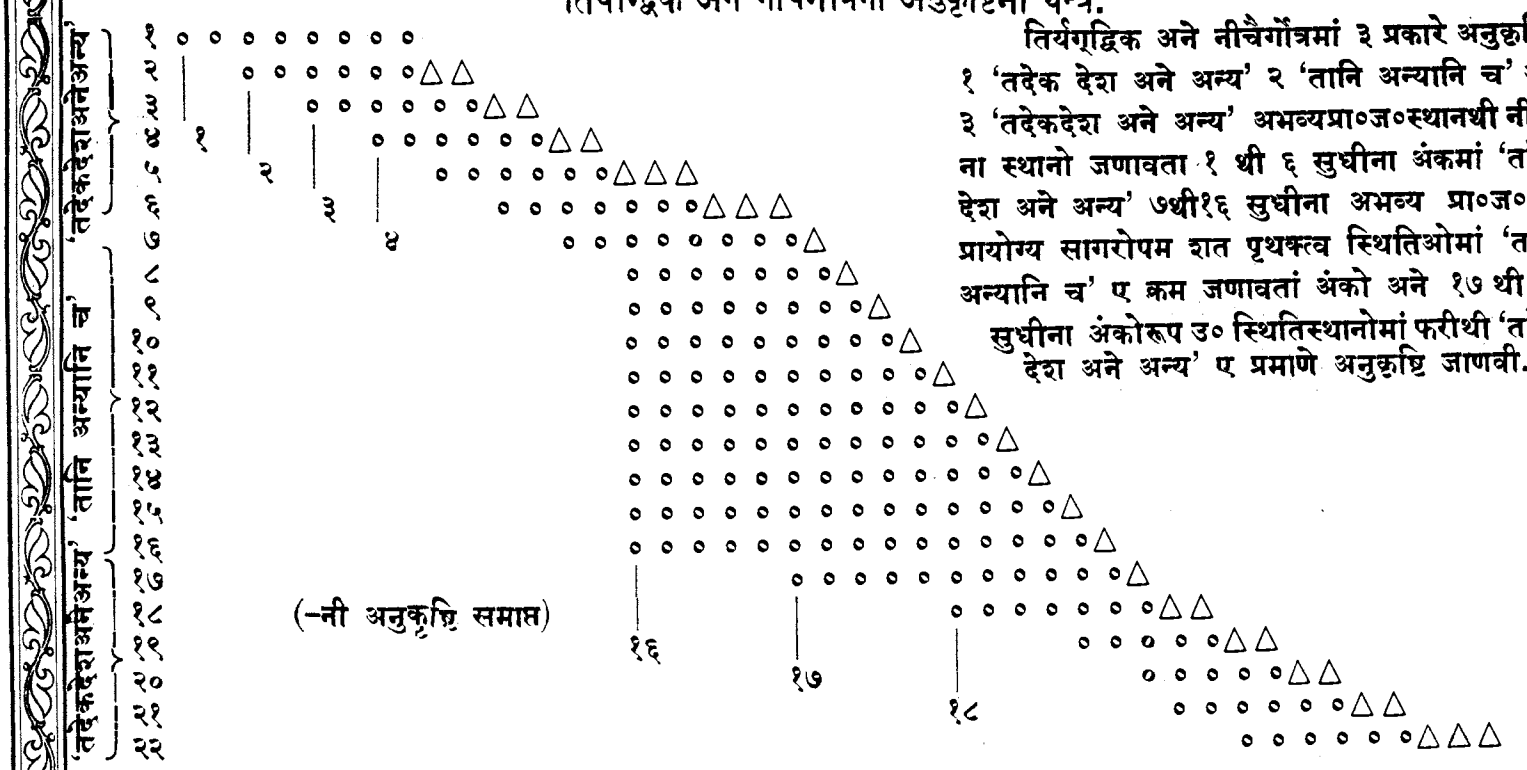


४६ अपरावर्तमान शुभ प्रकृतिओनी अनुकृष्टिनो यन्त्र

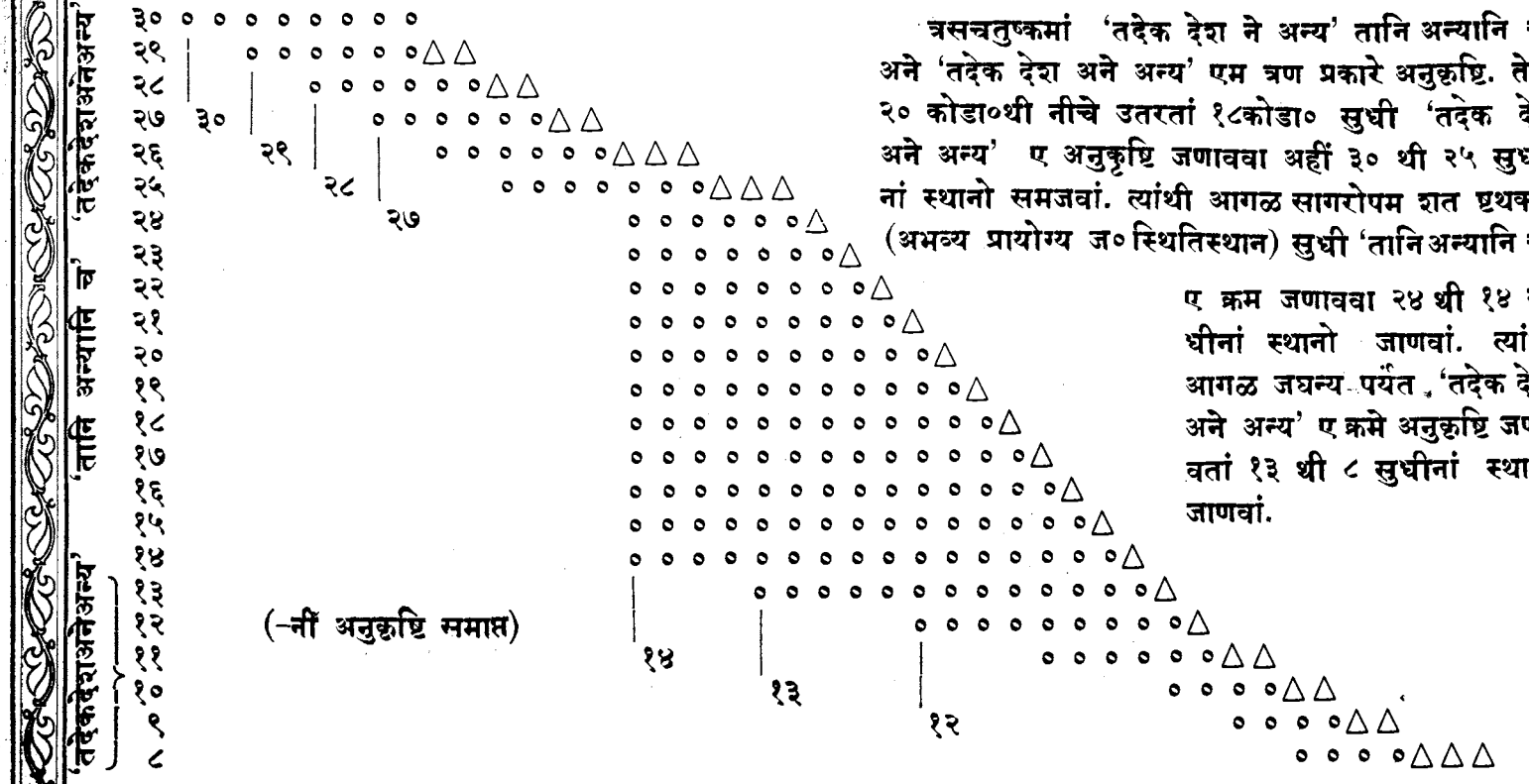


तिर्यग्द्विक अने नीचैर्गोत्रनी अनुकृष्टिनो यन्त्र.

तिर्यग्द्विक अने नीचैर्गोत्रमां ३ प्रकारे अनुकृष्टि– १ 'तदेक देश अने अन्य' २ 'तानि अन्यानि च' अने ३ 'तदेकदेश अने अन्य' अभव्यप्रा०ज०स्थानथी नीचेना स्थानो जणावता १ थी ६ सुधीना अंकमां 'तदेक देश अने अन्य' ७थी१६ सुधीना अभव्य प्रा०ज०अ० प्रायोग्य सागरोपम शत पृथक्त्व स्थितिओमां 'तानि अन्यानि च' ए क्रम जणावतां अंको अने १७ थी २२ सुधीना अंकोरूप उ० स्थितिस्थानोमां फरीथी 'तदेक देश अने अन्य' ए प्रमाणे अनुकृष्टि जाणवी.

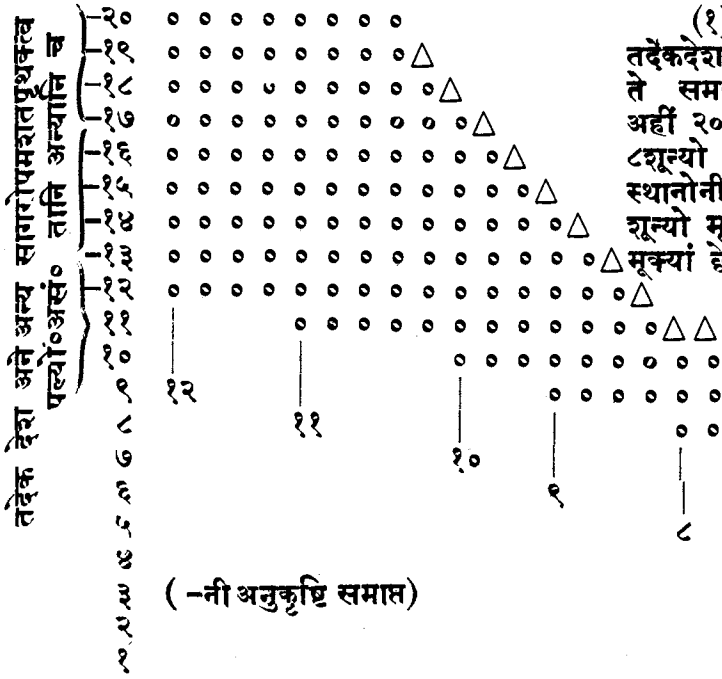


त्रसचतुष्कनी अनुकृष्टिनो यन्त्र.



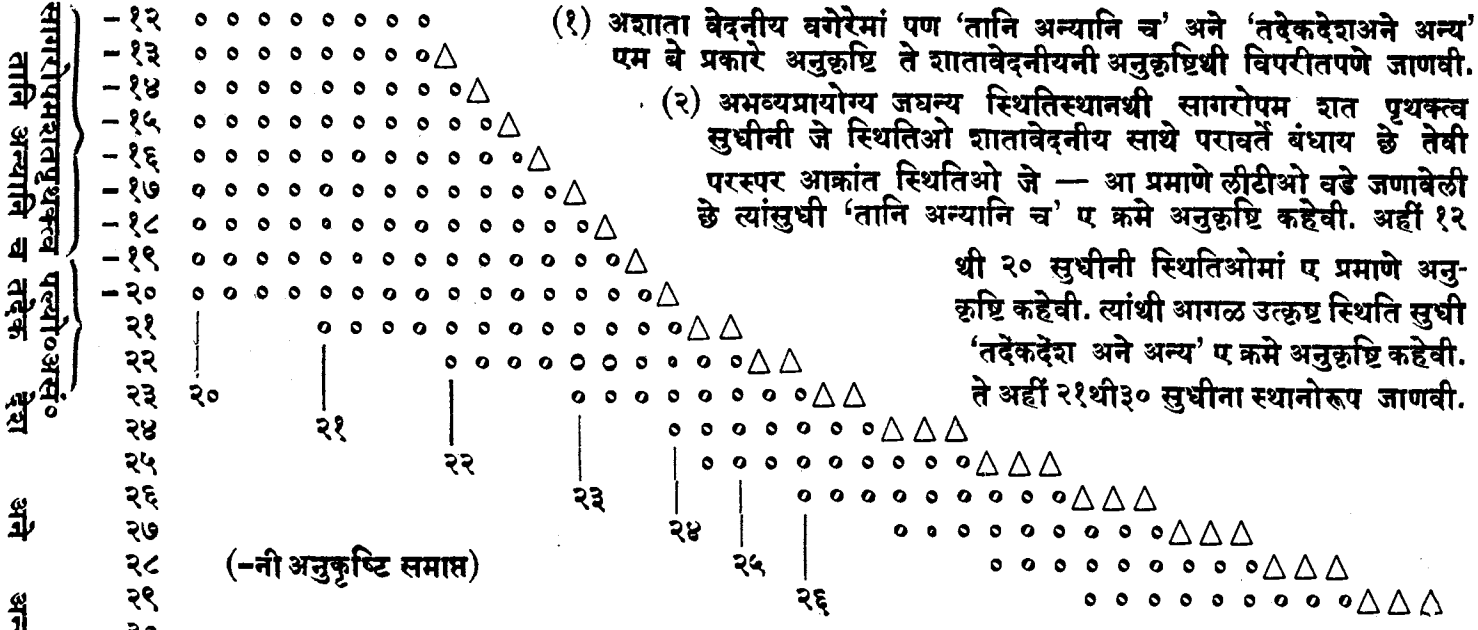
त्रसचतुष्कमां 'तदेक देश ने अन्य' तानि अन्यानि च' अने 'तदेक देश अने अन्य' एम त्रण प्रकारे अनुकृष्टि. तेमां २० कोडा०थी नीचे उतरतां १८कोडा० सुधी 'तदेक देश अने अन्य' ए अनुकृष्टि जणाववा अहीं ३० थी २५ सुधीनां स्थानो समजवां. त्यांथी आगळ सागरोपम शत पृथक्त्व (अभव्य प्रायोग्य ज० स्थितिस्थान) सुधी 'तानि अन्यानि च' ए क्रम जणाववा २४ थी १४ सुधीनां स्थानो जाणवां. त्यांथी आगळ जघन्य पर्यंत 'तदेक देश अने अन्य' ए क्रमे अनुकृष्टि जणावतां १३ थी ८ सुधीनां स्थानो जाणवां.

शातावेदनीयादि १६ परावर्तमान शुभ प्रकृतिओनी अनुकृष्टिनो यंत्र.



(१) शातावेदनीयमां बे प्रकारनी अनुकृष्टि–'तानी अन्यानि च'अने तदेकदेश अने अन्य.' (२) शाताना उत्कृष्ट स्थितिस्थानमां जे अनु०स्थानो ते समयोन उत्कृष्ट स्थितिस्थानमां पण होय अने अन्य पण होय. अहीं २०नो अंक शातानी उत्कृष्ट स्थिति जणावे छे अने तेनी सामे मूकेलां ८शून्यो अनु०स्थानो जणावे छे. १९मा स्थितिस्थानमां ते सर्व अनु०स्थानोनी अनुकृष्टि जणाववा सारु २०नी ८ शून्यो नीचे १९ नी सामे ८ शून्यो मूकी छे. अने 'अन्य' जणाववा माटे ८ शून्यो पछी बे त्रिकोण मूक्यां छे. १८मा स्थानमां पण एज रीते 'ते सर्व' जणाववा १० शून्यो अने 'अन्य' जणाववा बे त्रिकोण मूक्या छे. ए प्रमाणे सागरोपम शतपृथक्त्व सुधी 'तानि अन्यानि च' ए क्रम छे ते अहीं १२ना अंक सुधी समजवो. (अभव्य प्रायोग्य अशाताना जघन्य स्थिति बन्ध सुधी) त्यांथी आगळ 'तदेकदेश अने अन्य' ए प्रमाणे अनुकृष्टि शाताना जघन्य स्थितिबन्ध सुधी जाणवी. तेनी समजुती पूर्वे कहेल अपरा० अशुभनी अनुकृष्टिवत् जाणवी.

अशातावेदनीयादि २८ परावर्तमान अशुभप्रकृतिओनी अनुकृष्टिनो यंत्र.



(१) अशाता वेदनीय वगेरेमां पण 'तानि अन्यानि च' अने 'तदेकदेशअने अन्य' एम बे प्रकारे अनुकृष्टि ते शातावेदनीयनी अनुकृष्टिथी विपरीतपणे जाणवी.

(२) अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थितिस्थानथी सागरोपम शत पृथक्त्व सुधीनी जे स्थितिओ शातावेदनीय साथे परावर्ते बंधाय छे तेवी परस्पर आक्रांत स्थितिओ जे — आ प्रमाणे लीटीओ वडे जणावेली छे त्यांसुधी 'तानि अन्यानि च' ए क्रमे अनुकृष्टि कहेवी. अहीं १२ थी २० सुधीनी स्थितिओमां ए प्रमाणे अनुकृष्टि कहेवी. त्यांथी आगळ उत्कृष्ट स्थिति सुधी 'तदेकदेश अने अन्य' ए क्रमे अनुकृष्टि कहेवी. ते अहीं २१थी३० सुधीना स्थानोरूप जाणवी.

तणुतुल्ला तित्थयरे, अणुकड्ढी तिव्वमंदया एत्तो । सव्वपगईण नेया, जहन्नयाई अणंतगुणा ॥ ६५ ॥

तणुतुल्ल त्ति–तीर्थकरनाम्नि अनुकृष्टिर्यथा शरीरनाम्नि प्रागभिहिता तथा द्रष्टव्या । इत ऊर्ध्वमनुभागानां तीव्रमन्दता द्रष्टव्या। तत्र सर्वासां प्रकृतीनामात्मीयात्मीयजघन्यानुभागबन्धादारभ्य यावदुत्कृष्टोऽनुभागबन्धस्तावत् स्थिबिन्धे स्थितिबन्धेऽनन्तगुणा तीव्रमन्दता वक्तव्या यथोत्तरमनन्तगुणोऽनुभागो वक्तव्य इत्यर्थः । तत्राप्यशुभप्रकृतीनां जघन्यस्थितेरारभ्योर्ध्वमुखं क्रमेणानन्तगुणो वक्तव्यः । शुभप्रकृतीनां तूत्कृष्टस्थितेरारभ्याधोमुखं यावज्जघन्या स्थितिः । तदियं सामान्यतस्तीव्रमन्दताऽभिहिता, संप्रति विशेषत उच्यते–तत्र घातिकर्मणामप्रशस्तवर्णगन्धरसस्पर्शानामुपघातस्य च जघन्यायां स्थितौ जघन्योऽनुभागः सर्वस्तोकः । ततो द्वितीयस्यां स्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽपि तृतीयस्यां स्थितौ जघन्यानुभागोऽनन्तगुणः । एवं तावद्वाच्यं यावन्निवर्तनकंडकं भवति । निवर्तनकंडकं नाम यत्र जघन्यस्थितिबन्धारंभभाविनामनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानानुकृष्टिः परिसमाप्ता तत्पर्यन्ता मूलत आरभ्य स्थितयः पल्योपमासंख्येयभागमात्रप्रमाणा उच्यन्ते । इति ॥६५॥

निव्वत्तणा उ एक्किक्कस्स, हेट्ठोवरिं तु जेट्ठियरे । चरमठिईणुक्कोसो, परित्तमाणीण उ विसेसो ॥६६॥

× (य० उ० ३६) तदुक्तं—" कंडं णिव्वत्तणकंडगं च पलियस्ससंखंसो त्ति "

गाथार्थ—तित्थयरे=तीर्थंकर नामकर्मने विषे, तणुतुल्ला=शरीरनामकर्मनी जेम, अणुकड्ढी=अनुकृष्टि कहेवी. एत्तो=हवे, तिव्वमंदया =तीव्रमन्दता कहे छे. सव्वपगईण=सर्व प्रकृतिओनी, जहन्नयाई=जघन्यादि स्थितिओमां, अणंतगुणा=अनन्तगुणे अनुभाग होय छे. ६५ निव्वत्तणा उ=निवर्तनकंडकथी, एक्किक्कस्स हेट्ठोवरिंतु=बळी एक उपरनी अने एक नीचेनी स्थितिमां, जेट्ठियरे=उत्कृष्ट अने जघन्य

निव्वत्तण त्ति–ततो निवर्तनकंडकस्य चरमस्थितौ जघन्यानुभागाज्जघन्यस्थितौ उत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततः कंडकादुपरि प्रथमस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततो द्वितीयस्थितौ उत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततः कंडकादुपरि द्वितीयस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽधस्तनतृतीयस्थितौ उत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततः कंडकादुपरि तृतीयस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवमेकैकोऽधस्तादुपरि च यथाक्रमं ज्येष्ठ उत्कृष्ट इतरश्च जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणतया तावद्वाच्यो यावदुत्कृष्टायां स्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । कंडकमात्राणां च स्थितीनामुत्कृष्टोऽनुभागोऽद्याप्यनुक्तस्तिष्ठति । शेषः सर्वोऽप्युक्तः । ततः सर्वोत्कृष्टायाः स्थितेर्जघन्यानुभागात् कंडकमात्राणां स्थितीनां प्रथमस्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणो वक्तव्यः । ततोऽप्यनन्तरायामुपरितनस्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽप्यनन्तरायामुपरितनस्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवं निरन्तरमुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणतया तावद्वक्तव्यो यावदुत्कृष्टा स्थितिः । तथा चाह–'चरमठिईणुक्कोसो' चरमस्थितीनां कंडकमात्राणां पल्योपमासंख्येयभागमात्राणामित्यर्थः । उत्कृष्टोऽनुभागो निरन्तरमनन्तगुणतया नेतव्यः ।

इदानीं शुभप्रकृतीनां तीव्रमन्दताभिधानावसरः । तत्र पराघातप्रकृतिमधिकृत्योच्यते–पराघातस्योत्कृष्टायां स्थितौ जघन्यपदे जघन्योऽनुभागः सर्वस्तोकः । ततः समयोनायामुत्कृष्टस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽपि द्विसमयोनायामुत्कृष्टस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवं तावद्वाच्यं यावत्पल्योपमासंख्येयभागमात्राः स्थितयो गता भवन्ति । निवर्तनकंडकमतिक्रान्तं

अनुभाग अनन्तगुणो (उत्कृष्ट स्थिति सुधी) कहेवो. चरमठिईणुक्कोसो=छेल्ला निवर्तनकंडकनी स्थितिओनो उत्कृष्टज अनंतगुणो कहेवो. परित्तमाणीय उ विसेसो=परावर्तमान प्रकृतिओमां तो विशेष छे. ६६

भवतीत्यर्थः। तत उत्कृष्टायां स्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः। ततो निवर्तनकंडकादधः प्रथमस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः। ततः समयोनायामुत्कृष्टस्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः। ततो निवर्तनकंडकादधो द्वितीयस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः। एवं तावद्वाच्यं यावत्परावातस्य जघन्यस्थितौ जघन्यानुभागोऽनन्तगुणः। कंडकमात्राणां च स्थितीनामुत्कृष्टोऽनुभागोऽद्याप्यनुक्तस्तिष्ठति। शेषः सर्वोऽप्युक्तः। ततो जघन्यस्थितेरारभ्योर्ध्वं कंडकमात्राः स्थितीरतिक्रम्य चरमायां स्थितावुत्कृष्टोऽनन्तगुणो वक्तव्यः। ततोऽधस्तनस्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः। एवं तावद्वाच्यं यावज्जघन्यस्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः। एवं शरीरपञ्चकसंघातपञ्चकबन्धनपञ्चदशकांगोपांगत्रयप्रशस्तवर्णगन्धरसस्पर्शागुरुलघूच्छ्वासातपोद्योतनिर्माणतीर्थकराणामपि (४५) भावनीयं। 'परित्तमाणीण उ विसेसो' परावर्तमानप्रकृतीनां विशेषो द्रष्टव्यः। स चैवं–यावतीनां तानि चान्यानि चेत्येवमनुकृष्टिरभिहिता तावतीनां सर्वासामपि जघन्योऽनुभागस्तावन्मात्र एव द्रष्टव्यः। तानि चान्यानि चेत्येवमनुकृष्टिविषयाभ्यस्तु परतो जघन्यो यथोत्तरमनन्तगुणस्तावद्वक्तव्यो यावत् कंडकस्यासंख्येया भागा गता भवन्ति, एकोऽवशिष्यते ॥६६॥

तथा चाह—

ताणन्नाणि त्ति परं, असंखभागाहिँ कंडगेक्काण। उक्कोसियरा नेया, जा तक्कंडकोवरि समत्ती ॥६७॥

गाथार्थ—ताणन्नाणि त्ति परं=ते सर्व अने अन्य ए अनुकृष्टिथी आगळ, असंखभागाहिं=एक कंडकना असंख्यात भाग गया पछी, कंडगेक्काण उक्कोसियरा=एक कंडकना उत्कृष्ट अने एक स्थितिना जघन्य अनुक्रमे त्यां सुधी, नेया=जाणवा, जा तक्कंडकोवरि समत्ती=ज्यां सुधी (ते सर्व अने अन्यवाळी अनुकृष्टि पछीना) उपरना कंडकनी पूर्णता थाय. ६७

ताणि त्ति–तानि चान्यानि चेत्येवमनुकृष्टेः परं कंडकस्यासंख्येयेभ्यो भागेभ्य ऊर्ध्वं कंडकमात्राणामेकैकस्याश्च (श्चाधः) स्थितेर्यथासंख्यमुत्कृष्टा इतरे च जघन्या अनुभागा अनन्तगुणा ज्ञेयाः। एतदुक्तं भवति–तानि चान्यानि चेत्येवमनुकृष्टेः परं जघन्योऽनुभागो यथोत्तरमनन्तगुणस्तावद्वाच्यो यावत् कंडकमात्राणां स्थितीनामसंख्येया भागा गता भवन्ति, एकोऽवतिष्ठते। ततो यतः स्थितेरारभ्य तानि चान्यानि चेत्येवमनुकृष्टिरारब्धा, तत्प्रभृतीनां स्थितीनां कंडकमात्राणां यथोत्तरमनन्तगुणतयोत्कृष्टोऽनुभागो वक्तव्यः।ततो यतः स्थितिस्थानाज्जघन्यानुभागमुक्त्वा निवृत्तस्तत उपरितने स्थितिस्थाने जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणो वाच्यः। एवमेकैकं जघन्यानुभागमुत्कृष्टानुभागानां च कंडकं कंडकं तावद्वदेत् यावज्जघन्यानुभागविषयाणां स्थितीनां तानि चान्यानि चेत्येवमनुकृष्टेः परं कंडकं परिपूर्णं भवति। उत्कृष्टाश्चानुभागाः सागरोपमशतपृथक्त्वतुल्यां[×] भवन्ति। तत उपरि जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः। पश्चादेक उत्कृष्टोऽनुभागः। ततः पुनरप्येको जघन्योऽनुभागः, पुनरप्येक उत्कृष्टोऽनुभाग, एवं तावद्वाच्यं यावज्जघन्यानुभागविषयाः स्थितयः सर्वा अपि परिसमाप्ता भवन्ति। उत्कृष्टानुभागविषयाश्च कंडकमात्राः स्थितयोऽद्याप्यनुक्तास्तिष्ठन्ति। शेषाः सर्वा अप्युक्ताः। ततस्तासां यथोत्तरमुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणो वाच्यः। तथा चाह–'जा तक्कंडकोवरि समत्ती' यावत्तेषां जघन्यानुभागानां कंडकस्य चोपरितनस्य परिसमाप्तिः। इदमुक्तं भवति–अनन्तगुणतयाऽभिहितानां जघन्यानुभागविषयाणां स्थितीनां कंडकादुपरि एकैकोत्कृष्टानुभागान्तरिता जघन्यानुभागास्तावद्वक्तव्या यावत्तेषां सर्वेषामपि परिसमाप्तिरुपजायते। ततो

×(य०उ० ३७) सागरोपमशतपृथक्त्वं ह्यसत्कल्पनया लक्षं, कण्डकानि सहस्रतुल्यानि, तदेकभागः शतं, तदेकैकव्यक्त्यन्तरितानि च सहस्राणि लक्षं भवतीति।

ये कंडकमात्रा उत्कृष्टानुभागाः केवलास्तिष्ठन्ति, तेऽपि यथोत्तरमनन्तगुणास्तावद्वाच्या यावत्सर्वसमाप्तिर्भवतीति गाथार्थः ।

तत्र सातासाते अधिकृत्य भावना विधीयते–सातस्योत्कृष्टायां स्थितौ जघन्योऽनुभागः सर्वस्तोकः । ततः समयोनायामुत्कृष्टस्थितौ जघन्योऽनुभागस्तावन्मात्र एव । द्विसमयोनायामप्युत्कृष्टस्थितौ जघन्योऽनुभागस्तावन्मात्र एव । एवमधोऽधोऽवतीर्य तावद्वक्तव्यो यावत्सागरोपमशतपृथक्त्वमतिक्रान्तं भवति । ततोऽधस्तनस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽप्यधस्तनस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवं तावद्वाच्यं यावत् कंडकस्यासंख्येयभागा गता भवन्ति, एकोऽवशिष्यते । एताश्च स्थितयः (अ)संख्येयभागहीनकंडकमात्राः साकारोपयोगसंज्ञा इति व्यवह्रियन्ते, साकारोपयोगेनैवैतासां बध्यमानत्वात् । तत उत्कृष्टस्थितौ उत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणो वक्तव्यः । ततः समयोनायामुत्कृष्टस्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽपि द्विसमयोनायामुत्कृष्टस्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवमधोऽधोऽवतरणेनोत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणस्तावद्वक्तव्यो यावत्कंडकमात्राः स्थितयोऽतिक्रान्ता भवन्ति । ततो यतः स्थितिस्थानाज्जघन्यमनुभागमुक्त्वा निवृत्तस्ततोऽधस्तात् स्थिति(अंधस्तने)स्थाने जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततः पुनरपि प्रागुक्तानामुत्कृष्टानुभागविषयाणां स्थितीनामधस्तात् कंडकमात्रासु (स्थितिषु) उत्कृष्टोऽनुभागः क्रमेणानन्तगुणो वाच्यः । ततो यतः स्थितिस्थानाज्जघन्यमनुभागमुक्त्वा निवृत्तस्ततोऽधस्तने स्थितिस्थाने जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणो वक्तव्यः । ततः पुनरपि कंडकमात्राणां स्थितीनामुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवमेकैकस्याः स्थितेर्जघन्योऽनुभागः कंडकमात्राणां च स्थितीनामुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणतया तावद्वाच्यो यावज्जघन्यानुभागविषयाणामेकैकस्थितीनां तानि चान्यानि चेत्येवमनुकृष्टेः परं कंडकं परिपूर्णं भवति । उत्कृष्टानुभागविषयाश्च स्थितयः साग-

रोपमशतपृथक्त्वमात्राः । तत एकस्याः स्थितेर्जघन्यानुभागोऽनन्तगुणः । ततः सागरोपमशतपृथक्त्वादधस्तनस्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततः पुनरपि प्रागुक्तस्थितिस्थानादधस्तनस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततः सागरोपमशतपृथक्त्वादधस्तनद्वितीयस्थितौ उत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः। एवमेकैकं जघन्यमुत्कृष्टं चानुभागमनन्तगुणतया वदन् तावद् व्रजेद्यावत्सर्वजघन्या स्थितिः । कंडकमात्राणां च स्थितीनामुत्कृष्टानुभागा अद्याप्यनुक्तास्तिष्ठन्ति, शेषाः सर्वेऽप्युक्ताः । ततस्तेऽप्यधोऽधः क्रमेणानन्तगुणा वक्तव्या यावत्सर्वजघन्या स्थितिः । एवं मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीदेवगतिदेवानुपूर्वीपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहननप्रशस्तविहायोगतिस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राणामपि(१५)वक्तव्यं ।

संप्रत्यसातवेदनीयस्योच्यते–तत्रासातस्य जघन्यस्थितौ जघन्योऽनुभागः सर्वस्तोकः । द्वितीयस्यां स्थितौ जघन्योऽनुभागस्तावन्मात्र एव । तृतीयस्यामपि स्थितौ जघन्योऽनुभागस्तावन्मात्र एव । एवं तावद्वाच्यं यावत्सागरोपमशतपृथक्त्वं भवति। तत उपरितनस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततो द्वितीयस्यां स्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवं तावद्वाच्यं यावत्कंडकस्यासंख्येया भागा गता भवन्ति, एकोऽवतिष्ठते । ततोऽसातस्य जघन्यस्थितावुत्कृष्टपदे उत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः। ततो(ऽपि) द्वितीयस्यां स्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽपि तृतीयस्यां स्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवं तावद्वाच्यं यावत् कंडकमात्राः स्थितयो गता भवन्ति । ततो यतः स्थितिस्थानाज्जघन्यमनुभागमुक्त्वा निवृत्तस्तत उपरितने स्थि-

× (य० उ० ३८) ततः साकारोपयोगकंडकादधस्तनप्रथमस्थितौ । * ततो यस्याः स्थितेर्जघन्यमनुभागस्थानमुक्त्वा निवृत्तस्तस्या उपरि जघन्यमनुभागस्थानमनन्तगुणं । ततः प्रागुक्तस्यानुभागविषयस्य कंडकस्योपरि प्रथमस्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः ।

तिस्थाने जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः। ततः प्रागुक्तादुत्कृष्टानुभागविषयात्कंडकादुपरि प्रथमस्थितौ उत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः। ततोऽपि द्वितीयस्यां स्थितौ उत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽपि तृतीयस्यां स्थितौ उत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवं तावद्वाच्यं यावत्पुनरपि कंडकमात्राः स्थितयो गता भवन्ति । ततः पुनरपि यतः स्थितिस्थानाज्जघन्यानुभागमुक्त्वा निवृत्तस्तस्योपरितने स्थितिस्थाने जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततो भूयोऽपि प्रागुक्तकंडकद्वयादुपरि कंडकमात्राणां स्थितीनामुत्कृष्टोऽनुभागो यथोत्तरमनन्तगुणो वक्तव्यः । एवमेकैकस्याः स्थितेर्जघन्योऽनुभागः कंडकमात्राणां च स्थितीनामुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणतया तावद्वक्तव्यो यावज्जघन्यानुभागविषयाणामेकैकस्थितीनां तानि चान्यानि चेत्येवमनुकृष्टेः परं कंडकं परिपूर्णं भवति । उत्कृष्टानुभागविषयाश्च स्थितयः सागरोपमशतपृथक्त्वमात्राः । तत उपरि एकस्याः स्थितेर्जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणो वाच्यः । ततः सागरोपमशतपृथक्त्वादुपरितनस्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततः पुनरपि प्रागुक्तात् स्थितिस्थानादुपरितने स्थितिस्थाने जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततः सागरोपमशतपृथक्त्वादुपरि द्वितीयस्यां स्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवमेकैकं जघन्यमुत्कृष्टं चानुभागमनन्तगुणं वदन् तावद् व्रजेद्यावदसातवेदनीयस्य सर्वोत्कृष्टा स्थितिर्भवति । कंडकमात्राणां च स्थितीनामुत्कृष्टानुभागा अद्याप्यनुक्ता अवतिष्ठन्ते; शेषाः सर्वेऽप्युक्ताः । ततस्तेऽपि यथोत्तरमनन्तगुणा वक्तव्या यावदुत्कृष्टा स्थितिः। एवं नरकगतिनरकानुपूर्वीपंचेन्द्रियजातिवर्जजातिचतुष्टयप्रथमवर्जसंस्थानपञ्चकप्रथमवर्जसंहननपञ्चकाप्रशस्तविहायोगतिस्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणास्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेययशःकीर्तीनामपि (२७) तीव्रमन्दताऽभिधातव्या।

× (य० उ० ३९) यावत्सातरूपप्रतिपक्षप्रकृत्याक्रान्ताः स्थितयः परिनिष्ठामुपयन्तीत्यर्थः।

संप्रति तिर्यग्गतेस्तीव्रमन्दताऽभिधीयते–सप्तमपृथिव्यां वर्तमानस्य नैरयिकस्य सर्वजघन्ये स्थितिस्थाने जघन्यपदे जघन्योऽनुभागः सर्वस्तोकः । ततो द्वितीयस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽपि तृतीयस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवं तावद्वाच्यं यावन्निवर्तनकंडकमतिक्रान्तं भवति । ततो जघन्यस्थितावुत्कृष्टपदे उत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततो निवर्तनकंडकादुपरि प्रथमस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततो द्वितीयस्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततः कंडकादुपरि द्वितीयस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततस्तृतीयस्यां स्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवं तावद्वाच्यं यावदभव्यप्रायोग्यजघन्यानुभागबन्धस्याधश्चरमस्थितिः। अभव्यप्रायोग्यजघन्यानुभागबन्धस्याधः कंडकमात्राणां स्थितीनामुत्कृष्टानुभागा अद्याप्यनुक्ताः सन्ति, शेषास्तूक्ताः । ततोऽभव्यप्रायोग्यजघन्यानुभागबन्धविषये प्रथमस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । द्वितीयस्यां स्थितौ जघन्योऽनुभागस्तावन्मात्र एव । तृतीयस्यामपि स्थितौ जघन्योऽनुभागस्तावन्मात्र एव । एवं तावद्वाच्यं यावत्सागरोपमशतपृथक्त्व(मेधः)मात्राः स्थितयोऽतिक्रान्ता भवन्ति । एतासां च स्थितीनां पूर्वपुरुषैः परावर्तमानजघन्यानुभागबन्धप्रायोग्या इति नाम कृतं । एतासां चोपरि प्रथमस्थितौ जघन्यानुभागोऽनन्तगुणः। ततोऽपि द्वितीयस्यां स्थितौ जघन्यानुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽपि तृतीयस्यां स्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवं तावद्वाच्यं यावन्निवर्तनकंडकस्यासंख्येया भागा गता भवन्ति, एकोऽवतिष्ठते । ततो यतः स्थितिस्थानादुत्कृष्टमनुभागमुक्त्वा निवृत्तस्तत उपरितने स्थितिस्थाने उत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽप्युपरितने स्थितिस्थाने उत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽपि तृतीये स्थितिस्थाने उत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवं तावद्वाच्यं यावदभव्यप्रायोग्यजघन्यानुभागबन्धस्याधश्चरमा स्थितिः । ततो यतः स्थितिस्थानाज्जघन्य-

मनुभागमुक्त्वा निवृत्तस्तत उपरितने स्थितिस्थाने जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽभव्यप्रायोग्यजघन्यानुभागबन्धविषये प्रथमस्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततोपि द्वितीयस्यां स्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवं तावद्वाच्यं यावत् कंडकमात्राः स्थितयोऽतिक्रान्ता भवन्ति । ततो यतः स्थितिस्थानाज्जघन्यमनुभागमुक्त्वा निवृत्तस्तत उपरितने स्थितिस्थाने जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽप्यभव्यप्रायोग्यजघन्यानुभागबन्धविषये कंडकादुपरि पुनरपि कंडकमात्राणां स्थितीनामुत्कृष्टोऽनुभागो यथोत्तरमनन्तगुणो वक्तव्यः । एवमेकस्याः स्थितेर्जघन्यमनुभागं कंडकमात्राणां च स्थितीनामुत्कृष्टमनुभागं वदता तावद्वक्तव्यं यावदभव्यप्रायोग्यजघन्यानुभागबन्धविषये चरमस्थितिः। ततो यतः स्थितिस्थानाज्जघन्यमनुभागमुक्त्वा निवृत्तस्तत उपरितने जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽभव्यप्रायोग्यजघन्यानुभागबन्धस्योपरि प्रथमस्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः। तत उपरि प्रागुक्ताज्जघन्यानुभागबन्धादुपरि द्वितीयस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः। ततः प्रागुक्तादुत्कृष्टानुभागादुपरितने स्थितिस्थाने उत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवमेकस्याः स्थितेर्जधन्यमेकस्याश्चोत्कृष्टमनुभागं वदता तावद्वक्तव्यं यावदुत्कृष्टस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः। कंडकमात्राणां च स्थितिनामुत्कृष्टानुभागा अद्याप्यनुक्ताः सन्ति, शेषाश्च सर्वेऽप्युक्ताः। ततस्ते यथोत्तरमनन्तगुणास्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टा स्थितिः । एवं तिर्यगानुपूर्व्या नीचैर्गोत्रस्य च तीव्रमन्दताऽभिधातव्या ।

संप्रति त्रसनाम्नोऽभिधीयते–त्रसनाम्न उत्कृष्टस्थितौ जघन्यपदे जघन्योऽनुभागः सर्वस्तोकः । ततः समयोनायामुत्कृष्टस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽपि द्विसमयोनायामुत्कृष्टस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः। एवमधोऽधोऽवतरणेन जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणतया तावद्वक्तव्यो यावत्कंडकमात्राः स्थितयोऽतिक्रान्ता भवन्ति । तत उत्कृष्टायां स्थितौ उत्कृष्टोऽनु-

भागोऽनन्तगुणः । ततः कंडकादधः प्रथमस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततः समयोनायामुत्कृष्टस्थितौ उत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततः कंडकादधस्तन्यां द्वितीयस्यां स्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततो द्विसमयोनायामुत्कृष्टस्थितौ उत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवं तावद्वाच्यं यावदष्टादशसागरोपमकोटीकोटीनामुपरितनी स्थितिः । अष्टादशकोटीकोटीनां चोपरि कंडकमात्राणां स्थितीनामुत्कृष्टानुभागा अद्याप्यनुक्ताः सन्ति। शेषं सर्वमुक्तं। ततोऽष्टादशकोटीकोटीनां सत्कायामुत्कृष्टस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततः समयोनायामुत्कृष्टस्थितौ जघन्योऽनुभागस्तावन्मात्र एव । द्विसमयोनायामप्युत्कृष्टस्थितौ जघन्योऽनुभागस्तावन्मात्र एव । एवमधोऽधोऽवतरणेन तावद्वाच्यं यावदभव्यप्रायोग्यो जघन्यस्थितिबन्धः । ततोऽधस्तन्यां प्रथमस्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततो द्वितीयस्यां स्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवं तावद्वाच्यं यावत्कंडकस्यासंख्येया भागा गता भवन्ति, एकोऽवतिष्ठते । ततोऽष्टादशसागरोपमकोटीकोटीनामुपरिष्टात् कंडकमात्राणां स्थितीनां चरमस्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततो द्विचरमस्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततस्त्रिचरमस्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवमधोऽधोऽवतरणेन तावद्वाच्यं यावत्कंडकमतिक्रान्तं भवति, अष्टादशकोटीकोटीनामुपरि अनन्तरा स्थितिरतिक्रान्ता भवतीत्यर्थः । ततो यतः स्थितिस्थानाज्जघन्यमनुभागमभिधाय निवृत्तस्ततोऽधस्तने स्थितिस्थाने जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततः पुनरप्यष्टादशसागरोपमकोटीकोटीनां सत्कायाश्चरमस्थितेरारभ्याधोऽधः कंडकमात्राणां स्थितीनामुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणो वक्तव्यः । ततो यतः स्थितिस्थानाज्जघन्यानुभागमभिधाय निवृत्तस्ततोऽधस्तने स्थितिस्थाने जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । तत पुनरपि प्रागुक्तात्कंडकाधः कंडकमात्राणां स्थितीनामधोऽधः क्रमेणोत्कृष्टा अनुभागा अन-

न्तगुणा वक्तव्याः । एवमेकस्याः स्थितेर्जघन्यमनुभागं कंडकमात्राणां स्थितीनामुत्कृष्टाननुभागान् वदता तावद्वक्तव्यं यावदभव्यप्रायोग्यजघन्यानुभागबन्धविषये जघन्या स्थितिः । ततो यतः स्थितिस्थानाज्जघन्यानुभागमुक्त्वा निवृत्तस्ततोऽधस्तने स्थितिस्थाने जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽभव्यप्रायोग्यजघन्यानुभागबन्धविषयादधः प्रथमस्थितौ उत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततः प्रागुक्ताज्जघन्यानुभागादधः स्थितौ जघन्योऽनुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽप्यभव्यप्रायोग्यजघन्यानुभागबन्धविषयादधो द्वितीयस्थितावुत्कृष्टोऽनुभागोऽनन्तगुणः । एवमेकस्याः स्थितेर्जघन्यमनुभागमेकस्याश्च स्थितेरुत्कृष्टं वदताऽधोऽधस्तादवदवतरीतव्यं यावज्जघन्या स्थितिः। कंडकमात्राणां च स्थितीनामुत्कृष्टा अनुभागा अद्याप्यनुक्ताः सन्ति, शेषाः सर्वेऽप्युक्ताः। ततस्तेऽप्यधोऽधः क्रमेणानन्तगुणास्तावद्वक्तव्या यावज्जघन्या स्थितिः। एवं बादरपर्याप्तप्रत्येकनाम्नामपि तीव्रमन्दताऽभिधातव्या। (विशेषतस्त्वनुकृष्टिस्तीव्रमन्दता च पटस्थापनातोऽवसेया)। साद्यनादिप्ररूपणा स्वामित्वं घातिसंज्ञा स्थानसंज्ञा शुभाशुभप्ररूपणा (प्रत्ययप्ररूपणा विपाकप्ररूपणा) च यथा शतके तथाऽवगन्तव्या । इति ॥ ६७ ॥

×(य०उ० ४०)अथानुभागबन्धे साद्यनादिप्ररूपणा स्वामित्वप्ररूपणा च क्रियते–तत्र मूलप्रकृतिविषये नामकर्मवेदनीयकर्मणोरनुत्कृष्टो घातिकर्मणां चाजघन्योऽनुभागश्चतुर्विधः—सादिरनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्चेति। तथाहि—नामवेदनीययोरुत्कृष्टोऽनुभागः सूक्ष्मसंपरायान्त्यसमये क्षपकस्य भवति । स च द्वितीयसमये व्यवच्छेदमुपयातीति साद्यध्रुव एव । ततोऽन्यः सर्वोऽप्यनुत्कृष्टः । स चोपशान्तमोहे न भवति ततः प्रतिपाते च भवतीति सादिः । तत्स्थानमप्राप्तस्यानादिः । अभव्यानां ध्रुवः । भव्यानामध्रुवः । तथा मोहनीयस्यानिवृत्तिबादरान्त्यसमये ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणां च सूक्ष्मसंपरायान्त्यसमये क्षपकस्य जघन्योऽनुभागबन्धः ।

स चैकसामयिक इति साद्यध्रुवः। ततोऽन्यः सर्वोऽप्यजघन्यः। च चोपशमश्रेण्यां मोहनीयस्य सूक्ष्मसंपराये ज्ञानावरणादित्रिकस्योपशान्तमोहे न भवति, ततः प्रतिपाते च भवतीति सादिः। तत्स्थानमप्राप्तस्यानादिः। ध्रुवाध्रुवावभव्यभव्यापेक्षया। गोत्रस्य द्वावप्यनुत्कृष्टाजघन्यौ चतुर्विधौ। तथाहि—गोत्रस्योत्कृष्टोऽनुभागबन्धः सूक्ष्मसंपरायान्त्यसमये क्षपकस्य, स चैकसामयिकत्वात्साद्यध्रुवः। ततोऽन्यः सर्वोऽप्यनुत्कृष्टः, स चोपशान्तमोहे न भवति, ततः प्रतिपाते च भवतीति सादिः। तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः। ध्रुवाध्रुवावभव्यभव्यापेक्षया। तथा गोत्रस्य जघन्यानुभागबन्धः सप्तमक्षितिनारकस्यौपशमिकसम्यक्त्वमुत्पादयतोऽन्तरकरणं कृत्वा मिथ्यात्वस्य प्रथमस्थितावनुभवतः परिक्षीयमाणायामन्त्यसमये वर्त्तमानस्य नीचैर्गोत्रमधिकृत्य भवति, स चैकसामयिक इति साद्यध्रुवः। ततोऽन्यः सर्वोऽप्यजघन्यो यावदुत्कृष्टो न भवति। स चौपशमिकसम्यक्त्वलाभकाले उच्चैर्गोत्रमधिकृत्य प्रवर्त्तमानः सादिः। तत्स्थानमप्राप्तस्यानादिः। ध्रुवाध्रुवौ पूर्ववत्। अमीषां सप्तानामपि कर्मणां शेषविकल्पाः सादयोऽध्रुवाश्चेति द्विविधाः। तथाहि—वेदनीयनाम्नोरुत्कृष्टोऽनुभागः साद्यध्रुवतया प्रागेव भावितः। मध्यमपरिणामे मिथ्यादृष्टौ सम्यग्दृष्टौ वाऽनयोर्जघन्योऽनुभागबन्धः संक्लिश्यमाने विशुध्यमाने वाऽजघन्य इति द्वावप्येतौ जघन्याजघन्यौ मिथ्यादृष्टौ सम्यग्दृष्टौ वा पर्यायेण प्राप्यमाणत्वात् साद्यध्रुवौ। घातिनां जघन्योऽनुभागबन्धः साद्यध्रुवतया प्रागेव भावितः। उत्कृष्टानुत्कृष्टौ तु क्रमेण मिथ्यादृष्टौ प्राप्येते, सर्वसंक्लिष्टे उत्कृष्टो मध्यमपरिणामे त्वनुत्कृष्ट इति साद्यध्रुवावेतौ। गोत्रस्य जघन्योत्कृष्टौ साद्यध्रुवौ प्रागेव भावितौ। आयुषस्त्वध्रुवबन्धित्वाच्चत्वारोऽपि विकल्पाः साद्यध्रुवाः सुमतीताः॥

उत्तरप्रकृतिषु शुभध्रुवबन्धिनीनां तैजसकार्मणप्रशस्तवर्णगन्धरसस्पर्शागुरुलघुनिर्माणरूपाणामष्टानां (८) प्रकृतीनामनुत्कृष्टोऽनुभागबन्धश्चतुर्धा। तथाहि—एतासां क्षपणार्हस्यापूर्वकरणस्य त्रिंशत्प्रकृतिबन्धव्यवच्छेदसमये समयमात्रमुत्कृष्टोऽनुभागबन्धः प्राप्यते।

स चैकसामयिकत्वात्साद्यध्रुवः। ततोऽन्यः सर्वोऽप्यनुत्कृष्टः। स चोपशमश्रेण्यां बन्धव्यवच्छेदात्परतो न भवति, ततः प्रतिपाते च भूयोऽपि भवतीति सादिः। तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः। ध्रुवाध्रुवौ पूर्ववत्। तथाऽशुभानां ध्रुवबन्धिनीनां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकमिथ्यात्वषोडशकषायजुगुप्साभयोपघाताप्रशस्तवर्णादिचतुष्टयान्तरायपञ्चकरूपाणां(४३)त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनामजघन्यश्चतुर्धा। तथाहि—ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयरूपाणां(१४)चतुर्दशप्रकृतीनां क्षपकस्य सूक्ष्मसंपरायान्त्यसमये, चतुर्णां संज्वलनानामनिवृत्तिबादरक्षपकस्य स्वस्वबन्धव्यवच्छेदसमये, निद्राप्रचलोपघातभयजुगुप्साऽप्रशस्तवर्णगन्धरसस्पर्शानामपूर्वकरणस्य(९)क्षपणार्हस्य स्वस्वबन्धान्तसमये, चतुर्णां प्रत्याख्यानावरणानां संयमं प्रतिपित्सतो देशविरतस्य स्वगुणस्थानान्तसमये तद्बन्धकेषु तस्यातिविशुद्धत्वात्, चतुर्णामप्रत्याख्यानावरणानामविरतसम्यग्दृष्टेः क्षायिकसम्यक्त्वं संयमं च युगपत्प्राप्स्यतः तद्बन्धकेषु तस्यैवातिविशुद्धत्वात्। स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वानन्तानुबन्धिनां मिथ्यादृष्टेः सम्यक्त्वं संयमं चैककालं प्रतिपत्तुकामस्य चरमसमये जघन्योऽनुभागबन्धो लभ्यते। स च समयमात्रभावीति सादिरध्रुवश्च। ततोऽन्यः सर्वोऽप्यजघन्यः। स च ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयानामुपशान्तमोहे, (१४)निद्राप्रचलोपघाताप्रशस्तवर्णादिचतुष्टयभयजुगुप्सानामुपशमश्रेण्यामनिवृत्तिबादरे(९), प्रत्याख्यानावरणादीनां(१६)प्रमत्तसंयतादौ बन्धव्यवच्छेदे न भवति, ततः प्रतिपाते च भवतीति सादिः। तत्स्थानमप्राप्तस्यानादिः। ध्रुवाध्रुवावभव्यभव्यापेक्षया। आसामेव शुभानामशुभानां वा ध्रुवबन्धिनीनामुत्कृष्टशेषा विकल्पाः साद्यध्रुवाः। तथाहि—तैजसाद्यानामष्टानां शुभध्रुवबन्धिनीनामुत्कृष्टः साद्यध्रुवतया प्रागेव भावितः। जघन्याजघन्यौ तु संज्ञिपर्याप्तमिथ्यादृष्टौ पर्यायेण प्राप्येते। अतिसंक्लिष्टे जघन्यः, सुविशुद्धे त्वजघन्य इति साद्यध्रुवावेतौ। अशुभध्रुवबन्धिनीनां तु जघन्यः साद्यध्रुवतया प्रागेव भावितः। उत्कृष्टस्तु मिथ्यादृष्टौ संज्ञिपर्याप्ते सर्वसंक्लिष्टे

एकं द्वौ वा समयौ लभ्यते। ततः पुनरपि मन्दपरिणामेऽनुत्कृष्ट इतीमावपि साद्यध्रुवौ। अध्रुवबन्धिनीनां तु जघन्यादयश्चत्वारोऽप्यध्रुवबन्धित्वादेव साद्यध्रुवाः। कृता साद्यनादिप्ररूपणा॥

अथ स्वामित्वप्ररूपणा क्रियते—तत्राशुभप्रकृतीनां तद्बन्धकेषु चरमबन्धसमयवर्त्तिनोऽत्यन्तविशुद्धाः समयमेकं जघन्यमनुभागं बध्नन्ति, स्वबन्धव्यवच्छेदादूर्ध्वमपि गत्वा पतन्तोऽजघन्यं बध्नन्ति। शुभानां प्रकृतीनां तद्बन्धकेषु चरमा अत्यन्तविशुद्धा उत्कृष्टमनुभागं बध्नन्ति। मन्दपरिणामपरिणतास्त्वनुत्कृष्टं। तथा सकलानामशुभप्रकृतीनामुद्योतातपतिर्यग्मनुजद्विकानां च संज्ञिमिथ्यादृष्टिः समयमेकमुत्कृष्टमनुभागं बध्नाति, तत्राशुभप्रकृतिषु नरकत्रिकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानां तिर्यग्मनुष्यो वा संज्ञी मिथ्यादृष्टिः उत्कृष्टानुभागबन्धस्वामी। तत्रापि नरकत्रिकस्यातिसंक्लिष्टो विकलत्रिकसूक्ष्मत्रिकयोश्च तदर्हसंक्लेशवान्, अतिसंक्लिष्टो ह्येतत् षट्कमुल्लङ्घ्य नरकयोग्यं बध्नीयादिति। देवनारकाणां तु भवप्रत्ययवशादेतत्प्रकृतिबन्धासंभवः। एकेन्द्रियजातिस्थावरयोर्देवा एव भवनपत्यादय ईशानान्ता अतिसंक्लिष्टमिथ्यादृश उत्कृष्टानुभागबन्धकाः, तिर्यग्मनुष्याणामतिसंक्लिष्टानां नरकगतिप्रायोग्यबन्धकत्वात्, मन्दसंक्लेशे चैतासामशुभत्वेनोत्कृष्टानुभागबन्धासंभवात्। नारकाणामीशानोत्तरदेवानां च भवप्रत्ययत एवैतत्प्रकृत्यबन्धकत्वात्, तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीसेवार्त्तसंहननानां देवनारका अतिसंक्लिष्टा मिथ्यादृष्टय उत्कृष्टानुभागबन्धस्वामिनः। तिर्यग्नरा हि तदर्हसंक्लेशे वर्त्तमाना नरकयोग्यमेव बध्नीयुः। न च तद्योग्या एताः प्रकृतय इति देवनारकग्रहणं। ते हि सर्वसंक्लिष्टा अपि तिर्यगर्हमेव बध्नन्तीति। इह च सामान्योक्तावपि सेवार्त्तोत्कृष्टानुभागबन्धकाः सनत्कुमारादिसुरा एव न त्वीशानान्ताः, तेषामतिसंक्लिष्टानामेकेन्द्रियार्हस्यैव बन्धकत्वादित्यवधेयं। शेषाणां तु ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकासातवेदनीयमिथ्यात्वषोडशकषायनपुंसकवेदा-

रतिशोकभयजुगुप्साहुंडसंस्थानाप्रशस्तवर्णरसगन्धस्पर्शोपघाताप्रशस्तविहायोगतिदुर्भगदुःस्वराशुभास्थिरानादेययशःकीर्त्तिनीचैर्गोत्रान्तरायरूपाणां(५६)षट्पञ्चाशत्प्रकृतीनां चतुर्गतिको मिथ्यादृष्टिरतिसंक्लिष्टो हास्यरतिस्त्रीपुरुषवेदाद्यन्तवर्जसंस्थानसंहननरूपाणां(१२) द्वादशप्रकृतीनां तत्प्रायोग्यसंक्लिप्ट उत्कृष्टानुभागबन्धस्वामी। सर्वोत्कृष्टसंक्लेशो हि हास्यरतियुगलमतिक्रम्यारतिशोकयुगलं बध्नाति। स्त्रीवेदपुंवेदौ त्वतिक्रम्य क्लीववेदं निर्वर्त्तयति। संस्थानसंहननेष्वपि सर्वसंक्लिष्टो विंशतिसागरोपमकोटाकोटिस्थितिके हुंडसेवार्त्ते निर्वर्त्तयति। ततो विशुद्धोऽष्टादशसागरोपमकोटाकोटिस्थितिके वामनकीलिके। ततो विशुद्धतरः षोडशसागरोपमकोटाकोटिस्थितिके कुब्जार्द्धनाराचे। ततोऽपि विशुद्धश्चतुर्दशसागरोपमकोटाकोटिस्थितिके सादिनाराचे। ततो विशुद्धो द्वादशसागरोपमकोटाकोटिस्थितिके न्यग्रोधपरिमण्डलर्षभनाराचे। ततोऽपि विशुद्धो दशसागरोपमकोटाकोटिस्थितिके समचतुरस्त्रवज्रर्षभनाराचे इति। हीनाधिकसंक्लेशेऽन्यान्यबन्धसंभवात्तत्प्रायोग्यसंक्लेशग्रहणं। आतपोद्योततिर्यग्मनुष्यायुषां तु सुविशुद्धः संज्ञिमिथ्यादृष्टिरुत्कृष्टानुभागबन्धस्वामी। सम्यग्दृष्टीनां हि तिर्यगायुरातपोद्योतानि बन्धमेव नायान्तीति कुतस्तदुत्कृष्टानुभागबन्धवार्त्ता। मनुष्यायुषश्चोत्कृष्टोऽनुभागस्त्रिपल्योपमस्थिति (बन्ध)कस्यावाप्यते, न शेषस्य, तिर्यग्मनुष्याश्च सम्यग्दृष्टयो न मनुष्यायुर्बन्धकाः, तेषां देवायुर्बन्धसंभवात्। येऽपि देवा नारका वा सम्यग्दृष्टयो मनुष्यायुर्बध्नन्ति तेऽपि कर्मभूमियोग्यमेव, नाकर्मभूमियोग्यं, तत्र तेषामुत्पादाभावात्। ततो मनुष्यायुरादीनां चतसृणामपि प्रकृतीनामुत्कृष्टानुभागबन्धस्वामी मिथ्यादृष्टिरेव, न सम्यग्दृष्टिरिति स्थितं। अत्रापि विशेषचिन्तायामातपस्य तत्प्रायोग्यविशुद्धो मिथ्यादृष्टिर्देवस्तथा, नारकाणामेकेन्द्रियार्हस्य तस्य बन्धासंभवात्, तिर्यङ्मनुष्याणां च तदुत्कृष्टरसयोग्यायां विशुद्धौ वर्तमानानां तिर्यक्पञ्चेन्द्रियादियोग्यान्यशुभतरबन्धसंभवात्। उद्योतनाम्नः सप्तमपृथिव्यां वर्त्तमानो नारक औपशमिकसम्यक्त्वमुत्पादयितुकामो यथाप्रवृत्तादिकरणत्रय-

पुरस्सरमन्तरकरणं कृत्वा मिथ्यात्वस्य प्रथमस्थितिमनुभवँश्चरमसमये वर्त्तमान उत्कृष्टानुभागबन्धस्वामी, तद्बन्धकेषु तस्यातिविशुद्धत्वात्। तिर्यङ्मनुष्यायुषोस्तिर्यङ्मनुष्यो वा तत्प्रायोग्यविशुद्धो मिथ्यादृष्टिस्तथा। अगुरुलघुतैजसकार्मणनिर्माणप्रशस्तवर्णगन्धरसस्पर्शदेवद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानपराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतितीर्थकरयशःकीर्त्तिवर्जत्रसादिनवकरूपाणामेकोनत्रिंशत्प्रकृतीनामपूर्वकरणः क्षपणार्हो देवगतिप्रायोग्यबन्धव्यवच्छेदसमये वर्त्तमान उत्कृष्टानुभागबन्धस्वामी, तद्बन्धकेष्वस्यैवातिविशुद्धत्वात्। मनुष्यद्विकौदारिकद्विकप्रथमसंहननानां सम्यग्दृष्टिर्देवोऽतिविशुद्ध उत्कृष्टानुभागमेकं द्वौ वा समयौ बध्नाति, मिथ्यादृष्टेः सम्यग्दृष्टिरनन्तगुणविशुद्ध इति सम्यग्दृष्टिग्रहणं। नारका अपि विशुद्धाः सन्त एताः प्रकृतीर्निर्वर्त्तयन्ति, केवलं नन्दीश्वरादिचैत्यमहोत्सवाद्युपबृंहितभावत्रिदशवदतिविशुद्धत्वाभावात्तेषामग्रहणं। तिर्यङ्मनुष्याणां पुनरतिविशुद्धानां देवगतिप्रायोग्यबन्धकत्वात्तदयोग्यप्रस्तुतप्रकृतिबन्धासंभव इति सर्वव्युदासेन देवस्यैव ग्रहणं। तथाऽप्रमत्तसंयतो देवायुष उत्कृष्टानुभागबन्धस्वामी, सर्वेभ्यस्तद्बन्धकेभ्योऽस्यातिविशुद्धत्वात्। सातवेदनीययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राणां सूक्ष्मसंपरायश्चरमसमये वर्त्तमानस्तथा, तद्बन्धकेभ्योऽस्यैवातिविशुद्धत्वात्।

जघन्यानुभागस्वामित्वविषयेऽप्रमत्तयतिः प्रमत्ताभिमुख आहारकद्विकस्य जघन्यानुभागबन्धस्वामी, तस्य तद्बन्धकेषु सर्वसंक्लिष्टत्वात्। सूक्ष्मत्रिकविकलत्रिकायुश्चतुष्टयदेवद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकरूपाणां (१६) षोडशप्रकृतीनां नरतिर्यञ्चो जघन्यानुभागबन्धस्वामिनः। अत्र हि तिर्यङ्मनुष्यायुषी विना शेषाश्चतुर्दश प्रकृतीर्देवनारका भवप्रत्ययादेव न बध्नन्ति, तिर्यङ्मनुष्यायुर्द्वयमपि यदा जघन्यस्थितिकं बध्यते तदा जघन्यरसं क्रियते। देवनारकास्तु तज्जघन्यं न बध्नन्त्येव, तत्स्थि-

तिकेषु तेषामुत्पत्त्यभावात्, तस्मादेतत्प्रकृतिषोडशकं देवनारकायोग्यमिति नरतिरश्चामेव ग्रहणं। तत्र नारकायुषोऽशुभत्वात्तद्बन्धकेषु सर्वविशुद्धा दशवर्षसहस्रलक्षणजघन्यस्थितिबन्धकाले जघन्यानुभागं तिर्यङ्मनुष्याः कुर्वन्ति, शेषायुस्त्रयस्य शुभत्वात्तद्बन्धकेषु सर्वसंक्लिष्टाः स्वस्वसर्वजघन्यस्थितिबन्धका जघन्यानुभागबन्धस्वामिनः। नरकद्विकस्याशुभत्वाज्जघन्यस्थितिबन्धकाले तद्बन्धकेषु सर्वविशुद्धास्तथा, देवद्विकस्य शुभत्वात्स्वोत्कृष्टस्थितिबन्धकाले तत्प्रायोग्यसंक्लिष्टास्तथा, अतिसंक्लिष्टो नरकादियोग्यं बध्नीयादिति तत्प्रायोग्यसंक्लेशग्रहणं। एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यं। वैक्रियद्विकस्यापि शुभत्वान्नरकगतिबन्धसहितां सर्वोत्कृष्टां स्थितिं बध्नन्तस्तथा, विकलत्रिकसूक्ष्मत्रिकयोस्त्वशुभत्वात्तत्प्रायोग्यविशुद्धास्तथा। अतिविशुद्धा मनुष्यादिप्रायोग्यं बध्नन्तीति तत्प्रायोग्यविशुद्धिग्रहणं। औदारिकद्विकोद्योतानां देवा नैरयिका वा तिर्यग्गतेर्विंशतिसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणामुत्कृष्टस्थितिं बध्नन्त उत्कृष्टसंक्लेशे वर्त्तमाना जघन्यानुभागबन्धस्वामिनः, एतासां प्रकृतीनां तिर्यग्गतिप्रायोग्यबन्धसहचरितानामेव जघन्यरसबन्धात्। तिर्यङ्मनुष्याणां चैतावति संक्लेशे वर्त्तमानानां नरकगतिप्रायोग्यबन्धसंभवेनैतद्बन्धासंभवात्। औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य च देवा ईशानात्परे द्रष्टव्याः, ईशानान्तानामतिसंक्लिष्टानामप्येकेन्द्रियप्रायोग्यस्यैव बन्धात्। औदारिकाङ्गोपाङ्गस्य चैकेन्द्रियाप्रायोग्यत्वात्। तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्राणां सप्तमपृथिवीनारका औपशमिकसम्यक्त्वमुत्पादयन्तो यथाप्रवृत्तादिकरणत्रयपूर्वमन्तरकरणं कृत्वा प्रथमस्थितिं विपाकतोऽनुभवन्तश्चरमसमये मिथ्यादृष्टयस्तथा। अस्य हि प्रकृतित्रयस्याशुभत्वात्सर्वविशुद्धा जघन्यानुभागबन्धकारिणः। तद्बन्धकेषु चैत एव विशुद्धा इति। उक्तं च शतकचूर्णौ—" तिरियगइतिरियाणुपुव्विणीयागोयाणं अहे सत्तमपुढविनेरईओ सम्मत्ताभिमुहो करणाइं करित्तु चरमसमयमिच्छदिट्ठी भवपच्चएण ताओ तिन्नि वि बंधई जाव मिच्छत्तभावो ताव तस्स जहण्णोणुभागो हवइ तब्बंधगेसु अचंतविसुद्धो

त्ति काउं"। अन्यस्थानवर्ती ह्येतावत्यां विशुद्धौ मनुष्यद्विकादियुक्तमुच्चैर्गोत्रं बध्नीयादिति सप्तमपृथिवीनारकग्रहणमिति भावः। अविरतसम्यग्दृष्टिर्मिथ्यात्वनरकगमनाभिमुखो मनुष्यस्तीर्थकरनाम्नस्तथा। अस्य हि शुभप्रकृतित्वाज्जघन्यानुभागः संक्लेशेन बध्यते, स च यथोक्तविशेषणविशिष्टस्यैव लभ्यते। तत्र तिर्यञ्चस्तीर्थकरनाम्नः पूर्वप्रतिपन्नाः प्रतिपद्यमानकाश्च भवप्रत्ययेनैव न भवन्तीति मनुष्यग्रहणं। क्षायिकसम्यग्दृष्टिश्रेणिकादेर्नरकगमनाभिमुखस्यापि विशुद्धत्वादन्यगत्यभिमुखस्य च सम्यग्दृष्टेस्तादृशसंक्लेशाभावान्मिथ्यात्वनरकाभिमुखग्रहणं। पञ्चेन्द्रियजातितैजसकार्मणप्रशस्तवर्णगन्धरसस्पर्शागुरुलघुपराघातोच्छ्वासत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकनिर्माणलक्षणानां(१५)पञ्चदशप्रकृतीनां चतुर्गतिका अपि जीवा मिथ्यादृष्टयः सर्वोत्कृष्टसंक्लेशा जघन्यानुभागबन्धकारिणः। एता हि शुभप्रकृतित्वात्सर्वोत्कृष्टसंक्लेशैर्जघन्यरसाः क्रियन्ते। तत्र च तिर्यङ्मनुष्याः सर्वोत्कृष्टसंक्लेशे वर्त्तमाना नरकगतिसहचरिता एता बध्नन्तो जघन्यरसाः कुर्वन्ति। नारकाः सनत्कुमारादिदेवाश्च सर्वसंक्लिष्टाः पञ्चेन्द्रियतिर्यक्प्रायोग्या एता बध्नन्तो जघन्यरसाः कुर्वन्ति। ईशानान्तास्तु देवाः सर्वसंक्लिष्टाः पञ्चेन्द्रियजातित्रसवर्जाः शेषाः प्रकृतीस्त्रयोदशैकेन्द्रियप्रायोग्या बध्नन्तो जघन्यरसा विदधति। पञ्चेन्द्रियजातित्रसनाम्नी तु विशुद्धा अमी बध्नन्ति इति जघन्यरसो न लभ्यत इति तद्वर्जनं। त एव चतुर्गतिका मिथ्यादृष्टयो मनाग्विशुद्धयन्तः स्त्रीवेदनपुंसकवेदयोर्जघन्यानुभागबन्धस्वामिनः। केवलं मनाक्क्षुध्यन्तो नपुंसकवेदस्य। ततो मनाग्विशुद्धतराः स्त्रीवेदस्य। सर्वविशुद्धास्तु पुरुषवेदमेव बध्नन्तीति मनाग्विशुध्यन्त इत्युक्तं। सातवेदनीयस्थिरशुभयशःकीर्त्तीनां सप्रतिपक्षाणां सम्यग्दृष्टिर्मिथ्यादृष्टिर्वा परावर्त्तमानमध्यमपरिणामो जघन्यानुभागबन्धस्वामी। कथमिति चेदुच्यते—इह सातस्य पञ्चदशसागरोपमकोटीकोटय उत्कृष्टा स्थितिः, असातस्य च त्रिंशत्। तत्र प्रमत्तसंयतस्तत्प्रायोग्यविशुद्धोऽसातस्य सम्यग्दृष्टियोग्यस्थितिषु सर्व-

जघन्यामन्तःसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणां स्थितिं बध्नाति । ततोऽन्तर्मुहूर्त्तात्परावृत्य परावृत्य सातं बध्नाति, पुनरप्यसातं । एवं देश-विरताविरतसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिसासादनमिथ्यादृष्टयोऽपि परावृत्य सातासाते बध्नन्ति । तत्र मिथ्यादृष्टिः सातासाते परा-वृत्य तावद् बध्नाति यावत्सातस्य पञ्चदशसागरोपमकोटाकोटिलक्षणा ज्येष्ठा स्थितिः । ततः परतोऽपि संक्लिष्टः संक्लिष्टतरः संक्लिष्टतमोऽसातमेव केवलं तावद् बध्नाति यावत् त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयः। प्रमत्तादपि परतोऽप्रमत्तादयो विशुद्धविशुद्धतरवि-शुद्धतमाः सातमेव केवलं बध्नन्ति यावत्सूक्ष्मसंपराये द्वादश मुहूर्त्ताः। तदेवं व्यवस्थिते सातस्यासातेन सह परावृत्य परा-वृत्य बन्धे उत्कृष्टस्थितेरारभ्य जघन्यानुभागबन्धोचितः परावर्त्तमानमध्यमपरिणामस्तावल्लभ्यते यावत्प्रमत्तेऽन्तःसागरोपमकोटा-कोटीलक्षणा सर्वजघन्या स्थितिः। एतेषु हि सम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टियोग्यस्थानेषु प्रकृतेः प्रकृत्यन्तरसंक्रमे मन्दः परिणामो जघन्या-नुभागबन्धोचितो लभ्यते नान्यत्र । शुद्धस्थितावप्रमत्तादीनां मिथ्यादृष्टेश्च सातासातयोः प्रभूतरसाभिनिर्वृत्तेः सागरोपमसप्तभागत्रया-दिरूपवेदनीयस्थितिबन्धकेष्वेकेन्द्रियादिष्वपि तथाविधाध्यवसायाभावाज्जघन्यानुभागबन्धो न संभवति, तस्माद्यथोक्तस्थितिबन्ध एव जघन्यानुभागबन्धसंभवस्तथाविधपरिणामसद्भावादिति। अस्थिराशुभायशःकीर्त्तीनां विंशतिसागरोपमकोटीकोटय उत्कृष्टा स्थितिः। स्थिरशुभयशःकीर्त्तीनां तु दश। तत्रास्थिराशुभायशःकीर्त्तीनां सम्यग्दृष्टियोग्यस्थितिषु प्रमत्तसंयतस्तत्प्रायोग्यविशुद्धौ जघन्यां स्थिति-मन्तःसागरोपमकोटाकोटीलक्षणां बध्नाति,ततोऽन्तर्मुहूर्त्ताद्विशुद्धः स्थिरादिका बध्नाति,पुनरप्यस्थिरादिका इत्येवं देशविरताविरतमिश्र-सास्वादनमिथ्यादृष्टयोऽपि परावृत्य परावृत्य सप्रतिपक्षा अस्थिराशुभायशःकीर्तीर्बध्नन्ति तत्र मिथ्यादृष्टिः परावृत्यैव तास्तावद् बध्नाति यावत्स्थिरादीनामुत्कृष्टा स्थितिः।एतेषु च सम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टिस्थानेषु जघन्यानुभागबन्धो लभ्यते नान्यत्र। दशकोटाकोटीपरतो ह्यस्थिरा-

दय एवाशुभा बहुरसा बध्यन्ते। अप्रमत्तादिभिस्तु स्थिराद्याः शुभा एव बहुरसा बध्यन्त इति नान्यत्र जघन्यानुभागलाभः। तथा स्थावरैकेन्द्रियजात्योर्नैरयिकवर्जः शेषस्त्रिगतिको मिथ्यादृष्टिः परावर्त्तमानमध्यमपरिणामो जघन्यानुभागबन्धस्वामी। सर्वविशुद्धो हि पञ्चेन्द्रियजातित्रसनाम्नोर्बन्धको भवति। सर्वसंक्लिष्टः स्थावरैकेन्द्रियजात्योरुत्कृष्टानुभागबन्धक इत्यालोच्य मध्यमपरिणामग्रहणं। अयं च मध्यमपरिणामो यदैकस्मिन्नन्तर्मुहूर्त्ते एकेन्द्रियजातिस्थावरनाम्नी बद्ध्वा पुनर्द्वितीयेऽप्यन्तर्मुहूर्त्ते ते एव बध्नाति तदापि भवति। केवलं तदाऽवस्थितपरिणामेऽशुभयोरनयोर्जघन्यानुभागहेतुर्विशुद्धिर्न लभ्यत इति मध्यमपरिणामः परावर्त्तमानत्वेन विशिष्यते। तादृशश्च परिणामः पञ्चेन्द्रियजातित्रसनामभ्यां परावृत्य परावृत्य बन्धे भवति, तदा च जघन्यानुभागो लभ्यत इति। भवत्वेवं तथापि नारकवर्जनं किमर्थमिति चेदुच्यते—नारकाणां स्वभावादेवैतत्प्रकृतिद्वयाबन्धकत्वात्। आतपनाम्नस्तु सर्वसंक्लिष्टा ईशानान्ता देवा मिथ्यादृष्टयो जघन्यानुभागबन्धस्वामिनः, अस्य शुभप्रकृतित्वेन सर्वसंक्लिष्टानामेव जघन्यानुभागबन्धकत्वात्, तद्बन्धकेषु चैतेषामेव सर्वसंक्लिष्टत्वात्। तिर्यञ्चमनुष्या ह्येतावति संक्लेशे वर्त्तमाना नारकादिप्रायोग्यं बध्नीयुः। नारकाः सनत्कुमारादिदेवाश्च भवप्रत्यादेव तन्न बध्नन्तीति सर्वपरिहारेण यथोक्तदेवानामेव ग्रहणं। मनुष्यद्विकसंहननषट्कसंस्थानषट्कविहायोगतिद्विकसुभगसुस्वरादेयदुर्भगदुःस्वरानादेयोच्चैर्गोत्रलक्षणानां(२३)त्रयोविंशतिप्रकृतीनां चतुर्गतिका अपि मिथ्यादृष्टयो मध्यमपरिणामा जघन्यानुभागं कुर्वन्ति। सम्यग्दृष्टीनां ह्येतासां परावृत्तिर्नास्ति। तथाहि—तिर्यग्मनुष्याः सम्यग्दृष्टयो देवद्विकमेव बध्नन्ति, न मनुष्यादिद्विकानि। संस्थानेषु समचतुरस्रमेव। संहननेषु सहननं तु न किञ्चिदपि। शुभविहायोगतिसुभगसुस्वरादेयोच्चैर्गोत्राण्यप्रतिपक्षाण्येव। देवनारका अपि सम्यग्दृष्टयो मनुष्यद्विकमेव बध्नन्ति, न तिर्यग्द्विकादिकं। संस्थानेषु समचतुरस्रमेव। संहननेषु

वज्रर्षभनाराचमेव । विहायोगत्यादिका अपि शुभा एव नाशुभा इति परावृत्त्यभावात्सम्यग्दृष्टित्यागः । तत्र मनुष्यगतिद्विकस्य पञ्चदशसागरोपमकोटीकोटय उत्कृष्टा स्थितिः। प्रशस्तविहायोगतिसुभगसुस्वरादेयोच्चैर्गोत्रवज्रर्षभनाराचसमचतुरस्राणां तु दश । एताः शुभप्रकृतयः स्वस्वोत्कृष्टस्थितेरारभ्य प्रतिपक्षप्रकृतिभिः सह परावृत्त्य परावृत्य तावद्बध्यन्ते यावत्तासामेव प्रतिपक्षप्रकृतीनां सर्वजघन्यान्तःसागरोपमकोटीकोटीलक्षणा स्थितिः। एतेषु स्थितिस्थानेषु परावर्त्तमानमध्यमपरिणाम एतासां जघन्यानुभागं बध्नाति । हुंडसेवार्त्तयोरपि वामनकीलिकयोरुत्कृष्टस्थितेरारभ्य स्वस्वजघन्यस्थितिं यावत्परावृत्तिर्लभ्यते। शेषसंस्थानसंहननानामप्यात्मीयोत्कृष्टस्थितेरारभ्य संभवदितरसंस्थानसंहननैः सह परावृत्तिस्तावल्लभ्यते यावदात्मीयात्मीयजघन्यस्थितिः। एतेषु स्थितिस्थानेषु मिथ्यादृष्टिः परावर्त्तमानमध्यमपरिणामो जघन्यानुभागं बध्नाति । तथाऽरतिशोकयोः प्रमत्तसंयतोऽप्रमत्तसंयमं प्रतिपित्सुर्जघन्यरसानुबन्धस्वामी,तद्बन्धकेषु तस्यातिविशुद्धत्वात्। ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयान्तरायपञ्चकरूपाणां चतुर्दशानां प्रकृतीनां क्षपकः सूक्ष्मसंपरायान्त्यसमये वर्त्तमानः समयमेकं तथा,तद्बन्धकेषु तस्य विशुद्धतमत्वात्। पुरुषवेदसंज्वलनचतुष्कयोरनिवृत्तिबादरः क्षपकः स्वबन्धव्यवच्छेदसमये समयमेकं तथा, तस्यापि तद्बन्धकेष्वतिविशुद्धत्वात् । अप्रशस्तवर्णादिचतुष्टयनिद्राप्रचलोपघातहास्यरतिभयजुगुप्सारूपाणामेकादशप्रकृतीनामपूर्वकरणः क्षपणार्हः स्वस्वबन्धव्यवच्छेदसमये समयमेकं तथा, तस्यापि तद्बन्धकेषु परमविशुद्धत्वात् । स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वानन्तानुबन्धिनामष्टानां कर्मणां सम्यक्त्वं संयमं च युगपत्प्रतिपित्सुर्मिथ्यादृष्टिश्चरमसमये तथा । अप्रत्याख्यानावरणानामविरतसम्यग्दृष्टिः संयमं प्रतिपित्सुः, प्रत्याख्यानावरणानां देशविरतः सर्वविरतिं प्रतिपित्सुस्तथा । कृता स्वामित्वप्ररूपणा । घातिसंज्ञा स्थानसंज्ञा शुभाशुभप्ररूपणा च रसविपाकप्ररूपणायां पूर्वमर्थात् कृतैवेत्युपरम्यते' ॥

५५ अपरा० अशुभ प्रकृतिनी तीव्रमन्दतानो यन्त्र.

१				
२				
३				
४				
५				
६				
७				
८				
निवर्तन कंडक ९	नो	ज०अ०	स्तोक	तेथी
१०	,,	,,	अनंतगुण	,,
११	,,	,,	,,	,,
१२	,,	,,	,,	,,
१३	,,	,,	,,	,,
१४	,,	,,	,,	,,
१५	,,	,,	,,	,,
१६	,,	,,	,,	,,
१७	,,	,,	,,	,,
१८	,,	,,	,,	,,
१९	,,	,,	,,	,,
२०	,,	,,	,,	,,

९	नो०	उ०अ०	अनं०	तेथी
१०	,,	,,	,,	,,
११	,,	,,	,,	,,
१२	,,	,,	,,	,,
१३	,,	,,	,,	,,
१४	,,	,,	,,	,,
१५	,,	,,	,,	,,
१६	,,	,,	,,	,,
१७	,,	,,	,,	,,
१८	,,	,,	,,	,,
१९	,,	,,	,,	,,
२०	,,	,,	,,	,,

४६ परावर्तमान शुभ प्रकृतिओनी तीव्रमन्दतानो यन्त्र.

निवर्तन कंडक २०	नो	ज०अ०	स्तोक	तेथी
१९	,,	,,	अनंतगुण	,,
१८	,,	,,	,,	,,
१७	,,	,,	,,	,,
१६	,,	,,	,,	,,
१५	,,	,,	,,	,,
१४	,,	,,	,,	,,
१३	,,	,,	,,	,,
१२	,,	,,	,,	,,
११	,,	,,	,,	,,
१०	,,	,,	,,	,,
९	,,	,,	,,	,,

२०	नो	उ०अ०	अनंतगुण	तेथी
१९	,,	,,	,,	,,
१८	,,	,,	,,	,,
१७	,,	,,	,,	,,
१६	,,	,,	,,	,,
१५	,,	,,	,,	,,
१४	,,	,,	,,	,,
१३	,,	,,	,,	,,
१२	,,	,,	,,	,,
११	,,	,,	,,	,,
१०	,,	,,	,,	,,
९	,,	,,	,,	,,
८	,,	,,	,,	,,

शातावेदनीयादि १६ परा० शुभनी तीव्रमन्दता.

९० नो ज०अ० स्तोक तेथी
८० ,, ,, तेटलोज ,,
८८ ,, ,, ,, ,,
८७ ,, ,, ,, ,,
८६ ,, ,, ,, ,,
८५ ,, ,, ,, ,,
८४ ,, ,, ,, ,,
८३ ,, ,, ,, ,,
८२ ,, ,, ,, ,,
८१ ,, ,, ,, ,,
८० ,, ,, ,, ,,
७९ ,, ,, ,, ,,
ए प्रमाणे ५१मा स्थि०स्थान सुधी कहेवुं. ,,
५० ,, ज०अ० तेटलोज ,,
४९ ,, ,, ,, ,,
४८ ,, ,, ,, ,,
४७ ,, ,, ,, ,,
४६ ,, ,, ,, ,,
४५ ,, ,, ,, ,,
४४ ,, ,, ,, ,,

९०नो उ०अ० अनन्तगुण तेथी
८९ ,, ,, ,, ,,
८८ ,, ,, ,, ,,
८७ ,, ,, ,, ,,
८६ ,, ,, ,, ,,
८५ ,, ,, ,, ,,
८४ ,, ,, ,, ,,
८३ ,, ,, ,, ,,
८२ ,, ,, ,, ,,
८१ ,, ,, ,, ,,
८० ,, ,, ,, ,,
७९ ,, ,, ,, ,,
७८ ,, ,, ,, ,,
७७ ,, ,, ,, ,,
७६ ,, ,, ,, ,,
७५ ,, ,, ,, ,,
७४ ,, ,, ,, ,,
७३ ,, ,, ,, ,,
७२ ,, ,, ,, ,,
७१ ,, ,, ,, ,,
४३ नो ,, ,, ,,

४२नो ज०अ० अनन्तगुण तेथी–

४१नो ज०अ० अनन्तगुण तेथी–

४०नो ज०अ० अनन्तगुण तेथी–

३९ ,, ,, ,, ,,
३८ ,, ,, ,, ,,
३७ ,, ,, ,, ,,
३६ ,, ,, ,, ,,
३५ ,, ,, ,, ,,
३४ ,, ,, ,, ,,
३३ ,, ,, ,, ,,
३२ ,, ,, ,, ,,
३१ ,, ,, ,, ,,
३० ,, ,, ,, ,,
२९ ,, ,, ,, ,,
२८ ,, ,, ,, ,,
२७ ,, ,, ,, ,,
२६ ,, ,, ,, ,,
२५ ,, ,, ,, ,,
२४ ,, ,, ,, ,,
२३ ,, ,, ,, ,,
२२ ,, ,, ,, ,,
२१ ,, ,, ,, ,,

७०नो उ०अ० अनन्तगुण तेथी

६९ ,, ,, ,, ,,
६८ ,, ,, ,, ,,
६७ ,, ,, ,, ,,
६६ ,, ,, ,, ,,
६५ ,, ,, ,, ,,
६४ ,, ,, ,, ,,
६३ ,, ,, ,, ,,
६२ ,, ,, ,, ,,
६१ ,, ,, ,, ,,
६० नो ,, ,, ,,
५९ ,, ,, ,, ,,
५८ ,, ,, ,, ,,
५७ ,, ,, ,, ,,
५६ ,, ,, ,, ,,
५५ ,, ,, ,, ,,
५४ ,, ,, ,, ,,
५३ ,, ,, ,, ,,
५२ ,, ,, ,, ,,
५१ ,, ,, ,, ,,
५० ,, ,, ,, ,,
४९ ,, ,, ,, ,,
४८ ,, ,, ,, ,,
४७ ,, ,, ,, ,,
४६ ,, ,, ,, ,,
४५ ,, ,, ,, ,,
४४ ,, ,, ,, ,,
४३ ,, ,, ,, ,,
४२ ,, ,, ,, ,,
४१ ,, ,, ,, ,,
४० ,, ,, ,, ,,
३९ ,, ,, ,, ,,
३८ ,, ,, ,, ,,
३७ ,, ,, ,, ,,
३६ ,, ,, ,, ,,
३५ ,, ,, ,, ,,
३४ ,, ,, ,, ,,
३३ ,, ,, ,, ,,
३२ ,, ,, ,, ,,
३१ ,, ,, ,, ,,

३०नो उ०अ० अनन्तगुण तेथी

२९ ,, ,, ,, ,,
२८ ,, ,, ,, ,,
२७ ,, ,, ,, ,,
२६ ,, ,, ,, ,,

ए प्रमाणे २१ सुधी कहेवुं.

अशातावेदनीयादि २८ परा०अशुभनी तीव्रमन्दता.

२१	नो	ज०अ०	अल्प	तेथी
२२	,,	,,	तेटलोज	,,
२३	,,	,,	,,	,,
२४	,,	,,	,,	,,
२५	,,	,,	,,	,,
२६	,,	,,	,,	,,
२७	,,	,,	,,	,,
२८	,,	,,	,,	,,
२९	,,	,,	,,	,,
३०	,,	,,	,,	,,
३१	,,	,,	,,	,,
३२	,,	,,	,,	,,

ए प्रमाणे ४०मा स्थान सुधी कहेवुं. ,,

५१	नो	ज०अ०	तेटलोज	,,
५२	,,	,,	,,	,,
५३	,,	,,	,,	,,
५४	,,	,,	,,	,,
५५	,,	,,	,,	,,
५६	,,	,,	,,	,,
५७	,,	,,	,,	,,

–११नो उ०अ० अनन्तगुण तेथी

१२	,,	,,	,,	,,
१३	,,	,,	,,	,,
१४	,,	,,	,,	,,
१५	,,	,,	,,	,,
१६	,,	,,	,,	,,
१७	,,	,,	,,	,,
१८	,,	,,	,,	,,
१९	,,	,,	,,	,,
२०	,,	,,	,,	,,

५८ नो ज०अ० अनन्तगुण ,, –२१ ,, ,, ,, ,,

२२	,,	,,	,,	,,
२३	,,	,,	,,	,,
२४	,,	,,	,,	,,
२५	,,	,,	,,	,,
२६	,,	,,	,,	,,
२७	,,	,,	,,	,,
२८	,,	,,	,,	,,
२९	,,	,,	,,	,,
३०	,,	,,	,,	,,

(आ यन्त्र $\frac{१०७}{१}$ पेजमां चालु.)

५९नो ज०अ० अनन्तगुण तेथी–

६०नो ज०अ० अनन्तगुण तेथी–

६१नो ज०अ० अनन्तगुण तेथी–

६२ ,, ,, ,, ,,,
६३ ,, ,, ,, ,,
६४ ,, ,, ,, ,
६५ ,, ,, ,, ,,
६६ ,, ,, ,, ,,
६७ ,, ,, ,, ,,
६८ ,, ,, ,, ,,
६९ ,, ,, ,, ,,
७० ,, ,, ,, ,,
७१ ,, ,, ,, ,,
७२ ,, ,, ,, ,,
७३ ,, ,, ,, ,,
७४ ,, ,, ,, ,,
७५ ,, ,, ,, ,,
७६ ,, ,, ,, ,,
७७ ,, ,, ,, ,,
७८ ,, ,, ,, ,,
७९ ,, ,, ,, ,,
८० ,, ,, ,, ,,

३१नो उ०अ० अनन्तगुण तेथी

३२ ,, ,, ,, ,,
३३ ,, ,, ,, ,,
३४ ,, ,, ,, ,,
३५ ,, ,, ,, ,,
३६ ,, ,, ,, ,,
३७ ,, ,, ,, ,,
३८ ,, ,, ,, ,,
३९ ,, ,, ,, ,,
४० ,, ,, ,, ,,
४१ नो ,, ,, ,,
४२ ,, ,, ,, ,,
४३ ,, ,, ,, ,,
४४ ,, ,, ,, ,,
४५ ,, ,, ,, ,,
४६ ,, ,, ,, ,,
४७ ,, ,, ,, ,,
४८ ,, ,, ,, ,,
४९ ,, ,, ,, ,,
५० ,, ,, ,, ,,
५१ ,, ,, ,, ,,
५२ ,, ,, ,, ,,
५३ ,, ,, ,, ,,
५४ ,, ,, ,, ,,
५५ ,, ,, ,, ,,
५६ ,, ,, ,, ,,
५७ ,, ,, ,, ,,
५८ ,, ,, ,, ,,
५९ ,, ,, ,, ,,
६० ,, ,, ,, ,,
६१ ,, ,, ,, ,,
६२ ,, ,, ,, ,,
६३ ,, ,, ,, ,,
६४ ,, ,, ,, ,,
६५ ,, ,, ,, ,,
६६ ,, ,, ,, ,,
६७ ,, ,, ,, ,,
६८ ,, ,, ,, ,,
६९ ,, ,, ,, ,,
७० ,, ,, ,, ,,

७१नो उ०अ० अनन्तगुण तेथी

७२ ,, ,, ,, ,,
७३ ,, ,, ,, ,,
७४ ,, ,, ,, ,,
७५ ,, ,, ,, ,,

ए प्रमाणे ८० सुधी कहेवुं.

त्रसचतुष्कनी तीव्रमन्दता.

९०	नो ज०अ०	अल्प	तेथी
८९	,,	अनंतगुण	,,
८८	,,	,,	,,
८७	,,	,,	,,
८६	,,	,,	,,
८५	,,	,,	,,
८४	,,	,,	,,
८३	,,	,,	,,
८२	,,	,,	,,
८१	,,	,,	,,
८०	,,	,,	,,
७९	,,	,,	,,
७८	,,	,,	,,
७७	,,	,,	,,
७६	,,	,,	,,
७५	,,	,,	,,
७४	,,	,,	,,
७३	,,	,,	,,
७२	,,	,,	,,
७१	,,	,,	,,
७०	,,	,,	,,
६९	,,	,,	,,
६८	,,	,,	,,
६७	,,	,,	,,
६६	,,	,,	,,
६५	,,	,,	,,
६४	,,	,,	,,
६३	,,	,,	,,
६२	,,	,,	,,
६१	,,	,,	,,

आ यन्त्र १०८ तथा १०८
१ २
पृष्ठ सुधी सळंग समजवो

९०	नो उ०अ०	अनंतगुण	तेथी
८९	,,	,,	,,
८८	,,	,,	,,
८७	,,	,,	,,
८६	,,	,,	,,
८५	,,	,,	,,
८४	,,	,,	,,
८३	,,	,,	,,
८२	,,	,,	,,
८१	,,	,,	,,
८०	,,	,,	,,
७९	,,	,,	,,
७८	,,	,,	,,
७७	,,	,,	,,
७६	,,	,,	,,
७५	,,	,,	,,
७४	,,	,,	,,
७३	,,	,,	,,
७२	,,	,,	,,
७१	,,	,,	,,
७०	,,	,,	,,

समजुती.

पृष्ट १०५ थी आपेला तीव्रमन्दताना यन्त्रमां आपेला अंकोनी नानी मोटी संख्या प्रमाणे स्थितिनुं नाना मोटापणुं न जाणवुं. अहीं अनुकूळता प्रमाणे जेम बने तेम ओछा अंको वडे तीव्रमन्दता बतावी छे.

(त्रसचतुष्कनी तीव्रमन्दता चालु)

६०नो	ज०अ०	तुल्य	तेथी
५९	,,	,,	,,
५८	,,	,,	,,
५७	,,	,,	,,
५६	,,	,,	,,
५५	,,	,,	,,

ए प्रमाणे ४० सुधी कहेवुं.

३९नो	ज०अ०	तुल्य	,,
३८	,,	,,	,,
३७	,,	,,	,,
३६	,,	,,	,,
३५	,,	,,	,,
३४	,,	,,	,,
३३	,,	,,	,,

३२नो ,, अनन्तगुण

६९नो	उ०अ०	अनंतगुण	तेथी
६८	,,	,,	,,
६७	,,	,,	,,
६६	,,	,,	,,
६५	,,	,,	,,
६४	,,	,,	,,
६३	,,	,,	,,
६२	,,	,,	,,
६१	,,	,,	,,
६०	,,	,,	,,
५९	,,	,,	,,
५८	,,	,,	,,
५७	,,	,,	,,
५६	,,	,,	,,
५५	,,	,,	,,
५४	,,	,,	,,
५३	,,	,,	,,
५२	,,	,,	,,
५१	,,	,,	,,
५०	,,	,,	,,

(आ यन्त्र $\frac{१०८}{२}$ पृष्ठमां चालु.)

(अहीं त्रसचतुष्कनी तीव्रमन्दतानो यन्त्र समाप्त)

३१ नो ज०अ० अनन्तगुण तेथी ४९ नो उ०अ० अनन्तगुण तेथी

४८	,,	,,	,,
४७	,,	,,	,,
४६	,,	,,	,,
४५	,,	,,	,,
४४	,,	,,	,,
४३	,,	,,	,,
४२	,,	,,	,,
४१	,,	,,	,,
४०	,,	,,	,,
३९	,,	,,	,,
३८	,,	,,	,,
३७	,,	,,	,,
३६	,,	,,	,,
३५	,,	,,	,,
३४	,,	,,	,,
३३	,,	,,	,,
३२	,,	,,	,,
३१	,,	,,	,,
३०	,,	,,	,,
२९	,,	,,	,,
२८	,,	,,	,,
२७	,,	,,	,,
२६	,,	,,	,,
२५	,,	,,	,,
२४	,,	,,	,,
२३	,,	,,	,,
२२	,,	,,	,,
२१	,,	,,	,,
२०	,,	,,	,,
१९	,,	,,	,,
१८	,,	,,	,,
१७	,,	,,	,,
१६	,,	,,	,,
१५	,,	,,	,,
१४	,,	,,	,,
१३	,,	,,	,,
१२	,,	,,	,,
११	,,	,,	,,

३० नो उ०अ० ,, ,,

२९ ,, ,, ,,
२८ ,, ,, ,,
२७ ,, ,, ,,
२६ ,, ,, ,,
२५ ,, ,, ,,
२४ ,, ,, ,,
२३ ,, ,, ,,
२२ ,, ,, ,,
२१ ,, ,, ,,
२० ,, ,, ,,
१९ ,, ,, ,,
१८ ,, ,, ,,
१७ ,, ,, ,,
१६ ,, ,, ,,
१५ ,, ,, ,,
१४ ,, ,, ,,
१३ ,, ,, ,,
१२ ,, ,, ,,
११ ,, ,, ,,

तिर्यग्द्विक तथा नीचैर्गोत्रनी तीव्रमन्दता आ प्रमाणे पण जघन्य स्थिति तरफथी जाणवी

तदेवमुक्तोऽनुभागबन्धः। संप्रति स्थितिबन्धाभिधानावसरः। तत्र च चत्वार्यनुयोगद्वाराणि। तद्यथा–स्थितिस्थानप्ररूपणा(१), निषेकप्ररूपणा(२), अबाधाकंडकप्ररूपणा(३), अल्पबहुत्वप्ररूपणा(४) च। तत्र स्थितिस्थानप्ररूपणार्थमाह—

ठिइबंधट्ठाणाइं, सुहुमअपज्जत्तगस्स थोवाइं। बायरसुहुमेयरबिति–चउरिंदियअमणसन्नीणं ॥६८॥
संखेज्जगुणाणि कमा, असमत्तियरे य बिंदियाइम्मि। नवरमसंखेज्जगुणाइँ संकिलेसाइँ (य) सव्वत्थ ॥६९॥

ठिइ त्ति–इह जघन्यस्थितेरारभ्योत्कृष्टां स्थितिं यावत् यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणानि स्थितिस्थानानि। तथाहि—जघन्यायाः स्थिते (जघंन्या स्थिति)रेकं स्थितिस्थानं। सैव समयाधिका द्वितीयं स्थितिस्थानं। द्विसमयाधिका तृतीयं स्थितिस्थानं। एवं तावद्वाच्यं यावदुत्कृष्टा स्थितिः। तानि च स्थितिस्थानानि सूक्ष्मस्यापर्याप्तस्य सर्वस्तोकानि(१)। तेभ्योऽपर्याप्तबादरस्य संख्येयगुणानि(२)। तेभ्योऽपि सूक्ष्मपर्याप्तकस्य संख्येयगुणानि(३)।तेभ्योऽपि पर्याप्तबादरस्य संख्येयगुणानि(४)। एतानि च पल्योपमासंख्येयभागगतसमयप्रमाणानि द्रष्टव्यानि। ततोऽपर्याप्तद्वीन्द्रियस्यासंख्येयगुणानि(५)। कथमेवं गम्यते

सुहुमअपज्जत्तगस्स=सूक्ष्म अपर्याप्तना, ठिइबंधट्ठाणाइं=स्थितिबंधस्थानो, थोवाइं=स्तोक (अल्प) तेथी, असमत्तियरे=अपर्याप्त अने पर्याप्त, बायर०सन्नीणं=बादर अपर्याप्ताना, सूक्ष्म पर्याप्ताना, बादर पर्याप्ताना, अपर्याप्त तथा पर्याप्त बेइंद्रिय, अपर्याप्त तथा पर्याप्त तेइंद्रिय, अप० प० चतुरिंद्रिय, अप०प० असंज्ञी तथा अप० प० संज्ञीना, कमा=अनुक्रमे, संखेज्जगुणाणि=संख्यातगुण कहेवां. नवरं=परंतु, बिंदियाइम्मि=अपर्याप्ता बेइंद्रियना, असंखेज्जगुणाइं=असंख्यातगुणां जाणवा. संकिलेसाइं=संक्लेशस्थानको, सव्वत्थ=सर्वत्र असंखेज्जगुणाइं=असंख्यातगुण कहेवां. ६८–६९

इति चेदुच्यते–द्वीन्द्रियाणामपर्याप्तानां स्थितिस्थानानि पल्योपमसंख्येयभागगतसमयप्रमाणानि, पाश्चात्यानि च पल्योपमासंख्येयभागगतसमयप्रमाणानि। ततः पाश्चात्येभ्योऽमून्यसंख्येयगुणान्येवोपपद्यन्ते। तेभ्योऽपि द्वीन्द्रियस्य पर्याप्तस्य स्थितिस्थानानि संख्येयगुणानि(६)।तेभ्येाऽपि त्रीन्द्रियस्यापर्याप्तकस्य संख्येयगुणानि(७)। तेभ्योऽपि तस्यैव पर्याप्तस्य संख्येयगुणानि(८)। तेभ्योऽपि चतुरिन्द्रियस्यापर्याप्तस्य संख्येयगुणानि(९)।तेभ्योऽपि चतुरिन्द्रियस्य पर्याप्तस्य संख्येयगुणानि(१०)। तेभ्योऽप्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्यापर्याप्तस्य संख्येयगुणानि(११)।तेभ्येाऽप्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य पर्याप्तस्य संख्येयगुणानि(१२)।तेभ्योऽपि संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्यापर्याप्तस्य संख्येयगुणानि(१३)।तेभ्योऽपि संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य पर्याप्तस्य संख्येयगुणानि(१४)।'असमत्तियरेय त्ति' असमाप्तानामपर्याप्तानामितरेषां च पर्याप्तानां बादरादीनां स्थितिस्थानानि क्रमेण संख्येयगुणानि वक्तव्यानीति। नवरमेकेन्द्रियाणां स्थितिस्थानान्यभिधायानन्तरं द्वीन्द्रियस्य प्रथमे भेदेऽपर्याप्तरूपे स्थितिबन्धस्थानान्यसंख्येयगुणानि वक्तव्यानि। तथैव च युक्तिपूर्वं प्रागुक्तानि।

'संकिलेसा य सव्वत्थ' संक्लेशाश्च सर्वत्र सर्वेषु स्थानेष्वसंख्येयगुणा वक्तव्याः,आस्तां द्वीन्द्रियस्य प्रथमभेदेऽपर्याप्तलक्षणे स्थितिस्थानान्यसंख्येयगुणानीति चशब्दार्थः। तद्यथा–सूक्ष्मस्यापर्याप्तस्य संक्लेशस्थानानि सर्वस्तोकानि। तेभ्योऽपर्याप्तबादरस्यासंख्येयगुणानि। तेभ्योऽपि पर्याप्तसूक्ष्मस्यासंख्येयगुणानि। तेभ्योऽपि पर्याप्तबादरस्यासंख्येयगुणानि। तेभ्योऽपि द्वीन्द्रियस्यापर्याप्तस्यासंख्येयगुणानि। एवं पर्याप्तद्वीन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां यथोत्तरमसंख्येयगुणानि वक्तव्यानि। कथमेवं गम्यते सर्वत्राप्यसंख्येयगुणानि संक्लेशस्थानानीति चेदुच्यते–इह सूक्ष्मस्यापर्याप्तस्य जघन्यस्थितिबन्धारंभे यानि

संक्लेशस्थानानि तेभ्यः समयाधिकजघन्यस्थितिबन्धारंभे संक्लेशस्थानानि विशेषाधिकानि। तेभ्योऽपि द्विसमयाधिकजघन्यस्थितिबन्धारंभेऽपि विशेषाधिकानि। एवं तावद्वाच्यं यावत्तस्यैवोत्कृष्टा स्थितिः। तदुत्कृष्टस्थितिबन्धारंभे च संक्लेशस्थानानि जघन्यस्थितिसत्कसंक्लेशस्थानापेक्षयाऽसंख्येयगुणानि लभ्यन्ते। यदैतदेवं तदा सुतरामपर्याप्तबादरस्य संक्लेशस्थानानि अपर्याप्तसूक्ष्मसत्कसंक्लेशस्थानापेक्षयाऽसंख्येयगुणानि भवन्ति। तथाहि–अपर्याप्तसूक्ष्मसत्कस्थितिस्थानापेक्षया बादरापर्याप्तस्य स्थितिस्थानानि संख्येयगुणानि। स्थितिस्थानवृद्धौ च संक्लेशस्थानवृद्धिः। ततो यदा सूक्ष्मापर्याप्तस्यापि स्थितिस्थानेष्वतिस्तोकेषु जघन्यस्थितिस्थानसत्कसंक्लेशस्थानापेक्षया उत्कृष्टे स्थितिस्थाने संक्लेशस्थानान्यसंख्येयगुणानि भवन्ति, तदा बादरापर्याप्तस्थितिस्थानेषु सूक्ष्मापर्याप्तस्थितिस्थानापेक्षयाऽसंख्येयगुणेषु सुतरां भवन्ति। एवमुत्तरत्राप्यसंख्येयगुणत्वं भावनीयमिति ॥ ६८–६९ ॥

एमेव विसोहीओ विग्घावरणेसु कोडिकोडीओ। उदही तीसमसाते अद्धं थीमणुयदुगसाए ॥७०॥

एमेव त्ति–'एमेव विसोहीओ त्ति' यथा संक्लेशस्थानान्यसंख्येयगुणतया प्रागुक्तानि एवमेवासंख्येयगुणतयैवेत्यर्थः। विशोधयोऽपि विशोधिस्थानान्यपि वक्तव्यानि। यतो यान्येव संक्लिश्यमानस्य संक्लेशस्थानानि तान्येव विशुध्यमानस्य

गाथार्थ—विसोहीओ=विशुद्धिस्थानको पण, एमेव=एज प्रमाणे (असंख्यातगुण) छे. विग्घावरणेसु=अन्तराय अने आवरणोनी, असाते=तथा अशाता वेदनीयनी, कोडाकोडीओ उदही तीसं=३० कोडाकोडी सागरोपम छे. थीमणुयदुगसाए=स्त्रीवेद, मनुष्यद्विक अने शातावेदनीयनी, अद्धं=अर्ध (१५को० सा०) छे. ७०

जीवभेदे स्थितिस्थाननो यन्त्रः—

अनुक्रम	जीवभेद	स्थितिस्थानसंख्या	अल्पबहुत्व	संक्लेशस्थान	विशुद्धिस्थान
१	सूक्ष्म अपर्याप्त	पल्योषमना असंख्यातमा भाग प्रमाण	सर्वाल्प	सर्वाल्प	सर्वाल्प
२	बादर अपर्याप्त	बृहत् ,, ,,	संख्यातगुण	असंख्यातगुणां	असंख्यातगुणां
३	सूक्ष्म पर्याप्त	,, ,, ,,	,,	,,	,,
४	बादर पर्याप्त	,, ,, ,,	,,	,,	,,
५	बेइंद्रिय अपर्याप्त	पल्योपमना संख्यातमा भाग प्रमाण	असंख्यातगुण	,,	,,
६	,, पर्याप्त	बृहत् ,, ,,	संख्यातगुण	,,	,,
७	त्रीन्द्रिय अपर्याप्त	,, ,, ,,	,,	,,	,,
८	,, पर्याप्त	,, ,, ,,	,,	,,	,,
९	चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त	,, ,, ,,	,,	,,	,,
१०	,, पर्याप्त	,, ,, ,,	,,	,,	,,
११	असंज्ञि अपर्याप्त	,, ,, ,,	,,	,,	,,
१२	,, पर्याप्त	,, ,, ,,	,,	,,	,,
१३	संज्ञि अपर्याप्त	अन्तःकोडाकोडी प्र०	,,	,,	,,
१४	,, पर्याप्त	अन्तर्मुहूर्तहीन७० को० को० सागर प्रमाण.	,,	,,	,,

सतेा विशुद्धिस्थानानि भवन्ति । एतच्च प्रागेव सप्रपञ्चं भावितं, नेह भूयेा भाव्यते । ततेा विशेाधिस्थानान्यपि संक्लेशस्थानवत् क्रमेण सर्वत्राप्यसंख्येयगुणानि वक्तव्यानि ।

सांप्रतमुत्कृष्टेतरस्थितिप्रतिपादनार्थमाह–'विग्घ त्ति' अन्तरायमावरणं ज्ञानावरणं दर्शनावरणं च । तत्र पञ्चानामन्तरायप्रकृतीनां, पञ्चानां ज्ञानावरणप्रकृतीनां, नवानां च दर्शनावरणप्रकृतीनां, असातवेदनीयस्य(२०)चोत्कृष्टा स्थितिस्त्रिंशत्सागरोपमाणां कोटीकोटयः । इह द्विधा स्थितिः–कर्मरूपतावस्थानलक्षणाऽनुभवयेाग्या च । तत्र कर्मरूपतावस्थानलक्षणामेव स्थितिमधिकृत्य जघन्योत्कृष्टप्रमाणाभिधानमिदमवगन्तव्यं । अनुभवप्रायेाग्या पुनरबाधाकालहीना । येषां च कर्मणां यावत्यः सागरेापमकेाटीकेाटयस्तेषां तावन्ति वर्षशतानि अबाधाकालः । तथाहि–मतिज्ञानावरणस्य त्रिंशत्सागरेापमकेाटीकेाटय उत्कृष्टा स्थितिरतस्तस्याबाधाकालेाऽप्युत्कृष्टस्त्रिंशद्वर्षशतान्यवगन्तव्यः । यतस्तन्मतिज्ञानावरणमुत्कृष्टस्थितिकं बद्धं सत्त्रिंशद्वर्षशतानि यावन्न काञ्चिदपि स्वोदयतेा जीवस्य बाधामुत्पादयति । अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः । एवं श्रुतज्ञानावरणादीनामप्युक्तप्रकृतीनामबाधाकालेाऽबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेको भावनीयः।तथा स्त्रीवेदे मनुष्यद्विके मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्वीरूपे सातवेदनीये(४) च पूर्वोक्तस्य स्थितिप्रमाणस्यार्धमुत्कृष्टस्थितितया द्रष्टव्यं, पञ्चदशसागरोपमकोटीकोटयः स्त्रीवेदादीनामुत्कृष्टा स्थितिरवगन्तव्येत्यर्थः । पञ्चदश वर्षशतान्यबाधाकालेाऽबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः ॥ ७० ॥

तिविहे मोहे सत्तरि, चत्तालीसा य वीसई य कमा । दस पुरिसे हासरई, देवदुगे खगइचेट्ठाए ॥७१॥

गाथार्थ--तिविहे मोहे=त्रिविध मोहनीयनी, कमा=अनुक्रमे, सत्तरि=७०को०सा०, चत्तालीस=४० को०सा०, वीसई य=

तिविहे त्ति–त्रिविधे त्रिप्रकारे मोहे मोहनीये मिथ्यात्वलक्षणे दर्शनमोहनीये, षोडशकषायलक्षणे कषायमोहनीये, नपुंसकवेदारतिशोकभयजुगुप्सारूपे च नोकषायमोहनीये, यथासंख्यमुत्कृष्टा स्थितिः सागरोपमकोटीकोट्यः सप्ततिः चत्वारिंशत् विंशतिश्च। यथासंख्यमेव च सप्त चत्वारि द्वे च वर्षसहस्रे अबाधाकालः। अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः। इह पुरुषवेदहास्यरतीनां विशेषतो वक्ष्यमाणत्वात् स्त्रीवेदस्य चोक्तत्वान्नोकषायमोहनीयग्रहणेन नपुंसकवेदारतिशोकभयजुगुप्सानामेव ग्रहणमवगन्तव्यं। 'दस पुरिसेत्यदि' पुरुषवेदे हास्ये रतौ देवद्विके देवगतिदेवानुपूर्वीरूपे खगतौ चेष्टायां प्रशस्तविहायोगतौ(६) दशसागरोपमकोटीकोटय उत्कृष्टा स्थितिः। दशवर्षशतानि चाबाधाकालः। अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः ॥ ७१ ॥

थिरसुभपंचगउच्चे, चेवं संठाणसंघयणमूले। तब्बीयाइ बिवुड्ढी स सुहुमविगलतिगे ॥ ७२ ॥

थिर त्ति–स्थिरे, शुभपञ्चके शुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तिरूपे, उच्चैर्गोत्रे च। तथा 'संठाणसंघयणमूले त्ति' मूले प्रथमे संस्थाने समचतुरस्रलक्षणे, प्रथमे च संहनने वज्रर्षभनाराचसंज्ञे(९)। एवं पूर्वोक्तप्रकारेणोत्कृष्टा स्थितिरवगन्तव्या, दश सागरोपमकोटीकोटय उत्कृष्टा स्थितिरवगन्तव्येत्यर्थः। दश वर्षशतानि चाबाधा। अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः। 'तब्बीयाइ

अने २० को०सा० छे. पुरिसे=पुरुषवेद, हासरई=हास्य अने रति, देवदुगे=देवद्विक, खगइचेट्ठाए=अने शुभविहायोगतिनी, दस=१० कोडाकोडी सागरोपमनी छे.७१। थिरसुभपंचगउच्चे=स्थिर, शुभपंचक, उच्चैर्गोत्र, च=अने, संठाणसंघयणमूले=प्रथम संस्थान अने प्रथम संघयणनी, एवं=ए प्रमाणे(१०को०सा०)छे. तब्बीयाई=द्वितीयादिक संस्थान संघयणमां, बिवुड्ढी=बे बे को०सा०नी वृद्धि करवी. सुहुम०तिगे=सूक्ष्मत्रिक अने विकलत्रिकनी, अट्ठारस=१८ को०सा०नी छे. ७२

बिवुड्ढी' तेषां संस्थानानां संहननानां च मध्ये द्वितीयादिषु द्वितीयतृतीयादिषु संस्थानेषु संहननेषु च द्विवृद्धिः द्विकवृद्धिः क्रमेणावसेया । तद्यथा–द्वितीययोः संस्थानसंहननयोर्द्वादश सागरोपमकोटीकोट्य उत्कृष्टा स्थितिः, द्वादश वर्षशतानि चाबाधाकालः। अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः। तृतीययोः संस्थानसंहननयोश्चतुर्दश सागरोपमकोटीकोट्य उत्कृष्टा स्थितिः, चतुर्दश वर्षशतानि चाबाधाकालः,अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः। चतुर्थयोः संस्थानसंहननयोः षोडश सागरोपमकोटीकोट्य उत्कृष्टा स्थितिः, षोडश वर्षशतान्यबाधाकालः, अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः । पञ्चमयोः संस्थानसंहननयोरष्टादश सागरोपमकोटीकोट्य उत्कृष्टा स्थितिः, अष्टादश वर्षशतानि चाबाधाकालः, अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः। षष्ठयोःसंस्थानसंहननयोर्विंशतिसागरोपमकोटीकोट्यउत्कृष्टा स्थितिः,द्वे वर्षसहस्रे अबाधाकालः,अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः(१०)।'अट्ठारस सुहुमविगलतिगे'सूक्ष्मत्रिके सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणरूपे,विकलत्रिके द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातिलक्षणे,(६) अष्टादशसागरोपमकोटीकोट्य उत्कृष्टा स्थितिः, अष्टादश वर्षशतान्यबाधाकालः, अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः ॥७२॥

तित्थगराहारदुगे, अंतो वीसा सनिच्चनामाणं । तेत्तीसुदही सुरनारयाउ सेसाउ पल्लतिगं ॥ ७३ ॥

तित्थगर त्ति-तीर्थकरे,आहारकद्विके आहारकशरीराहारकांगोपांगरूपे(३)अन्तःकोटीकोटी उत्कृष्टा स्थितिः,अन्तर्मुहूर्तमबाधा-

---

गाथार्थ—तित्थगराहारगदुगे=तीर्थंकर अने आहारकद्विकनी, अंतो=अन्तःकोडाकोडी सागरोपमनी, सनिच्चनामाणं=नीचैर्गोत्र सहित बाकीनी नाम कर्मनी प्रकृतिओनी, वीसा=२०को०सा० छे, सुरनारयाउ=देवायुष्य अने नरकायुष्यनी, तेत्तीसुदही=३३ सागरोपम, सेसाउ=बाकीना बे आयुष्यनी, पल्लतिगं=त्रण पल्योपम छे. ७३

कालः,अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः।'वीसा सनिचनामाणं'शेषाणां नामप्रकृतीनां नरकगतिनरकानुपूर्वीतिर्यग्द्विकैकेन्द्रियजातिपञ्चेन्द्रियजातितैजसकार्मणौदारिकवैक्रियशरीरौदारिकांगोपांगवैक्रियांगोपांगवर्णगन्धरसस्पर्शागुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासातपोद्योताप्रशस्तविहायोगतित्रसस्थावरबादरपर्याप्तप्रत्येकास्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेययशःकीर्तिनिर्माणलक्षणानां नीचैर्गोत्रस्य(३६) च विंशतिः सागरोपमकोटीकोटच उत्कृष्टा स्थितिः, विंशतिर्वर्षशतानि चाबाधाकालः, अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः×। 'तेत्तीसुदही सुरनारयाउ' सुरायुषो नारकायुषश्चोत्कृष्टा स्थितिस्त्रयस्त्रिंशदुदधयः सागरोपमाणि पूर्वकोटीत्रिभागाभ्यधिकानीति शेषः। पूर्वकोटीत्रिभागश्चाबाधाकालः। अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः।'सेसाउ पल्लतिगं' शेषायुषोर्मनुष्यतिर्यगायुषोः पल्यत्रिकं त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीत्रिभागाभ्यधिकानीति शेषः। पूर्वकोटीत्रिभागश्चाबाधाकालः। अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः (४)। एतच्च पूर्वकोट्यायुषश्चतुर्गतिगमनयोग्यान् उत्कृष्टस्थितिबन्धकान् तिर्यग्मनुष्यान् प्रति द्रष्टव्यं। तानेवाश्रित्य यथोक्तरूपाया उत्कृष्टस्थितेः पूर्वकोटित्रिभागरूपायाश्चाबाधायाः प्राप्यमाणत्वात् ॥ ७३ ॥

सांप्रतमसंज्ञिपञ्चेन्द्रियादीन् बन्धकानाश्रित्यायुषामुत्कृष्टां स्थितिं प्रतिपादयन्नाह—

आउचउक्कुक्कोसो, पल्लासंखेज्जभागममणेसु। सेसाण पुव्वकोडी, साउतिभागो अबाहा सिं ॥ ७४ ॥

×(य० उ० ४१) अत्र चौदारिकादीनां ये बन्धनसङ्घातास्तेषामपि स्थितिः स्वशरीरतुल्यैवेति दृश्यं। तथा चोक्तं—" स्थित्युदयबन्धकालाः सङ्घातबन्धनानां स्वशरीरतुल्या ज्ञेया " इति ।

गाथार्थ—अमणेसु=असंज्ञीने विषे, आउचउक्कुक्कोसो=चारे आयुष्यनो उत्कृष्ट बंध, पल्लासंखेज्जभागं=पल्योपमना असंख्यातमा

आउ त्ति–अमनस्केष्वसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु पर्याप्तेषु आयुरुत्कृष्टस्थितिबन्धकेषु चतुर्णामप्यायुषां परभवसंबन्धिनामुत्कृष्टा स्थितिः पल्योपमासंख्येयभागमात्रा पूर्वकोटित्रिभागाभ्यधिकेति शेषः। पूर्वकोटित्रिभागश्चाबाधाकालः। अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः । शेषाणां चैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाणां पर्याप्तापर्याप्तानामसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां चापर्याप्तानामायुरुत्कृष्टस्थितिबन्धकानां परभवायुष उत्कृष्टस्थितिबन्धः पूर्वकोटीस्वस्वभवत्रिभागाभ्यधिको वेदितव्यः । 'सिं त्ति' एषां स्वस्वभवत्रिभागोऽबाधाकालः । अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः ॥ ७४ ॥

इदानीमायुर्वर्जानां सर्वकर्मणामबाधाकालपरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—

वाससहस्समबाहा, कोडाकोडीदसगस्स सेसाणं । अणुवाओ अणुवट्टणगाउसु छम्मासिगुक्कोसो ॥७५॥

वास त्ति–कोटीकोटीदशकस्य दशानां सागरोपमकोटीकोटीनां वर्षसहस्रं दशवर्षशतानि अबाधा भवति । शेषाणां द्वादशचतुर्दशपञ्चदशषोडशाष्टादशविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्सप्ततीनामनुपातेऽनुसारः कर्तव्यः, त्रैराशिकमनुसर्तव्यमित्यर्थः । तथाहि—यदा दशानां सागरोपमकोटीकोटीनां वर्षसहस्रमबाधा प्राप्यते, तदा द्वादशानां सागरोपमकोटीकोटीनां

भाग प्रमाण छे. सेसाण=बाकीना जीवोने, साउतिभागो=स्व स्व आयुष्यना त्रीजा भागे अधिक, पुव्वकोडी=पूर्वकोटी वर्षनो छे. सिं=ए जीवोने, अबाहा=स्वायुः त्रिभाग प्रमाण आयुष्यनी अबाधा छे.७४। कोडाकोडीदसगस्स=१०को०सागरोपमनी, वाससहस्सं=१००० वर्ष, अबाहा=अबाधा छे. सेसाणं=बाकीनी स्थितिओमां, अणुवाओ=(त्रिराशि प्रमाणे) अनुसार जाणवो. अणुवट्टणगाउसु=अनपवर्तनीय आयुष्यवाळाने, छम्मासिगुक्कोसो=(आयुष्यकर्मनी) छ मासनी उत्कृष्ट अबाधा जाणवी. ७५

वर्षसहस्रं शतद्वयं चाबाधा भवति, चतुर्दशानां वर्षसहस्रं शतचतुष्टयं च। एवं सर्वत्राप्यनुसर्तव्यं। 'अणुवट्टणगाउसुति' अनपवर्तनीयायुष्केषु देवनारकासंख्येयवर्षायुष्कतिर्यङ्मनुष्येषु परभवायुष्कोत्कृष्टस्थितिबन्धकेषु परभवायुष उत्कृष्टाऽबाधा षाण्मासिकी षण्मासप्रमाणा द्रष्टव्या। षण्मासावशेषे एव तेषां परभवायुर्बन्धकत्वात्[×]। केचित्पुनर्युगलधर्मिणां पल्योपमासंख्येयभागप्रमाणामबाधामिच्छन्ति। तदुक्तं-"पलियासंखिज्जंसं जुगधम्माणं वयंतण्णे" इति॥७५॥

तदेवमुक्तोत्कृष्टा स्थितिः, संप्रति जघन्यामभिधातुकाम आह—

भिन्नमुहुत्तं आवरण-विग्घंदंसणचउक्कलोभंते। बारस सायमुहुत्ता, अट्ठ य जसकित्तिउच्चेसु ॥७६॥

भिन्न त्ति-पञ्चानां ज्ञानावरणीयानां पञ्चानामन्तरायाणां चतुर्णां दर्शनावरणानां चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणरूपाणां सर्वान्तिमस्य च लोभस्य संज्वलनसंज्ञस्य भिन्नमुहूर्तमन्तर्मुहूर्तं जघन्या स्थितिः, अन्तर्मुहूर्तमबाधाकालः, अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः (१५)। सातवेदनीयस्य जघन्या स्थितिर्द्वादश मुहूर्ताः, अन्तर्मुहूर्तं चाबाधाकालः अबाधाकालहीनश्च कर्मद-

× (य०उ० ४२) शेषेषु तु स्वायुस्त्रिभागरूपाऽबाधोक्तैव, सापि न नियतैवावतिष्ठते, स्वायुस्त्रिभाग इव स्वायुस्त्रिभागत्रिभागे स्वायुस्त्रिभागत्रिभागत्रिभागेऽपि च परभवायुर्बन्धाभ्युपगमात् स्वायुर्नवभागसप्तविंशतिभागरूपाया अप्यबाधायाः संभवादिति सम्प्रदायः।

गाथार्थ—आवरण०लोभंते=ज्ञानावरणीय ५, अन्तराय ५, दर्शनावरणीय ४ अने संज्वलन लोभनी, भिन्नमुहुत्तं=अन्तर्मुहूर्त प्रमाण, साय=शातानी, बारसमुहुत्ता=१२मुहूर्तनी, जसकित्तिउच्चेसु=यशःकीर्ति अने उच्चैर्गोत्रनी, अट्ठ य=आठ मुहूर्तनी(ज०स्थिति)छे.७६

लिकनिषेकः। इह काषायिक्या एव स्थितेर्जघन्यत्वप्रतिपादनमभिप्रेतं, अतो द्वादश मुहूर्ता इत्युक्तं। अन्यथा सातवेदनीयस्य जघन्या स्थितिः समयद्वयमात्रापि सयोगिकेवल्यादौ प्राप्यते। तथा यशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रयोरष्टौ मुहूर्ता जघन्या स्थितिः, अन्तर्मुहूर्तमबाधा, अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः (३)॥ ७६ ॥

दो मासा अद्धद्धं, संजलणे पुरिस अट्ठ वासाणि। भिन्नमुहुत्तमबाहा, सव्वासिं सव्वहिं हस्से॥ ७७ ॥

दो मास त्ति–संज्वलनानां द्वौ मासौ अर्धार्धं च जघन्या स्थितिः। एतदुक्तं भवति–संज्वलनक्रोधस्य द्वौ मासौ जघन्या स्थितिः। संज्वलनमानस्य मासः। संज्वलनमायाया अर्धमासः। तथा पुरुषे पुरुषवेदस्याष्टौ वर्षाणि जघन्या स्थितिः। सर्वत्राप्यन्तर्मुहूर्तमबाधा। अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः। अबाधाकालप्रमाणप्रतिपादनार्थमाह–'भिन्नेत्यादि' सर्वासामपि प्रकृतीनामुक्तानां वक्ष्यमाणानां च सर्वस्मिन्नपि ह्रस्वे जघन्ये स्थितिबन्धे भिन्नमुहूर्तमबाधा द्रष्टव्या। तथैव च प्राक् प्रतिपादिता वक्ष्यते चेति (४) ॥ ७७ ॥

संप्रत्यायुषो जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

खुड्डागभवो आउसु, उववायाउसु समा दस सहस्सा। उक्कोसा संखेज्जा–गुणहीण आहारतित्थयरे॥७८॥

गाथार्थ—संजलणे=संज्वलनत्रिकनी, दो मासा अद्धद्धं=बे मास अने अर्ध अर्ध, पुरिस=पुरुषवेदनी, अट्ठवासाणि=आठ वर्षनी जघन्यस्थिति छे. सव्वासिं=सर्व प्रकृतिओना, सव्वहिं हस्से=सर्वे जघन्यस्थितिबंधमां, भिन्नमुहुत्तमबाधा=अबाधाअन्तर्मुहूर्त प्रमाण छे. ७७ आउसु=आयुष्यकर्मने विषे, खुड्डागभवो=मनुष्यायुष्य अने तिर्यंचायुष्यनी ज०स्थिति क्षुल्लकभव प्रमाण छे. उववायाउसु=

खुड्डागभवो त्ति–तिर्यगायुषो मनुष्यायुषश्च जघन्या स्थितिः क्षुल्लकभवः । तस्य किं मानमिति चेदुच्यते–आवलिकानां द्वे शते षट्पञ्चाशदधिके । अपि चैकस्मिन्मुहूर्ते घटिकाद्वयप्रमाणे सप्तत्रिंशच्छतानि त्रिसप्तत्यधिकानि प्राणापानानां हृष्टानवकल्पजन्तुसत्कानां भवन्ति । एकस्मिंश्च प्राणापाने साधिकाः सप्तदश क्षुल्लकभवाः । सकले च मुहूर्ते पञ्चषष्टिसहस्राणि पञ्च शतानि षट्त्रिंशदधिकानि क्षुल्लकभवानां भवन्ति । अत्रापि ' सव्वहिं हस्से' इतिवचनादन्तर्मुहूर्तमबाधा, अबाधाकालहीनश्च

× (य०उ० ४३) ततः पञ्चषष्टिसहस्रपञ्चषट्त्रिंशल्लक्षणस्य मुहूर्त्तगतक्षुल्लकभवग्रहणराशेर्भाज्यस्य मुहूर्त्तगतप्राणापानराशिना त्रिसप्तत्यधिकसप्तत्रिंशच्छतप्रमाणेन भागे हृते सति यल्लभ्यते तदेकत्र प्राणापाने क्षुल्लकभवग्रहणप्रमाणं भवति । ते च सप्तदश भवाः । तथा यैर्भागहारांकमानैरंशैः क्षुल्लकभवः संपद्यते, ते एकत्र प्राणापानेऽष्टादशस्यापि पञ्चनवत्यधिकत्रयोदशशतप्रमाणा अंशा आयान्ति । अष्टसप्तत्यधिकत्रयोविंशतिशतानि चांशानां न पूर्यन्ते। तदेवं समधिकाः सप्तदश क्षुल्लकभवा एकत्र प्राणापाने भवन्तीति प्रसिद्धं । एतच्च क्षुल्लकभवग्रहणं सर्वेषामप्यौदारिकशरीरिणां भवतीति भगवत्यामपि सिध्यं । यत्पुनरावश्यकटीकायां क्षुल्लकभवग्रहणं वनस्पतिष्वेव प्राप्यत इत्युक्तं तन्मतान्तरमिति बहुश्रुताः संगिरन्ते ।

उपपात आयुष्यवाळा (देव, नारक)नी, समा दस सहस्स=१० हजार वर्षनी छे. आहारतित्थयरे=आहारकद्विक अने तीर्थंकरनामनी, उक्कोसा=उत्कृष्टथी, संखेज्जागुणहीण=संख्यातगुणहीन जघन्यस्थिति छे. ७८

१ वनस्पतिष्वेवेत्यावश्यके मतान्तरं तदितिबहुश्रुताः । जघन्यं तत्रैवान्यत्र किंचिदाधिक्यभावात्, तथा च नरादीनां जघन्यमन्तर्मुहूर्तमित्यपि सिद्धं द्वाभ्यामानवभ्यः समयेभ्य अंतर्मुहूर्त्तव्यपदेशात् इति केचित् ।

कर्मदलिकनिषेकः । तथा उपपातायुषो देवानां नारकाणां चायुषो जघन्या स्थितिर्दश वर्षसहस्राणि, अन्तर्मुहूर्तमबाधा, अबाधाकालहीनश्च कर्मदलिकनिषेकः (४)। अधुना तीर्थकराहारकयोर्जघन्यां स्थितिमभिधातुकाम आह–'उक्कोसेत्यादि' आहारकशरीराहारकांगोपांगतीर्थकरनाम्नां योत्कृष्टा स्थितिः प्रागुक्ताऽन्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा सा संख्येयगुणहीना जघन्या स्थितिर्भवति (३) । सापि चान्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणैव । ननु तीर्थकरनामकर्म तीर्थकरभवादर्वाक् तृतीये भवे बध्यते । तदुक्तं–"बज्झइ तं तु भयवओ तइयभवे(वे)सक्कइत्ताणं"। तत्कथं जघन्यतोऽप्यन्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा तस्य स्थितिरुपपद्यते ? तदयुक्तं, अभिप्रायापरिज्ञानात् । ' बज्झइ तं तु' इत्यादिकं निकाचनापेक्षयोक्तं, इतरथा तु तृतीयभवादर्वाक्तरामपि बध्यते । उक्तं च विशेषणवत्यां–"कोडाकोडीअयरोवमाण तित्थयरनामकम्मठिई । बज्झइ य तं अणंतरभवम्मि तइयम्मि निद्दिट्ठं ॥ १ ॥ " ततः कथमेतत्परस्परं युज्यते ? अत्रोत्तरं–"जं बज्झइत्ति भणियं तत्थ निकाइज्जइ त्ति नियमोऽयं । तदवंझफलं नियमा भयणा अनिकाइयावत्थे ॥ १ ॥ " आह—यदि तीर्थकरनाम्नो जघन्यापि स्थितिरन्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा, तर्हि तावत्याः स्थितेस्तिर्यग्भवभ्रमणमन्तरेण पूरयितुमशक्यत्वात् तिर्यग्गतावपि तीर्थकरनामसत्कर्मा जन्तुः कियन्तं कालं यावद् भवेत् । तथा च सत्यागमविरोधः। आगमे हि तिर्यग्गतौ तीर्थकरनामसत्कर्मा सन् प्रतिषिध्यते, 'नैष दोषः, निकाचितस्यैव तीर्थकरनामकर्मणस्तिर्यग्गतौ सतः प्रतिषेधात्। उक्तं च–"जमिह निकाइयतित्थं तिरियभवे तं

× (य०उ० ४४) तथा चोक्तं विशेषणवत्यामेव—" तिरिएसु णत्थि तित्थयरणाम संतं ति देसियं समए । कहय तिरिओ ण होही अयरोवम कोडिकोडीओ ॥१॥ तं पि सुनिकाइयस्सेव तइयभवभाविणो विणिद्दिट्ठं । अणिकाइयंमि वच्चइ सव्वगईओवि ण

निसेहियं संतं । इयरम्मि नत्थि दोसो उव्वट्टोवट्टणासज्झे ॥ १ ॥ " अस्या अक्षरगमनिका—इहास्मिन् प्रवचने यत्तीर्थकरनामकर्म निकाचितमवश्यवेद्यतया स्थापितं तदेव स्वरूपेण सद्विद्यमानं तिर्यग्गतौ निषिद्धं । इतरस्मिन् पुनरनिकाचिते उद्वर्तनापवर्तनासाध्ये तिर्यग्भवे विद्यमानेऽपि न कश्चिद्दोष इति । अत्रापि चान्तर्मुहूर्तमबाधा । ततः परं दलिकरचनायाः संभवादवश्यं प्रदेशोदयसंभवः ॥ ७८ ॥

उक्तशेषाणां प्रकृतीनां जघन्यस्थितिप्ररूपणार्थमाह—

वग्गुक्कोसठिईणं, मिच्छत्तुक्कोसगेण जं लद्धं । सेसाणं तु जहन्नो, पल्लासंखेज्जगेणूणो ॥ ७९ ॥

विरोहो ॥ २ ॥ " तथा च यत्सुनिकाचितं तदेव तीर्थकरनाम सत्तिर्यग्गतौ प्रतिषिध्यं, यत्तु प्रभूतस्थितिकमप्यपवर्त्तनाकरणेन लघुस्थितिकं क्रियते, उद्वर्त्तनया वा तदल्पस्थितिकं सद्बृहत्स्थितिकत्वेन व्यवस्थाप्यते, तस्योद्वर्त्तनापवर्त्तनासाध्यस्य तिर्यग्गतौ सत्वेऽपि न दोष इति सिध्यं । उक्तं च—"जमिह णिकाइयतित्थं तिरियभवे तं णिसेहियं संतं । इयरम्मि णत्थि दोसो उव्वट्टोवट्टणासज्झे ॥१॥" अत्र च तीर्थकराहारकद्विकयोरन्तःसागरोपमकोटीकोट्याः संख्येयभागादारभ्य निकाचयितुमारब्धयोर्यदा सर्वात्मना निकाचना कृता भवति, तदा सुनिकाचितस्य तीर्थकरनाम्न उत्कृष्टा स्थितिः किञ्चिन्न्यूनपूर्वकोटीद्वयाभ्यधिकानि त्रयस्त्रिंश-

---

गाथार्थ—सेसाणं=बाकीनी प्रकृतिओनो, तु=तो, वग्गुक्कोसठिईणं=स्ववर्गनी उत्कृष्ट स्थितिने, मिच्छत्तुक्कोसगेण=मिथ्यात्वनी उत्कृष्ट स्थितिवडे भागतां, जं लद्धं=जे प्राप्त थाय तेमांथी, पल्लासंखेज्जगेणूणो=पल्योपमना असंख्यातमा भागे ओछो, जहन्नो=जघन्यस्थितिबन्ध छे. ७९. । १ कस्यचिदेवेत्येके, उदये चास्य प्रदेशत आश्चैश्वर्योदय इति ।

वग्गुक्कोस त्ति–इह ज्ञानावरणप्रकृतिसमुदायो ज्ञानावरणीयवर्ग इत्युच्यते। एवं दर्शनावरणप्रकृतिसमुदायो दर्शनावरणीयवर्गः। वेदनीयप्रकृतिसमुदायो वेदनीयवर्गः। दर्शनमोहनीयप्रकृतिसमुदायो दर्शनमोहनीयवर्गः। चारित्रमोहनीयप्रकृतिसमुदायश्चारित्रमोहनीयवर्गः। नोकषायमोहनीयप्रकृतिसमुदायो नोकषायमोहनीयवर्गः। नामप्रकृतिसमुदायो नामवर्गः। गोत्रप्रकृतिसमुदायो गोत्रवर्गः। अन्तरायप्रकृतिसमुदायोऽन्तरायवर्गः। एतेषां वर्गाणां यात्मीयात्मीयोत्कृष्टा स्थितिस्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यादिलक्षणा तस्या मिथ्यात्वस्योत्कृष्टया स्थित्या सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीलक्षणया भागे हृते सति यल्लभ्यते तत्पल्योपमासंख्येयभागन्यूनं सदुक्तशेषाणां प्रकृतीनां जघन्यस्थितेः परिमाणमवसेय×। तथाहि–दर्शनावरणीयवेदनीत्सागरोपमाणि। तथाहि—तीर्थकरभवादर्वाक् तृतीये भवे पूर्वकोट्यायुषा प्रथमत एव तन्निकाचितं। ततोऽनुत्तरसुरेषु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिको देवो जातः। ततोऽपि च्युत्वा चतुरशीतिलक्षपूर्वायुस्तीर्थकरो जायत इति। सुनिकाचितस्याहारकद्विकस्य तु पल्योपमासंख्येयभाग उत्कृष्टा स्थितिः। अल्पनिकाचितयोश्च तीर्थकराहारकद्विकयोरन्तःसागरोपमकोटाकोट्याः संख्येयतमो भाग उत्कृष्टा स्थितिरिति विवेचितं पञ्चसंग्रहे। अत्रापि चान्तर्मुहूर्त्तमबाधा, उत्कृष्टस्थितावपि चानयोरियत्येवाबाधोक्ता। ततः परं दलिकरचनायाः सद्भावेनावश्यं प्रदेशोदयसंभवः। केचित्तु तीर्थकरनामकर्मान्तर्मुहूर्त्तादूर्ध्वं कस्यचित्प्रदेशत उदेति, तदुदये चाश्चैश्वर्यादय ऋद्धिविशेषा अन्यजीवेभ्यो विशिष्टतरास्तस्य संभवन्तीति संभावयन्ति। अत्र च तीर्थकरनाम्नो जघन्या स्थितिर्दशवर्षसहस्रमात्राऽऽहारकद्विकस्य चान्तर्मुहूर्त्तमात्रा पञ्चसंग्रहे प्रतिपादिताऽस्ति, तच्च ग्रन्थकृदभिप्रायोत्तीर्णमाचार्यान्तरस्य मतान्तरमिति द्रष्टव्यम्। ×(य०उ०४५) पञ्चसंग्रहे तु वर्गोत्कृष्टस्थितिर्विभजनीयतया नाभिप्रेता, किंतु "सेसाणुक्कोसाओ मिच्छत्तठिईइ जं लद्धं"

ययोरुत्कृष्टा स्थितिस्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा, तस्या मिथ्यात्वस्थित्या सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणया भागे हृते सति 'शून्यं शून्येन पातयेत्' इतिवचनाल्लब्धास्त्रयः सागरोपमसप्तभागाः, ते पल्योपमासंख्येयभागहीना निद्रापञ्चकासातवेदनीययोर्जघन्या स्थितिः। एवं मिथ्यात्वस्य सप्त सप्त भागाः पल्योपमासंख्येयभागहीनाः, संज्वलनवर्जानां द्वादशकषायाणां चत्वारः सप्तभागाः पल्योपमा ख्येयभागहीनाः। तथा नोकषायमोहनीयस्य नामकर्मणो गोत्रस्य च स्वस्वोत्कृष्टायाः स्थितेर्विंशतिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणाया मिथ्यात्वस्थित्या सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणया भागे हृते सति यौ लब्धौ द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ, तौ पल्योपमासंख्येयभागहीनौ पुरुषवेदवर्जानामष्टानां नोकषायाणां देवद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकाहारकद्विकयशःकीर्तितीर्थकरवर्जशेषनामप्रकृतीनां नीचैर्गोत्रस्य च जघन्या स्थितिः। वैक्रियषट्कस्य देवगतिदेवानुपूर्वीनरकगतिनरकानुपूर्वीवैक्रियशरीरवैक्रियांगोपांगलक्षणस्य द्वौ सप्तभागौ सहस्रगुणितौ पल्योपमा(म)संख्येयभागहीनौ जघन्या स्थितिः। यतस्तस्य वैक्रियषट्कस्य जघन्यस्थितिबन्धका असंज्ञिपञ्चेन्द्रियास्ते च जघन्यां स्थितिमेतावतीमेव बध्नन्ति, न न्यूनां। तदुक्तं—"वेउव्वियछक्के तं सहस्स (विउव्वछक्के तं सहस) ताडियं जं असण्णिणो तेसिं। पलियासंखंसूणं ठिइ अबाहूणियनिसेगो ॥ १ ॥" अस्या अक्षरगमनिका—"वग्गुक्कोसठिईणं मिच्छत्तुक्कोसियाए" इत्ययेन करणेन यल्लब्धं तत् सहस्रताडितं गुणितं। ततः पल्यो पमस्या(स्य)संख्येयेनांशेन भागेन न्यूनं सत् वैक्रियषट्के उक्तस्वरूपे जघन्यस्थितेः परिमाणमवसेयं। कुत इत्याह-यद्यस्मात्कारणात्तेषां वैक्रियषट्कलक्षणानां कर्मणां असंज्ञिपञ्चेन्द्रिया एव जघन्यस्थितेर्बन्धकाः। ते च जघन्यां स्थितिमेतावतीमेव

इति ग्रन्थेन स्वस्वोत्कृष्टस्थितेर्मिथ्यात्वोत्कृष्टस्थित्या भागे हृते यल्लभ्यते तदेव जघन्यस्थितिपरिमाणमुक्तं। तत्र निद्रापञ्चकस्यासात-

बध्नन्ति, न न्यूनां, अन्तर्मुहूर्तमबाधा, अबाधाकालहीना च कर्मस्थितिः कर्मदलिकनिषेक इति ॥ ७९ ॥

वेदनीयस्य च प्रत्येकमुत्कृष्टा स्थितिस्त्रिंशत्सागरोपमकोटाकोटिरिति, तस्या मिथ्यात्वोत्कृष्टस्थित्या भागे ह्रियमाणे शून्यं शून्येन पातयेदिति वचनाल्लब्धास्त्रयः सागरोपमसप्तभागाः, इयती निद्रापञ्चकासातवेदनीययोर्जघन्या स्थितिः । एवं मिथ्यात्वस्य सप्त सप्तभागाः पूर्णं सागरोपममित्यर्थः । आद्यद्वादशकषायाणां चत्वारः सप्तभागाः । सूक्ष्मत्रिकस्य विकलत्रिकस्य चोत्कृष्टा स्थितिरष्टादशसागरोपमकोटीकोट्यः, तस्या मिथ्यात्वस्थित्या भागे ह्रियमाणे शून्यं शून्येन पात्यते, ततश्छेद्यच्छेदकराश्योरर्द्धेनापवर्त्तनातो लब्धाः सागरोपमस्य नव पञ्चत्रिंशद्भागाः, इयती सूक्ष्मत्रिकविकलत्रिकयोर्जघन्या स्थितिः $\frac{९}{३५}$ । तथा स्त्रीवेदमनुष्यद्विकयोरुत्कृष्टस्थितिः पञ्चदशसागरोपमकोटाकोटिमाना, तस्या मिथ्यात्वस्थित्या भागे ह्रियमाणे शून्यं शून्येन पातयित्वा छेद्यच्छेदकराश्योः पञ्चभिरपवर्त्तने लब्धास्त्रयः सागरोपमस्य चतुर्दश भागाः, इयती स्त्रीवेदमनुष्यद्विकयोर्जघन्या स्थितिः $\frac{१४}{१५}$ । तथा स्थिरशुभसुभगसुस्वरादेयहास्यरतिशुभविहायोगतिशुक्लवर्णसुरभिगंधमधुररसमृदुलघुस्निग्धोष्णस्पर्शाद्यसंस्थानसंहननलक्षणप्रकृतिसप्तदशकस्य दशसागरोपमकोटीकोटच उत्कृष्टा स्थितिः, तस्या मिथ्यात्वस्थित्या भागहरणे शून्यस्य शून्येन पातने लब्ध एकः सप्तभाग $\frac{१}{७}$, इयती स्थिरादीनां जघन्या स्थितिः । द्वितीययोः संस्थानसंहननयोर्द्वादशोदधिकोटिकोटच उत्कृष्टा स्थितिः, तस्या मिथ्यात्वस्थित्या भागहरणे शून्यं शून्येन पातयित्वा छेद्यच्छेदकराश्योरर्द्धेनापवर्त्तने लब्धाः षट् सागरोपमस्य पञ्चत्रिंशद्भागाः $\frac{६}{३५}$ । तृतीययोः संस्थानसंहननयोरुत्कृष्टस्थितिश्चतुर्दशोदधिकोटीकोटयः तस्या मिथ्यात्वस्थित्या भागहारे शून्यस्य शून्येन पातने छेद्यच्छेदकराश्योश्चतुर्दशकेनापवर्त्तने लब्ध एकः सागरोपमस्य पञ्चभागः, इयती तयोर्जघन्या स्थितिः $\frac{१}{५}$ । चतुर्थयोः संस्थानसंहननयोः षोडशार्णवको-

टाकोटीमानोत्कृष्टा स्थितिः, तस्या मिथ्यात्वस्थित्या भागहरणविधौ शून्यं शून्येन पातयित्वा छेद्यच्छेदकराश्योरर्द्धेनापवर्त्तने लब्धाः सागरोपमस्याष्टौ पञ्चत्रिंशद्भागाः $\frac{८}{३५}$, इयती तयोर्जघन्या स्थितिः। पञ्चमसंस्थानसंहननयोरष्टादशाब्धिकोटीकोट्य उत्कृष्टा स्थितिः, तस्यां मिथ्यात्वस्थित्या भाज्यमानायां शून्यस्य शून्येन पातने छेद्यच्छेदकराश्योरर्द्धेनापवर्त्तने लब्धा नव पञ्चत्रिंशद्भागाः $\frac{९}{३५}$, इयती तयोर्जघन्या स्थितिः। शेषाणां त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकागुरुलघुपराघातोपघातोच्छ्वासास्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेययशःकीर्त्तितिर्यग्द्विकौदारिकद्विकहारिद्रलोहितनीलकृष्णवर्णदुरभिगन्धकषायाम्लकटुतिक्तरसगुरुकर्कशरूक्षशीतस्पर्शपञ्चेन्द्रियजात्येकेन्द्रियजातिनिर्माणातपोद्योताप्रशस्तविहायोगतिचरमसंस्थानसंहननतैजसकार्मणनीचैर्गोत्रारतिशोकभयजुगुप्सानपुंसकवेदस्थावर-रूपाणामष्टचत्वारिंशत्प्रकृतीनां सागरोपमस्य द्वौ सप्तभागौ $\frac{२}{७}$ जघन्या स्थितिः। यद्यपि हारिद्रलोहितादीनामुत्कृष्टस्थितिः सार्धद्वादशाब्धिकोटाकोट्यादिमानेत्यधिकृतभागहारविधिना समधिकषट्सागरोपमपञ्चत्रिंशद्भागादिप्रमाणा जघन्यस्थितिर्लभ्यते, तथापि चिरंतनशास्त्रेषु तेषां द्वौ सप्तभागौ जघन्यस्थितितया दृष्टाविति तावेवोक्तौ। इदं च जघन्यस्थितिपरिमाणं पञ्चसङ्ग्रहोक्तं मतान्तरमिति द्रष्टव्यं। परमेतज्जीवाभिगमाद्यनुपाति दृश्यते। तथा च स्त्रीवेदमधिकृत्य तत्र सूत्रं—" इत्थिवेदस्स णं भंते केवइयं कालं बंधट्ठिई पन्नत्ता ? गोयमा जहन्नेणं सागरोवमस्स दिवड्ढो सत्तभागो पलिओवमस्स असंखेज्जइ भागेण ऊणओ" इत्यादि।

मूल प्रकृति तथा उत्तर प्रकृतिओनी उत्कृष्ट जघन्यस्थिति तथा उत्कृष्ट जघन्य अबाधा.

कर्मनुं नाम.	उत्कृष्ट स्थिति	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट अबाधा	जघन्य अबाधा
ज्ञानावरणीय	३० कोडाकोडी साग०	अन्तर्मुहूर्त	३००० वर्ष	अन्तर्मुहूर्त
दर्शनावरणीय	,, ,, ,,	,,	,, ,,	,,
वेदनीय	,, ,, ,,	१२ मुहूर्त	,, ,,	,,
मोहनीय	७० ,, ,,	अन्तर्मुहूर्त	७००० वर्ष	,,
आयुष्	३३ सागरोपम		३ पूर्वक्रोड वर्ष	,,
नाम	२० कोडाकोडी साग०	८ मुहूर्त	२००० वर्ष	,,
गोत्र	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,,	,,
अन्तराय	३० ,, ,,	अन्तर्मुहूर्त	३००० ,,	,,
मतिज्ञानादि ज्ञानावरणीय वर्ग. (५)	३० ,, ,,	अन्तर्मुहूर्त	,, ,,	,,
दर्शनावरणीय वर्ग (४)	,, ,, ,,	,,	,, ,,	,,
निद्रापंचक (५)	,, ,, ,,	⅓ सागरोपम पल्यासंख्यभागहीन	,, ,,	,,
शातावेदनीय (१)	१५ ,, ,,	१२ मुहूर्त	१५०० वर्ष	,,
अशाता ,, (१)	३० ,, ,,	⅓ सागरोपम पल्यासं० भा० हीन	३००० वर्ष	,,
मिथ्यात्वमोहनीय (१)	७० ,, ,,	१ सागरोपम पल्यासं० भा०हीन	७००० वर्ष	,,

अनंतानुबन्ध्यादि आद्य कषाय (१२)	४० ,, ,,	७/८ ,, ,, ,,	४००० ,, ,,
संज्वलन क्रोध (१)	४० ,, ,,	२ मास	४००० ,, ,,
,, मान (१)	,, ,, ,,	१ मास	,, ,, ,,
,, माया (१)	,, ,, ,,	०॥ मास	,, ,, ,,
,, लोभ (१)	,, ,, ,,	अन्तर्मुहूर्त	,, ,, ,,
स्त्रीवेद (१)	१५ ,, ,,	१/२ सागरोपम पल्यासं० भा०हीन	१५०० ,, ,,
पुरुषवेद (१)	१० ,, ,,	,,	८ ,, ,,
नपुंसकवेद (१)	२० ,, ,,	,,	२००० ,, ,,
हास्य-रति (२)	१० ,, ,,	,,	१००० ,, ,,
शोक-अरति / भय-जुगुप्सा (४)	२० ,, ,,	,,	२००० ,, ,,
नारक युष् (१)	३३ सागरोपम	१०००० वर्ष	१/७ पूर्वक्रोड वर्ष ,,
तिर्यंचायुष् (१)	३ पल्योपम	क्षुल्लकभव(२५६ आवली)	,, ,, ,,
मनुष्यायुष् (१)	,, ,,	,, ,,	,, ,, ,,
देवायुष् (१)	३३ सागरोपम	१०००० वर्ष	,, ,, ,,
नरकगति-अनुपूर्वी (२)	२० कोडाकोडी सागरो०	२८५५/७ सागरोपम पल्यसंख्यभागहीन	२००० वर्ष ,,
तिर्यंचगति- ,, (२)	,, ,, ,,	१/२ सागरोपम पल्यासंख्यभागहीन	,, ,, ,,
मनुष्यगति- ,, (२)	१५ ,, ,,	,, ,,	१५०० ,, ,,
देवगति ,, (२)	१० ,, ,,	२८५५/७ सागरोपम पल्यसंख्यभागहीन	१००० ,, ,,
एकेन्द्रियजाति (१)	२० ,, ,,	१/२ सागरोपम पल्यासंख्यभागहीन	२००० ,, ,,

विकलेन्द्रिय	(३)	१८ ,, ,,	३/७ सागरोपम पल्यासंख्यभागहीन	१८०० ,,	,,
पंचेन्द्रिय जाति	(१)	२० ,, ,,	,, ,,	२००० ,,	,,
औदारिकसप्तक	(७)	२० ,, ,,	,, ,,	,, ,,	,,
वैक्रियसप्तक	(७)	२० ,, ,,	२८५/७ सागरोपम	,, ,,	,,
आहारकसप्तक	(७)	अन्तःकोडाकोडी सागः	अन्तःकोडाकोडी सागः	अन्तर्मुहूर्त	,,
तैजस-कार्मण	(७)	२० कोडाकोडी सागः	३/७ सागरोपम पल्यासंख्यभागहीन	२००० वर्ष	,,
वज्रऋषभनाराचसंघः समचतुरस्रसंस्थान	(२)	१० कोडाकोडी सागः	,, ,,	१००० ,,	,,
ऋषभनाराचसंघः न्यग्रोधपरिमंडलसं०	(२)	१२ ,, ,,	,, ,,	१२०० ,,	,,
नाराच सादि	(२)	१४ ,, ,,	,, ,,	१४०० ,,	,,
अर्धनाराच वामन	(२)	१६ ,, ,,	,, ,,	१६०० ,,	,,
कीलिका कुब्ज	(२)	१८ ,, ,,	,, ,,	१८०० ,,	,,
छेवट्ठु हुंडक	(२)	२० ,, ,,	,, ,,	२००० ,,	,,
श्वेतवर्ण-सुरभिगंध मधुररस-स्निग्ध-उष्ण लघु-मृदु	(७)	१० ,, ,,	,, ,,	१००० ,,	,,

कृष्णवर्ण-दुरभिगंध कटुकरस-रुक्ष-शीत-गुरु-कर्कश	(७)	२० ,, ,,	,, ,,	२००० ,,	अन्तर्मुहूर्त
नीलवर्ण-तीखो	(२)	१७॥ ,, ,,	,, ,,	१७५० ,,	,,
रक्तवर्ण-कषाएलो	(२)	१५ ,, ,,	,, ,,	१५०० ,,	,,
पीतवर्ण-अम्ल	(२)	१२॥ ,, ,,	,, ,,	१२५० ,,	,,
शुभविहायोगति	(१)	१० ,, ,,	,, ,,	१००० ,,	,,
अशुभविहायोगति	(१)	२० ,, ,,	,, ,,	२००० ,,	,,
जिननामवर्जप्रत्येकाष्टक	(७)	२० ,, ,,	,, ,,	२००० ,,	,,
जिननाम	(१)	अन्तःकोडाकोडी साग०	अन्तःकोडाकोडी साग०	अन्तर्मुहूर्त	,,
त्रसचतुष्क	(४)	२० कोडाकोडी साग०	३/७ सागरोपम पल्यासंख्यभागहीन	२००० वर्ष	,,
स्थिरपंचक	(५)	१० ,, ,,	,, ,,	१००० ,,	,,
यशःकीर्ति	(१)	,, ,, ,,	८ मुहूर्त	,, ,,	,,
स्थावर नाम	(१)	२० ,, ,,	३/७ सागरोपम पल्यासंख्यभागहीन	२००० ,,	,,
सूक्ष्मत्रिक	(३)	१८ ,, ,,	,, ,,	१८०० ,,	,,
अस्थिरषट्क	(६)	२० ,, ,,	,, ,,	२००० ,,	,,
उच्चैर्गोत्र	(१)	१० ,, ,,	८ मुहूर्त	१००० ,,	,,
नीचैर्गोत्र	(१)	२० ,, ,,	३/७ सागरोपम पल्यासंख्यभागहीन	२००० ,,	,,
अन्तरायवर्ग	(५)	३० ,, ,,	अन्तर्मुहूर्त	३००० ,,	,,

संप्रत्येकेन्द्रियादीनां जघन्योत्कृष्टस्थितिबन्धप्रतिपादनार्थमाह—

एसेगिंदियडहरो, सव्वासिं ऊणसंजुओ जेट्ठो । पणवीसा पन्नासा, सयं सहस्सं च गुणकारो ॥ ८०॥
कमसो विगलअसन्नीण पल्लसंखेज्जभागहा इयरो । विरए सेसजइदुगे सम्मचउक्के य संखगुणो ॥ ८१ ॥

एसे त्ति–सर्वासां प्रकृतीनां वैक्रियषट्काहारकतीर्थकरवर्जितानामेषोऽनन्तरोक्तो "वग्गुक्कोसठिईणं मिच्छत्तुक्कोसगेण जं लद्धं"। "पलिओवमासंखेज्जभागेणूणो" इत्येवं लक्षणः स्थितिबन्धो डहरो जघन्य एकेन्द्रियाणां द्रष्टव्यः। तथाहि–ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयांतरायाणामुत्कृष्टा स्थितिस्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा, तस्या मिथ्यात्वस्थित्योत्कृष्टया सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणया (लक्ष्णया) भागे हृते सति लब्धाः सागरोपमस्य त्रयः सप्तभागास्ते च पल्योपमासंख्येयभागहीनाः क्रियन्ते, एतावत्प्रमाणां जघन्यां स्थितिं ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकासातवेदनीयान्तरायपञ्चकानामेकेन्द्रिया बध्नन्ति, न न्यूनां। एवं मिथ्यात्वस्य जघन्यां स्थितिमेकं सागरोपमं पल्योपमासंख्येयभागहीनं। कषायमोहनीयस्य चतुरः सागरो-

---

गाथार्थ—एस=आ (पूर्वगाथोक्त) एगिंदियडहरो=एकेन्द्रियनो जघन्य स्थितिबन्ध जाणवो, ऊणसंजुओ=न्यून करेली स्थिति संयुक्त करतां; सव्वासिं=सर्व प्रकृतिओनो, जेट्ठो=उत्कृष्ट आवे. तेथी, पणवीसा=२५गुणो, पन्नासा=५०गुणो, सयं=१०० गुणो, सहस्सं च गुणकारो=अने १००० गुणो, कमसो=अनुक्रमे, विगलअसन्नीण=विकलेन्द्रिय अने असंज्ञीनो उत्कृष्ट जाणवो. पल्लसंखेज्जभागहा=पल्योपमना असंख्यातमे भागे हीन, इयरो=जघन्य स्थितिबंध जाणवो. विरए=सर्वविरतनो, देसजइदुगे=देशविरतिना द्विकने विषे, सम्मचउक्के य=अने सम्यक्त्वीना चार स्थितिबंधने विषे, संखगुणो=संख्यातगुणो कहेवो. ८०–८१

पमस्य सप्तभागान् पल्योपमासंख्येयभागहीनान्। नोकषायाणां तथा वैक्रियषट्काहारकद्विकतीर्थकरवर्जितानां शेषनामप्रकृतीनां गोत्रप्रकृतिद्वयस्य च द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ पल्योपमासंख्येयभागहीनावेकेन्द्रिया बध्नन्ति। 'ऊणसंजुओ जेट्ठ त्ति' स एव जघन्यः स्थितिबन्ध ऊनेन पल्योपमासंख्येयभागलक्षणेन संयुतः सन्नुत्कृष्टस्थितिबन्ध एकेन्द्रियाणां वेदितव्यः। तद्यथा—ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकासातवेदनीयान्तरायपञ्चकानां (२०) त्रयः सागरोपमस्य सप्तभागाः परिपूर्णा उत्कृष्टः स्थितिबन्धः। एवं सर्वत्रापि भावनीयं। उक्त एकेन्द्रियाणां जघन्योत्कृष्टः स्थितिबन्धः।

संप्रति विकलेन्द्रियाणामाह—'पणवीसेत्यादि' एकेन्द्रियाणां सत्क(सँ)उत्कृष्टः स्थितिबन्धः पञ्चविंशत्यादिना गुणकारेण गुणितः सन् क्रमशः क्रमेण विकलानां विकलेन्द्रियाणां द्वित्रिचतुरिन्द्रियलक्षणानामसंज्ञिनां चासंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां-चोत्कृष्टः स्थितिबन्धो वेदितव्यः। तद्यथा—एकेन्द्रियाणामुत्कृष्टः स्थितिबन्धः × पञ्चविंशत्या गुणितो द्वीन्द्रियाणामुत्कृष्टः स्थितिबन्धो भवति। स एवैकेन्द्रियाणामुत्कृष्टः स्थितिबन्धः पञ्चाशता गुणितस्त्रीन्द्रियाणामुत्कृष्टः स्थितिबन्धः। शतेन गुणितश्चतुरिन्द्रियाणां। सहस्रेण गुणितोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणामिति। 'पल्लसंखेज्जभागहा इयरो' स एव द्वीन्द्रियादीनामात्मीय आत्मीय उत्कृष्टः स्थितिबन्धः पल्योपमसंख्येयभागहीनः सन् इतरो जघन्यः स्थितिबन्धो वेदितव्यः।

× (य० उ० ४६) तथाहि—एकेन्द्रियाणामुत्कृष्टस्थितिबन्धः पञ्चविंशत्या गुणितो द्वीन्द्रियाणामुत्कृष्टः, स एवैकेन्द्रियोत्कृष्टः स्थितिबन्धः पञ्चाशता गुणितस्त्रीन्द्रियाणामुत्कृष्टः, शतेन गुणितश्चतुरिन्द्रियाणां, सहस्रेण गुणितोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणामिति। एष एव द्वीन्द्रियादीनामुत्कृष्टः स्थितिबन्धः ' पल्लसंखेज्जभागह त्ति' पल्यसंख्येयभागं जहातीति पल्यसंख्येयभागहा पल्योपमसंख्येयभाग-

संप्रति सर्वेषामपि जघन्योत्कृष्टस्थितिबन्धानामल्पबहुत्वमभिधीयते–तत्र सूक्ष्मसंपरायस्य जघन्यस्थितिबन्धः सर्वस्तोकः × (१)। ततो बादरपर्याप्तकस्य जघन्यः स्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः (२)। ततोऽपि सूक्ष्मपर्याप्तकस्य जघन्यः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः (३)। ततोऽप्यपर्याप्तबादरस्य जघन्यः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः (४)। ततोऽप्यपर्याप्तसूक्ष्मस्य जघन्यः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः(५)।ततोऽपि (तस्यैव) अपर्याप्तसूक्ष्मस्योत्कृष्टः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः(६)।ततोऽप्यपर्याप्तबादरस्योत्कृष्टः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः(७)।ततोऽपि सूक्ष्मपर्याप्तस्योत्कृष्टः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः(८)।ततोऽपि बादरपर्याप्तस्योत्कृष्टः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः(९)।ततो द्वीन्द्रियस्य पर्याप्तस्य जघन्यः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः (१०)। ततस्तस्यैवापर्याप्तस्य जघन्यः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः (११)। ततोऽपि तस्यैव द्वीन्द्रियस्यापर्याप्तस्योत्कृष्टः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः(१२)। ततोऽपि द्वीन्द्रियपर्याप्तस्योत्कृष्टः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः (१३)। ततोऽपि त्रीन्द्रियपर्याप्तस्य जघन्यः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः (१४)। ततोऽपि तस्यैव त्रीन्द्रियस्यापर्याप्तस्य जघन्यः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः (१५)। ततोऽपि त्रीन्द्रियापर्याप्तस्योत्कृष्टः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः (१६)। ततोऽपि पर्याप्तत्रीन्द्रियस्योत्कृष्टः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः (१७)। ततश्चतुरिन्द्रियस्य पर्याप्तकस्य जघन्यः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः(१८)। ततोऽप्यपर्याप्तचतुरिन्द्रियस्य जघन्यः स्थितिबन्धो

हीन इत्यर्थः, इतरो जघन्यस्थितिबन्धः। पञ्चसंग्रहे तु सा जघन्यस्थितिरेकेन्द्रियाणां सा पल्योपमासंख्येयभागाभ्यामधिकीकृता पञ्चविंशत्यादिना च गुणिता द्वीन्द्रियादीनामुत्कृष्टा, यथास्थितैव चैकेन्द्रियजघन्यस्थितिः पञ्चविंशत्यादिना गुणिता द्वीन्द्रियाणां जघन्येत्युक्तमस्ति। तत्त्वं तु केवलिनो विदन्ति। × (य० उ० ४७) आन्तर्मौहूर्तिकात्। १ विशेषाधिकं इति शतके ५० गाथायाम्।

विशेषाधिकः(१९)।ततोऽप्यपर्याप्तचतुरिन्द्रियस्योत्कृष्टः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः(२०) । ततोऽपि पर्याप्तस्योत्कृष्टः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः(२१) । ततोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य पर्याप्तस्य जघन्यः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः(२२) । ततोऽपि तस्यैवापर्याप्तस्य जघन्यः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः (२३) । ततोऽपि तस्यैवापर्याप्तस्योत्कृष्टः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः (२४) । ततोऽपि तस्यैव पर्याप्तस्योत्कृष्टः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः(२५) । ततः संयतस्योत्कृष्टः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः(२६) । ' विरए इत्यादि' विरते संयते, अत्र च जघन्य उत्कृष्टश्च स्थितिबन्ध उक्त एव । ततो देशयतिद्विके देशविरतद्विके जघन्योत्कृष्टस्थितिबन्धलक्षणे,तथा सम्यक्त्वचतुष्केऽविरतसम्यग्दृष्टौ पर्याप्तेऽपर्याप्ते च प्रत्येकं जघन्योत्कृष्टस्थितिबन्धके स्थितिबन्धो यथोत्तरं संख्येयगुणो वक्तव्यः । तद्यथा—संयतोत्कृष्टस्थितिबन्धात् देशविरतस्य जघन्यः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः (२७) । ततो देशविरतस्यैवोत्कृष्टः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः(२८) । ततः पर्याप्ताविरतस्य सम्यग्दृष्टेर्जघन्यः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः(२९) । ततोऽप्यपर्याप्ताविरतस्य सम्यग्दृष्टेर्जघन्यः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः(३०)। ततोऽप्यपर्याप्ताविरतसम्यग्दृष्टेरुत्कृष्टः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः(३१) । ततोऽपि पर्याप्ताविरतसम्यग्दृष्टेरुत्कृष्टः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः(३२) ॥८०–८१॥

सन्नीपज्जत्तियरे, अब्भिंतरओ य (उ) कोडिकोडीओ। ओघुक्कोसो सन्निस्स होइ पज्जत्तगस्सेव ॥८२॥

गाथार्थः—सन्नीपज्जत्तियरे=संज्ञि पर्याप्त अने अपर्याप्तनो स्थितिबन्ध पण संख्यातगुणो, य=अने (संयतना उत्कृष्टथी अहीं सुधीना संज्ञी पंचेन्द्रियना उत्कृष्ट सिवायना स्थितिबन्धो) कोडाकोडीओ=कोडाकोडीनी, अब्भिंतरओ=अन्दर (अन्तः कोडाकोडी प्रमाण) जाणवो. सन्निस्स=संज्ञी, पज्जत्तगस्सेव=पर्याप्तानो उत्कृष्ट तो, ओघुक्कोसो=ओघथी उत्कृष्ट प्रमाण, होइ=छे. ८२

जीवभेदे स्थितिबन्धना अल्पबहुत्वनो यन्त्र.

आ अल्पबहुत्व १० कोडाकोडीनी उत्कृष्ट स्थितिनी अपेक्षाए जाणवुं. तेमज दरेक जीवने ते प्रकृतिनी अपेक्षाए पण जुदी प्रकृतिनी अपेक्षाए नहि.

क्रम	जीवभेदनुं नाम.	बंध प्रकार	स्थितिबंधनुं प्रमाण.	अल्पबहुत्व
१	यतिनो	जघन्य	अन्तर्मुहूर्त	सर्वथी अल्प.
२	बादर पर्याप्तानो	,,	१/७ सागरोपम पल्योपमना असंख्यातमे भागे हीन.	असंख्यगुण.
३	सूक्ष्म ,,	,,	१/७ सागरोपम पल्योपमना अल्प असंख्यातमे भागे हीन	विशेषाधिक
४	बादर अपर्याप्तनो	,,	१/७ साग० पल्योपमना अल्पतर असंख्यातमे भागे हीन	,,
५	सूक्ष्म ,,	,,	१/७ साग० पल्योपमना अल्पतम असंख्यातमे भागे हीन	,,
६	,, ,,	उत्कृष्ट	१/७ साग० पल्योपमना अल्पतम असंख्य भागे हीन	,,
७	बादर अपर्याप्तानो	,,	१/७ साग० पल्योपमना अधिक अल्प असं० भाग हीन	,,
८	सूक्ष्म पर्याप्तानो	,,	१/७ साग०पूर्वाधिक असं०भाग हीन	,,
९	बादर पर्याप्तानो	,,	१/७ सागरोपम	,,
१०	द्वीन्द्रिय पर्याप्तनो	जघन्य	२५/७ सागरोपम पल्यो० संख्यातमे भागे हीन	संख्यातगुणो
११	,, अपर्याप्तनो	,,	२५/७ सागरोपम पल्यो० अल्प संख्या०भागे हीन	विशेषाधिक
१२	,, ,,	उत्कृष्ट	२५/७ सागरोपम पल्यो० पूर्वाल्प संख्या०भागे हीन	,,
१३	,, पर्याप्तनो	,,	२५/७ सागरोपम	,,

१४	त्रीन्द्रिय पर्याप्तनो	जघन्य	७$\frac{१}{७}$ सागरोपम पल्यो० संख्या-भागे हीन	संख्यातगुण
१५	,, अपर्याप्तानो	,,	७$\frac{१}{७}$ सागरोपम प० अल्पसंख्या-तमे भागे हीन	विशेषाधिक
१६	,, ,,	उत्कृष्ट	७$\frac{१}{७}$ सागरो० प०पूर्वाल्पसंख्या-तमे भागे हीन	,,
१७	,, पर्याप्तानो	,,	७$\frac{१}{७}$ सागरोपम	,,
१८	चतुरिन्द्रिय पर्याप्तनो	जघन्य	१४$\frac{२}{७}$ सागरोपम पल्यो० संख्यातमे भागे हीन	संख्यातगुण
१९	,, अपर्याप्तनो	,,	१४$\frac{२}{७}$ सागरोपम पल्यो० अल्प संख्यातमे भागे हीन	विशेषाधिक
२०	,, ,,	उत्कृष्ट	१४$\frac{२}{७}$,, पूर्वाल्प संख्यातमे भागेहीन	,,
२१	,, पर्याप्तानो	,,	१४$\frac{२}{७}$ सागरोपम	,,
२२	असंज्ञि पंचेन्द्रिय पर्याप्तानो	जघन्य	१४२$\frac{६}{७}$ सागरोपम पल्योपमना संख्यातमे भागे हीन	संख्यातगुणो
२३	,, अपर्याप्तानो	,,	१४२$\frac{६}{७}$ सागरोपम पल्योपमना अल्प संख्यातमे भागे हीन	विशेषाधिक
२४	,, ,, ,,	उत्कृष्ट	१४२$\frac{६}{७}$ सागरोपम पल्योपमना पूर्वाल्प संख्यातमे भागे हीन	,,
२५	,, ,, पर्याप्तानो	,,	१४२$\frac{६}{७}$ सागरोपम	,,
२६	संयतनो	,,	अन्तःकोडा० साग०	संख्यातगुण
२७	देशविरतनो	जघन्य	,,	,,
२८	,,	उत्कृष्ट	,,	,,
२९	अवि० सम्म० पर्याप्तानो	जघन्य	,,	,,
३०	,, ,, अपर्याप्तनो	,,	,,	,,
३१	,, ,,	उत्कृष्ट	,,	,,
३२	,, ,, पर्याप्तनो	,,	,,	,,
३३	मिथ्यात्वी पर्याप्तानो	जघन्य	,,	,,
३४	,, अपर्याप्तनो	,,	,,	,,
३५	,, ,,	उत्कृष्ट	,,	,,
३६	,, पर्याप्तनो	,,	१० कोडाकोडी (७०कोडाकोडी)	,,

सन्नि त्ति–अविरतसम्यग्दृष्टेः पर्याप्तस्य सत्कादुत्कृष्टस्थितिबन्धात् संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य पर्याप्तस्य जघन्यः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः(३३)। ततोऽपि तस्यैवापर्याप्तस्य जघन्यः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः(३४)। ततोऽपि तस्यैवापर्याप्तस्य संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्योत्कृष्टः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः(३५)। 'अब्भिंतरओ य (उ) त्ति' संयतस्योत्कृष्टात् स्थितिबन्धादारभ्य यावदपर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्योत्कृष्टः स्थितिबन्ध एष सर्वोऽपि सागरोपमकोटीकोटचा अभ्यन्तर एव द्रष्टव्यः। एकेन्द्रियादीनां तु सर्वजघन्यसर्वोत्कृष्टस्थितिबन्धपरिमाणं प्रागेव प्रत्येकमुक्तं। (ततोऽपर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्योत्कृष्टस्थितिबन्धात्) संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकस्य पुनरुत्कृष्टः स्थितिबन्धो य एव प्रागोघेन सामान्येनोक्त उत्कृष्टः स्थितिबन्धः स एव वेदितव्यः(३६) ॥ ८२ ॥

तदेवं कृता स्थितिस्थान(बन्ध)प्ररूपणा। संप्रति निषेकप्ररूपणावसरः। तत्र च द्वे अनुयोगद्वारे—अनन्तरोपनिधा परंपरोपनिधा च। तत्रानन्तरोपनिधाप्ररूपणार्थमाह—

मोत्तूण सगमबाहे (हं) पढमाए ठिइए बहुतरं दव्वं। एत्तो विसेसहीणं, जावुक्कोसं ति सव्वस्सिं ॥ ८३ ॥

मोत्तूण त्तिषुसर्वस्मिन्नपि कर्मणि बध्यमाने आत्मीयमबाधाकालं मुक्त्वा परित्यज्य ऊर्ध्वं दलिकनिक्षेपं (निषेकं) करोति। तत्र प्रथमायां स्थितौ समयलक्षणायां प्रभूततरं द्रव्यं कर्मदलिकं निषिञ्चति। 'एत्तो विसेसहीणं ति ' इतः प्रथमस्थितेरूर्ध्वं द्वितीयादिषु स्थितिषु समयसमयप्रमाणासु विशेषहीनं विशेषहीनं कर्मदलिकं निषिञ्चति। तथाहि–प्रथमस्थितेः सकाशात् द्विती-

---

गाथार्थः—सव्वास्सि=सर्व प्रकृतिओने विषे, सगमबाहे=पोतानी अबाधा, मोत्तूण=मूकीने, पढमाए ठिईए=प्रथम स्थितिमां, बहुतरं दव्वं=घणुं द्रव्य होय. एत्तो विसेसहीणं=आगळ द्वितीयादिक स्थानोमां, विसेसहीणं=विशेषहीन हीन, जावुक्कोसंति=उत्कृष्ट स्थिति पर्यंत जाणवुं. ८३

र्यस्थितौ विशेषहीनं । ततोऽपि तृतीयस्थितौ विशेषहीनं । ततोऽपि चतुर्थस्थितौ विशेषहीनं । एवं विशेषहीनं विशेषहीनं तावद्वाच्यं यावत्तत्तत्समयबध्यमानकर्मणामुत्कृष्टा स्थितिश्चरमसमय इत्यर्थः ॥ ८३ ॥

कृताऽनन्तरोपनिधाप्ररूपणा संप्रति परंपरोपनिधाप्ररूपणार्थमाह—

पल्लासंखियभागं, गंतुं दुगुणूणमेवमुक्कोसा । णाणंतराणि पल्लस्स, मूलभागो असंखतमो ॥ ८४ ॥

पल्ल त्ति–अबाधाकालादूर्ध्वं प्रथमस्थितौ यन्निषिक्तं कर्मदलिकं तदपेक्षया द्वितीयादिषु स्थितिषु समयसमयरूपासु विशेषहीनं विशेषहीनतरं दलिकमारभ्य(च्यं) माणं पल्योपमासंख्येयभागमात्रासु स्थितिष्वतिक्रान्तासु दलिकं द्विगुणोनं भवति, अर्धं भवतीत्यर्थः । ततः पुनरप्यत ऊर्ध्वमेतदपेक्षया विशेषहीनं विशेषहीनतरं दलिकमारभ्य(च्यं)माणं पल्योपमासंख्येयभागमात्रप्रमाणासु स्थितिष्वतिक्रान्तासु अर्धं भवति । एवमर्धार्धहान्या तावद्वाच्यं यावदुत्कृष्टा स्थितिः स्थितेश्चरमसमय इत्यर्थः । कियन्ति पुनरेवं द्विगुणहानिस्थानानि भवन्तीत्येतन्निरूपणार्थमाह–'णाणंतराणीत्यादि' नानाप्रकाराणि यान्यन्तराणि अन्तरान्तराद्विगुणहानिस्थानानि भवन्ति, तान्युत्कृष्टस्थितिबन्धे पल्योपमस्य संबन्धिनः प्रथमवर्गमूलस्यासंख्येयतमे भागे यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणानि भवन्ति । उक्तं च–' पलिओवमस्स मूला असंखभागम्मि जत्तिया समया । तावइया हाणीओ

गाथार्थः—पल्लासंखियभागं=पल्योपमना असंख्यातमा भाग प्रमाण स्थितिस्थानो, गंतु=अतिक्रमे थके, दुगुणूणं=द्विगुणहीन थाय, एवं=ए प्रमाणे, उक्कोसा=उत्कृष्ट स्थिति पर्यंत द्विगुणहानि जाणवी. पल्लस्स=पल्योपमना, मूलभागो=वर्गमूलना, असंखतमो= असंख्यातमा भाग प्रमाण, णाणंतराणि=द्विगुणहानि स्थानो तथा अन्तरो जाणवा. ८४ । १ अयं क्रमः आयुर्वर्जानामिति पञ्च० ।

ठिइबंधुक्कोसए नेया ॥१॥' ननु मिथ्यात्वमोहनीयस्योत्कृष्टस्थितेः सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणत्वादेतावत्यो हानयः संभवन्तु, आयुषस्तूत्कृष्टस्थितेस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमसमयमात्रत्वात् कथमेतावत्यो हानयः संभवन्तीति ? उच्यते–इहासंख्येयतमो भागोऽसंख्येयभेदात्मकः, असंख्यातस्यासंख्यातभेदभिन्नत्वात् । ततः पल्योपमप्रथमवर्गमूलस्यासंख्येयतमो भाग आयुष्यतीवाल्पतरो गृह्यते इत्यविरोधः । तथा सर्वाणि द्विगुणहानिस्थानानि स्तोकानि । एकस्मिन् द्विगुणहान्योरन्तरे निषेकस्थानानि असंख्येयगुणानि इति ॥ ८४ ॥

स्थितिबन्धनी टुंक समजुती.

स्थितिबन्ध = जीवे एक समयमां योगानुसार ग्रहण करेलां कर्मदलिकनो काषायिक अध्यवसायवडे थएलो आत्मानी साथे सम्बन्धरूप रहेवानो नियत काल. ए प्रमाणे समये समये ग्रहण करातां कर्म दलिकने विषे समये समये स्थितिबन्ध थया करे छे. ते स्थितिबन्ध जघन्यथी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अने उत्कृष्टथी ७० कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण थाय छे. एक समयमां जीव जे कर्मदलिक ग्रहण करे ते सर्व दलिकनी सरखी स्थिति बंधाती नथी पण हीनाधिक बंधाय छे. जेमके जीवे जे समये उत्कृष्ट काषायिक अध्यवसायवडे मिथ्यात्व मोहनीयनी ७० कोडा० साग० प्रमाण स्थिति बांधी ते ते समये ग्रहण करेलां सर्व कर्मदलिकनी स्थिति नथी पण तत्समयबद्ध लताना अन्त्य निषेकनीज छे. (एक समयमां ग्रहण करेलां कर्मदलिकने स्थित्यनुसार गोठववाथी लता जेवो आकार थाय ते अहीं लता समजवी. एक एक समये बंधाती एक एक कर्मलता जाणवी.) तथा तेज लताना प्रथम निषेकनी ७००० वर्ष अने १ समय प्रमाण जघन्य स्थिति होय छे ते आ प्रमाणेः—

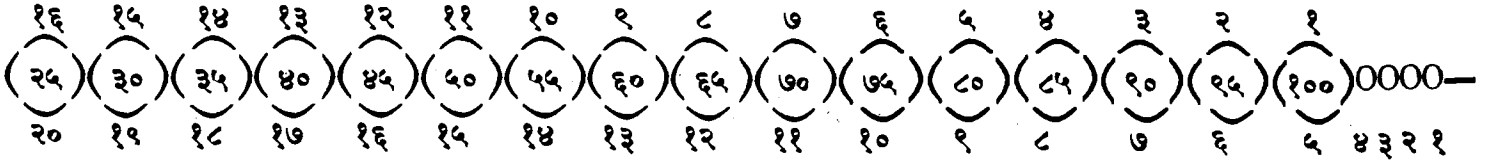
जीवे बांधेली ७० कोडा० साग० प्रमाण लतानो ७००० वर्ष प्रमाण अबाधा काल छे. एटले तेटला वखत सुधी ते कर्म जीवने कांइ बाधा करतुं नथी. अर्थात् त्यां सुधी ते कर्म उदयमां आवतुं नथी. अबाधा काल गया पछी अनन्तर समये ते लतानां जेटलां प्रदेशोनो उदय थवानो छे अथवा जेटला प्रदेशो आत्माथी छुटा थवाना छे ते प्रथम निषेक जाणवो. निषेक एटले बद्धलतानो एक साथे एक समयमां उदय आवनार दलिक विभाग. प्रथम निषेकनो ७००० वर्ष प्रमाण अबाधाकाल छे. ज्यारे

जीवे ७० को० साग० प्रमाण स्थिति बांधी त्यारे ते लताना दलिकना एक विभागनी ७००० वर्ष अने १ समयनी स्थिति बंधाणी ते प्रथम निषेक. तेटली स्थितिवाळां दलिक (पछीना निषेकोनी अपेक्षाए) सर्वाधिक जाणवां. कारण के हीन स्थितिवालां दलिक स्वभावेज अधिक होय छे. बीजो निषेक ७००० वर्ष अने २ समयनी स्थितिनो. आ निषेकमां प्रथम निषेकथी हीन दलिक अने ७००० वर्ष अने १ समय प्रमाण अबाधा काल. त्रीजो निषेक ७००० वर्ष अने ३ समयनी स्थितिवाळो, एमां दलिक विशेषहीन, अबाधा काल ७००० वर्ष अने २ समय प्रमाण. एम समयाधिक स्थितिए वधतां वधतां सौथी छेल्लो निषेक ७० कोडा० साग० प्रमाण स्थितिवाळो अने अबाधा काल १ समय हीन ७० कोडा० सागरोपम प्रमाण जाणवो. जो के मिथ्यात्व मोहनीयनो उत्कृष्ट अबाधा काल ७००० वर्षनो कह्यो छे ते सामान्यपणे ते कर्मनी अपेक्षाए, नहि तो ते, ते लताना प्रथम निषेकनो अबाधा काल होवाथी जघन्य अबाधा काल छे अने अन्त्य निषेकनो तो समयहीन ७० कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण अबाधाकाल होय.

प्रश्नः—जीव समये समये कर्मबन्ध करे छे. अने कर्मबन्धनी साथे साथे स्थितिबन्ध पण समये समये थया करे छे जेमके कोइक जीवे अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थाने अनंतानुबन्धिनी विसंयोजना करी छे ते जीव मिथ्यात्वे आवी अनंतानुबन्धिनो फरीथी बन्ध करे. हवे जो त्यां उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करे तो प्रथम समये ४० कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण बन्ध करे. बीजे समये पण ४० को० सागरोपम प्रमाण बन्ध करे तो त्यां अनंतानुबंधिनी स्थितिसत्ता ८० कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण केम न थाय ?

उत्तरः—प्रथम समयबद्ध अनन्तानुबंधि लताना निषकोना दलिक साथे द्वितीय समयबद्ध अनन्तानुबंधि लताना समान स्थितिवाळा निषकोना दलिक मळी जवाथी स्थिति वधे नहि, फक्त निषेकमां दलिकनी अधिकता थाय. अनंतानुबंधिनी प्रथम लताना दरेक निषेकनी स्थितिमांथी बीजे समये एक एक समय स्थिति घटी होवाथी तेना छेल्ला निषेकनी स्थिति समयहीन ४० को० सा० प्रमाण रही छे. अने ते वखते तेनी ४० को० सा० प्रमाण स्थिति बंधाणी. तेथी द्वितीय समयबद्ध लतानो छेल्लो निषेक जेनी ४० कोडा० साग० प्रमाण स्थिति छे तेना सिवायना बाकीना सर्व निषेको प्रथम समयबद्ध लताना समयहीन ४० कोडा० सागरोपम प्रमाण स्थितिना समस्थितिक निषेकोनी साथे मळी जवाथी स्थिति तेटलीज रही. ए प्रमाणे तृतीयादिक समयबद्ध लताओनुं समजवुं.

असत्कल्पनाए बद्धलतानी निषेक रचना.



समजुतीः—जीव एक समयमां अनंतानंत दलिक ग्रहण करे छे पण अहीं असत्कल्पनाए १००० जाणवा. एटले ते दलिकनी निषेक अपेक्षाए (उदयमां आववाना क्रम प्रमाणे) रचना करीए तो तेनो उपर प्रमाणे लता जेवो आकार थाय. (जो के वास्तविकपणे आत्माने वळगेलां कर्मोमां एवो आकार होतो नथी) एक एक शून्य ते एक एक समयरूप निषेक जणावनार छे. तथा शून्यनी अंदर मूकेली संख्या ते ते समये उदयमां आवनार दलिक संख्या जणावनार छे. संख्या रहित ४ शून्यो अबाधाकाल जणावे छे. शून्य उपर मकेला आंकडा निषेक संख्या तथा शून्य नीचेना आंकडा निषेकनो स्थिति काल जणावनार छे.

अहीं जीवे २० समय प्रमाण स्थिति बांधी तेमां अबाधाकाल जणावती ४ शून्यो तथा निषेक रचना जणावती १६ शून्यो छे. चार समय सुधी बांधेलां १००० दलिकमांथी कोइ दलिक उदय आवतुं नथी, परंतु ४ समय गये थके १०० दलिक प्रमाण ५ समयनी स्थितिवाळो प्रथम निषेक उदयमां आवे एवी स्थितिवाळो छे. तेने आश्री ४ समय अबाधाकाल तथा २० समयनी स्थितिवाळो १६ मो निषेक जेमां २५ दलिक छे तेनो अबाधाकाल १९ समय प्रमाण. त्यां सुधी ते निषेक उदयमां आवे नहि एवी स्थितिकाळो छे.

कृता निषेकप्ररूपणा, संप्रत्यबाधाकंडकप्ररूपणार्थमाह—

मोत्तूण आउगाइं, समए समए अबाहहाणीए । पल्लासंखियभागं, कंडं कुण अप्पबहुमेसिं ॥ ८५ ॥

मोत्तूण त्ति–आयूंषि चत्वार्यपि मुक्त्वा शेषाणां सर्वेषामपि कर्मणामबाधाहानौ समये समये पल्योपमासंख्येयभागलक्षणं कंडकमुत्कृष्टस्थितेः सकाशाद्धीनं करोति । तथाहि–उत्कृष्टायामबाधायां वर्तमानो जीवः स्थितिमुत्कृष्टां बध्नाति परिपूर्णमेकसमयहीनां वा । एवं यावत्पल्योपमासंख्येयभागहीनां वा । यदि पुनरुत्कृष्टाऽबाधा एकेन समयेन हीना भवेत्ततो नियमात्पल्योपमासंख्येयभागमात्रेण कंडकेन हीनामेवोत्कृष्टां स्थितिं बध्नाति । तामप्येकसमयहीनां वा द्विसमयहीनां वा यावत्पल्योपमासंख्येयभागहीनां वा । यदि पुनर्द्वाभ्यां (संमयाभ्यां) हीनोत्कृष्टाऽबाधा भवेत्ततो नियमात्पल्योपमासंख्येयभागलक्षणकंडकद्वयहीनामेवोत्कृष्टां स्थितिं बध्नाति । तामप्येकसमयहीनां वा (द्विसंमयहीनां) वा यावत्पल्योपमासंख्येयभागहीनां वा । एवं यतिभिः समयैरूनाऽबाधा भवति, ततिभिरेव कंडकैः पल्योपमासंख्येयभागलक्षणैरूना स्थितिर्द्रष्टव्या । यावदेकत्र जघन्याऽबाधा भवति, अन्यत्र च जघन्या स्थितिः । तदेवमबाधागतसमयसमयहान्या स्थितेः कंडकहानिप्ररूपणा कृता । संप्रत्यल्पबहुत्वप्ररूपणार्थमाह-'अप्पबहुमेसिं' एषां वक्ष्यमाणानामल्पबहुत्वं वक्तव्यं ॥ ८५ ॥

केषामिति चेत्तानेवाह—

गाथार्थः—मोत्तूण आउगाई=आयुष्य कर्म मूकीने, समए समए=समय समय, अबाहहाणीए=अबाधा हीन थये थके, पल्ला-संखियभागं=पल्योपमना असंख्यातमा भाग प्रमाण, कंडं कुण=कंडक कंडक (उत्कृष्ट स्थितिमांथी) हीन थाय, एसिं=एमनुं, अप्पबहुं=

बंधाबाहाणुक्कसि(सइ)यरं कंडकअबाहबंधाणं । ठाणाणि एक्कनाणंतराणि अत्थेण कंडं च ॥ ८६ ॥

बंध त्ति–'बंधाबाहाणुक्कसियरं ति' उत्कृष्टः स्थितिबन्धो(१)जघन्यः स्थितिबन्धः(२)उत्कृष्टाऽबाधा(३)जघन्याऽबाधा(४)। 'कंडकअबाहबंधाणं ठाणाणि त्ति'कंडकस्थानानि(५)अबाधास्थानानि(६) स्थितिबन्धस्थानानि च (७)।'एग(क्क)नाणंतराणि त्ति' एकं द्विगुणहान्योरन्तरं(८)नानारूपाणि चान्तराणि द्विगुणहानिस्थानरूपाणि(९)। 'अत्थेण कंडं च त्ति' जघन्याऽबाधाहीनया उत्कृष्टाऽबाधया जघन्यस्थितिहीनाया उत्कृष्टस्थितेर्भागे हृते सति यावान् भागो लभ्यते तावान् अर्थेन कंडकमित्युच्यते इत्याम्नायिका व्याख्यानयन्ति (१०)। चः समुच्चये । पञ्चसंग्रहे पुनरेतस्य स्थानेऽबाधाकंडकस्थानानीत्युक्तं । तत्र चैवं मूलटीकाकारेण व्याख्या कृता–अबाधा च कंडकानि चाबाधाकंडकं, समाहारो द्वन्द्वः, तस्य स्थानानि अबाधाकंडकस्थानानि। तयोर्द्वयोरपि स्थानसंख्येत्यर्थः । एतेषां दशानां स्थानानामल्पबहुत्वमुच्यते–तत्र संज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु पर्याप्तेषु अपर्याप्तकेषु वा बन्धकेषु आयुर्वर्जानां सप्तानां कर्मणां सर्वस्तोका जघन्याऽबाधा (१)। सा चान्तर्मुहूर्तप्रमाणा । ततोऽबाधास्थानानि कंडकस्थानानि चासंख्येयगुणानि । तानि तु परस्परं तुल्यानि । तथाहि–जघन्यामबाधामादिं कृत्वोत्कृष्टाऽबाधाचरमसमयमभिव्याप्य यावन्तः समयाः प्राप्यन्ते, तावन्त्यबाधास्थानानि भवन्ति । तद्यथा–जघन्याऽबाधा एकमबाधास्थानं, सैव समयाधिका द्वितीयं ।

अल्पबहुत्व आ प्रमाणेः–८५ । गाथार्थः—उक्कसि इयर=उत्कृष्ट अने जघन्य, बंधा=स्थितिबन्ध, अबाहा=अबाधा, कंडक=कंडकस्थानो, अबाह=अबाधास्थानो, बंधाणं ठाणाणि=स्थितिबन्धस्थानो, एक्कनाणंतराणि=द्विगुणहानि वच्चेनुं एक अन्तर, अने द्विगुणहानि स्थानो तथा अत्थेण कंडं च=अर्थकंडकनुं अल्पबहुत्व कहे छे.८६

द्विसमयाधिका तृतीयं। एवं तावद्वाच्यं यावदुत्कृष्टाबाधाचरमसमयः। एतावन्त्येव चाबाधाकंडकानि, जघन्याबाधात आरभ्य समयं समयं प्रति कंडकस्य प्राप्यमाणत्वात्। एतच्च प्रागेवोक्तं(२-३)। तेभ्य उत्कृष्टाबाधा विशेषाधिका, जघन्याबाधायास्तत्र प्रवेशात्(४)। ततो दलिकनिषेकविधौ द्विगुणहानिस्थानानि असंख्येयगुणानि, पल्योपमप्रथमवर्गमूलासंख्येयभागगतसमयप्रमाणत्वात्(५)। तत एकस्मिन् द्विगुणहान्योरन्तरे निषेकस्थानान्यसंख्येयगुणानि, तेषामसंख्येयानि पल्योपमवर्गमूलानि परिमाणमिति कृत्वा(६)। तेभ्योऽपि अर्थेन कंडकमसंख्येयगुणं(७)। तस्माज्जघन्यः स्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः, अन्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणत्वात्। संज्ञिपञ्चेन्द्रिया हि श्रेणिमनारूढा जघन्यतोऽपि स्थितिबन्धमन्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणमेव कुर्वन्ति(८)। ततोऽपि स्थितिबन्धस्थानानि संख्येयगुणानि(९)। तत्र ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयान्तरायाणामेकोनत्रिंशद्गुणानि समधिकानि। मिथ्यात्वमोहनीयस्यैकोनसप्ततिगुणानि समधिकानि। नामगोत्रयोरेकोनविंशतिगुणानि समधिकानि। तेभ्य उत्कृष्टा स्थितिर्विशेषाधिका, जघन्यस्थितेरबाधायाश्च तत्र प्रवेशात् (१०)।

तथा संज्ञिपञ्चेन्द्रियेष्वसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु वा पर्याप्तकेषु प्रत्येकमायुषो जघन्याबाधा सर्वस्तोका(१)। ततो जघन्यः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः, स च क्षुल्लकभवरूपः। ततोऽबाधास्थानानि संख्येयगुणानि। जघन्याबाधारहितः पूर्वकोटीत्रिभाग इति कृत्वा। ततोऽप्युत्कृष्टाऽबाधा विशेषाधिका, जघन्याबाधाया अपि तत्र प्रवेशात्(४)। ततो द्विगुणहानिस्थानान्यसंख्येयगुणानि, पल्योपमप्रथमवर्गमूलासंख्येयभागगतसमयप्रमाणत्वात् (५)। तेभ्योऽप्येकस्मिन् द्विगुणहान्योरन्तरे निषेकस्थानान्यसंख्येयगुणानि(६)। तत्र युक्तिः प्रागुक्तावगन्तव्या। ततः स्थितिबन्धस्थानान्यसंख्येयगुणानि(७)। तेभ्योऽप्युत्कृष्टः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः, जघन्यस्थितेरबाधायाश्च तत्र प्रवेशात्(८)।

तथा पञ्चेन्द्रियेषु संज्ञिष्वसंज्ञिष्वपर्याप्तेषु चतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रियबादरसूक्ष्मैकेन्द्रियेषु च पर्याप्तापर्याप्तेषु प्रत्येकमायुषः सर्वस्तोका जघन्याऽबाधा(१)। ततो जघन्यः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः, स च क्षुल्लकभवरूपः(२)। ततोऽबाधास्थानानि संख्येयगुणानि(३)। ततोऽप्युत्कृष्टाऽबाधा विशेषाधिका(४)। ततोऽपि स्थितिबन्धस्थानानि संख्येयगुणानि, जघन्यस्थितिन्यूनपूर्वकोटिप्रमाणत्वात्(५)। तत उत्कृष्टः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः, जघन्यस्थितेरबाधायाश्च तत्र प्रवेशात् (६)।

तथाऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियचतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रियसूक्ष्मबादरैकेन्द्रियेषु पर्याप्तापर्याप्तेष्वायुर्वर्जानां सप्तानां कर्मणां प्रत्येकमबाधास्थानानि कंडकानि च स्तोकानि परस्परं च तुल्यानि, आवलिकाऽसंख्येयभागगतसमयप्रमाणत्वात्(१-२)। ततो जघन्याऽबाधाऽसंख्येयगुणा, अन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात् ३। ततोऽप्युत्कृष्टाऽबाधा विशेषाधिका, जघन्याबाधाया अपि तत्र प्रवेशात् ४। ततो द्विगुणहीनानि(हानि)स्थानान्यसंख्येयगुणानि ५।तत एकस्मिन् द्विगुणहान्योरन्तरे निषेकस्थानान्यसंख्येयगुणानि ६।ततोऽर्थेन कंडकमसंख्येयगुणं७। ततोऽपि स्थितिबन्धस्थानान्यसंख्येयगुणानि, ×पल्योपमा(मँ)संख्येयभागगतसमयप्रमाणत्वात्८। ततोऽपि जघन्यस्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः ९। ततोऽप्युत्कृष्टस्थितिबन्धो विशेषाधिकः, पल्योपमासंख्येयभागेनाभ्यधिकत्वादिति१०॥८६॥

तदेवमुक्तमल्पबहुत्वं, इदानीं स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानप्ररूपणा कर्तव्या। तत्र च त्रीण्यनुयोगद्वाराणि। तद्यथा—स्थितिसमुदाहारः १, प्रकृतिसमुदाहारः २, जीवसमुदाहारश्च ३। समुदाहारः प्रतिपादनं। तत्र स्थितिसमुदाहारेऽपि त्रीण्यनुयोगद्वाराणि। तद्यथा–प्रगणना १, अनुकृष्टिः २, तीव्रमन्दता ३ च। तत्र प्रगणनाप्ररूपणार्थमाह—

× (य०उ० ४८) एकेन्द्रियान् शेषजीवांश्चाश्रित्य यथाक्रमं तेषां पल्योपमासंख्येयसंख्येयभागगतसमयप्रमाणत्वात्।

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्ता तथा अपर्याप्ताने ७ कर्ममां

नाम	अल्पबहुत्व	प्रमाण.
जघन्य अबाधा.	अल्प	अन्तर्मुहूर्त प्रमाण.
अबाधास्थान.	असंख्यात गुणा.	(उत्कृष्टपणे) अन्तर्मुहूर्तहीन ७००० वर्ष समय प्रमाण.
कंडकस्थान.	अबाधास्थान प्रमाण.	(संख्यामां) ,, ,,
उत्कृष्ट अबाधा.	विशेषाधिक	७००० वर्ष प्रमाण.
द्विगुणहानिस्थान.	असंख्यातगुण.	पल्योपमना प्रथम वर्ग मूलना असंख्यातमा भाग प्रमाण.
निषेकस्थानो (एक-द्विगुणहानिमां)	,,	असंख्याता पल्योपम वर्गमूल प्रमाण. (पल्यो०असं०भाग)
अर्थकंडक	,,	पल्यो०नो असं०भाग?
जघन्यस्थितिबन्ध	,,	अन्तः कोडाकोडी प्रमाण. (श्रेणिरहित)
स्थितिबन्धस्थानो	संख्यातगुणां	अन्तर्मुहूर्तहीन ७० कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण.
उत्कृष्ट स्थितिबन्ध	विशेषाधिक	७० कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण.

संज्ञी पंचेन्द्रिय तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्ताने आयुष्य कर्ममां

नाम	अल्पबहुत्व	प्रमाण
जघन्य अबाधा	अल्प	असंख्यात समय प्रमाण अन्तर्मुहूर्त (केटलीक आवलि प्रमाण)
जघन्य स्थितिबन्ध	संख्यातगुण.	क्षुल्लकभव (२५६ आ०)
अबाधास्थानो	,,	जघन्याबाधा (अन्तर्मुहूर्त) हीन पूर्वकोटित्रिभाग
उत्कृष्टअबाधा	विशेषाधिक	पूर्वकोटित्रिभाग
द्विगुणहानिस्थानो	असंख्यातगुण	पल्योपमना प्रथम वर्गमूलना असंख्यातमा भाग प्रमाण
निषेकस्थानो	,,	असंख्यात पल्योपम वर्गमूल प्रमाण. (पल्योपमनो असंख्यातमो भाग)
स्थितिस्थानो	,,	क्षुल्लकभवहीन ३३ सागरोपम प्रमाण.
उत्कृष्ट स्थितिबन्ध	विशेषाधिक	३३ सागरोपम प्रमाण.

संज्ञिद्वीकहीन १२ जीवभेदे ७ कर्ममां

नाम	अल्पबहुत्व	प्रमाण
अबाधास्थान	अल्प	आवलिना असंख्यातमा भागना समय प्र०
कंडकस्थानो	पूर्वसमान.	,, ,, ,, ,,
जघन्य अबाधा	असंख्यातगुण	अन्तर्मुहूर्त प्रमाण
उत्कृष्ट ,,	विशेषाधिक	,, ,,
द्विगुणहानिस्थानो	असंख्यातगुण	
निषेकस्थानो	,,	
अर्थकंडक	,,	
स्थितिस्थानो	,,	पल्योपमना असंख्यातमा अथवा संख्यातमा भाग प्रमाण
जघन्य स्थितिबन्ध	,,	$\frac{1}{7}$ सागरोपम पल्योपमना असंख्यातमा भागे हीन
उत्कृष्ट स्थितिबन्ध	संख्यातगुण.	१ सागरोपम यावत् १००० सागरोपम

संज्ञी असंज्ञी पर्याप्ता सिवाय बाकीना १२ जीवभेदे आयुष्य कर्ममां

नाम	अल्पबहुत्व	प्रमाण
जघन्य अबाधा	सर्वस्तोक	अन्तर्मुहूर्त प्रमाण (केटलीक आवलि प्र०)
जघन्य स्थितिबन्ध	संख्यातगुण	क्षुल्लकभव (२५६ आवलि प्रमाण)
अबाधास्थान	संख्यातगुण	अन्तर्मुहूर्तहीन ७३२३$\frac{1}{3}$ वर्ष
उत्कृष्ट अबाधा	विशेषाधिक	७३२३$\frac{1}{3}$ वर्ष प्रमाण
स्थितिबन्धस्थानो	संख्यातगुणां	अन्तर्मुहूर्तहीन पूर्वकोटि प्रमाण
उत्कृष्ट स्थितिबन्ध	विशेषाधिक	पूर्वकोटि प्रमाण

आ यंत्रोमां आवतुं अर्थकंडक असंख्यातगुण केवी रीते थाय ते समजातुं नथी. जे खानामां प्रमाण नथी लख्युं ते स्पष्टताना अभावे. तथा १२ जीवभेदना यन्त्रमां एकेन्द्रियनी अपेक्षाए मुख्यताए अल्पबहुत्व जाणवुं.

ठिइबंधे ठितिबंधे, अज्झवसाणाणसंखया लोगा। हस्सा वे(वि)सेसवुड्ढी, आऊणमसंखगुणवुड्ढी॥८७॥

ठिइबंधे त्ति–इह सर्वेषामपि कर्मणां जघन्यस्थितेः परत उत्कृष्टस्थितेश्चरमसमयमभिव्याप्य यावन्तः समयास्तावन्ति स्थितिस्थानानि जघन्यस्थितिसहितानि प्रत्येकं भवन्ति। एकैकस्मिंश्च स्थितिस्थाने बध्यमाने तद्बन्धहेतुभूताः काषायिका अध्यवसाया नानाजीवापेक्षयाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणा अवगन्तव्याः। अत्र च द्वेधा प्ररूपणा।। तद्यथा–अनन्तरोपनिधया परंपरोपनिधया च। तत्रानन्तरोपनिधया प्ररूपणामाह–'हस्सा वे(वि)सेसवुड्ढी' आयुर्वर्जानां कर्मणां ह्रस्वाज्जघन्यात् स्थितिबन्धात् परतो द्वितीयादिषु स्थितिस्थानबन्धेषु विशेषवृद्धिः विशेषाधिका वृद्धिरवसेया। तद्यथा–ज्ञानावरणीयस्य जघन्यस्थितौ तद्बन्धहेतुभूता अध्यवसाया नानाजीवापेक्षयाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणाः। ते चान्यापेक्षया सर्वस्तोकाः। ततो द्वितीयस्थितौ विशेषाधिकाः। ततोऽपि तृतीयस्थितौ विशेषाधिकाः।एवं तावद्वाच्यं यावदुत्कृष्टा स्थितिः। एवं सर्वेष्वपि कर्मसु वाच्यं। 'आऊणमसंखगुणवुड्ढी' आयुषां जघन्यस्थितेरारभ्य प्रतिस्थितिबन्धमसंख्येयगुणवृद्धिर्वक्तव्या। तद्यथा–आयुषो जघन्यस्थितौ तद्बन्धहेतुभूता अध्यवसाया असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणाः। ते च सर्वस्तोकाः। ततो द्वितीयस्थितौ असंख्येयगुणाः। ततोऽपि तृतीयस्थितावसंख्येयगुणाः। एवं तावद्वाच्यं यावदुत्कृष्टा ×स्थितिः ॥ ८७ ॥

× (य० उ० ४९) स्यादेतत् इहैकस्यामपि स्थितौ यद्यध्यवसायस्थानान्यसंख्येयानि परस्परविचित्राण्यभ्युपगम्यते तदा स्थि-

गाथार्थः—ठिइबंधे ठिइबंधे=प्रत्येक स्थितिबन्धे, अज्झवसाणाणसंखया लोगा=असंख्यलोकाकाश प्रदेश प्रमाण अध्यवसायस्थानो छे. हस्सा=जघन्य स्थितिस्थाने थोडा, विसेसवुड्ढी=द्वितीयादि स्थितिस्थानोमां विशेषवृद्धि. आऊणं=आयुष्यने विषे,

तदेवं कृताऽनन्तरोपनिधया प्ररूपणा, संप्रति परंपरोपनिधया तां करोति—

पल्लासंखियभागं, गंतुं दुगुणाणि जाव उक्कोसा । नाणंतराणि अंगुल–मूलच्छेयणमसंखतमो ॥ ८८ ॥

पल्ल त्ति–आयुर्वर्जानां सप्तानां कर्मणां जघन्यस्थितौ यान्यध्यवसायस्थानानि, तेभ्यः पल्योपमासंख्येयभागमात्राः स्थितीरतिक्रम्य परस्मिन्ननन्तरे स्थितिस्थाने द्विगुणान्यध्यवसायस्थानानि भवन्ति । तेभ्योऽपि पल्योपमासंख्येयभागमात्राः स्थितीरतिक्रम्यानन्तरे स्थितिस्थाने द्विगुणान्यध्यवसायस्थानानि भवन्ति । एवं द्विगुणवृद्धिस्तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टा स्थितिरिति ।

तेरपि वैचित्र्यं प्राप्नोति, मैवं, विचित्राणामपि नानाध्यवसायानामविचित्रैकस्थितिजननशक्तिमत्त्वेनोक्तदोषाभावात् । स्थित्यवैचित्र्येऽध्यवसायवैचित्र्यमेव न स्यादिति चेन्न स्थितिहेतुभूताध्यवसायवैचित्र्ये स्थितिवैचित्र्यस्यानियामकत्वात् देशकालरसविभागवैचित्र्यस्यैव तत्र नियामकत्वात् । अस्तु वाऽध्यवसायवैचित्र्यनिबन्धनादेशादिवैचित्र्यादेकस्याः स्थितेरपि वैचित्र्यं, समयसमयमात्रापगमनेन प्रतिसमयमन्यथात्वप्रतिपत्त्या वाऽसंख्येयसमयात्मिकाया एकस्या अपि स्थितेर्वैचित्र्यं, एकस्यापि वस्तुनः कथञ्चिद्विचित्राविचित्रत्वाभ्युपगमे स्याद्वादस्यैव शरणत्वात् । तदिदमुक्तं—" असंखलोगखपएसतुल्लया हीणमज्झिमुक्कोसा । ठिइबन्धज्झवसाया ठिइविसेसा असंखिज्जा ॥ १ ॥" इति कृतं प्रसंगेन ।

असंखगुणवुड्ढी=असंख्यातगुणवृद्धि. ८७। पल्लाऽसंखियभागं=जघन्य स्थितिस्थानथी पल्योपमना असंख्यातमा भाग प्रमाण स्थितिस्थानो, गंतुं=ओळंगतां, दुगुणाणि=द्विगुणवृद्धिस्थानो, जाव उक्कोसा=उत्कृष्ट स्थिति पर्यंत कहेवां. नाणंतराणि=एवां द्विगुणवृद्धिस्थानो, अंगुलमूलच्छेयणं=अंगुलना वर्गमूलना छेदनकना असंख्यातमा भाग जेटलां छे. ८८

एकस्मिन् द्विगुणवृद्ध्योरन्तरे स्थितिस्थानानि पल्योपमवर्गमूलान्यसंख्येयानि। नानाद्विगुणवृद्धिस्थानानि चांगुलवर्गमूलच्छेदनकासंख्येयतमभागप्रमाणानि। एतदुक्तं भवति–अंगुलमात्रक्षेत्रगतप्रदेशराशेर्यत् प्रथमं वर्गमूलं तन्मनुष्यप्रमाणहेतुराशिषण्णवतिच्छेदनविधिना तावच्छिद्यते, यावद् भागं न प्रयच्छति। तेषां च छेदनकानामसंख्येयतमे भागे यावन्ति छेदनकानि तावत्सु यावानाकाशप्रदेशराशिस्तावत्प्रमाणानि नानाद्विगुणस्थानानि भवन्तीति ॥ ८८ ॥

तदेवं कृता प्रगणना(१–१)। सांप्रतमनुकृष्टिश्चिन्त्यते। ×सा च न विद्यते। तथाहि–ज्ञानावरणीयस्य जघन्यस्थितिबन्धे यान्यध्यवसायस्थानानि, तेभ्यो द्वितीयस्थितिबन्धेऽन्यानि, तेभ्योऽपि तृतीयस्थितिबन्धेऽन्यानि, एवं तावद्वाच्यं यावदुत्कृष्टा स्थितिः। एवं सर्वेषामपि कर्मणां द्रष्टव्यं(१–२)। इदानीं तीव्रमन्दता वक्तुमवसरप्राप्ता, सा स्थाप्या, अग्रे वक्ष्यमाणत्वात्। तदेवमभिहितः स्थितिसमुदाहारः १। संप्रति प्रकृतिसमुदाहार उच्यते। तत्र च द्वे अनुयोगद्वारे। तद्यथा–प्रमाणानुगमः, अल्पबहुत्वं च। तत्र प्रमाणानुगमे ज्ञानावरणीयस्य सर्वेषु स्थितिबन्धेषु कियन्त्यध्यवसायस्थानानि ? उच्यते–असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि। एवं सर्वकर्मणामपि द्रष्टव्यं (२–१)। इदानीमल्पबहुत्वमभिधातुकाम आह—

ठिइदीहयाएँ कमसो, असंखगुणियाणणंतगुणणाए। पढमजहण्णुक्कोसं, बितिय जहन्नाइया चरमा॥८९॥

× (य० उ० ५०) सा च नास्ति, ज्ञानावरणादिकर्मणां यानि प्राक्तनस्थितिबन्धेऽध्यवसायस्थानानि तेषामग्रेतनस्थितिबन्धे लेशेनाप्यनुवृत्त्यभावात् प्रतिस्थितिबन्धमन्यान्याध्यवसायस्थानानामेव सद्भावात्।

गाथार्थः=ठिइदीहयाए=स्थितिनी दीर्घतामां, कमसो=अनुक्रमे, असंखगुणियाण=असंख्यातगुण असंख्यातगुण अध्यवसायो

ठिइदीहयाएत्ति–स्थितिदीर्घतया क्रमशः क्रमेणाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयगुणानि वक्तव्यानि । यस्य यतः क्रमेण दीर्घा स्थितिस्तस्य ततः क्रमेणाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयगुणानि वक्तव्यानीत्यर्थः। तथाहि—सर्वस्तोकान्यायुषः स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानि। तेभ्योऽपि नामगोत्रयोरसंख्येयगुणानि । 'नन्वायुषः स्थितिस्थानेषु यथोत्तरमसंख्येयगुणा वृद्धिः, नामगोत्रयोस्तु विशेषाधिका, तत्कथमायुरपेक्षया नामगोत्रयोरसंख्येयगुणानि भवन्ति ?' 'उच्यते—आयुषो जघन्यस्थितावध्यवसायस्थानान्यतीव स्तोकानि, नामगोत्रयोः पुनर्जघन्यायां स्थितौ अतिप्रभूतानि, स्तोकानि चायुषः स्थितिस्थानानि, नामगोत्रयोस्त्वतिप्रभूतानि, ततो न कश्चिद्दोषः ।' नामगोत्रयोः सत्कस्थितिबन्धाध्यवसायस्थानेभ्यो ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयवेदनीयान्तरायाणां स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयगुणानि । कथमिति चेदुच्यते—इह पल्योपमासंख्येयभागमात्रासु स्थितिष्वतिक्रान्तासु द्विगुणवृद्धिरुपलब्धा । तथा च सत्येकैकस्यापि पल्योपमस्यान्तेऽसंख्येयगुणानि लभ्यन्ते, किं पुनर्दशसागरोपमकोटीकोटयन्ते इति । तेभ्योऽपि कषायमोहनीयस्य स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयगुणानि। तेभ्योऽपि दर्शनमोहनीयस्य स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयगुणानि (२–२) । उक्तः प्रकृतिसमुदाहारः ।

संप्रति स्थितिसमुदाहारे या प्राक् तीव्रमन्दता नोक्ता साऽभिधीयते—'अणंतेत्यादि, प्रथमायां स्थितौ जघन्यं स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानं । ततस्तस्यामेवोत्कृष्टं । ततो द्वितीयस्थितौ जघन्यं । एवमादि आ चरमात् उत्कृष्टस्थितौ चरमं स्थितिबन्धाध्य-

---

जाणवा. पढमजहण्णुक्कोसं=प्रथम स्थितिस्थानना जघन्य अध्यवसायथी उत्कृष्ट अध्यवसाय, अणंतगुणणाए=अनंतगुण तेथी, बितिय जहन्नाइया चरमा=द्वितीयस्थाननो जघन्य अनन्तगुण ए प्रमाणे चरम स्थान पर्यंत अनंतगुण कहेवुं. ८९

वसायस्थानं यावत्क्रमेणानन्तगुणतया वक्तव्यं । तद्यथा—ज्ञानावरणीयस्य जघन्यस्थितौ जघन्यस्थितिबन्धाध्यवसायस्थानं सर्वमन्दानुभावं । ततस्तस्यामेव जघन्यस्थितौ उत्कृष्टमध्यवसायस्थानमनन्तगुणं । ततोऽपि द्वितीयस्थितौ जघन्यं स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानमनन्तगुणं । ततोऽपि तस्यामेव द्वितीयस्थितौ उत्कृष्टमनन्तगुणं । एवं प्रतिस्थिति जघन्यमुत्कृष्टं च स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानमनन्तगुणतया तावद्वक्तव्यं यावदुत्कृष्टायां स्थितौ चरमं स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानमनन्तगुणम् (१–३)॥८९॥

तदेवं स्थितिसमुदाहारोऽपि निरवशेष उक्तः प्रकृतिसमुदाहारश्च । संप्रति जीवसमुदाहारमभिधित्सुराह—

बंधंती धुवपगडी, परित्तमाणिगसुभाण तिविहरसं। चउ तिग बिट्ठाणगयं, विवरीयतिगं च असुभाणं॥९०॥

बंधंतित्ति—ज्ञानावरणीयपञ्चकदर्शनावरणीयनवकमिथ्यात्वषोडशकषायभयजुगुप्सातैजसकार्मणवर्णगन्धरसस्पर्शागुरुलघूपघातनिर्माणान्तरायपञ्चकलक्षणाः सप्तचत्वारिंशत्संख्या(४७)ध्रुवप्रकृतीर्बध्नन्तः परावर्तमानशुभप्रकृतीनां सातवेदनीयदेवगतिमनुजगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियाहारकौदारिकशरीरसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहननांगोपांगत्रयमनुजानुपूर्वीदेवानुपूर्वीपराघातोच्छ्वासातपोद्योतप्रशस्तविहायोगतित्रसादिदशकतीर्थकरनामनरकायुर्वर्जशेषायुष्कत्रयोच्चैर्गोत्रलक्षणानां चतुस्त्रिंशत्संख्यानां (३४)त्रिविधं त्रिप्रकारं, तद्यथा—चतुःस्थानगतं त्रिस्थानगतं द्विस्थानगतं च रसमनुभागं बध्नन्ति। इह शुभप्रकृतीनां रसः

गाथार्थः—बंधंती धुवपगडी=ध्रुवबन्धिनी प्रकृति बांधतो, परित्तमाणिगसुभाण=परावर्तमान शुभ प्रकृतिनो, चउतिगबिट्ठाणगयं=चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक अने बे स्थानिक रस बांधे, च=अने, असुभाणं=परावर्तमान अशुभ प्रकृतिनो, विवरीयतिगं=विपरीतपणे (द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक अने चतुःस्थानिक) त्रिक बंधाय. ९०

क्षीरादिरसोपमः । अशुभप्रकृतीनां तु घोषातकीनिंबादिरसोपमः । उक्तं च—'घोसाडइनिंबुवमो असुभाण सुभाण खीरखंडवमो' इति । क्षीरादिरसश्च स्वाभाविक एकस्थानिक उच्यते । द्वयोस्तु कर्षयोरावर्तने कृते सति योऽवशिष्यते एकः कर्षः स द्विस्थानिकः । त्रयाणां कर्षाणामावर्तने कृते सति य उद्धरित एकः कर्षः स त्रिस्थानगतः । चतुर्णां तु कर्षाणामावर्तने कृते सति योऽवशिष्टः एकः कर्षः स चतुःस्थानगतः । एकस्थानगतोऽपि रसो जललवबिन्दुचुलुकप्रसृत्यञ्जलिकरककुंभद्रोणादिप्रक्षेपात् मन्दमन्दतराद्यसंख्यभेदत्वं प्रतिपद्यते । एवं द्विस्थानगतादिष्वपि रसेष्वसंख्येयभेदत्वं वाच्यं । एतदनुसारेण च कर्मणामपि रसेष्वेकस्थानगतत्वादि स्वधिया परिभावनीयं । एकस्थानगताच्च रसात् कर्मणां द्विस्थानगतादयो रसा यथोत्तरमनन्तगुणा वाच्याः। तदुक्तं—'अणंतगुणिया कमेणियरे' । तथा केवलज्ञानावरणवर्जानां चतुर्णां ज्ञानावरणीयानां, केवलदर्शनावरणवर्जानां त्रयाणां चक्षुरादिदर्शनावरणीयानां, पुरुषवेदसंज्वलनचतुष्टयान्तरायपञ्चकानां च सर्वसंख्यया(१७) सप्तदशप्रकृतीनां बन्धमाश्रित्य चतुर्धापि रसः सम्भवति । तद्यथा–एकस्थानगतो द्विस्थानगतस्त्रिस्थानगतश्चतुःस्थानगतश्च । शेषाणां तु शुभप्रकृतीनामशुभप्रकृतीनां वा द्विस्थानगतस्त्रिस्थानगतश्चतुःस्थानगतश्च । न तु कदाचनाप्येकस्थानगत इति वस्तुस्थितिः । तत्र शुभप्रकृतीनां चतुःस्थानगतादिक्रमेण रसस्य त्रैविध्यं प्रतिपाद्य सम्प्रत्यशुभप्रकृतीनां रसस्य त्रैविध्यमाह–'विवरीयतिगं च असुभाणं' ता एव ध्रुवप्रकृतीर्बध्नतो यदि परावर्तमाना (३९) [1]अशुभप्रकृतीर्बध्नंति तदा तासामनुभागं विपरीतत्रिकं विपरीतं त्रिकं यस्य स तथा तं बध्नति।

---

१ असातवेदनीयवेदत्रयहास्यरत्यरतिशोकनरकायुर्नरकद्विकतिर्यग्द्विकाद्यजातिचतुष्टयानाद्यसंस्थानसंहननाप्रशस्तविहायोगतिस्थावरादिदशकनीचैर्गोत्ररूपा एकोनचत्वारिंशत् ।

तद्यथा—द्विस्थानगतं त्रिस्थानगतं चतुःस्थानगतं च । इह ध्रुवप्रकृतीनां जघन्यां स्थितिं बध्नन् (परावर्तमान) शुभप्रकृतीनां बन्धमागतानां चतुःस्थानगतं रसं बध्नाति, अशुभप्रकृतीनां (अंत एवाशुभपरावर्तमानप्रकृतीनां) तु द्विस्थानगतं । अजघन्यां च ध्रुवप्रकृतीनां स्थितिं बध्नन् (परावर्तमानानां) शुभप्रकृतीनामशुभप्रकृतीनां वा यथायोगं बन्धमागतानां त्रिस्थानगतं रसं बध्नाति। उत्कृष्टां च स्थितिं ध्रुवप्रकृतीनां बध्नन् शुभप्रकृतीनां द्विस्थानगतं, अशुभप्रकृतीनां चतुःस्थानगतं रसं बध्नाति । ततः शुभप्रकृतिगतरसत्रैविध्यक्रमापेक्षयाऽशुभप्रकृतीनां रसत्रैविध्यक्रमस्य वैपरीत्यमुक्तं ॥ ९० ॥

अथ के शुभप्रकृतीनां चतुःस्थानगतं त्रिस्थानगतं द्विस्थानगतं वा रसं बध्नन्ति ? उच्यते—

सव्वविसुद्धा बंधंति, मज्झिमा संकिलिट्ठतरगा य । धुवपगडि जहन्नठिइं सव्वविसुद्धा उ बंधंति ॥९१॥
तिट्ठाणे अजहण्णं, बिट्ठाणे जेट्ठगं सुभाण कमा । सट्ठाणे उ जहन्नं, अजहन्नुक्कोसमियरासिं ॥ ९२ ॥

गाथार्थः—सव्वविसुद्धा=अतिविशुद्ध, मज्झिमा=मध्यम परिणामी, य=अने, संकिलिट्ठतरगा=संक्लिष्ट परिणामी, बंधंति=(परावर्तमानशुभनो अनुक्रमे चतुः त्रि अने द्वि स्थानिक तथा परावर्तमान अशुभनो द्वि, त्रि अने चतुःस्थानिक रस) बांधे छे. उ= वळी, सव्वविसुद्धा=जे अतिविशुद्ध परिणामी सुभाण=शुभ प्रकृतिनो चतुःस्थानिक, बंधंति=बांधे छे ते, धुवपगडिजहन्नट्ठिइं=ध्रुवप्रकृतिनी जघन्यस्थिति बांधे छे. तिट्ठाणे अजहन्नं=शुभनो त्रिस्थानिक बांधतां ध्रुवप्रकृतिनो मध्यमस्थिति अने, बिट्ठाणे जेट्ठगं= शुभनो द्विस्थानिक बांधतां ध्रुवप्रकृतिनी उत्कृष्ट स्थिति बांधे छे. उ=वळी, सट्ठाणे=स्वविशुद्धि अनुसारे, इयरासिं=परावर्तमान अशुभ प्रकृतिनो द्वि त्रि अने चतुःस्थानिक बांधतां, धुवबंधिनी प्रकृतिनी, कमा=अनुक्रमे, जहन्नं=जघन्य, अजहन्न=मध्यम अने उक्कोसं=उत्कृष्ट स्थिति बांधे. ९१-९२.

सव्व त्ति–ये सर्वविशुद्धा जन्तवस्ते परावर्तमानशुभप्रकृतीनां चतुःस्थानगतं रसं बध्नन्ति। ये पुनर्मध्यमपरिणामास्ते त्रिस्थानगतं रसं बध्नन्ति। संक्लिष्टतरपरिणामास्तु द्विस्थानगतं। ये पुनस्तद्योग्यभूमिकानुसारेण सर्वविशुद्धाः परावर्तमाना अशुभप्रकृतीर्बध्नन्ति ते तासां द्विस्थानगतं रसं निवर्तयन्ति। मध्यमपरिणामास्त्रिस्थानगतं। संक्लिष्टतरपरिणामास्तु चतुःस्थानगतं। 'धुवपगडीत्यादि' ये सर्वविशुद्धाः शुभप्रकृतीनां चतुःस्थानगतं रसं बध्नन्ति, ते ध्रुवप्रकृतीनां जघन्यां स्थितिं निवर्तयन्ति। 'तिट्ठाणे' इति षष्ठ्यर्थे सप्तमी, परावर्तमानशुभप्रकृतीनां त्रिस्थानगतस्य रसस्य ये बन्धकास्ते ध्रुवप्रकृतीनामजघन्यां मध्यमां स्थितिं बध्नन्ति। द्विस्थानगतस्य रसस्य ये बन्धकास्ते ध्रुवप्रकृतीनां ज्येष्ठामुत्कृष्टां स्थितिं बध्नन्ति। तथा इतरासां परावर्तमानाशुभप्रकृतीनां ये द्विस्थानगतं रसं बध्नन्ति, ते ध्रुवप्रकृतीनां जघन्यां स्थितिं स्वस्थाने स्वविशुद्धिभूमिकानुसारेणेत्यर्थः, बध्नन्ति। परावर्तमानाशुभप्रकृतिसत्कद्विस्थानगतरसबन्धहेतुविशुद्ध्यनुसारेण जघन्यां स्थितिं बध्नन्ति, न त्वतिजघन्यामित्यर्थः। जघन्यस्थितिबन्धो हि ध्रुवप्रकृतीनामेकान्तविशुद्धौ संभवति, न च तदानीं परावर्तमानाशुभप्रकृतीनां बन्धाः संभवन्ति। ये पुनः परावर्तमानाशुभप्रकृतीनां त्रिस्थानगतस्य रसस्य बन्धकास्ते ध्रुवप्रकृतीनामजघन्यां स्थितिं बध्नन्ति। तथा ये परावर्तमानाशुभप्रकृतीनां चतुःस्थानगतं रसं बध्नन्ति ते ध्रुवप्रकृतीनामुत्कृष्टां स्थितिं निवर्तयन्ति ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

इह द्विधा प्ररूपणा–अनन्तरोपनिधया परंपरोपनिधया च। तत्रानन्तरोपनिधया प्ररूपणामाह–

थोवा जहन्नियाए, होंति विसेसाहिओदहिसयाइं। जीवा विसेसहीणा, उदहिसयपुहुत्त मो जाव ॥९३॥

गाथार्थः–जहन्नियाए=(परावर्तमान शुभ प्रकृतिनो चतुःस्थानिक बांधतां) ध्रुवप्रकृतिना जघन्यस्थितिबन्धमां वर्तता, जीवा=जीवो,

थोव त्ति–परावर्तमानानां शुभप्रकृतीनां चतुःस्थानगतरसबन्धकाः सन्तो ज्ञानावरणीयादीनां ध्रुवप्रकृतीनां जघन्यस्थितौ बन्धकत्वेन वर्तमाना जीवाः स्तोकाः । द्वितीयस्यां स्थितौ विशेषाधिकाः । ततोऽपि तृतीयस्यां स्थितौ विशेषाधिकाः । एवं तावद्विशेषाधिका वक्तव्या यावत्प्रभूतानि सागरोपमशतान्यतिक्रान्तानि भवन्ति । ततः परं विशेषहीनास्तावद्वक्तव्या यावद्विशेषहानावपि 'उदहिसयपुहुत्तं ति' प्रभूतानि सागरोपमशतानि भवन्ति । 'मो' इति पादपूरणे । पृथक्त्वशब्दोऽत्र बहुत्ववाची । यदाह चूर्णिकृत्–'पुहुत्तसद्दो बहुत्तवाचीति ।' इति ॥ ९३ ॥

एवं तिट्ठाणकरा, बिट्ठाणकरा य आ सुभुक्कोसा । असुभाणं बिट्ठाणे, तिचउट्ठाणे य उक्कोसा ॥ ९४ ॥

एवं ति–परावर्तमानानां शुभप्रकृतीनां त्रिस्थानगतं रसं निवर्तयन्तः सन्तो ध्रुवप्रकृतीनां स्वप्रायोग्यजघन्यस्थितौ बन्धकत्वेन वर्तमाना जीवाः स्तोकाः । ततो द्वितीयस्यां स्थितौ विशेषाधिकाः । ततोऽपि तृतीयस्यां स्थितौ विशेषाधिकाः ।

थोवा=स्तोक, होंति=होय छे. विसेसाहिओदहिसयाइं=तेथी द्वितीयादिक स्थितिथी सेंकडो सागरोपम सुधी विशेषाधिक कहेवा. त्यार पछी, उदहिसयपुहुत्तमो जाव=सेंकडो सागरोपम सुधी, विसेसहीणा=विशेषहीन विशेषहीन कहेवा. ९३

गाथार्थः–एवं=ए प्रमाणे, सुभ=परावर्तमान शुभ प्रकृतिओना, तिट्ठाणकरा=त्रिस्थानिक, बिट्ठाणकरा य=अने द्विस्थानिक रसबंध करतां प्रत्येक स्थितिए विशेषाधिक ने विशेषहीन, आ उक्कोसा=उत्कृष्ट स्थिति सुधी कहेवां. असुभाणं–परा०अशुभ०ना, बिठाणे=द्विस्थानिक, तिचउट्ठाणे य=त्रिस्थानिक तथा चतुःस्थानिक रसबन्ध करतां विशेषाधिकपणुं, अने विशेषहीनपणुं, उक्कोसा=उत्कृष्ट स्थिति सुधी कहेवुं. ९४

एवं तावद्वाच्यं यावत्प्रभूतानि सागरोपमशतान्यतिक्रामन्ति। ततः परं विशेषहीना विशेषहीनास्तावद्वक्तव्या यावद्विशेषहानावपि प्रभूतानि सागरोपमशतानि गच्छन्ति। तथा परावर्तमानशुभप्रकृतीनां द्विस्थानगतं रसं निवर्तयन्तो ध्रुवप्रकृतीनां स्वप्रायोग्यजघन्यस्थितौ बन्धकत्वेन वर्तमाना जीवाः स्तोकाः। ततो द्वितीयस्यां स्थितौ विशेषाधिकाः। ततोऽपि तृतीयस्यां विशेषाधिकाः। एवं तावद्वाच्यं यावत्प्रभूतानि सागरोपमशतान्यतिक्रामन्ति। ततः परं विशेषहीनास्तावद्वक्तव्या यावद्विशेषहानावपि प्रभूतानि सागरोपमशतानि प्रयान्ति। परावर्तमानशुभप्रकृतीनां च द्विस्थानगतरसबन्धका एवं तावद्वक्तव्या यावत्तासां परावर्तमानशुभप्रकृतीनामुत्कृष्टा स्थितिः, उत्कृष्टस्थितिगतद्विस्थानरसबन्धका इत्यर्थः।

'असुभाणमित्यादि' अशुभपरावर्तमानप्रकृतीनां प्राग्दर्शितक्रमेण प्रथमतो द्विस्थानगतरसबन्धका वक्तव्याः। ततस्त्रिस्थानगतरसबन्धका वक्तव्याः। ततश्चतुःस्थानगतरसबन्धकाः। ते च तावद्वक्तव्या यावदुत्कृष्टा स्थितिः। इयमत्र भावना– अशुभपरावर्तमानप्रकृतीनां (–द्विस्थानगतरसबन्धकाः सन्तो ध्रुवप्रकृतीनां स्वप्रायोग्य–) जघन्यस्थितौ बन्धकत्वेन वर्तमाना जीवाः स्तोकाः। ततो द्वितीयस्यां स्थितौ विशेषाधिकाः। ततोऽपि तृतीयस्यां स्थितौ विशेषाधिकाः। एवं विशेषाधिका विशेषाधिकास्तावद्वक्तव्या यावत्प्रभूतानि सागरोपमशतानि गच्छन्ति। ततः परं विशेषहीना विशेषहीनास्तावद्वक्तव्या यावद्विशेषहानावपि प्रभूतानि सागरोपमशतानि यान्ति। अशुभपरावर्तमानप्रकृतीनां त्रिस्थानगतरसबन्धकाः सन्तो ध्रुवप्रकृतीनां स्वप्रायोग्यजघन्यस्थितौ बन्धकत्वेन वर्तमाना जीवाः स्तोकाः। ततो द्वितीयस्यां स्थितौ विशेषाधिकाः। एवं प्रागिव तावद्वाच्यं यावद्विशेषहानावपि प्रभूतानि सागरोपमशतान्यतिक्रामन्ति। तथाऽशुभपरावर्तमानप्रकृतीनां चतुःस्थानगतरसबन्धकाः

सन्तो ध्रुवप्रकृतीनां स्वप्रायोग्यजघन्यस्थितौ बन्धकत्वेन वर्तमाना जीवाः स्तोकाः । ततो द्वितीयस्यां स्थितौ विशेषाधिकाः । ततोऽपि तृतीयस्यां स्थितौ विशेषाधिकाः । एवं तावद्वाच्यं यावत्प्रभूतानि सागरोपमशतानि गच्छन्ति । ततः परं विशेषहीना विशेषहीनास्तावद्वक्तव्या यावद्विशेषहानावपि प्रभूतानि सागरोपमशतान्यतिक्रामन्ति । अशुभपरावर्तमानप्रकृतीनां च चतुःस्थानगतरसबन्धका एवं विशेषहीना विशेषहीनास्तावद्वक्तव्या यावत्तासामशुभपरावर्तमानप्रकृतीनामुत्कृष्टा स्थितिर्भवति, उत्कृष्टस्थितिगतचतुःस्थानकरसबन्धका इत्यर्थः ॥ ९४ ॥

तदेवं कृताऽनन्तरोपनिधया प्ररूपणा, संप्रति परंपरोपनिधया तामाह–

पल्लासंखियमूलानि, गंतुं दुगुणा य दुगुणहीणा य । नाणंतराणि पल्लस्स, मूलभागो असंखतमो ॥ ९५ ॥

पल्ल त्ति–परावर्तमानशुभप्रकृतीनां ×चतुःस्थानगतरसबन्धका ध्रुवप्रकृतीनां जघन्यस्थितौ बन्धकत्वेन वर्तमाना ये जीवास्तदपेक्षया जघन्यस्थितेः परतः पल्योपमस्यासंख्येयानि वर्गमूलानि पल्योपमस्यासंख्येयेषु वर्गमूलेषु यावन्तः समयास्ताव-

× (य० उ० ५१) परावर्तमानप्रकृतीनां शुभानां चतुःस्थानकमशुभानां वा द्विस्थानकरसं बध्नन्तो ये ध्रुवप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबन्धकत्वेन वर्तन्ते जीवास्तदपेक्षया जघन्यस्थितेः परतः ।

गाथार्थः—पल्लासंखियमूलानि=पल्योपमना असंख्याता वर्गमूल प्रमाण स्थिति, गंतुं=अतिक्रमे थके, दुगुणा य दुगुणहीणा य= जीवो द्विगुणाधिक अने द्विगुणहीन थाय. नाणंतराणि=नाना प्रकारना अन्तरो (द्विगुण वृद्धि हानि स्थानो) पल्लस्स=पल्योपमना, मूलभागो असंखतमो=प्रथम वर्गमूलना असंख्यातमा भाग प्रमाण छे ९५

त्प्रमाणाः स्थितीरतिक्रम्यापरस्मिन् स्थितिस्थाने वर्तमाना जीवा द्विगुणा भवन्ति । ततः पुनरपि पल्योपमासंख्येयवर्गमूलप्रमाणाः स्थितीरतिक्रम्यानन्तरे स्थितिस्थाने द्विगुणा भवन्ति । एवं द्विगुणास्तावद्वक्तव्या यावत्प्रभूतानि सागरोपमशतान्यतिक्रामन्ति । ततः परं पल्योपमासंख्येयवर्गमूलप्रमाणाः स्थितीरतिक्रम्यापरस्मिन् स्थितिस्थाने विशेषवृद्धिगतचरमस्थितौ बन्धकत्वेन वर्तमाना ये जीवास्तदपेक्षया द्विगुणहीना भवन्ति, अर्धा भवन्तीत्यर्थः । ततः पुनरपि पल्योपमासंख्येयवर्गमूलप्रमाणाः स्थितीरतिक्रम्यापरस्मिन् स्थितिस्थानेऽर्धा भवन्ति । एवं तावद्वाच्यं यावद्विगुणहानावपि प्रभूतानि सागरोपमशतान्यतिक्रामन्ति । एवं परावर्तमानशुभप्रकृतीनां त्रिस्थानकरसबन्धका द्विस्थानगतरसबन्धकाश्च, अशुभपरावर्तमानप्रकृतीनां तु द्विस्थानरसबन्धकास्त्रिस्थानरसबन्धकाश्चतुःस्थानरसबन्धकाश्च वक्तव्याः । एकस्मिन् द्विगुणवृद्धयन्तरे द्विगुणहान्यन्तरे वा स्थितिस्थानानि पल्योपमस्यासंख्येयानि वर्गमूलानि पल्योपमस्यासंख्येयेषु वर्गमूलेषु यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणानीत्यर्थः । नानान्तराणि नानारूपद्विगुणवृद्धिद्विगुणहानि(लक्षणानि)स्थानानि पल्योपमस्य संबन्धिनः प्रथमवर्गमूलस्यासंख्येयतमे भागे यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणानि भवन्ति । नानाद्विगुणवृद्धिद्विगुणहानिस्थानानि स्तोकानि । एकस्मिन् द्विगुणवृद्धयन्तरे द्विगुणहान्यन्तरे वा स्थितिस्थानानि असंख्येयगुणानि ॥ ९५ ॥

अणगारप्पाउग्गा बिट्ठाणगया उ दुविहपगडीणं । सागारा सव्वत्थ वि हिट्ठा थोवाणि जवमज्झा ॥९६॥

गाथार्थः—दुविहपगडीणं=परा० शुभाशुभ प्रकृतिओना, अणगारपाउग्गा=अनाकारोपयोग्य, बिट्ठाणगयाउ=द्विस्थानिकरसस्थानोज छे. सव्वत्थवि=सर्वत्र पण (द्वि त्रि अने चतुःस्थानिक) सागारा=साकारोपयोग योग्य छे. सुभाणि=शुभ प्रकृति-

ठाणाणि चउट्ठाणा, संखेज्जगुणाणि उवरिमेवंति(एवं)। तिट्ठाणे बिट्ठाणे, सुभाणि एगंतमीसाणि॥ ९७ ॥
उवरिं मिस्साणि जहन्नगो सुभाणं तओ विसेसहिओ। होइ सुभाण जहण्णो संखेज्जगुणाणि ठाणाणि॥९८॥
बिट्ठाणे जवमज्झा हेट्ठा एगंत मीसगाणुवरिं। एवं तिचउट्ठाणे जवमज्झाओ य डायठिई ॥ ९९॥
अंतो कोडाकोडी सुभबिट्ठाण जवमज्झओ उवरिं। एगंतगा विसिट्ठा सुभजिट्ठा डायट्ठिइजेट्ठा ॥१००॥

ओना, चउट्ठाणा=चतुःस्थानिक रसना, जवमज्झा=यवमध्यथी, हिट्ठा=हेठे, थोवाणि=स्तोक, ठाणाणि=स्थितिस्थानानि, उवरिं=उपर, संखिज्जगुणाणि=संख्यातगुणां, एवंति=ए प्रमाणे, तिट्ठाणे=त्रिस्थानिकने विषे हेठे तथा उपर कहेवां, बिट्ठाणि=द्विस्थानिकने विषे यवमध्यथी नीचे, एगंत=एकान्तसाकारोपयोग योग्य संख्यातगुण तेथी, मीसाणि=मिश्रयोग्य संख्या० तेथी, उवरिं मिस्साणि= यवमध्यथी उपर मिश्रयोग्य संख्या० तेथी, सुभाणं=परा० शुभ० नो, जहन्नगो=जघन्यस्थितिबन्ध संख्या०, तओ=तेथी, असुभाण जहन्नो=परा० अशु०नो जघन्य, विसेसहिओ=विशेषाधिक, तेथी, बिट्ठाणे=अशु० परा०ना द्विस्थानिकने विषे, जवमज्झा=यवमध्यथी, हेट्ठा=नीचे, एगंत=एकांतसाकारोपयोगयोग्य, ठाणाणि=स्थानको, संखेज्जगुणाणि=संख्यातगुणां, तेथी, मीसगा=यवमध्यथी नीचेनां मिश्र संख्या०, उवरिं=तेथी यवमध्यथी उपरनां मिश्र संख्या०, तेथी उपरनां एकान्त साकारोपयोगयोग्य स्थानको संख्या०, एवं=ए प्रमाणे, तिचउट्ठाणे जवमज्झाओ य डायठिई=त्रिस्थानिक यवमध्यथी नीचेनां अने उपरनां स्थानको अनुक्रमे संख्यातगुणां. तेथी चतुःस्थानिक यवमध्यथी नीचेना संख्या०, तेथी चतुःस्थानिक यवमध्यथी उपरनी डायस्थिति संख्या०, तेथी अंतोकोडाकोडी= अन्तःकोडाकोडी संख्या०, तेथी, सुभबिट्ठाणजवमज्झाओ=परा० शुभ० ना द्विस्थानिक यवमध्यथी उवरिं=उपर, एगंतगा=एकान्त

अणगार त्ति–द्विविधानामपि शुभानामशुभानां च परावर्तमानप्रकृतीनां रसा अनाकारप्रायोग्याः बन्धं प्रत्यनाकारोपयोगयोग्या बन्धमधिकृत्य तथाविधमन्दपरिणामयोग्या इत्यर्थः । नियमात् द्विस्थानगता एव नान्ये । तुरेवकारार्थः । उक्तं च—" तुः स्याद् भेदेऽवधारणे " । साकाराः साकारोपयोगयोग्या बन्धमधिकृत्य तीव्रपरिणामयोग्याः । पुनः सर्वत्रापि द्विस्थानादौ प्राप्यन्ते द्विस्थानगतास्त्रिस्थानगताश्चतुःस्थानगताश्च रसा बन्धमाश्रित्य साकारोपयोगयोग्या ×भवन्तीत्यर्थः ।

इदानीं सर्वस्थितिस्थानानामल्पबहुत्वमाह—'हिट्ठा थोवाणीत्यादि' परावर्तमानशुभप्रकृतीनां चतुःस्थानकरसयवमध्यादधः स्थितिस्थानानि सर्वस्तोकानि १। तेभ्यश्चतुःस्थानकरसयवमध्यस्यैवोपरि स्थितिस्थानानि संख्येयगुणानि २ । तेभ्योऽपि परावर्तमानशुभप्रकृतीनां त्रिस्थानकरसयवमध्यादधः स्थितिस्थानानि संख्येयगुणानि ३ । तेभ्योऽपि त्रिस्थानकरसयवमध्यस्योपरि स्थितिस्थानानि संख्येयगुणानि ४ । 'एवं तिट्ठाणे त्ति' एवं संख्येयगुणतयाऽध उपरि च त्रिस्थानेऽपि रसे स्थितिस्थानानि वक्तव्यानीत्यर्थः । तेभ्योऽपि परावर्तमानशुभप्रकृतीनां द्विस्थानकरसयवमध्यादधः स्थितिस्थानानि एकान्तसाकारोपयोगयोग्यानि संख्येयगुणानि ५। तेभ्योऽपि द्विस्थानकरसयवमध्यादधः पार्श्वात्येभ्य ऊर्ध्वं स्थितिस्थानानि मिश्राणि साकारानाकारोपयोगयोग्यानि संख्येयगुणानि ६ । तेभ्योऽपि द्विस्थानकरसयवमध्यस्योपरि मिश्राणि स्थितिस्थानानि संख्येयगुणानि ७ ।

× (य० उ० ५२) अत्र त्रिस्थानका द्विस्थानकाश्च रसाः केवलसाकाराः, द्विस्थानकास्तूभयरूपा इति संज्ञाभेदः फलितः ।

साकारोपयोग योग्य स्थितिस्थानो संख्या०, तेथी विसिठा सुभजिट्ठा=शुभप्रकृतिनो उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेषाधिक, तेथी डायठिइ= डायस्थिति विशे०, तेथी जिट्ठा=उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेषाधिक. ९६—१००

तेभ्योऽपि शुभानां परावतमानप्रकृतीनां जघन्यः स्थितिबन्धः संख्येयगुणः८। ततोऽप्यशुभपरावर्तमानप्रकृतीनां जघन्यः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः ९। ततोऽप्यशुभपरावर्तमानप्रकृतीनामेव द्विस्थानकरसयवमध्यादध एकान्तसाकारोपयोगयोग्यानि स्थितिस्थानानि संख्येयगुणानि १०। ततस्तासामेव परावर्तमानाशुभप्रकृतीनां द्विस्थानकरसयवमध्यादधः पाश्चात्येभ्य ऊर्ध्वं मिश्राणि स्थितिस्थानानि संख्येयगुणानि११। तेभ्योऽपि तासामेवाशुभपरावर्तमानप्रकृतीनां द्विस्थानकरसयवमध्यादुपरि स्थितिस्थानानि मिश्राणि संख्येयगुणानि १२। तेभ्योऽप्युपरि एकान्तसाकारोपयोगयोग्यानि स्थितिस्थानानि संख्येयगुणानि १३। तेभ्योऽपि तासामेव परावर्तमानाशुभप्रकृतीनां त्रिस्थानकरसयवमध्यादधः स्थितिस्थानानि संख्येयगुणानि १४। तेभ्योऽपि तासामेव परावर्तमानाशुभप्रकृतीनां त्रिस्थानकरसयवमध्यस्योपरि स्थितिस्थानानि संख्येयगुणानि १५। तेभ्योऽप्यशुभपरावर्तमानप्रकृतीनामेव चतुःस्थानकरसयवमध्यादधः स्थितिस्थानानि संख्येयगुणानि १६। तेभ्योऽपि यवमध्यादुपरि डायस्थितिः संख्येयगुणा १७। यतः स्थितिस्थानादपवर्तनाकरणवशेनोत्कृष्टां स्थितिं याति तावती स्थितिर्डायस्थितिरित्युच्यते। ततोऽपि सागरोपमाणामन्तःकोटीकोटी संख्येयगुणा १८। ततोऽपि परावर्तमानशुभप्रकृतीनां द्विस्थानकरसयवमध्यस्योपरि यानि मिश्राणि स्थितिस्थानानि तेषामुपर्येकान्तसाकारोपयोगयोग्यानि स्थितिस्थानानि संख्येयगुणानि १९। तेभ्योऽपि परावर्तमानशुभप्रकृतीनामुत्कृष्टः स्थितिबन्धो विशेषाधिकः २०। ततोऽप्यशुभपरावर्तमानप्रकृतीनां बद्धा डायस्थितिर्विशेषाधिका २१। यतः स्थितिस्थानात् मांडूकप्लुतिन्यायेन डायां फालां दत्वा या स्थितिर्बध्यते ततः प्रभृति तदन्ता तावती स्थितिर्बद्धा डायस्थितिरिहोच्यते। सा चोत्कर्षतोऽन्तःसागरोपमकोटीकोटयूना सकलकर्मस्थितिप्रमाणा वेदितव्या। तथाहि—अन्तःसागरोपम-

कोटीकोटीप्रमाणं स्थितिबन्धं कृत्वा पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रिय उत्कृष्टां स्थितिं बध्नातीति नान्यथा। ततोऽपि परावर्तमानाशुभप्रकृतीनामुत्कृष्टः स्थितिबन्धो विशेषाधिक इति २२ ॥ ९६–१०० ॥

संप्रत्यस्मिन् विषये जीवानामल्पबहुत्वमाह—

संखेज्जगुणा जीवा, कमसो एएसु दुविहपगईणं। असुभाणं तिट्ठाणे सव्वुवरि विसेसओ अहिया ॥१०१॥

× संखेज्ज त्ति–सर्वस्तोकाः परावर्तमानशुभप्रकृतीनां चतुःस्थानकरसबन्धका जीवाः। तेभ्योऽपि त्रिस्थानकरसबन्धकाः संख्येयगुणाः। तेभ्योऽपि द्विस्थानकरसबन्धकाः संख्येयगुणाः। तेभ्योऽपि परावर्तमानाशुभप्रकृतीनां द्विस्थानकरसबन्धकाः सख्येयगुणाः। तेभ्योऽपि चतुःस्थानकरसबन्धकाः संख्येयगुणाः। तेभ्योऽपि त्रिस्थानकरसबन्धका विशेषाधिकाः। तथा चाह–'असुभाणमित्यादि' अशुभानामशुभप्रकृतीनां त्रिस्थाने त्रिस्थानकस्य रसस्य बन्धकाः सर्वेषामुपरि विशेषाधिका ×१वक्तव्याः॥१०१॥

× (य० उ० ५३) एतेषु द्वित्रिचतुःस्थानकरसेषु द्विविधप्रकृतीनां वर्त्तमानाः क्रमशः क्रमेण शुभानां पश्चानुपूर्व्याऽशुभानां चादौ पूर्वानुपूर्व्येत्यर्थः। जीवाः संख्येयगुणा वाच्याः। नवरमशुभानां त्रिस्थानं सर्वोपरि वाच्यं। तत्र च जीवाः विशेषाधिका वाच्याः।

×१(य० उ० ५४) साद्यादिप्ररूपणां चात्रेत्थं कुर्वन्ति–इहायुर्वर्जानां सप्तानां मूलप्रकृतीनामजघन्यः स्थितिबन्धश्चतुर्धा–सादिर-

गाथार्थः—दुविहपगईणं=(शुभाशुभ) बंने प्रकारनी प्रकृतिना, एएसु=ए रसस्थानकोने विषे, कमसो=अनुक्रमे, जीवा=जीवो, संखेज्जगुणा=संखातगुणा. परंतु सव्वुवरि=सर्वथी उपर असुभाणं तिट्ठाणे=अशुभ प्रकृतिना त्रिस्थानिक रसबन्धकजीवो, विसेसओ अहिया=विशेषाधिक कहेवा. १०१

नादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्च । तथाहि–मोहनीयवर्जानां षण्णां मूलप्रकृतीनां जघन्यः स्थितिबन्धः क्षपकस्य सूक्ष्मसंपरायस्य स्वगुणस्थानचरमसमये प्राप्यते । स च तदानीमेव भवतीति सादिः । द्वितीयसमये बन्धव्यवच्छेदादपगच्छतीत्यध्रुवः । एतादृशाज्जघन्यस्थितिबन्धादन्यः सर्वोऽप्यजघन्यः । स चोपशान्तमोहे न भवति, ततः प्रतिपाते च भूयोऽपि भवतीति सादिः, तत्स्थानमप्राप्तस्यानादिः, ध्रुवाध्रुवावभव्यभव्यापेक्षया । मोहनीयस्य जघन्यः स्थितिबन्धः क्षपकस्यानिवृत्तिबादरसंपरायस्य चरमसमये, स चैकसामयिक इति साद्यध्रुवः, ततोऽन्यः सर्वोऽप्यजघन्यः, स चोपशमश्रेण्यां सूक्ष्मसंपराये न भवति, ततः प्रतिपाते च भवतीति सादिः, तत्स्थानमप्राप्तस्यानादिः, ध्रुवाध्रुवौ प्राग्वत् । वेदनीयस्य चात्र सांपरायिकस्थितिबन्धापेक्षया सादित्वं भाव्यं, अन्यथा द्विसामयिकस्थितिबन्धस्तस्योपशान्तमोहादावपि प्राप्यत इति । जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टाश्च स्थितिबन्धाः सप्तानामपि साद्यध्रुवाः । तत्र जघन्यः साद्यध्रुवतया प्रागेव भावितः । उत्कृष्टश्चासौ सर्वसंक्लिष्टे संज्ञिमिथ्यादृष्टौ कियत्कालं प्राप्यते, तदनन्तरमनुत्कृष्टः, भूयोऽपि कालान्तर उत्कृष्ट इति द्वाप्येतौ पर्यायलभ्यत्वात्साद्यध्रुवौ । आयुषि जघन्यादयश्चत्वारोऽपि साद्यध्रुवाः प्रतिपत्तव्याः, आयुर्बन्धस्य प्रतिनियतकालभावित्वात् । उत्तरप्रकृतिषु ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयसंज्वलनचतुष्टयरूपाणामष्टादशप्रकृतीनामजघन्या स्थितिः साद्यादितया चतुर्विधा । तथाहि––ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयानां जघन्यस्थितिबन्धः क्षपकस्य सूक्ष्मसंपरायस्य स्वगुणस्थानचरमसमये वर्तमानस्य, संज्वलनचतुष्टयस्य क्षपकस्यानिवृत्तिबादरसंपरायस्य स्वस्वबन्धव्यवच्छेदसमये, स चैकसामयिक इति साद्यध्रुवः , ततोऽन्यः सर्वोऽप्यजघन्यः , स चोपशान्तमोहे न भवति, ततः प्रतिपाते च भवतीति सादिः, तत्स्थानमप्राप्तस्यानादिः , ध्रुवाध्रुवौ प्राग्वत् । एतासामेव जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टाः स्थितयः साद्यध्रुवाः । तत्र जघन्याऽनन्तरमेव भाविता,

उत्कृष्टानुत्कृष्टा च संज्ञिमिथ्यादृष्टौ पर्यायेण लभ्यते , सर्वसंक्लिष्टे उत्कृष्टा, तस्मिन्नेव मध्यमपरिणामे चानुत्कृष्टेति द्वे अपि साद्यध्रुवे । उक्ताष्टादशशेषाणां प्रकृतीनां सर्वा अपि जघन्याजघन्योत्कृष्टानुकृष्टाः स्थितयः साद्यध्रुवाः । तथाहि—निद्रापञ्चकमिथ्यात्वाद्यद्वादशकषायभयजुगुप्सातैजसकार्मणवर्णादिचतुष्टयागुरुलघूपघातनिर्माणरूपाणामेकोनत्रिंशत्प्रकृतीनां (२९) जघन्यः स्थितिबन्धः सर्वविशुद्धे बादरैकेन्द्रिये पर्याप्तेऽन्तर्मुहूर्त्तं यावल्लभ्यते। तदनन्तरं तस्मिन्नेवाध्यवसायपरावृत्तेर्मन्दपरिणामेऽजघन्यः । पुनरपि कालान्तरे तस्मिन्नन्यस्मिन् वा भवे प्रतिपन्नविशुद्धौ जघन्य इति साद्यध्रुवावेतौ । उत्कृष्टः सर्वसंक्लिष्टे संज्ञिमिथ्यादृष्टावनुत्कृष्टश्च मध्यमपरिणामे तस्मिन्निति तावपि पर्यायलभ्यत्वात्साद्यध्रुवौ । शेषाणामध्रुवबन्धिनीनां चाध्रुवबन्धित्वादेव चत्वारोऽपि विकल्पाः साद्यध्रुवा ज्ञेयाः।

स्वामित्वचिन्तायां तीर्थकरनाम्नो मनुष्यो नरकबद्धायुष्को नरकं जिगमिषुर्मिथ्यात्वप्रतिपत्तिप्राक्समये उत्कृष्टस्थितिबन्धकः , उत्कृष्टस्थितेरुत्कृष्टसंक्लेशेनैव बन्धात्, तद्बन्धकेषु चास्यैवातिसंक्लिष्टत्वात् । आहारकद्विकस्याप्रमत्तयतिः प्रमत्ताभिमुखस्तथा । अमरायुषः प्रमत्तः संयतः पूर्वकोट्यायुरप्रमत्तभावाभिमुखः स्वायुःशेषतृतीयभागाद्यसमये वर्त्तमानस्तथा । पूर्वकोटित्रिभागस्य द्वितीयादिसमयेषु बध्नतो नोत्कृष्टमायुर्लभ्यतेऽबाधायाः परिगलितत्वेन मध्यमत्वप्राप्तेरित्याद्यसमयग्रहणं । शुभेयं स्थितिर्विशुद्धया बध्यत इति अप्रमत्तभावाभिमुखत्वग्रहणं । शेषाणां षोडशोत्तरशतसंख्यप्रकृतीनां मिथ्यादृष्टिः सर्वपर्याप्तिपर्याप्तः सर्वसंक्लिष्ट उत्कृष्टस्थितिबन्धस्वामी । अत्र सर्वसंक्लिष्टत्वं प्रायोवृत्त्योच्यते , यावता तिर्यङ्मनुष्यायुषी उत्कृष्टे तत्प्रायोग्यविशुद्धो बध्नातीति द्रष्टव्यं, तयोः शुभस्थितिकत्वेन विशुद्धिजन्यत्वात् । ननु यदि विशुद्धयेदमायुर्द्वयं बध्यते तदा मिथ्यादृष्टेः सास्वादनो विशुद्धतर इति स कस्मादेतदुत्कृष्टस्थितिबन्धकत्वेन नोच्यते ? न च वाच्यं तिर्यङ्मनुष्यायुषी सास्वादनो न बध्नात्येवेति 'तिर्यगायुषो बन्धो, मनुष्यायुष उदयः, तिर्यङ्मनुष्यायुषी सती' एष विकल्पो मिथ्यादृष्टेः सास्वादनस्य वा । 'मनुष्यायुषो बन्धो, मनुष्यायुष उदयः, मनुष्यमनुष्यायुषी सती' एषोऽपि विकल्पो मिथ्यादृष्टेः सास्वादनस्य वेति सप्ततिकाटीकायामभिधानात्

इति चेदत्र प्रतिविधीयते—सत्यामपि सामान्यतो मनुष्यतिर्यगायुर्बन्धानुज्ञायामसंख्येयवर्षायुष्कयोग्यमुत्कृष्टं प्रस्तुतायुर्द्वयं सास्वादनो न बध्नाति, तस्य गुणप्रतिपाताभिमुखत्वेन गुणाभिमुखविशुद्धमिथ्यादृष्टेः सकाशाद्विशुद्ध्याधिक्यासिद्धेः । अत्र च विशेषचिन्तायां विकलत्रिकसूक्ष्मत्रिकदेवायुर्वर्जायुस्त्रिकसुरद्विकवैक्रियद्विकनरकद्विकलक्षणानां पञ्चदशप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिं तिर्यङ्मनुष्या एव मिथ्यादृष्टयः प्रतिनियतसमये बध्नन्ति । देवनारका ह्येतास्तिर्यञ्चमनुष्यायुर्वर्जा भवप्रत्ययादेव न बध्नन्ति । तिर्यङ्मनुष्यायुषी अपि त्रिपल्योपमलक्षणे उत्कृष्टे ते न बध्नन्ति । तस्मात्तिर्यङ्मनुष्यायुषोरुत्कृष्टस्थितिबन्धकास्तिर्यङ्मनुष्या एव पूर्वकोट्यायुषस्तत्प्रायोग्यविशुद्धा द्रष्टव्याः । सम्यग्दृष्टेरतिविशुद्धमिथ्यादृष्टेश्च देवायुर्बन्ध एव स्यादिति मिथ्यादृष्टित्वतत्प्रायोग्यविशुद्धविशेषणद्वयं । नारकायुषः पुनरेत एव तत्प्रायोग्यसंक्लिष्टा वाच्याः, अत्यन्तशुद्धस्यात्यन्तसंक्लिष्टस्य चायुर्बन्धस्य सर्वथा निषेधात् । नरकद्विकवैक्रियद्विकयोश्चैत एव सर्वसंक्लिष्टा उत्कृष्टस्थितिबन्धकाः । विकलजातित्रिकसूक्ष्मत्रिकयोस्तु तत्प्रायोग्यसंक्लिष्टाः दृष्टव्याः । अतिसंक्लिष्टा ह्येतत्प्रकृतिबन्धमुल्लङ्घ्य नरकप्रायोग्यमेव बध्नीयुः । विशुद्धास्तु विशुद्धितारतम्यात्पञ्चेन्द्रियतिर्यक्प्रायोग्यं वा मनुष्यप्रायोग्यं वा देवप्रायोग्यं वा बध्नीयुरिति तत्प्रायोग्यसंक्लेशग्रहणं । देवद्विकस्यापि तत्प्रायोग्यसंक्लिष्टा दृष्टव्याः, अतिसंक्लिष्टानामधोवर्तिमनुष्यादिप्रायोग्यबन्धसंभवात् । विशुद्धौ पुनरुत्कृष्टबन्धाभावादिति । स्थावरैकेन्द्रियजात्यातपानामीशानान्ता देवा उत्कृष्टस्थितिबन्धकाः। ततः परे देवा नैकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धका इति तन्निषेधः । तिर्यङ्मनुष्यास्त्वेतावति संक्लेशे वर्तमाना एतद्बन्धमतिक्रम्य नरकप्रायोग्यमेव बध्नन्तीति तेषामपि निषेधः । तिर्यग्द्विकौदारिकद्विकोद्योतसेवार्त्तसंहननानां सुरनारका उत्कृष्टस्थितिबन्धकाः । मनुष्यतिर्यञ्चो ह्येतद्बन्धार्हसंक्लेशे वर्तमाना एतासां षट्प्रकृतीनामुत्कृष्टतोऽप्यष्टादशकोटाकोटिलक्षणां मध्यमां स्थितिं बध्नन्ति, न तु विंशतिकोटाकोटीलक्षणामुत्कृष्टां, अधिकसंक्लेशे वर्तमानास्तु नरकयोग्यमेव बध्नीयुरिति तद्व्युदासः । देवनारकास्त्वतिसंक्लिष्टा अपि तिर्यग्गतिप्रायोग्यमेव बध्नन्तीति तेषां ग्रहणं । अत्र च सामान्योक्तावपि सेवार्त्तसंहननौदारिकोपा-

ङ्ख्योरुत्कृष्टस्थितिबन्धकाः सनत्कुमारादिदेवा दृष्टव्याः, नेशानान्ताः । ते हि तत्प्रायोग्यसंक्लेशे वर्तमानाः प्रकृतप्रकृत्योरुत्कृष्टतोऽप्यष्टादशकोटाकोटीलक्षणां मध्यमामेव स्थितिं बध्नन्ति । सर्वोत्कृष्टसंक्लेशाश्चैकेन्द्रियप्रायोग्यमेव बध्नन्ति । न चैते प्रकृती एकेन्द्रियप्रायोग्यान्तर्भूते इति । उक्ताष्टाविंशतिप्रकृतिभ्यः शेषाणां द्विनवतिसङ्ख्यप्रकृतीनां मिथ्यादृष्टयश्चतुर्गतिका अप्युत्कृष्टस्थितिबन्धकाः । तत्र वर्णचतुष्कतैजसकार्मणागुरुलघुनिर्माणोपघातभयजुगुप्सामिथ्यात्वकषायषोडशकज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकान्तरायपञ्चकलक्षणानां सप्तचत्वारिंशतो ध्रुवबन्धिनीनामध्रुवबन्धिनीनामपि मध्येऽसातारतिशोकनपुंसकवेदपञ्चेन्द्रियजातिहुंडसंस्थानपराघातोच्छ्वासाशुभविहायोगतित्रसचतुष्कास्थिरषट्कनीचैर्गोत्रलक्षणानां विंशतेः प्रकृतीनां सर्वोत्कृष्टसंक्लेशेनोत्कृष्टां स्थितिं चतुर्गतिका अपि मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति । शेषाणां त्वध्रुवबन्धिनीनां सातरतिहास्यस्त्रीपुंवेदमनुष्यद्विकप्रथमसंस्थानसंहननपञ्चकप्रशस्तविहायोगतिस्थिरषट्कोच्चैर्गोत्रलक्षणानां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां तद्बन्धकेषु तत्प्रायोग्यसंक्लिष्टा उत्कृष्टस्थितिबन्धका इति ज्ञेयं ।

आहारकद्विकजिननाम्नोरपूर्वकरणक्षपकस्तद्बन्धस्य चरमस्थितिबन्धे वर्तमानो जघन्यस्थितिबन्धकः, तद्बन्धकेषु अस्यैवातिविशुद्धत्वात्, तिर्यङ्मनुष्यदेवायुर्वर्जकर्मणां च जघन्यस्थितेर्विशुद्धिप्रत्ययत्वात् । संज्वलनचतुष्टयपुरुषवेदानामनिवृत्तिबादरक्षपकस्तद्बन्धस्य यथास्वं चरमस्थितिबन्धे वर्तमानो जघन्यस्थितिबन्धकः, तद्बन्धकेष्वस्यैवातिविशुद्धत्वात् । ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कान्तरायपञ्चकसातवेदनीययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राणां सूक्ष्मसंपरायक्षपकश्चरमस्थितिबन्धे वर्तमानो जघन्यस्थितिबन्धकः, तद्बन्धकेष्वस्यैवातिविशुद्धत्वात् । वैक्रियषट्कस्यासंज्ञी तिर्यक्पञ्चेन्द्रियः सर्वपर्याप्तिपर्याप्तस्तथा, तस्यैव सागरोपमसहस्रद्वयप्रमाणाया एतज्जघन्यस्थितेर्बन्धकत्वात् । एता हि प्रकृतयो नरकदेवलोकप्रायोग्याः, तत्र च देवनारकासंज्ञिमनुष्यैकेन्द्रियविकलेन्द्रिया नारकेषु देवलोकेषु (च) नोत्पद्यन्त एवेति तेषामेतद्बन्धासंभवः । तिर्यङ्मनुष्यास्तु स्वभावादेव प्रकृतप्रकृतिषट्कस्थितिं मध्यमामुत्कृष्टां वा कुर्वन्तीति तेऽपीहोपेक्षिताः । आयुषश्चतुर्विधस्यापि संज्ञ्यसंज्ञी च जघन्यस्थितिबन्धस्वामी । तत्र देवनारकायुषोः पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्या मनुष्यतिर्यगा-

एवं बंधणकरणे, परूविए सह हि बंधसयगेणं । बंधविहाणाहिगमो, सुहमभिगंतुं लहुं होइ ॥ १०२ ॥

एवं ति–एवमुक्तप्रकारेणास्मिन् बन्धनकरणे बन्धशतकेन बन्धशतकाख्येन ग्रन्थेन सह प्ररूपिते सति । एतेन किल शतककर्मप्रकृत्योरेककर्तृकता ×आवेदिता द्रष्टव्या । बन्धविधानस्य पूर्वगतस्य सुखमधिगन्तुं सुखेन ज्ञातुमिष्यमाणस्याधिगमोऽवबोधो लघु शीघ्रं भवति ॥ १०२ ॥

॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां कर्मप्रकृतिटीकायां **बन्धनकरणम्**॥

युषोः पुनरेकेन्द्रियादयो जघन्यस्थितिबन्धस्वामिनो द्रष्टव्याः । उक्तशेषाणां पञ्चाशीतिप्रकृतीनां बादरपर्याप्तस्तद्बन्धकेषु सर्वविशुद्ध एकेन्द्रियो जघन्यां स्थितिं करोति । अन्ये ह्येकेन्द्रियास्तथाविधविशुद्धयभावाद् बृहत्तरां स्थितिं निर्वर्तयन्ति । विकलेन्द्रियपञ्चेन्द्रियेषु शुद्धिरधिकाऽपि लभ्यते, केवलं तेऽपि स्वभावादेव प्रस्तुतप्रकृतीनां महतीं स्थितिमुपकल्पयन्तीति शेषव्युदासेन यथोक्तैकेन्द्रियस्यैव ग्रहणमिति ॥

×(य०उ०५५) अनया च वचनभङ्ग्या शतककर्मप्रकृत्योरेककर्तृकता समुच्चयेनोभयग्रन्थार्थज्ञानस्यावश्योपयोगित्वं चावेदितं भवति।

॥ **बन्धनकरणं सम्मत्तम्** ॥

गाथार्थः—एवं=ए प्रमाणे, सह हि बंधसयगेणं=बन्धशतकनी साथे, बंधणकरणे=बन्धनकरण, परूविए=प्ररूप्ये छते, बंधविहाण=बन्धविधिने, सुहमभिगंतुं=सुखपूर्वक जाणवाने इच्छनारने, अहिगमो=अवबोध, लहुं होइ=शिघ्र थाय छे. १०२

॥ अथ संक्रमकरणं ॥

तदेवमुक्तं बन्धनकरणं । संप्रत्युद्दशक्रमेण वक्तुमवसरप्राप्तं संक्रमकरणं । संक्रमश्च प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरूपविषयभेदाच्चतुर्विधः । तत्र प्रथमतः संक्रमस्य सामान्यलक्षणमभिधातुकाम आह–

सो संकमो त्ति वुच्चइ, जं बं(जब्बं)धणपरिणओ पओगेणं। पगयंतरत्थदलियं, परिणमयइ तयणुभावे जं॥१॥

सो संकमु त्ति–इह जीवो यद्बन्धनपरिणतो यस्याः प्रकृतेर्बन्धनेन बन्धकत्वेन ×परिणतः । अनेन किलेदमावेद्यते–यदि जीवस्तथारूपबन्धनपरिणामपरिणतो भवति ततः कर्मवर्गणापुद्गला अपि कर्मरूपतया परिणमन्ते, नान्यथा । उक्तं च– " जीवपरिणामहेऊ कम्मत्ता पुग्गला परिणमंति । पोग्गलकम्मनिमित्तं जीवो वि तहेव ×१परिणमइ ॥१॥" अस्या अक्षरगमनिका–जीवस्य सत्कात् परिणामादध्यवसायाद्धेतोः, जीवपरिणामं हेतुमाश्रित्येत्यर्थः । कर्मवर्गणान्तःपातिनो जीवस्वप्रदेशावगाढाः पुद्गलाः कर्मरूपतया ज्ञानावरणीयादिकर्मरूपतया परिणमन्ते । अथ जीवस्यापि तथारूपः परिणामः कस्माद् भवतीति

× (य०उ० १) यदुत जीवकर्मणोस्तथा तथा बंध्यबन्धकभावे परस्परं सव्यपेक्षत्वमिति । ×१ (य०उ० २) इति बध्यमाने कर्मणि जीवस्य तथाविधाध्यवसायद्वारा प्राग्बद्धकर्मणश्च तथाविधविपाकोदयद्वारा मिथः सहकारित्वमित्यस्या निर्गलितोऽर्थः ।

गाथार्थः—पओगेण=वीर्य विशेष वडे, जं बंधणपरिणओ=जे प्रकृतिना बन्धकपणे परिणमेलो जीव, पगयंतरत्थदलियं=अन्य प्रकृतिगत दलिकने, जं=जे, तयणुभावे=ते रूपे, परिणमयइ=परिणमावे, सो=ते, संकमोत्ति=' संक्रम,' वुच्चइ=कहेवाय छे. १

चेदुच्यते–'पुग्गलेत्यादि' पुद्गलरूपं (स्वं)प्राग्बद्धं कर्म विपाकोदयप्राप्तं तन्निमित्तं तत्सामर्थ्यादिति भावः। जीवोऽपि तथैव (स्वं)प्रदेशावगाढकर्मवर्गणान्तःपातिपुद्गलकर्मरूपतापत्तिहेतुतयैव परिणमत इति ॥ 'पओगेणे ति' प्रयोगेण सङ्क्लेशसंज्ञितेन विशोधिसंज्ञितेन वा वीर्यविशेषेण। विवक्षितायाः प्रकृतेरन्या प्रकृतिः प्रकृत्यन्तरं विवक्षितबध्यमानप्रकृतिव्यतिरिक्ताऽन्या प्रकृतिरित्यर्थः। तत्रस्थं दलिकं तदनुभावेन बध्यमानप्रकृतिस्वभावेन यत्परिणमयति परिणमनमापादयति स संक्रम उच्यते। एतदुक्तं भवति–बध्यमानासु प्रकृतिषु मध्येऽबध्यमानप्रकृतिदलिकं प्रक्षिप्य बध्यमानप्रकृतिरूपतया यत्तस्य परिणमनं, यच्च वा बध्यमानानां प्रकृतीनां दलिकरूपस्येतरेतररूपतया परिणमनं तत्सर्वं संक्रमणमित्युच्यते। तत्र बध्यमानप्रकृतिष्वबध्यमानप्रकृतीनां संक्रमो यथा–सातवेदनीये बध्यमानेऽसातवेदनीयस्य, उच्चैर्गोत्रे वा नीचैर्गोत्रस्येत्यादि। बध्यमानानां परस्परं संक्रमो यथा–बध्यमाने मतिज्ञानावरणीये बध्यमानमेव श्रुतज्ञानावरणं संक्रमयति, श्रुतज्ञानावरणे वा बध्यमाने बध्यमानमेव मतिज्ञानावरणीयमित्यादि। इह यत्प्रकृतिबन्धकत्वेन परिणत आत्मा तदनुभावेन प्रकृत्यन्तरस्थं दलिकं यत्परिणमयति स संक्रम इत्युक्तं ॥१॥

एतच्च लक्षणं दर्शनत्रिकव्यतिरेकेणान्यत्र द्रष्टव्यं, दर्शनत्रिके पुनर्बन्धं विनापि संक्रमोऽवगन्तव्यः। तथा चाह—

दुसु वेगे दिट्ठिदुगं, बंधेण विणावि सुद्धदिट्ठिस्स। परिणामइ जीसे तं, पगईए पडिग्गहो एसा (सो)।२।

दुसु त्ति—शुद्धदृष्टेः सम्यग्दृष्टेर्द्वयोः सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोराधारभूतयोर्मिथ्यात्वं, एकस्मिंश्च सम्यक्त्वे सम्यग्मिथ्यात्वं

गाथार्थः—सुद्धदिट्ठिस्स=शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव, बंधेण विणावि=बंध विना पण, दुसु=बेने विषे, वेगे=अथवा एकने विषे, दिट्ठिदुगं=बे दर्शन मोहनीयने संक्रमावे छे. तं=ते (अन्य प्रकृतिनां) दलिकने, जीसे पगईए=जे प्रकृतिने विषे, परिणामइ=संक्रमावे,

बन्धं विनापि संक्रामति । इयमत्र भावना—इह मिथ्यात्वस्यैव बन्धो न सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः । यतो मिथ्यात्वपुद्गला एव मदनकोद्रवस्थानीया औषधविशेषकल्पेनौपशमिकसम्यक्त्वानुगतेन विशोधिस्थानेन त्रिधा क्रियन्ते, तद्यथा—शुद्धा अर्धविशुद्धा अविशुद्धाश्च । तत्र विशुद्धाः सम्यक्त्वं, अर्धविशुद्धाः सम्यग्मिथ्यात्वं, अविशुद्धा मिथ्यात्वं । तत्र विशुद्धसम्यग्दृष्टिः सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोर्बन्धं विनापि तत्र मिथ्यात्वं संक्रमयति, सम्यग्मिथ्यात्वं च सम्यक्त्वे इति । तदेवमुक्तं संक्रमस्य सामान्यलक्षणं, संप्रति यासु प्रकृतिषु प्रकृत्यन्तरस्थं दलिकं संक्रमयति तासां संज्ञान्तरमाह—'परिणामेत्यादि' यस्यां प्रकृतौ आधारभूतायां तत्प्रकृत्यन्तरस्थं दलिकं परिणमयति आधारभूतप्रकृतिरूपतामापादयति एषा प्रकृतिराधारभूता पतद्ग्रह इत्युच्यते । पतद्ग्रह इव पतद्ग्रहः संक्रम्यमाणप्रकृत्याधार इत्यर्थः ॥ २ ॥

संक्रमलक्षणं च प्रागुक्तमतिप्रसक्तमिति तत्रापवादमाह—

मोहदुगाउगमूल—पगडीण न परोप्परंमि संकमणं । संकमबंधुदउव्वट्टणा(णव)लिगाईणकरणाइं ॥३ ॥

मोह त्ति—मोहद्विकं दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं च, तयोः परस्परं संक्रमो न भवति । तथाहि—न दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीये संक्रमयति, चारित्रमोहनीयं वा दर्शनमोहनीये । तथा आयूंषि चत्वार्यपि न परस्परं संक्रमयति, नापि मूलप्रकृतीः

एसा=ते प्रकृति, पडिग्गहो='पतद्ग्रह' कहेवाय छे. २। मोहदुग=मोहनीयद्विक (दर्शनमो०, चारित्रमो०) नो, आउग=चार आयुष्यनो, मूलपगडीण=मूल प्रकृतिओनो, परोप्परंमि=परस्पर, न संकमणं=संक्रम नथी. संकम०गाई=संक्रमावलिकागत बन्धावलिकागत उदयावलिकागत उद्वर्तनावलिकागतादि दलिक, अकरणाइं=(सकल) करण अयोग्य छे. ३

परस्परं संक्रमयति । तथाहि–न ज्ञानावरणीये दशनावरणीयं संक्रमयति, नापि दर्शनावरणीये ज्ञानावरणीयं । एवं सर्वास्वपि मूलप्रकृतिषु भावनीयं । अपि च यस्मिन् दर्शनमोहनीये यो जन्तुरवतिष्ठते, स तदन्यत्र न संक्रमयति । यथा मिथ्यादृष्टिर्मिथ्यात्वं, सम्यग्मिथ्यादृष्टिः सम्यग्मिथ्यात्वं, सम्यग्दृष्टिः सम्यक्त्वं । तथा सासादनाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयश्च न किमपि दर्शनमोहनीयं क्वापि संक्रमयन्ति, अविशुद्धदृष्टित्वात् । बन्धाभावे हि दर्शनमोहनीयस्य संक्रमो विशुद्धदृष्टेरेव भवति, नाविशुद्धदृष्टेः । अन्यच्च परप्रकृतिसंक्रान्तं दलिकमावलिकामात्रं कालं यावदुद्वर्तनादिसकलकरणायोग्यमवगन्तव्यं, न केवलं संक्रान्तमपि तु बन्धाद्यावलिकागतमपि । तथा चाह–'संकमेत्यादि' संक्रमावलिकागतं बन्धावलिकागतं, उदयावलिकागतं, उद्वर्तनावलिकागतं, आदिशब्दादुपशान्तं मोहनीयं दर्शनमोहनीयत्रिकरहितमित्येतानि सर्वाण्यप्यकरणानि सकलकरणायोग्यान्यवसेयानि । दर्शनत्रिकं तूपशान्तमपि संक्रमयति ॥ ३ ॥

तदेवं लक्षणापवादोऽभिहितः । संप्रति क्रमेणोत्क्रमेण वाऽविशेषण(षेण) संक्रमे प्राप्ते सति नियममाह–

अंतरकरणम्मि कए, चरित्तमोहे णुपुव्विसंकमणं । अन्नत्थ सेसिगाणं च, सव्वहिं सव्वहा बंधे ॥ ४ ॥

अंतरकरणंमि त्ति–अन्तरकरणविधिरग्रे उपशमनाकरणाभिधानावसरे प्रतिपादयिष्यते । तत्रोपशमश्रेण्यां चारित्रमोहनीयो-

---

गाथार्थः––अंतरकरणम्मि कए=अन्तरकरण करे थके, चरित्तमोहे=चारित्र मोहनीय (पुंवेद, संज्वलनचतुष्क)मां,अणुपुव्विसंकमणं=अनुपूर्वी (अनुक्रमे) संक्रम थाय छे. अन्नत्थ=अन्तरकरण सिवाय ए ५नो, सेसिगाणं च=अने बाकीनी प्रकृतिओनो, सव्वहिं=सर्व अवस्थामां, सव्वहा=सर्व रीते (क्रमोत्क्रमे) बंधे=बन्धकाले संक्रम थाय छे. ४

पशमनार्थमेकविंशतेः प्रकृतीनां, क्षपकश्रेण्यां पुनः कषायाष्टकक्षपणानन्तरं त्रयोदशप्रकृतीनामन्तरकरणे कृते सति, चारित्रमोहे पुरुषवेदसंज्वलनचतुष्टयलक्षणे । अत्र हि चारित्रमोहनीयग्रहणेनैता एव पञ्च प्रकृतयो गृह्यन्ते, न शेषाः, बन्धाभावात् । तत्रानुपूर्वी(र्व्या)परिपाट्या संक्रमणं भवति, न त्वनानुपूर्व्या । तथाहि—पुरुषवेदं संज्वलनक्रोधादावेव संक्रमयति, नान्यत्र । संज्वलनक्रोधमपि संज्वलनमानादावेव, न तु पुरुषवेदे । संज्वलनमानमपि संज्वलनमायादावेव, न तु संज्वलनक्रोधादौ । संज्वलनमायामपि सज्वलनलोभ एव, न तु संज्वलनमानादाविति×। 'अन्नत्थ त्ति' अन्तरकरणादन्यत्र पञ्चानामपि पुरुषवेदादिप्रकृतीनां, शेषाणां पुनः प्रकृतीनां 'सव्वहिं ति' सर्वस्मिन्नप्यवस्थाविशेषेऽन्तरकरणावस्थायामन्यत्र वा इत्यर्थः । सर्वैः प्रकारैः क्रमेणोत्क्रमेण वा संक्रमोऽवगन्तव्यः । किं सर्वदैव ? नेत्याह—बन्धे बन्धकाले, न १×त्वन्यदा यथोक्तं प्राक् ॥ ४ ॥

तदेवं संक्रमस्य सामान्यलक्षणविधिरपवादो नियमश्चोक्तः । संप्रति यदुक्तं यस्याः प्रकृतेर्बन्धः सा प्रकृत्यन्तरदलिकसंक्रमणं प्रति पतद्ग्रह इति तत्रापवादमाह—

तिसु आवलियासु समऊणियासु अपडिग्गहा उ संजलणा। दुसु आवलियासु पढमठिईए सेसासु वि य वेदो॥५॥

×(य०उ०३) संज्वलनलोभस्त्वसङ्क्रान्त एव तिष्ठति। ×१(य०उ०४)बन्धाभावे बन्धगर्भितसङ्क्रमलक्षणस्यैवाभावादित्यर्थः ।

गाथार्थः—(अन्तरकरण करे थके) प्रथम स्थिति, समऊणियासु तिसु आवलियासु=समयोन त्रण आवलिका शेष रहे छते, संजलणा=संज्वलन चतुष्क, उ=वळी, दुसु आवलियासु सेसासु=समयोन बे आवलिका शेष रहे छते, वेदोवि य= पुंवेद पण, अपडिग्गहा=पतद्ग्रह न थाय. ५

तिसु त्ति–अन्तरकरणे कृते प्रथमस्थितौ तिसृष्वावलिकासु समयोनासु सतीषु चत्वारोऽपि संज्वलना अपतद्ग्रहाः,पतद्ग्रहा न भवन्ति। एतदुक्तं भवति–चतुर्ष्वपि संज्वलनेषु प्रथमस्थितौ तिसृष्वावलिकासु समयोनावलिकात्रिकशेषायां सत्यां बध्यमानेष्वपि नान्यत्प्रकृत्यन्तरदलिकं तेषु संक्रामति, तेन तदानीमपतद्ग्रहाः। तथाऽन्तरकरणे कृते सति द्वयोरावलिकयोः प्रथमस्थितिसत्कयोः समयोनयोः सत्योर्वेदः पुरुषवेदः पतद्ग्रहो न भवति, न किमपि तत्र प्रकृत्यन्तरदलिकं संक्रामतीत्यर्थः। वेदश्चेह पुरुषवेद एव द्रष्टव्यः, न स्त्रीनपुंसकवेदौ, तदानीं तयोर्बन्धाभावादेवापतद्ग्रहत्वसिद्धेः। ×अपि च मिथ्यात्वे क्षपिते सति सम्यग्मिथ्यात्वस्य, मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वयोश्च क्षपितयोः सम्यक्त्वस्योद्वलितयोस्तु सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोर्मिथ्यात्वस्यापतद्ग्रहताऽनुक्तापि द्रष्टव्या, न खलु तत्रापि किंचित् संक्रामतीति ॥ ५ ॥

संप्रति साद्यनादिप्ररूपणामाह—

(य०उ०५) अपि च मिथ्यात्वे क्षपिते सति सम्यग्मिथ्यात्वस्य पतद्ग्रहता न भवति। मिश्रे हि मिथ्यात्वदलिकमेव सङ्क्रामति, नान्यत्, तच्च मिथ्यात्वं क्षीणं, ततः सङ्क्रम्यमाणदलिकाभावात्तत्रापतद्ग्रहत्वसिद्धिरिति। तथा मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः क्षपितयोः सम्यक्त्वस्य न पतद्ग्रहता, सम्यक्त्वे मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वयोरेव सङ्क्रमसंभवात्, तदुभयक्षये सङ्क्रम्यमाणप्रकृत्यसंभवेन पतद्ग्रहत्वायोगात्। तथा सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोरुद्वलितयोर्मिथ्यात्वस्य न पतद्ग्रहता। मिथ्यात्वे हि सम्यक्त्वं सम्यग्मिथ्यात्वं वा सङ्क्रामति, न चारित्रमोहनीयमपि, दर्शनमोहनीयचारित्रमोहनीययोः परस्परं सङ्क्रमप्रतिषेधात्। सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वे चोद्वलिते इति सङ्क्रामाभावादपतद्ग्रहतेत्येतत्सर्वमनुक्तमपि पञ्चसङ्ग्रहाद्द्रष्टव्यम् ॥

साइअणाईधुवअधुवा य सव्वधुवसंतकम्माणं। साइअधुवा य सेसा, मिच्छावेयणीयनीएहिं ॥ ६ ॥

साइ त्ति—सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वनरकद्विकमनुजद्विकदेवद्विकवैक्रियसप्तकाहारकसप्तकतीर्थकरोच्चैर्गोत्रलक्षणाश्चतुर्विंशतिप्रकृतयोऽध्रुवसत्कर्माण(सत्ताका)आयुश्चतुष्टयं च (२८)। शेषं पुनर्त्रिंशदुत्तरं प्रकृतिशतं (१३०) ध्रुवसत्कर्म। ततोऽपि सातासातवेदनीयनीचैर्गोत्रमिथ्यात्वरूपं चतुष्टयमपनीयते। ततः शेषस्य षड्विंशत्युत्तरप्रकृतिशतस्य (१२६) साद्यादिरूपतया चतुर्विधोऽपि संक्रमो भवति। तथाहि—अमूषां ध्रुवसत्प्रकृतीनां संक्रमविषयप्रकृतिबन्धव्यवच्छेदे सति संक्रमो न भवति। ततः पुनरपि तासां संक्रमविषयप्रकृतीनां स्वबन्धहेतुसंपर्कतो बन्धारंभे सति भवति, ततोऽसौ सादिः, तत्तद्बन्धव्यवच्छेदस्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः, अभव्यस्य ध्रुवः कदाचिदपि व्यवच्छेदाभावात्, भव्यस्य पुनरध्रुवः कालान्तरे व्यवच्छेदसंभवात्। शेषाश्चतुर्विंशति प्रकृतयोऽध्रुवसत्कर्माणो मिथ्यात्ववेदनीयनीचैर्गोत्रैः सह साद्यध्रुवाः साद्यध्रुवसंक्रमा अवगन्तव्याः। तथाहि—अध्रुवसत्कर्मणामध्रुवसत्कर्मत्वादेव संक्रमः सादिरध्रुवश्चावगन्तव्यः। सातासातवेदनीयनीचैर्गोत्राणां तु ×परावर्तमानत्वात्। मिथ्यात्वस्य पुनः

×(य०उ०६) तथाहि—साते बध्यमानेऽसातस्य सङ्क्रमः, असाते च बध्यमाने सातस्य, नान्यदा। तथोच्चैर्गोत्रे बध्यमाने नीचैर्गोत्रस्य सङ्क्रमः, नीचैर्गोत्रे च बध्यमाने ऊच्चैर्गोत्रस्य। तत एषां सङ्क्रमः सादिरध्रुवश्चेति।

गाथार्थः—सव्वधुवसंतकम्माणं=सर्व ध्रुवसत्ता (१२६) प्रकृतिओमां, साइ अणाई धुव अधुवा य=सादि अनादि ध्रुव अने अध्रुव ए चार भांगा होय छे. सेसा=बाकीनी अध्रुवसत्ता प्रकृतिओ, मिच्छा=मिथ्यात्व मोहनीय, वेयणीय=बे वेदनीय अने नीएहिं=नीच गोत्रमां, साइ अधुवा य=सादि अध्रुव ए बे भांगा होय छे. ६

संक्रमो विशुद्धसम्यग्दृष्टेः, विशुद्धसम्यग्दृष्टित्वं च कादाचित्कं, ततस्तस्यापि संक्रमः ×साद्यध्रुव एव ॥ ६ ॥

×(य०उ०७) स्यादेतत्, कासां प्रकृतीनां किं सङ्क्रमपर्यवसानस्थानं येन तत ऊर्ध्वमभवन् प्रतिपाते च पुनरपि भवन् सङ्क्रमः सुज्ञातः स्यात्? उच्यते—सातवेदनीयस्य सङ्क्रमका मिथ्यादृष्ट्यादयः प्रमत्तपर्यवसाना ज्ञेयाः, न परे, परतो ह्यसातवेदनीयं न बध्यते, किं तु सातवेदनीयमेव । ततोऽसातस्यैव साते बध्यमाने सङ्क्रमो भवति, न सातस्येति । अनन्तानुबन्धिनां मिथ्यादृष्ट्यादयोऽप्रमत्तसंयतपर्यवसानाः सङ्क्रमकाः, न परे, परतस्तेषामुपशान्तत्वेन क्षीणत्वेन वा सङ्क्रमस्याभावात् । यशःकीर्तेर्मिथ्यादृष्ट्यादयोऽपूर्वकरणान्ताः सङ्क्रमका भवन्ति, न परे, परतस्तस्याः केवलाया एव बन्धेन पतद्ग्रहत्वस्यैवाभावात् । अनन्तानुबन्धिवर्जद्वादशकषायनोकषायाणां मिथ्यादृष्ट्यादयोऽनिवृत्तिबादरसंपरायपर्यवसानाः सङ्क्रमकाः, परतस्तेषामुपशान्तत्वेन क्षीणत्वेन वा सङ्क्रमाभावात् । मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वयोरविरतसम्यग्दृष्ट्यादय उपशान्तमोहपर्यवसानाः सङ्क्रमकाः, न परे, परतस्तयोः सत्ताया एवाभावात् । सासादनाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयश्च न किमपि दर्शनमोहनीयं क्वापि सङ्क्रमयन्ति । मिथ्यादृष्टिस्तु मिथ्यात्वं स्वाधारभूतं स्वभावादेव न सङ्क्रमयतीत्यविरतसम्यग्दृष्ट्यादय इत्युक्तं । सम्यग्मिथ्यात्वस्य पुनर्मिथ्यादृष्टिरपि सङ्क्रमको भवति । तथा सम्यक्त्वस्य मिथ्यादृष्टिरेव सङ्क्रमकः, नान्यः । यतः सम्यक्त्वं मिथ्यात्वे वर्तमानः सङ्क्रमयति, न सासादने मिश्रे वा । मिथ्यात्वे च वर्तमानो मिथ्यादृष्टिरेव । तथोच्चैर्गोत्रस्य मिथ्यादृष्टिसासादना एव सङ्क्रमकाः, नान्ये, अन्येषां नीचैर्गोत्राबन्धकत्वात्, नीचैर्गोत्रबन्धकाल एव च तत्सङ्क्रमाभ्युपगमात् । उक्तशेषाणां च मतिज्ञानावरणीयादिप्रकृतीनां सूक्ष्मसंपरायपर्यवसाना मिथ्यादृष्ट्यादयः सङ्क्रमकाः, न परे, परतो बन्धाभावेन पतद्ग्रहप्रकृत्यभावात् ॥

सांप्रतं पतद्ग्रहाणां साद्यनादिप्ररूपणामाह—

मिच्छत्तजढा य परिग्गहम्मि सव्वधुवबंधपगईओ । नेया चउव्विगप्पा, साई अधुवा य सेसाओ ॥७॥

मिच्छत्त त्ति–मिथ्यात्वजढा मिथ्यात्वरहिताः सर्वा अपि ध्रुवबन्धिन्यः प्रकृतयः–पंच ज्ञानावरणीयानि, नव दर्शनावरणीयानि, षोडश कषायाः, भयं, जुगुप्सा, तैजससप्तकं, वर्णादिविंशतिः,अगुरुलघु, उपघातं, निर्माणं, अन्तरायपञ्चकं चेति (६७) । एताः संक्रममधिकृत्य चतुर्विकल्पाः साद्यनादिध्रुवाध्रुवरूपचतुर्भेदा ज्ञेयाः । तथाहि–एतासां सप्तषष्टिसंख्यानां ध्रुवबन्धिनीनामात्मीयात्मीयबन्धव्यवच्छेदसमये पतद्ग्रहत्वं न भवति, न किमपि प्रकृत्यन्तरदलिकं तासु संक्रामतीत्यर्थः । पुनः स्वस्वबन्धहेतु(भूतं)संपर्कतो बन्धारंभे सति पतद्ग्रहत्वं भवति, ततः सादिः, तत्तद्बन्धव्यवच्छेदस्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः, ध्रुवाध्रुवे अभव्यभव्यापेक्षया । 'साई इत्यादि' [१]शेषास्त्वध्रुवबन्धिन्योऽष्टाशीतिसंख्याः (८८) प्रकृतयोऽध्रुवबन्धित्वादेव (तासां) साद्यध्रुवपतद्ग्रहता भावनीया । मिथ्यात्वस्य पुनर्ध्रुवबन्धित्वेऽपि यस्य सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वे विद्येते स एव ते तत्र संक्रमयति, नान्य इति तस्य साद्यध्रुवपतद्ग्रहता द्रष्टव्या ॥ ७ ॥

---

१ अहीं अध्रुवबन्धिनी ८६ प्रकृतिओमां सादि अध्रुव पतद्ग्रहता संभवे छे. कारण के ध्रुवबन्धिनी ६८ प्रकृतिओ जतां बाकी ९० प्रकृतिओ अध्रुवबन्धिनी छे. तेमांथी ४ आयुष्यमां पतद्ग्रहता नथी माटे ९० मांथी ४ जतां ८६ रहे छे.

गाथार्थः—परिग्गहम्मि य=पतद्ग्रहने विषे, मिच्छत्तजढा=मिथ्यात्व वर्जीने, सव्वधुवबंधपगईओ=सर्व ध्रुवबन्धि प्रकृतिओ, चउविगप्पा=साद्यादि चार भांगे छे. सेसाओ य=अने बाकीनी, साई अधुवा=सादि अध्रुव भांगे छे. ७

तदेवमेकैकप्रकृतीनां संक्रमस्य पतद्ग्रहत्वस्य च साद्यनादिप्ररूपणा कृता । संप्रति प्रकृतिस्थानेषु तां चिकीर्षुरतिदेशमाह–

पगईठाणे वि तहा, पडिग्गहो संकमो य बोधव्वो। पढमंतिमपगईणं, पंचसु पंचण्ह दो वि भवे ॥ ८ ॥

पगईठाणे त्ति–यथैकैकस्याः प्रकृतेः पतद्ग्रहत्वं संक्रमश्च साद्यादिरूप उक्तस्तथा प्रकृतिस्थानेष्वपि बोद्धव्यः । द्वित्रादीनां च प्रकृतीनां समुदायः ×प्रकृतिस्थानं । तत्र प्रथमतो ज्ञानावरणीयस्य तत्समानवक्तव्यत्वादन्तरायस्य च संक्रमपतद्ग्रहत्वात् स्थानप्रतिपादनार्थमाह–'पढमंतिमेत्यादि' प्रथमप्रकृतेर्ज्ञानावरणीयस्य अन्तिमप्रकृतेरन्तरायस्य संबन्धिनीनां प्रत्येकं पञ्चानामपि प्रकृतीनां पञ्चस्वपि प्रकृतिषु द्वावपि संक्रमपतद्ग्रहभावौ भवतः । एतदुक्तं भवति–ज्ञानावरणीयान्तराययोरेकैकं पञ्चप्रकृत्यात्मकं स्थानं संक्रमे पतद्ग्रहभावे च भवतीति । तौ चेमौ संक्रमपतद्ग्रहभावौ साद्यादिरूपतया चतुःप्रकारौ । तथाहि–उपशान्तमोहगुणस्थानके तयोरभावात्, ततः प्रतिपाते च पुनः संभवात् सादी, तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादी, ध्रुवाध्रुवता चाभव्यभव्यापेक्षया भावनीया ॥ ८ ॥

×(य०उ०८) तत्रैकैकां प्रकृतिं बुद्धौ गृहीत्वा प्रकृतिसंक्रमपतद्ग्रहौ यथोच्येते तथा समुदायविवक्षायां प्रकृतिस्थानसंक्रामपतद्ग्रहावपि वाच्याविति नातिविशेष इति भावः । वस्तुस्थित्या तु यदैका प्रकृतिरेकस्यां प्रकृतौ संक्रामति यथा सातमसातेऽसातं वा

गाथार्थः—पगइठाणे वि=प्रकृति स्थानकने विषे पण, पडिग्गहो=पतद्ग्रहता, संकमो य=अने संक्रम, तहा=तेमज बोधव्वो=जाणवो, पढमंतिमपगईणं पंचसु=प्रथम ज्ञानावरणीय अने अन्त्य अन्तरायकर्मनी पांचे प्रकृतिने विषे, पंचण्ह=पांचेना, दोवि=बंने (पतद्ग्रहता अने संक्रम) भवे=होय छे. ८

संप्रति दर्शनावरणीयस्य संक्रमपतद्ग्रहत्वस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

नवगच्छक्कचउक्के, नवगं छक्कं च चउसु बिइयम्मि। अन्नयरस्सिं(स्से)अन्नयरा, वि य वेयणीयगोएसु॥९॥

नवग त्ति–द्वितीये दर्शनावरणीये नवकषट्कचतुष्केषु नवकं संक्रामति, षट्कं च चतसृषु प्रकृतिषु। तेनेह द्वे संक्रमस्थाने, तद्यथा–नवकं षट्कं च। त्रीणि ×पतद्ग्रहस्थानानि, तद्यथा–नवकं षट्कं चतुष्कं च। तत्र नवकरूपे पतद्ग्रहे मिथ्यादृष्टयः सासादनाश्च नवविधदर्शनावरणीयबन्धका नवकमपि संक्रमयन्ति। अयं च नवकरूपः पतद्ग्रहः साद्यादिरूपतया चतुःप्रकारः। तद्यथा–सादिरनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्च। तथाहि–सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु न भवति, ततः प्रतिपाते च भवति, ततोऽसौ सादिः। ×तत्स्थानकमप्राप्तस्य पुनरनादिः। ध्रुवाध्रुवावभव्यभव्यापेक्षया। तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकादारभ्यापूर्वकरणस्यासन्ते तदा प्रकृतिसङ्क्रमः, यस्यां तु संक्रामति सा प्रकृतिपतद्ग्रहः १। यदा प्रभूताः प्रकृतय एकस्यां सङ्क्रामन्ति यथा यशःकीर्त्तावेकस्यां शेषनामप्रकृतयः तदा प्रकृतिस्थानसङ्क्रमः प्रकृतिपतद्ग्रहः २। यदा तु प्रभूतासु प्रकृतिष्वेका संक्रामति यथा मिथ्यात्वं सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोस्तदा प्रकृतिस्थानपतद्ग्रहः प्रकृतिसङ्क्रमः ३। यदा तु प्रभूतासु प्रभूताः सङ्क्रामन्ति तदा प्रकृतिस्थानसङ्क्रमः प्रकृतिस्थानपतद्ग्रह इति द्रष्टव्यं ४। ×(य०उ०९) तथा च दर्शनावरणे नवकषट्कचतुष्कलक्षणानि त्रीण्येव बन्धस्थानानि पतद्ग्रहस्थानानि च। ×१(य०उ०१०) अत्यक्तमिथ्यात्वस्यानादिः।

गाथार्थः—बिइयम्मि=बीजा दर्शनावरणीयने विषे, नवगच्छक्कचउक्के=९,६ अने ४मां, नवगं=९ संक्रमे. छक्कं च चउसु=अने ४मां ६ संक्रमे. वेयणीयगोएसु=वेदनीय अने गोत्रमां, अन्नयरस्सिं=बध्यमान अन्यतरमां, अन्नयरावि य=अबध्यमानअन्यतरनो संक्रम थाय.९

ख्येयतमं भागं यावन्नवविधदर्शनावरणीयसत्कर्माणः षड्विधदर्शनावरणीयबन्धकाः षट्के नवकं संक्रमयन्ति। अयं तु षट्करूपः पतद्ग्रहः साद्यध्रुवः कादाचित्कत्वात्। तथाऽपूर्वकरणस्य संख्येयतमे भागे निद्राप्रचलयोर्बन्धव्यवच्छेदे तत ऊर्ध्वं सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकचरमसमयं यावदुपशमश्रेण्यां नवविधदर्शनावरणीयसत्कर्माणश्चतुर्विधदर्शनावरणीयबन्धकाश्चतुष्के नवकं संक्रमयन्ति। अयमपि च चतुष्करूपः पतद्ग्रहः साद्यध्रुवः, कदाचिद् भावात्। नवकरूपः संक्रमश्चतुःप्रकारः। तद्यथा–सादिरनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्च। तथाहि–सूक्ष्मसंपरायात्परत उपशान्तमोहे न भवति, ततः प्रतिपाते च भवति, ततोऽसौ सादिः। तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः। ध्रुवाध्रुवावभव्यभव्यापेक्षया। क्षपकश्रेण्यां पुनरनिवृत्तिकरणाद्धायाः संख्येयतमे भागेऽवशिष्टे सति स्त्यानर्द्धित्रिकक्षयात् परतः सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकचरमसमयं यावत् षड्विधदर्शनावरणीयसत्कर्माणश्चक्षुरादिदर्शनावरणीयचतुष्टयं बध्नन्तस्तस्मिन् दर्शनावरणचतुष्के षट्कं संक्रमयन्ति। इमावपि संक्रमपतद्ग्रहौ साद्यध्रुवौ, कादाचित्कत्वात्। अतः परं तु न संक्रमो नापि पतद्ग्रहत्त्वमिति।

संप्रति वेदनीयगोत्रयोः संक्रमपतद्ग्रहत्वस्थानप्रतिपादनार्थमाह–'अन्नयरस्से' इत्यादि, वेदनीये गोत्रे चान्यतरस्यां प्रकृतौ बध्यमानायामन्यतराऽबध्यमाना प्रकृतिः संक्राम(मयँ)ति। तेन या यत्र संक्रामति सा तस्याः पतद्ग्रहः,इतरा च संक्रमस्थानं। तत्र सातबन्धकानां मिथ्यादृष्टिप्रभृतीनां सूक्ष्मसंपराय(सयोगि)पर्यन्तानां सातासातसत्कर्मणां सातवेदनीयं पतद्ग्रहः,असातं संक्रमस्थानं। असातबन्धकानां पुनर्मिथ्यादृष्टिप्रभृतीनां प्रमत्तसंयतपर्यन्तानां सातासातसत्कर्मणां असातवेदनीयं पतद्ग्रहः, सातवेदनीयं तु संक्रमस्थानं। इमौ च सातासातरूपौ संक्रमपतद्ग्रहौ साद्यध्रुवौ मूयो मूयः परावृत्त्य(त्ति)भावात्। तथा मिथ्यादृष्टिप्रभृतीनां

सूक्ष्मसंपरायपर्यन्तानामुच्चैर्गोत्रबन्धकानामुच्चनीचैर्गोत्र(बन्ध)सत्कर्मणामुच्चैर्गोत्रं पतद्ग्रहः, नीचैर्गोत्रं तु संक्रमस्थानं। नीचैर्गोत्रबन्धकानां तु मिथ्यादृष्टिसासादनानामुच्चनीचैर्गोत्रसत्कर्मणां नीचैर्गोत्रं पतद्ग्रहः, उच्चैर्गोत्रं तु संक्रम्यमाणं (मस्थानं)। इमावप्युच्चैर्गोत्रनीचैर्गोत्ररूपौ संक्रमपतद्ग्रहौ प्रागिव साद्यध्रुवौ भावनीयौ ॥ ९ ॥

संप्रति मोहनीयस्य संक्रमपतद्ग्रहत्वस्थानप्रतिपादनावसरस्तत्र प्रथमतः संक्रमासंक्रमस्थाननिर्देशं चिकीर्षुराह—

अट्ठचउरहियवीसं, सत्तरसं सोलसं च पन्नरसं। वज्जिय संकमठाणाइं होंति तेवीसइं मोहे ॥ १० ॥

अट्ठ त्ति–अष्टाधिका चतुरधिका च विंशतिः अष्टाविंशतिश्चतुर्विंशतिश्चेत्यर्थः। तथा सप्तदश षोडश पञ्चदश चेत्यमूनि स्थानानि वर्जयित्वा शेषाणि एकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्ताष्टनवदशैकादशद्वादशत्रयोदशचतुर्दशाष्टादशैकोनविंशतिविंशत्येकविंशतिद्वाविंशतित्रयोविंशतिपञ्चविंशतिषड्विंशतिसप्तविंशतिलक्षणानि (२३) त्रयोविंशतिसंख्यानि मोहनीये संक्रमस्थानानि भवन्ति। तथाहि–अष्टाविंशतिसत्कर्मणो मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः पतद्ग्रह इति मिथ्यात्वव्यतिरिक्ताः शेषाः सप्तविंशतिः संक्रामन्ति। तत्र चारित्रमोहनीयं पञ्चविंशतिप्रकृत्यात्मकं परस्परं संक्रामति। सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः(त्वे) मिथ्यात्वे (१–१)। तथा सम्यक्त्वे उद्वलिते सति सप्तविंशतिसत्कर्मणो मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वस्य पतद्ग्रह इति तद्व्यतिरिक्ताः शेषाः षड्विंशतिः संक्रामन्ति (२–१)। सम्यग्मिथ्यात्वेऽप्युद्वलिते सति षड्विंशतिसत्कर्मणः पञ्चविंशतिः (३–१)।

गाथार्थः—अट्ठचउरहियवीसं=८ अने ४ अधिक बीस एटले २८ अने २४, सत्तरसं=१७, सोलसं च पन्नरसं=१६ अने १५, वज्जिय=(ए पांच) वर्जीने, तेवीसइं=२३, संकमठाणाइं–संक्रमस्थानको, मोहे=मोहनीयने विषे, होंति=होय छे. १०

अथवाऽनादिमिथ्यादृष्टेः षड्विंशतिसत्कर्मणः पञ्चविंशतिः, मिथ्यात्वस्य संक्रमाभावात्; न हि तत् चारित्रमोहनीये संक्रामति, दर्शनमोहनीयचारित्रमोहनीययोः परस्परं संक्रमाभावात् (३–२)। अथवौपशमिकसम्यग्दृष्टेरष्टाविंशतिसत्कर्मणः सम्यक्त्वलाभादावलिकाया ऊर्ध्वं वर्तमानस्य सम्यक्त्वे मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः संक्रमः। तेन तत् पतद्ग्रह इति तस्मिन्नपसारिते शेषा सप्तविंशतिः संक्रमे प्राप्यते (१–२)। तस्यैव चौशमिकसम्यग्दृष्टेरष्टाविंशतिसत्कर्मण आवलिकाया अभ्यन्तरे वर्तमानस्य सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वे न संक्रामति। यतो मिथ्यात्वपुद्गला एव सम्यक्त्वानुगति(त)विशोधिप्रभावतः सम्यग्मिथ्यात्वलक्षणं परिणामान्तरमापादिताः। अन्यप्रकृतिरूपतया परिणामान्तरापादनं च संक्रमः, संक्रमावलिकागतं च सकलकरणायोग्यमिति सम्यक्त्वलाभादावलिकाया अभ्यन्तरे वर्तमानेन सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वे न संक्रम्यते, किं तु केवलं मिथ्यात्वमेव। ततः सम्यग्मिथ्यात्वेऽप्यपसारिते शेषा षड्विंशतिः संक्रामति (२–२)। चतुर्विंशतिस्तु संक्रमे न प्राप्यते, यतश्चतुर्विंशतिसत्कर्मा सम्यग्दृष्टिर्मिथ्यात्वं गतः सन् यद्यप्यनन्तानुबन्धिनो भूयोऽपि बध्नाति, तथापि तान् सतोऽपि न संक्रमयति, बन्धावलिकागतस्य सर्वकरणायोग्यत्वात्। मिथ्यात्वं च सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः पतद्ग्रह इति तस्मिन्नपसारिते शेषा त्रयोविंशतिरेव संक्रामति (४–१)। अथवा चतुर्विंशतिसत्कर्मणः सम्यग्दृष्टेः सम्यक्त्वं मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः पतद्ग्रह इति तस्मिन्नपसारिते शेषा त्रयोविंशतिः संक्रामति (४–२)। तस्यैव मिथ्यात्वे क्षपिते द्वाविंशतिः (५-१)। अथवौपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य चारित्रमोहनीयस्यान्तरकरणे कृते सति लोभसंज्वलनस्यापि संक्रमो न भवति, 'अन्तरकरणे कृते पुरुषवेदसंज्वलनचतुष्टययोरानुपूर्व्या संक्रमो भवति' इतिवचनप्रामाण्यात्, अनन्तानुबन्धिचतुष्टयस्य च विसंयोजितत्वादुपशान्तत्वाद्वा संक्रमाभावः।

सम्यक्त्वं च मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः पतद्ग्रह इति संज्वलनलोभानन्तानुबन्धिचतुष्टयसम्यक्त्वेष्वष्टाविंशतेरपनीतेषु शेषा द्वाविंशतिः संक्रामति (५–२)। तस्यैवौपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य नपुंसकवेदे उपशान्ते एकविंशतिः (६-१)। द्वाविंशतिसत्कर्मणो वा सम्यक्त्वं न क्वापि संक्रामतीत्येकविंशतिः संक्रमे प्राप्यते (६-२)। यद्वा क्षपकश्रेण्यां वर्तमानस्य क्षपकस्य यावदद्याप्यष्टौ कषाया न क्षयमुपयान्ति तावदेकविंशतिः संक्रमे प्राप्यते (६-३)। औपशमिकसम्यग्दृष्टेः संबन्धिन्याः प्रागुक्ताया एकविंशतेः स्त्रीवेदे उपशान्ते सति शेषा विंशतिः संक्रामति (७-१)। यद्वा क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्य चारित्रमोहनीयस्यान्तरकरणे कृते लोभसंज्वलनस्यापि प्रागुक्तयुक्तेः संक्रमो न भवतीति तस्मिन्नपसारिते विंशतिः संक्रमे प्राप्यते (७-२)। ततो नपुंसकवेदे उपशान्ते एकोनविंशतिः (८)। स्त्रीवेदे उपशान्तेऽष्टादश (९)। औपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य प्रागुक्ताया विंशतेः षट्सु नोकषायेषूपशान्तेषु शेषाश्चतुर्दश संक्रामन्ति (१०)। ततः पुरुषवेदे उपशान्ते त्रयोदश (११–१)। यद्वा क्षपकस्य क्षपकश्रेण्यां वर्तमानस्य प्रागुक्ताया एकविंशतेरष्टसु कषायेषु क्षीणेषु शेषास्त्रयोदश संक्रामन्ति (११–२)। तस्यैव क्षपकस्य चारित्रमोहनीयस्यान्तरकरणे कृते संज्वलनलोभस्य प्रागुक्तयुक्तेः संक्रमो न भवतीति तस्मिन्नपसारिते शेषा द्वादश संक्रामन्ति (१२–१)। अथवा क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य प्रागुक्ताभ्योऽष्टादशभ्यः षट्सु नोकषायेषूपशान्तेषु सत्सु शेषा द्वादश संक्रामन्ति (१२–२)। ततः पुरुषवेद उपशान्ते एकादश (१३–१)। क्षपकस्य वा प्रागुक्ताभ्यो द्वादशभ्यो नपुंसकवेदे क्षीणे शेषा एकादश संक्रामन्ति (१३–२)। अथवौपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां प्रागुक्ताभ्यस्त्रयोदशभ्योऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणक्रोधद्विके उपशान्ते शेषा एकादश संक्रमे प्राप्यन्ते (१३–३)। क्षपकश्रेण्या-

मेकादशभ्यः स्त्रीवेदे क्षीणे शेषा दश संक्रामन्ति (१४–१)। औपशमिकसम्यग्दृष्टेर्वोपशमश्रेण्यां वर्तमानस्यैकादशभ्यः संज्वलनलोभे उपशान्ते शेषा दश संक्रामन्ति (१४–२)। क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य प्रागुक्ताभ्य एकादशभ्योऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणलक्षणे क्रोधद्विके उपशान्ते शेषा नव संक्रामन्ति (१५)। तस्यैव संज्वलनक्रोधेऽप्युपशान्तेऽष्टौ (१६-१)। अथवौपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य प्रागुक्ताभ्यो दशभ्योऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणलक्षणे मानद्विके उपशान्ते शेषा अष्टौ संक्रामन्ति (१६–२)। तस्यैव संज्वलनमाने उपशान्ते सप्त (१७)। क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य प्रागुक्ताभ्योऽष्टाभ्योऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणलक्षणे मानद्विक उपशान्ते शेषाः षट् संक्रामन्ति (१८)। तस्यैव संज्वलनमान उपशान्ते पञ्च (१९–१)। यद्यौपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य प्रागुक्ताभ्यः सप्तभ्यः प्रकृतिभ्योऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणलक्षणे मायाद्विक उपशान्ते शेषाः पञ्च संक्रामन्ति (१९–२)। तस्यैव संज्वलनमायायामुपशान्तायां चतस्रः (२०–१)। अथवा क्षायिकसम्यग्दृष्टेः क्षपकस्य प्रागुक्ताभ्यो दशभ्यः षट्सु नोकषायेषु क्षीणेषु शेषाश्चतस्रः प्रकृतयः संक्रामन्ति (२०–२)। तस्यैव पुरुषवेदे क्षीणे तिस्रः (२१–१)। अथवा क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य प्रागुक्ताभ्यः पञ्चभ्योऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणलक्षणे मायाद्विके उपशान्ते शेषास्तिस्रः संक्रामन्ति(२१–२)। तस्यैव संज्वलनमायायामुपशान्तायां द्वे (२२–१)। अथवौपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य प्रागुक्ताभ्यश्चतसृभ्यः प्रकृतिभ्योऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणलक्षणे लोभद्विक उपशान्ते शेषे द्वे प्रकृती संक्रामतः (२२–२)। अथवा क्षायिकसम्यग्दृष्टेः क्षपकस्य प्रागुक्ताभ्यस्तिसृभ्यः संज्वलनक्रोधे क्षीणे द्वे संक्रामतः (२२–३)। तस्यैव संज्वलनमाने क्षीण एका (२३)। तदेवं परिभाव्यमानेऽष्टा-

विंशतिचतुर्विंशतिसप्तदशषोडशपञ्चदशलक्षणानि संक्रमस्थानानि न प्राप्यन्ते इति प्रतिषिध्यन्ते । तेषु च प्रतिषिद्धेषु शेषाणि त्रयोविंशतिसंख्यानि संक्रमस्थानान्यवगन्तव्यानि । एतेषु संक्रमस्थानेषु मध्ये पञ्चविंशतिप्रकृत्यात्मकं संक्रमस्थानं साद्यादिरूपतया चतुःप्रकारं । तद्यथा—साद्यनादि ध्रुवमध्रुवं च । तत्राष्टाविंशतिसत्कर्मणः सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोरुद्वलितयोर्भवत् सादि, अनादिमिथ्यादृष्टेरनादि, अध्रुवध्रुवता भव्याभव्यापेक्षया । शेषाणि तु संक्रमस्थानानि साद्यध्रुवाणि, कादाचित्कत्वात्॥१०॥

कृता मोहनीये संक्रमासंक्रमस्थानप्ररूपणा । संप्रति पतद्ग्रहापतद्ग्रहस्थानप्ररूपणार्थमाह—

सोलस बारसगट्ठग, वीसग तेवीसगाइगे छच्च । वज्जिय मोहस्स पडिग्गहा उ अट्ठारस हवन्ति ॥११॥

सोलस त्ति—षोडश द्वादशाष्टौ विंशतिस्त्रयोविंशत्यादयश्च षट् । तद्यथा—त्रयोविंशतिश्चतुर्विंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिश्च । एतानि स्थानानि (१०) वर्जयित्वा शेषाण्येकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्तनवदशैकादशत्रयोदशचतुर्दशपञ्चदशसप्तदशाष्टादशैकोनविंशत्येकविंशतिद्वाविंशतिलक्षणानि अष्टादश (१८) पतद्ग्रहस्थानानि भवन्ति । तत्र कस्मिन् पतद्ग्रहे काः प्रकृतयः संकामन्तीत्येतद् भाव्यते—तत्र मिथ्यादृष्टेरष्टाविंशतिसत्कर्मणो मिथ्यात्वं सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः पतद्ग्रह इति तस्मिन्नपसारिते शेषा सप्तविंशतिर्मिथ्यात्वषोडशकषायान्यतरवेदभयजुगुप्साहास्यरतियुगलारतिशोकयुगलान्यतरयुगललक्षणायां द्वाविंशतौ संक्रामति । तस्यैव सम्यक्त्व उद्वलिते सप्तविंशतिसत्कर्मणो मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वस्य पतद्ग्रह

गाथार्थः—सोलस=१६, बारसगट्ठग=१२, ८, वीसग=२०, तेवीसगाइगे छच्च—२३ आदि छ एटले २३, २४, २५, २६, २७ अने २८, वज्जिय=(ए १०) वर्जीने, मोहस्स पडिग्गहा उ=मोहनीयना पतद्ग्रह तो, अट्ठारस हवंति=१८ होय छे. ११

इति तस्मिन्नपसारिते शेषा षड्विंशतिः प्रागुक्तायां द्वाविंशतौ संक्रामति । तस्यैव मिथ्यादृष्टेः सम्यग्मिथ्यात्व उद्वलिते षड्विंशतिसत्कर्मणो मिथ्यात्वे न किमपि संक्रामतीति न तत्कस्यचित्पतद्ग्रह इति तस्मिन् प्रागुक्ताया द्वाविंशतेरपनीते शेषे एकविंशतिप्रकृतिसमुदायात्मके पतद्ग्रहे पञ्चविंशतिः संक्रामति । अथवाऽनादिमिथ्यादृष्टेः षड्विंशतिसत्कर्मणो मिथ्यात्वं न क्वापि संक्रामति, नापि तत्रान्या प्रकृतिरित्याधाराधेयभावपरिभ्रष्टं मिथ्यात्वमपनीयते, ततः शेषा पञ्चविंशतिः प्रागुक्तायामेकविंशतौ संक्रामति । तथा चतुर्विंशतिसत्कर्मा मिथ्यात्वं गतः सन् यद्यपि मिथ्यात्वप्रत्ययतो भूयोऽप्यनन्तानुबन्धिनो बध्नाति, तथापि बन्धावलिकागतं सकलकरणायोग्यमिति कृत्वा सतोऽपि तान् न संक्रमयति । मिथ्यात्वं च सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः पतद्ग्रहस्ततोऽनन्तानुबन्धिचतुष्टयमिथ्यात्ववर्जिताः शेषास्त्रयोविंशतिप्रकृतयः प्रागुक्तायां द्वाविंशतौ संक्रामन्ति । तदेवं मिथ्यादृष्टेर्द्वाविंशतिपतद्ग्रहे सप्तविंशतिषड्विंशतित्रयोविंशतिसंक्रमाः । एकविंशतिपतद्ग्रहे च पञ्चविंशतिसंक्रम उक्तः, शेषः संक्रमः पतद्ग्रहो वा न संभवति ।(मि० २२, २१ पत०;२७,२६,२५,२३ सं०)

सासादनसम्यग्दृष्टेस्तु शुद्धदृष्टित्वाभावादर्शनमोहनीयत्रयस्य संक्रमाभावः । ततोऽस्य सर्वदा एकविंशतिरूपे पतद्ग्रहे पञ्चविंशतिरेव संक्रामति (सा०२१प०;२५सं०) । सम्यग्मिथ्यादृष्टेरपि शुद्धदृष्टित्वाभावादर्शनत्रयस्य संक्रमाभाव इति अष्टाविंशतिसत्कर्मणः सप्तविंशतिसत्कर्मणो वा पञ्चविंशतिः, चतुर्विंशतिसत्कर्मणः पुनरेकविंशतिः द्वादशकषायपुरुषवेदभयजुगुप्साऽन्यतरयुगललक्षणसप्तदशप्रकृतिसमुदायरूपे पतद्ग्रहे संक्रामति (मिश्रे१७प०२५,२१सं०) । तदेवमुक्तौ सासादनसम्यग्मिथ्यादृष्टी ।

संप्रत्यविरतदेशविरतप्रमत्ताप्रमत्तेषु संक्रमाणां तुल्यत्वात् युगपत्पतद्ग्रहा उच्यन्ते–(तँत्र) तेषामविरतादीनामौपशमिकसम्य-

ग्दृष्टीनां सम्यक्त्वलाभप्रथमसमयादारभ्य यावदावलिकामात्रं तावत् सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः पतद्ग्रहतैव भवति, न संक्रमः, इति शेषा षड्विंशतिरविरतानां द्वादशकषायपुरुषवेदभयजुगुप्साऽन्यतरयुगलसम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वरूपे एकोनविंशतिपतद्ग्रहे, देशविरतानां प्रत्याख्यानावरणसंज्वलनकषायपुरुषवेदभयजुगुप्साऽन्यतरयुगलसम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वलक्षणे पञ्चदशपतद्ग्रहे, प्रमत्ताप्रमत्तानां संज्वलनचतुष्टयपुरुषवेदसम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वभयजुगुप्साऽन्यतरयुगलरूपे एकादशपतद्ग्रहे संक्रामति। तेषामेवाविरतसम्यग्दृष्ट्यादीनामावलिकायाः परतः सम्यग्मिथ्यात्वं संक्रमे पतद्ग्रहे च लभ्यते इति सप्तविंशतिः प्रागुक्तेषु त्रिषु पतद्ग्रहेषु संक्रामति। तथा तेषामेवाविरतसम्यग्दृष्ट्यादीनामनन्तानुबन्धिषूद्वलितेषु चतुर्विंशतिसत्कर्मणां क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सम्यक्त्वं पतद्ग्रह इति कृत्वा शेषा त्रयोविंशतिः प्रागुक्तेष्वेवैकोनविंशत्यादिषु त्रिषु पतद्ग्रहेषु संक्रामति। ततो मिथ्यात्वे क्षपिते सति सम्यग्मिथ्यात्वं पतद्ग्रहभावे न लभ्यते, मिथ्यात्वं च संक्रमे न लभ्यते। ततः शेषा द्वाविंशतिरविरतदेशविरतसंयतानां यथासंख्यमष्टादशचतुर्दशदशरूपेषु पतद्ग्रहेषु संकामति। ततः सम्यग्मिथ्यात्वे क्षपिते सति सम्यक्त्वस्य न संक्रमो नापि पतद्ग्रह इत्येकविंशतिरविरतादीनां यथासंख्यं सप्तदशत्रयोदशनवकरूपेषु पतद्ग्रहेषु संक्रामति। (अवि० १९,१८, १७ पत०; देश० १५,१४,१३ पत०; संय० ११,१०,९ पत०; २७,२६,२३,२२,२१ संक्र०)

"संप्रत्यौपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य संक्रममाश्रित्य पतद्ग्रहविधिरुच्यते—चतुर्विंशतिसत्कर्मणः सम्यक्त्वं मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः पतद्ग्रह एवेति कृत्वा तस्मिन्नपसारिते शेषा त्रयोविंशतिः पुंवेदसंज्वलनचतुष्टयसम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वरूपे सप्तकपतद्ग्रहे संक्रामति। तस्यैवोपशमश्रेण्यां वर्तमानस्यान्तरकरणे कृते संज्वलनलोभस्य संक्रमो न भवतीति तस्मि-

न्नपसारिते शेषा द्वाविंशतिः पूर्वोक्त एव सप्तकपतद्ग्रहे संक्रामति । तस्यैव नपुंसकवेदे उपशान्ते सप्तकपतद्ग्रहे एकविंशतिः । ततः स्त्रीवेदे उपशान्ते विंशतिः । ततः पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितौ समयोनावलिकाद्विकशेषायां " दुसु आवलियासु पढमठिईसु सेसासुऽवि य वेदो " इतिवचनात् पुरुषवेदः पतद्ग्रहो न भवति । ततः प्रागुक्तात् सप्तकात्पुरुषवेदेऽपनीते शेषे षट्करूपे पतद्ग्रहे प्रागुक्ता विंशतिः संक्रामति । ततः षट्सु नोकषायेषूपशान्तेषु शेषाश्चतुर्दशप्रकृतयः प्रागुक्त एव षट्करूपे पतद्ग्रहे संक्रामन्ति । ताश्च तावत्संक्रामन्ति यावत्समयोनमावलिकाद्विकं । ततः पुरुषवेदे उपशान्ते शेषास्त्रयोदश षट्करूपे पतद्ग्रहे संक्रामन्ति । ताश्च तत्र तावद्यावदन्तर्मुहूर्तं । ततः संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थितौ समयोनावलिकात्रिकशेषायां संज्वलनक्रोधोऽपि " तिसु आवलियासु समऊणियासु अपडिग्गहाउ संजलणा " इति वचनात् पतद्ग्रहो न भवतीति प्रागुक्तात् षट्कात्तस्मिन्नपसारिते शेषे पञ्चकरूपे पतद्ग्रहे ता एव त्रयोदश प्रकृतयः संक्रामन्ति । ततोऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणक्रोधद्विक उपशान्ते शेषा एकादश प्रागुक्त एव पञ्चकपतद्ग्रहे संक्रामन्ति । ताश्च तावद्यावत्समयोनावलिकाद्विकं । ततः संज्वलनक्रोधे उपशान्ते शेषा दश प्रकृतयस्तस्मिन्नेव पञ्चकपतद्ग्रहे तावत्संक्रामन्ति यावदन्तर्मुहूर्तं । ततः संज्वलनमानस्य प्रथमस्थितौ समयोनावलिकात्रिकशेषायां संज्वलनमानोऽपि पतद्ग्रहो न भवतीति पञ्चकात्तस्मिन्नपनीते शेषे चतुष्करूपे पतद्ग्रहे ता एव दश प्रकृतयः संक्रामन्ति । ताश्च तावद्यावत्समयोनमावलिकाद्विकं । ततोऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणरूपे मानद्विके उपशान्ते शेषा अष्टौ प्रकृतयश्चतुष्करूपे एव पतद्ग्रहे संक्रामन्ति । ततः संज्वलनमाने उपशान्ते सप्त । ताश्च सप्त चतुष्करूपे पतद्ग्रहेऽन्तर्मुहूर्तं कालं यावत्संक्रामन्ति । ततः संज्वलनमायायाः प्रथमस्थितौ समयोनावलिकात्रिकशेषायां संज्वलनमायाऽपि पतद्-

ग्रहो न भवतीति चतुष्कात्तस्यामपगतायां शेषे त्रिकरूपे पतद्ग्रहे पूर्वोक्ताः सप्त संक्रामन्ति । ताश्च तावद्यावत् समयोनमावलिकाद्विकं । ततोऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणलक्षणे मायाद्विके उपशान्ते शेषाः पञ्च प्रकृतयस्त्रिकरूपे पतद्ग्रहे संक्रामन्ति । ताश्च तावद्यावत्समयोनमावलिकाद्विकं । ततः संज्वलनमायायामुपशान्तायां शेषाश्चतस्रः प्रकृतयः संक्रामन्ति । ताश्च तावद्यावदन्तर्मुहूर्तं । ततोऽनिवृत्तबादरसंपरायचरमसमयेऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणलक्षणे लोभद्विके उपशान्ते शेषे द्वे प्रकृती संक्रामतः । ते च मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वलक्षणे । न चैते संज्वलनलोभे संक्रामतः दर्शनमोहनीयचारित्रमोहनीययोः परस्परं संक्रमाभावात् । ततस्तस्यापि पतद्ग्रहता न भवतीति द्वयोरेव ते द्वे संक्रामतः । तत्र मिथ्यात्वं सम्यक्त्वसम्यमिथ्यात्वयोः, सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वे । तदेवमौपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां संक्रमपतद्ग्रहविधिरुक्तः । (उपशमस० उप०श्रेण्यां ७,६,५,४,३ पत०; २३,२२,२१,२०,१४,१३,११,१०,८,७,५,४,२ संक्र०)

"संप्रति क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां संक्रमपतद्ग्रहविधिरुच्यते—तत्रानन्तानुबन्धिचतुष्टयदर्शनत्रिकरूपे सप्तके क्षपिते सति एकविंशतिसत्कर्मा सन् क्षायिकसम्यग्दृष्टिरुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते । तस्य चान्तर्मुहूर्तं कालं यावत्पुरुषवेदसंज्वलनचतुष्टयरूपे पञ्चकपतद्ग्रहे एकविंशतिः संक्रामति । ततोऽन्तरकरणे कृते सति संज्वलनलोभस्य संक्रमो न भवतीति एकविंशतेस्तस्मिन्नपनीते शेषा विंशतिः पञ्चकपतद्ग्रहे संक्रामति । सा चान्तर्मुहूर्तं कालं यावत् । ततो नपुंसकवेदे उपशान्ते एकोनविंशतिः । सापि चान्तर्मुहूर्तं कालं यावत् । ततः स्त्रीवेदे उपशान्ते शेषा अष्टादश प्रकृतयस्तस्मिन्नेव पञ्चकपतद्ग्रहे संक्रामन्ति । ताश्च तत्र तावत् यावदन्तर्मुहूर्तं । ततः पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितौ समयोनावलिकाद्विकशेषायां पुरुषवेदः पतद्ग्रहो न भवतीति पञ्च-

कात्तस्मिन्नपगते शेषे चतुष्करूपे पतद्ग्रहे ता एवाष्टादश प्रकृतयः संक्रामन्ति । ततः षट्सु नोकषायेषूपशान्तेषु शेषा द्वादश प्रकृतयश्चतुष्करूपे एव तस्मिन् पतद्ग्रहे संक्रामन्ति । ताश्च तावद्यावत्समयोनमावलिकाद्विकं । ततः पुरुषवेद उपशान्ते एकादश । ताश्चतुष्करूपे पतद्ग्रहे तावत्संक्रामन्ति यावदन्तर्मुहूर्तं । ततः संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थितौ समयोनावलिकात्रिकशेषायां संज्वलनक्रोधोऽपि पतद्ग्रहो न भवतीति चतुष्कात्तस्मिन्नपगते शेषे त्रिकरूपे पतद्ग्रहे ताः पूर्वोक्ता एकादश प्रकृतयः संक्रामन्ति । ताश्च तावद्यावत् समयोनमावलिकाद्विकं । ततोऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणलक्षणे क्रोधद्विके उपशान्ते शेषा नव प्रकृतयः पूर्वोक्त एव त्रिकरूपे पतद्ग्रहे संक्रामन्ति । ताश्च तावद्यावत्समयोनमावलिकाद्विकं । ततः संज्वलनक्रोधे उपशान्तेऽष्टौ संक्रामन्ति । ताश्च त्रिकरूपे पतद्ग्रहे तावत्संक्रामन्ति यावदन्तर्मुहूर्तं । ततः संज्वलनमानस्य प्रथमस्थितौ समयोनावलिकात्रिकशेषायां संज्वलनमानोऽपि पतद्ग्रहो न भवतीति त्रिकात्तस्मिन्नपनीते शेषे द्विकरूपे पतद्ग्रहे पूर्वोक्ता अष्टौ प्रकृतयः संक्रामन्ति । ताश्च तावद्यावत्समयोनमावलिकाद्विकं । ततोऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणलक्षणे मानद्विक उपशान्ते शेषाः षट् प्रकृतयो द्विकपतद्ग्रहे संक्रामन्ति । ताश्च तावद्यावत्समयोनमावलिकाद्विकं । ततः संज्वलनमान उपशान्ते पञ्च संक्रामन्ति । ताश्च द्विकरूपे पतद्ग्रहे तावत्संक्रामन्ति यावदन्तर्मुहूर्तं । ततः संज्वलनमायायाः प्रथमस्थितौ समयोनावलिकात्रिकशेषायां संज्वलनमायापि पतद्ग्रहो न भवतीति द्विकात्तस्यामपगतायां शेषे संज्वलनलोभ एवैकस्मिंस्ताः पञ्च प्रकृतयः संक्रामन्तीति । ताश्च तावद्यावत् समयोनावलिकाद्विकं । ततोऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणलक्षणे मायाद्विके उपशान्ते शेषास्तिस्रः प्रकृतयः संज्वलनलोभे संक्रामन्ति । ताश्च तावद्यावत् समयोनमावलिकाद्विकं । ततः संज्वलनमायायामुपशान्तायां शेषे द्वे अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणलोभलक्षणे

प्रकृती संज्वलनलोभे संक्रामतः । ते चान्तर्मुहूर्तं कालं यावत् । ततोऽनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानकचरमसमये ते अप्युपशान्ते इति न किमपि क्वापि संक्रामति । तदेवं क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां संक्रमपतद्ग्रहविधिरुक्तः (क्षायिकस्योपशमश्रेण्यां ५, ४,३,२,१ पत०; २१,२०,१९,१८,१२,११,९,८,६,५,३ संक्र०)

संप्रति क्षायिकसम्यग्दृष्टेः क्षपकश्रेण्यां संक्रमपतद्ग्रहविधिरभिधीयते—तत्र क्षायिकसम्यग्दृष्टिरेकविंशतिसत्कर्मा क्षपकश्रेणिं प्रतिपद्यते । तस्य चानिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानं प्राप्तस्य पुरुषवेदसंज्वलनचतुष्टयरूपे पञ्चकपतद्ग्रहे प्रथमत एकविंशतिप्रकृतयः संक्रामन्ति । ततोऽष्टसु कषायेषु क्षीणेषु त्रयोदश । ताश्चान्तर्मुहूर्तं कालं यावत् । ततोऽन्तरकरणे कृते सति संक्रमो न भवतीति शेषा द्वादश प्रकृतयस्तस्मिन्नेव पञ्चकपतद्ग्रहे संक्रामन्ति । ताश्चान्तर्मुहूर्तं कालं यावत् । ततो नपुंसकवेदे क्षीणे एकादश । ता अप्यन्तर्मुहूर्तं कालं यावत् । ततः स्त्रीवेदे क्षीणे दश । ता अप्यन्तमुहूर्तं कालं यावत् तस्मिन्नेव पञ्चकरूपे पतद्ग्रहे संक्रामन्ति । ततः पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितौ समयोनावलिकाद्विकशेषायां पुरुषवेदः पतद्ग्रहो न भवतीति पञ्चकात्तस्मिन्नपनीते शेषे चतुष्करूपे पतद्ग्रहे ता एव दश संक्रामन्ति । ताश्च तावद्यावत्समयोनमावलिकाद्विकं । ततः षट्सु नोकषायेषु क्षीणेषु शेषाश्चतस्रः प्रकृतयस्तस्मिन्नेव चतुष्करूपे पतद्ग्रहे संक्रामन्ति । ततः पुरुषवेदः क्षीणः । तत्समये च संज्वलनक्रोधस्यापि पतद्ग्रहता न भवतीति तस्मिन्नपगते शेषासु तिसृषु प्रकृतिषु तिस्रः प्रकृतयः संक्रामन्ति । ताश्चान्तर्मुहूर्तं कालं यावत् । ततः समयोनावलिकाद्विकेन कालेन संज्वलनक्रोधः क्षीयते । तत्समये च संज्वलनमानस्यापि पतद्ग्रहता न भवतीति शेषयोर्द्वयोः प्रकृत्योर्द्वे प्रकृती संक्रामतः । ते चान्तर्मुहूर्तं कालं यावत् । ततः समयोनावलिकाद्विकेन कालेन संज्वलनमानोऽपि क्षीयते ।

तत्समयमेव च संज्वलनमायाया अपि पतद्ग्रहता न भवति। तत एकस्यामेव संज्वलनलोभलक्षणायां प्रकृतौ संज्वलनमाया-लक्षणा एका प्रकृतिः संक्रामति। सा चान्तर्मुहूर्तं कालं यावत्। तत आवलिकाद्विकेन कालेन संज्वलनमायापि क्षीयते। तत ऊर्ध्वं न किमपि क्वापि संक्रामति×। (क्षायि० क्षप० ५,४,३,२,१ पत०; २१,१३,१२,११,१०,४,३,२,१ संक्र०) ॥ ११ ॥

संप्रति यथोक्तरूपेषु पतद्ग्रहेषु प्रत्येकं संक्रमस्थानानि संकलयन्नाह—

छव्वीस-सत्तवीसाण, संकमो होइ चउसु ठाणेसु। बावीस-पन्नरसगे, एकारस-इगुणवीसाए ॥ १२ ॥

छव्वीस त्ति-चतुर्षु स्थानेषु पतद्ग्रहरूपेषु। तद्यथा-द्वाविंशतौ, पञ्चदशके, एकादशके, एकोनविंशतौ च षड्विंशतिसप्त-विंशत्योः संक्रमो भवति। तत्र द्वाविंशतौ मिथ्यादृष्टेः, पञ्चदशके देशविरतस्य, एकादशके प्रमत्ताप्रमत्तयोः, एकोनविंशतौ अविरतसम्यग्दृष्टेः ॥ १२ ॥

×(य०उ०११) एतेषु च पतद्ग्रहेषु एकविंशतिरूपः पतद्ग्रहः साद्यादिरूपतया चतुर्विधः। तथाहि—सादिमिथ्यादृष्टेः सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वयोरुद्वलितयोः सतोः षड्विंशतिसत्कर्मण एकविंशतिरूपः पतद्ग्रहः सादिः। अनादिमिथ्यादृष्टेः षड्विंशतिसत्कर्मणो-ऽनादिः ध्रुवाध्रुवावभव्यभव्यापेक्षया। शेषास्तु पतद्ग्रहाः कादाचित्कत्वादेव साद्यध्रुवाः।

गाथार्थः—बावीसपन्नरसगे=२२,१५, एक्कारस इगुणवीसाए=११ अने १९ ए, चउसु ठाणेसु=४ स्थानोमां, छव्वीससत्तवीसाण=२६ अने २७ नो, संकमो होइ=संक्रम थाय छे. १२

सत्तरस–एकवीसासु, संकमो होइ पन्नवीसाए । नियमा चउसु गईसु, नियमा दिट्ठी कए तिविहे॥१३॥

सत्तरस त्ति–सप्तदशकैकविंशत्योः पञ्चविंशतेः संक्रमो भवति । तत्र सप्तदशके मिश्रदृष्टेः, एकविंशतौ मिथ्यादृष्टेः सासादनस्य च । अयं च पञ्चविंशतेः सप्तदशैकविंशत्योः संक्रमो नियमाच्चतसृष्वपि गतिषु प्राप्यते । नियमाच्च सप्तदशके सासादनैकविंशतौ च पञ्चविंशतेः संक्रमः त्रिविधायां त्रिप्रकारायां दृष्टौ दर्शनमोहनीये कृतायां वेदितव्यः । मिथ्यादृष्टेस्त्वेकविंशतौ पञ्चविंशतिसंक्रमोऽनादिमिथ्यादृष्टेरपि भवति । 'कए' इति '(ति) विहे' इति च पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात् ॥ १३ ॥

बावीस–पन्नरसगे, सत्तर–एक्कारसिगुणवीसासु । तेवीसाए नियमा, पंच वि पंचिंदिएसु भवे ॥ १४ ॥

बावीस त्ति–त्रयोविंशतेः संक्रमो द्वाविंशतिपञ्चदशकसप्तकैकादशकैकोनविंशतिरूपेषु पञ्चसु पतद्ग्रहेषु भवति । तत्र द्वाविंशतौ मिथ्यादृष्टेः, पञ्चदशके देशविरतस्य, सप्तके औपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य, एकादशके प्रमत्ताप्रमत्तयोः, एकोनविंशतौ अविरतसम्यग्दृष्टेः । एतानि च पञ्च पतद्ग्रहस्थानानि पञ्चेन्द्रियेष्वेव भवन्ति ॥ १४ ॥

चोद्दसग–दसग–सत्तग–अठारसगे य होइ बावीसा । नियमा मणुयगईए, नियमा दिट्ठी कए दुविहे॥१५॥

गाथार्थः–सत्तरस एकवीसासु=१७ अने २१ मां, पन्नवीसाए संकमो=२५ नो संक्रम, नियमा=निश्चे, चउसु गईसु=चार गतिमां नियमा=निश्चे, दिट्ठी कए तिविहे=दर्शन मोहनीय त्रिधा करे छते, होइ=होय छे. १३ । बावीस पन्नरसगे=२२ अने १५ मां, सत्तग०वीसासु=७, ११ अने १९ मां, तेवीसाए=२३ नो संक्रम थाय छे. पंचवि=आ पांचे पतद्ग्रहो, नियमा=निश्चे, पंचिंदिएसु भवे =पंचेन्द्रियमांज होय छे. १४ । चोद्दस०अट्ठारसगे य=१४,१०, ७ अने १८ मां, बावीसा=२२ नो संक्रम, नियमा मणुयगईए=निश्चे मनुष्यगतिमां, नियमा=निश्चे, दिट्ठि कए दुविहे=(समकित अने मिश्र) बे दर्शनमोहनीयनी सत्ता कर्ये छते, होइ=थाय छे. १५

चोद्दस त्ति–द्वाविंशतिः संक्रमयोग्या भवति चतुर्दशके दशके सप्तकेऽष्टादशके च। तत्र चतुर्दशके देशविरतस्य, दशके प्रमत्ताप्रमत्तयोः, सप्तके औपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य, अष्टादशकेऽविरतसम्यग्दृष्टेः। एषा च द्वाविंशतिर्नियमान्मनुजगतौ भवति, नान्यत्र। नियमाच्च दृष्टौ द्विविधायां कृतायां सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोरेव सतोरित्यर्थः ॥१५॥

तेरसग–नवग–सत्तग–सत्तरस–पणग–एक्कवीसासु। एक्कावीसा संकमइ सुद्धसासाणमीसेसु ॥ १६ ॥

तेरस त्ति–त्रयोदशकनवकसप्तकसप्तदशकपञ्चकैकविंशतिरूपेषु षट्सु पतद्ग्रहेष्वेकविंशतिः संक्रामति। केषु जीवेष्वित्याह–शुद्धसासादनमिश्रेषु, शुद्धेषु विशुद्धदृष्टिषु अविरतसम्यग्दृष्ट्यादिषु सासादनमिश्रेषु। तत्र त्रयोदशके देशविरतस्य, नवके प्रमत्ताप्रमत्तयोः, सप्तके औपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य, सप्तदशकेऽविरतसम्यग्दृष्टेर्मिश्रदृष्टेश्च, पञ्चके क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य क्षपकश्रेण्यां वा। एकविंशतौ सासादनस्य। इह यैराचार्यैश्चतुर्विंशतिसत्कर्मा सन्नुपशमश्रेणीतः प्रतिपतन् मिथ्यात्वाभिमुखः सासादनं इष्यते, तन्मते सासादनस्यैकविंशतावेकविंशतिः संक्रमेऽभिहिता, अन्यथा पुनरनन्तानुबन्ध्युदयसहितस्य सासादनस्यैकविंशतौ पञ्चविंशतिरेव संक्रमे प्राप्यते। सा च प्रागेवोक्ता ॥ १६ ॥

एत्तो अविसेसा, संकमंति उवसामगे व खवगे वा। उवसामगेसु वीसा य, सत्तगे छक्क पणगे य ॥ १७ ॥

एत्तोत्ति—इत ऊर्ध्वमविशेषाः सप्तदश संक्रमाः संक्रामन्ति, उपशमके क्षपके वा। तत्र विंशतिः संक्रमयोग्या सप्तके षट्के

गाथार्थः—सुद्धसासाणमीसेसु=अविरति सम्यग्दृष्ट्यादि शुद्ध, सास्वादनी अने मिश्रदृष्टिने विषे तेरस०एक्कवीसासु=१३, ९, ७, १७, ५ अने २१मां, एक्कावीसा=२१ संकामइ=संक्रमावे छे १६। एत्तो=अहींथी आगल, अविसेसा=अविशेष १७ संक्रमस्थानो, उवसामगे व खवगे वा=उपशामक अथवा क्षपकने विषे, संकमंति=संक्रममां प्राप्त थाय छे. उवसामगेसु=उपशामकने, सत्तगे छक्क पणगे य=७,६ अने ५ मां, वीसा=२० प्रकृतिओ संक्रमे छे.१७

पञ्चके चौपशमिकेषु प्राप्यते । तत्रापि सप्तके षट्के चौपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य । पञ्चके क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां ॥ १७ ॥

पंचसु एगुणवीसा, अट्ठारस पंचगे चउक्के य । चउदस छसु पगईसु तेरसगं छक्क–पणगंमि ॥ १८ ॥

पंचसु त्ति–पञ्चके एकोनविंशतिः संक्रामति । सा च क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य । तथा तस्यैवाष्टादश संक्रामन्ति पञ्चके चतुष्के च । तथा चतुर्दश षट्सु प्रकृतिषु । ताश्चौपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य । तथा त्रयोदशकं षट्के पञ्चके च । तत्र षट्के औपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य, पञ्चके क्षपकश्रेण्यां च ॥ १८ ॥

पंच–चउक्के बारस, एक्कारस पंचगे तिग–चउक्के । दसगं चउक्क–पणगे, नवगं च तिगंमि बोधव्वं ॥१९॥

पंच त्ति–पञ्चके चतुष्के च द्वादश संक्रामन्ति । ताश्च पञ्चके क्षपकश्रेण्यां, चतुष्के क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य । तथैकादश पञ्चके त्रिके चतुष्के च संक्रामन्ति । तत्र पञ्चके औपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य, क्षपकश्रेण्यां च, त्रिके चतुष्के च क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां च । तथा दशकं चतुष्के पञ्चके च संक्रामति । तच्चौपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य क्षपकश्रेण्यां च । तथा नवकं त्रिके बोद्धव्यं । तच्च क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य ॥ १९ ॥

गाथार्थः—पंचसु=५मां, एगुणवीसा=१९, पंचगे चउक्के य=५ अने ४मां, अट्ठारस=१८, छसु पगईसु=६ प्रकृतिमां, चउदस=१४, छक्कपणगंमि=६ अने ५मां, तेरसगं=१३ संक्रमावे छे. १८। पंचचउक्के=५ अने ४मां, बारस=१२नो, पंचगे तिगचउक्के=५, ३ अने ४ मां, एक्कारस=११नो, चउक्कपणगे=४ अने ५मां, दसगं=१०नो, नवगं च तिगंमि=अने ३मां ९नो संक्रम, बोधव्वं=जाणवो. १९

अट्ठ दुग-तिग-चउक्के, सत्त चउक्के तिगे य बोधव्वा। छक्कं दुगम्मि नियमा, पंच तिगे एक्कगदुगे य ॥२०॥

अट्ठ त्ति—अष्टौ द्विके त्रिके चतुष्के च संक्रामन्ति। तत्र द्विके त्रिके च क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य, चतुष्के औपशमिकसम्यग्दृष्टेः। तथा सप्त त्रिके चतुष्के च बोद्धव्याः। ताश्च त्रिके चतुष्के चौपशमिकसम्यग्दृष्टेरेवोपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य वेदितव्याः। तथा षट्कं द्विके एव नियमाद्भवति। तच्च क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य। तथा पञ्च त्रिके एकके द्विके च संक्रामन्ति। तत्र त्रिके औपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य। द्विके एकके च क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां ॥२०॥

चत्तारि तिग-चउक्के, तिन्नि तिगे एक्कगे य बोधव्वा। दो दुसु एक्काए, विय एक्का एक्काए बोधव्वा ॥२१॥

चत्तारि त्ति—चतस्रस्त्रिके चतुष्के च संक्रामन्ति। तत्र त्रिके औपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्य, चतुष्के क्षपकश्रेण्यां। तथा तिस्रस्त्रिके एकके च बोद्धव्याः। तत्र त्रिके क्षपकश्रेण्यां, एकके क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां। तथा द्वे प्रकृती द्वयोरेकस्यां च संक्रामतः। तत्र द्वयोः क्षयकश्रेण्यामौपशमिकसम्यग्दृष्टेश्चोपशमश्रेण्यां। एकस्यां तु क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां। तथैकप्रकृतिरेकस्यां बोद्धव्या। सा च क्षपकश्रेण्यामेव। एतच्च पतद्ग्रहेषु संक्रमस्थानसंकलनं प्रागुक्तं सप्रपंचपतद्ग्रहेषु संक्रमस्थानसंबन्धं पट्टकादौ प्रस्तार्य परिभावनीयम् ॥ २१ ॥

गाथार्थः—दुगतिगचउक्के=२, ३ अने ४मां, अट्ठ=८नो, चउक्के तिगे य=४ अने ३मां सत्त=७नो, दुगम्मि=२मां, नियमा=निश्चे, छक्कं=६नो, तिगे एक्कगदुगे य=३, १ अने २मां, पंच=५ नो संक्रम, बोधव्वा=जाणवो २०। तिगचउक्के=३ अने ४मां चतारि=४ नो, तिगे एक्कगे य=३ अने १मां, तिन्नि=३नो संक्रम, बोधव्वा=जाणवो. दुसु एक्काए विय=२ अने १मां, दो=२नो, एक्काए=१मां, एक्का=१नो, बोधव्वा=जाणवो. २१

मोहनीयकर्मने विषे पतद्ग्रहस्थानने विषे संक्रमस्थानोनो यन्त्र.

(१) अश्रेणिगत पतद्ग्रहोने विषे संक्रमस्थानो.

पतद्ग्रह-स्था०	पतद्ग्रह प्रकृतिओ	संक्रमस्था०	संक्रम प्रकृतिओ	केटली संख्या	क्या गुण०	संक्रमकाल.	स्वामी.
२२	मिथ्यात्व, १६ कषा०,	२७	मिथ्यात्वमो० विना	२८	१ ले	पल्योपमासंख्येयभाग	त्रिपुंजी मिथ्यात्वी
	१ वेद, १ युगल, भय,	२६	मिथ्या० सम०मो०विना	२७	,,	,,	उद्वलितसम०मोह० द्विपुंजी
	जुगुप्सा.	२३	मिथ्या० अनं० विना	२८	,,	१ आवलिका	अनंता०नी प्रथम बंधावलिकाए
२१	मिथ्यात्ववर्ज पूर्वोक्त	२५	दर्शनत्रिक विना	२६	,,	अनादि अनंतादि ३ भांगा	अनादि मिथ्यात्वी आदि
		२५	,, ,,	२८	२ जे	६ आवलिका	सास्वादनी
१९	१२ कषा०, पुंवेद, भय,	२६	२५ कषाय, १ मिथ्या०	२८	४ थे	१ आवलिका	उपशमसम०ने प्रथमावलिकाए
	जुगुप्सा, १युगल,	२७	२५कषा०, मिश्र०,	२८	,,	अन्तर्मुहूर्त	,, ,, लिकाबाद
	सम०मो०, मिश्रमो०,		मिथ्या०,		,,	क्षयोप०४थे रहे त्यांसुधी	क्षयोपशमसमकितीने
		२३	अनं०वर्ज २१कषा०	२४	,,	अन्तर्मुहूर्त	अनंता०नी विसंयोजनाबाद
			मिश्र० मिथ्या०				उपशमसमकितीने
						क्षयोप० ४थे रहे त्यांसुधी	,, ,, वेदकने
१८	१२ कषा०, पुंवेद, भय,	२२	२१ कषाय, मिश्र०	२३	,,	अन्तर्मुहूर्त	क्षपितानं०मिथ्यात्व वेदकने
	जुगुप्सा, १ युगल, सम०						

१७	१२ कषा०, पुंवेद, भय, जुगुप्सा, १ युगल	२५	२५ कषाय	९८-२७	३ जे	अन्तर्मुहूर्त	मिश्रदृष्टि
		२१	२१ कषाय (अनं०वर्ज	२४	,,	,,	,, [वेदकसम०
		२१	,, ,,	२२	४ थे	,,	क्षपितमिथ्यात्वानंता०मिश्रमो०
		२१	,, ,,	२१	,,	३३सागरोपमसाधिक	क्षायिकसमकितीने
१५	८ कषा० पुंवेद, भय, जुगुप्सा, १ युगल, सम० मिश्र०	२६	२५कषाय, मिथ्यात्व	२८	५ मे	१ आवलिका	उपशमसमकितीने प्रथमावलिए
		२७	,, मिश्र०मिथ्या०	२८	,,	अन्तर्मुहूर्त	,, ,, बाद
				२८	,,	देशोनपूर्वक्रोड वर्ष	क्षयोपशमसमकितीने
		२३	२१ कषाय(अनं०वर्ज) मिथ्या०, मिश्र०	२४	,,	अन्तर्मुहूर्त	विसंयोजितानंतानुबं०उपशम०
				२४		देशोनपूर्वक्रोडवर्ष	,, वेदकने
१४	८ कषा०, पुंवेद, भय, जुगुप्सा, १ युगल, सम०	२२	२१कषा० मिश्रमो०	२३	,,	अन्तर्मुहूर्त	क्षपितमिथ्यात्ववेदकने
१३	सममो०वर्जपूर्वोक्त	२१	,, (अनं०वर्ज)	२२	,,	,,	क्षपितमिश्र वेदकने
				२१	,,	देशोनपूर्वक्रोडवर्ष	क्षायिकसमकितीने
११	संज्व० ४, पुंवेद, भय, जुगुप्सा,१ युगल, सम० मिश्र०	२६	२५ कषाय, मिथ्यात्व	२८	६-७	१ आवलिका	उपशमसम०ने प्रथमावलिकाए
		२७	,, मिश्र-मिथ्या	२८	,,	अन्तर्मुहूर्त	,, ,, का बाद
		२३	२१ कषाय ,, ,,	२४	,,	,,	क्षपितानंतानुबंधि उपशम०
				२४	,,		,, वेदकने
१०	संज्व०४, पुंवेद, भय, जुगुप्सा, १ युगल, सम०	२२	२१ कषाय, मिश्रमो०	२३	६-७	अन्तर्मुहूर्त	क्षपितमिथ्यात्व वेदकसम०
९	समकितमो० वर्जपूर्वोक्त	२१	२१ कषाय	२२	,,	,,	क्षपितमिश्रवेदकसम०
		२१	,,	२१	,,	देशोन पूर्वकोटी	क्षायिकसमकितीने

ए प्रमाणे २२, २१, १९, १८, १७, १५, १४, १३, ११, १०, ९ एम ११ पतद्ग्रहस्थानो अने २७, २६, २५, २३, २२, २१ एम ६ संक्रमस्थानो अश्रेणिगत जाणवा.

(२) उपशमसमकितीने उपशमश्रेणिमां.

११	संज्वल०४, पुंवेद, भय, जुगुप्सा, हास्य, रति, समकि०, मिश्रमो०	२३	अनं०वर्ज २१ कषाय, मिथ्यात्व, मिश्र	२४	८ मे	अन्तर्मुहूर्त	अपूर्वकरण
७	संज्व०४,पुंवेद,सम०मिश्र०	२३	,, ,,	२४	९	,,	अन्तरकरणपूर्वे
		२२	संज्वलनलोभवर्जपूर्वो०	,,	,,	,,	अन्तरकरणमां
		२१	नपुंसकवेदवर्ज ,,	,,	,,	,,	अन्तरकरणबाद
		२०	स्त्रीवेदवर्जपूर्वोक्त	,,	,,	,,	,,
६	संज्व० ४, सम०, मिश्र०	२०	,, ,,	,,	,,	समयोन आवलिकाद्विक	,,
		१४	हास्यषट्कवर्जपूर्वोक्त	,,	,,	समयोन आवलिकाद्विक	,,
		१३	पुंवेदवर्जपूर्वोक्त	,,	,,	अन्तर्मुहूर्त	,,
५	संज्व०मान, माया, लोभ, सममो० मिश्र०	१३	,, ,,	,,	,,	समयोन आवलिकाद्विक	,,
		११	अप्र०प्रत्या०क्रोधवर्जप०	,,	,,	समयोन आवलिकाद्विक	,,
		१०	संज्वलन क्रोधवर्जपू०	,,	,,	अन्तर्मुहूर्त	,,
४	संज्व०माया, लोभ, सम० मिश्रमो०	१०	,, ,, ,,	,,	,,	समयोन आवलिकाद्विक	,,
		८	अप्र०प्रत्या०मानवर्ज ,,	,,	,,	,, ,,	,,
		७	संज्व०मानवर्ज पूर्वोक्त	,,	,,	अन्तर्मुहूर्त	,,
३	संज्व०लोभ,सम०,मिश्र०	७	,, ,, ,,	,,	,,	समयोन आवलिकाद्विक	,,
		५	अप्र०प्रत्या०लोभ,संज्व. माया मिश्र०,मिथ्यात्व	,,	,,	,, ,,	,, [रहे त्यां सुधी
		४	संज्वलनमायावर्ज पू०	,,	,,	अन्तर्मुहूर्त	नवमागुण०बेआवलिका बाकी
२	सममो०, मिश्रमो०	२	मिश्रमो० समकित०	,,	९-१०-११	अन्तर्मुहूर्त	९मानी२आवली १०–११ गु०

ए प्रमाणे ११, ७, ६, ५, ४, ३, २, एम ७ पतद्ग्रहस्थानो अने २३, २२, २१, २०, १४, १३, ११, १०, ८, ७, ५, ४, २ एम १३ संक्रमस्थानो.

(३) क्षायिक समकितीने उपशमश्रेणिमां.

९	संज्वलन०४, पुंवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा	२१	१२कषाय,९ नोकषाय	२१	८ मे	अन्तर्मुहूर्त	अपूर्वकरणगुणस्थानवाळो
५	पुंवेद, संज्व० ४	२१	१२ कषा० ९ नोक०	२१	९ मे	अन्तर्मुहूर्त	अन्तरकरणपूर्वे
		२०	संज्व०लोभवर्जपूर्वोक्त	,,	,,	,,	अन्तरकरणमां
		१९	११कषा०नपुं०,वर्जे८नो०	,,	,,	,,	अन्तरकरणबाद
		१८	,, ,, हास्यषट्क,पुं०	,,	,,	,,	,,
४	संज्वलनचतुष्क	१८	,, ,, ,, ,,	,,	,,	समयोन आवलिकाद्विक	,,
		१२	,, पुंवेद	,,	,,	,, ,,	,,
		११	११ कषाय	,,	,,	,, अन्तर्मुहूर्त	,,
३	संज्व०मान, माया,लोभ	११	,, ,,	,,	,,	समयोनआवलिकाद्विक	,,
		९	अप्र०प्र०क्रोधवर्जपूर्वो०	,,	,,	,, ,,	,,
		८	संज्व०क्रोध वर्ज पूर्वो०	,,	,,	अन्तर्मुहूर्त	,,
२	संज्व० माया, लोभ	८	,, ,, ,,	,,	,,	समयोन आवलिकाद्विक	,,
		६	अप्र०प्र०मानवर्ज पूर्वो०	,,	,,	,, ,,	,,
		५	संज्व० मानवर्जपू०	,,	,,	अन्तर्मुहूर्त	,,
१	संज्वलनलोभ	५	,, ,, ,,	,,	,,	समयोनआवलिकाद्विक	,,
		३	अप्र०प्र०मायावर्जपू०	,,	,,	,, ,,	,,
		२	अप्र०, प्र० लोभ	,,	,,	अन्तर्मुहूर्त	,,

ए प्रमाणे ९,५,४,३,२,१ ए ६ पतद्ग्रह० अने २१,२०,१९,१८,१२,११,९,८,६,५,३,२ एम१२संक्रम० क्षायिकसम० उप० श्रेणिमां

(४) क्षपकश्रेणिमां

प्र०	पतद्ग्रह प्रकृतिओ	संक्रमस्थान	संक्रम प्रकृतिओ.	सत्तास्थान	क्या गुण स्थानक	संक्रमकाल	स्वामी
९	संज्वलन०४,पुंवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा	२१	१२ कषाय,९नोकषाय	२१	८ मे	अन्तर्मुहूर्त	अपूर्वकरणगुण०वाळो
५	संज्वलन ४, पुंवेद	२१	१२ कषा० ९ नोक०	२१	९ मे	अन्तर्मुहूर्त	९ माना बीजा भागपर्यंत
		१३	संज्व० ४ ,, ,,	१३	,,	,,	,, त्रीजा भागे
		१२	संज्व०क्रो०३ ,, ,,	१३	,,	,,	अन्तरकरणमां
		११	,, ८नोक०(नपुं०वर्ज)	१२	,,	,,	९ माना ४ थे भागे
		१०	,, ७नोक०(स्त्री०वर्ज)	११	,,	,,	९ माना ५ मे भागे
४	संज्वलन ४	१०	,, ,, ,,	११	,,	समयोन आवलिकाद्विक	९ माना ५ मे भागे
		४	,, पुंवेद	५	,,	अन्तर्मुहूर्त	९ माना ६ ठे भागे
३	संज्वलनमानादि ३	३	संज्वलनक्रो० ३	४	,,	,,	९ माना ७ मे भागे
२	संज्वलनमायादि २	२	संज्वलन मान-माया	३	,,	,,	९ माना ८ मे भागे
१	संज्वलनलोभ	१	,, माया	२	,,	,,	९ माना ९ मे भागे

ए प्रमाणे ९, ५, ४, ३, २, १ ए ६ पतद्ग्रहोमां २१, १३, १२, ११, १०, ४, ३,२, १, एम ९ संक्रमस्थानो क्षपकश्रेणिमां.

संप्रति पतद्ग्रहेषु संक्रमस्थानसंकलने मार्गणोपायानाह—

अणुपुव्विअणाणुपुव्वी, झीणमझीणे य दिट्ठिमोहम्मि । उवसामगे य खवगे, य संकमे मग्गणोवाया ॥२२॥

अणुपुव्वि त्ति—पतद्ग्रहेषु संक्रमे संक्रमस्थानसंकलनचिन्तायामेते मार्गणोपायाः । तथाहि—किमिदं संक्रमस्थानमानुपूर्व्या संक्रमे उपपद्यतेऽनानुपूर्व्या वोभयत्र वा ? तथा क्षीणे दृष्टिमोहे आहोश्विदक्षीणे उभयत्र वा ? । तथोपशमके उतश्चित् क्षपके उभयत्र वेति ? ॥ २२ ॥ तदेवमुक्तो मोहनीयस्य प्रपञ्चतः संक्रमपतद्ग्रहविधिः ।

संप्रति नामकर्मणोऽभिधीयते । तत्र द्वादश ×नामकर्मणः संक्रमस्थानानि । तथा चाह—

तिदुगेगसयं छप्पण–चउतिगनउई य इगुणनउईया । अट्ठचउदुगेक्कसीई, संकमा बारस य छट्ठे ॥ २३ ॥

×(य० उ०९२) तत्र नामकर्मणो द्वादश सत्तास्थानानि । तद्यथा—त्र्युत्तरशतं द्व्युत्तरशतं षण्णवतिः पञ्चनवतिः, एतत्प्रथमसंज्ञं सत्ताचतुष्कं । तत्र सकलप्रकृतिसमुदायस्त्र्युत्तरशतं । तदेव तीर्थकररहितं द्व्युत्तरशतं । त्र्युत्तरशतमेवाहारकसप्तकरहितं षण्णवतिः । द्व्युत्तरशतमाहारकसप्तकरहितं पञ्चनवतिः । क्षपकश्रेण्यां प्रथमसत्ताचतुष्कान्नरकगतिनरकानुपूर्वीतिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्व्याद्यजातिचतुष्टयस्था-

गाथार्थः—संक्रमे मग्गणोवाया=पतद्ग्रहमां संक्रमस्थाननी संकलनाना विचार जाणवामां आ उपायो छे—अणुपुव्व पुव्वी= अमुक संक्रमस्थान अनुपुर्वीए, अनानुपुर्वीए के बंनेमां, झीण० दिठिमोहम्मि=दर्शनमोहनीयना क्षय अक्षय के बंनेमां, उवसामगे य खवगे य=उपशामकने क्षपकने अथवा बंनेने. २२ तिदुगेगसयं=१०३–१०२–१०१, छप्पणचउतिगनउई य=९६, ९५, ९४, अने ९३, इगुणनउईया=८९, अट्ठचउदुगेक्कसीई=८८, ८४, ८२ अने ८१, संकमा बारस=ए १२ संक्रमस्थानो, छट्ठे=६ठा नामकर्मने विषे जाणवा.२३

तिदुगेगसयंति–षष्ठे नामकर्मणि द्वादश संक्रमस्थानानि । तद्यथा–त्र्युत्तरशतं, द्व्युत्तरशतं, एकोत्तरशतं, षण्णवतिः पञ्चनवतिः, चतुर्नवतिः, त्रिनवतिः, एकोननवतिः, अष्टाशीतिः, चतुरशीतिः द्व्यशीतिः, एकाशीतिश्चेति । तत्र नाम्नः सर्वसंख्यया त्र्युत्तरं प्रकृतिशतं । तद्यथा–गतिचतुष्टयं, जातिपञ्चकं, शरीरपञ्चकं, संघातपञ्चकं, बन्धनपञ्चदशकं, संस्थानषट्कं, संहननषट्कं, अंगोपांगत्रयं, वर्णपञ्चकं, गन्धद्विकं, रसपञ्चकं, स्पर्शाष्टकं, अगुरुलघु, आनुपूर्वीचतुष्टयं, पराघातोपघातोच्छ्वासातपोद्योतविहायोगतिद्विकत्रसस्थावरबादरसूक्ष्मसाधारणप्रत्येकपर्याप्तापर्याप्तस्थिरास्थिरशुभाशुभसुभगदुर्भगदुःखरसुस्वरादेयानादेययशःकीर्तियशःकीर्तिनिर्माणतीर्थकराणि (१०३) च । एतदेव च तीर्थकरवर्जं द्व्युत्तरशतं (१०२) । अथवा यशःकीर्तिरहितं द्व्युत्तरशतं

वरसूक्ष्मसाधारणातपोद्योतलक्षणासु त्रयोदशसु प्रकृतिषु क्षीणासु यथाक्रमं द्वितीयं सत्ताचतुष्कं नवतिरेकोननवतिरुयशीतिर्द्व्यशीतिश्च । तथा पञ्चनवतेर्देवद्विके उद्वलिते त्रिनवतिः । तस्या अपि वैक्रियसप्तकनरकद्विकयोरुद्वलितयोश्चतुरशीतिः । अस्या अपि मनुजद्विके उद्वलिते द्व्यशीतिः । एतच्च सत्तात्रिकमध्रुवसंज्ञं । यद्यपीह द्वितीयसत्ताचतुष्के च द्व्यशीतिर्भिन्नभिन्नतया व्यवस्थिता तथापि सङ्ख्यातौल्यादेकमेवेदं सत्तास्थानं गण्यते । तदेवं संजातेषु दशसु सत्तास्थानेषु द्वितीयसत्ताचतुष्कस्थे नवतिव्यशीतिरूपे सत्तास्थाने सङ्क्रमे न प्राप्येते, शेषाणि तु सर्वाणि प्राप्यन्त इत्यष्टौ सङ्क्रमस्थानानि भवन्ति । नवाष्टरूपे चान्ये द्वे सत्तास्थाने अयोग्यवस्थाचरमसमये प्राप्येते । ततो द्वादश सत्तास्थानानि पूर्यन्ते, परं ते सङ्क्रमे न प्राप्यते, अयोग्यवस्थायां बन्धाभावेन पतद्ग्रहाभावाद् बध्यमानप्रकृतेरेव पतद्ग्रहत्वात्पतद्ग्रहे सत्येव च सङ्क्रमसंभवात् । सत्तास्थानबाह्यानि च चत्वार्यन्यानि सङ्क्रमस्थानानि भवन्ति–एकोत्तरशतं चतुर्नवतिरष्टाशीतिरेकाशीतिश्च । तदेवं द्वादश सत्तास्थानानि द्वादशैव सङ्क्रमस्थानानीति लब्धं ।

(१०२)। तीर्थकरयशःकीर्तिरहितमेकोत्तरशतं (१०१)। त्र्युत्तरशतमेवाहारकसप्तकरहितं षण्णवतिः (९६)। सैव तीर्थकररहिता पञ्चनवतिः (९५)। अथवा यशःकीर्तिरहिता पञ्चनवतिः (९५)। यशःकीर्तितीर्थकररहिता चतुर्नवतिः (९४)। तीर्थकररहिता पञ्चनवतिरेव देवगतिदेवानुपूर्व्योरुद्वलितयोस्त्रिनवतिः (९३)। अथवा नरकगतिनरकानुपूर्वीरहिता त्रिनवतिः (९३)। त्र्युत्तरशतान्नरकगतिनरकानुपूर्वीतिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीपञ्चेन्द्रियजातिवर्जशेषजातिचतुष्टयस्थावरसूक्ष्मसाधारणातपोद्योतलक्षणासु त्रयोदशसु प्रकृतिषु क्षीणासु यशःकीर्तौ चापनीतायामेकोननवतिर्भवति (८९)। सैव तीर्थकररहिताऽष्टाशीतिः (८८)। त्रिनवतेर्वैक्रियसप्तके उद्वलिते नरकगतिनरकानुपूर्व्योश्चोद्वलितयोः शेषा चतुरशीतिर्भवति (८४)। मनुजगतिमनुजानुपूर्व्योरुद्वलितयोर्द्व्यशीतिः (८२)। अथवा षण्णवतिः प्रागुक्तासु त्रयोदशसु प्रकृतिषु क्षीणासु यशःकीर्तौ चापनीतायां द्व्यशीतिः (८२)। सैव तीर्थकररहिता एकाशीतिः (८१)। एतानि (१२) नाम्नः संक्रमस्थानानि ॥ २३ ॥

संप्रति पतद्ग्रहस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

तेवीस-पंचवीसा, छव्वीसा अट्ठवीस-गुणतीसा। तीसेक्कतीसएगं, पडिग्गहा अट्ठ नामस्स ॥ २४ ॥

तेवीस त्ति-त्रयोविंशतिः, पञ्चविंशतिः, षड्विंशतिः, अष्टाविंशतिः, एकोनत्रिंशत्, त्रिंशत्, एकत्रिंशत्, एका चेत्यष्टौ (८) नाम्नः पतद्ग्रहस्थानानि भवन्तीति ॥ २४ ॥

गाथार्थः—तेवीसपंचवीसा=२३-२५, छव्वीसा=२६, अट्ठवीसगुणतीसा=२८-२९, तीसेक्कतीसएगं=३०,३१ अट्ठ=ए आठ, नामस्स=नामना पडिग्गहा=पतद्ग्रहो छे. २४

संप्रति काः प्रकृतयः कुत्र संक्रामन्तीत्येतन्निरूपणार्थमाह—

एक्कगदुगसय पणचउ–नउई ता तेरसूणिया वावि । परभवियबंधवोच्छेय, उपरि सेढीऍ एक्कस्स ॥ २५ ॥

एक्कग त्ति–पारभविकीनां परभववेद्यानां नामप्रकृतीनां देवगतिप्रायोग्यैकत्रिंशदादीनां बन्धव्यवच्छेदे सति उपरि द्वयोरपि श्रेण्योरुपशमक्षपकश्रेणिरूपयोरेकस्यां यशःकीर्तिलक्षणायां प्रकृतौ बध्यमानायामष्टौ संक्रमस्थानानि संक्रामन्ति । तद्यथा–एकोत्तरशतं, द्व्युत्तरशतं, पञ्चनवतिः, चतुर्नवतिः । 'ता इति' तान्येवानन्तरोदितानि चत्वारि संक्रमस्थानानि त्रयोदशन्यूनानि चत्वारि भवन्ति । तद्यथा–अष्टाशीतिः, एकोननवतिः, द्व्यशीतिः, एकाशीतिश्चेति । तत्र त्र्युत्तरशतसत्कर्मणो यशःकीर्तिर्बध्यमाना पतद्ग्रह इति तस्यामुत्सारितायां शेषं द्व्युत्तरशतं यशःकीर्तिपतद्ग्रहे संक्रामति । एवमेव द्व्युत्तरशतसत्कर्मण एकोत्तरं शतं । तथा षण्णवतिसत्कर्मणो यशःकीर्तिः पतद्ग्रह इति तस्यामुत्सारितायां शेषा पञ्चनवतिः तस्यां यशःकीर्तौ संक्रामति । एवमेव पञ्चनवतिसत्कर्मणश्चतुर्नवतिः । तथा त्र्युत्तरशतसत्कर्मणस्त्रयोदशसु पूर्वोक्तेषु नामकर्मसु क्षीणेषु सत्सु यशःकीर्तिः पतद्ग्रह इति तस्यामपगतायां शेषा एकोननवतिर्यशःकीर्तौ संक्रामति । द्व्युत्तरशतसत्कर्मणः पुनस्त्रयोदशसु क्षीणेष्वष्टाशीतिः संक्रामति । षण्णवतिसत्कर्मणस्तु नामत्रयोदशके क्षीणे द्व्यशीतिः । पञ्चनवतिसत्कर्मण एकाशीतिः (१ पत०, १०२,१०१,९५, ९४,८९,८८,८२,८१ संक्र०) ॥ २५ ॥

गाथार्थः—सेढीए=श्रेणिने विषे, परभविय०उवरि=परभव संबन्धि बन्धविच्छेद थया बाद, एक्कस्स=१मां, एक्कगदु०नउई= १०१, १०२, ९५, ९४ ता=ते पछी, तेरिसूणिया वावि=१३ ओछी एटले ८८, ८९, ८२, ८१ ए ८ संक्रमस्थानो जाणवा. २५

एकत्रिंशत्प्रकृतिसमुदायरूपे पतद्ग्रहे चत्वारि संक्रमस्थानानि तथा चाह—

तिगदुगसयं छपंचग–नउई य जइस्स एक्कतीसाए । एगंतसेढिजोगे, वज्जिय तीसिगुणतीसासु ॥२६॥

तिग त्ति–यतेरप्रमत्तस्यापूर्वकरणस्य च देवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियशरीरसमचतुरस्रसंस्थानवैक्रियांगोपांगदेवानुपूर्वीपराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तितैजसकार्मणवर्णादिचतुष्कागुरुलघूपघातनिर्माणतीर्थकराहारकद्विकलक्षणामेकत्रिंशतं (३१) बध्नतस्तस्यामेकत्रिंशति एकत्रिंशत्प्रकृतिसमुदायरूपे पतद्ग्रहे त्र्युत्तरशतं द्व्युत्तरशतं षण्णवतिः पञ्चनवतिरिति चत्वारि संक्रमस्थानानि संक्रामन्ति (३१पत०१०३,१०२,९६,९५ संक्र०)। तत्र त्र्युत्तरशतं तीर्थकराहारकयोर्बन्धावलिकायामपगतायामेकत्रिंशत्प्रकृतिपतद्ग्रहे संक्रामति । तीर्थकरनाम्नः पुनर्बन्धावलिकायामनपगतायां द्व्युत्तरशतं । आहारकसप्तकस्य तु बन्धावलिकायामनपगतायां षण्णवतिः । तीर्थकराहारकसप्तकयोः पुनर्बन्धावलिकायामनपगतायां पञ्चनवतिः ।

" 'एगंतेत्यादि' एकान्तेन श्रेणियोग्यानि यानि संक्रमस्थानानि एकोत्तरशतचतुर्नवत्येकोननवत्यष्टाशीत्येकाशीतिरूपाणि । एतानि हि श्रेणावेव वर्तमानेन यशःकीर्तावेकस्यां बध्यमानायां संक्रम्यमाणानि प्राप्यन्ते, नान्यत्र । ततस्तानि वर्जयित्वा

गाथार्थः—जइस्स=(अप्रमत्त अने अपूर्वकरणगुणस्थानवाळा)यतिने, एक्कतीसाए=३१मां, तिगदुगसयं=१०३,१०२, छपंचगनउई य=९६, अने ९५ ए चार स्थानो संक्रमे छे. तीसिगुणतीसासु=३० अने २९मां, एगंतसेढिजोगे=एकान्त श्रेणियोग्य पांच स्थानको, वज्जिय=वर्जीने बाकीना ७ स्थानको संक्रमावे छे. २६

शेषाणि त्र्युत्तरशतद्व्युत्तरशतषण्णवतिपञ्चनवतित्रिनवतिचतुरशीतिद्व्यशीतिरूपाणि त्रिंशत्पतद्ग्रहे एकोनत्रिंशत्पतद्ग्रहे च सप्त संक्रमस्थानानि भवन्ति (३०पत०, २९पत०;१०३,१०२,९६,९५,९३,८४,८२)। तत्र त्र्युत्तरशतसत्कर्मणो देवस्य सम्यग्दृष्टेस्तैजसकार्मणवर्णादिचतुष्कागुरुलघूपघातनिर्माणपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकशरीरौदारिकांगोपांगसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहननमनुजगतिमनुजानुपूर्वीत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरान्यतरशुभाशुभान्यतरसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तिपराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतितीर्थकरलक्षणां(३०)मनुजगतिप्रायोग्यां तीर्थकरनामसहितां त्रिंशतं बध्नतस्त्र्युत्तरशतं तस्मिन् त्रिंशत्पतद्ग्रहे संक्रामति। द्व्युत्तरशतसत्कर्मणोऽप्रमत्तसंयतस्यापूर्वकरणस्य वा देवगतिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियशरीरसमचतुरस्रसंस्थानवैक्रियांगोपांगदेवानुपूर्वीपराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तितैजसकार्मणवर्णादिचतुष्कागुरुलघूपघातनिर्माणाहारकद्विकलक्षणां देवगतिप्रायोग्यां(३०)त्रिंशतं बध्नतो द्व्युत्तरशतं तस्मिन् त्रिंशत्पतद्ग्रहे संक्रामति। अथवा द्व्युत्तरशतसत्कर्मणामेकेन्द्रियादीनामुद्योतसहितां द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यां तैजसकार्मणागुरुलघूपघातनिर्माणवर्णादिचतुष्कातिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीद्वीन्द्रियाद्यन्यतमजातित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरान्यतरशुभाशुभान्यतरदुर्भगदुःस्वरानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्त्यन्यतरौदारिकशरीरौदारिकांगोपांगान्यतमसंस्थानान्यतमसंहननाप्रशस्तविहायोगतिपराघातोद्योतोच्छ्वासलक्षणां (३०) त्रिंशतं बध्नतां द्व्युत्तरशतं तस्मिन् त्रिंशत्पतद्ग्रहे संक्रामति। षण्णवतिसत्कर्मणां देवनारकाणां मनुजगतिप्रायोग्यां तीर्थकरनामसहितां प्रागुक्तां त्रिंशतं बध्नतां तस्मिन् त्रिंशत्पतद्ग्रहे षण्णवतिः संक्रामति। पञ्चनवतिसत्कर्मणामप्रमत्तापूर्वकरणसंयतानामाहारकद्विकसहितां प्रागुक्तां देवगतिप्रायोग्यां त्रिंशतं बध्नतामाहारकसप्तकस्य बन्धावलिकायामनपगतायां पञ्चनवतिस्त्रिंशत्पतद्ग्रहे संक्रा-

मति । अथवा पञ्चनवतिसत्कर्मणामेकेन्द्रियादीनां द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यामुद्योतसहितां प्रागुक्तां त्रिंशतं बध्नतां पञ्चनवतिस्त्रिंशत्पतद्ग्रहे संक्रामति। त्रिनवतिसत्कर्मणां चतुरशीतिसत्कर्मणां द्व्यशीतिसत्कर्मणां चैकेन्द्रियादीनां विकलेन्द्रियपञ्चेन्द्रियतिर्यग्गतिप्रायोग्यां प्रागुक्तामुच्छ्वास(मुद्योत)सहितां त्रिंशतं बध्नतां यथाक्रमं त्रिनवतिश्चतुरशीतिर्द्व्यशीतिश्च त्रिंशत्पतद्ग्रहे संक्रामति।

एकोनत्रिंशत्पतद्ग्रहेऽप्येतान्येव सप्त संक्रमस्थानानि। तत्र त्र्युत्तरशतसत्कर्मणामविरतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमत्तसंयतानां देवगतिप्रायोग्यां तीर्थकरनामसहितां देवगतिदेवानुपूर्वीपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियशरीरवैक्रियांगोपांगपराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरान्यतरशुभाशुभान्यतरसुभगसुस्वरादेययशःकीर्त्ययशःकीर्त्यन्यतरसमचतुरस्रसंस्थानतैजस---कार्मणवर्णादिचतुष्कागुरुलघूपघातनिर्माणतीर्थकरलक्षणामेकोनत्रिंशतं (२९) बध्नतां त्र्युत्तरशतमेकोनत्रिंशत्पतद्ग्रहे संक्रामति। एतेषामेवाविरतादीनां त्रयाणां प्रागुक्तामेकोनत्रिंशतं बध्नतां तीर्थकरनाम्नो बन्धावलिकायामनपगतायां द्व्युत्तरशतं तस्मिन्नेकोनत्रिंशत्पतद्ग्रहे संक्रामति। अथवैकेन्द्रियादीनां द्व्युत्तरशतसत्कर्मणां द्वीन्द्रियादिप्रायोग्यां प्रागुक्तामेव त्रिंशतमुद्योतरहितामेकोनत्रिंशतं बध्नतां द्व्युत्तरशतमेकोनत्रिंशत्पतद्ग्रहे संक्रामति। अविरतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमत्तसंयतानां षण्णवतिसत्कर्मणां प्रागुक्ताया देवगतिप्रायोग्यायास्त्रिंशत आहारकद्विकेऽपनीते तीर्थकरनाम्नि च तत्र प्रक्षिप्ते सति या संजातैकोनत्रिंशत् तां बध्नतां षण्णवतिस्तस्मिन्नेकोनत्रिंशत्पतद्ग्रहे संक्रामति। अथवा नैरयिकस्य तीर्थकरनामसत्कर्मणो मिथ्यादृष्टेरपर्याप्तावस्थायां वर्तमानस्य मनुजगतिप्रायोग्यां मनुजगतिमनुजानुपूर्वीपञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरान्यतरशुभाशुभान्यतरसुभगदुर्भगान्यतरादेयानादेयान्यतरयशःकीर्त्ययशःकीर्त्यन्यतरसंस्थानषट्कान्यतमसंस्थानसंहननषट्कान्यतमसंहननवर्णादिचतुष्कागु-

रुलघूपघाततैजसकार्मणनिर्माणौदारिकशरीरौदारिकांगोपांगसुस्वरदुःस्वरान्यतरपराघातोच्छ्वासप्रशस्ताप्रशस्तान्यतरविहायोगतिलक्षणामेकोनत्रिंशतं बध्नतः षण्णवतिरेकोनत्रिंशति संक्रामति। अविरतसम्यग्दृष्टीनां देशविरतानां प्रमत्तसंयतानां च षण्णवतिसत्कर्मणां प्रागुक्तां तीर्थकरनामसहितां देवगतिप्रायोग्यामेकोनत्रिंशतं बध्नतां तीर्थकरनामकर्मणो बन्धावलिकायामनपगतायामेकोनत्रिंशति पञ्चनवतिः संक्रामति। यद्वा पञ्चनवतिसत्कर्मणामेकेन्द्रियादीनां द्वीन्द्रियादिप्रायोग्या प्रागुक्ता या त्रिंशत् सैवोद्योतरहितैकोनत्रिंशत् तां बध्नतां तस्यामेवैकोनत्रिंशति पञ्चनवतिः संक्रामति। त्रिनवतिचतुरशीतिद्व्यशीतयो यथा त्रिंशत्पतद्ग्रहेऽभिहितास्तथैवात्रापि भावनीयाः ॥ २६ ॥

अट्ठावीसाए वि, ते बासीइतिसयवज्जिया पंच। ते च्चिय बासीइजुया, सेसेसुं छन्नउई य वज्जा ॥२७॥

अट्ठावीसाए त्ति–अष्टाविंशतावपि तान्येव पूर्वोक्तानि द्व्यशीतिन्युत्तरशतवर्जितानि शेषाणि द्व्युत्तरशतषण्णवतिपञ्चनवतित्रिनवतिचतुरशीतिरूपाणि पञ्च संक्रमस्थानानि संक्रामन्ति(२८प०;१०२,९६, ९५, ९३, ८४ संक्र०)। तत्र मिथ्यादृष्टेर्नरकगतिप्रायोग्यां नरकगतिनरकानुपूर्वीपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियशरीरवैक्रियांगोपांगहुंडसंस्थानपराघातोच्छ्वासाप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरान्यतरशुभाशुभान्यतरदुर्भगदुःस्वरानादेययशःकीर्तिवर्णादिचतुष्कागुरुलघूपघाततैजसकार्मणनिर्माणलक्षणां (२८), तथा मिथ्यादृष्टेः सम्यग्दृष्टेर्वा देवगतिप्रायोग्यां तैजसकार्मणवर्णादिचतुष्कागुरुलघूपघातनिर्माणदेवगतिदेवानुपूर्वी-

---

गाथार्थः—अठावीसाए वि=२८मां पण, ते बासीइतिसयवज्जिया पंच=पूर्वोक्त ७ स्थानमांथी ८२ नुं अने १०३ नुं वर्जीने पांच स्थानो संक्रमे. सेसेसुं=बाकीना पतद्ग्रहोमां, बासीइजुया=८२ युक्त, छन्नउई य वज्जा=९६ नुं वर्जीने, ते च्चिय=ते पांच संक्रमावे छे. २७

पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियशरीरवैक्रियांगोपांगसमचतुरस्रसंस्थानपराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरान्यतरशुभाशुभान्यतरसुभगसुस्वरादेययशःकीर्त्ययशःकीर्त्यन्यतरलक्षणामष्टाविंशतिं (२८) बध्नतो द्व्युत्तरशतसत्कर्मणो द्व्युत्तरशतमष्टाविंशतिपतद्ग्रहे संक्रामति । तथा मनुष्यस्य तीर्थकरनामसत्कर्मणः पूर्वमेव नरके बद्धायुष्कस्य सतो नरकाभिमुखस्य सतो मिथ्यात्वं प्रपन्नस्य नरकगतिप्रायोग्यां पूर्वोक्तामष्टाविंशतिं बध्नतः षण्णवतिसत्कर्मणोऽष्टाविंशतिपतद्ग्रहे षण्णवतिः संक्रामति । यथा द्व्युत्तरशतस्य भावना कृता तथा पञ्चनवतेरपि भावना कार्या । केवलं द्व्युत्तरशतस्थाने पञ्चनवतिरित्युच्चारणीयं । तथा मिथ्यादृष्टेस्त्रिनवतिसत्कर्मणो देवगतिप्रायोग्यां पूर्वोक्तामष्टाविंशतिं बध्नतो वैक्रियसप्तकदेवगतिदेवानुपूर्वीणां बन्धावलिकायाः परतो वर्तमानस्य त्रिनवतिरष्टाविंशतौ संक्रामति । अथवा पञ्चनवतिसत्कर्मणो देवगतिप्रायोग्यां पूर्वोक्तामेवाष्टाविंशतिं बध्नतो देवगतिदेवानुपूर्व्योर्बन्धावलिकाया अभ्यन्तरे वर्तमानस्य त्रिनवतिरष्टाविंशतौ संक्रामति । अथवा त्रिनवतिसत्कर्मणो मिथ्यादृष्टेर्नरकगतिप्रायोग्यां पूर्वोक्तामष्टाविंशतिं बध्नतो नरकगतिनरकानुपूर्वीवैक्रियसप्तकानां बन्धावलिकायाः परतो वर्तमानस्य त्रिनवतिरष्टाविंशतौ संक्रामति । अथवा पञ्चनवतिसत्कर्मणो मिथ्यादृष्टेर्नरकगतिप्रायोग्यां पूर्वोक्तामष्टाविंशतिं बध्नतो नरकगतिनरकानुपूर्व्योर्बन्धावलिकाया अभ्यन्तरे वर्तमानस्य त्रिनवतिरष्टाविंशतौ संक्रामति । तथा त्रिनवतिसत्कर्मणो मिथ्यादृष्टेर्देवगतिप्रायोग्यामष्टाविंशतिं बध्नतो देवगतिदेवानुपूर्वीवैक्रियसप्तकानां बन्धावलिकाया अभ्यन्तरे वर्तमानस्य चतुरशीतिरष्टाविंशतौ संक्रामति । अथवा त्रिनवतिसत्कर्मणो मिथ्यादृष्टेर्नरकगतिप्रायोग्यां पूर्वोक्तामष्टाविंशतिं बध्नतो नरकगतिनरकानुपूर्वीवैक्रियसप्तकानां बन्धावलिकाया अभ्यन्तरे वर्तमानस्य चतुरशीतिरष्टाविंशतौ संक्रामति ।

षड्विंशत्यादिपतद्ग्रहेषु ×संक्रमस्थानान्याह–'ते च्चियेत्यादि' शेषेषु षड्विंशतिपञ्चविंशतित्रयोविंशतिलक्षणेषु पतद्ग्रहेषु तान्येव पूर्वोक्तानि द्व्युत्तरशतादीनि षण्णवतिरहितानि द्व्यशीतियुतानि पञ्च संक्रमस्थानानि संक्रामन्ति । तद्यथा—द्व्युत्तरशतं पञ्चनवतिस्त्रिनवतिश्चतुरशीतिर्द्व्यशीतिश्च (२६प०,२५प०, २३प०; १०२,९५,९३,८४, ८२ संक्र०)। तत्रैकेन्द्रियादीनां नैरयिकवर्जितानां द्व्युत्तरशतसत्कर्मणां पञ्चनवतिसत्कर्मणां च तैजसकार्मणागुरुलघूपघातनिर्माणवर्णादिचतुष्कैकेन्द्रियजातिहुंडकसंस्थानौदारिकशरीरतिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीस्थावरबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरान्यतरशुभाशुभान्यतरदुर्भगानादेययशःकीर्तिपरा-घातोच्छ्वासातपोद्योतान्यतररूपामेकेन्द्रियप्रायोग्यां षड्विंशतिं बध्नतां द्व्युत्तरशतं पञ्चनवतिश्च तस्यामेव षड्विंशतौ संक्रामति। तथा तेषामेवैकेन्द्रियादीनां देववर्जानां त्रिनवतिसत्कर्मणां, देवनारकवर्जानां चतुरशीतिसत्कर्मणां च तामेव पूर्वोक्तां षड्विंशतिं बध्नतां त्रिनवतिश्चतुरशीतिश्च तस्यामेव षड्विंशतौ संक्रामति । तथा तेषामेवैकेन्द्रियादीनां देवनारकमनुष्यवर्जानां द्व्यशीतिसत्कर्मणां तामेव पूर्वोक्तां षड्विंशतिं बध्नतां द्व्यशीतिस्तस्यामेव षड्विंशतौ संक्रामति ।

×(य०उ०१३)तीर्थकरनामोपलक्षितसत्तास्थानरहितप्रथमचतुष्काध्रुवसत्तात्रिकलक्षणानि पञ्च सङ्क्रमस्थानानि षड्विंशत्यादिपतद्ग्रहेषु भवन्ति । तथा चाह—"ते च्चियेत्यादि" शेषेषु षड्विंशतिपञ्चविंशतित्रयोविंशतिलक्षणेषु पतद्ग्रहेषु तान्येव पूर्वोक्तानि द्व्युत्तरशतादीनि षण्णवतिरहितानि द्व्यशीतियुतानि पञ्च सङ्क्रमस्थानानि सङ्क्रामन्ति । तथाहि—द्व्युत्तरशतं पञ्चनवतिस्त्रिनवतिश्चतुरशीतिर्द्व्यशीतिश्च । इत्थं ह्यध्रुवसत्तात्रिकं पूर्यते । प्रथमचतुष्काच्च त्र्युत्तरशतषण्णवतिलक्षणस्थानद्वयं जिननामोपलक्षितमपगच्छतीति यथोक्तानि पञ्च भवन्ति ।

तथा पञ्चविंशतिपतद्ग्रहे तान्येव पञ्च संक्रमस्थानानि चिन्त्यन्ते–तत्रैकेन्द्रियपर्याप्तप्रायोग्यां पूर्वोक्तामेव षड्विंशतिमातपेनोद्योतेन वा रहितां पञ्चविंशतिं बध्नतामेकद्वित्रिचतुरिन्द्रियादीनां द्व्युत्तरशतपञ्चनवतित्रिनवतिचतुरशीतिद्व्यशीतिसत्कर्मणां यथासंख्यं तस्यामेव पञ्चविंशतौ द्व्युत्तरशतं पञ्चनवतिः त्रिनवतिः चतुरशीतिः द्व्यशीतिश्च संक्रामति । अथवाऽपर्याप्तविकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुजप्रायोग्यां तैजसकार्मणवर्णादिचतुष्कागुरुलघूपघातनिर्माणद्वीन्द्रियाद्यन्यतमजातिहुंडसंस्थानसेवार्तसंहननौदारिकशरीरौदारिकांगोपांगतिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरान्यतरशुभाशुभान्यतरदुर्भगानादेययशःकीर्तिलक्षणां पञ्चविंशतिं बध्नतामेकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियतिरश्चां द्व्युत्तरशतादिसत्कर्मणां पञ्चविंशतौ द्व्युत्तरशतादीनि पंच संक्रमस्थानानि संक्रामन्ति । तथाऽपर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यां वर्णादिचतुष्कागुरुलघूपघातनिर्माणतैजसकार्मणहुंडसंस्थानौदारिकशरीरैकेन्द्रियजातितिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीबादरसूक्ष्मान्यतरस्थावरपर्याप्तप्रत्येकसाधारणान्यतरास्थिराशुभदुर्भगानादेययशःकीर्तिलक्षणां त्रयोविंशतिं बध्नतामेकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियतिरश्चां द्व्युत्तरशतपञ्चनवतित्रिनवतिचतुरशीतिसत्कर्मणां यथासंख्यं द्व्युत्तरशतादीनि पञ्च संक्रमस्थानानि संक्रामन्ति ॥ २७ ॥ तदेवमुक्तः **प्रकृतिसंक्रमः** ॥

संप्रति स्थितिसंक्रमाभिधानावसरः । तत्र चैतेऽर्थाधिकाराः । तद्यथा—भेदो १, विशेषलक्षणं २, उत्कृष्टस्थितिसंक्रमणप्रमाणं ३, जघन्यस्थितिसंक्रमप्रमाणं ४, साद्यादिप्ररूपणा ५, स्वामित्वप्ररूपणा ६, चेति । तत्र भेदविशेषलक्षणयोः प्रतिपादनार्थमाह–

ठिइसंकमो त्ति वुच्चइ, मूलुत्तरपगईउ य जा हि ठिई । उव्वट्टियाउ ओवट्टिया, व पगइं निया वऽण्णं॥२८॥

गाथार्थः—मूलुत्तरपगईउ य=मूल अने उत्तरप्रकृतिओनी, जा हि ठिई=जे स्थिति तेनी, उव्वट्टिया उ=उद्वर्तना करवी, ओवट्टिया व=अपवर्तना करवी, पगइं निया वऽण्णं=अथवा अन्य प्रकृतिपणे परिणमाववी ते, ठिइसंकमोत्ति=स्थिति संक्रम, वुच्चइ=कहेवाय छे.२८

ठिइ त्ति–इह 'मूलुत्तरपगईउ' इत्यत्र षष्ठ्यर्थे पञ्चमी। ततोऽयमर्थः–हि स्फुटं या स्थितिर्मूलप्रकृतीनामष्टसंख्यानामुत्तरप्रकृतीनां वाऽष्टपञ्चाशदधिकशतसंख्यानां संबन्धिनी उद्वर्तिता ह्रस्वीभूता सती दीर्घीकृता, अपवर्तिता वा दीर्घीभूता सती ह्रस्वीकृता, अन्यां वा प्रकृतिं नीता पतद्ग्रहप्रकृतिस्थितिषु मध्ये नीत्वा निवेशिता स स्थितिसंक्रम उच्यते। एतदुक्तं भवति–द्विविधः स्थितिसंक्रमो मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रम उत्तरप्रकृतिस्थितिसंकमश्च। तत्र मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रमोऽष्टप्रकारः। तद्यथा–ज्ञानावरणीयस्य यावदन्तरायस्य। उत्तरप्रकृतिस्थितिसंक्रमोऽष्टपंचाशदधिकशतधा। तद्यथा–मतिज्ञानावरणीयस्य श्रुतज्ञानावरणीयस्य यावद्वीर्यान्तरायस्य। 'तदेवं मूलुत्तरपगईउ' इत्यनेन भेद उक्तः(१)। 'उव्वट्टिया व' इत्यादिना तु विशेषलक्षणं(२) त्रिप्रकारं। तत्र कर्मपरमाणूनां ह्रस्वस्थितिकालतामपहाय दीर्घकालतया व्यवस्थापनमुद्वर्तना(१)। कर्मपरमाणूनामेव दीर्घस्थितिकालतामपहाय ह्रस्वस्थितिकालतया व्यवस्थापनमपवर्तना(२)। यत्पुनः संक्रम्यमाणप्रकृतिस्थितीनां पतद्ग्रहप्रकृतौ नीत्वा निवेशनं तत्प्रकृत्यन्तरनयनं(३), स्थितीनां चान्यत्र निवेशनं स्थितियुक्तानां परमाणूनामवसेयं, स्थितेरन्यत्र नेतुमशक्यत्वात्×। इदं च विशेष-

×(य०उ०१४) अत्र कश्चिदाशङ्कते—'ननु सङ्क्रम्यमाणप्रकृतेर्दलिकं परमाण्वात्मकं यत्पतद्ग्रहप्रकृतिरूपतया परिणम्यते, नायं प्रकृतिसङ्क्रमः, किं तु प्रदेशसङ्क्रम एव। अथ प्रकृतिः स्वभावस्तत्सङ्क्रमः प्रकृतिसङ्क्रम इत्युच्यते तदयुक्तं, स्वभावस्यान्यत्र सङ्क्रमयितुमशक्यत्वात्। तत इत्थं विचार्यमाणः प्रकृतिसङ्क्रमो नोपपद्यते इति तत्प्रतिपादनं सकलमप्यभित्तिचित्रारोपणप्रायं। एवं स्थित्यनुभागसङ्क्रमावपि नोपपद्येते। स्थितिर्नाम नियतकालविशिष्टमवस्थानं। न च कालोऽन्यत्र सङ्क्रमयितुं शक्यते, अमूर्त्तत्वात्। अनुभागोऽपि रस उच्यते, स च परमाणूनां गुणः, गुणश्च गुणिनमन्तरेणान्यत्र नेतुमशक्यः, गुणिनां च परमाणूनां सङ्क्रमे प्रदेशसङ्क्रम एव प्रसज्यत इति न कश्चिदन्यः सङ्क्रमो युक्त इति'। अत्रोच्यते—'न हि वयं स्वभावस्थितिरसा विवक्षितपरमाणुभ्यः समाकृष्य परमाण्वन्तरेषु प्रक्षि-

लक्षणं सामान्यलक्षणे सत्येवावगन्तव्यं, न सर्वथा तदपवादेन, तेन मूलप्रकृतीनां परस्परं संक्रमप्रतिषेधात्, तासामन्यप्रकृत्यन्तरनयनलक्षणः स्थितिसंक्रमो न भवति, किं तु द्वावेव उद्वर्तनापवर्तनालक्षणौ संक्रमौ। उत्तरप्रकृतीनां तु त्रयोऽपि संक्रमा द्रष्टव्याः॥२८॥

प्यन्ते इत्येवं प्रकृतिसङ्क्रमादीनाचक्ष्महे, येन पूर्वोक्तदोषावकाशः स्यात्, किं तु स्वभावादित्रयाधारभूतपरमाणुरूपप्रदेशेषु परप्रकृतिषु सङ्क्रम्यमाणेषु सङ्क्रम्य च परप्रकृतिरूपतामापाद्यमानेषु पतद्ग्रहप्रकृतिरूपतापादनं प्रकृतिसङ्क्रमः, पतद्ग्रहप्रकृतिरूपतयैव नियतकालविशिष्टस्यावस्थानस्यापादनं स्थितिसङ्क्रमः, पतद्ग्रहप्रकृत्यनुयायिरसापादनं त्वनुभागसङ्क्रमः, परमाणूनां च प्रक्षेपणं प्रदेशसङ्क्रम इत्येवं स्वपरिणामविशेषरूपा एव प्रकृतिसङ्क्रमादय इष्यन्त इत्यदोष इति। अत एवैते परस्परविनाभाविनः। तदुक्तं पञ्चसङ्ग्रहमूलटीकायां— "अमी प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशेषु सङ्क्रमा बन्धा उदया वा समकालं प्रवर्त्तन्त इति"। केवलं युगपदभिधातुं न शक्यन्ते, वाचः क्रमवर्त्तित्वात्। ततो यो यदा सङ्क्रमे वक्तुमिष्यते स तदानीं बुद्ध्या पृथक्कृत्वा सप्रपञ्चमुच्यत इति सर्वमुपपन्नं'। ननु 'दलिकरसानां धर्मिद्वारा पृथिवीजलयोरिव मूर्त्तत्वादन्यभावसङ्क्रमणमस्तु, कालश्चामूर्त्त इति तस्यान्यभावसङ्क्रमणमयुक्तं,' 'मैवं, न खलु कालस्य सङ्क्रमणमस्माभिरिष्यते, किं तु स्थितेः, स्थितिश्चाप्रच्युतिलक्षणमवस्थानं, तच्च पूर्वमन्यप्रकृतिरूपतयाऽऽसीत्, सम्प्रति त्वन्यप्रकृतिरूपतया यदवस्थानापादनं स स्थितिसङ्क्रमः। न चायमनुपपन्नः, प्रत्यक्षसिद्धत्वात्। तथाहि—तृणादिपरमाणवः पूर्वं तृणादिरूपत्वेन स्थिताः, ततो लवणाकरेषु निपतिताः कालक्रमेण लवणरूपतयाऽवतिष्ठन्त इति। अस्तु वा स्थितिकालस्यैव सङ्क्रमणं, तदपि ऋतुसङ्क्रमणवददुष्टमेव। यथा हि वृक्षादिषु स्वभावतः क्रमेण देवतादिप्रयोगतो युगपदपि वा सर्वेऽपि ऋतवः सङ्क्रामन्ति, तत्तत्कार्यपुष्पफलादिदर्शनात्, तथेहापि जीवप्रयोगतः कर्मपरमाणुषु सातादिरूपताहेतुं कालमुपमृद्यासातादिरूपताहेतुः कालसङ्क्रमान्न विरुध्यत, इत्यदोष इति कृतं प्रसङ्गेन'।

तदेवं भेदविशेषलक्षणे प्रतिपाद्य संप्रत्युत्कृष्टस्थितिसंक्रमपरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—

तीसासत्तरि चत्ता—लीसावीसुदहिकोडिकोडीणं। जेट्ठा आलिगदुगहा, सेसाण वि आलिगतिगूणा(णो)॥२९॥

तीस त्ति—इह सर्वासां प्रकृतीनां बन्धमाश्रित्योत्कृष्टा स्थितिः प्रागेव बन्धनकरणे प्रतिपादिता। अत्र पुनः संक्रमे उत्कृष्टा स्थितिश्चिन्त्यमाना द्विधा प्राप्यते—बन्धोत्कृष्टा संक्रमोत्कृष्टा च। तत्र या बन्धादेव केवलादुत्कृष्टा स्थितिर्लभ्यते सा बन्धोत्कृष्टा। या पुनर्बन्धेऽबन्धे वा सति संक्रमादुत्कृष्टा स्थितिर्भवति सा संक्रमोत्कृष्टा। तत्र यासामुत्तरप्रकृतीनां स्वस्वमूलप्रकृत्यपेक्षया स्थितेर्न्यूनता न भवति, किं तु तुल्यतैव, ता बन्धोत्कृष्टा ज्ञातव्याः। ताः सप्तनवतिसंख्याः (९७)। तद्यथा—ज्ञानावरणपञ्चकं, दर्शनावरणनवकं, अन्तरायपञ्चकं, आयुश्चतुष्टयं, असातवेदनीयं, नरकद्विकं, तिर्यग्द्विकं, एकेन्द्रियजातिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, तैजससप्तकं, औदारिकसप्तकं, वैक्रियसप्तकं, नीलतिक्तवर्जमशुभवर्णसप्तकं, अगुरुलघु, पराघातं, उपघातं, उच्छ्वासातपोद्योतानि, निर्माणं, षष्ठं संस्थानं, षष्ठं संहननं, अशुभविहायोगतिः, स्थावरं, त्रसचतुष्कं, अस्थिरषट्कं, नीचैर्गोत्रं, षोडश कषायाः, मिथ्यात्वं च। सर्वसंख्यया सप्तनवतिः। अत्र नरतिर्यगायुषी यद्यपि स्वमूलप्रकृत्यपेक्षया तुल्यस्थितिके न भवतः, तथापि संक्रमोत्कृष्टत्वाभावात्ते बन्धोत्कृष्टे उक्ते। शेषास्त्वेकषष्टिप्रकृतयः(६१) संक्रमोत्कृष्टाः। ताश्चेमाः—सातवेदनीयं, सम्यक्त्वं, सम्यग्मिथ्यात्वं, नव नोकषायाः, आहारकसप्तकं, शुभवर्णाद्येकादशकं, नीलं, तिक्तं, देवद्विकं, मनुजद्विकं, द्वित्रिचतुरिन्द्रियजातयः, अन्तवर्जानि संस्थानानि,

---

गाथार्थः—तीसा=३०, सत्तरि=७०, चत्तालीसा=४०, वीसुदहिकोडिकोडीणं=अने २० कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थितिबंधवाळी प्रकृतिओनो, जेट्ठो=उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम, आलिगदुगहा=बे आवलिहीन उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण छे. सेसाणवि=बाकीनी प्रकृतिओनो आलिगतिगूणा=त्रण आवलिहीन जाणवो. २९

अन्तवर्जानि संहननानि, प्रशस्तविहायोगतिः, सूक्ष्मं, साधारणं, अपर्याप्तं, स्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तितीर्थकरोच्चैर्गोत्राणि च । तत्र बन्धोत्कृष्टानां मतिज्ञानावरणीयादिमिथ्यात्वषोडशकषायनरकद्विकादीनां यथाक्रमं त्रिंशत्सप्ततिचत्वारिंशद्विंशतिसागरोपमकोटीकोटीस्थितिकानां ज्येष्ठ उत्कृष्टः स्थितिसंक्रमः 'आ(व)लियदुगहत्ति' आवलिकाद्विकहीनः । तथाहि–स्थितिर्बद्धा सती बन्धावलिकायामतीतायां सत्यां संक्रामति । तत्राप्युदयावलिका सकलकरणायोग्येति कृत्वोदयावलिकात उपरितनी। ततो बन्धोत्कृष्टानां मतिज्ञानावरणीयानामुत्कृष्टः स्थितिसंक्रमो बन्धा(आ)वलिकाद्विकहीन एव प्राप्यते । इहोदयवतीनामनुदयवतीनां वा प्रकृतीनामुदयसमयादारभ्यावलिकामात्रा स्थितिरुदयावलिकेति पूर्वग्रन्थेषु व्यवह्रियते । तथा यद्यपि 'तीसासत्तरिचत्तालीसा' इत्यनेन ग्रन्थेनेह मिथ्यात्वस्य सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीस्थितिकस्योत्कृष्टतः स्थितिसंक्रम आवलिकाद्विकहीन उक्तस्तथाऽप्यन्तर्मुहूर्तोनोऽवगन्तव्यः । यतो मिथ्यात्वस्योत्कृष्टां स्थितिं बध्ध्वा जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तं कालं यावन्मिथ्यात्वे एवावतिष्ठते । ततः सम्यक्त्वं प्रतिपद्य मिथ्यात्वस्य स्थितिमन्तर्मुहूर्तोनां सम्यक्त्वे सम्यग्मिथ्यात्वे च संक्रमयति । ततोऽन्तर्मुहूर्तोन एवास्योत्कृष्टः स्थितिसंक्रमः । वक्ष्यति च–'मिच्छत्तमुक्कोसो' इत्यादि । इह पुनर्यत् सत्तरीत्युपादानं तदशेषाणामपि बन्धोत्कृष्टानां प्रकृतीनां व्याप्तिपुरःसरमविशेषेणावलिकाद्विकहीनोत्कृष्टस्थितिसंक्रमप्रदर्शनार्थं । 'सेसाणमा(व)लिगतिगूणो त्ति' शेषाणां संक्रमोत्कृष्टानामावलिकात्रिकहीन उत्कृष्टः स्थितिसंक्रमः । तथाहि–बन्धावलिकायामतीतायां सत्यामावलिकात उपरितनी स्थितिः सर्वाप्यन्यत्र प्रकृत्यन्तरे आवलिकाया उपरि संक्रामति । तत्र च संक्रान्ता सती आवलिकामात्रं कालं यावत्सकलकरणायोग्येति कृत्वा संक्रमावलिकायामतीतायां सत्यामुदयावलिकात उपरितनी स्थितिस्ततोऽप्यन्यत्र प्रकृत्यन्तरे संक्रामति ।

ततः संक्रमोत्कृष्टानामुत्कृष्टः स्थितिसंक्रम आवलिकात्रिकहीन एव। तद्यथा—नरकद्विकस्य विंशतिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणामुत्कृष्टां स्थितिं बध्ध्वा बन्धावलिकायामतीतायां सत्यामावलिकात उपरितनीं तां सर्वामपि स्थितिं मनुजद्विकं बध्नन् तत्र मनुजद्विके संक्रमयति, तत्र च संक्रान्ता सती आवलिकामात्रं कालं यावत्सकलकरणायोग्येति कृत्वा संक्रमावलिकायामतिक्रान्तायां सत्यामुदयावलिकात उपरितनीं तां सर्वामपि स्थितिं देवद्विकं बध्नन् तत्र संक्रमयति। एवमन्यासामपि संक्रमोत्कृष्टानामुत्कृष्टः स्थितिसंक्रम आवलिकात्रिकहीनो भावनीयः ॥२९॥

तदेवं यासां प्रकृतीनां बन्धे सति संक्रमादुत्कृष्टा स्थितिर्भवति, तासामेव तत् उत्कृष्टस्थितिसंक्रमपरिमाणमुक्तं। संप्रति पुनर्यासां बन्धेन विना संक्रमादेव केवलादुत्कृष्टा स्थितिर्लभ्यते, तासामुत्कृष्टस्थितिसंक्रमपरिमाणनिरूपणार्थमाह—

मिच्छत्तस्सुक्कासो, भिन्नमुहुत्तूणगो उ सम्मत्ते। मिस्सेवंतोकोडा–कोडी आहारतित्थयरे ॥ ३० ॥

मिच्छत्तस्स त्ति—मिथ्यात्वस्योत्कृष्टः स्थितिसंक्रमो भिन्नमुहूर्तोनोऽन्तर्मुहूर्तोनस्तथा सम्यक्त्वे सम्यक्त्वस्य मिश्रे मिश्रस्य चोत्कृष्टः स्थितिसंक्रमो भिन्नमुहूर्तोनः। तुशब्दस्याधिकार्थसंसूचनादावलिकाद्विकहीनश्च वेदितव्यः। इयमत्र भावना—दर्शनमोहनीयत्रितयसत्कर्मा मिथ्यादृष्टिरुत्कृष्टे संक्लेशे वर्तमानो मिथ्यात्वस्योत्कृष्टां स्थितिं बध्ध्वा ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रानन्तरं मिथ्यात्वात्

गाथार्थः—मिच्छत्तस्सुक्कोसो=मिथ्यात्वनो उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम, भिन्नमुहुत्तूणगो=अन्तर्मुहूर्त हीन उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण, सम्मत्ते मिस्सेवं=सम्यक्त्व मोहनीय अने मिश्रमोहनीयनो बे आवलि अने अन्तर्मुहूर्तहीन उत्कृष्टस्थिति प्रमाण, आहारतित्थयरे= आहारकद्विक अने जिननामनो अन्तोकोडाकोडी=अन्तःकोडाकोडी सागरोपम प्रमाण छे. ३०

प्रतिपत्त्य विशुद्धिमासादयन् सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते । ततो मिथ्यात्वस्योत्कृष्टां स्थितिं सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणामन्तर्मुहूर्तोनां सम्यक्त्वे सम्यग्मिथ्यात्वे च संक्रमयति । सा च संक्रान्ता सती संक्रमावलिकायामतीतायामुदयावलिकात उपरितनीं सम्यक्त्वस्थितिमपवर्तनाकरणेन स्वस्थाने संक्रमयति । सम्यग्मिथ्यात्वस्थितिमपि संक्रमावलिकायामतीतायामुदयावलिकात उपरितनीं सम्यक्त्वे संक्रमयति अपवर्तयति च । तदेवं मिथ्यात्वस्यान्तर्मुहूर्तोनः, सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोस्त्वन्तर्मुहूर्तावलिकाद्विकहीन ×उत्कृष्टः स्थितिसंक्रमः ।

इह तीर्थकरस्याहारकसप्तकस्य चोत्कृष्टः स्थितिबन्धोऽन्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणः, सत्कर्माप्येतेषामन्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणमेव, ततः संशयः 'किमेताः संक्रमोत्कृष्टा उत बन्धोत्कृष्टा' इति तदपनोदार्थमाह–'अंतोकोडाकोडीत्यादि' आहारके आहारकसप्तके तीर्थकरे च संक्रमतः स्थितिसत्कर्म अन्तःसागरोपमकोटीकोटी, अत एताः संक्रमोत्कृष्टाः । यद्यपि च बन्धेऽप्यन्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणं स्थितिसत्कर्माभिहितं, तथापि बन्धोत्कृष्टायाः स्थितेः सकाशात् संक्रमोत्कृष्टा स्थितिः संख्येयगुणा द्रष्टव्या । उक्तं च चूर्णौ—' बंधट्ठिईओ संतकम्मठिई संखिज्जगुणा ' । 'ननु नामकर्मण उत्कृष्टा स्थितिर्विंशति-

×(य०उ०१५)ननु दर्शनत्रयसत्कर्मा मिथ्यादृष्टिः स एव यः पूर्वं सम्यग्दृष्टिर्भूत्वा प्रतिपतितस्तस्य च मिथ्यात्वोत्कृष्टस्थितिबन्धो न संभवति, "बंधेण न वोलइ कयावि" इत्यागमाद्भिन्नग्रन्थेः पतितस्यापि कोटाकोट्यधिकबन्धनिषेधात्, ततः सर्वमिदं निर्मूलमिति चेन्न, "बंधेण न वोलइ" इत्यस्य सिद्धान्तमतत्वात्, कार्मग्रन्थिकैः सम्यग्दृष्टेः पतितस्य मिथ्यात्वमागतस्योत्कृष्टस्थितिबन्धस्याप्यभ्युपगमात्, तस्य तथाविधरसाभावादेव विशेषसमर्थनादिति न कश्चिद्दोषः ।

सागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा, तत आहारके तीर्थकरे च संक्रमादुत्कृष्टा स्थितिः प्राप्यमाणा बन्धावलिकोदयावलिकारहिता विंशतिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणैव लभ्यते, कथमुच्यते संक्रमतोऽप्युत्कृष्टा स्थितिरन्तः सागरोपमकोटीकोटीप्रमाणेति' ? 'तदयुक्तमभिप्रायापरिज्ञानात्। तथाहि—तीर्थकराहारकयोः प्रकृत्यन्तरस्य स्थितिः संक्रामति बन्धकाले नान्यदा, बन्धश्चान योर्यथाक्रमं विशुद्धसम्यग्दृष्टेः संयतस्य च, विशुद्धसम्यग्दृष्टीनां संयतानां च स्थितिसत्कर्म सर्वेषामपि कर्मणामायुर्वर्जानामन्तः-सागरोपमकोटीकोटीप्रमाणं नाधिकं। ततः संक्रमोऽप्येतावन्मात्र एव प्राप्यते नाधिक× इत्यदोषः॥ ३०॥

संप्रति सर्वासां प्रकृतीनां बन्धोत्कृष्टानां संक्रमोत्कृष्टानां वा संक्रमणकाले यावती स्थितिः प्राप्यते तावतीं निर्दिदिक्षुराह—

सव्वासिं जट्ठिइगो, आवलिगो सो अहाउगाणं तु। बंधुक्कोसुक्कोसो, साबाहठिईए जट्ठिइगो॥ ३१॥

सव्वासिं ति—सर्वासां प्रकृतीनां संक्रमो यत्स्थितिकः—संक्रमणकाले या स्थितिर्विद्यते सा यत्स्थितिः—इत्युच्यते। सा यस्य संक्रमस्यास्ति स संक्रमो यत्स्थितिकः। या स्थितिर्विद्यते यस्यासौ यत्स्थितिक इति बहुव्रीहिसमाश्रयणात्। सावलिक आवलिकया सहितो द्रष्टव्यः। एतदुक्तं भवति—यः प्रागुक्तः संक्रमः स आवलिकया सहितः सन् यावान् भवति तावती संक्रमकाले स्थितिरित्यर्थः। ततो बन्धोत्कृष्टानामावलिकाहीना संक्रमोत्कृष्टानां त्वावलिकाद्विकहीना संक्रमकाले सर्वा स्थि-

×(य०उ०१६) उक्तं च पञ्चसंग्रहे—"तित्थयराहाराणं संकमणे बंध संतएसुं पि। अंतोकोडाकोडी तहा वि ता संकमुक्कोसा॥१॥ एवइय संतया जं सम्मद्दिट्ठीण सव्वकम्मेसु त्ति"। "एवइयसंतय त्ति" एतावत्येवान्तःकोटाकोटीप्रमाणैव सत्ता।

गाथार्थः—सव्वासिं=सर्व प्रकृतिओनो, सावालिगो सो=आवलिका सहित ते संक्रम, जट्ठिइगो=यत्स्थितिसंक्रम जाणवो. अहा०सुक्कोसो=हवे आयुष्य तो बन्धोत्कृष्ट छे तेनी उत्कृष्ट, जट्ठिइगो=यत्स्थिति, साबाहट्ठिईए=अबाधाकाल सहित जाणवी. ३१

तिर्वेदितव्या । तथाहि–संक्लेशादिकारणवशत उत्कृष्टां स्थितिं बध्ध्वा बन्धावलिकायामतीतायामुदयावलिकात उपरितनीं स्थितिमन्यत्र प्रकृत्यन्तरे संक्रमयितुमारभते । ततो बन्धोत्कृष्टानामेकावलिकाहीना संक्रमकाले सर्वा स्थितिः प्राप्यते । संक्रमोत्कृष्टानां पुनर्बन्धावलिकासंक्रमावलिकयोरतीतयोरुदयावलिकातः परतो वर्तमानां स्थितिमन्यत्र संक्रमयति। तेन संक्रमोत्कृष्टानामावलिकाद्विकहीना संक्रमकाले सर्वा स्थितिरवाप्यते ।

अथायुषामुत्कृष्टा स्थितिः किं बन्धोत्कृष्टा उत संक्रमोत्कृष्टा? उच्यते–बन्धोत्कृष्टैव।तथा चाह–'अहाउगाणमित्यादि'आयुषामुत्कृष्टः स्थितिसंभवो बन्धोत्कृष्ट एव न संक्रमोत्कृष्टः । यतो नायुषां परस्परं संक्रमः"मोहदुगाउगमूलप्पगडीण न परोप्परंमि संकमणं" इति वचनात्। ' साबाहठिई इत्यादि ' आयुषां साबाधा अबाधासहिता या सर्वा स्थितिः सा यत्स्थितिरवगन्तव्या । केवलं "बंधुक्कोसाणं आवलिगूणा ठिई जट्ठिइ" इतिवचनात् बन्धावलिकोना द्रष्टव्याः । तथाहि–आयुर्बन्धे प्रवर्तमान एव प्रथमसमये यद्बद्धं दलिकं तद्बन्धावलिकातीतं सदुद्वर्तयंति।तत उद्वर्तनारूपसंक्रमे बन्धावलिकोना साबाधा यत्स्थितिः प्राप्यते ।अथवाऽपवर्तनापि निर्व्याघातभाविन्यायुषो बन्धावलिकायामतीतायां सर्वदैव प्रवर्तते।×ततस्तामधिकृत्य यथोक्ता यत्स्थितिरवसेया॥३१॥

×(य०उ०१७) इहायुषो व्याघातभाविन्यपवर्त्तना नियमादुदये सति प्रवर्तते, ततो न तामधिकृत्येह यत्स्थितिनिरूपणं । या तु निर्व्याघातभाविन्यपवर्तना साऽनुदयेऽपि बन्धावलिकातिक्रमे सर्वदा प्रवर्तते । अपि च बन्धे प्रवर्तमान एव सति प्रथमादिसमयबद्धानां लतानां बन्धावलिकातिक्रमे उद्वर्तनापि भवति, ततो निर्व्याघातभाव्यपवर्त्तनारूपे उद्वर्तनारूपे च स्वस्थानसंक्रमे यत्स्थितिरायुष आवलिकाहीना साबाधा सर्वा स्थितिर्भावनीया । तदेवमुक्तमुत्कृष्टस्थितिसंक्रमपरिमाणम् ॥

तदेवमुक्तमुत्कृष्टस्थितिसंक्रमपरिमाणं (३)। संप्रति जघन्यस्थितिसंक्रमपरिमाणप्रतिपादनावसरः। जघन्यस्थितिसंक्रमश्च द्विधा–स्वप्रकृतौ परप्रकृतौ च। तत्र स्वप्रकृतौ जघन्यस्थितिसंक्रममप्रतिपादनार्थमाह—

आवरणविग्घदंसण-चउक्कलोभंतवेयगाऊणं। एगा ठिई जहन्नो, जट्ठिई समयाहिगावलिगा ॥ ३२ ॥

आवरण त्ति–पञ्चानां ज्ञानावरणीयप्रकृतीनां, 'विग्घत्ति' पञ्चानामन्तरायप्रकृतीनां, चतसृणां दर्शनावरणीयप्रकृतीनां चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणलक्षणानां, संज्वलनलोभस्य, वेदकसम्यक्त्वस्य, चतुर्णां चायुषां, सर्वसंख्यया (२०) विंशतिप्रकृतीनां आत्मीयात्मीयसत्ताव्यवच्छेदसमये समयाधिकावलिकाशेषायां स्थितावुदयावलिका सर्वकरणायोग्येति कृत्वोदयावलिकात उपरितनी समयमात्रा स्थितिरपवर्तनासंक्रमेणाधस्तने उदयावलिकात्रिभागे समयाधिके संक्रामति। तदा च सर्वस्थितिपरिमाणं समयाधिकावलिका। तथा चाह–'जट्ठिइ' इत्यादि ॥ ३२ ॥

निद्दादुगस्स एक्का, आवलिगदुगं असंखभागो य। जट्ठिइ हासच्छक्के, संखिज्जाओ समाओ य ॥३३॥

निद्द त्ति– निद्राद्विकस्य निद्राप्रचलालक्षणस्य जघन्यः स्थितिसंक्रमः स्वसंक्रमान्ते स्वस्थितेरुपरितनी एका समयमात्रा

गाथार्थः—आवरण०गाऊणं=५ ज्ञानावरण, ५ अन्तराय, ४ दर्शनावरण, संज्वलन लोभ, वेदकसमकित, अने ४ आयुष्यनी, एगा ठिइ=एक समय प्रमाण, जहन्नो=जघन्य स्थितिसंक्रम, जट्ठिइ समयाहिगावलिया=समयाधिक आवलिका प्रमाण यत्स्थिति छे. ३२ निद्दादुगस्स=निद्राद्विकनो, एक्का=एक समय प्रमाण जघन्य स्थितिसंक्रम, जट्ठिइ=यत्स्थिति, आवलिगदुगं असंखभागो य=आवलिना असंख्यातमा भागाधिक बे आवलि प्रमाण छे. हासच्छक्के=हास्यषट्कने विषे, संखिज्जाओ समाओ य=संख्याता वर्ष प्रमाण जघन्य

स्थितिः, सा आवलिकाया अधस्तने त्रिभागे निक्षिप्यते । तदानीं च यत्स्थितिः सर्वा स्थितिः आवलिकाद्विकं तृतीयस्याश्चावलिकाया असंख्येयो भागः । अत्र वस्तुस्वभाव एष यन्निद्राद्विकस्यावलिकाऽसंख्येयभागाधिकावलिकाद्विकशेषायां स्थितावुपरितनी समयमात्रैका स्थितिः संक्रामति, न पुनर्मतिज्ञानावरणीयादीनामिव समयाधिकावलिकाशेषायामिति । संप्रति यासां परप्रकृतिषु संभवी जघन्यस्थितिसंक्रमस्ताः प्रतिपादयति–' हासच्छक्के ' इत्यादि, हास्येनोपलक्षितं षट्कं हास्यषट्कं हास्यरत्यरतिभयशोकजुगुप्सालक्षणं, तस्य क्षपकेणापवर्तनाकरणेन संख्येयवर्षप्रमाणा स्थितिः कृता । ततः सा स्वनिर्लेपनावसरे संज्वलनक्रोधे प्रक्षिप्यमाणा जघन्यः स्थितिसंक्रमः ॥ ३३ ॥

सोणमुहुत्ता जट्ठिइ, जहन्नबंधो उ पुरिससंजलणे । जट्ठिइ सगऊणजुत्तो,आवलीगदुगूणओ तत्तो ॥ ३४ ॥

सोणमुहुत्त त्ति–संक्रमणकाले सैव संख्येयवर्षप्रमाणा स्थितिःसोनमुहूर्ताऽन्तर्मुहूर्तेनाभ्यधिका यत्स्थितिःसर्वा स्थितिः।तथाहि–अन्तरकरणे वर्तमानस्तां संख्येयवर्षप्रमाणां स्थितिं संज्वलनक्रोधे संक्रमयति, अन्तरकरणे च कर्मदलिकं न वि(वे)द्यते, किं तु तत ऊर्ध्वं, ततोऽन्तरकरणकालेनाभ्यधिका संख्येयवर्षप्रमाणा स्थितिर्हास्यषट्कस्य जघन्यस्थितिसंक्रमकाले यत्स्थितिः। 'जहन्नबंधो' इत्यादि, पुरुषवेदस्य संज्वलनानां च यो जघन्यः स्थितिबन्धः प्रागुक्तः, तद्यथा–पुरुषवेदस्याष्टौ संवत्सराणि, संज्व-

---

स्थितिसंक्रम जाणवो. ३३ । सोणमुहुत्ता जट्ठिइ=ते (संख्याता वर्ष) अन्तर्मुहूर्ताधिक (हास्यषट्कनी) यत्स्थिति छे. उ=वळी, पुरिससंजलणे=पुरुषवेद अने संज्वलनत्रिकने विषे, जहन्नबंधो=(अबाधा रहित) जघन्य स्थितिबन्ध प्रमाण जघन्य स्थितिसंक्रम छे. जट्ठिइ=यत्स्थिति, सगऊणजुत्तो=स्व अबाधायुक्त, तत्तो=तेमांथी (जघन्य स्थितिबन्धथी) आवलिगदुगूणओ=बे आवलिका हीन प्रमाण छे.३४

लनक्रोधस्य मासद्वयं, संज्वलनमानस्य मासः, संज्वलनमायाया अर्धमासः, स एव जघन्यः स्थितिबन्धोऽबाधाकालोनस्तेषां जघन्यः स्थितिसंक्रमः । अबाधारहिता हि स्थितिरन्यत्र संक्रामति, तत्रैव कर्मदलिकसंभवात्, 'अबाधाकालोना कर्मस्थितिः कर्मनिषेकः' इति वचनात्, जघन्यस्थितिबन्धे चाऽबाधाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणा । न च जघन्यस्थितिसंक्रमणकालेऽबाधाकालमध्ये प्राग्बद्धं सत्कर्म प्राप्यते, तस्य तदानीं सर्वस्यापि क्षीणत्वात् । ततोऽन्तर्मुहूर्तहीन एवैतेषां पुरुषवेदादीनां स्वस्वो जघन्यस्थितिबन्धो जघन्यस्थितिसंक्रमः, तदानीं चैतेषां यत्स्थितिः सर्वा स्थितिः स्वकीयेनोनेनाबाधारूपान्तर्मुहूर्तलक्षणेन युक्तोऽबाधाकालसहित इत्यर्थः, जघन्यः स्थितिबन्धः । ततः पुनरप्यावलिकाद्विकेनोनो हीनः सन् द्रष्टव्यः । एतदुक्तं भवति—जघन्यस्थिति संक्रमेऽबाधाकालः प्रक्षिप्यते । तत्प्रक्षेपानन्तरं चावलिकाद्विकं ततोऽपसार्यते । तदुत्सारणे च कृते यावती स्थितिर्भवति, एतावती जघन्यस्थितिसंक्रमकाले सर्वा स्थितिः । आवलिकाद्विकं कस्मादुत्सार्यत इति चेदुच्यते—बन्धव्यवच्छेदानन्तरं बन्धावलिकायामतीतायां चरमसमयबद्धाः पुरुषवेदादिप्रकृतिलताः संक्रमयितुमारब्धाः । आवलिकामात्रेण च कालेन ताः संक्रम्यन्ते । संक्रमावलिकाचरमसमये च जघन्यः स्थितिसंक्रमः प्राप्यते । ततो बन्धावलिकासंक्रमावलिकारहित एवाबाधासहितो जघन्यः स्थितिबन्धो जघन्यस्थितिसंक्रमकाले सर्वा स्थितिः ॥३४॥

संप्रति केवलिसत्कर्मणां जघन्यस्थितिसंक्रमप्ररूपणार्थमाह—

जोगंतियाण अंतो-मुहुत्तिओ सेसियाण पल्लस्स । भागो असंखियतमो, जट्ठिइगो आलिगाइ सह ॥३५॥

गाथार्थः—जोगंतियाण=सयोगी गुणठाणे संक्रमान्त प्रकृतिओनो जघन्य स्थितिसंक्रम, अंतोमुहुत्तिओ=(उदयावलिहीन) अन्तर्मुहूर्त प्रमाण छे. सेसियाण=बाकीनी प्रकृतिओनो जघन्यस्थिति संक्रम, पल्लस्स भागो असंखियतमो=पल्योपमना असंख्यातमा

जोगंतियाण त्ति–योगिनि सयोगिकेवलिनि संक्रममाश्रित्यान्तः पर्यन्तो यासां ता योग्यन्तिकाः नरकद्विकतिर्यग्द्विकपञ्चेन्द्रियजातिवर्जशेषजातिचतुष्टयस्थावरसूक्ष्मसाधारणातपोद्योतवर्जाः (१३) शेषा नाम्नो नवतिप्रकृतयः (९०) सातासातवेदनीयोच्चैर्गोत्रनीचैर्गोत्राणि (९४) च, एतासां सयोगिकेवलिचरमसमये सर्वापवर्तनयाऽऽन्तर्मुहूर्तिकी स्थितिर्भवति। सा चापवर्त्यमाना उदयावलिकारहिता जघन्यस्थितिसंक्रमः, उदयावलिका सकलकरणायोग्येति कृत्वा नापवर्त्यते, तया चावलिकया सहिताऽपवर्तनारूपजघन्यस्थितिसंक्रमकाले तासां यत्स्थितिः। नन्वासां प्रकृतीनामयोगिकेवलिनि समयाधिकावलिकाशेषायां स्थितौ वर्तमानो जघन्यः स्थितिसंक्रमः कस्मान्नाभिधीयते, क्षीणकषाय इव मतिज्ञानावरणीयादीनामिति ? उच्यते–अयोगिकेवली भगवान् सकलसूक्ष्मबादरयोगप्रयोगरहितो मेरुरिव निष्प्रकंपो नैकमप्यष्टानां करणानां मध्ये करणं प्रवर्तयति, निष्क्रियत्वात्। केवलमुदयप्राप्तानि वेदयते। ततः सयोगिकेवलिन एवैतासां जघन्यः स्थितिसंक्रमः प्राप्यते। 'सेसियाणेत्यादि' उक्तशेषाणां प्रकृतीनां स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वानन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणनपुंसकस्त्रीवेदनरकद्विकतिर्यग्द्विकपञ्चेन्द्रियजातिवर्जशेषजातिचतुष्टयस्थावरसूक्ष्मातपोद्योतसाधारणलक्षणानां (३२) द्वात्रिंशत्प्रकृतीनामात्मीयात्मीयक्षपणकाले यश्चरमः संछोभः पल्योपमासंख्येयभागमात्रः स जघन्यः स्थितिसंक्रमः। यत्स्थितिकस्तु सर्वस्थितियुक्तस्तु स एवावलिकया सह युक्तो वेदितव्यः। अयमिह संप्रदायः–स्त्रीनपुंसकवेदवर्जानां प्रकृतीनामेकामधस्तादावलिकां मुक्त्वाशेषमुपरितनं पल्योपमासंख्येयभागमात्रं चरमखंडमन्यत्र संक्रमयति। ततस्तासां जघन्यस्थितिसंक्रमकाले यत्स्थितिः स एव जघन्यस्थितिसंक्रम आवलिकयाऽभ्यधिको वेदितव्यः। स्त्रीनपुंसकवेदयोस्त्वन्तर्मुहूर्तेनाभ्यधिको यतस्तयोश्चरमं स्थितिखंडमन्तरकरणे स्थितः

भाग प्रमाण छे. आलिगाइ सह=आवलिका सहित, जघन्यस्थिति संक्रम प्रमाण, जट्ठिइगो=यत्स्थिति छे. ३२

सन् संक्रमयति । अन्तरकरणे च कर्मदलिकं न वि(वे)द्यते, किं तु तत ऊर्ध्वं, अन्तरकरणं चान्तर्मुहूर्तप्रमाणं । ततोऽन्तर्मुहूर्तयुक्तो जघन्यस्थितिसंक्रमस्तयोर्यत्स्थितिरवसेया । शेषाणां तु प्रकृतीनामन्तरकरणं न भवति, ततस्तासामावलिकायुक्त एव यत्स्थितिः ॥३५॥ तदेवमुक्तं जघन्यस्थितिसंक्रमपरिमाणं (४) ॥

संप्रति साद्यनादिप्ररूपणावसरः । सा च द्विधा–मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां च। तत्र मूलप्रकृतीनां साद्यनादिप्ररूपणार्थमाह

मूलठिई अजहन्नो, सत्तण्ह तिहा चउव्विहो मोहे । सेसविगप्पा तेसिं, दुविगप्पा संकमे होंति ॥३६॥

मूलठिइ त्ति–इह जघन्यादन्यत्सर्वमजघन्यं यावदुत्कृष्टं । उत्कृष्टादन्यत्सर्वमपि यावज्जघन्यं तावदनुत्कृष्टं । तत्र मोहनीयवर्जानां सप्तानां कर्मणामजघन्यस्थितिसंक्रमस्त्रिधा । तद्यथा–अनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्च । तथाहि–ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणां क्षीणकषायस्य समयाधिकावलिकाशेषायां स्थितौ वर्तमानस्य जघन्यः स्थितिसंक्रमो भवति । नामगोत्रवेदनीयायुषां तु सयोगिकेवलिचरमसमयेऽन्तर्मुहूर्तप्रमाण आवलिकारहितो जघन्यः स्थितिसंक्रमः । स च सादिरध्रुवश्च । तस्मादन्यः सर्वोऽपि स्थितिसंक्रमोऽजघन्यः । स चानादिः, ध्रुवोऽभव्यानां, भव्यानामध्रुवः, । 'चउव्विहो मोहेत्ति' मोहे मोहनीयेऽजघन्यः स्थितिसंक्रमश्चतुर्विधः।तद्यथा–सादिरनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्च । तथाहि–मोहनीयस्य जघन्यः स्थितिसंक्रमः सूक्ष्मसंपरायस्य क्षपकस्य समयाधिकावलिकायां शेषायां स्थितौ, ततोऽसौ सादिरध्रुवश्च । तस्माच्च जघन्यादन्यः सर्वोऽप्यजघन्यः । स च क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशा-

---

गाथार्थः––संकमे=संक्रमने विषे, सत्तण्ह० अजहन्नो=सात मूल कर्मनो अजघन्य स्थितिसंक्रम, तिहा=त्रण प्रकारे छे, मोहे=मौहनीयनो अजघन्य, चउव्विहो=चार प्रकारे छे. तेसिं=तेमना, सेसविगप्पा=बाकीना विकल्पो, दुविगप्पा=बे प्रकारे, होंति=होय छे.३६

न्तमोहगुणस्थानके न भवति, ततः प्रतिपाते च भवति, ततोऽसौ सादिः, तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः, अध्रुवध्रुवौ भव्याभव्यापेक्षया । शेषविकल्पा उत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्यलक्षणास्तेषां कर्मणां संक्रमे संक्रमविषये द्विविकल्पा भवन्ति । तद्यथा—सादयोऽध्रुवाश्च । तथाहि—य एवोत्कृष्टां स्थितिं बध्नाति स एवोत्कृष्टं स्थितिसंक्रमं करोति, उत्कृष्टां च स्थितिं बध्नाति उत्कृष्टे संक्लेशे वर्तमानः । न चोत्कृष्टः संक्लेशः सर्वदैव लभ्यते, किं त्वन्तरान्तरा, शेषकालं त्वनुत्कृष्टः । तत एतौ द्वावपि साद्यध्रुवौ। जघन्यश्च साद्यध्रुवः प्रागेव भावितः ॥३६॥

संप्रत्युत्तरप्रकृतीनां साद्यनादिप्ररूपणार्थमाह—

ध्रुवसंतकम्मिगाणं, तिहा चउद्धा चरित्तमोहाणं । अजहन्नो सेसेसु य, दुहेतरासिं च सव्वत्थ ॥ ३७ ॥

ध्रुव त्ति—ध्रुवं सत्कर्म यासां ता ध्रुवसत्कर्मिकास्त्रिशदुत्तरशतसंख्याः । तथाहि—नरकद्विकमनुजद्विकदेवद्विकवैक्रियसप्तकाहारकसप्तकतीर्थकरनामसम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वोच्चैर्गोत्रायुश्चतुष्टयलक्षणा(२८)अष्टाविंशतिसंख्या अध्रुवसत्कर्मिकाः प्रकृतयस्ता अष्टापञ्चाशदधिकात् शतादपनीयन्ते । ततः शेषं त्रिंशदुत्तरमेव शतं (१३०) ध्रुवसत्कर्मिकाणां भवति । तस्मादपि चारित्रमोहनीयप्रकृतयः पञ्चविंशतिसंख्या अपनीयन्ते, तासां पृथग्वक्ष्यमाणत्वात् । ततः शेषस्य पञ्चोत्तरशतस्य(१०५) स्वस्वक्षपण-

---

गाथार्थः—ध्रुवसंतकम्मिगाणं=ध्रुवसत्ता प्रकृतिओनो, अजहन्नो=अजघन्य स्थितिसंक्रम, तिहा=त्रण प्रकारे छे. चरित्तमोहाणं= चारित्र मोहनीयनो अज०संक्रम, चउद्धा=चार प्रकारे, सेसेसु य=उक्त प्रकृतिओना शेष स्थितिसंक्रमोमां, दुहेतरासिं च सव्वत्थ= अने इतर (अध्रुवसत्ताक) प्रकृतिओना, सव्वत्थ=सर्व स्थितिसंक्रमोमां बे प्रकार (सादि अध्रुव) जाणवा. ३७

पर्यवसाने जघन्यः स्थितिसंक्रमो भवति । स च सादिरध्रुवश्च । ततोऽन्यः सर्वोऽप्यजघन्यः । स चानादिः, अध्रुवध्रुवौ भव्याभव्यापेक्षया । चारित्रमोहनीयप्रकृतीनां पञ्चविंशतिसंख्यानामजघन्यः स्थितिसंक्रमश्चतुर्धा । तद्यथा—सादिरनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्च । तथाहि—उपशमश्रेण्यामुपशान्तौ सत्यां संक्रमाभावः, उपशमश्रेणितः प्रच्यवने च पुनरप्यजघन्यं स्थितिसंक्रममारभते, ततोऽसौ सादिः, तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः, अध्रुवध्रुवौ भव्याभव्यापेक्षया । 'सेसेसु य दुहा' शेषेषूत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्येषु द्विधा प्ररूपणा कर्तव्या । तद्यथा—सादिरध्रुवश्च । तत्रोत्कृष्टानुत्कृष्टयोर्यथा मूलप्रकृतिषु भावना कृता तथात्रापि कर्तव्या । जघन्यस्थितिसंक्रमः स्वस्वक्षयावसरे प्राप्यते, ततोऽसौ सादिरध्रुवश्च । 'इयरासिमित्यादि' इतरासामध्रुवसत्कर्मणां पूर्वोक्तानामष्टाविंशतिसंख्यानां सर्वत्रापि सर्वेष्वपि जघन्याजघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टेषु द्विधा प्ररूपणा कर्तव्या । तद्यथा—सादिरध्रुवश्च । सा च साद्यध्रुवताऽध्रुवसत्कर्मत्वादेव परिभावनीया (५) ॥ ३७ ॥

संप्रति क्रमप्राप्तं स्वामित्वमभिधानीयं । तच्च द्वेधा—उत्कृष्टस्थितिसंक्रमस्वामित्वं जघन्यस्थितिसंक्रमस्वामित्वं च । तत्रोत्कृष्टस्थितिसंक्रमस्वामित्वं प्रतिपिपादयिषुराह—

बन्धाओ उक्कोसो, जासिं गंतूण आलिगं परओ। उक्कोससामिओ संकमाउ(मेण)जासिं दुगं तासिं ॥३८॥

बंधाउ त्ति—यासां प्रकृतीनां बन्धात् बन्धनात् उत्कृष्टः स्थितिबन्धो भवति तासां ते एवोत्कृष्टस्थितिबन्धका देवनैरयिकति

गाथार्थः—जासिं=जे प्रकृतिओनो, बंधाओ=बन्धथी, उक्कोसो=उत्कृष्ट स्थितिबन्ध छे तेना बन्धक, आलिगं गंतूण=आवलिका अतिक्रमे थके, परओ=पछी, उक्कोससामिओ=उत्कृष्ट स्थिति संक्रमना स्वामी छे, जासिं संकमाओ=जे प्रकृतिओनी संक्रमथी उत्कृष्ट स्थिति छे, तासिं=ते प्रकृतिओना, दुगं=बे आवलिका अतिक्रमे ते स्थितिसत्तावाळा जीवो उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमना स्वामी छे.३८

र्येङ्मनुष्याः । 'गंतूण आलिगं परउ त्ति' बन्धावलिकां गत्वाऽतिक्रम्य परतो बन्धावलिकायामतीतायामित्यर्थः । उत्कृष्टस्वामिन उत्कृष्टस्थितिसंक्रमस्वामिन उत्कृष्टां स्थितिं संक्रमयन्तीत्यर्थः । यासां पुनः प्रकृतीनामुत्कृष्टा स्थितिः संक्रमेण प्राप्यते तासां द्विकं बन्धावलिकासंक्रमावलिकालक्षणं गत्वाऽतिक्रम्य परत उत्कृष्टस्वामिनः, बन्धावलिकासंक्रमावलिकयोरतीतयोरुत्कृष्टस्थितिसंक्रमस्वामिनो भवन्तीत्यर्थः ॥ ३८ ॥

सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोरुत्कृष्टस्थितिसंक्रमस्वामिनमाह—

तस्संतकम्मिगो बंधि–ऊण उक्कोसगं मुहुत्तंतो । सम्मत्तमीसगाणं, आवलिया सुद्धदिट्ठी उ ॥ ३९ ॥

तस्संतकम्मिगो त्ति–तत्सत्कर्मा सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वसत्कर्मा मिथ्यादृष्टिरुत्कृष्टां स्थितिं सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणां बध्ध्वा ततोऽन्तर्मुहूर्तादनन्तरं मिथ्यात्वात् प्रतिपत्य सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते । ततोऽसौ शुद्धदृष्टिः सम्यग्दृष्टिरन्तर्मुहूर्तोनामुत्कृष्टां मिथ्यात्वस्थितिं सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः संक्रमयति । ततः संक्रमावलिकायामतीतायामुदयावलिकात उपरितनीं सम्यक्त्वस्थितिमपवर्तनाकरणेन स्वस्थाने संक्रयमति । सम्यग्मिथ्यात्वस्थितिमपि संक्रमावलिकायामतीतायामुदयावलिकात उपरितनीं सम्यक्त्वे संक्रमयति, अपवर्तयति च । तत एवं तिसृणामपि दर्शनमोहनीयप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिसंक्रमस्वामी सम्यग्दृष्टिरेवेति ॥ ३९ ॥

तदेवमुक्त उत्कृष्टस्थितिसंक्रमस्वामी, संप्रति जघन्यस्थितिसंक्रमस्वामिनमाह–

गाथार्थः—तस्संतकम्मिगो=तेनी(समकितमो० अने मिश्रमो०नी)सत्तावाळो, उक्कोसगं बंधिऊण=मिथ्यात्वनी उत्कृष्ट स्थिति बांधीने, सुद्धदिट्ठी उ=विशुद्ध सम्यक्त्वी थको, मुहुत्तंतो=अन्तर्मुहूर्तहीन मिथ्यात्वस्थितिने संक्रमावे छे. सम्मत्तमीसगाणं=समकितमो० अने मिश्रमो०नी, आवलिया=आवलिकाहीन स्थितिने संक्रमावे ३९

दंसणचउक्कविग्घा–वरणं समयाहिगालिगा छउमो । निद्दाणावलिगदुगे, आवलियअसंखतमसेसे ॥ ४० ॥

दंसण त्ति–चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणीयानां 'विग्घ त्ति' पञ्चानामन्तरायप्रकृतीनां पञ्चानां च ज्ञानावरणीयप्रकृतीनां जघन्यस्थितिसंक्रमस्वामी 'छउमो त्ति' क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थः स्वगुणस्थानकस्य समयाधिकावलिकाशेषे वर्तमानः । तथा निद्रयोर्निद्राप्रचलयोः स एव क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थो द्वयोरावलिकयोः शेषयोस्तृतीयस्याश्चावलिकाया असंख्येयतमे भागे शेषे वर्तमानो जघन्यस्थितिसंक्रमस्वामी भवति ॥ ४० ॥

वेदकसम्यक्त्वस्य जघन्यस्थितिसंक्रमस्वामिनमाह—

समयाहिगालिगाए, सेसाए वेयगस्स कयकरणे । सक्खवगचरमखंडग–संछुभणा दिट्ठिमोहाणं ॥ ४१ ॥

समय त्ति–दर्शनमोहनीयक्षपको मनुष्यो जघन्यतोऽपि वर्षाष्टकादुपरि वर्तमानो मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वे क्षपयित्वा सम्यक्त्वं च सर्वापवर्तनयाऽपवर्त्य सम्यक्त्वं वेदयमानस्ततः सम्यक्त्वे क्षपितशेषे सति कश्चिच्चतसृणां गतीनामन्यतमस्यां गतौ मयाति । ततश्चतुर्गतिकानामन्यतमः सम्यक्त्वस्य समयाधिकावलिकाशेषायां स्थितौ वर्तमानः 'कयकरणो त्ति' कृतकरणः क्षपण-

---

गाथार्थः–दंसण०वरणं=४दर्शनावरणीय, ५अन्तराय अने ५ज्ञानावरणीयनी, समयाहिगालिका=समयाधिक आवलिका प्रमाण स्थिति शेष रहे, निद्दाण=अने निद्राद्विकनी, आवलिग०सेसे=आवलिकाना असंख्यातमा भागाधिक बे आवलि शेष रहे थके, छउमो=(क्षीणकषाय) छद्मस्थ जघन्य स्थिति संक्रमना स्वामी छे. ४० । वेदगस्स=समकितमो०नी, समयाहिगालिगाए=समयाधिक आवलिका, सेसाए=शेष रहे थके, कयकरणे=कृतकरणजीवो समकित मोहनीयना अने दिट्ठिमोहाणं=मिथ्यात्व तथा मिश्रमो०ना, सक्खवग०संछुभणा=ते ते प्रकृतिना चरम खंडने प्रक्षेपतां जघन्य स्थिति संक्रमना स्वामी जाणवा. ४१

करणेऽभ्युद्यतो जघन्यस्थितिसंक्रमस्वामी भवति। मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वयोर्जघन्यस्थितिसंक्रमस्वामिनमाह–'सक्खवगेत्यादि' दृष्टिमोहयोर्मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः क्षपणकाले यच्चरमखंडं संछुभणं सर्वापवर्तनेनापवर्त्य परस्थाने पल्योपमासंख्येयभागमात्रचरमखंडे(ड)प्रक्षेपणं तत्र वर्तमानो मनुष्योऽविरतसम्यग्दृष्टिर्देशविरतः प्रमत्तोऽप्रमत्तो वा जघन्यस्थितिसंक्रमस्वामी भवति॥४१॥

समउत्तरालिगाए, लोभे सेसाए सुहुमरागस्स। पढमकसायाण विसंजोयणसंछोभणाए उ॥ ४२॥

समउत्तरेति–सूक्ष्मसंपरायस्य स्वगुणस्थानकस्य समयाधिकावलिकाशेषायां स्थितौ वर्तमानस्य लोभे लोभस्य जघन्यः स्थितिसंक्रमो भवति। इदमिह तात्पर्यम्–सूक्ष्मसंपरायः स्वगुणस्थानकस्य समयाधिकावलिकाशेषायां स्थितौ वर्तमानो लोभसत्कजघन्यस्थितिसंक्रमस्वामी भवति। अनन्तानुबन्धिनां जघन्यस्थितिसंक्रमस्वामिनमाह–'पढमेत्यादि' प्रथमकषायाणामनन्तानुबन्धिनां विसंयोजने विनाशने या चरमा पल्योपमासंख्येयभागमात्रा संछोभणा प्रक्षेपणं तत्र वर्तमानश्चतुर्गतिकानामन्यतमः सम्यग्दृष्टिर्जघन्यस्थितिसंक्रमस्वामी भवति॥ ४२॥

चरिमसजोगे जा अत्थि, तासि सो चेव सेसगाणं तु। खवगक्कमेण अनियट्टिबायरो वेयगो वेए॥ ४३॥

चरिमत्ति–या(स)योग्यन्तिकाः प्रकृतयश्चतुर्नवतिसंख्याः प्रागुक्तास्तासां स एव सयोगिकेवली चरमापवर्तने वर्तमानो जघन्यस्थितिसंक्रमस्वामी भवति। शेषप्रकृतीनां जघन्यस्थितिसंक्रमस्वामिनमाह—'सेसगाणमित्यादि' शेषाणां स्त्यानर्द्धित्रिकनामत्रयोदशकाष्टकषायनवनोकषायसंज्वलनक्रोधमानमायालक्षणानां(३६)षट्त्रिंशत्प्रकृतीनां क्षपणक्रमेण क्षपणपरिपाट्या चरमे

गाथार्थः—समउत्तरालिगाए=समयाधिक आवलिका प्रमाण, लोभे सेसाए=लोभनी स्थिति शेष रहे थके, सुहुमरागस्स=सूक्ष्म संपरायी लोभनो ज०स्थिति संक्रमनो स्वामी छे. तथा पढमकसायाण=अनंतानुबंधि कषायनो, विसंजोयणसंछोभणाए उ=विसंयोजना करतां अन्त्य प्रक्षेप करनार ज०स्थितिसंक्रमनो स्वामी छे. ४२। चरिमसजोगे जा अत्थि=सयोगी केवलीने जे प्रकृतिओनो

पल्योपमासंख्येयभागादिमात्रे संछोभणे वर्तमानोऽनिवृत्तिबादरो जघन्यस्थितिसंक्रमस्वामी भवति। 'वेयगो वेदे त्ति' वेदको वेदे वेदस्य जघन्यस्थितिसंक्रमस्वामी। इयमत्र भावना—पुरुषवेदोदये वर्तमानः पुरुषवेदस्य, स्त्रीवेदोदये वर्तमानः स्त्रीवेदस्य, नपुंसकवेदोदये वर्तमानो नपुंसकवेदस्यानिवृत्तिबादरसंपरायश्चरमसंक्रमं कुर्वन् जघन्यस्थितिसंक्रमस्वामी वेदितव्यः। अन्येन हि वेदेन क्षपकश्रेणिमारूढस्यान्यस्य वेदस्य जघन्यस्थितिसंक्रमो न लभ्यते। तथाहि—येन वेदेन क्षपकश्रेणिमारोहति तस्य वेदस्योदीरणापवर्तनादिभिः स्थितेः(तिः) पुद्गलाश्च बहवः परिसटन्ति। ततो यद्यपि नपुंसकवेदेन क्षपकश्रेणिं प्रपन्नः स्त्रीवेदनपुंसकवेदौ युगपत्क्षपयति, तथापि नपुंसकवेदस्यैव जघन्यः स्थितिसंक्रमः प्राप्यते, न स्त्रीवेदस्य उदयोदीरणयोरभावात्। स्त्रीवेदेन च प्रतिपन्नो नपुंसकवेदक्षयानन्तरमन्तर्मुहूर्तेन कालेन स्त्रीवेदं क्षपयति। एतावता च कालेनोदयोदीरणाभ्यां बह्वी स्थितिस्त्रुट्यति। यद्यपि च पुरुषवेदेनापि प्रतिपन्नस्यैतावान् कालो लभ्यते तथापि तस्य स्त्रीवेदसत्के उदयोदीरणे न भवत इति स्त्रीवेदप्रतिपन्नस्यैव स्त्रीवेदस्य जघन्यः स्थितिसंक्रमो, न शेषस्य। तथा पुरुषवेदेन क्षपकश्रेणिं प्रपन्नो हास्यादिषट्कक्षयानन्तरं पुरुषवेदं क्षपयति, अन्यथा तु हास्यादिषट्कसहितं। उदितस्य च वेदस्योदीरणापि प्रवर्तते इति बह्वी स्थितिस्त्रुट्यति। (ततः) पुरुषवेदस्यापि पुरुषवेदारूढस्यैव जघन्यः स्थितिसंक्रमो न ×शेषस्य (६)॥४३॥ तदेवमुक्तः स्थितिसंक्रमः॥

×(य० उ० १८) आयुषां तु चतुर्णां स्वस्वभवव्यवच्छेदसमये समयाधिकावलिकायां शेषायां वर्तमानः समयमात्रामुपरितनीं स्थितिं स्वस्वोदयावलिकात्रिभागेऽधस्तने समयाधिके प्रक्षिपन् जघन्यस्थितिसङ्क्रमस्वामी द्रष्टव्यः।

अन्त छे, तासि=ते प्रकृतिओनो, सो चेव=तेज (सयोगी) चरमापवर्तनाए वर्ततो, सेसगाणं तु=बाकीनी प्रकृतिओनो तो, खवगक्कमेण=अनुक्रम प्रमाणे क्षय करनार, अनियट्टिबायरो=अनिवृत्ति बादर गुणस्थानवर्ती, वेयगो वेए=अने वेदनो ते ते वेदोदयवाळो जघन्य०स्वामी छे. ४३

उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थितिसंक्रमादिनो यन्त्र.

प्रकृतिनाम.	उत्कृष्ट स्थिति संक्रम प्रमाण.	यत्स्थिति.	उ० सं० स्वामी गु०	जघन्यस्थिति सं०प्रमा०	यत्स्थिति.	ज० सं० स्वामीगु०
ज्ञानावरणीय ५	२ आव०हीन३०को.सा.	आवलिहीन ३०को०सा०	१ ले	१ समय	समयाधिक आवलि	१२ मे
दर्शनावर० ४	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,,	,,	,,	,, ,,	,,
निद्राद्विक २	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,,	,,	,,	आवलिकासंख्यभागा-धिक आवलि	,,
थिणद्धित्रिक ३	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,,	,,	आव०हीनपल्यासंख्य०	पल्यासंख्यभाग	९ मे
अशातावेद० १	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,,	,,	आव०हीनान्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	१३ मे
शातावेद० १	३आवलिहीन३०को०सा	आव०द्विकहीन ३० ,,	,,	,, ,,	,, ,,	,,
मिथ्यात्वमो० १	अन्तर्मुहूर्तहीन७० ,, ,,	सावलिकान्तर्मुहूर्तहीन ७०को० सा०	अविरत्यादि	आव० हीन पल्यासं-ख्येय भाग	पल्योपमासंख्येयभाग	४ थी ७
मिश्रमोह० १	सावलिकाद्विकान्तर्मु-हूर्तहीन ७० को०सा०	सावलिकान्तर्मुहूर्त-हीन ७० को० सा०	,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
समकितमो० १	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,,	,,	१ समय	समयाधिकावलिका	,, ,,
अनन्तानु० ४	२ आवलिकाहीन ४० को० सा०	आवलिकाहीन ४० को० सा०	१ ले	आवलिकाहीन पल्यो-पमसंख्येयभाग	पल्योपमासंख्येय भाग	,, ,,

अप्रत्या० ४	,, ,,	,, ,,	,,	,,	,,	९ मे
प्रत्याख्या० ४	,, ,,	,, ,,	,,	,,	,,	,,
संज्वल०क्रोध १	,, ,,	,, ,,	,,	अन्तर्मुहूर्तहीन२ मास	२ आवलिकाहीन२मास	,,
,, मान १	,, ,,	,, ,,	,,	,, ,, १ मास	,, ,, ,, १ मास	,,
,, माया १	,, ,,	,, ,,	,,	,, ,, ०॥ मास	,, ,, ,, ०॥ मास	,,
,, लोभ १	,, ,,	,, ,,	,,	१ समय	समयाधिकावलीका	१० मे
हास्यषट्क ६	३ आव०हीन४०को०सा	२ आव०हीन४०को.सा	,,	संख्यात वर्ष प्रमाण	सान्तर्मुहुर्तसंख्यातवर्ष	९ मे
स्त्रीनपुंसकवेद २	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,,	,,	पल्यासंख्यभाग	सान्तर्मुहुर्तपल्यासंख्य.	,,
पुंवेद १	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,,	,,	अन्तर्मुहुतहीन ८ वर्ष	२ आवलीकाहीन८वर्ष	,,
नरकायु १	अबाधाहीन३३सागरो०	आवलिकाहीन३३सा०	,,	१ समय	समयाधिकावलिका	१–२–४
तिर्यंचायु १	,, ३ पल्यो०	,, ३ पल्यो०	,,	,,	,,	१–२–४–५
मनुष्यायु १	,, ,,	,, ,,	,,	,,	,,	१ थी११
देवायु १	,, ३३ सागरो०	,, ३३ सागरो०	६ ,,	,,	,,	१–२–४
नरकगत्यनु० २	२ आव०हीन २०को.सा	आव०हीन२० को० सा०	१ ले	अन्तर्मु०हीनपल्यासंख्य.	पल्यासंख्यभाग	९ मे
तिर्यंचगत्यनु० २	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	,,	,, ,,	,, ,,	,,
मनुष्यगत्यनु० २	३ ,, हीन ,, ,,	२ आव०हीन ,, ,,	,,	उदयावलिकाहीनान्तर्मु	अन्तर्मुहुर्त	१३ मे.
देवगत्यनु० २	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	,,	,, ,, ,,	,,	,,
एकेन्द्रिय १	२ ,, हीन ,, ,,	आव०हीन ,, ,,	,,	अन्तर्मु०हीनपल्यासंख्य.	पल्यासंख्येयभाग	९ मे
विकलेन्द्रिय ३	३ ,, हीन ,, ,,	,, हीन ,, ,,	,,	,, ,, ,,	,,	,,
पंचेन्द्रिय १	२ ,, हीन ,, ,,	,, हीन ,, ,,	,,	उदयावलिकाहीनान्तर्मु०	अन्तर्मुहुर्त	१३ मे
औदारिक ७	,, ,, हीन ,, ,,	आव०हीन २० को०सा०	१ ले	उदयावलिहीनान्तर्मु०	अन्तर्मुहुर्त	१३ मे
वैक्रिय ७	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,,	,,	,, ,,	,,	,,
आहारक ७	,, त्रिकहीनअन्तःको	२ आव०हीनअन्तःको.	७ मे	,, ,,	,,	,,

संप्रत्यनुभागसंक्रमाभिधानावसरः, तत्र चैतेऽर्थाधिकारास्तद्यथा–भेदस्पर्धकप्ररूपणा१–२विशेषलक्षणप्ररूपणा३उत्कृष्टानुभागसंक्रमप्रमाणप्ररूपणा४जघन्यानुभागसंक्रमप्रमाणप्ररूपणा५साद्यनादिप्ररूपणा६स्वामित्वं७चेति । तत्र भेदप्ररूपणार्थमाह—

मूलुत्तरपगइगतो, अणुभागे संकमो जहा बंधे । फड्डगनिद्देसो सिं, सव्वेयरघायऽघाईणं ॥४४॥

मूलुत्तरत्ति–अनुभागेऽनुभागविषये संक्रमो मूलोत्तरप्रकृतिगतः । किमुक्तं भवति ? द्विधाऽनुभागसंक्रमः । तद्यथा–मूलप्रकृत्यनुभागसंक्रम उत्तरप्रकृत्यनुभागसंक्रमश्च । ते च मूलोत्तरप्रकृतिभेदा यथा बन्धे बन्धशतकेऽभिहितास्तथात्रापि द्रष्टव्याः । कृता भेदप्ररूपणा(१) । स्पर्धकप्ररूपणार्थमाह–'फड्डगेत्यादि' आसां सर्वघातिनीनां देशघातिनीनामघातिनीनां प्रकृतीनां स्पर्धकनिर्देशः स्पर्धकप्ररूपणा यथा शतके कृता तथात्रापि कर्तव्या । तथापि किंचिदुच्यते–तत्र च केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणाद्यद्वादशकषायनिद्रापंचकमिथ्यात्वलक्षणानां(२०)विंशतिप्रकृतीनां रसस्पर्धकानि सर्वघातीनि, सर्वं स्वघात्यं केवलज्ञानादिलक्षणं गुणं घातयंतीति सर्वघातीनि, तानि च ताम्रभाजनवत् निश्छिद्राणि घृतवत् स्निग्धानि द्राक्षावत्तनुप्रदेशोपचितानि स्फटिकाभ्रहारवच्चातीव निर्मलानि । उक्तं च–"जो घायइ सविसयं सयलं सो होइ सव्वघाइरसो । सो निच्छिड्डो निद्धो तणुओ फलिहप्भहरविमलो ॥ १ ॥" मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानावरणचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणसंज्वलनचतुष्टयनवनोकषायान्तरायपञ्चकलक्षणानां(२५)पञ्चविंशतिसंख्यानां देशघातिप्रकृतीनां देशघातीनि रसस्पर्धकानि भवन्ति । स्वस्य ज्ञानादेर्गुणस्य देशमेकदेशं

गाथार्थः–जहा बंधे=जेवी रीते बन्धशतकमां, मूलुत्तरपगइगतो=मूल अने उत्तर प्रकृतिना भेदो कह्या छे तेवी रीते, अणुभागे संकमो=अनुभाग संक्रममां छे. सिं=आ, सव्वेयरघायऽघाईणं=सर्वघाती, देशघाती अने अघाती प्रकृतिओनी, फड्डगनिद्देसो=स्पर्धक

तैजस ७	२ आवलिहीन २० को०	,, हीन २० को० सा०	१ ले	,, ,,	,,	,,	
आद्यसंघ० ५	आव० त्रिकहीन २० को०	आव० द्विकहीन २० को०	,,	,, ,,	,,	,,	
छेवट्ठ १	,, द्विक ,, ,,	,, हीन २० को० सा०	,,	,, ,,	,,	,,	
आद्यसंस्था० ५	,, त्रिक ,, ,, ,,	,, द्विकहीन ,, ,,	,,	,, ,,	,,	,,	
हुंडक १	,, द्विक ,, ,, ,,	,, हीन ,, ,,	,,	,, ,,	,,	,,	
शुभवर्णादि ११	,, त्रिक ,, ,, ,,	,, द्विकहीन ,, ,,	,,	,, ,,	,,	,,	
नीलतिक्त २	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	,,	,, ,,	,,	,,	
शेषाशुभवर्णा० ७	,, द्विक ,, ,,	,, हीन ,, ,,	,,	,, ,,	,,	,,	
शुभविहायो० १	,, त्रिक ,, ,,	,, द्विक ,, ,,	,,	,, ,,	,,	,,	
अशुभवि० १	,, द्विक ,, ,,	,, हीन ,, ,,	,,	,, ,,	,,	,,	
त्रसचतुष्क ४	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	,,	,, ,,	,,	,,	
स्थिरषट्क ६	,, त्रिक ,, ,,	,, द्विकहीन ,, ,,	,,	,, ,,	,,	,,	
स्थावर १	,, द्विक ,, ,,	,, हीन ,, ,,	,,	अन्तर्मुहूर्तहीनपल्या०	पल्यासंख्यभाग	९ मे	
सूक्ष्म १	,, त्रिक ,, ,,	,, द्विकहीन ,, ,,	,,	,, ,,	,,	,,	
अपर्याप्त १	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	,,	उदयावलिहीनान्तर्मु०	अन्तर्मुहूर्त	१३ मे	
साधारण १	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	,,	अन्तर्मु० हीनपल्यासं०	पल्यासंख्य०	९ मे	
अस्थिरषट्क ६	,, द्विक ,, ,,	,, हीन ,, ,,	,,	उदयावलिहीनान्तर्मु०	अन्तर्मुहूर्त	१३ मे	
आतप-उद्योत २	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	,,	अन्तर्मुहूर्तहीनपल्या०	पल्यासंख्यभा०	९ मे	
पराघातोश्वासागुरु० निर्माणोपघात ५	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,	,,	उदयावलिहीनान्तर्मु०	अन्तर्मुहूर्त	१३ मे	
जिननाम १	,, त्रिकहीन अन्तःको.	,, द्विकहीन ,, ,,	४ थे	,, ,,	,,	,,	
उच्चैर्गोत्र १	,, ,, २० को० सा०	,, ,, ,, ,,	१ ले	,, ,,	,,	,,	
नीचैर्गोत्र १	,, द्विकहीन ,, ,,	,, हीन ,, ,,	,,	,, ,,	,,	,,	
अन्तराय ५	,, ,, ३० को० सा०	,, ,, ३० को० ,,	,,	१ समय	समयाधिकावलि	१३ मे	

मतिज्ञानादिलक्षणं घातयन्तीत्येवंशीलानि देशघातीनि । तानि चानेकप्रकारच्छिद्रशतसंकुलानि । तथाहि–कानिचिदनेकबृहच्छिद्रशतसंकुलानि वंशदलनिर्मापितकटवत् । कानिचिन्मध्यमानेकच्छिद्रशतसंकुलानि कंबलवत् । कानिचित्पुनरतीवसूक्ष्मानेकच्छिद्रशतसंकुलानि तथाविधवस्त्रवत् । तथा तानि स्तोकस्नेहानि विशिष्टनैर्मल्यरहितानि च भवन्ति । तथा चोक्तं–'देसविघाइत्तणओ इयरो कडकंबलंसुसंकासो । विविहबहुछिद्दभरिओ अप्पसिणेहो अविमलो य ॥ १ ॥' वेदनीयायुर्नामगोत्राणां संबन्धिन एकादशोत्तरप्रकृतिशतस्याघातिनो(११०)रसस्पर्धकान्यघातीनि वेदितव्यानि । केवलं वेद्यमानसर्वघातिरसस्पर्धकसंबन्धात्तान्यपि सर्वघातीनि भवन्ति । यथेहलोके स्वयमचौराणामपि चौरसंबन्धाच्चौरता । उक्तं च–"जाण न विसओ घाइत्तणम्मि ताणं पि सव्वघाइरसो । जायइ घाइसगासेण चोरया वेहऽचोराणं ॥ १ ॥" ॥ ४४ ॥

संप्रति दर्शनमोहनीयस्य स्पर्धकप्ररूपणार्थमाह—

सव्वेसु देसघाईसु, सम्मत्तं तदुवरिं तु वा मिस्सं । दारुसमाणस्साणंतमोत्ति मिच्छत्तमुप्पिमओ ॥४५॥

सव्वेसु त्ति-इह दर्शनमोहनीयस्य सत्कर्म प्रतीत्य द्विविधानि रसस्पर्धकानि । तद्यथा-देशघातीनि सर्वघातीनि च । तत्र यानि देशघातीनि स्पर्धकानि एकस्थानकरसोपेतानि द्विस्थानकरसोपेतानि च । तेषु सर्वेष्वपि सम्यक्त्वं । 'तदुवरिं तु वा मिस्सं'

प्ररूपणा पण बन्धशतकानुसारे जाणवी. ४४। सम्मत्तं=समकित मोहनीय, सव्वेसु=सर्वे, देसघाइसु=देशघाती स्पर्धकोमां छे, तदुवरिं तु=तेना उपर तो, दारुसमाणस्साणंतमोत्ति=द्विस्थानिक सर्वघाती स्पर्धकोना अनंतमा भाग प्रमाण स्पर्धको, मिस्सं=मिश्रमोहनीयना, उप्पिमओ=तेथी उपरना स्पर्धकोमां, मिच्छत्तं=मिथ्यात्व छे. ४५

यत्र देशघातीनि स्पर्धकानि निष्ठितानि तत उपरि सम्यग्मिथ्यात्वस्य स्पर्धकानि भवन्ति। तानि च सर्वघातीनि द्विस्थानकरसोपेतानि च। तानि सम्यग्मिथ्यात्वस्य स्पर्धकानि तावद्रष्टव्यानि यावत् 'दारुसमाणस्साणंतमोत्ति' दारुसमान इति द्विस्थानको रसस्तस्य संबन्धिनां स्पर्धकानामनन्ततमो भागो गतो भवति। ततो यत्र सम्यग्मिथ्यात्वस्य स्पर्धकानि निष्ठां यान्ति, ततः प्रभृति द्विस्थानकत्रिस्थानकचतुःस्थानकरसोपेतानि स्पर्धकानि सर्वाण्यपि मिथ्यात्वस्य द्रष्टव्यानि ॥ ४५ ॥

कृता स्पर्धकप्ररूपणा(२), संप्रति विशेषलक्षणप्ररूपणार्थमाह—

तत्थट्ठपयं उव्वट्टिया व ओवट्टिया व अविभागा। अणुभागसंकमो एस अन्नपगइं निया वावि ॥ ४६ ॥

तत्थ त्ति-तत्रानुभागसंक्रमेऽर्थपदं याथात्म्यनिर्धारणमिदं यदुत उद्वर्तिताः प्रभूतीकृता यद्वाऽपवर्तिता ह्रस्वीकृता अथवाऽन्यां प्रकृतिं नीता अन्यप्रकृतिस्वभावेन परिणमिता अविभागा अनुभागाः। एष सर्वोऽप्यनुभागसंक्रमः। तत्र मूलप्रकृतीनामुद्वर्तनापवर्तनारूपौ द्वावेव संक्रमौ नान्यप्रकृतिनयनरूपः संक्रमः, तासां परस्परं संक्रमाभावात्। उत्तरप्रकृतीनां तु त्रयोऽपि संक्रमाः ॥ ४६ ॥

तदेवमुक्तं विशेषलक्षणं(३), संप्रत्युत्कृष्टानुभागसंक्रमप्रमाणप्रतिपादनार्थमाह—

दुविहपमाणे जेट्ठो, सम्मत्तदेसघाइ दुट्ठाणा। नरतिरियाऊआयव–मिस्से वि य सव्वघाइम्मि ॥ ४७ ॥

गाथार्थः–तत्थट्ठपयं=अनुभाग संक्रमने विषे विशेषलक्षण आ प्रमाणेः–अविभागा=रसाविभागोनी, उव्वट्टिया व ओवट्टिया व= उद्वर्तना अथवा अपवर्तना, अन्नपगइं०वावि=अथवा अन्य प्रकृतिरूप परिणमन, एस=आ, अणु०कमो=अनुभागसंक्रम जाणवो. ४७ दुविहपमाणे=(स्थान अने घातित्वरूप) द्विविध प्रमाणने विषे, जेट्ठो=उत्कृष्ट अनुभागसंक्रम, सम्मत्ते=समकित मोहनीयने विषे,

दुविह त्ति-द्विविधे प्रमाणे स्थानप्रमाणे घातित्वप्रमाणे च ज्येष्ठ उत्कृष्टोऽनुभागसंक्रमः सम्यक्त्वस्य देशघातिनि द्विस्थानके रसस्पर्धके संक्रम्यमाणे वेदितव्यः। एतदुक्तं भवति–सम्यक्त्वस्य घातित्वमाश्रित्य देशघाति स्थानमाश्रित्य सर्वोत्कृष्टद्विस्थानकरसोपेतं स्पर्धकपटलं यदा संक्रामति तदा तस्योत्कृष्टोऽनुभागसंक्रम× इति। नरायुस्तिर्यगायुरातपसम्यग्मिथ्यात्वानां स्थानं प्रतीत्य सर्वोत्कृष्टद्विस्थानकरसोपेतघातित्वमाश्रित्य सर्वघातिनि रसस्पर्धके उत्कृष्टोऽनुभागसंक्रमः। अत्रापीयं भावना–नरतिर्यगायुरातपसम्यग्मिथ्यात्वानां×१ सर्वोत्कृष्टद्विस्थानकरसोपेतं सर्वघातिरसस्पर्धकं यदा संक्रामति तदा स तेषामुत्कृष्टोऽनुभागसंक्रमः। अत्र नरतिर्यगायुरातपानां "दुति चउट्ठाणा उ सेसाउ" इतिवचनात् द्वित्रिचतुःस्थानकरससंभवेऽपि यत् द्विस्थानकरसस्पर्धकस्यैव संक्रमे उत्कृष्टोऽनुभागसंक्रम उक्तः, स एवं ज्ञापयति–एतेषां कर्मणां तथास्वाभाव्यादेव त्रिस्थानकचतुःस्थानकरसस्पर्धकानामुद्वर्तनापवर्तनाप्रकृत्यन्तरनयनरूपस्त्रिप्रकारोऽपि संक्रमो न भवतीति ॥ ४७ ॥

सेसासु चउट्ठाणे, मंदो संमत्तपुरिससंजलणे। एगट्ठाणे सेसासु, सव्वघाइंमि दुट्ठाणे ॥ ४८ ॥

×(य०उ०१९)अस्यैकस्थानकोऽनुभागो जघन्यत्वादेव त्यज्यते, त्रिस्थानचतुःस्थानकौ च न भवत एव।

×१(य०उ०२०) अत्र सम्यग्मिथ्यात्वस्य रसः सर्वोऽपि सर्वघाती द्विस्थानिकश्च विद्यते, न शेष इति शेषसङ्क्रमप्रतिषेधः।

देसघाइ–देशघाती, दुट्ठाणे–अने द्विस्थानिकरसवाळो छे. नरतिरियाऊ=मनुष्य अने तिर्यंचायुष्य, आयवमिस्से वि य=आतप अने मिश्रमोहनीयने विषे पण द्विस्थानिक, सव्वघाइम्मि=अने सर्वघाती छे, ४७। सेसासु=बाकीनी प्रकृतिओने विषे, चउट्ठाणे=चतुःस्थानिक

सेसासु त्ति–शेषाणामुक्तव्यतिरिक्तानां प्रकृतीनां स्थानमाश्रित्य सर्वोत्कृष्टश्चतुःस्थानको घातित्वमाश्रित्य सर्वघाती× रसो यदा संक्रामति तदा स तासामुत्कृष्टोऽनुभागसंक्रमः । तदेवमुक्तमुत्कृष्टानुभागसंक्रमप्रमाणं । संप्रति जघन्यानुभागसंक्रमप्रमाणप्रत्तिपादनार्थमाह–'मंदो त्ति' सम्यक्त्वस्य पुरुषवेदस्य संज्वलनानां चैकस्थानके रसे संक्रामति मन्दो जघन्योऽनुभागसंक्रमो वेदितव्यः । एतदुक्तं भवति—सम्यक्त्वस्य सर्वविशुद्ध एकस्थानको रसो यदा संक्रामति तदा तस्य जघन्योऽनुभागसंक्रमः, पुरुषवेदसंज्वलनानां च क्षपणकाले यानि समयोनावलिकाद्विकबद्धानि स्पर्धकानि एकस्थानरसोपेतानि तानि यदा संक्रामन्ति तदा स तेषां जघन्योऽनुभागसंक्रमः । 'सेसासु इत्यादि' शेषासूक्तव्यतिरिक्तासु सर्वासु प्रकृतिषु सर्वघातिनि द्विस्थानकरसोपेते स्पर्धके संक्रम्यमाणे जघन्योऽनुभागसंक्रमो वेदितव्यः । इदमत्र तात्पर्यं—सम्यक्त्वपुरुषवेदसंज्वलनचतुष्टयव्यतिरिक्तानां शेषप्रकृतीनां घातित्वमाश्रित्य सर्वघातीनि, स्थानमाश्रित्य द्विस्थानकरसोपेतानि मन्दानुभावानि यानि रसस्पर्धकानि तानि यदा संक्रामन्ति तदा स तासां जघन्योऽनुभागसंक्रमः । इह यद्यपि मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानावरणचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणान्तरायपञ्चकानामेकस्थानकोऽपि रसो बन्धे प्राप्यते तथापि क्षयकालेऽपि प्राग्बद्धो

×(य०उ०२१) स्वीयः साहचर्यजनितो वा ।

अने सर्वघाती रसनो उत्कृष्टानु० होय छे. सम्मत्त०संजलणे=समकितमोहनीय, पुंवेद अने संज्वलन चतुष्कने विषे, एगट्ठाणे=एकस्थानिक अने देशघातीरस, मंदो=जघन्यानुभागसं०ने विषे होय, सव्वघाईमि=सर्वघातीने विषे, दुट्ठाणे=द्विस्थानिक अने सर्वघातीरस जघ०संक्रमने विषे होय. ४८

द्विस्थानकोऽपि रसः संक्रामति, नैकस्थानकः× केवल इति जघन्यसंक्रमविषयतया नैतेषामेकस्थानकरस उक्तः ॥४८॥

तदेवमुक्तं जघन्यानुभागसंक्रमपरिमाणं (४) संप्रति साद्यनादिप्ररूपणा कर्तव्या । सा च द्विधा—मूलप्रकृतिसाद्यनादिप्ररूपणा उत्तरप्रकृतिसाद्यनादिप्ररूपणा च । तत्र मूलप्रकृतीनां साद्यनादिप्ररूपणार्थमाह—

अजहण्णो तिण्णि तिहा, मोहस्स चउव्विहो अहाउस्स । एवमणुक्कोसो सेसिगाण तिविहो अणुक्कोसो॥४९॥

सेसा मूलपगईसु, दुविहा अह उत्तरासु अजहण्णो । सत्तरसण्ह चउद्धा, तिविकप्पो सोलसण्हं तु ॥५०॥

अजहण्णो त्ति—ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायलक्षणानां त्रयाणां कर्मणामजघन्योऽनुभागस्त्रिधा त्रिप्रकारस्तद्यथा—अनादिरध्रुवो ध्रुवश्च । तथाहि—क्षीणकषायस्यैतेषां कर्मणां समयाधिकावलिकाशेषायां स्थितौ जघन्यानुभागसंक्रमो भवति, स च

×(य०उ०२२) तथापि क्षयकाले पूर्वबद्धद्विस्थानकरसस्यापि सङ्क्रमादेकस्थानकस्य शुद्धस्यासङ्क्रमात् सङ्क्रमविषयतयकस्थानकरसस्यानभिधानम् ॥

गाथार्थः-तिण्ह=(ज्ञाना०दर्श०अने अंतराय ए)३ नो, अजहण्णो=अजघन्य अनु०, तिहा=(सादि विना)३भांगे, मोहस्स=मोहनीयनो अजघ०, चउव्विहो=४प्रकारे छे. अहाउस्स=तथा आयुष्यनो, एवमणुक्कोसो=अनुत्कृष्ट एमज (४ प्रकारे) छे. सेसिगाण=बाकीना ३ कर्मने विषे अणुक्कसो=अनुत्कृष्ट अनु०, तिविहो=(सादि विना ३भांगे छे.)४९। मूलपगईसु=मूल प्रकृतिने विषे, सेसा=बाकीना अनुभागसंक्रमो, दुविहा=बे प्रकारे छे. अह=हवे, उत्तरा=उत्तरप्रकृतिने विषे, सत्तरसण्ह=१७प्रकृतिओनो, अजहन्नो=अजघन्य, चउद्धा=४भांगे, सोलसण्हं तु=अने १६प्रकृतिनो, तिविगप्पो=सादि विना ३भांगे छे. ५०

सादिरध्रुवश्च, ततोऽन्यः सर्वोऽप्यजघन्यः, स चानादिः । अध्रुवध्रुवौ भव्याभव्यापेक्षया । मोहनीयस्याजघन्योऽनुभागसंक्रमश्चतुर्विधः । तद्यथा—सादिरनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्च । तथाहि—सूक्ष्मसंपरायस्य क्षपकस्य मोहनीयस्य समयाधिकावलिकाशेषायां स्थितौ जघन्योऽनुभागसंक्रमो भवति । स च सादिरध्रुवश्च । ततोऽन्यः सर्वोऽप्यजघन्यः । स च क्षायिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यां वर्तमानस्योपशान्तमोहगुणस्थानके न भवति । उपशान्तमोहगुणस्थानकाच्च प्रतिपततः सतः पुनरपि भवति, ततोऽसौ सादिः । तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः । ध्रुवाध्रुवौ पूर्ववत् । आयुषस्त्वनुत्कृष्टोऽनुभागसंक्रमश्चतुर्विधः । तद्यथा—सादिरनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्च । तथाहि—अप्रमत्तो देवायुष उत्कृष्टमनुभागं बद्ध्वा बन्धावलिकायाः परतः संक्रमयितुमारभते । तं च तावत्संक्रमयति यावदनुत्तरसुरभवे स्थितस्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यतिक्रामन्ति । आवलिकामात्रा स्थितिरवतिष्ठते । ततोऽन्योऽनुभागसंक्रम आयुषः सर्वोऽप्यनुत्कृष्टः । स च सादिः । तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः । ध्रुवाध्रुवावभव्यभव्यापेक्षया । शेषाणां नामगोत्रवेदनीयानामनुत्कृष्टोऽनुभागसंक्रमस्त्रिविधस्त्रिप्रकारः । तद्यथा—अनादिरध्रुवो ध्रुवश्च । तथाहि—सूक्ष्मसंपरायेण क्षपकेण स्वगुणस्थानकस्य चरमसमये तेषां नामगोत्रवेदनीयानां सर्वोत्कृष्टोऽनुभागो बध्यते । बन्धावलिकायामतीतायां यावत्सयोगिचरमसमयस्तावत्संक्रामति । स च सादिरध्रुवश्च, ततोऽन्यः सर्वोऽप्यनुत्कृष्टः । स चानादिः, आदेरभावात् । ध्रुवाध्रुवौ पूर्ववत् । ऊक्तशेषेषु विकल्पेषु द्विधा प्ररूपणा कर्तव्या । तद्यथा—सादिरध्रुवश्च । तत्र चतुर्णां घातिकर्मणां उत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्येषु जघन्यः सादिरध्रुवश्च भावित एव । उत्कृष्टः कदाचिन्मिथ्यादृष्टेर्भवति, अन्यदा तु तस्याप्यनुत्कृष्टः, अत एतौ साद्यध्रुवौ । शेषाणां चतुर्णामघातिकर्मणां जघन्याजघन्योत्कृष्टेषु मध्ये उत्कृष्टो भावित एव । जघन्यः

सूक्ष्मस्यापर्याप्तस्यैकेन्द्रियस्य हतप्रभूतानुभागसत्कर्मणो लभ्यते, नान्यस्य । प्रभूतानुभागसत्कर्मघाताभावे तु तस्याप्यजघन्यः । तत एतावपि साद्यध्रुवौ । कृता मूलप्रकृतीनां साद्यनादिप्ररूपणा ॥

संप्रत्युत्तरप्रकृतीनां साद्यनादि प्ररूपणार्थमाह–'अहेत्यादि' उत्तरोत्तरप्रकृतिषु मध्ये सप्तदशानां कर्मणामनन्तानुबन्धिचतुष्टयसंज्वलनचतुष्टयनवनोकषायलक्षणानामजघन्योऽनुभागसंक्रमश्चतुर्धा । तद्यथा–सादिरनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्च । तथाहि–एतेषामनन्तानुबन्धिवर्जानां त्रयोदशकर्मणां स्वस्वक्षयपर्यवसानावसरे जघन्यस्थितिसंक्रमकाले जघन्योऽनुभागसंक्रमः प्राप्यते । अनन्तानुबन्धिनां पुनरुद्वलनासंक्रमेणोद्वल्य भूयोऽपि मिथ्यात्वप्रत्ययतो बद्धानां बन्धावलिकायामतीतायां द्वितीयावलिकायाः प्रथमसमये जघन्योऽनुभागसंक्रमः । एतदन्यः पुनः सर्वोऽप्येतासां सप्तदशप्रकृतीनामजघन्यः । स चोपशमश्रेण्यामुपशान्तानामेतासां न भवति, ततः प्रतिपाते च भवति, ततोऽसौ सादिः । तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः । अध्रुवध्रुवौ भव्याभव्यापेक्षया । तथा पञ्चविधज्ञानावरणस्त्यानर्द्धित्रिकवर्जषट्दर्शनावरणपञ्चविधान्तरायलक्षणानां षोडशकर्मणामजघन्योऽनुभागसंक्रमस्त्रिविकल्पस्त्रिप्रकारः, तद्यथा–अनादिरध्रुवो ध्रुवश्च । तथाहि–एतेषां षोडशकर्मणां जघन्यानुभागसंक्रमः क्षीणकषायस्य स्वगुणस्थानकस्य समयाधिकावलिकाशेषायां स्थितौ वर्तमानस्य प्राप्यते । ततोऽन्यः सर्वोऽप्यजघन्यः, तस्य चादिर्न विद्यते इत्यनादिः । अध्रुवध्रुवौ भव्याभव्यापेक्षया ॥ ५० ॥

तिविहो छत्तीसाए, णुक्कोसोऽह नवगस्स य चउद्धा । एयासिं सेसा सेस·गाण सव्वे य दुविगप्पा ॥ ५१ ॥

गाथार्थः–छत्तीसाए=३६प्रकृतिओनो, अणुक्कोसो=अनुत्कृष्ट रसा०, तिविहो=सादि विना ३भांगे छे. अह=वळी, नवगस्स

तिविहो त्ति–सातवेदनीयपञ्चेन्द्रियजातितैजससप्तकसमचतुरस्रसंस्थानशुक्ललोहितहारिद्रसुरभिगन्धकषायाम्लमधुरमृदुलघूष्णशीत(स्निग्धोष्ण)लक्षणशुभवर्णाद्येकादशकागुरुलघूच्छ्वासपराघातप्रशस्तविहायोगतित्रसादिदशकनिर्माणलक्षणानां (३६) षट्त्रिंशत्प्रकृतीनामनुत्कृष्टोऽनुभागसंक्रमस्त्रिविधस्त्रिप्रकारः। तद्यथा–अनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्च। तथाहि–आसां षट्त्रिंशत्प्रकृतीनां क्षपक आत्मीयात्मीयबन्धव्यवच्छेदकाले उत्कृष्टमनुभागं बध्नाति, बद्ध्वा च बन्धावलिकायामतीतायां संक्रमयितुमारभते। तं च तावत्संक्रमयति यावत्सयोगिकेवलिचरमसमयः। ततः क्षपकसयोगिकेवलिवर्जस्य शेषस्यानुत्कृष्ट एवानुभाग एतासां संक्रामति। तस्य चादिर्न विद्यत इत्यनादिः, ध्रुवाध्रुवौ अभव्यभव्यापेक्षया। 'अहेत्यादि' अथशब्दस्तथाविधार्थे (तथार्थे)। नवकस्य उद्योतवज्रर्षभनाराचसंहननौदारिकसप्तकलक्षणस्यानुत्कृष्टोऽनुभागसंक्रमश्चतुर्विधः। तद्यथा–सादिरनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्च। तथाहि–एतेषामुद्योतवर्जानामष्टानां कर्मणां सम्यग्दृष्टिर्देवोऽत्यन्तविशुद्धपरिणाम उत्कृष्टमनुभागं बद्ध्वा बन्धावलिकायामतीतायां संक्रमयति। उद्योतनाम्नः पुनः सप्तमनरकपृथिव्यां वर्तमानो नैरयिको मिथ्यादृष्टिः सम्यक्त्वं प्रतिपत्तुकाम उत्कृष्टमनुभागबन्धं करोति। ततो बन्धावलिकायामतीतायां संक्रमयति। तं च जघन्येनान्तर्मुहूर्तमुत्कर्षतो द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां यावत्। इह यद्यपि सप्तमनरकपृथिव्यां चरमेऽन्तर्मुहूर्तेऽवश्यं मिथ्यात्वं गच्छति तथाप्यग्रेतने भवेऽन्तर्मुहूर्तानन्तरं यः सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते स इह गृह्यते। ततोऽपान्तराले स्तोको मिथ्यात्वकालो भवन्नपि चिरंतनग्रन्थेषु न विवक्षित इत्यस्माभिरपि द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां

य=९प्रकृतिनो, चउद्धा=४भांगे. एयासिं सेसा=एमना बाकीना, सेसगाए सव्वे य=अने बाकीनी प्रकृतिओना सर्व अनुभाग संक्रमो, दुविगप्पा=बे भांगे छे. ५१

यावदित्युक्तं । तत उत्कृष्टात्प्रतिपतितस्यानुत्कृष्टः । स च सादिः । तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः । ध्रुवाध्रुवौ भव्याभव्यापेक्षया। 'एयासिमित्यादि' एतासां सप्तदशषोडशषट्त्रिंशन्नवकरूपाणां(७८)प्रकृतीनामुक्तशेषा विकल्पाः, उक्तसप्तदशादिव्यतिरिक्तानां च शेषप्रकृतीनामशीतिसंख्यानां(८०)सर्वेऽप्युत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याजघन्या द्विविकल्पा द्विप्रकारा ज्ञातव्याः । तद्यथा—सादयोऽध्रुवाश्च । तथाहि—सप्तदशानां षोडशानां चोत्कृष्टोऽनुभागसंक्रमो मिथ्यादृष्टेरुत्कृष्टे संक्लेशे वर्तमानस्य प्राप्यते । शेषकालं तु तस्याप्यनुत्कृष्ट एव । अत एव तौ द्वावपि साद्यध्रुवौ । जघन्यो भावित एव । तथा षट्त्रिंशत्प्रकृतीनां नवकस्य च जघन्योऽनुभागसंक्रमः सूक्ष्मैकेन्द्रिये हतप्रभूतानुभागसत्कर्मणि प्राप्यते । प्रभूतानुभागसत्कर्मघाताभावे तु तस्मिन्नप्यजघन्यस्तत एतौ साद्यध्रुवौ । उत्कृष्टो भावित एव । शेषाणां प्रकृतीनां संज्ञिनि पञ्चेन्द्रिये पर्याप्ते शुभानां वैक्रियसप्तकदेवद्विकोच्चैर्गोत्रातपतीर्थकराहारकसप्तकमनुजद्विकनरकायुर्वर्जशेषायुस्त्रयरूपाणां(२४)चतुर्विंशतिसंख्यानां विशुद्धावशुभानां च स्त्यानर्द्धित्रिकासातवेदनीयदर्शनमोहनीयत्रितयाप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणकषायनरकायुर्नरकद्विकतिर्यग्द्विकपञ्चेन्द्रियजातिवर्जशेषजातिचतुष्टयप्रथमवर्जसंस्थानप्रथमवर्जसंहननाशुभवर्णादिनवकाप्रशस्तविहायोगत्युपघातस्थावरदशकनीचैर्गोत्ररूपाणां(५६)षट्पञ्चाशत्संख्यानां संक्लेशे उत्कृष्टोऽनुभागबन्धो लभ्यते । शेषकालं त्वनुत्कृष्टः । एवं संक्रमोऽपि । तत एतौ साद्यध्रुवौ । जघन्योऽनुभागसंक्रमः पुनः सूक्ष्मैकेन्द्रिये हतप्रभूतानुभागसत्कर्मणि प्राप्यते। प्रभूतानुभागसत्कर्मघाताभावे तु तस्मिन्नप्यजघन्यः। तत एतावपि साद्यध्रुवौ॥५१॥

कृता साद्यनादिप्ररूपणा (५) । संप्रति स्वामित्वं वक्तव्यं । तच्च द्विधा—उत्कृष्टानुभागसंक्रमस्वामित्वं, जघन्यानुभागसंक्रमस्वामित्वं च । तत्रोत्कृष्टानुभागसंक्रमस्वामित्वमभिधित्सुस्तत्कालप्रमाणनियमनार्थमिदमाह—

उक्कोसगं पबंधिय, आवलियमइच्छिऊण उक्कोसं । जाव न घाएइ तगं, संकमइ य आ मुहुत्तंतो ॥ ५२ ॥

उक्कोसगं ति–मिथ्यादृष्टिरुत्कृष्टमनुभागं बद्ध्वा तत आवलिकामतिक्रम्य बन्धावलिकायाः परत इत्यर्थः । तमुत्कृष्टमनुभागं संक्रमयति तावद्यावन्न विनाशयति । कियन्तं कालं यावत्पुनर्न विनाशयतीति चेदुच्यते–आमुहूर्तान्तः अन्तर्मुहूर्तं यावदित्यर्थः । परतो मिथ्यादृष्टिः शुभप्रकृतीनामनुभागं संक्लेशेन, अशुभप्रकृतीनां तु विशुद्ध्याऽवश्यं विनाशयति ॥ ५२ ॥

संप्रति स्वामी प्रतिपाद्यते—

असुभाणं अन्नयरो, सुहुम अपज्जगाइ मिच्छो य । वज्जिय असंखवासा–उए य मणुओववाए य ॥५३॥

असुभाणं ति–अशुभानां प्रकृतीनां पञ्चविधज्ञानावरणनवविधदर्शनावरणासातवेदनीयाष्टाविंशतिविधमोहनीयनरकद्विकतिर्यग्द्विकपञ्चेन्द्रियजातिवर्जशेषजातिचतुष्टयप्रथमवर्जसंस्थानप्रथमवर्जसंहननननीलकृष्णदुरभिगन्धतिक्तकटुकरूक्षशीतकर्कशगुरूपघातप्रशस्तविहायोगतिस्थावरसूक्ष्मसाधारणापर्याप्तास्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेययशःकीर्तिनीचैर्गोत्रपञ्चविधान्तरायलक्षणानामष्टाशीतिसंख्यानामन्यतरः(८८)सूक्ष्मापर्याप्तादिः, आदिशब्दात् पर्याप्तसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तबादरद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञितिर्यक्प-

---

गाथार्थः–उक्को०पबंधिय=उत्कृष्ट रसबन्ध करीने, आव०च्छिऊण=आवलिका अतिक्रमे, उक्कोसं=उत्कृष्ट अनुभागने, जाव न घायइ=घात न करे त्यां सुधी, तगं संकमइ=तेने संक्रमावे छे. य=वळी, आमुहुत्तंतो=अन्तर्मुहूर्त सुधी उत्कृष्ट रसनो घात न करे.५२ असंखवासाउए=असंख्य वर्षायुष्क मनुष्य तिर्यंच, मणुओववाए य=अने मनुष्यमांज उपजनारा देवो, वज्जिअ=वर्जीने, सुहुम० मिच्छो उ=सूक्ष्म अप०मिथ्यादृष्टिमांना, अन्नयरो=कोइ पण जीव, असुभाणं=अशुभ प्रकृतिओना, उत्कृष्टानु०संक्रमना स्वामी जाणवा. ५३

त्रेन्द्रियमनुष्यदेवनारकपरिग्रहः। तत एतेषामन्यतमो मिथ्यादृष्टिरुत्कृष्टमनुभागसंक्रमं करोति। केवलमसंख्येयवर्षायुषो मनुष्यतिरश्चो ये च देवाः स्वभवाच्च्युत्वा मनुष्येषूत्पद्यन्ते तांश्च मनुष्योपपातान् आनतप्रमुखान् देवान् वर्जयित्वा। एते हि मिथ्यादृष्टयोऽपि नाशुभप्रकृतीनामुक्तस्वरूपाणामुत्कृष्टमनुभागं बध्नन्ति, तीव्रसंक्लेशाभावात्। ततश्चोत्कृष्टानुभागसंक्रमाभाव इति तेषां वर्जनं॥५३॥

सव्वत्थायावुज्जोय–मणुयगइपंचगाण आऊणं। समयाहिगालिगा, सेसगत्ति सेसाण जोगंता ॥ ५४ ॥

सव्वत्थ त्ति–सर्वत्र सर्वेषु सूक्ष्मापर्याप्तादिषु नैरयिकपर्यवसानेषु असंख्येयवर्षायुस्तिर्यग्मनुष्येषु मनुष्योपपातेषु च देवेषु आनतादिषु मिथ्यादृष्टिषु सम्यग्दृष्टिषु वा। आतपस्योद्योतस्य मनुजगतिपञ्चकस्य मनुजगतिमनुजानुपूर्व्यौदारिकद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननलक्षणस्य। अत्रौदारिकद्विकग्रहणादौदारिकसप्तकं गृह्यते, तथाविवक्षणात्। ततः सर्वसंख्यया द्वादशानां प्रकृतीनामुत्कृष्टोऽनुभागसंक्रमो वेदितव्यः। तथाहि–सम्यग्दृष्टिः शुभमनुभागं न विनाशयति, किंतु विशेषतो द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां यावत् परिपालयति। तत उत्कर्षत एतावन्तं कालं यावदुत्कृष्टमनुभागमविनाश्य पश्चात्सर्वत्र यथायोग्यमुत्पद्यते। ततो मिथ्यादृष्टिष्वप्यनन्तरोक्तप्रकृतीनामुत्कृष्टोऽनुभागसंक्रमोऽन्तर्मुहूर्तं कालं यावदवाप्यते (इति)। आतपोद्योतयोश्चोत्कृष्टोऽनुभागो मिथ्यादृष्टिनैव बध्यते। ततो न तत्र तयोरुत्कृष्टानुभागसंक्रमाभावः। मिथ्यात्वाच्च प्रतिपत्य सम्यक्त्वं गते सम्यग्दृष्टावपि प्राप्यते। न च सम्यग्दृष्टिः सन् तयोरुत्कृष्टमनुभागं विनाशयति, शुभप्रकृतित्वात्। ततो द्वे षट्षष्टी अपि सागरोपमाणां यावदुत्कर्षतस्त-

---

गाथार्थः–आयावुज्जोय मणुयगइ पंचगाए=आतप, उद्योत, अने मनुष्यगति पंचकनो, उत्कृष्टानु० संक्रम, सव्वत्थ=सर्वत्र (सर्वजीवोने) होय छे. आऊणं=आयुष्यनो उत्कृ०संक्रम, समयाहिगालिगा=समयाधिक आवलिका, सेसिगत्ति=शेष रहे त्यां सुधी,

योस्तत्र संक्रमो द्रष्टव्यः। तथा ×चतुर्णामायुषामुत्कृष्टमनुभागं बद्ध्वा बन्धावलिकायामतीतायां यावत्समयाधिकावलिका शेषा तावदुत्कृष्टानुभागसंक्रमः प्राप्यते। शेषाणां तु शुभप्रकृतीनां सातवेदनीयदेवद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियसप्तकाहारकसप्तकतैजससप्तकसमचतुरस्रसंस्थानशुक्ललोहितहारिद्रवर्णसुरभिगन्धकषायाम्लमधुररसमृदुलघुस्निग्धोष्णस्पर्शप्रशस्तविहायोगत्युच्छ्वासागुरुलघुपराघातत्रसादिदशनिर्माणतीर्थकरोच्चैर्गोत्रलक्षणानां (५४) चतुःपञ्चाशत्संख्यानामात्मीयात्मीयबन्धव्यवच्छेदसमये उत्कृष्टमनुभागं बद्ध्वा बन्धावलिकायाः परतस्तावदुत्कृष्टमनुभागं संक्रमयति यावत्सयोगिकेवलिचरमसमयः। तथा चैतासां प्रकृतीनामुत्कृष्टानुभागसंक्रमस्वामिनः प्रायोऽपूर्वकरणादयः सयोगिकेवलिपर्यवसाना द्रष्टव्याः ॥ ५४ ॥ तदेवमुक्त उत्कृष्टानुभागसंक्रमस्वामी ॥

संप्रति जघन्यानुभागसंक्रमस्वामिनं प्रतिपिपादयिषुर्जघन्यानुभागसंक्रमसंभवपरिज्ञानार्थमाह—

खवगस्संतरकरणे, अकए घाईण सुहुमकम्मुवरिं। केवलिणो णंतगुणं, असन्निओ सेसअसुभाणं ॥५५॥

खवगस्स त्ति—यावदद्याप्यन्तरकरणं न विधीयते तावत्क्षपकस्य सर्वघातिनीनां देशघातिनीनां च प्रकृतीनां संबन्धी अनुभागः सूक्ष्मैकेन्द्रियसत्कादनुभागसत्कर्मणोऽनन्तगुणो भवति। अन्तरकरणे तु कृते सति सूक्ष्मैकेन्द्रियस्यापि सत्कादनुभागसत्क-

---

×(य०उ०२३) तथा चतुर्णामप्यायुषां सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयो वोत्कृष्टमनुभागं बद्ध्वा बन्धावलिकायामतीतायां सङ्क्रमयन्ति तावद्यावत्समयाधिकावलिकाशेष इति। तत आयुषामुत्कृष्टानुभागसङ्क्रमस्वामिनः सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयो वा प्राप्यन्ते।

सेसाण जोगंता=बाकीना कर्मोनो सयोगी सुधीना जीवोने उत्कृष्टानु०संक्रम होय छे. ५४। खवगस्स=क्षपकने, अंतरकरणे अकए=अन्तरकरण न कर्युं होय त्यां सुधी, घाईण=घाती प्रकृतिओनो अनुभाग, सुहुमकम्मुवरिं=सूक्ष्म एकेन्द्रियनी अनुभागसत्ताथी, णंतगुणं=अनन्तगुण होय छे. सेसअसुभाणं=बाकीनी अशुभ प्रकृतिओनी अनुभागसत्ता, असन्निओ=असंज्ञी पंचेंद्रियना करतां,

र्मणो हीनो भवति। तथा शेषाणामप्यघातिनीनामशुभप्रकृतीनामसातवेदनीयप्रथमवर्जसंस्थानप्रथमवर्जसंहननकृष्णनीलदुरभिगन्धतिक्तकटुगुरुकर्कशरूक्षशीतोपघाताप्रशस्तविहायोगतिदुर्भगदुःस्वरानादेयास्थिराशुभापर्याप्तायशःकीर्तिनीचैर्गोत्रलक्षणानां (३०)त्रिंशत्संख्यानां केवलिनोऽनुभागसत्कर्म असंज्ञिपञ्चेन्द्रियसत्कादनुभागसत्कर्मणोऽनन्तगुणं वेदितव्यं। तथा च सति सर्वघातिनीनां देशघातिनीनां च प्रकृतीनां जघन्यानुभागसंक्रमसंभवः क्षपकस्यान्तरकरणे कृते सति वेदतिव्यः। शेषाणां त्वशुभप्रकृतीनामुक्तरूपाणां जघन्यानुभागसंक्रमसंभवः, न सयोगिकेवलिनि, किंतु हतसत्कर्मणः सूक्ष्मैकेन्द्रियादेः, तस्यैव वक्ष्यमाणत्वात्॥५५॥

इह 'संकमई य आमुहुत्तंतो' इतिवचनात्सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयो वा किलान्तर्मुहूर्तात्परतः सर्वप्रकृतीनामनुभागघातं कुर्वन्तीति प्रसक्तं, तत्रापवादमाह—

सम्मद्दिट्ठी न हणइ, सुभाणुभागे असम्मदिट्ठी वि। सम्मत्तमीसगाणं, उक्कोसं वज्जिया खवणं ॥ ५६ ॥

सम्मद्दिट्ठि त्ति—इह याः शुभप्रकृतयः सातवेदनीयदेवद्विकमनुजद्विकपञ्चेन्द्रियजातिप्रथमसंस्थानप्रथमसंहननौदारिकसप्तकवैक्रियसप्तकाहारकसप्तकतैजससप्तकशुभवर्णाद्येकादशकागुरुलघुपराघातोच्छ्वासातपोद्योतप्रशस्तविहायोगतित्रसादिदशकनिर्माणतीर्थकरोच्चैर्गोत्रलक्षणाः(६६)षट्षष्टिसंख्यास्तासां सर्वासामपि शुभमनुभागमुत्कर्षतो द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां यावत्सम्यग्दृष्टिर्न विनाशयति। असम्यग्दृष्टिर्मिथ्यादृष्टिः। अपिशब्दात्सम्यग्दृष्टिश्च सम्यग्मिथ्यात्वयोरुत्कृष्टमनुभागं न विनाशयति। क्षपणं क्षपणकालं वर्जयित्वा।

केवलिणो=केवलीने अनन्तगुणी छे. ५५। सुहाणुभागं=शुभ प्रकृतिओना अनुभागने, सम्मदिट्ठी न हणइ=समकिती न हणे, खवणं वज्जिया=क्षयकाल वर्जीने, असम्मदिट्ठी वि=मिथ्यादृष्टि पण, सम्मत्तमीसगाणं=समकितमो० अने मिश्रमो० ना उक्कस्सं=उत्कृष्टानुभागनो घात न करे. ५६

पमासंख्येयभागमात्रमेव, केवलं प्रथमात् स्थितिखंडात् विशेषहीनमन्तर्मुहूर्तेन कालेनोत्किरति । ततोऽपि तृतीयं स्थितिखंडं पल्योपमासंख्येयभागमात्रं, द्वितीयात् स्थितिखंडात् विशेषहीनमन्तर्मुहूर्तेन कालेनोत्किरति । एवं पल्योपमासंख्येयभागमात्राणि स्थितिखंडानि पूर्वस्मात् पूर्वस्मात् स्थितिखंडाद्विशेषहीनानि तावद्वाच्यानि यावत् द्विचरमं स्थितिखंडं । सर्वाण्यपि च तानि प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तेन कालेनोत्कीर्यन्ते ॥

इह च द्विधा प्ररूपणा–अनन्तरोपनिधया परंपरोपनिधया च । तत्रानन्तरोपनिधया प्रथमस्थितिखंडस्य प्रभूता स्थितिः । ततो द्वितीयस्य विशेषहीना । ततोऽपि तृतीयस्य विशेषहीना । एवं यावद्द्विचरमं स्थितिखंडं । कृताऽनन्तरोपनिधया प्ररूपणा । संप्रति परंपरोपनिधया क्रियते–तत्र प्रथमस्थितिखंडापेक्षया कानिचित् स्थितिखंडानि स्थित्यपेक्षयाऽसंख्येयभागहीनानि, कानिचित्संख्येयभागहीनानि, कानिचित् संख्येयगुणहीनानि, कानिचिदसंख्येयगुणहीनानि । यदा तु प्रदेशपरिमाणं चिन्त्यते, तदा प्रथमस्थितिखंडात् द्वितीयं स्थितिखंडं दलिकापेक्षया विशेषाधिकं । ततोऽपि तृतीयं विशेषाधिकं, एवं तावद्वाच्यं यावत् द्विचरमं स्थितिखंडं । इयमनन्तरोपनिधा । परंपरोपनिधा पुनरियं–प्रथमात् स्थितिखंडाद्दलिकमपेक्ष्य किंचिदसंख्येयभागाधिकं, किंचित्संख्येयभागाधिकं, किंचित्संख्येयगुणाधिकं, किंचिदसंख्येयगुणाधिकं । स्थितिखंडानां चोत्करणविधिरयं–प्रथमसमये स्तोकं दलिकमुत्किरति । द्वितीये समये(ततो)ऽसंख्येयगुणं । ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणं । एवं तावद्वाच्यं यावदन्तर्मुहूर्तस्य चरमसमयः । गुणकारश्चात्र पल्योपमासंख्येयभागलक्षणो वेदितव्यः । एवं सर्वेष्वपि स्थितिखंडेषु द्रष्टव्यं ॥

दलिकं चोत्कीर्य क्व प्रक्षिप्यत इति चेदुच्यते–किंचित्स्वस्थाने किंचित्परस्थाने । तत्र(कुत्र)कियत्प्रक्षिप्यत, इति विशेषतो

आऊण जहण्णठिई, बंधिय जावत्थि संकमो ताव। उव्वलणातित्थसंजो–यणा य पढमालियं गंतुं ॥५८॥

आऊण त्ति–चतुर्णामप्यायुषां जघन्यां स्थितिं बद्ध्वा, जघन्यां हि स्थितिं बध्नन् जघन्यमनुभागं बध्नातीति जघन्यस्थितिग्रहणं। ततो जघन्यां स्थितिं बद्ध्वा बन्धावलिकायाः परतस्तावज्जघन्यानुभागं संक्रमयति यावत्समयाधिकावलिका शेषा भवति। ततो जघन्यां स्थितिं बद्ध्वा यावदस्ति संक्रमस्तावज्जघन्यानुभागसंक्रमः प्राप्यते। तथा नरकद्विकमनुजद्विकदेवद्विकवैक्रियसप्तकाहारकसप्तकोच्चैर्गोत्रलक्षणानामेकविंशत्युद्वलनप्रकृतीनां(२१)तीर्थकरस्यानन्तानुबन्धिनां च जघन्यमनुभागं बद्ध्वा प्रथमावलिकां बन्धावलिकालक्षणां गत्वाऽतिक्रम्य, बन्धावलिकायाः परत इत्यर्थः; जघन्यमनुभागं संक्रमयति। कः संक्रमयतीति चेदुच्यते–वैक्रियसप्तकदेवद्विकनरकद्विकानामसंज्ञिपञ्चेन्द्रियो, मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रयोः सूक्ष्मनिगोदः, आहारकसप्तकस्याप्रमत्तः, तीर्थकरस्याविरतसम्यग्दृष्टिः, अनन्तानुबन्धिनां पश्चात्कृतसम्यक्त्वो मिथ्यादृष्टिः संक्रमयतीति ॥ ५८ ॥

सेसाण सुहुम हय–संतकम्मिगो तस्स हेट्ठओ जाव। बंधइ तावं एगिं–दिओ व णेगिंदिओ वावि ॥५९॥

संकमो=जघन्य स्थिति संक्रम त्यांज जघन्यानुभागसंक्रम जाणवो. दिट्ठिमोहदुगे=समकितमो० अने मिश्रमो० ए बे दर्शन मोहनीयनो, णियग०खंडगे=स्व स्व अन्त्य रसखंडने संक्रमावतां ज०अनु०संक्रम थाय छे. ५७। आऊण=आयुष्यनी, जहन्नठिइ=जघन्य स्थिति, बंधे=बांधीने,जावत्थि०ताव=ज्यां सुधी संक्रम प्रवर्ते त्यां सुधी, जघ०अनु०संक्रम छे. उव्वलणतित्थ संजोयणा य=उद्वलन योग्य प्रकृतिओ, जिननाम तथा अनंतानुबंधीनो, पढमालियं गंतुं=प्रथम आवलिका अतिक्रमे ज०अनु०संक्रम थाय छे. ५८ सेसाण=बाकीनी प्रकृतिओनो, सुहुमहयसंतकम्मगो=सूक्ष्मपणामां घणी अनुभाग सत्तानो नाश करनार, एगिंदिओ० वावि=एकेन्द्रिय अथवा इतर जीव, तस्स हेट्ठओ जाव=ज्यां सुधी स्वानुभाग सत्ताथी हीन अनुभाग बंध करे, तावं बंधइ=त्यांसुधी बांधे. ५९

सेसाण त्ति—उक्तशेषाणां शुभानामशुभानां वा प्रकृतीनां सप्तनवतिसंख्यानां यः सूक्ष्मैकेन्द्रियो वायुकायिकोऽग्निकायिको वा हतसत्कर्मा, हतं विनाशितं प्रभूतमनुभागसत्कर्म येन स हतसत्कर्मा, स तस्यात्मसत्कस्यानुभागसत्कर्मणोऽधस्तात् ततः स्तोकतरमित्यर्थः, अनुभागं तावद् बध्नाति यावदेकेन्द्रियस्तस्मिन्नन्यस्मिन् वा एकेन्द्रियभवे वर्तमानोऽनेकेन्द्रियो वेति स एव हतसत्कर्मा एकेन्द्रियोऽन्यस्मिन् द्वीन्द्रियादिभवे वर्तमानो यावदन्यं बृहत्तरमनुभागं न बध्नाति, तावत्तमेव जघन्यमनुभागं संक्रमयति ॥ ५९ ॥ तदेवमुक्तोऽनुभागसंक्रमः ॥

संप्रति प्रदेशसंक्रमाभिधानावसरः । तत्र चैतेऽर्थाधिकाराः, तद्यथा—सामान्यलक्षणं १, भेदः २, साद्यनादिप्ररूपणा ३, उत्कृष्टप्रदेशसंक्रमस्वामी ४, जघन्यप्रदेशसंक्रमस्वामी ५ च । तत्र सामान्यलक्षणप्रतिपादनार्थमाह—

जं दलियमन्नपगइं, निज्जइ सो संकमो पएसस्स । उव्वलणो विज्झाओ, अहापवत्तो गुणो सव्वो ॥६०॥

जं ति—यत्संक्रमप्रायोग्यं दलिकं कर्मद्रव्यं अन्यप्रकृतिं नीयते अन्यप्रकृतिरूपतया परिणम्यते स प्रदेशसंक्रमः । उक्तं सामान्यलक्षणं (१) । संप्रति भेदमाह—'उव्वलणो' इत्यादि । प्रदेशसंक्रमः पञ्चधा । तद्यथा—उद्वलनासंक्रमः, विध्यातसंक्रमः, यथाप्रवृत्तसंक्रमः, गुणसंक्रमः, सर्वसंक्रमश्च । तत्र यथोद्देशं निर्देश इति न्यायात्प्रथमत उद्वलनासंक्रमस्य लक्षणमभिधीयते—इहानन्तानुबन्धिचतुष्टयसम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वदेवद्विकनरकद्विकवैक्रियसप्तकाहारकसप्तकमनुजद्विकोच्चैर्गोत्रलक्षणानां सप्तविंशतिप्रकृतीनां प्रथमतः पल्योपमासंख्येयभागमात्रं स्थितिखंडमन्तर्मुहूर्तेन कालेनोत्किरति । ततः पुनरपि द्वितीयं स्थितिखंडं पल्यो-

---

गाथार्थः-जं दलियं=जे दलिक, अन्नपगइं=अन्य प्रकृतिने विषे, निज्जइ=लइ जवाय, सो=ते, पएसस्स संकमो=प्रदेश संक्रम. ते, उव्वलणो=उद्वलन सं०, विज्झाओ=विध्यातसं०, अहापवत्तो=यथाप्रवृत्तसं०, गुणो=गुणसं०, सव्वो=सर्वसंक्रम एम ५ प्रकारे छे. ६०

एतदुक्तं भवति–क्षपणकाले सम्यग्दृष्टिरपि सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोरुत्कृष्टमनुभागं विनाशयति, तेन क्षपणकालो वर्ज्यते । तथा चोक्तं ×पञ्चसंग्रहमूलटीकायां–"सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयश्च सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोर्नोत्कृष्टमनुभागं विनाशयन्ति, अपि तु क्षपकः सम्यग्दृष्टिर्विनाशयति उभयोरपि दृष्टयोरिति" । मिथ्यादृष्टिः पुनः सर्वासामपि शुभप्रकृतीनां संक्लेशेनाशुभप्रकृतीनां तु विशुद्ध्याऽन्तर्मुहूर्तात्परत उत्कृष्टमनुभागमवश्यं विनाशयति ॥ ५६ ॥

तदेवं जघन्यानुभागसंक्रमस्वामित्वप्रतिपादनाय भावना कृता । संप्रति जघन्यानुभागसंक्रमस्वामित्वमेवाह—

अंतरकरणा उवरिं, जहन्नठिइसंकमो उ जस्स जहिं । घाईणं नियगचरम–रसखंडे(डगे)दिट्ठिमोहदुगे ॥५७॥

अंतरकरण त्ति–अन्तरकरणादूर्ध्वं घातिकर्मप्रकृतीनां मध्ये यस्याः प्रकृतेर्यत्र गुणस्थानके जघन्यस्थितिसंक्रम उक्तः, तस्यास्तत्र जघन्यानुभागसंक्रमोऽपि वेदितव्यः । एतदुक्तं भवति–अन्तरकरणे कृते सति अनिवृत्तिबादरसंपरायः क्षपको नवनोकषायसंज्वलनचतुष्टयानां क्षपणक्रमेण जघन्यस्थितिसंक्रमणकाले जघन्यानुभागसंक्रमं करोति । ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणनिद्राप्रचलारूपदर्शनावरणषट्कानां क्षीणकषायः समयाधिकावलिकाशेषायां स्थितौ वर्तमानो जघन्यानुभागसंक्रमं करोति । 'नियगेत्यादि' दर्शनमोहनीयद्विकस्य सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वरूपस्य क्षपणकाले निजकचरमरसखंडे आत्मीयात्मीयचरमरसखंडसंक्रमणकाले जघन्यानुभागसंक्रमो भवति ॥ ५७ ॥

×(य०उ०२४) तदिदमुक्तं पञ्चसङ्ग्रहे—"सम्मद्दिट्ठी ण हणइ सुभाणुभागं दुवे वि दिट्ठीणं । सम्मत्तमीसगाणं उक्कोसं हणइ खवगो वि ॥१ ॥" इति, अत्र 'दुवे वि त्ति' द्वावपि सम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टी 'खवगो वि त्ति' अपेरवधारणार्थत्वात् किं तु क्षपक एवेत्यर्थः ।

गाथार्थः–अंतरकरणा उवरिं=अन्तरकरणथी आगल, घाईण=घाती प्रकृतिओनी, जस्स=जे प्रकृतिनो, जहिं=ज्यां, जहन्नठिइ-

आऊण जहण्णठिई, बंधिय जावत्थि संकमो ताव। उव्वलणतित्थसंजो–यणा य पढमालियं गंतुं ॥५८॥

आऊण त्ति–चतुर्णामप्यायुषां जघन्यां स्थितिं बद्ध्वा, जघन्यां हि स्थितिं बध्नन् जघन्यमनुभागं बध्नातीति जघन्यस्थितिग्रहणं। ततो जघन्यां स्थितिं बद्ध्वा बन्धावलिकायाः परतस्तावज्जघन्यानुभागं संक्रमयति यावत्समयाधिकावलिका शेषा भवति। ततो जघन्यां स्थितिं बद्ध्वा यावदस्ति संक्रमस्तावज्जघन्यानुभागसंक्रमः प्राप्यते। तथा नरकद्विकमनुजद्विकदेवद्विकवैक्रियसप्तकाहारकसप्तकोच्चैर्गोत्रलक्षणानामेकविंशत्युद्वलनप्रकृतीनां(२१)तीर्थकरस्यानन्तानुबन्धिनां च जघन्यमनुभागं बद्ध्वा प्रथमावलिकां बन्धावलिकालक्षणां गत्वाऽतिक्रम्य, बन्धावलिकायाः परत इत्यर्थः, जघन्यमनुभागं संक्रमयति। कः संक्रमयतीति चेदुच्यते–वैक्रियसप्तकदेवद्विकनरकद्विकानामसंज्ञिपञ्चेन्द्रियो, मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रयोः सूक्ष्मनिगोदः, आहारकसप्तकस्याप्रमत्तः, तीर्थकरस्याविरतसम्यग्दृष्टिः, अनन्तानुबन्धिनां पश्चात्कृतसम्यक्त्वो मिथ्यादृष्टिः संक्रमयतीति ॥ ५८ ॥

संकमो=जघन्य स्थिति संक्रम त्यांज जघन्यानुभागसंक्रम जाणवो. दिट्ठिमोहदुगे=समकितमो० अने मिश्रमो० ए बे दर्शन मोहनीयनो, णियग०खंडगे=स्व स्व अन्त्य रसखंडने संक्रमावतां ज०अनु०संक्रम थाय छे. ५७। आऊण=आयुष्यनी, जहन्नठिइ=जघन्य स्थिति, बंधे=बांधीने, जावत्थि०ताव=ज्यां सुधी संक्रम प्रवर्ते त्यां सुधी, जघ०अनु०संक्रम छे. उव्वलणतित्थ संजोयणा य=उद्वलन

सेसाण सुहुम हय–संतकम्मिगो तस्स हेट्ठओ जाव । बंधइ ताव एगिं·दिओ व णेगिंदिओ वावि॥५९॥

सेसाण त्ति–उक्तशेषाणां शुभानामशुभानां वा प्रकृतीनां सप्तनवतिसंख्यानां यः सूक्ष्मैकेन्द्रियो वायुकायिकोऽग्निकायिको वा हतसत्कर्मा, हतं विनाशितं प्रभूतमनुभागसत्कर्म येन स हतसत्कर्मा स तस्यात्मसत्कस्यानुभागसत्कर्मणोऽधस्तात् ततः स्तोकतरमित्यर्थः, अनुभागं तावद् बन्धाति यावदेकेन्द्रियस्तस्मिन्नन्यस्मिन् वा एकेन्द्रियभवे वर्तमानोऽनेकेन्द्रियो वेति स एव हतसत्कर्मा एकेन्द्रियोऽन्यस्मिन् द्वीन्द्रियादिभवे वर्तमानो यावदन्यं वृहत्तरमनुभागं न बध्नाति, तावत्तमेव जघन्यमनुभागं संक्रमयति ॥ ५१ ॥ तदेवमुक्तोऽनुभागसंक्रमः ॥

संप्रति प्रदेशसंक्रमाभिधानावसरः । तत्र चैतेऽर्थाधिकाराः, तद्यथा–सामान्यलक्षणं १, भेदः २, साद्यनादिप्ररूपणा ३, उत्कृष्टप्रदेशसंक्रमस्वामी ४, जघन्यप्रदेशसंक्रमस्वामी ५ च । तत्र सामान्यलक्षणप्रतिपादनार्थमाह—

योग्य प्रकृतिओ, जिननाम तथा अनंतानुबंधीनो, पढमालियं गंतुं=प्रथम आवलिका अतिक्रमे ज०अनु०संक्रम थाय छे. ५८
सेसाण=बाकीनी प्रकृतिओनो, सुहुमहयसंतकम्मगो=सूक्ष्मपणामां घणी अनुभाग सत्तानो नाश करनार, एगिंदिओ०वावि=एकेन्द्रिय अथवा इतर जीव, तस्स हेट्ठओ जाव=ज्यां सुधी स्वानुभाग सत्ताथी हीन अनुभाग बंध करे, तावं बंधइ=त्यांसुधी बांधे. ५९

जं दलियमन्नपगइं, निज्जइ सो संकमो पएसस्स । उव्वलणो विज्झाओ, अहापवत्तो गुणो सव्वो ॥६०॥

जं ति–यत्संक्रमप्रायोग्यं दलिकं कर्मद्रव्यं अन्यप्रकृतिं नीयते अन्यप्रकृतिरूपतया परिणम्यते स प्रदेशसंक्रमः । उक्तं सामान्यलक्षणं (१) । संप्रति भेदमाह–'उव्वलणो' इत्यादि । प्रदेशसंक्रमः पञ्चधा । तद्यथा–उद्वलनासंक्रमः, विध्यातसंक्रमः, यथाप्रवृत्तसंक्रमः गुणसंक्रमः, सर्वसंक्रमश्च । तत्र यथोद्देशं निर्देश इति न्यायात्प्रथमत उद्वलनासंक्रमस्य लक्षणमभिधीयते–इहानन्तानुबन्धिचतुष्टयसम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वदेवद्विकनरकद्विकवैक्रियसप्तकाहारकसप्तकमनुजद्विकोच्चैर्गोत्रलक्षणानां सप्तविंशतिप्रकृतीनां प्रथमतः पल्योपमासंख्येयभागमात्रं स्थितिखंडमन्तर्मुहूर्तेन कालेनोत्किरति । ततः पुनरपि द्वितीयं स्थितिखंडं पल्योपमासंख्येयभागमात्रमेव, केवलं प्रथमात् स्थितिखंडात् विशेषहीनमन्तर्मुहूर्तेन कालेनोत्किरति । ततोऽपि तृतीयं स्थितिखंडं पल्योपमासंख्येयभागमात्रं, द्वितीयात् स्थितिखंडात् विशेषहीनमन्तर्मुहूर्तेन कालेनोत्किरति । एवं पल्योपमासंख्येयभागमात्राणि स्थितिखंडानि पूर्वस्मात् पूर्वस्मात् स्थितिखंडाद्विशेषहीनानि तावद्वाच्यानि यावत् द्विचरमं स्थितिखंडं । सर्वाण्यपि च तानि

गाथार्थः–जं दलियं=जे दलिक, अन्नपगइं=अन्य प्रकृतिने विषे, णिज्जइ=लइ जवाय, सो=ते, पएसस्स संकमो=प्रदेश संक्रम. ते, उव्वलणो=उद्वलन सं०, विज्झाओ=विध्यातसं०, अहापवत्तो=यथाप्रवृत्तसं०, गुणो=गुणसं०, सव्वो=सर्वसंक्रम एम ४ प्रकारे छे. ६०

प्रत्येकमन्तर्मुहूर्त्तेन कालेनोत्कीर्यन्ते ॥

इह च द्विधा प्ररूपणा–अनन्तरोपनिधया परंपरोपनिधया च। तत्रानन्तरोपनिधया प्रथमस्थितिखंडस्य प्रभूता स्थितिः। ततो द्वितीयस्य विशेषहीना। ततोऽपि तृतीयस्य विशेषहीना। एवं यावद् द्विचरम स्थितिखंडं। कृताऽनन्तरोपनिधया प्ररूपणा। संप्रति परंपरोपनिधया क्रियते–तत्र प्रथमस्थितिखंडापेक्षया कानिचित् स्थितिखंडानि स्थित्यपेक्षयाऽसंख्येयभागहीनानि, कानिचित्संख्येयभागहीनानि, कानिचित् संख्येयगुणहीनानि, कानिचिदसंख्येयगुणहीनानि। यदा तु प्रदेशपरिमाणं चिन्त्यते, तदा प्रथमस्थितिखंडात् द्वितीयं स्थितिखंडं दलिकापेक्षया विशेषाधिकं। ततोऽपि तृतीयं विशेषाधिकं, एवं तावद्वाच्यं यावत् द्विचरमं स्थितिखंडं। इयमनन्तरोपनिधा। परंपरोपनिधा पुनरियं–प्रथमात् स्थितिखंडाद्दलिकमपेक्ष्य किंचिदसंख्येयभागाधिकं, किंचित्संख्येयभागाधिकं, किंचित्संख्येयगुणाधिकं, किंचिदसंख्येयगुणाधिकं। स्थितिखंडानां चोत्करणविधिरयं–प्रथमसमये स्तोकं दलिकमुत्किरति। द्वितीये समये (ततो)ऽसंख्येयगुणं। ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणं। एवं तावद्वाच्यं यावदन्तर्मूहूर्तस्य चरमसमयः। गुणकारश्चात्र पल्योपमासंख्येयभागलक्षणो वेदितव्यः। एवं सर्वेष्वपि स्थितिखंडेषु द्रष्टव्यं ॥

दलिकं चोत्कीर्य क्व प्रक्षिप्यत इति चेदुच्यते–किंचित्स्वस्थाने किंचित्परस्थाने। तत्र (कुत्र) कियत्प्रक्षिप्यत, इति विशेषतो

निरूप्यते–प्रथमे स्थितिखंडे प्रथमसमये यत्कर्मदलिकमन्यप्रकृतिषु प्रक्षिपति तत् स्तोकं । यत् स्वस्थान एवाधस्तात्प्रक्षिप्यते तत्ततोऽसंख्येयगुणं । ततोऽपि द्वितीयसमये यत्स्वस्थाने प्रक्षिप्यते तदसंख्येयगुणं । परप्रकृतिषु पुनर्यत् प्रक्षिप्यते तत्प्रथमसमयपरस्थानप्रक्षिप्ताद्विशेषहीनं । तृतीयसमये यत्स्वस्थाने प्रक्षिप्यते तत् द्वितीयसमयस्वस्थानप्रक्षिप्तादसंख्येयगुणं । यत्पुनः परप्रकृतिषु प्रक्षिप्यते, तत् द्वितीयसमयपरस्थानप्रक्षिप्ताद्विशेषहीनं । एवं तावद्वाच्यं यावदन्तर्मुहूर्तचरमसमयः । एवं सर्वेष्वपि स्थितिखंडेषु द्विचरमस्थितिखंडपर्यवसानेषु वाच्यं । संप्रति चरमखंडस्य विधिरुच्यते–चरमस्थितिखंडं द्विचरमस्थितिखंडापेक्षयाऽसंख्येयगुणं,× तदपि चरमस्थितिखंडमन्तर्मुहूर्तेन कालेनोत्कीर्यते । तस्य च यत्प्रदेशाग्रं तदुदयावलिकागतं मुक्त्वा शेषं सर्वं परस्थाने प्रक्षिपति । तच्चैवं–प्रथमसमये स्तोकं, द्वितीये समयेऽसंख्येयगुणं, ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणं, एवं यावच्चरमसमयः । चरमसमये तु यत्परप्रकृतिषु प्रक्षिप्यते दलिकं स सर्वसंक्रम×१ उच्यते । तत्र यावत्प्रमाणं द्विचरमस्थितिखंडसत्कं कर्मदलिकं चरमसमये परप्रकृतिषु संक्रमयति, तावत्प्रमाणं चेच्चरमस्थितिखंडस्य कर्मदलिकं प्रतिसमयमपह्रियते तर्हि तच्चरमं स्थितिखंडमसंख्येयाभिरुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिर्निर्लेपीभवति । एषा कालतो मार्गणा । क्षेत्रतः पुनरियं–यावत्प्रमाणं द्विचरमस्थितिखंडसत्कं कर्मदलिकं परप्रकृतिषु

×(य०उ०२५) चरमस्थितिखण्डं द्विचरमस्थितिखण्डात् स्थित्यपेक्षयाऽसङ्ख्येयगुणं प्रथमस्थितिखण्डाच्च दलिकापेक्षयाऽसङ्ख्येयगुणं, स्थित्यपेक्षयाऽसङ्ख्येयभागकल्पं । उक्तं च पञ्चसंग्रहे–"असंखगुणयं तु अंतिमयं" । अस्य प्रतीकस्य व्याख्या यथा–अन्तिमखण्डं द्विचरमखण्डात् स्थित्यपेक्षयाऽसङ्ख्येयगुणं । तुशब्दस्याधिकार्थसंसूचनादन्तिमस्थितिखण्डं प्रथमस्थितिखण्डापेक्षया दलिकमधिकृत्यासङ्ख्येयगुणं स्थित्यपेक्षया त्वसङ्ख्येयभागकल्पमिति । ×१(य०उ०२६)संक्रमार्हस्य दलिकस्य सर्वस्यापि निर्लेपात् ।

संक्रमयति, तावत्प्रमाणं कर्मदलिकं चरमस्थितिखंडस्य सत्कमेकत्रापहियते, अन्यत्र एक आकाशप्रदेशः। एवमपहियमाणं चरमस्थितिखंडमंगुलमात्रक्षेत्रगतप्रदेशराशेरसंख्येयतमेन भागेनापहियते। अंगुलस्यासंख्येयतमे भागे यावन्त आकाशप्रदेशास्तावन्ति चरमस्थितिखंडे यथोक्तप्रमाणानि खंडानि भवन्तीत्यर्थः। यावत्प्रमाणं पुनर्द्विचरमस्थितिखंडसत्कं कर्मदलिकं स्वस्थाने संक्रमयति, तावत्प्रमाणं चेच्चरमस्थितिखंडस्य कर्मदलिकं प्रतिसमयमपहियते तर्हि तच्चरमं स्थितिखंडं पल्योपमासंख्येयभागमात्रगतैः समयैर्निर्लेपीभवति ॥ ६० ॥

तदेवमुक्तमुद्वलनासंक्रमलक्षणं। संप्रत्येतदेव लक्षणं योजयन्नाहारकसप्तकस्योद्वलनासंक्रमकारकमाह—

आहारतणू भिन्नमुहुत्ता अविरइगओ पउव्वलए। जा अविरतो त्ति उव्वलइ पल्लभागे असंखतमे ॥ ६१ ॥

आहार त्ति–(आहारकतनूर्बहुवचनमाहारकसप्तकसंग्रहपरं तत्) आहारकसप्तकसत्कर्माऽविरतिर्विरत्यभावं गतः सन् अन्तर्मुहूर्तात्परत आहारकतनूं। इहाहारकग्रहणेनाहारकसप्तकं गृहीतं द्रष्टव्यं। तत आहारकसप्तकं। 'पउव्वलए त्ति' प्रोद्वलयति। कियता पुनः कालेनोद्वलयतीति चेदुच्यते–यावदविरतिस्तावदुद्वलयति। एतेनाविरतिप्रत्यया आहारकसप्तकस्योद्वलना प्रतिपादिता द्रष्टव्या। अविरतिश्चानन्तमपि (अविरतिश्चाहारकवतोऽविरतीभूतस्यापार्धपुद्गलपरावर्तं यावदपि लभ्यते) कालं यावद् भवति, ततो नियममाह–'पल्लभागे असंखतमे' पल्योपमस्यासंख्येयतमेन भागेन सर्वमुद्वलयतीत्यर्थः ॥ ६१ ॥

गाथार्थः–आहारतणू=आहारक सप्तकनी सत्तावाळो, अविरइगओ=अविरतिने पामेलो, भिन्नमुहुत्ता=अन्तर्मुहूर्त पछी, जा अविरत्तोत्ति=अविरतिपणामां वर्ततो, पल्लभागे असंखतमे=पल्योपमना असंख्यातमा भाग सुधी, पउव्वलए=उद्वलना करे छे. ६१

अंतोमुहुत्तमद्धं, पल्लासंखिज्जमित्तठिइखंडं । उक्किरइ पुणो वि तहा, उणूणमसंखगुणहं जा ॥ ६२ ॥

अंतोमुहुत्तं ति–अन्तर्मुहूर्तप्रमाणामद्धां यावदन्तर्मुहूर्तेन कालेनेत्यर्थः । पल्योपमासंख्येयभागमात्रं स्थितिखंडमुत्किरति । एष विधिः प्रथमखंडस्य । ततः पुनरपि तथा तेनैव प्रकारेणान्तर्मुहूर्तेन कालेनान्यत् पल्योपमासंख्येयभागमात्रं खंडं पूर्वस्मादूनमूनतरमुत्किरति । एवं तावद्वाच्यं यावत् द्विचरमं स्थितिखडं । तच्च प्रथमस्थितिखंडापेक्षयाऽसंख्येयगुणहीनं ॥ ६२ ॥

तं दलियं सत्था(ट्ठा)णे, समए समए असंखगुणियाए । सेढीए परठाणे, विसेसहाणीए संछुभइ ॥ ६३ ॥

तं ति–तदुत्कीर्यमाणं दलिकं समये समये स्वस्थाने असंख्येयगुणितया श्रेण्या संछुभते प्रक्षिपति । यत्पुनः परस्थाने परप्रकृतौ तद्विशेषहान्या । तद्यथा–प्रथमसमये यत् परप्रकृतौ प्रक्षिपति तत् स्तोकं । यत्पुनः स्वस्थाने एवाधस्तात् प्रक्षिप्यते, तत्ततोऽसंख्येयगुणं । ततोऽपि द्वितीयसमये यत् स्वस्थाने प्रक्षिप्यते तदसंख्येयगुणं । परप्रकृतिषु पुनर्यत् प्रक्षिप्यते तत्प्रथमसमये परस्थानप्रक्षिप्तादविशेषहीनं । एवं तावत्प्रतिसमयं वाच्यं यावदन्तर्मुहूर्तस्य चरमसमयः । एष प्रथमस्थितिखंडस्योत्करणविधिः । एवमन्येषामपि द्रष्टव्यं ॥ ६३ ॥

गाथार्थः–अंतोमुहुत्तमद्धं=अन्तर्मुहूर्त काले, पल्ला०खंडं=पल्योपमना असंख्यातमा भाग प्रमाण स्थितिखंडने, उक्किरइ=उकेरे छे, पुणो वि=फरीथी पण, ऊणूणं=हीन हीन पल्यासं०भागने, असंखगुणहं जा=असंख्यातगुणहीन भाग (द्विचरम स्थितिखंड) सुधी, तहा=तेमज (अन्तर्मुहूर्ते अन्तर्मुहूर्ते) उकेरे छे. ६२। तं दलियं=ते दलिकने, समए समए=समये समये, असंखगुणियाए सेढीए=असंख्यात गुण श्रेणिवडे सट्ठाणे=स्वस्थानमां, परट्ठाणे=अने परस्थाननां,विसेसहाणीए=विशेष हीन हीन, संछुभइ=खेपवे छे. ६३

जं दुचरमस्स चरिमे, अन्नं संकमइ तेण सव्वं पि । अंगुलअसंखभागेण, हीरए एस उव्वलणा ॥६४॥

जं ति–द्विचरमस्थितिखंडस्य चरमसमये यत् कर्मदलिकमन्यां प्रकृतिं संक्रमयति, तेन मानेन तावत्प्रमाणेन दलिकेनेत्यर्थः, यदि चरमं स्थितिखंडमपहियते । ततः कालतोऽसंख्येयाभिरुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिरपहियते । क्षेत्रतः पुनरंगुलमात्रक्षेत्रासंख्येयतमेन भागेन । एषा प्रागुक्ता द्विचरमस्थितिखंडं यावदाहारकसप्तकस्योद्वलना ॥ ६४ ॥

संप्रति चरमस्थितिखंडकस्य वक्तव्यतामाह—

चरममसंखिज्जगुणं, अणुसमयमसंखगुणियसेढीए । देइ परत्थाणे ए(णेवं)वं,संछुभतीणमवि कसिणो ॥६५॥

चरमं ति–द्विचरमस्थितिखंडाच्चरमं स्थितिखंडं स्थित्यपेक्षयाऽसंख्येयगुणं । तथा तस्य चरमखंडस्य यत्प्रदेशाग्रं तदुदयावलिकागतं मुक्त्वा शेषं परस्थाने परप्रकृतिषु । अनुसमयं प्रतिसमयं । असंख्येयगुणनया श्रेण्या प्रक्षिपति । तद्यथा–प्रथमसमये स्तोकं, द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं, तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणं, एवं यावच्चरमसमयः । एवममुना प्रकारेण परप्रकृतौ प्रक्षिप्यमाणानां प्रकृतीनां । अपिः संभावने। चरमसमये यः कृत्स्नसंक्रमो भवति स सर्वसंक्रमः।एतेन सर्वसंक्रमस्य लक्षणं प्रतिपादितं द्रष्टव्यं॥६५॥

गाथार्थः–दुचरमस्स=द्विचरम स्थितिखंडना, चरमे=चरम समये, जं=जेटलुं दलिक, अन्नं=अन्यप्रकृतिमां, संकमइ=संक्रमावे, तेण=ते (प्रमाण) वडे, सव्वंपि=अन्त्य खंडनुं सर्व द्रव्य पण, अंगुलअसंखभागेण=अंगुलना असंख्यातमा भाग (असंख्यात उत्सर्पिणि अवसर्पिणी) वडे, हीरए=अपहराय. एस उवल्लणा=आ उद्वलना संक्रम जाणवो. ६४। चरमसंखेज्जगुणं=उपान्त्यस्थिति खंडथी चरम स्थितिखंड असंख्यात गुण छे. तेमांथी, अणुसमयं=प्रति समये, परत्थाणे=पर प्रकृतिमां,असंखगुणियसेढीए=असंख्यात गुण श्रेणिवडे, देइ=प्रक्षेपे, एवं=ए रीते, संछुभंतीणमवि=प्रक्षेपाती प्रकृतिनो अन्त्य समये, कसिणो=सर्वसंक्रम थाय छे. ६५

संप्रति वेदकसम्यक्त्वादीनामुद्वलनासंक्रमकारकानाह—

एवं मिच्छद्दिट्ठिस्स, वेयगं मीसगं ततो पच्छा। एगिंदियस्स सुरदुग–मओ सव्वेउव्वि निरयदुगं ॥६६॥

एवं ति–अष्टाविंशतिसत्कर्मा मिथ्यादृष्टिः प्रथमत एवमुपदर्शितेन प्रकारेण सम्यक्त्वमुद्वलयति, ततः सम्यग्मिथ्यात्वं। तथा एकेन्द्रियाहारकसप्तकरहिता या नामकर्मणः पञ्चनवतिप्रकृतयस्तत्सत्कर्मा देवगतिदेवानुपूर्व्यौ पूर्वोक्तेन विधिना युगपदुद्वलयति। ततोऽनन्तरं वैक्रियसप्तकं नरकद्विकं च युगपदुद्वलयति ॥ ६६ ॥

सुहुमतसेगो उत्तम–मओ य नरदुगमहानियट्टिम्मि। छत्तीसाए नियगे, संजोयणदिट्ठिजुयले य ॥ ६७॥

सुहुम त्ति–सूक्ष्मत्रसस्तेजस्कायिको वायुकायिकश्च, उत्तमं गोत्रमुच्चैर्गोत्रं, प्रथमतः पूर्वोक्तेन विधिनोद्वलयति। ततो नरद्विकं मनुजगतिमनुजानुपूर्वीलक्षणं। तदेवं मिथ्यादृष्टेरुद्वलना प्रतिपादिता। संप्रति सम्यग्दृष्टेः प्रतिपाद्यते–'अहानियट्टिम्मि छत्तीसाए त्ति' अथशब्दोऽधिकारान्तरसूचकः। किमिदमधिकारान्तरमिति चेदुच्यते–प्राक्तनीनां प्रकृतीनामुद्वलना पल्योपमासंख्येयभागमात्रेण कालेन भवति यथायोगं(ग्यं)मिथ्यादृष्टेश्च, वक्ष्यमाणानां चान्तर्मुहूर्तेन कालेन सम्यग्दृष्टीनां चेत्यधिकारान्त-

---

गाथार्थः–एवं=ए प्रकारे, मिच्छद्दिट्ठिस्स=मिथ्यात्वी, वेयगं=समकितमो०ने, ततो पच्छा=त्यार पछी, मिस्सग=मिश्रमो०ने उवेले छे. एगिंदियस्स=एकेन्द्रिय, सुरदुगमओ=सुरद्विक पछी, सवेउव्विणिरयदुगं=वैक्रियद्विक साथे नरकद्विकने उवेले छे. ६६। सुहुमतसेगो=सूक्ष्मत्रस, उत्तमं=उंचगोत्र, अओ य=त्यार पछी, णरदुगं=मनुष्यद्विकने उवेले छे. अहानियट्टिम्मि=हवे ९मे गुणठाणे, छत्तीसाए=३६नी उद्वलना करे, संजो० य=अनन्तानुबन्धि,समकितमो० तथा मिश्रमो०नी उद्वलना,णियगे=स्व स्व क्षपक करे छे. ६७

रता। अनिवृत्तावनिवृत्तिबादरसंपराये षद्त्रिंशत्प्रकृतीनामुद्वलना। एतदुक्तं भवति–अनिवृत्तिबादरसंपरायः क्षपकः स्त्यानर्द्धित्रिकनामत्रयोदशकाप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणकषायाष्टकनवनोकषायसंज्वलनक्रोधमानमायालक्षणाः (३६) षद्त्रिंशत्प्रकृतीः स्वस्वक्षपणकालेऽन्तर्मुहूर्तेन कालेनोद्वलयति। 'नियगे' इत्यादि, निजके आत्मीये क्षपके स्वक्षपकेऽविरतसम्यग्दृष्ट्यादावित्यर्थः। संयोजनदृष्टियुगले च। अत्र षष्ठ्यर्थे सप्तमी, संयोजनानामनन्तानुबन्धिनां दृष्टियुगलस्य च मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वयोश्च पूर्वोक्तविधिनोद्वलनाऽन्तर्मुहूर्तेन कालेनावगन्तव्या ॥६७॥

तदेवमुद्वलनासंक्रम उक्तः (२--१)। संप्रति विध्यातसंक्रमस्य लक्षणमाह—

जासि न बंधो गुण–भवपच्चयओ तासि होइ विज्झाओ। अंगुलअसंखभागो, ववहारो तेण सेसस्स॥६८॥

जासि त्ति–यासां प्रकृतीनां गुणप्रत्ययतो भवप्रत्ययतो वा बन्धो न भवति तासां विध्यातसंक्रमोऽवसेयः। कास्ता भवप्रत्ययतो गुणप्रत्ययतो वा बन्धं नायान्तीति चेदुच्यते–इह या मिथ्यादृष्टिगुणस्थानान्ताः षोडश प्रकृतयस्तासां सासादनादिषु गुणप्रत्ययतो बन्धो न भवति। सासादनान्तानां पञ्चविंशतिप्रकृतीनां सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यादिषु, अविरतसम्यग्दृष्ट्यन्तानां दशानां देशविरतादिषु, देशविरतान्तानां च चतसृणां प्रमत्तादिषु, प्रमत्तान्तानां षण्णामप्रमत्तादिषु, गुणप्रत्ययतो बन्धो न भवति। ततस्तासां तत्र तत्र विध्यातसंक्रमः प्रवर्तते। तथा वैक्रियसप्तकदेवद्विकनरकद्विकैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातिस्थावर-

---

गाथार्थः–जासि=जे प्रकृतिओनो, गुणभवपच्चयओ=गुणप्रत्यय अने भवप्रत्ययथी, ण बंधो=बन्ध नथी, तासि=तेमनो, होइ विज्झाओ=विध्यात संक्रम चाले छे, तेण=(विध्यात संक्रमथी प्रथम समये पर प्रकृतिमां संक्रमाता) ते दलिक वडे, सेसस्स=

सूक्ष्मसाधारणापर्याप्तातपलक्षणानां(२०)विंशतिप्रकृतीनां नैरयिका मिथ्यात्वादिरूपे हेतौ विद्यमानेऽपि भवप्रत्ययतो बन्धका न भवन्ति। नरकद्विकदेवद्विकवैक्रियसप्तकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानां(१७)सप्तदशप्रकृतीनां समस्ता अपि देवा भवप्रत्ययतो बन्धका नोपजायन्ते। एकेन्द्रियजात्यातपस्थावरनाम्नामपि तु सनत्कुमारादयः। संहननषट्कसमचतुरस्रवर्जसंस्थानपञ्चकनपुंसकवेदमनुजद्विकौदारिकसप्तकतिर्यगेकान्तयोग्यस्थावरादिप्रकृतिदशकदुर्भगादित्रिकनीचैर्गोत्राप्रशस्तविहायोगतिप्रकृतीनां(३६)त्वसंख्येयवर्षायुषः। एवं यस्य यस्य यत् यत् कर्म भवप्रत्ययतो गुणप्रत्ययतो वा न बन्धमायाति तत्तत्तस्य तस्य विध्यातसंक्रमयोग्यं वेदतिव्यं।

दलिकप्रमाणनिरूपणार्थमिदमाह–'अंगुलेत्यादि' यावत्प्रमाणं कर्मदलिकं प्रथमसमये विध्यातसंक्रमेण परप्रकृतिषु प्रक्षिप्यते, तेन मानेन शेषस्य दलिकस्यापहारे क्रियमाणेऽङ्गुलस्यासंख्येयतमेन भागेनापहारो भवति। इयमत्र भावना–यावत्प्रमाणं प्रथमसमये कर्मदलिकं विध्यातसंक्रमेण प्रकृत्यन्तरे प्रक्षिप्यते, तावत्प्रमाणैः खंडैः शेषं सर्वमपि तत्प्रकृतिगतं दलिकमपहियमाणमंगुलमात्रस्य क्षेत्रस्यासंख्येयतमे भागे यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत्संख्याकैरपहियते। इदं क्षेत्रतो निरूपणं। कालतस्त्वसंख्येयाभिरुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिरपहारः। अयं च विध्यातसंक्रमः प्रायो यथाप्रवृत्तसंक्रमावसाने वेदितव्यः (२–२) ॥ ६८ ॥

इदानीं गुणसंक्रमस्य लक्षणमाह—

गुणसंक्रमो अबज्झं–तिगाण असुभाणपुव्वकरणाई। बंधे अहापवत्तो, परित्तिओ वा अबंधे वि ॥ ६९ ॥

बाकीना दलिकनो, अंगुल०हारो=अंगुलना असंख्यातमा भागरूप क्षेत्र वडे अपहार थाय. ६८। अपुव्वकरणाइ=अपूर्वकरणादिमां

गुणसंक्रमो त्ति–अपूर्वकरणादयोऽपूर्वकरणप्रभृतयोऽबध्यमानानामशुभप्रकृतीनां संबन्धि कर्मदलिकं प्रतिसमयमसंख्येयगुणतया बध्यमानासु प्रकृतिषु यत्प्रक्षिपन्ति स गुणसंक्रमः । गुणेन प्रतिसमयमसंख्येयलक्षणेन गुणकारेण संक्रमो गुणसंक्रमः । तथाहि–मिथ्यात्वातपनारकायुर्वर्जानां मिथ्यादृष्टियोग्यानां (१३) त्रयोदशानामनन्तानुबन्धितिर्यगायुरुद्योतवर्जानां च सासादनयोग्यानामेकोनविंशतिप्रकृतीनां (१९) यतो मिथ्यात्वमनन्तानुबन्धिनश्चापूर्वकरणादारत एवाविरतसम्यग्दृष्ट्यादयः क्षपयन्ति, आतपोद्योते च शुभे, अशुभप्रकृतीनां च गुणसंक्रमः, आयुषां च परप्रकृतौ न संक्रमः, ततो मिथ्यात्वादिप्रकृतीनामिह वर्जनं । तथाऽप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणकषायाष्टकास्थिराशुभायशःकीर्तिशोकारत्यसातवेदनीयानां (१४) सर्वसंख्यया (४६) षट्चत्वारिंशत्प्रकृतीनां अशुभानामबध्यमानानामपूर्वकरणादारभ्य गुणसंक्रमो भवति । निद्राद्विकोपघाताशुभवर्णादिनवकहास्यरतिभयजुगुप्सानां (१६) त्वपूर्वकरणे स्वस्वबन्धव्यवच्छेदादारभ्य गुणसंक्रमो वेदितव्यः । अपरोऽर्थः–अपूर्वकरणादयोऽपूर्वकरणसंज्ञकरणवर्तिप्रभृतयोऽशुभप्रकृतीनामबध्यमानानां दलिकमसंख्येयगुणनया श्रेण्या बध्यमानासु प्रकृतिषु यत्प्रक्षिपन्ति स गुणसंक्रमः । तेन क्षपणकालेऽनन्तानुबन्धिमिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वानामप्यपूर्वकरणादारभ्य गुणसंक्रमः प्रवर्तते । तदेवमुक्तं गुणसंक्रमस्य लक्षणं (२-३) ।

संप्रति यथाप्रवृत्तसंक्रमस्य प्रतिपादयति–'बंधे' इत्यादि, ध्रुवबन्धिनीनां प्रकृतीनां बन्धे सति यथाप्रवृत्तसंक्रमः प्रवर्तते ।

वर्ततो, अबज्झंतीगाण=अबध्यमान, असुभाण=अशुभ प्रकृतिओनो, गुणसंकमो=गुणसंक्रम करे छे. बन्धे=ध्रुवबन्धिनी प्रकृतिओनो बन्ध छते, परितिओ वा आबंधे वि=परावर्तमान प्रकृतिओना बंध अथवा अबंधमां पण, अहापवत्तो=यथाप्रवृत्त संक्रम प्रवर्ते छे. ६९

'परित्तिओ वा' इति, परित्ति अनेन परावर्तमानाः प्रकृतय उच्यन्ते। तासामबन्धेऽपि आस्तां बन्धे इत्यपिशब्दार्थः, यथाप्रवृत्तसंक्रमो भवति। इयमत्र भावना—सर्वेषामपि संसारस्थानामसुमतां ध्रुवबन्धिनीनां बन्धे× परावर्तमानप्रकृतीनां तु स्वस्वभवबन्धयोग्यानां बन्धेऽबन्धे वा यथाप्रवृत्तसंक्रमो भवति (२–४) ॥ ६९ ॥

सांप्रतमेतैरेवोद्वलनासंक्रमविध्यातसंक्रमगुणसंक्रमयथाप्रवृत्तसंक्रमैरपहारकालस्याल्पबहुत्वमभिधीयते—

थोवोवहारकालो, गुणसंकमणेण संखगुणणाए। सेसस्स अहापवत्ते, विज्झाए उव्वलणनामे ॥ ७० ॥

थोवो त्ति—उद्वलनासंक्रमाभिधानावसरे यत्प्रागभिहितं चरमखंडं तच्छेषमित्युच्यते। तस्य शेषस्य यदि गुणसंक्रममानेनाप-

---

×(य०उ०२७) तत्र ध्रुवबन्धिनीनामध्रुवबन्धिनीनां वा यदि तत्काले प्रभूतं दलं बध्यमानं प्राप्यते, कासाञ्चिदध्रुवबन्धिनीनां तद्भवबन्धयोग्यानां तदानीमबन्धेऽपि यदि प्राग्बद्धं प्रभूतं दलिकं प्राप्यते तर्हि प्रभूतं दलं सङ्क्रमयति। स्तोकं चेत्प्राप्यते तदा स्तोकं सङ्क्रमयति। तच्च जघन्ययोगे वर्तमानो जघन्यं दलिकं मध्यमे मध्यममुत्कृष्टेचोत्कृष्टमिति यथाप्रवृत्त्या सङ्क्रमयतीत्यस्य यथाप्रवृत्तसङ्क्रम इत्यन्वर्थं नाम गीयते। एतेषु पञ्चसु सङ्क्रमेषु कः कं बाधित्वा प्रवर्त्तते इति चेदुच्यते—यथाप्रवृत्तं सङ्क्रमं प्रवर्तमानं स्वहेतुसम्पर्कसामर्थ्येन बाधित्वा विध्यातसङ्क्रमो गुणसङ्क्रमो वा भवति। सर्वसङ्क्रमोऽप्युद्वलनासङ्क्रमस्य चरमखण्डे चरमप्रक्षेप इति सोऽप्युद्वलनासङ्क्रमं बाधित्वा प्रवर्त्तत इति ज्ञेयम्।

गाथार्थः–गुणसंकमणे=गुणसंक्रमवडे, सेसस्स='शेषनो', थोवोवहारकालो=अपहारकाल स्तोक, अहा०नामे=यथाप्रवृत्तसं० विध्यातसं० अने उद्वलना संक्रमवडे, असंखगुणणाए=अनुक्रमे असंख्यगुण अपहार काल. ७०

हारः क्रियते, ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण कालेन सकलमपि तदपहियते । ततो गुणसंक्रमेणापहारकालः सर्वस्तोकः । ततो यथाप्रवृत्तसंक्रमेणापहारकालोऽसंख्येयगुणः । यतस्तदेव चरमखंडं यदि यथाप्रवृत्तसंक्रमेणापहियते तर्हि पल्योपमासंख्येयभागमात्रेण कालेनापहियते । ततो विध्यातसंक्रमेणापहारकालोऽसंख्येयगुणः । यतस्तदेव चरमखंडं यदि विध्यातसंक्रमेणापहियते ततोऽसंख्येयाभिरुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिरपहियते । ततोऽप्युद्वलनासंक्रमेणापहारकालोऽसंख्येयगुणः । तथाहि—तदेव चरमखंडं द्विचरमस्थितिखंडस्य चरमसमये यत्परप्रकृतौ प्रक्षिप्यते तेन मानेन चेदपहियते, ततोऽतिप्रभूताभिरसंख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिरपहियते । ततः पाश्चात्यादयमुद्वलनासंक्रमेणापहारकालोऽसंख्येयगुणः× ॥ ७० ॥

इह प्राग्यथाप्रवृत्तसंक्रमस्य कालो नोक्तः, उद्वलनासंक्रमेऽपि यद्द्विचरमं स्थितिखंडं तस्य चरमसमये ×१स्वस्थाने यत्कर्मदलिकं प्रक्षिप्यते तेन मानेन शेषस्य चरमस्थितिखंडस्यापहारकालो नोक्तस्ततस्तन्निरूपणार्थमाह—

पल्लासंखियभागेण-हापवत्तेण सेसगवहारो । उव्वलणेण वि थिबुगो, अणुइन्नाए उ जं उदए ॥ ७१ ॥

×(य०उ०२८) विध्यातसङ्क्रमेणोद्वलनासङ्क्रमेण वाऽपहारः क्षेत्रतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागेन द्रष्टव्यः, केवलमुद्वलनासङ्क्रमेणापहारो बृहत्तराङ्गुलेन । ×१(उ०य०२९) पूर्वं तु परस्थानप्रक्षेपरूपेणोद्वलनासङ्क्रमो ग्राह्य इत्युक्तमेव । इत्थमेव प्रदर्शितं पञ्चसंग्रहे—"जं दुचरिमस्स चरमे सपरट्ठाणेसु देइ समयम्मि । ते भागे जहकमसो अहापवत्तुव्वलणमाणे ॥१॥" इति,

गाथार्थः—अहापवत्तेण=यथाप्रवृत्त उव्वलणेण य=अने उद्वलनसंक्रमवडे,सेसगवहारो='शेषनो' अपहार, पल्ला०भागेण=पल्योपमना असंख्यातमा भागे थाय. अणुइन्नाए=अनुदित प्रकृतिनो, जं उदए=उदयवतीमां जे संक्रम ते, थिबुओ=स्तिबुकसंक्रम. ७१

पल्ल त्ति–उद्वलनासंक्रमे यच्चरमं स्थितिखंडं तस्य यदि यथाप्रवृत्तसंक्रममानेनापहारः क्रियते, तर्हि पल्योपमासंख्येयभाग-मात्रेण कालेन निःशेषतोऽपहारो भवति । उद्वलनासंक्रमेणापि द्विचरमस्थितिखंडकस्य चरमसमये यत्स्वस्थाने प्रक्षिप्यते दलिकं तेन मानेन चरमस्थितिखंडस्यापहारकालः पल्योपमासंख्येयभाग(मात्र)लक्षणो वेदितव्यः । तत एतौ द्वावपि तुल्यौ । इहान्योऽपि षष्ठः स्तिबुकसंक्रमोऽस्ति, परं नासौ संक्रमकरणे संबध्यते, करणलक्षणासंभवात् । करणं हि सलेश्यं वीर्यमुच्यते । अथ च लेश्या-तीतोऽपि भगवानयोगिकेवली द्विचरमसमये द्विसप्ततिप्रकृतीः(७२)स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमयति । अपि च स्तिबुकसंक्रमेण संक्रान्तं दलिकं न सर्वथा पतद्ग्रहप्रकृतिरूपतया परिणमते । ततो नासौ संक्रमे संबध्यते । परमेषोऽपि संक्रम इति संक्रमप्रस्तावात्तल्ल-क्षणनिरूपणार्थमाह–' थिबुगो ' इत्यादि अनुदीर्णाया अनुदयप्राप्तायाः सत्कं यत्कर्मदलिकं सजातीयप्रकृतावुदयप्राप्तायां समान-कालस्थितौ संक्रमय्य चानुभवति, यथा मनुजगतावुदयप्राप्तायां शेषगतित्रयं एकेन्द्रियजातौ जातिचतुष्टयमित्यादि स स्तिबुक-संक्रमः× । एष एव च प्रदेशानुभवः ॥ ७१ ॥

तदेवमुक्तं लक्षणं भेदश्च (२) । संप्रति साद्यनादिप्ररूपणा कर्तव्या । तत्र मूलप्रकृतीनां परस्परं संक्रमो न भवति, तत उत्तर-प्रकृतीनामेव साद्यनादिप्ररूपणार्थमाह—

×(उ०य०३०) यथा वा क्षपणकाले संज्वलनक्रोधादीनां शेषीभूता आवलिकाः संज्वलनमानादावेष स्तिबुकसङ्क्रमः । उक्तं च—"अनुदीर्णमुदीर्णान्तस्तुल्यकालं प्रतिक्षणम् । दलिकं सङ्क्रमं याति, येन स स्तिबुको मतः ॥ १ ॥" इति

ध्रुवसंकम अजहन्नो, णुक्कोसो तासि वा विवज्जित्तु । आवरणनवगविग्घं, उरालियसत्तगं चेव ॥ ७२ ॥
साइयमाइ चउद्धा, सेसविगप्पा य सेसगाणं च । सव्वविगप्पा नेया, साई अधुवा पएसम्मि ॥ ७३ ॥

ध्रुवसंकम त्ति–प्रागुक्तानां ध्रुवसत्कर्मणां षड्विंशत्युत्तरशतसंख्यानामजघन्यः प्रदेशसंक्रमश्चतुर्धा चतुःप्रकारः । तद्यथा–सादिरनादिध्रुवोऽध्रुवश्च । तत्र क्षपितकर्मांशो वक्ष्यमाणलक्षणः क्षपणार्थमभ्युद्यतो ध्रुवसत्कर्मप्रकृतीनां सर्वासामपि जघन्यं प्रदेशसंक्रमं करोति, स च सादिरध्रुवश्च । ततोऽन्यः सर्वोऽप्यजघन्यः । स चोपशमश्रेण्यां बन्धव्यवच्छेदे सति सर्वासामपि प्रकृतीनां न भवति, ततः प्रतिपाते च भवति, ततोऽसौ सादिः, तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः । ध्रुवाध्रुवावभव्यभव्यापेक्षया । अनुत्कृष्टोऽपि प्रदेशसंक्रमो ध्रुवसत्कर्मप्रकृतीनां चतुर्धा । किं सर्वासां ? नेत्याह–आवरणनवकं ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयलक्षणं, तथाऽन्तरायपञ्चकमौदारिकसप्तकं (२१) च वर्जयित्वा शेषस्य पञ्चोत्तरप्रकृतिशतस्य (१०५) । तथाहि–सर्वासामपि प्रकृतीनां गुणितकर्मांशे वक्ष्यमाणलक्षणे क्षपणार्थमभ्युद्यते उत्कृष्टः प्रदेशसंक्रमः प्राप्यते, नान्यत्र । ततोऽसौ सादिः । तस्मादन्यः सर्वोऽप्यनुत्कृष्टः, स चोपशमश्रेण्यां व्यवच्छिद्यते, ततः प्रतिपाते च भवति, ततोऽसौ सादिः, तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः ।

गाथार्थः–पएसम्मि=प्रदेश संक्रमने विषे, ध्रुवसंकम अजहन्नो=ध्रुवसत्ता प्रकृतिओनो अजघन्य, वा=तथा आव०चेव=५ ज्ञानाव०, ४ दर्शनाव०, ५ अंतराय, अने औदारिकसप्तक, विवज्जित्तु=वर्जीने, तासि अणुक्कोसो=ते ध्रुवसत्ता प्रकृतिओनो अनुत्कृष्ट, साइयमाइ=सादि आदि ४ भांगे, सेसविगप्पा य=अने तेमना शेष २ विकल्पो, सेसि०सव्वविगप्पा=अने बाकीनी प्रकृतिओना सर्व विकल्पो, णेया साइग अधुवा=सादि सान्त भांगे जाणवा. ७२–७३

ध्रुवाध्रुवावभव्यभव्यापेक्षया। 'सेसेत्यादि' शेषविकल्पाः पञ्चोत्तरशतस्य(१०५)जघन्य उत्कृष्टश्च ज्ञानावरणीयाद्येकविंशतिप्रकृतीनां जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टाः सादयोऽध्रुवाश्च। तत्र पञ्चोत्तरशतस्य जघन्य उत्कृष्टश्च साद्यध्रुवतया भावित एव। ज्ञानावरणीयादीनां चोत्कृष्टः प्रदेशसंक्रमो गुणितकर्मांशे मिथ्यादृष्टौ कदाचिल्लभ्यते, शेषकालं त्वनुत्कृष्टः। तत एतौ द्वावपि साद्यध्रुवौ। जघन्यस्तु साद्यध्रुवतया भावित एव। शेषप्रकृतीनां च सर्वेऽप्युत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याजघन्यविकल्पा अध्रुवसत्कर्मत्वात् मिथ्यात्वस्य ध्रुवसत्कर्मणोऽपि सदैव पतद्ग्रहाप्राप्तेर्नीचैर्गोत्रसातासातवेदनीयानां तु परावर्तमानत्वात् सादयोऽध्रुवाश्चावगन्तव्याः ॥ ७२–७३ ॥

तदेवं कृता साद्यनादिप्ररूपणा (३)। सांप्रतमुत्कृष्टप्रदेशसंक्रमस्वामित्वमभिधातव्यं। तच्च गुणितकर्मांशे लभ्यत इति तन्निरूपणार्थमाह—

जो बायरतकाले-णूणं कम्मट्ठिइं तु पुढवीए। बायर(रि) पज्जत्तापज्जत्तगदीहेयरद्धासु ॥ ७४ ॥

जोगकसाउक्कोसो, बहुसो निच्चमवि आउबंधं च। जोगजहण्णेणुवरि-ल्लठिइनिसेगं बहुं किच्चा ॥७५॥

जो बायर त्ति–इह द्विधा त्रसाः–सूक्ष्मा बादराश्च। तत्र बादरा द्वीन्द्रियादयः, सूक्ष्मास्तेजोवायुकायिकाः। तत्र सूक्ष्मत्र-

---

गाथार्थः–जो=जे जीव, बायर०णूणं=बादरत्रसनी कायस्थितिए हीन, कम्मट्ठिइं तु=कर्मस्थिति (७० को० को० सागo) प्रमाण काल सुधी, पुढवीए बायरप०अद्धासु=बादर पृथ्वीकायमां पर्याप्तपणे दीर्घकाल अने अपर्याप्तपणे अल्पकाल रहीने, बहुसो=घणीवार, जोगकस्साउक्कोसो=उत्कृष्ट योगे अने उत्कृष्ट कषाये वर्ततो, आउबंधं च=अने आयुष्यबन्ध, णिच्चमवि=हमेशां, जोगजहण्णेण=जघन्ययोगमां करतो, उवरि०किच्चा=उपरनी स्थितिना निषेकोमां अधिक दलिक रचना करीने. ७४–७५

सव्यवच्छेदार्थं बादरग्रहणं। बादरत्रसानां द्वीन्द्रियादीनां यः कायस्थितिकालः पूर्वकोटीपृथक्त्वाभ्यधिकद्विसहस्रसागरोपमप्रमाणः, तेनोनां कर्मस्थितिं सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणां यावत् पृथिव्यां बादरे बादरपृथ्वीकायभवेषु स्थित्वा। कथं स्थित्वेत्यत आह–'पज्जत्ते' त्ति दीर्घेतराद्धाभ्यां पर्याप्तापर्याप्तयोर्यथासंख्येन योजना। ततोऽयमर्थः–दीर्घाद्धं पर्याप्तभवेषु, इतराद्धं स्तोकाद्धमपर्याप्तभवेषु। प्रभूतेषु पर्याप्तभवेषु स्तोकेषु चापर्याप्तभवेषु स्थित्वेत्यर्थः। तथा बहुशोऽनेकवारं योगकषायोत्कृष्ट उत्कृष्टेषु योगस्थानेषु उत्कृष्टेषु च काषायिकेषु संक्लेशपरिणामेषु वर्तित्वा। इह शेषैकेन्द्रियेभ्यो बादरपृथिवीकायस्य प्रभूतमायुस्तेनाव्यवच्छिन्नं तस्य प्रभूतकर्मपुद्गलोपादानं। बलवत्तया च तस्यातीव वेदनासहिष्णुत्वं। तेन तस्य प्रभूतकर्मपुद्गलपरिसाटो न भवतीति बादरपृथ्वीकायिकग्रहणं×। अपर्याप्तभवग्रहणं च परिपूर्णकायस्थितिपरिग्रहार्थं। तेषां चापर्याप्तकभवानां स्तोकानां पर्याप्तकभवानां च प्रभूतानां ग्रहणं प्रभूतकर्मपुद्गलपरिसाटाभावप्राप्त्यर्थं, अन्यथा हि निरन्तरमुत्पद्यमानम्रियमाणेषु बहवः पुद्गलाः परिसटन्ति। न च तेन प्रयोजनं। उत्कृष्टेषु च योगस्थानेषु वर्तमानः प्रभूतं कर्मदलिकमादत्ते, उत्कृष्टसंक्लेशपरिणामश्चोत्कृष्टां स्थितिं बध्नाति प्रभूतां चोद्वर्तयति स्तोकं चापवर्तयति, अतो योगकषायोत्कृष्टग्रहणं। 'निच्चमित्यादि' नित्यं सर्वकालं भवे भवे आयुर्बन्धकाले जघन्ये योगे वर्तमान आयुर्बन्धं कृत्वा। उत्कृष्टे हि आयुःप्रायोग्ये योगे वर्तमानः प्रभूतानायुःपुद्गलान् आदत्ते, तथास्वाभाव्याच्च ज्ञानावरणीयस्य प्रभूतान् पुद्गलान् परिसाटयति। न च तेन प्रयोजनं, अतो

×(उ०य०३१) असहिष्णुरेव वेदनाकरालितस्तथा तथा प्रयोगेण प्रभूतकर्मपुद्गलान् परिशातयतीत्येवमालोच्य बादरपृथिवीकायिकग्रहणं कृतं।

जघन्ययोगग्रहणं । तथोपरितनीषु स्थितिषु निषेकं कर्मदलिकन्यासरूपं बहु स्वभूमिकानुसारेणातिशयेन प्रभूतं कृत्वा । एवं बादरपृथ्वीकायिकेषु मध्ये पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकसागरोपमसहस्रद्वयन्यूनाः सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीः संसृत्य ततो विनिर्गच्छति । विनिर्गत्य च बादरत्रसकायेषु द्वींद्रियादिषु मध्ये समुत्पद्यते ॥ ७४–७५ ॥

बायरतसेसु तक्काल–मेवमंते य सत्तमखिईए । सव्वलहुं पज्जत्तो, जोगकसायाहिओ बहुसो ॥ ७६ ॥

बायर त्ति–एवं पूर्वोक्तेन विधिना–"पज्जत्तापज्जत्तगदीहेयरद्धासु । जोगकसाउक्कोसो बहुसो निच्चमवि आउबंधं च । जोगजहण्णेणुवरिल्लठिइनिसेगं बहुं किच्चा" इत्येवंरूपेण बादरत्रसेषु तत्कालं बादरत्रसकायस्थितिकालं पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकसागरोपमसहस्रद्वयप्रमाणं परिभ्रम्य यावतो वारान् सप्तमीं नरकपृथिवीं गन्तुं योग्यो भवति तावतो वारान् गत्वा अन्तिमे सप्तमपृथिवीनारकभवे वर्तमानः । इह दीर्घजीवित्वं योगकषायोत्कटता च लभ्यत इति यावत्संभवसप्तमनरकपृथ्वीगमनग्रहणं । तथा सप्तमपृथ्वीनारकभवे सर्वलघुपर्याप्तः सर्वेभ्योऽप्यन्येभ्यो नारकेभ्यः शीघ्रं पर्याप्तभावमुपगतः । इहापर्याप्तापेक्षया पर्याप्तस्य योगोऽसंख्येयगुणो भवति । तथा च सति तस्यातीवप्रभूतकर्मपुद्गलोपादानसंभवः । तेन चेह प्रयोजनमिति सर्वलघुपर्याप्त इत्युक्तं । बहुशश्चानेकवारं च तस्मिन् भवे वर्तमानो योगकषायाधिक उत्कृष्टानि योगस्थानानि उत्कृष्टांश्च काषायिकान् परिणामविशेषान् गच्छन् ॥ ७६ ॥

गाथार्थः–बायर० मेवं=ए प्रकारना बादर पृथ्वीकायमांथी निकलीने बादर त्रसकायमां तेनी कायस्थिति सुधी भमीने, अंते०खिईए=अन्ते सातमी नारकीमां, सव्वलहुं पज्जत्तो=सर्वथी शीघ्र पर्याप्तो थइने, जोग०बहुसो=घणीवार उत्कृष्ट योग अने कषायमां वर्ततो. ७६

जोगजवमज्झुवरिं, मुहुत्तमच्छित्तु जीवियवसाणे। तिचरिमदुचरिमसमए, पूरित्तु कसायउक्कस्सं ॥७७॥
जोगुक्कोसं चरिमदु-चरिमे समए य चरिमसमयम्मि। संपुण्णगुणियकम्मो, पगयं तेणेह सामित्ते ॥७८॥

जोग त्ति-योगयवमध्यस्योपरि अष्टसामयिकानां योगस्थानानामुपरीत्यर्थः। अन्तर्मुहूर्तं कालं यावत् स्थित्वा जीवितावसानेऽन्तर्मुहूर्ते आयुषः शेषे। एतदुक्तं भवति-अन्तर्मुहूर्तावशेषे आयुषि योगयवमध्यस्योपरि असंख्येयगुणवृद्ध्याऽन्तर्मुहूर्तं कालं यावत् प्रवर्धमानो भूत्वा।ततः किमित्याह-'तिचरिमेत्यादि' त्रयश्चरमा यस्मात्स त्रिचरमः, यत आरभ्यान्तिमः समयस्तृतीयो भवति स त्रिचरम इत्यर्थः। तस्मिन् भवस्य त्रिचरमे द्विचरमे च समये वर्तमान उत्कृष्टं कषायिकं संक्लेशस्थानं पूरयित्वा चरमे द्विचरमे च समये योगस्थानमपि चोत्कृष्टं पूरयित्वा। इहोत्कृष्टो योग उत्कृष्टश्च संक्लेशो युगपदेकमेव समयं यावत् प्राप्यते, नाधिकमिति विषमसमयतया उत्कृष्टयोगोत्कृष्टकषायस्थानग्रहणं। त्रिचरमे द्विचरमे च समये उत्कृष्टसंक्लेशग्रहणं प्रभूतोद्वर्तना स्वल्पापवर्तनाभावा(वना)र्थं, द्विचरमे चरमे च समये उत्कृष्टयोगग्रहणं परिपूर्णप्रदेशोपचयसंभवार्थं। स इत्थंभूतो नारकभवस्य चरमसमये वर्तमानः संपूर्णगुणितकर्मांशो भवति, तेन च संपूर्णगुणितकर्मांशेन इहोत्कृष्टप्रदेशसंक्रमस्वामित्वे प्रकृतमधिकारः ॥ ७७-७८ ॥

गाथार्थः-जोगजव०उवरिं=यवमध्यरूप अष्ट सामयिक स्थानोने विषे, मुहुत्तमच्छित्तु=अन्तर्मुहूर्त सुधी रहीने, जीवियवसाणे=भवना अन्ते, तिचरि०समए=त्रिचरम द्विचरम समये, कसायउक्कस्सं=उत्कृष्ट कषायस्थान, पूरित्तु=पूरीने (पामीने), जोगुक्को०समये य=अने चरिम द्विचरिम समए उत्कृष्ट योगस्थान पामीने, चरिमसमयंमि=अन्त्य समये, संपुण्ण०कम्मो=संपूर्ण 'गुणितकर्मांश' थाय छे. इह सामित्ते=अहीं (उत्कृष्ट प्र० सं०) स्वामित्वमां, तेण पगयं=तेनो अधिकार छे. ७७-७८

तदेवमुक्तो गुणितकर्मांशः । संप्रति स्वामित्वमभिधीयते—

तत्तो उव्वट्टित्ता, आवलिगासमयतप्भवत्थस्स । आवरणविग्घचोद्दसगोरालियसत्त उक्कोसो [उक्कस्सो] ॥७९॥

तत्तो त्ति—स गुणितकर्मांशस्ततः सप्तमपृथ्वीरूपान्नरकादुद्धृत्य पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु मध्ये समुत्पन्नस्ततस्तद्भवस्थस्य तस्मिन् पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियभवे तिष्ठतः प्रथमावलिकाया उपरितने चरमे समये ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयान्तरायपञ्चकौदारिकसप्तकलक्षणानामेकविंशतिप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशसंक्रमो भवति । एतासां हि कर्मप्रकृतीनां नारकभवचरमसमये उत्कृष्टयोगवशात् प्रभूतं कर्मदलिकमास्ते । तच्च बन्धावलिकायामतीतायां संक्रमयति, नान्यथा । अन्यत्र चैतावत् प्रभूतं कर्मदलिकं न प्राप्यत इति आवलिगासमयतप्भवत्थस्सेत्युपात्तं ॥ ७९ ॥

कम्मचउक्के असुभाण, बज्झमाणीण सुहुम(खवग)रागंते । संछोभणंमि नियगे, चउवीसाए नियट्टिस्स॥८०॥

कम्मचउक्के त्ति—कर्मचतुष्के दर्शनावरणवेदनीयनामगोत्रलक्षणे या अशुभाः सूक्ष्मसंपरायावस्थायामबध्यमानाः प्रकृतयो निद्राद्विकासातवेदनीयप्रथमवर्जसंस्थानप्रथमवर्जसंहननाशुभवर्णादिनवकोपघाताप्रशस्तविहायोगत्यपर्याप्तास्थिराशुभदुर्भगदुःस्व-

---

गाथार्थः-तत्तो उव्वट्टित्ता=त्यांथी नीकलीने, तप्भवत्थस्स=तिर्यंच पंचेन्द्रियना भवमां उपजीने, आव० लिगासमय=आवलिकाना अन्त्य समये, आवरण०गुक्कस्सो=आवरण विघ्न चतुर्दशक अने औदारिकसप्तकनो उत्कृष्ट प्र०सं० करे छे. ७९। कम्मचउक्के=चार कर्मने विषे, असु०माणीण=अबध्यमान अशुभ प्रकृतिओनो, सुहुमरागंते=क्षपकने सूक्ष्मसम्परायना अन्त्य समये उ०प्र०संक्रम थाय छे. णियगे=निज, संछोभणम्मि=अन्त्य संक्रम करतां, चउवीसाए नियट्टिस्स=अनिवृत्ति गुणठाणे २४ प्रकृतिनो उ०प्र०संक्रम थाय छे.८०

रानादेयायशःकीर्तिनीचैर्गोत्रलक्षणा द्वात्रिंशत्प्रकृतयस्तासां गुणितकर्मांशस्य क्षपकस्य सूक्ष्मसंपरायस्यान्ते चरमसमये उत्कृष्टः प्रदेशसंक्रमो भवति। तथाऽनिवृत्तिबादरस्य गुणितकर्मांशस्य क्षपकस्य मध्यमकषायाष्टकस्त्यानर्द्धित्रिकतिर्यग्द्विकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिसूक्ष्मसाधारणनोकषायषट्करूपाणां चतुर्विंशतिप्रकृतीनां(२४)आत्मीय आत्मीये चरमसंछोभे चरमसंक्रमे उत्कृष्टप्रदेशसंक्रमो भवति ॥ ८० ॥

तत्तो अणंतरागय–समयादुक्कस्स सायबंधद्धं । बंधिय असायबंधालिगंतसमयम्मि सायस्स ॥ ८१ ॥

तत्तो त्ति–ततो नरकभवादनन्तरभवे समागतः प्रथमसमयादारभ्य सातवेदनीयमुत्कृष्टां बन्धाद्धां उत्कृष्टं बन्धकालं यावदित्यर्थः, बध्ध्वा असातवेदनीयं बध्धुमारभते। ततोऽसातवेदनीयस्य बन्धावलिकान्तसमये सातवेदनीयं सकलमपि बन्धावलिकातीतं भवतीति कृत्वा तस्मिन् समयेऽसातवेदनीये बध्यमाने सातं यथाप्रवृत्तसंक्रमे संक्रमयतः सातस्योत्कृष्टप्रदेशसंक्रमो भवति ॥८१॥

संछोभणाए दोण्हं मोहाणं वेयगस्स खणसेसे । उप्पाइय सम्मत्तं, मिच्छत्तगए तमतमाए ॥ ८२ ॥

गाथार्थः-तत्तो=ते नरक भवथी, अणंत०बंधिय=अनन्तर भवमां आवीने, प्रथम समयथी उत्कृष्ट बन्धकाल सुधी शातावेदनीय बांधीने, असा०समयंमि=अशातानी बन्धावलिकाना अन्त्य समये, सायस्स=शाता वेदनीयनो उ०प्र०संक्रम करे छे. ८१। दोण्हं मोहाणं=मिथ्यात्वमो० अने मिश्रमो०नो, संछोभणाए=स्व स्व अन्त्य प्रक्षेप समये सर्व संक्रम वखते उ०प्र०संक्रम थाय छे. तमतमाए=तमस्तमा नारकीमां, खणसेसे=अन्तर्मुहूर्त आयुष्य शेष छते, उप्पाइयसम्मत्तं=औपशमिक समकित पामीने, मिच्छत्तगए=मिथ्यात्वे गएलाने, वेयगस्स=समकितमो०नो उ०प्र०संक्रम थाय छे. ८२

संछोभणाए त्ति–क्षपकस्य द्वयोर्मोहनीययोर्मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वरूपयोरात्मीयात्मीयचरमसंछोभे सर्वसंक्रमेणोत्कृष्टः प्रदेशसंक्रमो भवति । तथा क्षणशेषेऽन्तर्मुहूर्तावशेषे आयुषि तमस्तमाभिधानायां सप्तमपृथिव्यां वर्तमान औपशमिकं सम्यक्त्वमुत्पाद्य दीर्घेण च गुणसंक्रमकालेन वेदकसम्यक्त्वपुञ्जं समापूर्य सम्यक्त्वात् प्रतिपतितो मिथ्यात्वं च प्रतिपद्य तत्प्रथमसमय एव वेदकसम्यक्त्वस्य मिथ्यात्वे उत्कृष्टं प्रदेशसंक्रमं करोति ॥ ८२ ॥

भिन्नमुहुत्ते सेसे, तच्चरमावस्सगाणि किच्चेत्थ । संजोयणा विसंजोय–गस्स संछोभणा एसिं ॥ ८३ ॥

भिन्नमुहुत्ते त्ति–स गुणितकर्मांशः सप्तमपृथिव्यां वर्तमानो भिन्नमुहूर्तावशेषे आयुषि तस्मिन् भवे यानि चरमावश्यकानि– " जोगजवमज्झउवरिं मुहुत्तमच्छित्तु जीवियवसाणे । तिचरिमदुचरिमसमए पूरित्तु कसायउक्कस्सं" इत्यादिलक्षणानि तानि कृत्वा। तस्याश्च सप्तमपृथिव्या उध्वृत्य सम्यक्त्वं चोत्पाद्य वेदकसम्यग्दृष्टिः सन् । संयोजनान् अनन्तानुबन्धिनो विसंयोजयति । विसंयोजना क्षपणा । तत एषामनन्तानुबन्धिनां चरमसंछोभे सर्वसंक्रमेणोत्कृष्टः प्रदेशसंक्रमो भवति ॥ ८३ ॥

ईसाणागयपुरिसस्स, इत्थियाए य अट्ठवासाए । मासपुहुत्तब्भहिए, नपुंसगे सव्वसंकमणे ॥ ८४ ॥

गाथार्थः-भिन्नमुहुत्ते सेसे=अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयुष्य शेष छते, तच्च०किच्चेत्थ=ते सप्तम नरकगत गुणित कर्मांश जीव 'अन्त्यावश्यक' करीने त्यांथी निकळी अहीं, संजो०गस्स=अनंतानुबंधीनी विसंयोजना करतो, एसिं=ए अनंतानुबंधिनो, संछोभणा=चरम प्रक्षेप वखते अन्य प्रकृतिमां सर्व संक्रम करतां उ०प्र०संक्रम करे छे. ८३ । ईसाण०इत्थियाए य=गुणितकर्मांश ईशान देवलोकथी आवी पुरुष अथवा स्त्री थइ, अट्ठवा०हिए=मातृपयक्त्वाधिक आठ वर्ष अतिक्रम्ये क्षपकश्रेणि मांडनार, णपुं०मणे=नपुंसकवेदनो क्षय करतां सर्व संक्रम वखते नपुंसक वेदनो उ०प्र०संक्रम करे छे. ८४

ईसाणागय त्ति–ईशानदेवो गुणितकर्मांशः संक्लेशपरिणामेनैकेन्द्रियप्रायोग्यं बध्नन् नपुंसकवेदं भूयो भूयो बध्ध्वा तत ईशानाच्च्युतः सन् स्त्री वा पुरुषो वा जातः। ततो मासपृथक्त्वाभ्यधिकेष्वष्टसु वर्षेष्वतिक्रान्तेषु क्षपणायोद्यतते। तस्य नपुंसकवेदं क्षपयतश्चरमसंछोभे सर्वसंक्रमेण नपुंसकवेदस्योत्कृष्टः प्रदेशसंक्रमो भवति ॥ ८४ ॥

इत्थीए भोगभूमिसु, जीविय वासाणसंखियाणि तओ। हस्सठिई देवत्ता, सव्वलहुं सव्वसंछोभे ॥८५॥

इत्थीए त्ति–भोगभूमिषु भूयो भूयोऽसंख्येयवर्षाणि यावत् स्त्रीवेदं बध्ध्वा× ततः पल्योपमासंख्येयभागे गते सति अकालमृत्युना मृत्वा ह्रस्वस्थितिं दशवर्षसहस्रप्रमाणां देवायुषो बध्ध्वा देवत्वेनोत्पन्नः। तत्रापि तमेव स्त्रीवेदमापूर्य स्वायुःपर्यन्ते मनुजेषु मध्येऽन्यतरवेदसहितो जातः। ततो लघु शीघ्रं क्षपणायोद्यतः। ततः 'इत्थीए त्ति' तस्य स्त्रीवेदस्य क्षपणसमये चरमसंछोभे सर्वसंक्रमेणोत्कृष्टः प्रदेशसंक्रमो भवति। इहैवमेव स्त्रीवेदस्योत्कृष्टमापूरणमुत्कृष्टश्च प्रदेशसंक्रमः केवलज्ञानेनोपलब्धो नान्यथेत्येषैव युक्तिरत्रानुसर्तव्या, न युक्त्यन्तराणि, युक्त्यन्तराणां चिरंतनग्रन्थेष्वदर्शनतो निर्मूलतयाऽन्यथापि कर्तुमशक्यत्वात्। एवमुत्तरत्रापि यथायोगं तथैव केवलज्ञानेनोपलंभादित्युत्तरमनुसरणीयम् ॥ ८५ ॥

×(य०उ०३२) बध्ध्वापूर्य च प्रकृत्यन्तरदलिकसङ्क्रमेण।

गाथार्थः-भोगभूमिसु=युगलिक क्षेत्रमां (वारंवार स्त्रीवेद बांधतो), वासाणसंखियाणि=असंख्यात वर्ष, जीविय=जीवीने, तओ=त्यांथी, हस्सठिइदेवत्ता=जघन्यायुष्यवालो देव थइने मरीने मनुष्य थयो थको, सव्वलहुं=अतिशीघ्रपणे क्षपकश्रेणि मांडी, सव्वसंछोभे=स्त्रीवेदनो सर्वसंक्रमरूप अन्त्य प्रक्षेप करतो, इत्थीए=स्त्री वेदनो उ०प्र०संक्रम करे छे. ८५

वरिसवरिटिंथ पूरिय, सम्मत्तमसंखवासियं लहियं । गंता मिच्छत्तमओ, जहन्नदेवट्ठिई भोच्चा ॥ ८६ ॥

वरिसवर त्ति–वर्षवरो नपुंसकवेदः तं, ईशानदेवलोके प्रभूतकालमापूर्य भूयो भूयो बन्धेन दलिकान्तरसंक्रमणेन च, स्वायुःक्षये ततश्च्युत्वा संख्येयवर्षायुष्केषु मध्ये समागत्य, पुनरसंख्येयवर्षायुष्केषु मध्ये समुत्पन्नः । तत्रासंख्येयवर्षाणि यावत् स्त्रीवेदमापूर्य ततोऽसंख्येयवर्षाणि यावत् सम्यक्त्वं लब्ध्वा आस्वाद्य तद्धेतुकं च पुरुषवेदं तावन्ति वर्षाणि यावत् बध्नन् तत्र स्त्रीवेदनपुंसकवेदयोर्दलिकं निरन्तरं संक्रमयति । ततः पल्योपमासंख्येयभागमात्रं सर्वायुःप्रमाणं जीवित्वा पर्यन्ते च मिथ्यात्वमासाद्य ततो जघन्यस्थितिषु दशवर्षसहस्रप्रमाणस्थितिषु देवेषु मध्ये समुत्पन्नः । तत्र समुत्पन्नः सन् अन्तर्मुहूर्तेन कालेन सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते ॥ ८६ ॥

आगंतु लहुं पुरिसं, संछुभमाणस्स पुरिसवेयस्स । तस्सेव सगे कोहस्स, माणमायाणमवि कसिणो ॥ ८७ ॥

आगंतु त्ति–ततो देवभवाच्च्युत्वा मनुष्येषु मध्ये समुत्पन्नस्ततो माससप्तकाभ्यधिकेष्वष्टसु वर्षेष्वतिक्रान्तेषु लघु शीघ्रं

गाथार्थः-वरिसवरिटिंथ=नपुंसकवेद अने स्त्रीवेदने, पूरिय=पूरीने, सम्मत्तमसंखवासियं=असंख्यात वर्ष सुधी समकित, लहियं=आस्वादी, गंता मिच्छत्तं=अंते मिथ्यात्व पामीने, अओ जहन्न०भोच्चा=त्यांथी जघन्य आयुष्यवाली देवस्थिति भोगवीने. ८६ आगंतु=त्यांथी मनुष्यमां आवीने, लहुं=शीघ्रपणे, पुरिसं संछुभमाणस्य=पुरुष वेदनो क्षपक चरम प्रक्षेप करतो, पुरिसवेयस्स=पुरुषवेदनो उ०प्र०संक्रम करे. तस्सेव=तेज जीवने, कोहस्स=क्रोधनो, माणमाणाणवि=मान अने मायानो पण, सगे=पोत पोताना चरम प्रक्षेपमां, कसिणो=उ०प्र०संक्रम थाय छे. ८७

क्षपणायोद्यतते । केवलं बन्धव्यवच्छेदादर्वाक् आवलिकाद्विकेन कालेन यद्बद्धं पुरुषवेददलिकं तदतीव स्तोकमिति कृत्वा तत्परित्यज्य शेषस्य चरमसंछोभे उत्कृष्टः प्रदेशसंक्रमो वेदितव्यः । तथा तस्यैव पुरुषवेदोत्कृष्टप्रदेशसंक्रमस्वामिनः संज्वलनक्रोधस्य संसारं परिभ्रमता उपचितस्य क्षपणकाले प्रकृत्यन्तरदलिकानां गुणसंक्रमेण प्रचुरीकृतस्य स्वके आत्मीये चरमसंछोभे उत्कृष्टप्रदेशसंक्रमो भवति । अत्रापि बन्धव्यवछेदादर्वाक् आवलिकाद्विकेन कालेन यद्बद्धं तन्मुक्त्वा शेषस्य चरमसंछोभे उत्कृष्टप्रदेशसंक्रमो द्रष्टव्यः । एवं मानमाययोरपि वाच्यम् ॥ ८७ ॥

चउरुवसमित्तु खिप्पं, लोभजसाणं ससंकमस्संते । सुभधुवबंधिगनामा–णावलिगं गंतु बंधंता ॥ ८८ ॥

चउर त्ति–अनेकभवभ्रमणेन चतुरो वारान् [१]यावन्मोहनीयमुपशमय्य, चतुर्थोपशमनानन्तरं शीघ्रमेव क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्य तस्यैव गुणितकर्मांशस्य स्वसंक्रमस्यान्ते चरमसंछोभे इत्यर्थः, संज्वलनलोभयशःकीर्त्योरुत्कृष्टः प्रदेशसंक्रमो भवति । इहोपशमश्रेणिं प्रतिपन्नेन सता प्रकृत्यन्तरदलिकानां प्रभूतानां गुणसंक्रमेण तत्र प्रक्षेपात् द्वे अपि संज्वलनलोभयशःकीर्तिप्रकृती निरन्तरमापूर्येते, तत उपशमश्रेणिग्रहणं । आसंसारं च परिभ्रमता जन्तुना मोहनीयस्य चतुर एव वारान् यावदुपशमः क्रियते, न पञ्चममपि वारं, ततश्चतुरुपशमय्येत्युक्तं । तथा संज्वलनलोभस्य चरमसंछोभोऽन्तरकरणचरमसमये द्रष्टव्यः । न परतः, परतस्तस्य

गाथार्थः–चउरुवसमित्तु=चार वार मोहनीय उपशमावीने, खिप्पं=शीघ्र क्षपकश्रेणि मांडनार ते गुणितकर्मांश जीव, लोभजसाणं=लोभ अने यशःकीर्तिनो, ससंकमस्संते=स्वसंक्रमना अन्त्य प्रक्षेपमां उ०प्र०संक्रम करे, सुभ०नामाण=नाम कर्मनी शुभ ध्रुवबन्धिनो, बंधंता=बंध विच्छेद पछी, आवलिगं गंतुं=आवलिका गया पछी उ०प्र०संक्रम करे.८८ । १ 'यावत्' इति प्रत्यन्तरे न।

संक्रमाभावात् 'अंतरकरणम्मि कए चरित्तमोहे णुपुव्विसंकमणं' इतिवचनात् । यशःकीर्तिरपूर्वकरणगुणस्थानके त्रिंशत्प्रकृतिबन्धव्यवच्छेदसमयेऽवगन्तव्या, परतस्तस्याः संक्रमस्याभावात् । 'सुभेत्यादि' याः शुभध्रुवबन्धिन्यो नामप्रकृतयस्तैजससप्तकशुक्ललोहितहारिद्रसुरभिगन्धकषायाम्लमधुरमृदुलघुस्निग्धोष्णागुरुलघुनिर्माणलक्षणा विंशतिसंख्याः तासां चतुष्कत्वो मोहनीयोपशमानन्तरं बन्धान्तात् बन्धव्यवच्छेदादूर्ध्वमावलिकां गन्तुमावलिकायाः परतो यशःकीर्तौ प्रक्षिप्यमाणानामुत्कृष्टः प्रदेशसंक्रमो लभ्यते । इह गुणसंक्रमेण संक्रान्तं प्रकृत्यन्तरदलिकमावलिकायामतीतायां सत्यामन्यत्र संक्रमणयोग्यं भवति, नान्यथेत्यत उक्तं– "आवलियं गंतु बंधंता" इति ॥ ८८ ॥

निद्धसमा य थिरसुभा, सम्मद्दिट्ठिस्स सुभधुवाओ वि । सुभसंघयणजुयाओ, बत्तीससयोदहिचियाओ॥८९॥

निद्धसमत्ति–स्निग्धलक्षणस्पर्शसमे स्थिरशुभनामनी द्रष्टव्ये । इदमुक्तं भवति—यथाऽनन्तरं शुभध्रुवबन्धिनामप्रकृतीनामन्तर्गतस्य स्निग्धस्पर्शस्योत्कृष्टप्रदेशसंक्रमभावना कृता, तथैतयोरपि स्थिरशुभनाम्नोरवगन्तव्या । एते च स्थिरशुभनामनी अध्रुवबन्धित्वात् पृथगुपात्ते । 'सम्मद्दिट्ठिस्सेत्यादि' सम्यग्दृष्टेर्याः शुभध्रुवबन्धिन्यः पञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानपराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकसुभगसुस्वरादेयलक्षणा द्वादश प्रकृतयः शुभसंहननयुता वज्रर्षभनाराचसंहननसहिताः । वज्रर्षभनाराचं हि देवभवे नारकभवे वा वर्तमानाः सम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति, न मनुजतिर्यग्भवे, (तत्र) वर्तमानानां

गाथार्थः–थिरसुभा=स्थिर अने शुभ नामकर्मनो, निद्धसमा य=स्निग्ध स्पर्शवत् उ०प्र०संक्रम छे. सुभसंघयणजुयाओ=शुभ संघयण युक्त, बत्तीस०चियाओ=१३२ सागरोपम सुधी बांधेली सम्मद्दिट्ठिस्स=समकितीनी, सुभधुवाओ वि=शुभ ध्रुवबन्धिनी

सम्यग्दृष्टीनां देवगतिप्रायोग्यबन्धसंभवेन संहननबन्धासंभवात्। ततो नैतत्सम्यग्दृष्टेः शुभध्रुवबन्धीति पृथगुपात्तं। तथा द्वात्रिंशदधिकसागरोपमशतचिताः। तथाहि—षट्षष्टिसागरोपमाणि यावत्सम्यक्त्वमनुपालयन् एता बध्नाति। ततोऽन्तर्मुहूर्तं कालं यावत् सम्यग्मिथ्यात्वमनुभूय पुनरपि सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते। ततो भूयोऽपि सम्यक्त्वमनुभवन् षट्षष्टिसागरोपमाणि यावदेताः प्रकृतीर्बध्नातीति। तदेवं द्वात्रिंशदभ्यधिकं सागरोपमशतं यावत् सम्यग्दृष्टिर्ध्रुवा आपूर्य, वज्रर्षभनाराचसंहननं तु मनुष्यभवहीनं यथासंभवमुत्कृष्टं कालमापूर्य, ततः सम्यग्दृष्टेर्ध्रुवा अपूर्वकरणगुणस्थानके बन्धव्यवच्छेदानन्तरमावलिकामात्रं कालमतिक्रम्य यशःकीर्तौ संक्रमयतस्तासामुत्कृष्टः प्रदेशसंक्रमः, तदानीं प्रकृत्यन्तरदलिकानामप्यतिप्रभूतानां गुणसंक्रमेण लब्धानां संक्रमावलिकातिक्रान्तत्वेन संक्रमसंभवात्। वज्रर्षभनाराचसंहननस्य तु देवभवाच्च्युतः सन् सम्यग्दृष्टिर्देवगतिप्रायोग्यं बध्नन् आवलिकामात्रं कालमतिक्रम्योत्कृष्टं प्रदेशसंक्रमं करोति ॥ ८९ ॥

पूरित्तु पुव्वकोडी–पुहुत्त संछोभगस्स निरयदुगं। देवगईनवगस्स य, सगबंधंतालिगं गंतुं ॥ ९० ॥

पूरित्तु त्ति–नरकद्विकं नरकगतिनरकानुपूर्वीलक्षणं पूर्वकोटीपृथक्त्वं यावत्पूरयित्वा, सप्तसु पूर्वकोटयायुष्केषु तिर्यग्भवेषु भूयो भूयो बद्ध्वेत्यर्थः। ततोऽष्टमभवे मनुष्यो भूत्वा क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नोऽन्यत्र तन्नरकद्विकं संक्रमयन् चरमसंछोभे सर्वसंक्र-

प्रकृतिओनो उ० प्र०संक्रम यशःकीर्तिमां संक्रमावतां होय छे. ८९। निरयदुगं=नरकद्विकने, पुव्वकोडी०गस्स=पूर्वकोटि पृथक्त्वसुधी पूरीने तेने अन्य प्रकृतिमां संक्रमावतां उ०प्र० संक्रम होय छे. देव० य=देवगत्यादि नवकनो पूर्वकोटि पृथक्त्व सुधी बंध करीने, सग०गंतुं=पोताना बंध विच्छेद पछी आवलिका व्यतीत थए यशःकीर्तिमां संक्रमावतां उ०प्र०संक्रम जाणवो. ९०

मेण तस्योत्कृष्टं प्रदेशसंक्रमं करोति। तथा देवगतिनवकं देवगतिदेवानुपूर्वीवैक्रियसप्तकलक्षणं यदा पूर्वकोटिपृथक्त्वं यावदापूर्याष्टमभवे क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नः सन् स्वकबन्धान्तात् स्वबन्धव्यवच्छेदादनन्तरमावलिकामात्रं कालमतिक्रम्य यशःकीर्तौ प्रक्षिपति तदा तस्योत्कृष्टप्रदेशसंक्रमो भवति। तदानीं हि प्रकृत्यन्तरदलिकानामपि गुणसंक्रमेण लब्धानां संक्रमावलिकातिक्रान्तत्वेन संक्रमः प्राप्यत इति कृत्वा ॥ ९० ॥

सव्वचिरं सम्मत्तं, अणुपालिय पूरइत्तु मणुयदुगं। सत्तमखिइनिग्गइए(यगे), पढमे समए नरदुगस्स ॥९१॥

सव्वचिरं ति–सर्वचिरं सर्वोत्कृष्टं कालं अन्तर्मुहूर्तोनानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणीत्यर्थः। सम्यक्त्वमनुपाल्य नारकः सप्तमक्षितौ वर्तमानः सम्यक्त्वप्रत्ययं तावन्तं कालं मनुजद्विकं मनुजगतिमनुजानुपूर्वीलक्षणमापूर्य बद्ध्वा चरमेऽन्तर्मुहूर्ते मिथ्यात्वं गतः। ततस्तन्निमित्तं तिर्यग्द्विकं तस्य बध्नतो गुणितकर्मांशस्य सप्तमपृथिव्याः सकाशाद्विनिर्गतस्य प्रथमसमये एव मनुजद्विकं यथाप्रवृत्तसंक्रमेण तस्मिन् तिर्यग्द्विके बध्यमाने संक्रमयतस्तस्य मनुजद्विकस्योत्कृष्टः प्रदेशसंक्रमो भवति ॥ ९१ ॥

थावरतज्जाआया, वुज्जोयाओ नपुंसगसमाओ। आहारगतित्थयरं, थिरसममुक्कस्स सम(ग)कालं ॥९२॥

गाथार्थः–सव्वचिरं=सर्वोत्कृष्ट काल सुधी, सम्मत्तं=समकितने, अणुपालिय=धारण करीने, मणुयदुगं=मनुष्यद्विकने, पूरइत्तु=पूरीने (बांधीने), सत्तम०निग्गइए=सप्तम नरकमांथी निकलीने, पढमसमए=प्रथम समये, नरदुगस्स=मनुष्यद्विकनो उ०प्र०संक्रम करे छे. ९१. थावर०वुज्जोयाओ=स्थावरनाम, तेनी जाति(एकेन्द्रिय जाति)आतप अने उद्योतनो उ०प्र०संक्रम, नपुंसगसमाओ=नपुंसकवेदनी पेठे. आहारगतित्थयरं=आहारकसप्तक अवे तीर्थंकरनो उ० प्र० संक्रम, थिरसम=स्थिरनाम पेठे, मुक्कस्स समकालं=पण स्वोत्कृष्ट

थावर त्ति–स्थावरनाम तथा तज्जातिः स्थावरजातिः एकेन्द्रियजातिरित्यर्थः, तथा आतपनाम, उद्योतनाम । एताश्च-तस्रः प्रकृतयो नपुंसकसमा, नपुंसकवेदस्येव आसामपि प्रकृतीनामुत्कृष्टः प्रदेशसंक्रमो भावनीय इत्यर्थः । तथा आहारकसप्तकं तीर्थकरनाम च स्थिरसमं वक्तव्यं । केवलं तदुत्कृष्टस्वकबन्धकालं यावदापूरणीयमभिधातव्यं । इयमत्र भावना—आहारकसप्तकं तीर्थकरनाम चोत्कृष्टं स्वबन्धकालं यावदापूर्य । तत्राहारकसप्तकस्य स्वबन्धकाल उत्कृष्टो देशोनां पूर्वकोटीं यावत्संयममनुपालयतो यावानप्रमत्ततताकालस्तावान् सर्वो वेदितव्यः । तीर्थकरनाम्नश्च स्वबन्धकाल उत्कृष्टो देशोनपूर्वकोटीद्वयाभ्यधिकानि त्रयस्त्रिंशत्सा-गरोपमाणि । तत एतावन्तं कालं यावदापूर्य क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नो यदा बन्धव्यवच्छेदादनन्तरमावलिकामात्रं कालमतिक्रम्य यशःकीर्तौ संक्रमयति, तदा तयोरुत्कृष्टः प्रदेशसंक्रमः ॥ ९२ ॥

चउरुवसमित्तु मोहं, मिच्छत्तगयस्स नीयबंधंतो । उच्चागोउक्कोसो, तत्तो लहु सिज्झओ होइ ॥ ९३ ॥

चउ त्ति–इह मोहोपशमं कुर्वन् उच्चैर्गोत्रमेव बध्नाति, न नीचैर्गोत्रं । नीचैर्गोत्रसत्कानि च दलिकानि गुणसंक्रमेणोच्चैर्गोत्रे संक्रमयति । ततश्चतुष्कृत्वो मोहोपशमग्रहणमवश्यं कर्तव्यं । तत्र चतुरो वारान् मोहनीयमुपशमयन् उच्चैर्गोत्रं च बध्नन् तत्र नीचैर्गोत्रं गुणसंक्रमेण संक्रमयति । चतुष्कृत्वश्च मोहोपशमः किल भवद्वयेन भवति । ततस्तृतीये भवे मिथ्यात्वं गतः सन् नीचै-

बन्धकाल सुधी पूरीने ९२। चउरु०मोहं=चार वार मोहनीय उपशमावी, मिच्छत्तगयस्स=मिथ्यात्वे गएलो, नीयबंधंतो=नीच-गोत्रना बन्ध विच्छेद पछी, तत्तो=त्यार पछी, लहु=शीघ्र, सिज्झओ=मोक्षनी इच्छावालो नीचगोत्रना अन्त्य बंध समये, उच्चगो=उंचगोत्रनो, उक्कोसो होइ=उ०प्र०संक्रम करे छे. ९३

गोत्रं बध्नाति, तच्च बध्नन् तत्रोच्चैर्गोत्रं संक्रमयति । ततः पुनरपि सम्यक्त्वमासाद्योच्चैर्गोत्रं बध्नन् तत्र नीचैर्गोत्रं संक्रमयति । एवं भूयो भूय उच्चैर्गोत्रं नीचैर्गोत्रं च बध्नतो नीचैर्गोत्रबन्धव्यवच्छेदानन्तरं शीघ्रमेव सिद्धिं गन्तुकामस्य नीचैर्गोत्रबन्धचरमसमये उच्चैर्गोत्रस्य गुणसंक्रमेण बन्धेन चोपचितीकृतस्योत्कृष्टः प्रदेशसंक्रमो भवति ॥९३॥ तदेवमुक्तमुत्कृष्टप्रदेशसंक्रमस्वामित्वं (४)॥

संप्रति जघन्यप्रदेशसंक्रमस्वामित्वमभिधानीयं । तच्च प्रायः क्षपितकर्मांशे प्राप्यत इति तस्यैव स्वरूपमाह—

पल्लासंखियभागोण, कम्मठिइमच्छिओ निगोएसु । सुहुमेस(सु)भवियजोग्गं, जहन्नयं कट्टु निग्गम्म ॥९४॥
जोग्गेस(सु)संखवारे, सम्मत्तं लभिय देसविरयं च । अट्ठक्खुत्तो विरई, संजोयणहा य तइवारे ॥ ९५ ॥
चउरुवसमित्तु मोहं, लहुं खवेंतो भवे खवियकम्मो । पाएण तहिं पगयं, पडुच्च काई(ओ)वि सविसेसं ॥९६॥

पल्ल त्ति—यो जीवः पल्योपमासंख्येयभागन्यूनां कर्मस्थितिं सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणां यावत् पल्योपमासंख्येयभाग-

---

गाथार्थः—पल्ला०भागोण=पल्योपमना असंख्यातमे भागे हीन कम्मठिइं=कर्मस्थिति प्रमाण काल सुधी, अत्थिओ निगोएसु सुहुमे=सूक्ष्म निगोदमां वसीने, अभवियजोग्गं=अभव्य योग्य, जहन्नयं कट्टु=जघन्य (प्रदेशोपचय) करीने, निग्गम्म=त्यांथी नीकलीने ९४ । जोग्गे=सम्यक्त्व योग्य भवोमां, असंखवारे=असंख्यवार, सम्मत्तं=समकित, देसविरयं च=अने देशविरतिने, लभिय=पामीने, अट्ठक्खुत्तो=आठ वार विरई=सर्वविरति, य=अने, तइवारे=तेटलीवार, संयोजणहा=अनंतानुबंधि विसंयोजीने ९५ । चउ० मोहं=चार वार मोहोपशम करीने, लहुं खवेंतो=शिघ्र कर्म खपावतो, खवियकम्मो=क्षपित कर्मांश, भवे=थाय छे. पाएण=प्राये करीने, तहिं पगयं=ते क्षपित कर्मांशनो अधिकार छे. पडुच्च काई वि=केटलीक प्रकृतिने आश्रयीने, सविसेसं=विशेषता छे. ९६

हीनं सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणं कालं यावदित्यर्थः। सूक्ष्मनिगोदेषु सूक्ष्मानन्तकायिकेषु मध्ये उषित्वा। सूक्ष्मनिगोदा हि स्वल्पायुषो भवन्ति, ततस्तेषां प्रभूतजन्ममरणभावेन वेदनार्तानां प्रभूतपुद्गलपरिसाट उपजायते। अपि च सूक्ष्मनिगोदजीवानां मन्दयोगता ×मन्दकषायत्वं च भवति। ततोऽभिनवकर्मपुद्गलोपादानमपि तेषां स्तोकतरमेव प्राप्यत इति सूक्ष्मनिगोद-(जीवानां मन्दयोग)ग्रहणं "अभवियजोग्गं जहन्नयं कट्टु निग्गम्म त्ति" ×१अभव्यप्रायोग्यं जघन्यं अभव्यप्रायोग्यजघन्यकल्पं प्रदेशसंचयं कृत्वा ततः सूक्ष्मनिगोदेभ्यो निर्गत्य योग्येषु सम्यक्त्वदेशविरतिसर्वविरतियोग्येषु त्रसेषु मध्ये उत्पद्य पल्योपमासंख्येयभागमध्ये संख्यातीतान् वारान् यावत् सम्यक्त्वं स्वल्पकालिकीं देशविरतिं च लब्ध्वा। कथं लब्धेति चेदुच्यते—सूक्ष्मनिगोदेभ्यो निर्गत्य बादरपृथ्वीकायेषु मध्ये समुत्पन्नस्ततोऽन्तर्मुहूर्तेन कालेन विनिर्गत्य मनुष्येषु पूर्वकोटयायुष्केषु मध्ये समुत्पन्नः। तत्रापि शीघ्रमेव माससप्तकानन्तरं योनिविनिर्गमनेन जातः। ततोऽष्टवार्षिकः सन् संयमं प्रतिपन्नः। ततो देशोनां पूर्वकोटीं यावत् संयममनुपाल्य स्तोकावशेषे जीविते सति मिथ्यात्वं प्रतिपन्नस्ततो मिथ्यात्वेनैव कालगतः सन् दशवर्षसहस्रप्रमाणस्थितिषु देवेषु मध्ये देवत्वेनोपजातः। ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रे गते सति सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते। ततो दशवर्षसहस्राणि जीवित्वा तावन्तं च कालं सम्यक्त्वमनुपाल्य पर्यवसानावसरे मिथ्यात्वेन कालगतः सन् बादरपृथिवीकायिकेषु मध्ये समुत्पन्नः। ततोऽन्तर्मुहूर्तेन ततोऽप्युद्वृत्य मनुष्येषु मध्ये समुत्पद्यते। ×२ततः पुनरपि सम्यक्त्वं वा देशविरतिं वा सर्वविरतिं वा प्रतिपद्यते।

×(य०उ०३३) मन्दकषायतायां स्वल्पतरां स्थितिं बध्नाति स्तोकां चोद्वर्तयति। ×१(य०उ०३४) भव्यप्रायोग्यजघन्यकल्पं प्रदेशसंचयं कृत्वा। ×२ (य०ठ०३५) ततः पुनरपि सम्यक्त्वं देशविरतिं वा प्रतिपद्यते।

एवं देवमनुष्यभवेषु सम्यक्त्वादि गृह्णन् मुञ्चंश्च तावद्वक्तव्यो यावत्पल्योपमासंख्येयभागमध्ये संख्यातीतान् वारान् यावत् सम्यक्त्वलाभः स्वल्पकालिकश्च देशविरतिलाभो भवति । इह यदा यदा सम्यक्त्वादिप्रतिपत्तिस्तदा तदा बहुप्रदेशाः प्रकृतीरल्पप्रदेशाः करोति । ततो बहुशः सम्यक्त्वादिप्रतिपत्तिग्रहणं। एतेषु च सम्यक्त्वादियोग्येषु भवेषु मध्येऽष्टौ वारान् सर्वविरतिं प्रतिपद्यते तावत एव वारानष्टौ वारानित्यर्थः । त्रिंसयोजनहा अनन्तानुबन्धिविघातको भूत्वा । तथा चतुरो वारान्मोहनीयमुपशमय्य ततोऽन्यस्मिन् भवे लघु शीघ्रं कर्माणि क्षपयन् क्षपितकर्मांश इत्यभिधीयते । एतेन च क्षपितकर्मांशेनेह जघन्यप्रदेशसंक्रमस्वामित्वे चिन्त्यमाने प्रायेण बाहुल्येन प्रकृतमधिकारः । काश्चित्पुनः प्रकृतीरधिकृत्य सविशेषं भणिष्यामि ॥९४–९६॥

तत्र जघन्यप्रदेशसंक्रमस्वामित्वमाह—

आवरणसत्तगम्मि उ, सहोहिणा तं विणोहिजुयलम्मि । निद्दादुगंतराइय–हासचउक्के य बंधंते ॥९७॥

आवरण त्ति–अवधिना सह वर्तते यो जीवः तस्य अवधिज्ञानावरणरहितं ज्ञानावरणचतुष्टयं, अवधिदर्शनावरणरहितं दर्शनावरणत्रयं, एतासां सप्तानां प्रकृतीनामात्मीयात्मीयबन्धव्यवच्छेदसमये यथाप्रवृत्तसंक्रमेण जघन्यः प्रदेशसंक्रमो भवति । अवधिज्ञानमुत्पादयन् प्रभूतान् कर्मपुद्गलान् परिसाटयति स्म । तत एतासां स्वस्वबन्धव्यवच्छेदसमये स्तोका एव पुद्गलाः

गाथार्थः–सहोहिणा=अवधिज्ञान सहित जीव, आवरण०उ=अवधिज्ञाना० अने अवधिदर्शना० विना आवरणसप्तकनो, तं विणोहिजुयलम्मि=अवधि रहित जीव अवधिद्विकनो, निद्दा०चउक्के य=निद्राद्विक, अन्तराय पंचक अने हास्य चतुष्कनो, बंधंते=बन्ध विच्छेद समये ज०प्र०संक्रम करे छे. ९७

प्राप्यन्ते । अत्रापि च जघन्यप्रदेशसंक्रमेणाधिकारः, ततोऽवधिना सह यो वर्तत इत्युक्तं । तथा तमवधिं विनाऽवधिज्ञानावधिदर्शनरहित इत्यर्थः, (तस्य) अवधियुगले अवधिज्ञानावरणावधिदर्शनावरणरूपे स्वस्वबन्धव्यवच्छेदसमये जघन्यः प्रदेशसंक्रमो भवति । अवधिज्ञानमवधिदर्शनं चोत्पादयतः प्रबलक्षयोपशमभावतोऽवधिज्ञानावरणावधिदर्शनावरणयोरतीव रूक्षाः कर्मपुद्गला जायन्ते । ततो बन्धव्यवच्छेदकालेऽपि प्रभूताः परिसटन्ति । तथा च सति जघन्यः प्रदेशसंक्रमो न लभ्यत इति तं विणेत्युक्तं। 'निद्देत्यादि' निद्राद्विकं निद्राप्रचलारूपं, अन्तरायपञ्चकं, हास्यचतुष्कं हास्यरतिभयजुगुप्सालक्षणं, एतासामेकादशप्रकृतीनां (११) स्वस्वबन्धान्तसमये यथाप्रवृत्तसंक्रमेण जघन्यः प्रदेशसंक्रमो भवति । निद्राद्विकहास्यचतुष्टययोर्बन्धव्यवच्छेदानन्तरं गुणसंक्रमेण संक्रमो जायते। ततः प्रभूतं दलिकं लभ्यते। अन्तरायपञ्चकस्य(तु)बन्धव्यवच्छेदानन्तरं संक्रम एव न भवति, पतद्ग्रहाप्राप्तेः, ततो बंधांतसमयग्रहणं ॥ ९७ ॥

सायस्स णुवसमित्ता, असायबंधाण चरिमबंधंते । खवणाए लोभस्स वि, अपुव्वकरणालिगाअंते ॥९८॥

सायस्स त्ति—अनुपशमय्य मोहनीयोपशममकृत्वा, उपशमश्रेणिमकृत्वेत्यर्थः । असातबन्धानां मध्ये यश्चरमोऽसातबन्धस्तस्यान्तिमे समये वर्तमानस्य क्षपणायोद्यतस्य सातस्य जघन्यः प्रदेशसंक्रमो भवति । परतो हि सातस्य पतद्ग्रहता भवति, न

गाथार्थः-अणुवसमित्ता=मोहनीयनो उपशम नहि करीने, असायबंधाण=अशाताना बन्धना, चरिमबंधंते=सर्वान्तिम बन्ध वखते, सायस्स=शातानो ज०प्र०संक्रम करे छे. खवणाए=मोहनो अनुपशमक क्षपक जीव, अपुव्व०अंते=अपूर्वकरणनी आवलिकाना अन्त्य समये, लोभस्सवि=लोभनो ज०प्र०संक्रम करे छे. ९८

संक्रमः । 'खवणाए' इत्यादि, मोहनीयोपशममकृत्वा क्षपणायोद्यतस्यापूर्वकरणाद्धायाः प्रथमावलिकाया अन्तसमये संज्वलनलोभस्य जघन्यः प्रदेशसंक्रमः । परतो गुणसंक्रमे (णं) लब्धस्यातिप्रभूतस्य दलिकस्य संक्रमावलिकातिक्रान्तत्वेन संक्रमसंभवाज्जघन्यप्रदेशसंक्रमाभावः ॥ ९८ ॥

अयरच्छावट्ठिदुगं, गालिय थीवेयथीणगिद्धितिगे । सगखवणहापवत्तस्संत(ते) एमेव मिच्छत्ते ॥९९॥

अयर त्ति—सागरोपमाणां द्वे षट्षष्टी यावत्सम्यक्त्वमनुपालयन् स्त्रीवेदस्त्यानर्द्धित्रिकलक्षणाश्चतस्रः प्रकृतीर्गालयित्वा तासां संबन्धि प्रभूतं कर्मदलिकं परिसा(शा)ट्य किञ्चिच्छेषाणां सतीनां तासां क्षपणाय समभ्युद्यतस्य यथाप्रवृत्तकरणान्तिमसमये विध्यातसंक्रमेण जघन्यप्रदेशसंक्रमो भवति । परतोऽपूर्वकरणे गुणसंक्रमेण प्रभूतकर्मदलिकसंक्रमसंभवात् जघन्यप्रदेशसंक्रमो न लभ्यत इति यथाप्रवृत्तकरणान्तसमयग्रहणं । 'एमेव मिच्छत्त इति' एवमेव पूर्वोक्तेनैव प्रकारेण मिथ्यात्वस्य जघन्यप्रदेशसंक्रमोऽवगन्तव्यः । तद्यथा—द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां यावत्सम्यक्त्वमनुपाल्य तावन्तं कालं मिथ्यात्वं गालयित्वा किञ्चिच्छेषस्य मिथ्यात्वस्य क्षपणाय समुद्यतस्य स्वकीययथाप्रवृत्तकरणान्तसमये वर्तमानस्य विध्यातसंक्रमेण मिथ्यात्वस्य जघन्यः प्रदेशसंक्रमो भवति, परतो गुणसंक्रमः प्रवर्तते, तेन स न प्राप्यते ।। ९९ ॥

गाथार्थः-अयरच्छावट्ठिदुगं=बे छासठ सागरोपम सुधी, थीवेय=स्त्री वेद, थीणगिद्धितिगं=अने थीणद्धित्रिकने, गालिय=निर्जरावीने, सग०स्संते=स्व स्व प्रकृति खपावतां यथाप्रवृत्त करणना अन्ते ज०प्र०संक्रम करे छे. एमेव=एज रीते, मिच्छत्ते=मिथ्यात्वने विषे कहेवुं. ९९

हस्सगुणसंकमद्धाए, पूरयित्ता समीससम्मत्तं । चिरसंमत्ता मिच्छत्त–गयस्सुव्वलणथोगो सिं ॥ १०० ॥

हस्स त्ति–सम्यक्त्वमुत्पाद्य ह्रस्वया गुणसंक्रमाद्धया स्तोककालेन गुणसंक्रमेणेत्यर्थः । समिश्रं सम्यक्त्वं सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वे इत्यर्थः । मिथ्यात्वदलेन पूरयित्वा आपूर्य चिरेण प्रभूतेन कालेन सम्यक्त्वान्मिथ्यात्वं गतस्य द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां यावत्सम्यक्त्वमनुपाल्य मिथ्यात्वं गतस्येत्यर्थः । पल्योपमासंख्येयभागमात्रेण कालेन ते सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वे उद्वलयतः स्तोके उद्वलनसंक्रमे तयोर्जघन्यप्रदेशसंक्रमो द्विचरमखंडस्य चरमसमये सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोर्यद्दलिकं परस्थाने मिथ्यात्वप्रकृतिरूपे प्रक्षिप्यते स तयोर्जघन्यप्रदेशसंक्रम इत्यर्थः ॥ १०० ॥

संजोयणाण चतुरुव–समित्तु संजोजइत्तु अप्पद्धं । अयरच्छावट्ठिदुगं, पालिय सकहप्पवत्तंते ॥ १०१ ॥

संजोयणाण त्ति–चतुरो वारान् मोहनीयमुपशमय्य, चतुष्कृत्वो मोहनीयोपशमनेन किं प्रयोजनमिति चेदुच्यते–प्रभूतपुद्गलपरिसाटः । तथाहि–चारित्रमोहनीयप्रकृतीनामुपशमं कुर्वन् स्थितिघातरसघातगुणश्रेणिगुणसंक्रमैः प्रभूतान् पुद्गलान्

गाथार्थः-हस्स०मद्धाए=अल्प कालिक गुणसंक्रम वडे, समीससम्मत्तं=मिश्रमो० अने सम्यक्त्वमोहनीयने, पूरयित्ता=(मिथ्यात्व दलिकथी) पूरीने, चिरसंमत्ता=घणा काल सुधी सम्यक्त्वे रहीने, मिच्छत्तगयस्स=मिथ्यात्वे गएलाने, सिं=ते बेनी, उव्वलणथोगो=स्तोक उद्वलना थता ज०प्र०संक्रम थाय छे. १००। चतुरुवसमित्तु=चार वार मोहनीयने उपशमावी, अप्पद्धं=स्तोक काल सुधी, संजोयणाण=अनन्तानुबन्धिने, संजोजइत्तु=बांधीने, अयर०दुगं=१३२ सागरोपम सुधी, पालिय=समकित पालीने, सक०ते=स्वयथाप्रवृत्तना अन्ते अनन्ता०नो ज०प्र०संक्रम थाय छे, १०१

परिसाटयतीति । ततश्चतुष्कृत्वो मोहनीयोपशमं कृत्वा मिथ्यात्वं गच्छति । मिथ्यात्वं गतश्च सन् अल्पाद्धां अल्पं कालं यावत् संयोजनान् संयोज्यानन्तानुबन्धिनो बध्ध्वा, तदानीं च चारित्रमोहनीयदलिकं स्वल्पमेव विद्यते, चतुष्कृत्वो मोहोपशमकाले तस्य स्थितिघातादिभिर्घातितत्वात् । ततोऽनन्तानुबन्धिनो बध्नन् तेषु यथाप्रवृत्तसंक्रमेण स्तोकमेव चारित्रमोहनीयदलिकं संक्रमयति । ततोऽन्तर्मुहूर्ते गते सति पुनरपि सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते । तच्च द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां यावदनुपाल्यानन्तानुबन्धिनां क्षपणाय समुद्यतते । तस्य स्वकयथाप्रवृत्तकरणान्तसमये तेषामनन्तानुबन्धिनां विध्यातसंक्रमेण जघन्यः प्रदेशसंक्रमो भवति । परतोऽपूर्वकरणे गुणसंक्रमः प्रवर्तते इति स न प्राप्यते ॥ १०१ ॥

अट्ठकसायासाए य, असुभधुवबंधि अत्थिरतिगे य । सव्वलहुं खवणाए, अहापवत्तस्स चरिमम्मि ॥१०२॥

अट्ठ त्ति–अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणरूपा अष्टौ कषायाः असातवेदनीयं, अशुभध्रुवबन्धिन्यः कुवर्णादिनवकोपघातरूपाः, अस्थिरत्रिकं अस्थिराशुभायशःकीर्तिसंज्ञं, एतासां (२२) द्वाविंशतिप्रकृतीनां कषायाष्टकरहितानां । 'सव्वलहुं ति' सर्वेभ्योऽन्येभ्यः शीघ्रमेव क्षपणायोत्थितस्य मासपृथक्त्वाभ्यधिकेषु अष्टसु वर्षेष्वतिक्रान्तेषु क्षपणायोद्यतस्येत्यर्थः, अष्टौ कषायान् मतिदेशोनां पूर्वकोटीं यावत् संयममनुपाल्य । पञ्चसंग्रहे पुनः सर्वा अप्येताः प्रकृतीरधिकृत्य देशोनां पूर्वकोटीं यावत् संयममनुपाल्येत्युक्तं । क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्य यथाप्रवृत्तकरणचरमसमये कषायाष्टकस्य विध्यातसंक्रमेण, शेषाणां यथाप्रवृत्तसंक्रमेण जघन्य-

गाथार्थः–अट्ठ०साए=अष्ट कषाय, अशाता वेदनीय, अशु०बन्धि=अशुभ ध्रुवबन्धि ९, अत्थिरतिगे य=अने अस्थिरत्रिकनो ज०प्र०संक्रम, सव्वलहुं=सर्वथी शीघ्र, खवणाए=क्षय करतो, अहापवत्तस्स=यथाप्रवृत्तसंक्रमना, चरिमम्मि=चरम समये करे छे. १०२

प्रदेशसंक्रमो भवति ॥ १०२ ॥

पुरिसे संजलणतिगे य, घोलमाणेण चरमबद्धस्स। सगअंतिमे असाएण, समा अरई य सोगो य॥१०३॥

पुरिसे त्ति–पुरिसे इत्यादौ षष्ठ्यर्थे सप्तमी। पुरुषवेदस्य संज्वलनत्रिकस्य च क्रोधमानमायारूपस्य क्षपणाय समुद्यतेन क्षपणश्रेणिं प्रतिपन्नेन स्वस्वबन्धचरमसमये। 'घोलमाणेणं ति' जघन्ययोगिना यद्बद्धं दलिकं तस्य चरमसंछोभे जघन्यः प्रदेशसंक्रमो भवति। तथाहि–आसां चतसृणामपि प्रकृतीनां बन्धव्यवच्छेदसमये समयोनावलिकाद्विकबद्धं मुक्त्वाऽन्यत् प्रदेशसत्कर्म न विद्यते। तदपि च प्रतिसमयं संक्रमेण क्षयमुपगच्छति तावत् यावच्चरमसमयबद्धस्यासंख्येयो भागः शेषो भवति। ततस्तं सर्वसंक्रमेण संक्रमयतो जघन्यः प्रदेशसंक्रमः। 'असाएण समा अरई य सोगो य त्ति' अरतिशोकावसातसमौ असातवेदनीयस्येवारतिशोकयोर्जघन्यः प्रदेशसंक्रमो भावनीय इत्यर्थः ॥ १०३ ॥

वेउव्वि(व्वे)क्कारसगं, उव्वलियं बंधिऊण अप्पद्धं। जिट्ठठिई निरयाओ, उव्वट्टित्ता अबंधित्तु ॥ १०४ ॥

थावरगयस्स चिर–उव्वलणो(णे)एयस्स एव उच्चस्स। मणुयदुगस्स य तेउसु, वाउसु वा सुहुमबद्धाणं १०५

गाथार्थः-पुरिसे=पुरुषवेद, संजलणतिगे य=अने संज्वलन त्रिकनो(क्षपकजीव)चरमबद्धस्स=बन्धना अन्त्य समये, घोलमाणेण=जघन्य योग वडे बांधेला दलिकनो, सगअन्तिमे=पोत पोताना अन्त्य संक्रम वखते ज०प्र०संक्रम करे. अरई य सोगो य=अरति अने शोकनो ज०प्र०संक्रम, असाएण समा=अशाताना ज०प्र०संक्रम पेठे छे. १०३। उव्वलियं=उद्वलित, विउव्विक्कारसगं=वैक्रिय एकादशकने, अप्पद्धं=अल्प काल सुधी, बंधिऊण=बांधीने, जिट्ठठिइनिरयाओ=उत्कृष्ट स्थितिवाला नारकीमांथी उव्वट्टित्ता=निकलीने,

वेउव्वि त्ति–देवद्विकनरकद्विकवैक्रियसप्तकलक्षणं वैक्रियैकादशकं एकेन्द्रियभवे उद्वर्तमानेनोद्वलितं। पुनरपि पञ्चेन्द्रियत्वमुपागतेन सताऽल्पाद्धमल्पकालं अन्तर्मुहूर्तकालं यावदित्यर्थः बध्ध्वा । ततो ज्येष्ठस्थितिरुत्कृष्टस्थितिस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिक इत्यर्थः, सप्तमनरकपृथिव्यां नारको जातः। ततस्तावन्तं कालं यावत् यथायोगं तद्वैक्रियैकादशकमनुभूय ततो नरकादुध्धृत्य पञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु मध्ये समुत्पन्नः । तत्र च तद्वैक्रियैकादशकमबध्ध्वा स्थावरेष्वेकेन्द्रियेषु मध्ये समुत्पन्नः । तस्य चिरोद्वलनया पल्योपमासंख्येयभागमात्रेण कालेनोद्वलनया तदुद्वलयतो यत् द्विचरमखंडस्य चरमसमये प्रकृत्यन्तरे दलिकं संक्रामति, स तस्य वैक्रियैकादशकस्य जघन्यः प्रदेशसंक्रमः । 'एयस्सेत्यादि' एतस्यैवानन्तरोक्तस्य जीवस्य पूर्वोक्तेन विधिना तेजोवायुषु मध्ये समागतस्य सूक्ष्मैकेन्द्रियभवे वर्तमानेन यद्बद्धमुच्चैर्गोत्रं मनुजद्विकं च मनुजगतिमनुजानुपूर्वीलक्षणं, ते चिरोद्वलनयोद्वलयतो द्विचरमखंडस्य चरमसमये परप्रकृतौ यद्दलिकं संक्रामति स तयोर्जघन्यः प्रदेशसंक्रमः । इयमत्र भावना–मनुजद्विकमुच्चैर्गोत्रं च प्रथमतस्तेजोवायुभवे वर्तमानेनोद्वलितं, पुनरपि सूक्ष्मैकेन्द्रियभवमुपागतेनान्तर्मुहूर्तं यावद्बद्धं, ततः पञ्चेन्द्रियभवं गत्वा सप्तमनरकपृथिव्यामुत्कृष्टस्थितिको नारको जातः । तत उध्धृत्य पञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु मध्ये समुत्पन्नः । एतावन्तं च कालमबध्ध्वा प्रदेशसंक्रमेण चानुभूय तेजोवायुषु मध्ये समागतः । तस्य मनुजद्विकोच्चैर्गोत्रे चिरोद्वलनयोद्वलयतो द्विचरमखंडस्य चरमसमये परप्रकृतौ यद्दलं संक्रामति स तयोर्जघन्यः प्रदेशसंक्रमः ॥ १०४–१०५ ॥

अबन्धित्तु=(ति०पंचेन्द्रियमां ११ प्रकृति) बांध्या विना, थावरगयस्स=एकेन्द्रियमां गएलाने, चिरउव्वलणा=दीर्घ काल सुधी उद्वलना करतां, एयस्स=ए ११नो ज०प्र०सं० थाय. एवं–एज रीते, सुहुम बद्धाणं=सूक्ष्मपणामां बांधेल, उच्चस्स=उच्चैर्गोत्र, मणुयदुगस्स य=अने मनुष्यद्विकनो, तेउसु वाउसु वा=तेउ अने वाउकायमां ज०प्र०सं० थाय. १०४–१०५

हस्सं कालं बंधिय, विरओ आहारसत्तगं गंतुं। अविरइ महुव्वलंतस्स जा थोव उव्वलणा ॥ १०६ ॥

हस्सं ति–ह्रस्वं कालं स्तोकं कालं यावत् विरतोऽप्रमत्तसंयतः सन् आहारकसप्तकं बध्ध्वा कर्मोदयपरिणतिवशात् पुनरप्यविरतिं गतः । ततोऽन्तर्मुहूर्तात्परतो महोद्वलनया चिरोद्वलनया पल्योपमासंख्येयभागप्रमाणेन कालेनोद्वलनयोद्वलयतः सतो या स्तोकोद्वलना द्विचरमखंडस्य चरमसमये यत्कर्मदलिकं परप्रकृतिषु प्रक्षिप्यते, सा स्तोकोद्वलना, सा आहारकस्य जघन्यः प्रदेशसंक्रमः ॥ १०६ ॥

तेवट्ठिसयं उदहीण, स चउपल्लाहियं अबंधित्ता। अंते अहप्पवत्त–करणस्स उज्जोव(य)तिरियदुगे ॥१०७॥

तेवट्ठिसयं ति–त्रिषष्ट्यधिकमुदधिशतं सागरोपमाणां शतं चतुष्पल्योपमाधिकं च यावत् स क्षपित(क्षिप्त)कर्मांशः सर्वजघन्यतिर्यग्द्विकोद्योतसत्कर्मा उद्योततिर्यग्द्विकं अबध्ध्वा यथाप्रवृत्तकरणस्यान्ते चरमसमये उद्योततिर्यग्द्विकयोर्जघन्यं प्रदेशसंक्रमं करोति । कथं त्रिषष्ट्यधिकं सागरोपमाणां शतं चतुःपल्याधिकं च यावदबध्ध्वेति चेदुच्यते–स क्षपितकर्मांशस्त्रिपल्योपमायुष्केषु मनुजेषु मध्ये समुत्पन्नस्तत्र देवद्विकमेव बध्नाति, न तिर्यग्द्विकं, नाप्युद्योतं । तत्र चान्तर्मुहूर्ते शेषे सत्यायुषि सम्यक्त्वमवाप्य

गाथार्थः–विरओ–सर्वविरति जीव, आहारसत्तगं=आहारकसप्तकने, हस्सं कालं=अल्प काल सुधी, बन्धिय=बांधीने, अविरइ गंतुं=अविरतिपणुं पामीने, लहुव्वलंतस्स=दीर्घ उद्वलना करतां, जा=जे, थोव उव्वलणा=स्तोक उद्वलना तेज ज०प्र०संक्रम. १०६। उज्जोवतिरियदुगे=उद्योत अने तिर्यग्द्विक, सचउपल्लाहियं=चार पल्योपमाधिक, तेवट्ठिसयं उदहीण=१६३ सागरोपम सुधी, अबंधित्ता=बांध्या विना, अहःकरणस्स=यथाप्रवृत्तकरणना, अंते=अन्त्य समये ज०प्र०सं० करे, १०७

ततोऽप्रतिपतितसम्यक्त्व एव पल्योपमस्थितिको देवो जातः×। ततोऽप्यप्रतिपतितसम्यक्त्वो देवभवाच्च्युत्वा मनुष्येषु मध्ये समुत्पन्नः। ततस्तेनैवाप्रतिपतितेन सम्यक्त्वेन सहित एकत्रिंशत्सागरोपमस्थितिको ग्रैवेयकेषु मध्ये देवो जातः। तत्र चोत्पत्त्यनन्तरमन्तर्मुहूर्तादूर्ध्वं मिथ्यात्वं गतः। ततोऽन्तर्मुहूर्तावशेषे आयुषि पुनरपि सम्यक्त्वं लभते। ततो द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां यावन्मनुष्यानुत्तरसुरादिषु सम्यक्त्वमनुपाल्य तस्याः सम्यक्त्वाद्धाया अन्तर्मुहूर्ते शेषे शीघ्रमेव क्षपणाय समुद्यतः। ततोऽनेन विधिना त्रिषष्ट्यधिकं सागरोपमाणां शतं चतुष्पल्याधिकं च यावत्तिर्यग्द्विकमुद्योतं च बन्धरहितं भवतीति ॥ १०७ ॥

इगविगलिंदियजोग्गा, अट्ठ पज्जत्तगेण सह ते(ता)सिं। तिरियगइसमं, नवरं पंचासीउदहिसयं तु ॥१०८॥

इग त्ति–एकेन्द्रियविकलेन्द्रिययोग्या अष्टौ याः प्रकृतय एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिस्थावरातपसूक्ष्मसाधारणलक्षणाः। तासामपर्याप्तकसहितानां नवानां प्रकृतीनां तिर्यग्गतिसमं वक्तव्यं। नवरमत्र पञ्चाशीत्यधिकं सागरोपमशतं चतुष्पल्याधिकं यावदबध्ध्वेति वक्तव्यं। कथमेतावन्तं कालं यावदबन्ध इति चेदुच्यते–इह क्षपितकर्मांशो द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिकः षष्ठपृथिव्यां नारको जातः×१। तत्राप्यन्तर्मुहूर्तावशेषे आयुषि सम्यक्त्वं प्राप्तवान्। ततोऽप्रतिपतितसम्यक्त्व एव मनुष्यो जातः। ततस्तेनाप्रतिपतितेन सम्यक्त्वेन देशविरतिमनुपाल्य चतुःपल्योपमस्थितिकः सौधर्मदेवलोके देवो जातः। ततस्तेनापतितेन सम्य-

×(य०उ०३६) तत्र च सम्यक्त्वप्रत्ययादेतदबन्धः। ×१(य०उ०३७) तत्रैताः प्रकृतिर्भवप्रत्ययादेवाबध्ध्वा।

गाथार्थः–इग०जोग्गा=एकेन्द्रिय अने विकलेन्द्रिय योग्य, अट्ठपज्जत्तगेण सह=आठ प्रकृतिओ अपर्याप्त साथे, तेसिं=ते नवनो ज०प्र०सं०, तिरियगइसमं=तिर्यंचगतिनी पेठे जाणवो, नवरं=परन्तु, पंचासी०सयं तु=१८५ सागरोपम सुधी अबन्ध कहेवो. १०८

क्त्वेन सह देवभवाच्च्युत्वा मनुष्यो जातः। तस्मिंश्च मनुष्यभवे संयममनुपाल्य ग्रैवेयकेष्वेकत्रिंश सागरोपमस्थितिको देवो जातः। तत्र चोत्पत्त्यनन्तरमन्तर्मुहूर्तादूर्ध्वं मिथ्यात्वं गतः। ततोऽन्तर्मुहूर्तावशेषे आयुषि भूयोऽपि सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते। ततो द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां यावत् सम्यक्त्वमनुपाल्य तस्याः सम्यक्त्वाद्धाया अन्तर्मुहूर्ते शेषे क्षपणाय समुद्यतते। तदेवं पञ्चाशीत्यधिकं सागरोपमशतं चतुःपल्याधिकं यावत्पूर्वोक्तानां नवप्रकृतीनां बन्धाभावः ॥ १०८ ॥

छत्तीसाए सुभाणं, सेढिमणारुहिय सेसगविहीहिं। कट्टु जहन्नं खवणं, अपुव्वकरणालिया अंते ॥१०९॥

×(य०उ०३८)तत्र चान्तर्मुहूर्त्तोर्ध्वं मिथ्यात्वं गतोऽपि भवप्रत्ययादेवैताः प्रकृतीर्न बध्नाति। ततः पर्यन्तान्तर्मुहूर्त्ते सम्यक्त्वमवाप्याप्रतिपतितसम्यक्त्वो मनुष्येषूत्पद्य सर्वविरतिमनुपाल्य वारद्वयं विजयादिषु गमनेन षट्षष्टिसागरोपमाणि सम्यक्त्वकालं पूरयित्वा मनुष्येष्वन्तर्मुहूर्तं सम्यग्मिथ्यात्वमनुभूय तदन्तरितं द्वितीयं षट्षष्टिप्रमाणं सम्यक्त्वकालं वारत्रयमच्युतगमनेन पूरयति। तदेवं सम्यक्त्वमनुपाल्य तस्याः सम्यक्त्वाद्धाया अन्तर्मुहूर्ते शेषे क्षपणायोद्यतते। एवं पञ्चाशीत्यधिकं सागरोपमशतं चतुःपल्याधिकं प्रागुक्तनवप्रकृतीनां बन्धाभावः। इह भावनायां सम्यक्त्वात्प्रच्युतस्य मिश्रगमनं यदुच्यते तत्कार्मग्रन्थिकमतेनाविरुद्धं। सैद्धान्तिकानां तु न सम्मतमिदं। यत उक्तं कल्पभाष्ये—"मिच्छत्ता संकंती अविरुद्धा होइ सम्ममीसेसु। मीसाओ वा दोसुं सम्मा मिच्छं न उण मीसं" ॥ १ ॥ इति।

गाथार्थः-सेढि०हिय=उपशमश्रेणि कर्या विना, सेसगविहीहिं=क्षपितकर्मांशनी शेष विधिवडे, सुभा०साए=पंचेन्द्रियादि शुभ ३६ प्रकृतिनो, जहन्नं=ज०प्रदेश समूह मेळवी, खवणं कट्टु=क्षय करतो, अपुव्व०अंते=अपूर्वकरणनी प्रथमावलिकाना अन्ते ज०प्र०सं० करे.१०९

छत्तीसाए त्ति–श्रेणिमनारुह्योपशमश्रेणिमकृत्वा शेषैर्विधिभिः क्षपितकर्मांशसत्कैः षट्त्रिंशत्संख्यानां शुभप्रकृतीनां पञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहननतैजससप्तकप्रशस्तविहायोगतिशुक्ललोहितहारिद्रसुरभिगन्धकषायाम्लमधुरमृदुलघुस्निग्धोष्णागुरुलघुपराघातोच्छ्वासत्रसादिदशकनिर्माणलक्षणानां जघन्यं प्रदेशाग्रं कृत्वा क्षपणायोत्थितस्य क्षपितकर्मांशस्यापूर्वकरणसत्कायाः प्रथमावलिकाया अन्ते चरमसमये तासां जघन्यः प्रदेशसंक्रमो भवति। तत ऊर्ध्वं तु गुणसंक्रमेण लब्धस्यातिप्रभूतस्य दलिकस्य संक्रमावलिकातिक्रान्तत्वेन संक्रमसंभवात् स न प्राप्यते। पञ्चसंग्रहे तु वज्रर्षभनाराचवर्जितानां शेषाणां पञ्चत्रिंशत्प्रकृतीनामेवापूर्वकरणप्रथमावलिकान्ते जघन्यः प्रदेशसंक्रम उक्तः।वज्रर्षभनाराचसंहननस्य तु स्वबन्धव्यवच्छेदसमये इति॥१०९

सम्मद्दिट्ठिअजोग्गाण, सोलसण्हं पि असुभपगईणं। थीवेएण सरिसगं, नवरं पढमं तिपल्लेसु ॥११०॥

सम्मद्दिट्ठि त्ति–सम्यग्दृष्टेरयोग्यानां षोडशानामशुभप्रकृतीनां प्रथमवर्जसंस्थानप्रथमवर्जसंहननाप्रशस्तविहायोगतिदुर्भगदुःस्वरानादेयनपुंसकवेदनीचैर्गोत्रलक्षणानां (१६) स्त्रीवेदेन सदृशं वक्तव्यं। यथा प्राक् स्त्रीवेदस्य जघन्यप्रदेशसंक्रमभावना कृता तथात्रापि कर्तव्या। नवरमेतासां जघन्यप्रदेशसंक्रमस्वामी प्रथमं त्रिपल्योपमायुष्केषु मनुष्येषु मध्ये समुत्पन्नो वक्तव्यः। अन्तर्मुहूर्तावशेषे चायुषि प्राप्तसम्यक्त्वः। शेषं तथैव वक्तव्यम् ॥ ११० ॥

गाथार्थः–सम्म० जोग्गाण=समकितिने अयोग्य, सोलस्स०पगईणं=(अशुभसंस्थानादि) १६ अशुभ प्रकृतिओनो, थीवेएण सरिसगं= स्त्रीवेदना ज०प्र०संक्रम पेठे ज०प्र०सं० जाणवो, नवरं० तिपल्लेसु=परंतु प्रथम त्रण पल्योपम आयुष्यवालो युगलिक लेवो. ११०.

नरतिरियाण तिपल्ल–स्संते ओरालियस्स पाउग्गा। तित्थयरस्स य बंधा, जहन्नओ आलिगं गंतु ॥१११॥

नर त्ति–नरतिरश्चां त्रिपल्योपमस्यान्ते औदारिकस्य प्रायोग्याः प्रकृतयो जघन्यप्रदेशसंक्रमयोग्याः। इयमत्र भावना–यो जीवः सकलान्यजीवापेक्षया सर्वजघन्यौदारिक(सप्तक)सत्कर्मा सन् त्रिपल्योपमायुष्केषु तिर्यङ्मनुष्येषु मध्ये समुत्पन्नः, तस्यौदारिकसप्तकमनुभवतो विध्यातसंक्रमेण परप्रकृतौ संक्रमयतश्च स्वस्वायुषश्चरमसमये तस्यौदारिकसप्तकस्य जघन्यः प्रदेशसंक्रमो भवति। औदारिकस्य प्रायोग्या इत्यौदारिकसप्तकं। 'तित्थयरस्सेत्यादि' तीर्थकरनामकर्मणो बन्धं कुर्वता यत्प्रथमसमये बद्धं दलिकं तत् बन्धावलिकातीतं सत् यदा परप्रकृतिषु यथाप्रवृत्तसंक्रमेण संक्रमयति तदा तीर्थकरनाम्नो जघन्यः प्रदेशसंक्रमो भवति (५)। तदेवमुक्तः **प्रदेशसंक्रमः**। तदुक्तौ च समर्थितं **संक्रमकरणम्** ॥ १११ ॥

॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां कर्मप्रकृतिटीकायां **संक्रमकरणम्** ॥

गाथार्थः–नरतिरियाण=मनुष्य अने तिर्यंचने, तिपल्लस्संते=३ पल्योपमना अन्ते, आरालियस्स पाउग्गा=ओदारिक प्रायोग्य (सात) प्रकृतिओनो ज०प्र०संक्रम होय छे. तित्थयरस्स य=अने तीर्थकरनामनो, जहन्नओ=ज०प्र०सं०, बन्ध पछी, आलिगं गंतुं=आवलिका गया पछी थाय छे. १११.

॥ परिशिष्ट ॥

स्तिबुकसंक्रम याने प्रदेशोदयः—बांधेलुं कर्म अबाधाकाल गया पछी उदयमां आवे छे. ते उदय बे प्रकारे छे-१ रसोदय, २ प्रदेशोदय. बांधेलां कर्मोनो साक्षात् अनुभव ते रसोदय अने बांधेला कर्मोनो अन्यरूपे (एटले दलिक तो बांधेला कर्मना पण तेनो रस भोगवाती सजातीय प्रकृतिना निषेक साथे भोगवाय एटले जेनो रस पोतानो विपाक जणावी शके नहि) अनुभव ते प्रदेशोदय. प्रश्नः-बांधेला कर्मनो पूर्वोक्त भिन्न प्रकारे उदय थवानुं शुं कारण ? उत्तरः-रसोदय थवामां द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अने भव ए ५ हेतुओ छे. तेओमांथी कोइ पण एक अथवा अधिक हेतुना अभावे ते कर्मनो रसोदय थतो नथी. जेम मनुष्य-गतिमां रहेला एक मनुष्ये एकेन्द्रियजाति नामकर्म बांधी पछी विशुद्ध परिणामे देवगति प्रायोग्य बंध करतां पंचेन्द्रिय जाति बांधी पंचेन्द्रियपणे देवभवमां उत्पन्न थयो. ते एकेन्द्रियजातिनो अबाधाकाल व्यतीत थयो पण ते एकेन्द्रियजातिनो रसोदय थवामां भवरूप कारण नहि होवाथी तेनो रसोदय थतो नथी त्यारे ते कर्म प्रदेशोदयने पामे छे. माटे रसोदय थवामां ते हेतु-ओना सद्भाव रूप कारण छे. अने हेतुओनो अभाव ते प्रदेशोदयमां हेतु छे. उदयोन्मुख कर्मनिषेकने रसोदयनो रस्तो नहि मलवाथी ने ते निषेकना दलिकने आत्मसंबंध पूर्ण थतो होवाथी ते अन्यमार्ग एटले प्रदेशोदयने ग्रहण करे छे. आ प्रदेशोदय थवामां ते कर्मनुं सहज परिणमन ते स्तिबुकसंक्रम छे. अनुदयवती प्रकृतिओनो सजातीय उदयवती प्रकृतीओमां स्तिबुक संक्रम थाय छे.

ज्ञानावरणीय, आयुष्य अने अंतराय ए ३ कर्ममां स्तिबुकसंक्रम थतो ज नथी, पहेलुं अने छेलुं ध्रुवोदयी होवाथी. एक आयुष्यनो उदय संपूर्ण न थाय त्यां सुधी बद्धायुष्यनो अबाधाकाल पुरो थतो नथी माटे तेमनो स्तिबुकसंक्रम थतो नथी. १२२ प्रकृतिओमांथी ५ ज्ञानावरणीय, ५ अन्तराय अने ४ आयुष्य ए १८ प्रकृतिओ सिवाय बाकीनी १०४ प्रकृतिओनो स्तिबुक संक्रम थाय छे.

उद्वलना संक्रमः—उद्वलन एटले उवेलवुं (उबेळवुं) अथवा उकेरवुं (उखेडवुं). जेम दोरडीने उबेलवाथी तेनो वळ उबले छे तेथी तांतणा जुदा जुदा पडी जाय छे, तेम तांतणानो एक बीजानो गाढ संबंध पण छुटो पडी जाय छे. तेमज तांतणा ढीला पडी जाय छे. अने तेमनी मजबूताइ ओछी थइ जाय छे. ते प्रमाणे उद्वलना संक्रमथी अधिक स्थितिवालां अने गाढ रसवाळां दलिको पण उबलीने अथवा उकलीने हीन स्थितिवाला अने हीन रसवालां थाय छे.

तदेवमुक्तं संक्रमकरणं। संप्रत्युद्देशक्रमेणोद्वर्तनापवर्तने वक्तुमवसरप्राप्ते। ते च द्वे अपि स्थित्यनुभागविषये। तत्र प्रथमतः स्थितेरुद्वर्तनापवर्तने वक्तव्ये। स्थितौ सत्यामनुभागसंभवात्। तत्राप्युद्देशक्रमप्रामाण्यानुसरणात् प्रथमतः स्थितेरुद्वर्तनामेवाह-

उव्वट्टणा ठिईए, उदयावलियाएँ बाहिरठिईणं। होइ अबाहा अइत्था-वणाउ जा वालिया हस्सा ॥१॥

उव्वट्टण त्ति-स्थितेरुद्वर्तना उदयावलिकाया बाह्यानां स्थितीनामवगन्तव्या। उदयावलिका तु सकलकरणायोग्येति कृत्वा सा प्रतिषिध्यते। अपि च बध्यमानप्रकृतेर्यावती अबाधा तया तुल्या वा हीना वा पूर्वबद्धप्रकृतीनां या स्थितिः सा नोद्वर्त्यते, सा उत्पाट्य तत ऊर्ध्वं बध्यमानप्रकृतेरबाधाया उपरि न निक्षिप्यत इत्यर्थः, अबाधाकालान्तःप्रविष्टत्वात्। या पुनरबाधाकालादुपरितनी सा उद्वर्त्यत एव। तदेवमबाधान्तःप्रविष्टाः सर्वा अपि स्थितय उद्वर्तनामधिकृत्यातिक्रमणीया भवन्ति परित्याज्या भवन्तीत्यर्थः। अतिक्रमणीयस्थितिप्रमाणनिरूपणार्थमेवाह—'होइ इत्यादि' भवति अबाधा अतीत्थापना उल्लंघनीया। एषोत्कर्षतोऽतीत्थापना। सा च हीना हीनतरा तावदवगन्तव्या यावत् ह्रस्वा जघन्याऽतीत्थापना आवलिका आवलिकामात्रा भवति। इयमत्र भावना-अबाधान्तर्गतं कर्मदलिकमुद्वर्तनायोग्यं न भवति, किं त्वबाधायाः परत एव। तथा च सति यैवोत्कृष्टाऽबाधा सैवोत्कृष्टाऽतीत्थापना, समयोना उत्कृष्टाऽबाधा समयोनोत्कृष्टाऽतीत्थापना, द्विसमयोनोत्कृष्टाऽबाधा द्विसमयोनोत्कृष्टाऽतीत्थापना। एवं समयसमयहान्याऽतीत्थापना तावद्वाच्या यावज्जघन्याऽबाधाऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणा। ततोऽपि जघन्यतराऽतीत्थापना आवलिका-

गाथार्थः-ठिईए=स्थितिनी, उव्वट्टणा=उद्वर्तना, उदया०ठिईणं=उदयावलिका सिवायनी स्थितिओनी जाणवी. अबाहा=अबाधाथी मांडीने (घटती घटती) जा०हस्सा=जघन्यथी आवलिका प्रमाण, अइत्थावणाउ होइ=अतीस्थापना होय छे. १.

मात्रं भवति । तच्चोदयावलिकालक्षणमवसेयं । तथाहि—उदयावलिकान्तर्गताः स्थितयो नोद्वर्त्यन्ते "उव्वट्टणा ठिईए उदयावलियाए बाहिरठिईणं" इतिवचनात् । 'ननु यदा तदा वा बन्धे सत्युद्वर्तना प्रवर्तिष्यते "आबंधा उक्कड्डुइ" इतिवचनात्, तत उदयावलिकागताः स्थितयोऽबाधान्तर्गतत्वेन नोद्वर्तिष्यन्ते, किमुदयावलिकाग्रहणेन ?' 'तदयुक्तं, अभिप्रायापरिज्ञानात् । अबाधान्तर्गताः स्थितयो नोद्वर्त्यन्त इति किमुक्तं भवति ? आबाधान्तर्गताः स्थितयः स्वस्थानादुत्पाट्याबाधाया उपरि न निक्षिप्यन्ते । अबाधाया मध्ये पुनस्तासां वक्ष्यमाणक्रमेणोद्वर्तनानिक्षेपौ प्रवर्तमानौ न विरुध्येते । तत उदयावलिकान्तर्गता अप्युद्वर्तनीयाः प्राप्नुवन्तीति प्रतिषिध्यन्ते ॥ १ ॥

संप्रति निक्षेपप्ररूपणार्थमाह—

आवलियअसंखभागाइ जाव कम्मट्ठिइ त्ति निक्खेवो । समउत्तरालियाए, सावाहाए भवे ऊणे ॥ २ ॥

आवलिय त्ति—इह निक्षेपो द्विधा—जघन्य उत्कृष्टश्च । तत्रावलिकाया असंख्येयभागमात्रासु स्थितिषु यः कर्मदलिकनिक्षेपः स जघन्यः । तथाहि—सर्वोत्कृष्टात् स्थित्यग्रादध आवलिकामावलिकाया असंख्येयं च भागमधोऽवतीर्य ततोऽधस्तनी या स्थितिस्तस्या दलिकमतीत्थापनावलिकामात्रमतिक्रम्योपरितनीष्वेवावलिकाया असंख्येयभागभाविनीषु स्थितिषु निक्षिप्यते, नावलिकाया मध्येऽपि, ×तथास्वाभाव्यात् । ततोऽसौ जघन्यो दलिकनिक्षेपः । एवं च सति आवलिकाया असंख्येयतमेन भागेनाधिकास्वाव-

×(य०उ०१) आवलिकां मुक्त्वैवाधस्तनस्थितीनामुपरि सङ्क्रमणस्वाभाव्यात् ।

गाथार्थः-आव०भागाइ=आवलिना असंख्यातमा भागथी मांडीने, जाव=यावत्, सावाहाए=अबाधा सहित, समउत्तरालियाए=समयाधिक आवलिका, ऊणे=न्यून, कम्मट्ठिइत्ति=कर्मस्थिति प्रमाण, निक्खेवो भवे=निक्षेप होय छे. २.

लिकामात्रासु स्थितिषु उद्वर्तनं न भवतीति सिद्धं । तथा च सत्युत्कृष्टस्थितिबन्धे उद्वर्तनायोग्याः स्थितयो बन्धावलिकामबाधामुपरितनीमावलिकामसंख्येयभागाधिकां मुक्त्वा शेषा एव द्रष्टव्याः । तथाहि—बन्धावलिकान्तर्गतं सकलकरणायोग्यमिति कृत्वा बन्धावलिकान्तर्गताः स्थितयो नोद्वर्तनायोग्याः । तथाऽबाधान्तर्गता अपि नोद्वर्तनायोग्याः, तासामतीत्थापनात्वेन प्राक् प्रतिपादितत्वात् । असंख्येयभागाधिकावलिकामात्रभाविन्यश्चोपरितन्यः स्थितयः प्रागुक्तयुक्तेरेव नोद्वर्तनायोग्याः ।

इदानीं निक्षेपश्चिन्त्यते । तत्र यदावलिकामावलिकाया असंख्येयभागं चोपरिष्टादधोऽवतीर्य द्वितीयाऽधस्तनी स्थितिरुद्वर्त्यते, तदा समयाधिक आवलिकाया असंख्येयभागो निक्षेपविषयः । यदा तु तृतीया स्थितिरुद्वर्त्यते, तदा द्विसमयाधिकः । एवं समयवृद्ध्या तावद्दलिकनिक्षेपो वर्धते यावदुत्कृष्टो भवति । स च कियान् भवतीति चेदुच्यते—'समयेत्यादि' समयाधिकावलिकयाऽबाधया च हीना सर्वा कर्मस्थितिः । तथाहि—अबाधोपरिस्थस्थितीनामुद्वर्तना भवति । तत्राप्यबाधाया उपरितने स्थितिस्थाने उद्वर्त्यमानेऽबाधाया उपरि दलिकनिक्षेपो भवति, नाबाधाया मध्येऽपि, उद्वर्त्यमानदलिकस्योद्वर्त्यमानस्थितेरूर्ध्वमेव निक्षेपात् । तत्राप्युद्वर्त्यमानस्थितेरुपरि आवलिकामात्राः स्थितीरतिक्रम्योपरितनीषु स्थितिषु सर्वासु दलिकनिक्षेपो भवति । अतोऽतीत्थापनावलिकामुद्वर्त्यमानां च समयमात्रां स्थितिमबाधां च वर्जयित्वा शेषा सर्वापि कर्मस्थितिरुत्कृष्टो दलिकनिक्षेपविषयः । उक्तं च पञ्चसंग्रहमूलटीकायां—समयोत्तरावलिकया साबाधया हीना यावदुत्कृष्टा कर्मस्थितिस्तावद्दलिकनिक्षेपो भवति। यतोऽबाधोपरिस्थस्थितीनामुद्वर्तना भवति, सापि अतीत्थापनामुल्लंघ्योद्वर्त्यमानायामपि स्थितौ न दलिकनिक्षेपो भवति । अतः समयाधिकावलिकाबाधावर्जितासु शेषासु सर्वासु स्थितिषु दलिकनिक्षेपो भवतीति । तदेवमबाधाया उपरितनं समयमात्र-

मुद्वर्त्यमानं स्थितिस्थानमधिकृत्योत्कृष्टो दलिकनिक्षेपविषयः प्राप्यते। सर्वोपरितनं तु स्थितिस्थानमुद्वर्त्यमानमपेक्ष्य जघन्यो दलिकनिक्षेपविषयः। उक्तं च—"आबाहोवरिट्ठाणगदलं पडुच्चेह परमनिक्खेवो। चरिमुव्वट्टणठाणं, पडुच्च इह जायइ जहण्णो ॥ १ ॥" इति ॥ २ ॥

एषोऽव्याघाते दलिकनिक्षेपविधिरुक्तः, व्याघाते पुनरेवं—

निव्वाघाएणेवं, वाघाए संतकम्महिगबंधो। आवलिअसंखभागादि, होइ अइत्थावणा नवरं ॥ ३ ॥

निव्वाघाएण त्ति—एवं पूर्वोक्तेन प्रकारेण दलिकनिक्षेपो निर्व्याघातेन व्याघाताभावेन द्रष्टव्यः। व्याघाते पुनः प्राक्तनस्थितिसत्कर्मापेक्षयाऽभ्यधिकाभिनवकर्मबन्धरूपे आवलिकाऽसंख्येयभागादिकाऽतीत्थापना भवति। निक्षेपोऽप्यावलिकागतासंख्येयभागादिकः। इयमत्र भावना—प्राक्तनसत्कर्मस्थित्यपेक्षया समयादिनाभ्यधिको योऽभिनवकर्मबन्धः स व्याघात उच्यते। तस्मिन् सत्यतीत्थापना आवलिकासंख्येयभागादिका भवति। तथाहि—प्राक्तनसत्कर्मस्थितेः सकाशात् समयमात्रेणाभ्यधिकेऽभिनवकर्मबन्धे सति प्राक्तनसत्कर्मणोऽन्त्या वा द्विचरमा वा स्थितिर्नोद्वर्त्यते। एवं समयद्वयेन समयत्रयेण यावदावलिकाया असंख्येयतमेनापि भागेनाभ्यधिकेऽभिनवकर्मबन्धे द्रष्टव्यं। यदा पुनर्द्वाभ्यामावलिकाया असंख्येयतमाभ्यां भागाभ्यामभ्यधिकोऽभिनवकर्मबन्ध उपजायते तदा प्राक्तनसत्कर्मणोऽन्त्या स्थितिरुद्वर्त्यते। उद्वर्त्य चावलिकायाः प्रथममसंख्येयतमं भागमति-

गाथार्थः-निव्वाघाएणेवं=ए प्रमाणे निर्व्याघात भावे दलिक निक्षेप. नवरं=परन्तु संतक०बंधे=सत्ता स्थितिथी अधिक स्थितिबंधरूप, वाघाए=व्याघातभावे, आव०भागादि=आवलिना असंख्यातमा भागथी मांडीने (आवलिका सुधी) होइ=होय छे. ३

क्रम्य द्वितीयेऽसंख्येयतमे भागे निक्षिप्यते । एतावतीत्थापनानिक्षेपौ जघन्यौ । यदा पुनः समयाधिकाभ्यां द्वाभ्यामावलिकाया असंख्येयतमाभ्यां भागाभ्यामधिकोऽभिनवकर्मबन्धस्तदा आवलिकायाः प्रथममसंख्येयतमं भागं समयाधिकमतिक्रम्य द्वितीयेऽसंख्येयतमे भागे निक्षिप्यते । एवमभिनवकर्मबन्धस्य समयादिवृद्धावतीत्थापना प्रवर्धते । सा च तावद्यावदावलिका परिपूर्णा भवति । निक्षेपस्तु ×सर्वत्रापि तावन्मात्र एव भवति । तत ऊर्ध्वं पुनरभिनवकर्मबन्धवृद्धौ निक्षेप एव केवलो वर्धते, नातीत्थापना×१ । यावच्चाभिनवकर्मबन्धः प्राक्तनस्थितिसत्कर्मणः सकाशात् द्वाभ्यामावलिकाया असंख्येयतमाभ्यां भागाभ्यामधिको न भवति तावत् प्राक्तनसत्कर्मणश्चरमस्थितेरध आवलिकामसंख्येयभागाधिकामतिक्रम्य ततोऽधस्तनीरेव स्थितीरुद्वर्तयति । तत्रापि यदा आवलिकामसंख्येयभागाधिकामतिक्रम्य ततोऽनन्तरामेवाधस्तनीं स्थितिमुद्वर्तयति, तदा आवलिकामतिक्रम्योपरितने आवलिकाया असंख्येयतमे भागे निक्षिपति । यदा तु द्वितीयामधस्तनीं स्थितिमुद्वर्तयति तदा समयाधिकेऽसंख्येयतमे भागे निक्षिपति । एवंप्रकारेण द्रष्टव्यं । संप्रत्यल्पबहुत्वमुच्यते—या जघन्याऽतीत्थापना यश्च जघन्यो निक्षेप एतौ द्वावपि सर्वस्तोकौ परस्परं च तुल्यौ । यतो द्वावप्येतौ आवलिकासत्कासंख्येयतमभागमात्रौ, ताभ्यामसंख्येयगुणोत्कृष्टाऽतीत्थापना, तस्या उत्कृष्टाबाधारूपत्वात् । ततोऽप्युत्कृष्टो निक्षेपोऽसंख्येयगुणः, यतोऽसौ समयाधिकावलिकयाऽबाधया च हीना सर्वा कर्मस्थितिः । ततोऽपि सर्वा कर्मस्थितिर्विशेषाधिका×२ ॥ ३ ॥

×(य०उ०२)एतावत्यतीत्थापनाविधौ । ×१(य०उ०३) उक्तं च–" आवलिदोसंखंसा जइ वड्ढइ अहिणवो उ ठियबंधो।उव्वट्टइ तो चरमा एवं जावलिय अइत्थवणा ॥ १ ॥अइत्थावणालिआए पुण्णाए वड्ढइ त्ति णिक्खेवो " । ×२(य०उ०४) उत्कृष्टनिक्षेपाद्न्यूनीकृतस्थितेः पूरणात् ।

तदेवमुक्ता स्थित्युद्वर्तना, संप्रति स्थित्यपवर्तनामाह—

उव्वट्टंतो य ठिइं, उदयावलिबाहिरा ठिइविसेसा । निक्खिवइ तइयभागे, समयहिए सेसमइवईय ॥४॥
वड्ढइ तत्तो अति-त्थावणा उ जावालिगा हवइ पुन्ना । ता निक्खेवो समया-हिगालिग दुगूण कम्मठिई ॥५॥

उव्वट्टंतो त्ति–स्थितिमपवर्तयन् उदयावलिकाया बाह्यान् स्थितिविशेषान् स्थिति(वि)भेदानपवर्तयति । के ते स्थितिविशेषा इति चेदुच्यते–उदयावलिकाया उपरि समयमात्रा स्थितिः द्विसमयमात्रा एवं तावद्वाच्यं यावद्बन्धावलिकोदयावलिकाहीना सर्वा कर्मस्थितिः । एते स्थितिविशेषाः । उदयावलिकाया गता च स्थितिः सकलकरणायोग्येति कृत्वा तां नापवर्तयति । तत उक्तं उदयावलिकाबाह्यानिति । कुत्र निक्षिपतीति चेदत आह–निक्षपति आवालेकायास्त्रिभागे तृतीये भागे समयाधिके। शेषं समयोनमुपरितनं त्रिभागद्वयमतिक्रम्य । इयमत्र भावना–उदयावलिकाया उपरितनी या स्थितिस्तस्या दलिकमपवर्तयन् उदयावलिकाया उपरितनौ द्वौ त्रिभागौ समयोनावतिक्रम्याधस्तने समयाधिके तृतीये भागे निक्षिपति । एष जघन्यो निक्षेपः जघन्या

गागार्थः–उव्वट्टंतोय ठिइं=स्थितिनी अपर्वतना करतो, उदया०विसेसा=उदयावलिका बाहेरना स्थिति विशेषोने, सेसमइवईय=शेषने अतिक्रमीने, समयहिए तइयभागे=समयाधिक आवलिकाना त्रीजा भागमां, निक्खिवई=नांखे छे. तत्तो=त्यांथी, जावा० पुन्ना=पूर्ण आवलिका पर्यन्त,अइत्थावणाओ=अतीस्थापना, वड्ढइ=वधे छे. ता=त्यारपछी, समया०कम्मठिइ=समयाधिक आवलिका द्विक हीन कर्मस्थिति प्रमाण, निक्खेवो=निक्षेप छे. ४-५.

चातीत्थापना । यदोदयावलिकाया उपरितनी द्वितीया स्थितिरपवर्त्यते तदाऽतीत्थापना प्रागुक्तप्रमाणा समयाधिका भवति । निक्षेपस्तु तावन्मात्र एव । यदा तूदयावलिकाया उपरितनी तृतीया स्थितिरपवर्त्यते तदाऽतीत्थापना प्रागुक्तप्रमाणा द्विसमयाधिका भवति, निक्षेपस्तु तावन्मात्र एव । एवमतीत्थापना प्रतिसमयं तावद्वृद्धिमुपनेतव्या यावदावलिका परिपूर्णा भवति×। ततः परमतीत्थापना सर्वत्रापि तावन्मात्रैव भवति, निक्षेपस्तु वर्धते, स च तावद्यावद्बन्धावलिकातीत्थापनावलिकारहिता अपवर्त्यमानस्थितिरहिता×१ च सकलापि कर्मस्थितिः । तथाहि—बन्धावलिकायामतीतायां सत्यां कर्मापवर्तयितुमारभते । तत्रापि च यदा सर्वोपरितनं स्थितिस्थानमपवर्तयति, तदावलिकामात्रमधोऽवतीर्याधस्तनेषु सर्वेष्वपि स्थितिस्थानेषु निक्षिपति । तस्मादुत्कृष्टो निक्षेपोऽपवर्त्यमानस्थितिसमयरहिता बन्धावलिकातीत्थापनावलिकारहिता च सर्वापि कर्मस्थितिः । उक्तं च—"समयाहिअइत्थवणा बंधावलिया य मोत्तु निक्खेवो । कम्मट्ठिई बंधोदय आवलिया मुत्तु उव्वट्टे ॥ १ ॥" कर्मस्थितिं बन्धावलिकामुदयावलिकां च मुक्त्वा शेषां सर्वामपि अपवर्तयतीत्यर्थः । तदेवमुदयावलिकाया उपरितनं समयमात्रं स्थितिस्थानं प्रतीत्य प्रवर्तमानायामपवर्तनायां समयाधिकावलिकात्रिभागो निक्षेपः प्राप्यते । स च सर्वजघन्यः सर्वोपरितनं च स्थितिस्थानं प्रतीत्य प्रवर्तमानायामपवर्तनायां यथोक्तरूप उत्कृष्टो निक्षेपः । उक्तं च—"उदयावलिमुपरित्थं ठाणं अहिगिच्च होइ अइहीणो । निक्खेवो सव्वोवरि ठिइठाणवसा भवे परमो ॥ १ ॥" ॥ ४-५ ॥

एष निर्व्याघातेऽपवर्तनाविधिरुक्तः, संप्रति व्याघाते तमाह—

×(य०उ०५) निक्षेपविषयाणां च स्थितीनां समयाधिक आवालिकात्रिभाग एवानुवर्तते । ×१(य०उ०६) स्थितिसमयरहिता ।

वाघाए समऊणं, कंडगमुक्कस्सिया अइत्थवणा। डायठिई किंचूणा ठिइकंडुक्कस्सगपमाणं ॥ ६ ॥

वाघाए त्ति–अत्र व्याघातो नाम स्थितिघातः× तस्मिन् सति, तं कुर्वत इत्यर्थः। समयोनकंडकमात्रमुत्कृष्टाऽतीत्थापना। कथं समयोनमिति चेदुच्यते–उपरितनेन समयमात्रेण स्थितिस्थानेनापवर्त्यमानेन सहाधस्तात् कंडकमतिक्रम्यते। ततस्तेन विना कंडकं समयोनमेव भवति। कंडकमानमाह–' डायठिई ' इत्यादि, यस्याः स्थितेरारभ्य तस्या एव प्रकृतेरुत्कृष्टं स्थितिबन्धमाधत्ते, ततः प्रभृति सर्वापि स्थितिर्डायस्थितिरित्युच्यते। उक्तं च पञ्चसंग्रहमूलटीकायां–" यस्याः स्थितेरारभ्योत्कृष्टं स्थितिबन्धं विधत्ते निर्मापयति, तस्या आरभ्योपरितनानि सर्वाण्यपि स्थितिस्थानानि डायस्थितिसंज्ञानि भवन्ति "। सा डायस्थितिः किंचिदूना कंडकस्योत्कृष्टं प्रमाणं। पञ्चसंग्रहे पुनरेवं मूलटीकाकृता व्याख्या कृता–"सा डायस्थितिरुत्कर्षतः किंचिदूना किंचिदूनकर्मस्थितिप्रमाणा। तथाहि–अन्तःकोटीकोटीप्रमाणं स्थितिबन्धं कृत्वा पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रिय उत्कृष्टसक्लेशवशादुत्कृष्टां स्थितिं विधत्त इति सा डायस्थितिः किंचिदूनकर्मस्थितिप्रमाणा कंडकस्योत्कृष्टं प्रमाणमिति "। एतच्चोत्कृष्टं कंडकं समयमात्रेणापि न्यूनं कंडकमुच्यते। एवं समयद्वयेन समयत्रयेण एवं तावान्न्यूनं वाच्यं यावत्तत्पल्योपमासंख्येयभागमात्रप्रमाणं भवति। तच्च जघन्यं कंडकं। इदं च समयोनं जघन्या व्याघातेऽतीत्थापना। संप्रत्यल्पबहुत्वमुच्यते–"तत्रापवर्तनायां जघन्यो निक्षेपः सर्व-

× (य०उ०७) उक्तं च–" ठिइघाओ एत्थ होइ वाघाओ "।

गाथार्थः–वाघाए=व्याघातभावे, समऊणं कंडगं= समयोन कडक प्रमाण, उक्कसिया=उत्कृष्ट, अइत्थवणा=अतीस्थापना छे. किंचूणा=कांइक हीन, डायट्ठिइ=डायस्थिति प्रमाण, ठिइकं०पमाणं=कंडक स्थितिनुं उत्कृष्ट प्रमाण छे. ६.

स्तोकः । तस्य समयाधिकावलिकात्रिभागमात्रत्वात् (१) । ततोऽपि जघन्यातीत्थापना द्विगुणा त्रिसमयोना । कथं त्रिसमयोनं द्विगुणत्वमिति चेदुच्यते–व्याघातमन्तरेण जघन्याऽतीत्थापना आवलिकात्रिभागद्वयं समयोनं भवति । आवलिका चासत्कल्पनया नवसमयप्रमाणा कल्प्यते । ततस्त्रिभागद्वयं समयोनं पञ्चसमयप्रमाणमवगन्तव्यं । निक्षेपोऽपि जघन्यः समयाधिकावलिकात्रिभागरूपोऽसत्कल्पनया चतुःसमयप्रमाणो द्विगुणीकृतस्त्रिसमयोनः सन् एतावानेव भवतीति (२) । ततोऽपि व्याघातं विनोत्कृष्टाऽतीत्थापना विशेषाधिका, तस्या परिपूर्णावलिकामात्रत्वात् (३)। ततो व्याघाते उत्कृष्टाऽतीत्थापनाऽसंख्येयगुणा, किञ्चिदूनडायस्थितिप्रमाणत्वात्तस्याः (४)। ततोऽप्युत्कृष्टो निक्षेपो विशेषाधिकः, तस्य समयाधिकावलिकाद्विकोनसकलकर्मस्थितिप्रमाणत्वात् (५)। ततः सर्वा कर्मस्थितिर्विशेषाधिका (६)" । संप्रत्युद्वर्तनापवर्तनयोः संयोगेनाल्पबहुत्वमुच्यते--"तत्रोद्वर्तनायां व्याघाते जघन्यातीत्थापनानिक्षेपौ सर्वस्तोकौ, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यौ, आवलिकाऽसंख्येयभागमात्रत्वात् (१)। ततोऽपवर्तनायां जघन्यो निक्षेपोऽसंख्येयगुणः, तस्य समयाधिकावलिकात्रिभागमात्रत्वात् (२)। ततोऽप्यपवर्तनायामेव जघन्यातीत्थापना द्विगुणा त्रिसमयोना (३)। अत्र भावना प्रागेव कृता। ततोऽप्यपवर्तनायामेव व्याघातं विनोत्कृष्टाऽतीत्थापना विशेषाधिका, तस्याः परिपूर्णावलिकाप्रमाणत्वात् (४)। तत उद्वर्तनायामुत्कृष्टातीत्थापना संख्येयगुणा, तस्या उत्कृष्टाबाधारूपत्वात् (५)। ततोऽपवर्तनायां व्याघाते उत्कृष्टाऽतीत्थापनाऽसंख्येयगुणा, तस्याः किंचिदूनडायस्थितिप्रमाणत्वात् (६)। तत उद्वर्तनायामुत्कृष्टो निक्षेपो विसेषाधिकः (७)। ततोऽप्यपवर्तनायामुत्कृष्टो निक्षेपो विशेषाधिकः (८)। ततोऽपि सर्वा स्थितिर्विशेषाधिका (९) ॥ ६ ॥

तदेवमुक्ते स्थित्युद्वर्तनापवर्तने, संप्रत्यनुभागोद्वर्तनापवर्तने वाच्ये। तत्र प्रथमतोऽनुभागोद्वर्तनामाह—

चरमं नोव्वट्टिज्जइ, जावाणंताणि फड्डगाणि ततो। उस्सक्किय ओकड्ढइ, एवं उव्वट्टणाईओ ॥ ७ ॥

चरमं त्ति—चरमं स्पर्धकं नोद्वर्त्यते, नापि द्विचरमं, नापि त्रिचरमं। एवं तावद्वाच्यं यावच्चरमात्स्पर्धकादधोऽनन्तानि स्पर्धकानि। इदमत्र तात्पर्यं—यो जघन्यो निक्षेप आवलिकाया असंख्येयभागः सर्वोपरितनो या च तस्याध आवलिकामात्रातीत्थापना तत्स्थितिस्थानगतानि स्पर्धकानि ×सर्वाण्यपि नोद्वर्त्यन्ते, किंतु तेभ्योऽवष्टक्याधस्तादवतीर्य यानि स्पर्धकानि समयमात्रस्थितिगतानि तान्युद्वर्तयति। तानि चोद्वर्त्यावलिकामात्रस्थितिगतानि अनन्तानि स्पर्धकान्यतिक्रम्योपरितनेष्वेवावलिकासत्कासंख्येयभागमात्रगतेषु स्पर्धकेषु निक्षिपति। यदा पुनरधोऽवतीर्य द्वितीयसमयमात्रस्थितिगतानि स्पर्धकान्युद्वर्तयति तदावलिकामात्रस्थितिगतानि स्पर्धकान्यतिक्रम्योपरितनेषु समयाधिकावलिकासत्कासंख्येयभागमात्रगतेषु स्पर्धकेषु निक्षिपति। एवं यथा यथाऽधोऽवतरति तथा तथा निक्षेपो वर्धते। अतीत्थापना पुनः सर्वत्रापि आवलिकामात्रस्थितिगतान्येव स्पर्धकानि। कियान् पुनरुत्कृष्टो निक्षेपविषय इति चेदुच्यते—बन्धावलिकायामतीतायां समयाधिकावलिकाबाधागतानि स्पर्धकानि व्यतिरिच्य शेषाणि सर्वाण्यपि निक्षेपविषयः। तथाहि—अबाधागतानि स्पर्धकानि नोद्वर्त्यन्ते। उद्वर्त्यमानानि च समयमात्रस्थितिगतानि

×(य०उ०८) सर्वाण्यप्यनन्तानि स्पर्धकानि नोद्वर्त्यन्त इति रहस्यम्।

गाथार्थः—चरमं=अन्त्य स्पर्धकथी मांडीने, जावा०फड्डगाणि=अनन्त स्पर्धकोनी, नोव्वट्टिज्जइ=उद्वर्तना थती नथी, तत्तो=त्यांथी, उस्सक्किय=नीचेनां स्पर्धकोनी, उकड्ढइ=उद्वर्तना थाय छे. एवं=ए प्रमाणे, उव्वट्टणाइओ=अपवर्तनामां पण. ७.

स्पर्धकानि न तत्रैव निक्षिपति। आवलिकामात्रगतानि त्वतीत्थापना। ततो बन्धावलिकायामतीतायां समयाधिकावलिकागतानि अबाधागतानि च स्पर्धकानि व्यतिरिच्य शेषाणि सर्वाणि निक्षेपविषयः। संप्रत्यत्रैवाल्पबहुत्वमुच्यते–तत्र सर्वस्तोको जवन्यनिक्षेपस्तस्यावलिकासत्कासंख्येयभागगतस्पर्धकमात्रत्वात् (१)। ततोऽतीत्थापनाऽनन्तगुणा, निक्षेपविषयस्पर्धकेभ्य आवलिकामात्रस्थितिगतानां स्पर्धकानामनन्तगुणत्वात् (२)। एवं सर्वत्राप्यनन्तगुणता स्पर्धकापेक्षया द्रष्टव्या। तत उत्कृष्टो निक्षेपोऽनन्तगुणः (३)। ततोऽपि सर्वोऽनुभागो विशेषाधिकः (४)। तदेवमुक्तानुभागोद्वर्तना॥

संप्रत्यनुभागापवर्तनामतिदेशेनाह—'एवं उव्वट्टणाईओ' एवमुद्वर्तनाप्रकारेणापवर्तनाप्यनुभागविषया वक्तव्या। केवलमादित आरभ्य। तद्यथा–प्रथमं स्पर्धकं नापवर्त्यते, नापि द्वितीयं, नापि तृतीयं। एवं तावद्वाच्यं यावदुदयावलिकामात्रस्थितिगतानि स्पर्धकानि भवन्ति। तेभ्य उपरितनानि तु स्पर्धकान्यपवर्त्यन्ते। तत्र यदोदयावलिकात उपरि समयमात्र स्थितिगतानि स्पर्धकान्यपवर्तयति, तदा समयोनावलिकात्रिभागद्वयगतानि स्पर्धकान्यतिक्रम्याधस्तनेष्वावलिकासत्कसमयाधिकत्रिभागगतेषु स्पर्धकेषु निक्षिपति। यदा तूदयावलिकाया उपरि द्वितीयसमयमात्रस्थितिगतानि स्पर्धकान्यपवर्तयति तदा प्रागुक्ताऽतीत्थापना समयोनावलिकात्रिभागद्वयप्रमाणा समयमात्रस्थितिगतैः स्पर्धकैरधिकावगन्तव्या। निक्षेपस्तु तावन्मात्र एव। एवं समयसमयवृद्ध्याऽतीत्थापना तावद् वृद्धिमुपनेतव्या यावदावलिका परिपूर्णा भवति। ततः परमतीत्थापना सर्वत्रापि तावन्मात्रैव, निक्षेपस्तु वर्धते। एवं निर्व्याघाते सति द्रष्टव्यं। व्याघाते पुनः अनुभागकंडकं समयमात्रस्थितिगतस्पर्धकन्यूनमतीत्थापना द्रष्टव्या। कंडकमानं समयमात्रन्यूनत्वं च यथा प्राक् स्थित्यपवर्तनायामुक्तं, तथात्रापि द्रष्टव्यं। अत्राल्पबहुत्वमुच्यते–सर्वस्तोको

जघन्यनिक्षेपः (१)। ततो जघन्यातीत्थापनाऽनन्तगुणा (२) ततो व्याघातेऽतीत्थापनाऽनन्तगुणा (३)। तत उत्कृष्टमनुभागकंडकं विशेषाधिकं, तस्य समयगतैः स्पर्धकैरतीत्थापनातोऽधिकत्वात् (४)। तत उत्कृष्टो निक्षेपो विशेषाधिकः (५)। ततोऽपि सर्वोऽनुभागो विशेषाधिकः (६) ॥ ७॥

संप्रति द्वयोरप्युद्वर्तनापवर्तनयोरल्पबहुत्वं सूत्रकृत्प्रतिपादयति—

थोवं पएसगुणहाणि-अंतरे दुसु जहन्ननिक्खेवो। कमसो अणंतगुणिओ, दुसु वि अइत्थावणा तुल्ला॥८॥
वाघाएणणुभाग-कंडगमेक्काए वग्गणाऊणं। उक्कोसो निक्खेवो ससंतबंधो य सविसेसो ॥ ९ ॥

थोवं ति–एकस्यां स्थितौ यानि स्पर्धकानि तानि क्रमशः स्थाप्यन्ते। तद्यथा–सर्वजघन्यं रसस्पर्धकमादौ। ततो विशेषाधिकरसं द्वितीयं। ततो विशेषाधिकरसं तृतीयं। एवं यावत्सर्वोत्कृष्टरसमन्ते। तत्रादिस्पर्धकादारभ्योत्तरोत्तरस्पर्धकानि प्रदेशापेक्षया विशेषहीनानि विशेषहीनानि, अन्तिमस्पर्धकादारभ्य पुनरधोऽधः क्रमेण प्रदेशापेक्षया विशेषाधिकानि विशेषाधिकानि।

गाथार्थः–पएसगुणहाणि अंतरे=स्पर्धक प्रदेशसमूहना द्विगुणवृद्धि हानिना आंतरे रससमूह, थोवं=स्तोक, तेथी कमसो=अनुक्रमे, दुसु=बंनेमां, जहन्ननिक्खेवो=जघन्य निक्षेप, अणंतगुणिओ=अनन्त गुण (परस्पर तुल्य) छे. तेथी, दुसुवि=बंनेमां पण, अइत्थावणा=अतीस्थापना अनंतगुण, तुल्ला=परस्पर तुल्य तेथी, वाघाएण=व्याघातभावी, एक्काए वग्गणाए ऊणं=एक वर्गणाए ऊन, अणुभागकंडगं=अनुभागकंडक अनंतगुण, तेथी, उक्कोसो निक्खेवो=उत्कृष्ट निक्षेप अनंतगुण, तेथी ससंत० सविसेसो=उत्कृष्टस्थितिनो अनुभाग विशेषाधिक. ८-९.

तेषां मध्ये एकस्मिन् द्विगुणवृद्धयन्तरे द्विगुणहान्यन्तरे वा यत्स्पर्धकजातं तत् सर्वस्तोकं (१)। अथवा स्नेहप्रत्ययस्पर्धकस्यानुभागद्विगुणवृद्धयन्तरे द्विगुणहान्यन्तरे वा यदनुभागपटलं तत्सर्वस्तोकं (१)। ततः 'दुसु त्ति' द्वयोरप्युद्वर्तनापवर्तनयोर्जघन्यो निक्षेपोऽनन्तगुणः, स्वस्थाने तुल्यः (२)। तत्र यद्यप्युद्वर्तनायामावलिकाऽसंख्येयभागगतानि स्पर्धकानि निक्षेपोऽपवर्तनायां समयाधिकावलिकात्रिभागगतानि स्पर्धकानि; तथाप्यादिमस्थितिषु स्पर्धकानि स्तोकान्येव प्राप्यन्ते, अन्तिमस्थितिषु प्रभूतानीति स्पर्धकसंख्यापेक्षया द्वयोरपि निक्षेपस्तुल्यः। एवमतीत्थापनायामुत्कृष्टनिक्षेपेऽपि च भावनीयं। ×क्रमश इति च सकलगाथापेक्षया योजनीयं। ततो द्वयोरप्यतीत्थापना व्याघातबाह्याऽनन्तगुणा, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्या (३)। ततः 'वाघाएणेत्यादि' व्याघातेन यदुत्कृष्टमनुभागकंडकमेकया वर्गणयैकसमयमात्रस्थितिगतस्पर्धकसंहतिरूपयोनं एषोत्कृष्टाऽतीत्थापना साऽनन्तगुणा (४)। तत उद्वर्तनापवर्तनयोरुत्कृष्टो निक्षेपो विशेषाधिकः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यः (५) ×ततः 'स संतबंधो य सविसेसो त्ति' पूर्वबद्धोत्कृष्टस्थितिकर्मानुभागेन सहोत्कृष्टस्थित्यनुभागबन्धो विशेषाधिक इति ॥ ८-९ ॥

×(य०उ०९) क्रमश इति चाद्यापेक्षया योजनीयं, न तु द्वयोस्तुल्यत्वेनाभिमतयोर्मध्ये।

संप्रत्युद्वर्तनापवर्तनयोः कालनियमं विषयनियमं च प्रतिपादयति—

आबंधा उक्कड्डइ, सव्वहितो(मो)कड्डणा ठिइरसाणं। किट्टीवज्जे उभयं, किट्टीसु ओवट्टणा नवरं (एक्का)॥१०॥

आबंध त्ति—आ बंधात् बन्धं यावत्, उत्कर्षयति यावद्बन्धस्तावदुद्वर्तना भवति, परतो न भवतीत्यर्थः। तथा सर्वत्र बन्धकरणकालेऽबन्धकाले याऽपकर्षणाऽपवर्तना स्थितिरसानां स्थित्यनुभागानां प्रवर्तते। एष कालनियमः। अथवा आबन्धादिति यावन्मात्रस्थितिबन्धस्तावन्मात्रस्य स्थितिसत्कर्मणः स्थित्युद्वर्तनानुभागोद्वर्तना चोपजायते। उपरितनस्य कर्मणः स्थित्यनुभागोद्वर्तना न भवति। अपकर्षणाऽपवर्तना पुनः सर्वत्र बन्धप्रमाणादर्वाक् परतो वा स्थित्यनुभागयोः प्रवर्तते। तथा किट्टीकृतवर्जे कर्मदलिके उभयमुद्वर्तनापवर्तनारूपं भवति। किट्टीकृते त्वपवर्तनैव केवला, नोद्वर्तनेति। एष विषयनियमः॥ १०॥

॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां कर्मप्रकृतिटीकायामुद्वर्तनापवर्तने समाप्ते॥

×(य०उ०१०) ततः ससद्बन्धः पूर्वबद्धोत्कृष्टस्थित्यनुभागसत्कर्मसहित उत्कृष्टस्थित्यनुभागबन्धः सविशेषो विशेषाधिकः, समयाधिकातीत्थापनावलिकागतैः पूर्वबद्धैर्बध्यमानैश्च स्पर्धकैरधिकत्वात्।

गाथार्थः—ठिइरसाणं=स्थिति अने रसनी, आ बंधा=बन्ध सुधी, उक्कड्डइ=उद्वर्तना थाय छे. सव्वहितोकड्डणा=अपवर्तना सवत्र (बन्ध अने अबन्धमां). किट्टीवज्जे=अकिट्टीकृत दलिकमां, उभयं=उद्वर्तना अपवर्तना बंने प्रवर्ते, नवरं=परंतु, किट्टीसु ओवट्टणा=किट्टीकृत दलिकमां एक अपवर्तना प्रवर्ते. १०.

तदेवमुक्ते उद्वर्तनापवर्तने । संप्रत्युद्देशक्रमेणोदीरणा वक्तव्या । तत्र चैतेऽर्थाधिकाराः। तद्यथा–लक्षणं१, भेदः२, साद्यनादिप्ररूपणा३, स्वामित्वं४, उदीरणाप्रकृतिस्थानानि ५, तत्स्वामित्वं ६ चेति । तत्र प्रथमतो लक्षणभेदयोः प्ररूपणार्थमाह—

जं करणेणोकड्डिय, उदए दिज्जइ उदीरणा एसा । पगइठिइअणुभाग–प्पएसमूलुत्तरविभागा(गो) ॥१॥

जं ति–अत्र पूर्वार्धेन लक्षणमभिहितमुत्तरार्धेन तु भेदः । तत्र यत्परमाण्वात्मकं दलिकं करणेन योगसंज्ञकेन वीर्यविशेषेण कषायसहितेनासहितेन वा उदयावलिकाबहिर्वर्तिनीभ्यः स्थितिभ्योऽपकृष्योदये दीयते उदयावलिकायां प्रक्षिप्यते एषोदीरणा । उक्तं च–"उदयावलियबाहिरिल्लठिईहिंतो कसायसहिएणं असहिएण वा जोगसन्नेण करणेणं दलियमाकड्डिय उदयावलियाए पवेसणं उदीरणत्ति" । सा च किंभूतेत्यत आह–प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशमूलोत्तरविभागा, प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशैर्मूलप्रकृतिभिरुत्तरप्रकृतिभिश्च कृत्वा विभागो भेदो यस्याः सा तथा। इदमुक्तं भवति–सोदीरणा चतुर्विधा, तद्यथा–प्रकृत्युदीरणा, स्थित्युदीरणा, अनुभागोदीरणा, प्रदेशोदीरणा च। एकैकापि द्विधा–मूलप्रकृतिविषया उत्तरप्रकृतिविषया च । तत्र मूलप्रकृतिविषयाऽष्टधा, उत्तरप्रकृतिविषया चाष्टपञ्चाशदधिकशतभेदा× ॥ १ ॥

×(य०उ०१)यद्यप्युदीरणायामुदयसमकक्षतया प्रकृतीनां द्वाविंशं शतं कर्मस्तवटीकादावुक्तं, इह त्वष्टपञ्चाशं शतं, तथापि तत्र बन्धादीनां पृथग्न विवक्षा, इह तु पृथग्विवक्षेति न दोष इति भावनीयम् ।

गाथार्थः–जं=जे दलिकने, करणेण=योगरूप वीर्यवडे, ओक्कड्डिय=आकर्षीने, उदए दिज्जइ=उदयावलिकामां खेपवीए, एसा=आ, उदीरणा=उदीरणा; पगइ०पएस=प्रकृति, स्थिति, रस अने प्रदेश ए ४प्रकारना, मूलु०भागा=मूल अने उत्तर प्रकृति संबन्धि बे भेद छे. १

तदेवमुक्तौ लक्षणभेदौ (१–२)। संप्रति साद्यनादिप्ररूपणा कर्तव्या। सा च द्विधा–मूलप्रकृतिविषया, उत्तरप्रकृतिविषया च। तत्र प्रथमतो मूलप्रकृतिविषयामाह—

मूलपगईसु पंचण्ह, तिहा दोण्हं चउव्विहा होइ। आउस्स साइ अधुवा, दसुत्तर सउत्तरासिं पि ॥२॥

मूलपगईसु त्ति–मूलप्रकृतिषु मध्ये पञ्चानां मूलप्रकृतीनां ज्ञानावरणदर्शनावरणनामगोत्रान्तरायरूपाणामुदीरणा त्रिधा त्रिप्रकारा। तद्यथा–अनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च। तथाहि–ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणां यावत् क्षीणमोहगुणस्थानकस्य समयाधिकावलिकाशेषो न भवति तावत्सर्वजीवानामुदीरणाऽवश्यंभाविनी। नामगोत्रयोस्तु यावत्सयोगिचरमसमयस्तावत्। तत एषामनादिरुदीरणा, ध्रुवाऽभव्यानां, अध्रुवा भव्यानां। तथा द्वयोर्वेदनीयमोहनीययोरुदीरणा चतुर्विधा। तद्यथा–सादिरनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च। तत्र वेदनीयस्य प्रमत्तगुणस्थानकं यावदुदीरणा, न परतः। मोहनीयस्य सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकं यावत् न परतः। ततोऽप्रमत्तादिगुणस्थानकेभ्यः प्रतिपततो वेदनीयस्योपशान्तमोहगुणस्थानकाच्च प्रतिपततो मोहनीयस्योदीरणा सादिः। तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः। ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत्। आयुषः पुनरुदीरणा सादिरध्रुवा च। तथाहि–आयुषः पर्यन्तावलिकायां नियमादुदीरणा न भवति, ततोऽध्रुवा। पुनरपि परभवोत्पत्तिप्रथमसमये प्रवर्तते ततः सादिरिति। तदेवं कृता मूलप्रकृतिषु साद्यनादिप्ररूपणा। संप्रत्युत्तरप्रकृतिषु तां चिकीर्षुराह–'दसुत्तरसउत्तरासिं पि' सादिरध्रुवा चेत्यनुवर्तते। उत्तरासामपि उत्तरप्रकृतीनामपि

गाथार्थः–पंचण्ह=पांच, मूलपगईसु=मूल प्रकृतिनी उदीरणा, तिहा=३ प्रकारे, दोण्हं=बेनी, चउव्विहा=४ प्रकारे, आउस्स=आयुष्यनी, दसुत्त०सिंपि=अने ११० उत्तर प्रकृतिओनी पण, साइ अधुवा=सादि अध्रुव, होइ=होय छे. २.

दशोत्तरशतसंख्यानां पञ्चविधज्ञानावरणदर्शनावरणचतुष्टयमिथ्यात्वतैजससप्तकवर्णादिविंशतिस्थिरास्थिरशुभाशुभागुरुलघुनिर्माणान्तरायपंचकरूपाष्टाचत्वारिंशद्ध्रुवाणां, सर्वशेषप्रकृतीनामित्यर्थः। उदीरणा द्विधा, तद्यथा–सादिरध्रुवा च। सा च साद्यध्रुवताऽध्रुवोदयत्वादेव सिद्धा ॥ २ ॥

मिच्छत्तस्स चउद्धा, तिहा य आवरणविग्घचउदसगे। थिरसुभ सेयर उवघायवज्ज धुवबंधिनामे य ॥३॥

मिच्छत्तस्स त्ति–मिथ्यात्वस्योदीरणा चतुर्धा, तद्यथा–सादिरनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च। तत्र सम्यक्त्वं प्रतिपद्यमानस्योदीरणा मिथ्यात्वस्य न भवति, उदयाभावात्। सम्यक्त्वात्प्रतिपतितस्य मिथ्यात्वं गतस्य पुनरपि भवति। ततोऽसौ सादिः। तत्स्थानमप्राप्तस्य त्वनादिः। अभव्यानां ध्रुवा। भव्यानामध्रुवा। तथा ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयान्तरायपञ्चकरूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनामुदीरणा त्रिप्रकारा। तद्यथा–अनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च। तथाहि–एतासां प्रकृतीनां ध्रुवोदयत्वादनादिरुदीरणा। अभव्यानां ध्रुवा। भव्यानां तु क्षीणमोहगुणस्थानके आवलिकाशेषे व्यवच्छेदभावादध्रुवा। तथा स्थिरशुभे सेतरे अस्थिराशुभसहिते ×तयोः, उपघातं वर्जयित्वा शेषनामध्रुवबन्धिनीनां च तैजससप्तकागुरुलघुवर्णादिविंशतिनिर्माणलक्षणानां सर्वसंख्यया त्रयस्त्रिंशत्संख्यानामुदीरणा(३३)त्रिधा, तद्यथा–अनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च। तत्रानादित्वं ध्रुवोदयत्वात्। ध्रुवाऽभव्यानां। अध्रुवा

×(य०उ०२) तयोर्विशेषणस्य परनिपात आर्षत्वात्।

गाथार्थः–मिच्छत्तस्स=मिथ्यात्वनी उदीरणा, चउद्धा=४ प्रकारे, आव०चउदसगे=५ज्ञाना०, ४दर्श० अने ५अन्तराय ए १४ नी, थिर० यर=स्थिर अस्थिर शुभ अशुभ, उवघा०नाम य=अने उपघात सिवायनी नामकर्मनी ध्रुवबन्धि २९प्रकृतिओनी तिहाय=३भांगे छे. ३.

भव्यानां, सयोगिकेवलिचरमसमये व्यवच्छेदभावात् । शेषाणां चाध्रुवोदयानां दशोत्तरशतसंख्यानामध्रुवोदयत्वादुदीरणा सादिः, अध्रुवा च प्रागेवोक्ता ॥ ३ ॥

तदेवं कृता साद्यनादिप्ररूपणा (३) । संप्रति मूलप्रकृत्युदीरणास्वामिनमाह—

घाईणं छउमत्था, उदीरगा रागिणो य मोहस्स। तइयाऊण पमत्ता, जोगंता उ त्ति दोण्हं च ॥ ४ ॥

घाईणं त्ति—घातिप्रकृतीनां ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायरूपाणां सर्वेऽपि छद्मस्थाः क्षीणमोहपर्यवसाना उदीरकाः । मोहनीयस्य तु रागिणः सरागाः सूक्ष्मसंपरायपर्यवसाना उदीरकाः । तृतीयस्य वेदनीयस्यायुषश्च प्रमत्ताः प्रमत्तगुणस्थानकपर्यन्ताः सर्वेऽप्युदीरकाः । केवलमायुषः पर्यन्तावलिकायां नोदीरका भवन्ति । तथा द्वयोर्नामगोत्रयोर्योग्यन्ताः सयोगिकेवलिपर्यवसानाः सर्वेऽप्युदीरकाः । इतिशब्दो भिन्नक्रमो गाथापर्यन्ते योजनीयः । स च मूलप्रकृत्युदीरणापरिसमाप्तिद्योतको वेदितव्यः ॥ ४ ॥

तदेवं मूलप्रकृत्युदीरणास्वाम्युक्तः सांप्रतमुत्तरप्रकृत्युदीरणास्वामिनमाह—

विग्घावरणधुवाणं, छउमत्था जोगिणो उ धुवगाणं। उवघायस्स तणुत्था, तणुकिट्टीणं तणुगरागा ॥५॥

गाथार्थः-घाईणं=३घाती कर्मना, छउमत्था=छद्मस्थ, रागि०मोहस्स=मोहनीयना सरागी, तइया०पमत्ता=वेदनीय अने आयुष्यना प्रमत्तसुधीना, जोगं०दोण्हं च=बे कर्मना सयोगी सुधीना जीवो, उदीरगा=उदीरक छे. ४.।विग्घा०छउमत्था=५ अन्तराय,५ज्ञानावरण अने ४ दर्शनावरण ए १४ ध्रुवोदयीना छद्मस्थ; जोगि०धुवगाण-नाम कर्मनी ३३ ध्रुवोदयीना सयोगी, उव०तणुत्था=उपघातना शरीरस्थ, तणु०रागा=किट्टीकृत लोभना सूक्ष्मसंपरायी उदीरक छे. ५

विग्घ त्ति–विग्घ त्ति अन्तरायं, ततोऽन्तरायपञ्चकज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयरूपाणां चतुर्दशानां ध्रुवोदयप्रकृतीनां सर्वे छद्मस्था उदीरकाः । तथा 'धुवगाणं ति' नामध्रुवोदयानां त्रयस्त्रिंशत्संख्यानां तैजससप्तकवर्णादिविंशतिस्थिरास्थिरशुभाशुभागुरुलघुनिर्माणरूपाणां योगिनः सयोगिकेवलिपर्यन्ता उदीरकाः । उपघातनाम्नास्तु तनुस्थाः शरीरस्थाः शरीरपर्याप्त्या पर्याप्ता उदीरकाः । तनुकिट्टीनां सूक्ष्मकिट्टीनां अर्थात् लोभसत्कानां तनुकरागाः सूक्ष्मसंपराया यावच्चरमावलिका न भवति तावदुदीरकाः ॥ ५ ॥

तसबायरपज्जत्तग-सेयरगइजाइदिट्ठिवेयाणं । आऊण य तन्नामा, पत्तेगियरस्स उ तणुत्था ॥ ६ ॥

तस त्ति–त्रसबादरपर्याप्तानां सेतराणां सप्रतिपक्षाणां स्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसहितानामित्यर्थः । तथा चतसृणां गतीनां, पञ्चानां च जातीनां, तिसृणां दृष्टीनां दर्शनानां मिथ्यादर्शनादीनां, त्रयाणां च वेदानां नपुंसकवेदादीनां, चतुर्णां चायुषां, सर्वसंख्यया (२५) पञ्चविंशतिप्रकृतीनां यथास्वं तन्नामानस्तत्तत्प्रकृतिनामान उदीरकाः । तद्यथा–त्रसनाम्नस्त्रसाः, ते च शरीरेऽपान्तरालगतौ च वर्तमाना उदीरकाः । एवं सर्वेषामपि भावनीयं । तथा प्रत्येकनाम्न इतरस्य च साधारणनाम्नः तनुस्थाः शरीरस्थाः शरीरपर्याप्त्या पर्याप्ता यथाक्रमं प्रत्येकशरीरिणः साधारणशरीरिणश्च सर्वे उदीरकाः ॥ ६ ॥

गाथार्थः–तस०सेयर=त्रसत्रिक अने स्थावरत्रिक, गइ०वेयाणं=४गति, ५जाति, ३दर्शनमोहनीय,३वेद, आऊण य=अने ४ आयुष्यना, तन्नामा=ते ते प्रकृतिना उदयवाला उदीरक जाणवा. पत्तेगि०तणुत्था=प्रत्येक अने साधारणना शरीरस्थ जीवो उदीरक जाणवा ६.

आहारगनरतिरिया, सरीरदुगवेयए पमोत्तूणं । ओरालाए एवं, तदुवंगाए तसजियाउं ॥ ७ ॥

आहारग त्ति–ये नरा मनुष्यास्तिर्यञ्चश्च आहारका ओजोलोमप्रक्षेपाहाराणामन्यतममाहारं गृह्णन्तस्ते औदारिकशरीरनाम्नः। उपलक्षणमेतदौदारिकबन्धनचतुष्टयस्यौदारिकसंघातस्य चोदीरकाः, किं सर्वेऽपि ? नेत्याह–शरीरद्विकवेदकान् प्रमुच्य, शरीरद्विकमाहारकवैक्रियलक्षणं तत्स्थान् परित्यज्य । ते हि नौदारिकशरीरनामोदये वर्तन्ते, तत्कथं तस्योदीरकाः स्युः ? । तथैवमुक्तेन प्रकारेण । 'तदुवंगाए त्ति' तदंगोपांगनाम्न औदारिकांगोपांगनाम्न उदीरका वेदितव्याः । केवलं ते त्रसकायिका एव, न स्थावराः(अपि), तेषां तदुदयाभावात् ॥ ७ ॥

वेउव्विगाए सुरनेरईया आहारगा नरो तिरिओ । सन्नी बायरपवणो, य लद्धिपज्जत्तगो होज्जा ॥ ८ ॥

वेउव्विगाए त्ति–वैक्रियशरीरनाम्नः । उपलक्षणमेतद्वैक्रियबन्धनचतुष्टयस्य वैक्रियसंघातस्य च । सुरा नैरयिका वा। आहारका ओजोलोमाद्यन्यतममाहारं गृह्णन्तः । यश्च नरस्तिर्यग्वा संज्ञी वैक्रियलब्धिवा(मा)न् । यश्च बादरपवनो दुर्भगनामोदयी लब्धिपर्याप्तको वैक्रियशरीरलब्ध्या पर्याप्तः । ते सर्वेऽप्युदीरकाः ॥ ८ ॥

गाथार्थः–सरीरदुग०पमोत्तूणं=आहारक अने वैक्रिय शरीरना वेदक वर्जीने, आहा०तिरिया=आहारी मनुष्य तिर्यंच, ओरालाए=औदारिक शरीरना उदीरक छे. एवं=ए प्रमाणे, तदुवंगाए=तेना अंगोपांगना उदीरक, तसजियाओ=त्रस जीवो जाणवा. ७। वेउव्विगाए=वैक्रियशरीरना उदीरक, आहारगा=आहारी, सुरनेरइया=देव नारक, सन्नि=संज्ञी, नरो तिरिओ=(वैक्रियलब्धि प्रयुंजक) मनुष्य तिर्यंच, बायर०पज्जतगो=लब्धि पर्याप्त बादर वायु, होज्जा=होय छे. ८.

वेउव्विउवंगाए तणुतुल्ला, पवणबायरं हिच्चा । आहारगाए विरओ, विउव्वयंतो पमत्तो य ॥ ९ ॥

वेउव्विउ त्ति–वैक्रियांगोपांगनाम्न उदीरकास्तनुतुल्या वैक्रियशरीरतुल्या वेदितव्याः । ये वैक्रियशरीरनाम्न उदीरकाः प्रागुपदिष्टास्त एव वैक्रियांगोपांगनाम्नोऽपि वेदितव्या इत्यर्थः । किं सर्वेऽपि ? नेत्याह–बादरपवनं बादरवायुकायिकं हित्वा परित्यज्य शेषा द्रष्टव्याः । 'आहारगाए इत्यादि' ×आहारकशरीरनाम्नो विरतः संयतस्तदाहारकशरीरं(वि)कुर्वन् प्रमत्तः प्रमादभावमुपगतः सन् उदीरको भवति ॥ ९ ॥

छण्हं संठाणाणं, संघयणाणं च सगलतिरियनरा । देहत्था पज्जत्ता, उत्तमसंघयणिणो सेढी ॥ १० ॥

छण्हं ति–सकलाः पञ्चेन्द्रियास्तिर्यञ्चो मनुष्याश्च देहस्थाः शरीरनामोदये वर्तमाना लब्ध्या पर्याप्ताः षण्णां संस्थानानां षण्णां च संहननानामुदीरका भवन्ति । इहोदयप्राप्तानामेवोदीरणा प्रवर्तते, नान्येषां । ततो यदा यत्संस्थानं संहननं वोदयप्राप्तं भवति, तत्तदोदीर्यते, नान्यदेति द्रष्टव्यं । तथोत्तमसंहननिनो वज्रर्षभनाराचसंहननिनः श्रेणिः क्षपकश्रेणिर्भवति, न शेषसंहननिनः, तेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्ना वज्रर्षभनाराचसंहननमेवोदीरयन्ति, न शेषसंहननानि, उदयाभावादित्यवसेयं ॥ १० ॥

×(य०उ० ३) उपलक्षणादाहारकबन्धनस्याहारकसङ्घातस्य च ।

गाथार्थः–वेउव्विउवगाए= वैक्रिय अंगोपांगना, पवण०हिच्चा=वादर वायु वर्जीने, तणुतुल्ला=वैक्रिय शरीरतुल्य जाणवा. आहारगाए=आहारकशरीरना उदीरक, विउव्वयंतो=आहारक करता, विरओ पमत्तोय=प्रमत्त संयत जाणवा ९. । छण्हं०संघयणाणं च= ६ संस्थान अने ६संघयणना, देहत्था पज्जत्ता=शरीरस्थ लब्धिपर्याप्ता, सगल०नरा=सर्वे पंचेन्द्रिय तिर्यंच अने मनुष्यो उदीरक छे. उत्तमसंघयणिणो=वज्रऋषभनाराच संघयणीनेज, सेढी=क्षपकश्रेणि होय छे. १०.

चउरंसस्स तणुत्था, उत्तरतणु सगलभोगभूमिगया। देवा इयरे हुंडा, तसतिरियनरा य सेवट्टा (छेवट्टा)११॥

चउरंसस्स त्ति–चतुरस्रस्यैव समचतुरस्रसंस्थानस्यैव तनुस्थाः शरीरस्था उत्तरतनव आहारकोत्तरवैक्रियशरीरिणो मनुष्यास्तिर्यञ्चश्च सकलाः सकलेन्द्रियाः पञ्चेन्द्रिया इत्यर्थः । तथा भोगभूमिगता देवाश्चोदीरका भवन्ति । 'इयरे हूंड त्ति' इतरे जक्तशेषा एकेन्द्रियविकलेन्द्रियनैरयिका अपर्याप्तकाश्च पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याः । एते सर्वेऽपि शरीरस्था हुंडसंस्थानस्योदीरका भवन्ति । 'तसतिरियनरा य सेवट्ट त्ति' अत्रेतरे इत्यनुवर्तते, इतरे उक्तशेषास्त्रसा द्वीन्द्रियादयः पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याश्च सेवार्ताः सेवार्तसंहननस्योदीरकाः ॥ ११ ॥

संघयणाणि न उत्तर-तणूसु तन्नामगा भवंतरगा । अणुपुव्वीणं परघा-यस्स उ देहेण पज्जत्ता ॥१२॥

संघयणाणि त्ति–उत्तरतनुषु वैक्रियाहारकशरीरेषु× संहननानि न भवन्तीति षण्णां संहननानामेकतमदपि संहननं न भवति । तेनैकस्यापि संहननस्योदीरका न भवन्ति×१ । तथानुपूर्वीणां नरकानुपूर्व्यादीनां चतसृणां तन्नामकास्ततदानुपूर्व्यनुयायिनारका-

×(य०उ०४) नरतिर्यक्ष्वपि । ×१(य०उ०५) उक्तं च–'वेउव्विय आहारग उदये न णरा वि हुन्ति संघयणी' ।

गाथार्थः–उत्तरतणु=आहारक अने उत्तरवैक्रिय शरीरवाला, तणुत्था=शरीरस्थ, सगल०गया=पंचेन्द्रिय तिर्यंच अने मनुष्य तथा युगलिक तिर्यंच मनुष्य, देवा=अने देवो, चउरंसस्स=समचतुरस्र संस्थानना; इयरे=ते सिवायना, हुंडा=हुंडकसंस्थानना उदीरक. तस०नराय=(तथा पूर्वसिवायना) त्रस अने तिर्यंच मनुष्यो, सेवट्टा=सेवार्त संघयणना उदीरक जाणवा ११ उत्तरतणूसु=आहारक अने वैक्रियरूप उत्तरशरीरवाला, संघयणाणि न=संघयणना उदीरक नथी. भवंतरगा=विग्रहगतिमां वर्तता, तन्नामगा=ते ते नामवाला, अणुपुव्वीणं=अनुपूर्वीना उदीरक, परघायस्स उ=पराघातना तो, देहेण पज्जत्ता=शरीर पर्याप्तिएपर्याप्ता उदीरक. १२.

दिनामानो भवान्तरगा भवापान्तरालगतौ वर्तमाना उदीरका वेदितव्याः । तद्यथा–नारकानुपूर्व्या नारको भवापान्तरालगतौ वर्तमान उदीरकः, तिर्यगानुपूर्व्यास्तिर्यगित्यादि । तथा पराघातनाम्नः शरीरपर्याप्त्या पर्याप्ताः सर्वेऽप्युदीरकाः× ॥ १२ ॥

बायरपुढवी आया·वस्स य वज्जित्तु सुहुमसुहुमतसे। उज्जोयस्स य तिरिए(ओ), उत्तरदेहो य दवजई ॥१३॥

बायरपुढवि त्ति–आतपनाम्नो बादरपृथ्वीकायिक उदीरकः । चशब्दस्यानुक्तार्थसमुच्चायकत्वात् बादरपृथ्वीकायिकोऽपि पर्याप्तो द्रष्टव्यः । तथा सूक्ष्मान् सूक्ष्मैकेन्द्रियान् सूक्ष्मत्रसांश्च तेजोवायुकायिकान् वर्जयित्वा शेषास्तिर्यञ्चः पृथिव्यंबुवनस्पतयो विकलेन्द्रियाः पञ्चेन्द्रियाश्च लब्धिपर्याप्ता उद्योतनाम्नो यथासंभवमुदीरकाः । तथोत्तरदेहे उत्तरशरीरे यथासंभवं वैक्रिये आहारके च वर्तमानो देवो यतिश्चोद्योतनाम्न उदीरको ×१भवति ॥ १३ ॥

सगलो य इट्ठखगई(इइ) उत्तरतणुदेवभोगभूमिगया। इट्ठसराए तसो वि य, इयरासि तसा सनेरइया १४॥

×(य०उ०६) अत्रापिना (अपिशब्देन) वैक्रियशरीरिणस्तिर्यञ्चो गृह्यन्ते । × १ (य०उ०७) उक्तं च—" पुढवीआउवणस्सइ बायरपज्जत्तउत्तरतणू य । विगलपणिंदियतिरिया उज्जोउदीरगा भणिया ॥१॥"

गाथार्थः–आयावस्स=आतपनामना उदीरक, बायरपुढवी=बादरपृथ्वीकाय, सुहुम=सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सुहुमतसे=तेउकाय वाउकाय, वज्जित्तु=वर्जीने, तिरिओ=सर्व तिर्यंच, उत्तरदेहो य=अने उत्तरशरीरमां वर्तता, देवजइ=देव अने यति, उज्जोयस्स=उद्योत नामना उदीरक जाणवा. १ । इट्ठखगई=शुभविहायोगतिना उदीरक, सगलो=(तेना उदयवाला) सर्वे पंचेन्द्रिय तिर्यंच मनुष्य, उत्तरतणु=उत्तरशरीरी म०, ति०, देव=सर्व देवो, भोगभूमिगया=सर्व युगलिक म०ति० जाणवा. इट्ठसराए=सुस्वरनामना उदीरक, उतसो·वि य=द्वीन्द्रियादि त्रसपण. इयरासि=अशुभखगति ने दुःस्वरना, तसा सनेरइया=नारकी सहित यथायोगपणे त्रस जीवो जाणवा.१४

सगलो त्ति–सकलः पञ्चेन्द्रियस्तिर्यङ्मनुष्यो वा शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तः प्रशस्तविहायोगत्युदये वर्तमानः। तथोत्तरस्यां तनौ वैक्रियशरीररूपायां वर्तमानाः सर्वे तिर्यञ्चो मनुष्याश्च । तथा सर्वे देवाः सर्वे च भोगभूमिगता इष्टखगतेः प्रशस्तविहायोगतेरुदीरकाः । तथेष्टस्वरनाम्नः सुस्वरनाम्नश्च सा द्वीन्द्रियादयः । अपिशब्दात्प्रागुक्ताश्च पञ्चेन्द्रियतिर्यगादयो भाषापर्याप्त्या पर्याप्ता यथासंभवमुदीरकाः । तथेतरयोरप्रशस्तविहायोगतिदुःस्वरनाम्नोश्च सा विकलेन्द्रियाः सनैरयिका नैरयिकसहिताः, तथा पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याः केचन यथासंभवमुदीरका वेदितव्याः ॥ १४ ॥

उस्सासस्स सराण य, पज्जत्ता आणपाणभासासु। सव्वण्णूणुस्सासो, भासा वि य जा न रुज्झंति॥१५॥

उस्सासस्स त्ति–उच्छ्वासस्वरशब्दयोरानप्राणभाषाशब्दाभ्यां सह यथासंख्येन योजना। सा चैवं–उच्छ्वासनाम्नः प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्ताः सर्वेऽप्युदीरकाः । 'सराण य त्ति' द्वित्वेऽपि बहुवचनं प्राकृतत्वात्। ततः स्वरयोः सुस्वरदुःस्वरयोः प्रागुक्ता उदीरकाः सर्वेऽपि भाषापर्याप्त्या पर्याप्ता द्रष्टव्याः । यद्यपि स्वरयोः प्रागेवोदीरका उक्तास्तथापि ते भाषापर्याप्त्या पर्याप्ता एवोदीरका वेदितव्या इति विशेषोपदेश(दर्श)नार्थं पुनरुपादानं। तथा सर्वज्ञानां केवलिनामुच्छ्वासभाषे यावन्नाद्यापि निरोधमुपगच्छतस्तावदुदीर्येते, तन्निरोधानन्तरं तूदयाभावान्नोदीरणा भवति ॥ १५ ॥

गाथार्थः–आण०भासासु=श्वासोश्वास अने भाषा पर्याप्ति, पज्जत्ता=पर्याप्ता अनुक्रमे; उस्सा० सराण य=उश्वास अने स्वरना उदीरक. सव्वन्नूण=केवलीओने उस्सा०रुज्झंति=उश्वास अने भाषाने रुंधे नहि त्यां सुधी ते बेनी उदीरणा होय. १५.

देवो सुभगाए(इ)ज्जाण, गब्भवक्कंतिओ य कित्तीए । पज्जत्तो वज्जित्ता, ससुहुमनेरइयसुहुमतसे ॥ १६ ॥

देवो त्ति-'देवो' इत्यादौ जातावेकवचनं । केचिद्देवाः केचित्तिर्यङ्मनुष्या गर्भव्युत्क्रान्ताः सुभगादेयनाम्नोरुदीरका ये तदुदये वर्तन्ते । तथा सूक्ष्मैकेन्द्रियसहितान् नैरयिकान् सूक्ष्मत्रसांश्च वर्जयित्वा शेषाः पर्याप्तकनामोदये वर्त्तमाना यशःकीर्तेरुदीरकाः ॥ १६ ॥

गोउत्तमस्स देवा, नरा य वइणो चउण्हमियरासिं । तव्वइरित्ता तित्थ–गरस्स उ सव्वण्णुयाएँ भवे ॥१७॥

गोउत्तमस्स त्ति–सर्वे देवा मनुष्या अपि च केचिदुच्चैःकुलसमुत्पन्नास्तथा व्रतिनो (ऽति)नीचैर्गोत्रिणोऽपि पञ्चमहाव्रतसमलंकृतगात्रयष्टय उच्चैर्गोत्रस्योदीरकाः । तथेतरासां चतसृणां प्रकृतीनां दुर्भगानादेयायशःकीर्तिनीचैर्गोत्राणां तद्व्यतिरिक्ता उक्तव्यतिरिक्ता वेदितव्याः । तत्र दुर्भगानादेययोरेकेन्द्रियसंमूर्छिमतिर्यङ्मनुष्यनैरयिकाः,अयशःकीर्तेश्च सर्वे सूक्ष्माः सर्वे च नैरयिकाः सर्वे च सूक्ष्मत्रसाः सर्वेऽप्यपर्याप्तकनामोदये वर्तमानाः । नीचैर्गोत्रस्य पुनः सर्वे नैरयिकाः सर्वे तिर्यञ्चो मनुष्या अपि

गाथार्थः-देवो=केटलाक देवता, गब्भ०य=अने गर्भज मनुष्य तिर्यंच, सुभगाए०ज्जाण=सौभाग्य अने आदेयना उदीरक. कित्तीए=यशःकीर्तिना उदीरक, ससुहुम=सूक्ष्म एकेन्द्रिय सहित, नेर०तसे=नारकी अने तेउकाय वाउकाय, वज्जित्ता=वर्जीने, पज्जत्तो=पर्याप्त नामोदयवंत सर्व जीवो जाणवा. १६ । गोत्तमस्स=उच्चैर्गोत्रना उदीरक, देवा=सर्व देवो, नरा य वइणो=उच्च कुलोत्पन्न मनुष्यो तथा व्रतधारी मुनिराजो जाणवा. चउ०रासिं=इतर ४ ना, तव्वइरित्ता=उक्त सिवायना. तित्थगरस्स उ=जिननामनी उदीरणा, सव्व०भवे=सर्वज्ञपणामां होय. १७.

विशिष्टकुलोत्पन्नान् व्रतिनश्च मुक्त्वा शेषाः सर्वेऽप्युदीरका द्रष्टव्याः । तथा तीर्थकरनाम्नः सर्वज्ञतायां सत्यां भवेदुदीरणा, नान्यदा, उदयाभावात् ॥१७॥

इंदियपज्जत्तीए, दुसमयपज्जत्तगाए(उ)पाउग्गा । निद्दापयलाणं खीणरागखवगे परिच्चज्ज ॥ १८ ॥

इंदिय त्ति–इन्द्रियपर्याप्त्या पर्याप्ताः सन्तो द्वितीयसमयादारभ्येन्द्रियपर्याप्त्यनन्तरसमयादारभ्येत्यर्थः । निद्राप्रचलयोरुदीरणाप्रायोग्या भवन्ति । किं सर्वेऽपि ? नेत्याह–क्षीणरागान् क्षपकांश्च परित्यज्य । उदीरणा हि उदये सति भवति, नान्यथा । न च क्षीणरागक्षपकयोर्निद्राप्रचलोदयः संभवति, 'निद्दादुगस्स उदओ खीणगखवगे परिच्चज्ज' इतिवचनप्रामाण्यात् । ततस्तान् वर्जयित्वा शेषा निद्राप्रचलयोरुदीरका वेदितव्याः× ॥१८॥

निद्दानिद्दाईण वि, असंखवासा य मणुयतिरिया य । वेउव्वाहारतणू, वज्जित्ता अप्पमत्ते य ॥१९॥

×(य०उ०९) एतच्च सत्कर्मग्रन्थादिप्रसिद्धं ग्रन्थकृन्मतं। ये तु कर्मस्तवकारादयः क्षपकक्षीणमोहयोरपि निद्राद्विकस्योदयमिच्छन्ति तन्मते उदये सत्युदीरणाया अवश्यंभावात् क्षीणरागमन्तावलिकाभाविनं मुक्त्वा तदारतः सर्वेऽपि जीवा इन्द्रियपर्याप्त्या पर्याप्ता निद्राप्रचलयोरुदीरका द्रष्टव्याः । तदुक्तं तन्मतानुसारेणैव पञ्चसङ्ग्रहे–"मोत्तूण खीणरागं इंदियपज्जत्तगा उदीरंति निद्दापयला" इति॥

गाथार्थः–खीण०परिच्चज्ज=क्षीणमोही अने क्षपक सिवायना जीवो, इंदिय०पज्जत्तगा=इन्द्रियपर्याप्तिए पर्याप्त थया थका बीजा समयथी निद्दापयलाणं=निद्रा अने प्रचलानी, पाउग्गा=उदीरणा प्रायोग्य छे. १८ । असंख०तिरिया य=असंख्यात वर्षायुष्य मनुष्य तिर्यंच, वेउव्वाहारतणू=वैक्रिय अने आहारक शरीरी, अप्पमत्ते य=अने अप्रमत्तने, वज्जित्ता=वर्जीने शेष जीवो, निद्दानिद्दाईणं= निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला अने थिणद्धिना उदीरक जाणवा. १९.

निद्दत्ति–असंख्येयवर्षायुषो मनुष्यतिरश्चो वैक्रियशरीरिण आहारकशरीरिणोऽप्रमत्तसंयतांश्च मुक्त्वा शेषाः सर्वेऽपि निद्रा-निद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानर्द्धीनामुदीरका वेदितव्याः ॥१९॥

वेयणियाण पमत्ता, ते ते बंधंतगा कसायाणं । हासाईछक्कस्स य, अपुव्वकरणस्स चरमंते ॥२०॥

वेयणियाणत्ति–वेदनीययोः सातासातरूपयोः प्रमत्ताः प्रमत्तगुणस्थानकपर्यन्ताः सर्वेऽप्युदीरकाः[×] । तथा ये ये जीवा येषां येषां कषायाणां बन्धकास्ते ते तेषां तेषां कषायाणामुदीरका वेदितव्याः । यतो यानेव कषायान् वेदयते तानेव बध्नाति 'जे वेयइ से बंधइ' इतिवचनात् । उदये च सत्युदीरणा । ततो युक्तमुक्तं 'ते ते बंधंतगा कसायाणं' इति । तत्र मिथ्यादृष्टिसासादना अनन्तानुबन्धिनामुदीरकाः, तेषां तद्भेदकत्वात् । अप्रत्याख्यानानामविरतसम्यग्दृष्टिपर्यन्ताः, प्रत्याख्यानावरणानां देशविरति-पर्यन्ताः, संज्वलनक्रोधमानमायालोभानां[×१] स्वस्वबन्धव्यवच्छेदादर्वाक् उदीरकाः, हास्यादिषट्कस्यापूर्वगुणस्थानकान्ता उदीरकाः

जावूणखणो पढमो, सुहरइहासाणमेवमियरासिं । देवा नेरइया वि य, भवट्ठिई केइ नेरइया ॥२१॥

×(य०उ०१०) नान्ये, अन्येषामतिविशुद्धत्वेन सातासातोदीरणायोग्याध्यवसायस्थानाभावात् । ×१(य०उ०११) किट्टीकृतस्य तु लोभस्य सूक्ष्मसंपराया उदीरका इत्युक्तं प्रागेव ।

गाथार्थः–वेयणियाण=बंने वेदनीयना, पमत्ता=प्रमत्तगुणस्थान पर्यंतना जीवो उदीरक. तेते०कसायाणं=जे जीवो जे कषायना बंधक ते ते कषायना उदीरक. अप्पुव०चरमंते=अपूर्वकरणना चरम समय पर्यंतना जीवो, हासा०स्स य=हास्यषट्कना उदीरक छे. २०.

गाथार्थः–जावू०पढमो=उत्पत्तिना प्रथम अन्तर्मुहूर्ते, देवा=देवो, सुह०हासाण=शाता, रति अने हास्यना, एवं=ए प्रमाणे, नैर-

ज त्ति—यावत्प्रथमः क्षणः किंचिदूनो भवति प्रथममन्तर्मुहूर्तं यावदित्यर्थः।तावन्नियमादेवाः सुख(सातवेदनीय) रतिहास्यानामुदीरका वेदितव्याः।परतस्त्वनियमः।एवं किंचिदूनं प्रथमं क्षणं यावत् नैरयिका इतरासामसातवेदनीयारतिशोकप्रकृतीनां नियमादुदीरकाः । ×परतस्तु तीर्थकरकेवलज्ञानलाभादौ विपर्यासोऽपि भवन्ति । केचित्पुनर्नैरयिकाः सकलामपि भवस्थितिं यावदसातवेदनीयारतिशोकानामुदीरका भवन्ति ॥२१॥

एवमेकैकप्रकृत्युदीरणास्वामित्वमुक्तं, संप्रति प्रकृत्युदीरणास्थानान्याह—

पंचण्हं च चउण्हं, ठिइए एक्काइ जा दसण्हं तु (ति)। तिगहीणाइ मोहे,मिच्छे सत्ताइ जाव दस॥२२॥

पंचण्हं ति—द्वितीयकर्मणि दर्शनावरणीयलक्षणे पञ्चानां चतसृणां वा प्रकृतीनां युगपदुदीरणा भवति । तत्र चतसृणां चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणरूपाणां ध्रुवा छद्मस्थानामुदीरणा । एतासां मध्ये निद्रापञ्चकमध्यादन्यतमप्रकृतिप्रक्षेपे पञ्चाना-

×(य०उ०१२) आदिमान्तर्मुहूर्तादूर्ध्वं तु देवा नारकाश्च प्रत्येकं परिवर्तनविधिना षण्णामपि प्रकृतीनामुदीरका भवन्ति।तत्र नारकाणां सातवेदनीयाद्युदयसंभवस्तीर्थकरजन्मादाववसेयः। देवानां त्वसातवेदनीयाद्युदयसंभवः परगुणमत्सरविषादप्रियविप्रयोगस्वच्यवनादौ।

इयावि य=नारकी, इयरासिं=प्रतिपक्ष प्रकृतिओना उदीरक (अन्तर्मुहूर्त बाद अनियम). केवि नेरइया=केटलाक नारकी, भवट्ठिई=भवस्थिति पर्यंत अशातादिनाज उदीरक. २१ । पंच०ठिइए=दर्शनावरणीय कर्ममां ५ नुं ने ४ नुं ए २, मोहे=मोहनीयमां, तिगहीणाइ=३ना सिवाय, एक्काइ०तु=१ थी १० पर्यंतना ९ उदीरणा स्थानो. तेमांथी मिच्छे=मिथ्यात्वे, सत्ताइ०दस=७ थी १० पर्यंतना ४ उदीरणा स्थानो छे. २२.

मुदीरणा। तथा मोहे मोहनीये एकादिका त्रिकहीना तावद्द्रष्टव्या यावदशानां। एतदुक्तं भवति—मोहनीये कर्मणि उदीरणा-मधिकृत्यैकादीनि त्रिकहीनानि दशपर्यन्तानि नव प्रकृतिस्थानानि भवन्ति। तद्यथा—एक द्वे चतस्रः पञ्च षट् सप्त अष्ट नव दश।

संप्रत्येषामुदीरणास्थानानां स्वामिनमाह—'मिच्छे सत्ताइ जाव दस' मिथ्यादृष्टौ सप्तादीनि दशपर्यन्तानि चत्वार्युदीरणा-स्थानानि भवन्ति, तद्यथा—सप्त, अष्टौ, नव, दश। तत्र मिथ्यात्वमप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधादीनामन्यतमे त्रयः क्रोधादिकाः, यत एकस्मिन् क्रोधे उदीर्यमाणे सर्वक्रोधा उदीर्यन्ते। एवं मानमायालोभा अपि द्रष्टव्याः। न च युगपत् क्रोधमानमायालोभानामुदीरणा, युगपदुदयाभावात्। किं तु त्रयाणां क्रोधानां, त्रयाणां वा मानानां, यद्वा तिसृणां मायानां, अथवा त्रयाणां लोभानां युगपदुदीरणेत्यन्यतमे त्रयो गृह्यन्ते। तथा त्रयाणां वेदानामन्यतमो वेदः, तथा हास्यरतियुगलारति-शोकयुगलयोरन्यतरद्युगलं। एतासां सप्तप्रकृतीनां मिथ्यादृष्टौ उदीरणा ध्रुवा। अत्र च भंगाश्चतुर्विंशतिस्तद्यथा—हास्यरतियुगले ऽरतिशोकयुगले च प्रत्येकमेकैको भंगः प्राप्यत इति द्वौ भंगौ। तौ च प्रत्येकं त्रिष्वपि वेदेषु प्राप्यत इति द्वौ त्रिभिर्गुणितौ जाताः षट्। ते च प्रत्येकं क्रोधादिषु चतुर्षु प्राप्यन्ते इति षट् चतुर्भिर्गुणिता जाता चतुर्विंशतिरिति। एतस्मिन्नेव सप्तके भये वा जुगुप्सायां वाऽनन्तानुबन्धिनि वा क्षिप्तेऽष्टानामुदीरणा। तत्र भयादौ प्रत्येकमेकैका भंगकानां चतुर्विंशतिः प्राप्यते इति तिस्रश्चतुर्विंशतयोऽत्र द्रष्टव्याः। 'ननु च मिथ्यादृष्टेरवश्यमनन्तानुबन्धिनामुदयः संभवति, उदये च सत्यवश्यमुदीरणा तत्कथं मिथ्यादृष्टिरनन्तानुबन्ध्युदयरहितः प्राप्यते, येन तस्य सप्तानामष्टानां वाऽनन्तानुबन्धिरहितानामुदीरणा संभवेत्?' उच्यते—'इह सम्यग्दृष्टिना सता केनचित्प्रथमतोऽनन्तानुबन्धिनो विसंयोजिताः। एतावतैव च स विश्रान्तो न मिथ्यात्वादिक्षयायोद्युक्तः,

तथाविधसामग्र्यभावात् । ततः कालान्तरे मिथ्यात्वं गतः सन् मिथ्यात्वप्रत्ययतो भूयोऽप्यनन्तानुबन्धिनो बध्नाति, ततो बन्धावलिका यावन्नाद्याप्यतिक्रामति तावत्तेषामुदयो न भवति, उदयाभावाच्चोदीरणाया अप्यभावः । बन्धावलिकायां पुनरतीतायामुदयसंभवाद् भवत्येवोदीरणा' । ननु 'कथं बन्धसमयादारभ्यावलिकायामतीतायामुदयोऽपि संभवति ? यतोऽबाधाकालक्षये सत्युदयः, अबाधाकालश्चानन्तानुबन्धिनां जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमुत्कर्षतश्चत्वारि वर्षसहस्राणि इति ?' 'नैष दोषः, यतो बन्धसमयादारभ्य तेषां तावत्सत्ता भवति, सत्तायां च सत्यां पतद्ग्रहता, तस्यां च सत्यां ×शेषप्रकृतिदलिकसंक्रान्तिः, संक्रान्तस्य च ×१संक्रमावलिकायामतीतायामुदयः, उदये च सत्युदीरणा । ततो बन्धसमयादनन्तरमावलिकायामतीतायामुदीरणाऽभिधीयमाना न विरुध्यत इति' । तथा तस्मिन्नेव सप्तके भयजुगुप्सयोरथवा भयानन्तानुबन्धिनोर्यद्वा जुगुप्सानन्तानुबन्धिनो प्रक्षिप्तयोर्नवानामुदीरणा । अत्रापि चैकैकस्मिन् विकल्पे प्रागुक्तक्रमेण भंगकानां चतुर्विंशतिः प्राप्यते इति तिस्रश्चतुर्विंशतयोऽत्र द्रष्टव्याः । तथा तस्मिन्नेव सप्तके भयजुगुप्सानन्तानुबन्धिषु प्रक्षिप्तेषु दशानामुदीरणा । अत्रैकैव भंगकानां चतुर्विंशतिः ॥ २२ ॥

तदेवं मिथ्यादृष्टेर्मोहनीयस्योदीरणास्थानान्युक्तानि, सांप्रतं सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनामाह—

सासणमीसे नव, अविरए छाई परम्मि पंचाई । अट्ठ विरए य चउ-राइ सत्त छच्चोवरिल्लंमि ॥ २३ ॥

×(य०उ०१३)चारित्रमोहनीयस्य । ×१(य०उ०१४)सङ्क्रान्तस्य च तस्य स्वबन्धावलिकायामतीतायामुदीरणाभिधानं न विरुध्यत इति।

गाथार्थः–सासण०नव=सास्वादन अने मिश्रे ७ थी ९ सुधीनां ३, अविरए य छाई=अविरतिए ६थी ९सुधीनां ४, परम्मि० अट्ठ=देशविरतने ५थी ८ सुधीनां ४, विरए०सत्त=संयतने ४थी ७ सुधीनां ४, छच्चोवरिल्लंमि=उपरना अपूर्वकरणे ४ थी ६ सुधीनां ३ उदीरणास्थानो छे. २३.

सासणमीसे त्ति–सासादनसम्यग्दृष्टौ सम्यग्मिथ्यादृष्टौ च सप्तादीनि नवपर्यन्तानि त्रीणि त्रीण्युदीरणास्थानानि भवन्ति। तद्यथा–सप्त अष्टौ नव। तत्र सासादनसम्यग्दृष्टौ अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधादीनामन्यतमे (माः) चत्वारः क्रोधादिकाः, त्रयाणां वेदानामन्यतमो वेदः, द्वयोर्युगलयोरन्यतरद्युगलमिति सप्तानामुदीरणा ध्रुवा। अत्र प्रागुक्तक्रमेण भंगकानामेका चतुर्विंशतिः। तथाऽस्मिन्नेव सप्तके भये वा जुगुप्सायां वा क्षिप्तायामष्टानामुदीरणा। अत्र च द्वे चतुर्विंशती भंगकानां। भयजुगुप्सयोस्तु युगपत्प्रक्षिप्तयोर्नवानामुदीरणा। अत्र चैका भंगकानां चतुर्विंशतिः। सम्यग्मिथ्यादृष्टावनन्तानुबन्धिवर्जास्त्रयोऽन्यतमे क्रोधादयः, त्रयाणां वेदानामन्यतमो वेदः, द्वयोर्युगलयोरन्यतरद्युगलं, सम्यग्मिथ्यात्वं चेति सप्तानामुदीरणा ध्रुवा। अत्र प्रागुक्तक्रमेण भंगकानामेका चतुर्विंशतिः। तथाऽस्मिन्नेव सप्तके भयजुगुप्सयोरन्यतरस्मिन् प्रक्षिप्तेऽष्टानामुदीरणा। अत्र च द्वे चतुर्विंशती भंगकानां। भयजुगुप्सयोस्तु युगपत्प्रक्षिप्तयोर्नवानामुदीरणा। अत्र चैका चतुर्विंशतिर्भंगकानां।

तथाऽविरतेऽविरतसम्यग्दृष्टौ षडादीनि नवपर्यन्तानि चत्वार्युदीरणास्थानानि भवन्ति। तद्यथा–षट्, सप्त, अष्टौ, नव। तत्रौपशमिकसम्यग्दृष्टेः क्षायिकसम्यग्दृष्टेर्वाऽविरतस्यानन्तानुबन्धिवर्जास्त्रयोऽन्यतमे क्रोधादिकाः, त्रयाणां वेदानामन्यतमो वेदः, द्वयोर्युगलयोरन्यतरद्युगलमिति षण्णामुदीरणा ध्रुवा। अत्र प्रागिव भंगकानामेका चतुर्विंशतिः। अस्मिन्नेव षट्के भयजुगुप्सावेदकसम्यक्त्वानामन्यतमस्मिन् प्रक्षिप्ते सप्तानामुदीरणा। अत्र भंगकानां तिस्रश्चतुर्विंशतयः। तथा तस्मिन्नेव षट्के भयजुगुप्सयोरथवा भयवेदकसम्यक्त्वयोर्यद्वा जुगुप्सावेदकसम्यक्त्वयोर्युगपत् प्रक्षिप्तयोरष्टानामुदीरणा। अत्राप्येकैकस्मिन् विकल्पे भंगकानां चतुर्विंशतिः प्राप्यते इति तिस्रश्चतुर्विंशतयः। भयजुगुप्सावेदकसम्यक्त्वेषु युगपत्प्रक्षिप्तेषु नवानामुदीरणा। अत्र

चैका चतुर्विंशतिर्भंगकानां ।

'परम्मि पंचाइ अट्ठ' इति अविरतसम्यग्दृष्टेः परस्मिन् देशविरते पञ्चादीनि अष्टपर्यन्तानि चत्वारि उदीरणास्थानानि । तद्यथा—पञ्च षट् सप्त अष्टौ । तत्र प्रत्याख्यानावरणसंज्वलनसंज्ञौ क्रोधादीनामन्यतमौ द्वौ क्रोधादिकौ, त्रयाणां वेदानामन्यतमो वेदः, द्वयोर्युगलयोरन्यतरद्युगलं, एतासां पञ्चानां प्रकृतीनां देशविरतस्योदीरणा ध्रुवा । एषा चौपशमिकसम्यग्दृष्टेः क्षायिकसम्यग्दृष्टेर्वाऽवगन्तव्या । अत्र च प्रागुक्तक्रमेण भंगकानामेका चतुर्विंशतिः । भयजुगुप्सावेदकसम्यक्त्वानामन्यतमस्मिंस्तु प्रक्षिप्ते षण्णामुदीरणा । अत्र भयादिभिस्त्रयो विकल्पाः । एकैकस्मिंश्च विकल्पे भंगकानां चतुर्विंशतिरिति तिस्रश्चतुर्विंशतयः । तथा तस्मिन्नेव पञ्चके भयजुगुप्सयोरथवा जुगुप्सावेदकसम्यक्त्वयोर्यद्वा भयवेदकसम्यक्त्वयोर्युगपत्प्रक्षिप्तयोः सप्तानामुदीरणा । अत्रापि तिस्रश्चतुर्विंशतयो भंगकानां । भयजुगुप्सावेदकसम्यक्त्वेषु तु युगपत्प्रक्षिप्तेषु अष्टानामुदीरणा । अत्र चैका चतुर्विंशतिर्भंगकानां ।

संप्रति प्रमत्ताप्रमत्तयोर्भेदाभावाद्युगपदुदीरणास्थानान्याह—'विरए य चउराइ सत्त' त्ति विरते प्रमत्तेऽप्रमत्ते च चतुरादीनि सप्तपर्यन्तानि चत्वार्युदीरणास्थानानि भवन्ति । तद्यथा—चत्वारि पञ्च षट् सप्त । तत्र संज्वलनक्रोधादीनामन्यतम एकः क्रोधादिः, त्रयाणां वेदानामन्यतमो वेदः, द्वयोर्युगलयोरन्यतरद्युगलं, इत्येतासां चतसृणां प्रकृतीनां विरतस्य क्षायिकसम्यग्दृष्टेरौपशमिकसम्यग्दृष्टेर्वा उदीरणा ध्रुवा । अत्रैका भंगकानां चतुर्विंशतिः । एतस्मिन्नेव चतुष्के भयजुगुप्सावेदकसम्यक्त्वानामन्यतमस्मिन् प्रक्षिप्ते पञ्चानामुदीरणा । अत्र भंगकानां तिस्रश्चतुर्विंशतयः । तथा तस्मिन्नेव चतुष्के भयजुगुप्सयोरथवा भयवेदकसम्यक्त्वयोर्यद्वा जुगुप्सावेदकसम्यक्त्वयोर्युगपत्प्रक्षिप्तयोः षण्णामुदीरणा । अत्रापि तिस्रश्चतुर्विंशतयो भंगकानां । भयजुगुप्सा-

वेदकसम्यक्त्वेषु च युगपत्प्रक्षिप्तेषु सप्तानामुदीरणा । अत्र चैका चतुर्विंशतिर्भंगकानां ।

संप्रत्यपूर्वकरणस्योदीरणास्थानान्याह—' छच्चोवरिल्लम्मि ' विरतादुपरितनेऽपूर्वकरणे चतुरादीनि षट्पर्यन्तानि त्रीण्युदीरणास्थानानि भवन्ति । तद्यथा—चतस्रः पञ्च षट् । तत्र चतुर्णां संज्वलनक्रोधादीनामेकतमः क्रोधादिः, त्रयाणां वेदानामन्यतमो वेदः, द्वयोर्युगलयोरन्यतरद्युगलं, इत्येतासां चतसृणां प्रकृतीनामपूर्वकरणे उदीरणा ध्रुवा । अत्रैका भंगकानां चतुर्विंशतिः । अस्मिन्नेव चतुष्के भये वा जुगुप्सायां वा क्षिप्तायां पञ्चानामुदीरणा । अत्र द्वे चतुर्विंशती भंगकानां । भयजुगुप्सयोस्तु युगपत्प्रक्षिप्तयोः षण्णामुदीरणा । अत्र चैका चतुर्विंशतिर्भंगकानां । एताश्चापूर्वकरणसत्काश्चतुर्विंशतयः परमार्थतः प्रमत्ताप्रमत्तचतुर्विंशतिकातोऽभिन्नस्वरूपा इति न पृथगग्रे गणयिष्यन्ते ॥ २३ ॥

संप्रत्यनिवृत्तिबादरस्योदीरणास्थानान्याह—

अनियट्टिम्मि दुगेगं, लोभो तणुरागेगो(ग एग)चउवीसा। एक्कगछक्केक्कारस, दस सत्त चउक्क एक्काओ।२४।

अनियट्टिम्मि त्ति—अनिवृत्तिबादरे द्वे उदीरणास्थाने । तद्यथा—द्वे प्रकृती, एका च । तत्र चतुर्णां संज्वलनक्रोधादीनामेकतमः क्रोधादिः, त्रयाणां वेदानामन्यतमो वेदः । अत्र त्रिभिर्वेदैश्चतुर्भिः संज्वलनैर्द्वादश भंगाः । वेदेषु च क्षीणेषु उपशान्तेषु वा संज्वलनक्रोधादीनामेकतमं क्रोधादिकमुदीरयति । तत्र च चत्वारो भंगाः । ' लोभो तणुरागेगो ' तनुरागे तनुरागस्य सूक्ष्म-

---

गाथार्थः-अनिय०दुगेगं=अनिवृत्ति करणे २ अने १ नुं एम बे, लोभो०एग=सूक्ष्मसंपराए १ लोभनुं उदीरणास्थान छे. चउवीसा=चोवीसीओ, एक्कग०एक्काओ=१० थी ४ सुधीना स्थानोमां अनुक्रमे १,६,११,१०,७,४,१, थाय छे. २४.

गुणस्थानके मोहनीयकर्मना उदीरणास्थानोमां भांगानी संख्यानो यन्त्र.

उदीरणास्थान	मिथ्यात्वे		सास्वादने		मिश्रे		अविरति		देशविरति		प्रमताप्रमत्त		अपूर्वकरण		अनिवृत्ति भांगा	सूक्ष्मसंपराय भांगा	कुल चोवीसी	कुल भांगा
	चोवीसी	भांगा	चो०	भांगा	चो०	भां०	चो०	भां०	चो०	भां०	चो०	भां०	चो०	भां०				
१० गुं	१	२४															१	२४
९ ,,	३	७२	१	२४	१	२४	१	२४									६	१४४
८ ,,	३	७२	२	४८	२	४८	३	७२	१	२४							११	२६४
७ ,,	१	२४	१	२४	१	२४	३	७२	३	७२	१–१	२४—२४					११	२६४
६ ,,							१	२४	३	७२	३–३	७२—७२	१	२४			११	२६४
५ ,,									१	२४	३–३	७२—७२	२	४८			९	२१६
४ ,,											१–१	२४—२४	१	२४			३	७२
२ ,,															१२			१२
१ ,,															४	१		५
कुल	८	१९२	४	९६	४	९६	८	१९२	८	१९२	८	१९२	४	९६	१६	१	५२	१२६५

संपरायस्य सूक्ष्मलोभकिट्टीर्वेदयमानस्य लोभ एवैको मोहनीयमध्ये उदीरणायोग्यो भवति । संप्रति चतुरादिषु दशपर्यन्तेषु उदीरणास्थानेषु विरतान्तानां यावत्यश्चतुर्विंशतयो भवन्ति तावतीर्निरूपयति–'चउवीसेत्यादि' दशोदीरणायामेका चतुर्विंशतिः, नवोदीरणायां षट्, अष्टोदीरणायामेकादश, सप्तोदीरणायां दश, षडुदीरणायां सप्त, पञ्चकोदीरणायां चतस्रः, चतुरुदीरणायामेकेति । एताश्चतुर्विंशतयः प्रागेव भाविताः । केवलं संकलनमात्रमिहैवं स्वधिया परिभावनीयम् ॥ २४ ॥

तदेवमुक्तानि मोहनीयस्योदीरणास्थानानि, संप्रति नामकर्मण उदीरणास्थानानि प्रतिपिपादयिषुराह—

एगाबियालापण्णाइ, सत्तपण्णांत गुणिसु नामस्स । नव सत्त तिण्णि अट्ठ य, छ पंच य अप्पमत्ते दो ॥२५॥
एक्कं पंचसु एक्कम्मि, अट्ठ ट्ठाणक्कमेण भंगा वि । एक्कग तीसेक्कारस, इगवीस सबार तिसए(इ)य ॥२६॥
इगवीसा छच्च सया, छहअहिया नवसया य एगाहिया । अउणुत्तराणि चउदस–सयाणि गुणनउइ पंचसया २७

एगेत्यादि–नामकर्मण उदीरणास्थानानि दश, तद्यथा–एकचत्वारिंशत्, द्विचत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, एकपञ्चाशत्, द्विपञ्चा-

×(य०उ०१५) सामान्यमनुष्यवैलक्षण्येन ।

गाथार्थः–नामस्स=नामकर्मने विषे, एगबियाला=४१, ४२, पन्नाइ०पन्नंत=५० थी ५७ सुधी एम १० उदी०स्थान छे. नव० पंच य=मिथ्यात्वथी प्रमत्तसुधी अनुक्रमे ९, ७, ३, ८, ६, ५, अप्पमत्ते दो=अने अप्रमत्ते २. एक्कं पंचसु=त्यांथी आगल ५ गुणस्थाने १, एक्कम्मि अट्ठ=त्या पछी १ गुणस्थाने ८ स्थानो. ट्ठाणक्कमेण=स्थानना क्रमे, भंगावि=भांगाओ पण, एक्कग=१, तीसेक्कारस=३०, ११, इगवीस=२१=सबार तिसए य=३१२, इगवीसा=२१, छच्च०अहिया=६०६, नव०एगहिया=९०१, अउणु०सयाइ=१४६९, गुण० सया=५८९ छे. २५–२७.

शत्, त्रिपञ्चाशत्, चतुःपञ्चाशत्, पञ्चपञ्चाशत्, षट्पञ्चाशत्, सप्तपञ्चाशच्चेति । तत्र तैजससप्तकं वर्णादिविंशतिरगुरुलघुस्थिरास्थिरे शुभाशुभे निर्माणमित्येतासां (३३) त्रयस्त्रिंशत्प्रकृतीनामुदीरणा ध्रुवा । तत्र मनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरपर्याप्तसुभगादेययशःकीर्तिरूपेऽष्टके प्रक्षिप्ते सति(४१)एकचत्वारिंशद् भवति। एतासां चैकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां केवलिसमुद्घातगतः कार्मणकाययोगे वर्तमानः केवली उदीरको भवति । एषैव चैकचत्वारिंशत्तीर्थकरनामसहिता(४२)द्विचत्वारिंशद् भवति । तस्याश्च तीर्थकरः केवलिसमुद्घातगतः कार्मणकाययोगे वर्तमान उदीरकः । तस्यामेवैकचत्वारिंशति औदारिकसप्तकं षण्णां संस्थानानामेकतमत् संस्थानं वज्रर्षभनाराचसंहननमुपघातं प्रत्येकमित्येकादशके प्रक्षिप्ते सति(५२)द्विपञ्चाशद् भवति। अत्र षड्भिः संस्थानैः षड् भंगाः, ते च वक्ष्यमाणसामान्यमनुष्यभंगग्रहणेन गृहीता द्रष्टव्याः, एवमुत्तरत्रापि । एतस्याश्च द्विपञ्चाशतः सयोगिकेवली समुद्घातगत औदारिकमिश्रकाययोगे वर्तमान उदीरकः। एषैव च द्विपञ्चाशत्तीर्थकरनामसहिता त्रिपञ्चाशत्। केवलमिह संस्थानं समचतुरस्रमेव वक्तव्यं । अस्या अप्युदीरकः सयोगिकेवली तीर्थकर औदारिकमिश्रकाययोगे वर्तमानो वेदितव्यः । तथा सैव द्विपञ्चाशत् पराघातनामोच्छ्वासनाम प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगत्योरन्यतरा विहायोगतिः सुस्वरदुःस्वरयोरन्यतरस्वरनामेतिचतुष्टयप्रक्षेपात् (५६) षट्पञ्चाशद् भवति । एनां च सयोगिकेवली औदारिककाययोगे वर्तमान उदीरयति । पराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतिसुस्वरप्रक्षेपात्त्रिपञ्चाशत्(५७) सप्तपञ्चाशद् भवति । एतस्याश्च तीर्थकरः सयोगिकेवली औदारिककाययोगे वर्तमान उदीरकः । सप्तपञ्चाशदेव वाग्योगनिरोधे (५६) षट्पञ्चाशद् भवति । उच्छ्वासेऽपि च निरुद्धे पञ्चपञ्चाशत्(५५)। अतीर्थकरकेवलिनः प्रागुक्ताः षट्पञ्चाशद्वाग्योगे निरुद्धे (५५) पञ्चपञ्चाशद् भवति । उच्छ्वासेऽपि च निरुद्धे चतुःपञ्चाशत् (५४)। अत्र

द्विपञ्चाशच्चतुःपञ्चाशद्वर्जेषु शेषेषु षट्सु प्रत्येकमेकैको विशेषभंगः× प्राप्यत इति सर्वसंख्यया केवलिनां षड् भंगाः। तत्रैकचत्वारिंशत्यतीर्थकृत एकः। शेषेषु तु पञ्चसु तीर्थकृतः। तदेवमुक्तानि केवलिनामुदीरणास्थानानि ।।

संप्रत्येकेन्द्रियाणामभिधीयंते–एकेन्द्रियाणामुदीरणास्थानानि पञ्च, तद्यथा–द्विचत्वारिंशत् पञ्चाशत् एकपञ्चाशत् द्विपञ्चाशत् त्रिपञ्चाशच्चेति। तत्र तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्व्यौ स्थावरनामैकेन्द्रियजातिर्बादरसूक्ष्मयोरेकतरत् पर्याप्तापर्याप्तयोरेकतरत् दुर्भगमनादेयं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरेकतरेत्येता नव प्रकृतयः प्रागुक्ताभिर्ध्रुवोदीरणाभिस्त्रयस्त्रिंशत्संख्याकाभिः सह सन्मिश्रा द्विचत्वारिंशद् भवति। अत्र च भंगाः पञ्च, तद्यथा–बादरसूक्ष्माभ्यां प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्ताभ्यामयशःकीर्त्या सह चत्वारः, बादरपर्याप्तयशःकीर्तिभिश्चैकः। सूक्ष्मापर्याप्ताभ्यां सह यशःकीर्तेरुदयो न भवति, तदभावाच्च नोदीरणेति कृत्वा तदाश्रिता विकल्पा न भवन्ति। एषा द्विचत्वारिंशदपान्तरालगतौ वर्तमानस्य वेदितव्या (५)। ततः शरीरस्थस्यौदारिकशरीरौदारिकसंघातौदारिकबन्धनचतुष्टयहुंडसंस्थानोपघातप्रत्येकसाधारणान्यतररूपं नवकं प्रक्षिप्यते, तिर्यगानुपूर्वी चापनीयते, ततः पञ्चाशद् भवति। अत्र च भंगा दश, तद्यथा–बादरपर्याप्तस्य प्रत्येकसाधारणाभ्यां यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यां च चत्वारो भंगाः, अपर्याप्तबादरस्य प्रत्येकसाधारणाभ्यामयशःकीर्त्या सह द्वौ, सूक्ष्मस्य च पर्याप्तापर्याप्तप्रत्येकसाधारणैरयशःकीर्त्या सह चत्वार इति दश। बादरवायुकायिकस्य वैक्रियं कुर्वतः औदारिकषट्कस्थाने वैक्रियषट्कमवगन्तव्यं। ततश्च तस्यापि पञ्चाशदेवोदीरणा योग्या भवति। केवलमिह बादरपर्याप्तप्रत्येकायशःकीर्तिभिरेक एव भंगः। तैजस्कायिकवायुकायिकयोर्हि साधारणयशःकीर्त्योरुदयो न भवति, तद-

×(य०उ० १६) सामान्यमनुष्यवैलक्ष्येण।

भावाच्च नाप्युदीरणा, ततस्तदाश्रिता भंगा न प्राप्यन्ते । तदेवं सर्वसंख्यया पञ्चाशत्येकादश भंगाः (११)। ततः शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य पराघाते क्षिप्ते एकपञ्चाशद् भवति । अत्र च भंगाः षट्, तद्यथा—बादरस्य प्रत्येकसाधारणयशःकीर्त्ययशःकीर्तिपदैश्चत्वारः, सूक्ष्मस्य प्रत्येकसाधारणाभ्यामयशःकीर्त्या सह द्वौ । बादरवायुकायिकस्य च वैक्रियं कुर्वतः शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य पराघाते क्षिप्ते प्रागुक्ता पञ्चाशत् एकपञ्चाशद् भवति । अत्र च प्राग्वदेक एव भंगः । सर्वसंख्यया चैकपञ्चाशति सप्त भंगाः (७)। ततः प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्ते द्विपञ्चाशद् भवति । अत्रापि भंगाः प्राग्वत् षट्। अथवा शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासेऽनुदिते आतपोद्योतयोरन्यतरस्मिन् उदिते द्विपञ्चाशद् भवति । अत्रापि भंगाः षट्, तद्यथा—बादरस्योद्योतेन सहितस्य प्रत्येकसाधारणयशःकीर्त्ययशःकीर्तिपदैश्चत्वारः, आतपसहितस्य प्रत्येकयशःकीर्त्ययशःकीर्तिपदैर्द्वौ भंगौ । बादरवायुकायिकस्य च वैक्रियं कुर्वतः प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्ते प्रागुक्ता एकपञ्चाशत् द्विपञ्चाशद् भवति । तत्र च प्राग्वदेक एव भंगः । तैजस्कायिकवायुकायिकयोर्हि आतपोद्योतयशःकीर्तीनामुदयाभावादुदीरणा न भवति, ततस्तदाश्रिता भंगा अत्र न प्राप्यन्ते । सर्वसंख्यया द्विपञ्चाशति भंगास्त्रयोदश (१३) । तथा प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वाससहितायां द्विपञ्चाशति आतपोद्योतयोरन्यतरस्मिन् क्षिप्ते त्रिपञ्चाशद् भवति । अत्र भंगाः षट् ये प्रागातपोद्योतान्यतरसहितायां द्विपंचाशत्यभिहिताः (६) । सर्वसंख्यया (५–११–७–१३–६=४२) चैकेन्द्रियाणां भंगा द्विचत्वारिंशत् (४२) ॥

द्वीन्द्रियाणामुदीरणास्थानानि षट्, तद्यथा—द्विचत्वारिंशत् द्विपञ्चाशत् चतुःपञ्चाशत् पंचपञ्चाशत् षट्पञ्चाशत् सप्तपञ्चाशच्चेति । तत्र तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्व्यौ द्वीन्द्रियजातित्रसनाम बादरनाम पर्याप्तापर्याप्तयोरेकतरत् दुर्भगमनादेयं यशःकीर्त्य-

यशःकीर्त्योरेकतरेत्येता नव प्रकृतयः प्रागुक्ताभिस्त्रयस्त्रिंशत्संख्याकाभिर्ध्रुवोदीरणाभिः सह द्विचत्वारिंशद् भवति । एषा च द्विचत्वारिंशदपान्तरालगतौ वर्तमानस्यावसेया । अत्र च भंगास्त्रयः, तद्यथा–अपर्याप्तकनामोदये वर्तमानस्यायशःकीर्त्या सहैको भंगः, पर्याप्तकनामोदये वर्तमानस्य यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यां द्वाविति (३) । ततः शरीरस्थस्यौदारिकसप्तकं हुंडसंस्थानं सेवार्तसंहननं उपघातनाम प्रत्येकनामेत्येकादशकं प्रक्षिप्यते, तिर्यगानुपूर्वी चापनीयते, ततो जाता द्विपञ्चाशत् । अत्र च भंगास्त्रयः, ते च प्रागिव द्रष्टव्याः (३) । ततः शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य विहायोगतिपराघातयोः प्रक्षिप्तयोश्चतुःपञ्चाशद् भवति । अत्र यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यां द्वौ भंगौ (२) । ततः प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्ते पंचपञ्चाशद् भवति । अत्रापि प्रागिव द्वौ भंगौ । अथवा शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासेऽनुदिते उद्योतनाम्नि तूदिते पंचपञ्चाशद् भवति । अत्रापि प्रागिव द्वौ भंगौ । सर्वेऽपि पंचपञ्चाशति चत्वारो भंगाः (४) । ततो भाषापर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वाससहितायां पंचपञ्चाशति सुस्वरदुःस्वरयोरेकतरस्मिन् प्रक्षिप्ते षट्पञ्चाशद् भवति। अत्र सुस्वरदुःस्वरयशःकीर्त्ययशःकीर्तिपदैश्चत्वारो भंगाः । अथवा प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्य स्वरेऽनुदिते उद्योतनाम्नि तूदिते षट्पञ्चाशद् भवति । अत्र यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यां द्वौ भंगौ । सर्वे षट्पञ्चाशति षड् भंगाः (६) । ततो भाषापर्याप्त्या पर्याप्तस्य स्वरसहितायां षट्पञ्चाशति उद्योतनाम्नि प्रक्षिप्ते सप्तपञ्चाशद् भवति । अत्र सुस्वरदुःस्वरयशःकीर्त्ययशःकीर्तिपदैश्चत्वारो (४) भंगाः । सर्वे द्वीन्द्रियाणां भंगा द्वाविंशतिः (३–३–२–४–६–४=२२) । एवं त्रीन्द्रियाणां चतुरिन्द्रियाणां च प्रत्येकमुदीरणास्थानानि भावनीयानि । नवरं द्वीन्द्रियजातिस्थाने त्रीन्द्रियाणां त्रीन्द्रियजातिश्चतुरिन्द्रियाणां चतुरिन्द्रियजातिरभिधातव्या। प्रत्येकं च भंगा द्वाविंशतिर्द्वाविंशतिरवसेयाः। सर्वसंख्यया विकलेन्द्रियाणां भंगाः षट्षष्टिः॥

तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां वैक्रियलब्धिरहितानामुदीरणास्थानानि षट् । तद्यथा—द्विचत्वारिंशत् द्विपञ्चाशत् चतुःपञ्चाशत् पञ्चपञ्चाशत् षट्पञ्चाशत् सप्तपञ्चाशच्चेति । तत्र तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्व्यौ पञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरनाम पर्याप्तापर्याप्तयोरेकतरत् सुभगादेययुगलदुर्भगानादेययुगलयोरेकतरत् युगलं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरेकतरेत्येता नव प्रकृतयः प्रागुक्ताभिस्त्रयस्त्रिंशत्संख्याकाभिर्ध्रुवोदीरणाभिः सह द्विचत्वारिंशद्भवति। एषा च द्विचत्वारिंशदपान्तरालगतौ वर्तमानस्य वेदितव्या। अत्र च भंगाः पञ्च । तत्र पर्याप्तकनामोदये वर्तमानस्य सुभगादेययुगलदुर्भगानादेययुगलयशःकीर्तिभिश्चत्वारो भंगाः, अपर्याप्तकनामोदये वर्तमानस्य तु दुर्भगानादेययशःकीर्तिभिरेक एव भंगः । इह सुभगादेये दुर्भगानादेये वा युगपदुदयमायातः । तत उदीरणापि युगपदेवेति पञ्चैव भंगाः (५) । अपरे पुनराहुः—सुभगादेययोर्दुर्भगानादेययोर्वा नैकान्तेन युगपदुदयभावनियमः, अन्यथापि दर्शनात् । ततः पर्याप्तकनामोदये वर्तमानस्य सुभगदुर्भगादेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तिभिरष्टौ भंगाः, अपर्याप्तकनामोदये वर्तमानस्य तु दुर्भगानादेययशःकीर्तिभिरेक इति सर्वसंख्यया द्विचत्वारिंशति नव (९) । ततः शरीरस्थस्यौदारिकसप्तकं षण्णां संस्थानानामेकतमत् संस्थानं षण्णां संहननानामेकतमत्संहननं उपघातं प्रत्येकनामेत्येकादशकं प्रक्षिप्यते तिर्यगानुपूर्वी चापनीयते, ततो द्विपञ्चाशद्भवति । अत्र भंगानां पञ्चचत्वारिंशं शतं, तद्यथा—पर्याप्तकस्य षड्भिः संस्थानैः षड्भिः संहननैः सुभगादेयदुर्भगानादेययुगलाभ्यां यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यां च भंगानां चतुश्चत्वारिंशं शतं, अपर्याप्तस्य च हुंडसंस्थानसेवार्तसंहननदुर्भगानादेययशःकीर्तिभिरेक इति (१४५) । ये पुनः सुभगादेययोर्दुर्भगानादेययोर्वा केवलाकेवलयोरप्युदयमिच्छन्ति तन्मतेन द्विपञ्चाशति भंगानां द्वे शते एकोननवत्यधिके वेदितव्ये । तत्र पर्याप्तस्य षड्भिः संस्थानैः षड्भिः संहननैः सुभगदुर्भगाभ्यामादे-

यानादेयाभ्यां यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यां च भङ्गा द्वे शते अष्टाशीत्यधिके, अपर्याप्तकस्य तु प्रागुक्तस्वरूप एक इति (२८९)। तस्यामेव द्विपञ्चाशति शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य पराघाते प्रशस्ताप्रशस्तान्यतरविहायोगतौ च प्रक्षिप्तायां चतुःपञ्चाशद्भवति। अत्र (यंत्) पर्याप्तानां प्राक् चतुश्चत्वारिंशं शतं भङ्गकानामुक्तं, तदेव विहायोगतिद्विकगुणितमवगन्तव्यं। तथा च सत्यत्र भङ्गानां द्वे शते अष्टाशीत्यधिके भवतः (२८८)। मतान्तरेण पुनः पञ्च शतानि षट्सप्तत्यधिकानि (५७६)। ततः प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्ते पञ्चपञ्चाशद्भवति। अत्रापि प्रागिव भङ्गानां द्वे शते अष्टाशीत्यधिके, मतान्तरेण पञ्च शतानि षट्सप्तत्यधिकानि। अथवा शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासेऽनुदिते उद्योतनाम्नि तूदिते पञ्चपञ्चाशद्भवति। अत्रापि भङ्गानां द्वे शते अष्टाशीत्यधिके, मतान्तरेण पंच शतानि षट्सप्तत्यधिकानि। सर्वसंख्यया पंचपञ्चाशति स्वमतेन भङ्गकानां पंच शतानि षट्सप्तत्यधिकानि (५७६),मतान्तरेण तु द्विपंचाशदधिकानि एकादश शतानि(११५२)। ततो भाषापर्याप्त्या पर्याप्तस्य सुस्वरदुःस्वरयोरन्यतरस्मिन् क्षिप्ते षट्पंचाशद् भवति। तत्र स्वमतचिन्तायां ये उच्छ्वासेन द्वे शते अष्टाशीत्यधिके भङ्गकानां प्राक् लब्धे ते इह स्वरद्विकेन गुण्यते, ततो लब्धानि पंच शतानि षट्सप्तत्यधिकानि, मतान्तरेण पुनरिह द्विपंचाशदधिकान्येकादश शतानि भङ्गकानां भवन्ति। अथवा प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्य स्वरेऽनुदिते उद्योतनाम्नि तूदिते षट्पंचाशद् भवति। अत्र च स्वमतचिन्तायां प्रागिव द्वे शते अष्टाशीत्यधिके भङ्गकानां, मतान्तरेण पंच शतानि षट्सप्तत्यधिकानि। सर्वसंख्यया स्वमतेन षट्पंचाशति भङ्गा अष्टौ शतानि चतुःषष्ट्यधिकानि (६४),मतान्तरेण सप्तदश शतान्यष्टाविंशत्यधिकानि(१७२०)। ततः स्वरसहितायां षट्पंचाशति उद्योतनाम्नि प्रक्षिप्ते सप्तपंचाशद् भवति। अत्र ये प्राक् स्वरसहितायां षट्पंचाशति भङ्गा अभिहिताः स्वमतेन

पंचशतानि षट्सप्तत्यधिकानि (५७६), मतान्तरेण द्विपंचाशदधिकान्येकादश शतानि(११५२), त एवात्रापि द्रष्टव्याः। तथा तेषामेव तिर्यक्पंचेन्द्रियाणां वैक्रियं कुर्वतामुदीरणास्थानानि पंच भवन्ति । तद्यथा–एकपंचाशत् त्रिपंचाशत् चतुःपंचाशत् पंचपंचाशत् षट्पंचाशच्चेति । तत्र वैक्रियसप्तकं समचतुरस्रसंस्थानं उपघातं प्रत्येकमिति प्रकृतिदशकं प्रागुक्तायां तिर्यक्पंचेन्द्रियप्रायोग्यायां द्विचत्वारिंशति प्रक्षिप्यते, तिर्यगानुपूर्वी चापनीयते, तत एकपंचाशद् भवति।अत्र सुभगादेययुगलदुर्भगानादेययुगलयशःकीर्त्ययशःकीर्तिपर्याप्तपदैश्चत्वारो (४)भङ्गाः, मतान्तरेण पुनः सुभगदुर्भगाभ्यामादेयानादेयाभ्यां यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यां च पर्याप्तकेन सहाष्टौ(८)भङ्गाः। ततः शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य पराघाते प्रशस्तविहायोगतौ च प्रक्षिप्तायां त्रिपंचाशद् भवति। अत्रापि प्रागिव चत्वारो (४) भङ्गाः, मतान्तरेण पुनरष्टौ (८)। ततः प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासनाम्नि प्रक्षिप्ते चतुःपंचाशद्भवति। अत्रापि प्रागिव स्वमतेन भङ्गाश्चत्वारो मतान्तरेण पुनरष्टौ । अथवा शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासेऽनुदिते उद्योतनाम्नि तूदिते चतुपञ्चाशद् भवति। अत्रापि स्वमतेन भङ्गाश्चत्वारो मतान्तरेणाष्टौ । सर्वसंख्यया चतुःपञ्चाशति स्वमतेनाष्टौ (८) भङ्गाः, मतान्तरेण षोडश (१६)। ततो भाषापर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वाससहितायां चतुःपञ्चाशति स्वरे प्रक्षिप्ते पञ्चपञ्चाशद् भवति । अत्रापि स्वमतेन भङ्गाश्चत्वारो मतान्तरेण पुनरष्टौ । अथवा प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्य स्वरेऽनुदिते उद्योतनाम्नि तूदिते पञ्चपञ्चाशद्भवति । अत्रापि स्वमतेन भङ्गाश्चत्वारो मतान्तरेणाष्टौ । सर्वसंख्यया स्वमतेन पञ्चपञ्चाशति भङ्गा अष्टौ (८), मतान्तरेण षोडश (१६) । ततः स्वरसहितायां पञ्चपञ्चाशति उद्योते क्षिप्ते षट्पञ्चाशद् भवति । अत्रापि भङ्गाः स्वमतेन चत्वारो (४) मतान्तरेणाष्टौ (८) । सर्वसंख्यया वैक्रियं कुर्वतां तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां भङ्गा (२८) अष्टाविंशतिः, मतान्तरेण षट्पञ्चाशत् (५६)

सामान्येन सर्वतिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां स्वमतेन भङ्गाश्चतुर्विंशतिशतानि द्व्यशीत्यधिकानि (२४८२), मतान्तरेण एकोनपञ्चाशच्छतानि द्विषष्ट्यधिकानि (४९६२) ॥

संप्रति मनुष्याणामुदीरणास्थानानि प्रतिपाद्यन्ते–तत्र केवलिनां प्रागेवोक्तानि । अन्येषां तु पञ्च, तद्यथा–द्विचत्वारिंशत् द्विपञ्चाशत् चतुःपञ्चाशत् पञ्चपञ्चाशत् षट्पञ्चाशच्चेति । एतानि सर्वाण्यपि यथा प्राक् तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणामुक्तानि तथैवात्रापि वक्तव्यानि, नवरं तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्व्योः स्थाने मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्व्यौ वक्तव्ये । पञ्चपञ्चाशत् षट्पञ्चाशच्चोद्योतरहिता वक्तव्या । वैक्रियाहारकसंयतान्मुक्त्वा शेषमनुष्याणामुद्योतोदयाभावात् । भङ्गा अपि सर्वत्राप्युद्योतरहितास्तथैव स्वमतपरमतापेक्षया वक्तव्याः । तद्यथा–स्वमतेन द्विचत्वारिंशति पञ्च (५) । द्विपञ्चाशति पञ्चचत्वारिंशं शतं (१४५), चतुःपञ्चाशति द्वे शते अष्टाशीत्यधिके (२८८), पञ्चपञ्चाशत्यपि द्वे शते अष्टाशीत्यधिके (२८८) षट्पञ्चाशति पञ्च शतानि षट्सप्तत्यधिकानि (५७६) (सर्वाग्रं १३०२) । परमतेन तु यथाक्रमं ९, २८९, ५७६, ५७६, ११५२ (सर्वाग्रं २६०२)। वैक्रियमपि कुर्वतां मनुष्याणामुदीरणास्थानानि पञ्च भवन्ति, तद्यथा–एकपञ्चाशत्, त्रिपञ्चाशत्, चतुःपञ्चाशत्, पञ्चपञ्चाशत्, षट्पञ्चाशच्चेति । तत्रैकपञ्चाशत्त्रिपञ्चाशच्च यथा प्राग्वैक्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणामुक्ता तथात्रापि द्रष्टव्या । चतुःपञ्चाशत्युच्छ्वाससहितायां प्रागिव स्वमतेन चत्वारो भङ्गा मतान्तरेणाष्टौ । उत्तरवैक्रियं कुर्वतां संयतानामुद्योतनामोदयमागच्छति, नान्येषां, ततस्तेन सह चतुःपंचाशति प्रशस्त एवैको भङ्गो भवति, संयतानां दुर्भगानादेययशःकीर्त्युदयाभावात् । सर्वसंख्यया चतुःपंचाशति स्वमतेन पंच भङ्गाः, मतान्तरेण नव । ततो भाषापर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वाससहितायां सुस्वरे क्षिप्ते पंचपंचाशद् भवति । अत्रापि प्रागिव स्वमतेन भंगाश्च-

त्वारो मतान्तरेणाष्टौ। अथवा संयतानां स्वरेऽनुदिते उद्योतनाम्नि तूदिते पञ्चपञ्चाशद् भवति। अत्रापि प्रागिव एक एव भङ्गः। सर्वसंख्यया पञ्चपञ्चाशति स्वमतेन पञ्च भङ्गा मतान्तरेण नव। पञ्चपञ्चाशति सुस्वरसहितायामुद्योते क्षिप्ते षट्पञ्चाशद् भवति। तस्यां चैक एव प्रशस्तो भंगः। सर्वसंख्यया वैक्रियमनुष्याणां (४,४,५,५,१=१९) स्वमतेनैकोनविंशतिभङ्गाः, मतान्तरेण पञ्चत्रिंशत्(८,८,९,९,१=३५)॥ संप्रत्याहारकं कुर्वतामुदीरणास्थानान्युच्यन्ते–आहारकसंयतानामुदीरणास्थानानि पञ्च, तद्यथा– एकपञ्चाशत् त्रिपञ्चाशद् चतुःपञ्चाशत् पञ्चपञ्चाशत् षट्पञ्चाशच्चेति। तत्राहारकसप्तकं समचतुरस्रसंस्थानमुपघातं प्रत्येकमिति प्रकृतिदशकं प्रागुक्तायां मनुष्यगतिप्रायोग्यायां द्विचत्वारिंशति प्रक्षिप्यते, मनुष्यानुपूर्वी चापनीयते, तत एकपञ्चाशद्भवति। केवलमिह सर्वाण्यपि पदानि प्रशस्तान्येवेति कृत्वा एक एव भंगः। शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य प्रशस्तविहायोगतिपराघातयोः प्रक्षिप्तयोस्त्रिपञ्चाशद् भवति। अत्राप्येक एव भङ्गः। ततः प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्ते चतुःपञ्चाशद् भवति। अत्राप्येक एव भङ्गः। अथवा शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासेऽनुदिते उद्योतनाम्नि तूदिते चतुःपंचाशद् भवति। अत्रापि प्रागिवैक एव भंगः। सर्वसंख्यया चतुःपंचाशति द्वौ भङ्गौ। ततो भाषापर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वाससहितायां चतुःपंचाशति सुस्वरे क्षिप्ते पंचपंचाशद् भवति। अत्रापि प्राग्वदेक एव भङ्गः। अथवा प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्य स्वरेऽनुदिते उद्योतनाम्नि तूदिते पंचपंचाशद् भवति। अत्राप्येक एव भंगः। सर्वसंख्यया पंचपंचाशति द्वौ भंगौ। ततो भाषापर्याप्त्या पर्याप्तस्य स्वरसहितायां पंचपंचाशत्युद्योते क्षिप्ते षट्पंचाशद् भवति। अत्राप्येक एव भंगः। आहारकशरीरिणः सर्वसंख्यया सप्त (१,१,२,२,१,) भंगाः। तदेवं मनुष्याणां सामान्यवैक्रियशरीर्याहारकशरीरिकेवलिनां भंगाः सर्वसंख्यया त्रयोदश शतानि चतुस्त्रिंशदधिकानि

(१३०२,१९,७,६=१३३४) भवन्ति। परमतेन तु (२६०२,३५,७,६=२६५०) षट्विंशतिशतानि पंचाशदधिकानि ॥

देवानामुदीरणास्थानानि षट्, तद्यथा–द्विचत्वारिंशत् एकपंचाशत् त्रिपंचाशत् चतुःपंचाशत् पंचपंचाशत् षट्पंचाशच्चेति। तत्र देवगतिदेवानुपूर्व्यौ पंचेन्द्रियजातित्रसनाम बादरनाम पर्याप्तनाम सुभगादेययुगलदुर्भगानादेययुगलयोरेकतरद्युगलं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरेकतरेत्येता नव प्रकृतयो ध्रुवोदीरणाभिस्त्रयस्त्रिंशत्संख्याकाभिः सह सम्मिश्रा द्विचत्वारिंशद् भवति। अत्र सुभगादेययुगलदुर्भगानादेययुगलयशःकीर्त्ययशःकीर्तिभिश्चत्वारो भंगाः, मतान्तरेण पुनः सुभगदुर्भगाभ्यामादेयानादेयाभ्यां यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यां चाष्टौ भंगाः। ततः शरीरस्थस्य वैक्रियसप्तकं समचतुरस्रसंस्थानं उपघातं प्रत्येकमित्येता दश प्रकृतयः प्रक्षिप्यन्ते, देवानुपूर्वी चापनीयते, तत एकपंचाशद् भवति। अत्रापि प्रागिव स्वमतेन चत्वारो भंगा मतान्तरेणाष्टौ। ततः शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य पराघातप्रशस्तविहायोगत्योः प्रक्षिप्तयोस्त्रिपंचाशद् भवति। अत्रापि प्रागिव स्वमतेन चत्वारो भंगा मतान्तरेणाष्टौ। देवानामप्रशस्तविहायोगतेरुदयाभावात्तदाश्रिता भंगा न प्राप्यन्ते। ततः प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्ते चतुःपंचाशद् भवति। अत्रापि स्वमतेन चत्वारो भंगाः, मतान्तरेणाष्टौ। अथवा शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासेऽनुदिते उद्योतनाम्नि तूदिते चतुःपंचाशद् भवति। अत्रापि प्रागिव स्वमतेन भंगाश्चत्वारो मतान्तरेणाष्टौ। सर्वसंख्यया चतुःपंचाशति स्वमतेनाष्टौ भंगा मतान्तरेण षोडश। ततो भाषापर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वाससहितायां चतुःपंचाशति सुस्वरे क्षिप्ते पंचपंचाशद् भवति। अत्रापि स्वमतेन प्रागिव चत्वारो भंगा मतान्तरेणाष्टौ। अथवा प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्य स्वरेऽनुदिते उद्योतनाम्नि तूदिते पंचपंचाशद् भवति। अत्रापि स्वमतेन भंगाश्चत्वारो मतान्तरेणाष्टौ। सर्वसंख्यया पंचपंचाशति स्वमतेनाष्टौ भंगा

मतान्तरेण तु षोडश । ततो भाषापर्याप्त्या पर्याप्तस्य सुस्वरसहितायां पंचपंचाशति उद्योते क्षिप्ते षट्पञ्चाशद् भवति । अत्रापि स्वमतेन त एव चत्वारो भंगा मतान्तरेणाष्टौ । सर्वसंख्यया देवानां स्वमतेन (४,४,४,८,८,४=३२) द्वात्रिंशद् भंगा मतान्तरेण (८,८,८,१६,१६,८=६४) चतुःषष्टिः ॥

नैरयिकाणामुदीरणास्थानानि पञ्च, तद्यथा-द्विचत्वारिंशत् एकपञ्चाशत् त्रिपञ्चाशत् चतुःपञ्चाशत् पंचपंचाशच्चेति।तत्र नरकगतिनरकानुपूर्व्यौ पञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरपर्याप्तदुर्भगानादेययशःकीर्तय इत्येता नव प्रकृतयो ध्रुवोदीरणाभिस्त्रयस्त्रिंशत्संख्याकाभिः सह सम्मिश्रा द्विचत्वारिंशद् भवति। अत्र च सर्वाण्यपि पदानि अप्रशस्तान्येवेति कृत्वा एक एव भंगः। ततः शरीरस्थस्य वैक्रियसप्तकं हुंडसंस्थानं उपघातं प्रत्येकमिति दश प्रकृतयः प्रक्षिप्यन्ते, नरकानुपूर्वी चापनीयते, तत एकपञ्चाशद् भवति । अत्राप्येक एव भंगः । ततः शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य पराघाताप्रशस्तविहायोगत्योः प्रक्षिप्तयोस्त्रिपञ्चाशद् भवति । अत्राप्येक एव भंगः । ततः प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्ते चतुःपञ्चाशद् भवति । अत्राप्येक एव भंगः । ततो भाषापर्याप्त्या पर्याप्तस्य दुःस्वरे क्षिप्ते पंचपञ्चाशद् भवति । अत्राप्येक एव भंगः । सर्वसंख्यया नैरयिकाणां पञ्च भङ्गाः (१,१,१,११=५) । तदेवमुक्तानि नामकर्मण उदीरणास्थानानि ॥

संप्रत्येतान्येव गुणस्थानकेषु दर्शयति-'गुणिसु त्ति' नाम्नो नामकर्मणो गुणिषु गुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टिप्रभृतिषु सयोगिकेवलिपर्यन्तेषु यथासंख्यं नवादिसंख्यान्युदीरणास्थानानि भवन्ति । तत्र मिथ्यादृष्टेर्नवोदीरणास्थानानि, तद्यथा-द्विचत्वारिंशत् पंचाशत् एकपंचाशत् द्विपञ्चाशत् त्रिपंचाशत् चतुःपंचाशत् पञ्चपञ्चाशत् षट्पंचाशत् सप्तपंचाशच्चेति (९)। अमूनि च सर्वा-

ण्यपि मिथ्यादृष्टीनेकेन्द्रियादीनधिकृत्य स्वयं परिभावनीयानि । सासादनसम्यग्दृष्टेरुदीरणास्थानानि सप्त, तद्यथा–द्विचत्वारिंशत् पंचाशत् एकपञ्चाशत् द्विपंचाशत् पंचपंचाशत् षट्पंचाशत् सप्तपंचाशच्चेति (७)। तत्र द्विचत्वारिंशत् बादरैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियतिर्यक्पंचेन्द्रियमनुष्यदेवानां सासादनसम्यग्दृष्टीनामपान्तरालगतौ वर्तमानानामवसेया । तथा एकेन्द्रियाणां शरीरस्थानां पंचाशत् । देवानां शरीरस्थानामेकपंचाशत् । विकलेन्द्रियतिर्यक्पंचेन्द्रियमनुष्याणां शरीरस्थानां द्विपंचाशत् । देवनैरयिकाणां पर्याप्तानां सासादनसम्यक्त्वे वर्तमानानां पंचपंचाशत् । तिर्यक्पंचेन्द्रियमनुष्यदेवानां पर्याप्तानां षट्पंचाशत् । तिर्यक्पंचेन्द्रियाणामुद्योतवेदकानां पर्याप्तानां सप्तपंचाशत् । सम्यग्मिथ्यादृष्टेस्त्रीण्युदीरणास्थानानि, तद्यथा–पंचपंचाशत् षट्पंचाशत् सप्तपंचाशच्चेति (३)। तत्र देवनैरयिकाणां पंचपंचाशत् । तिर्यग्मनुष्यदेवानां षट्पंचाशत् । तिर्यक्पंचेन्द्रियाणामुद्योतवेदकानां सप्तपंचाशत्। अविरतसम्यग्दृष्टेरष्टावुदीरणास्थानानि, तद्यथा–द्विचत्वारिंशत् एकपंचाशत् द्विपंचाशत् त्रिपंचाशत् चतुःपंचाशत् पंचपंचाशत् षट्पंचाशत् सप्तपंचाशच्चेति (८)। तत्र नैरयिकदेवतिर्यक्पंचेन्द्रियमनुष्याणां द्विचत्वारिंशत्। देवनैरयिकाणामेकपंचाशत्। तिर्यक्पंचेन्द्रियमनुष्याणां द्विपंचाशत्। देवनैरयिकवैक्रियतिर्यङ्मनुष्याणां त्रिपंचाशत्। देवनैरयिकतिर्यक्पंचेन्द्रियवैक्रियतिर्यङ्मनुष्याणां चतुःपञ्चाशत्। एतेषामेव पंचपंचाशदपि। देवतिर्यक्पंचेन्द्रियमनुष्याणां षट्पंचाशत्। तिर्यक्पंचेन्द्रियाणामुद्योतवेदकानां सप्तपंचाशत् । देशविरतस्योदीरणास्थानानि षट्, तद्यथा–एकपंचाशत्, त्रिपंचाशत्, चतुःपंचाशत्, पंचपंचाशत्, षट्पंचाशत् सप्तपंचाशच्चेति (६)। तत्रैकपंचाशत्त्रिपंचाशच्चतुःपंचाशत्पंचपंचाशच्च तिर्यङ्मनुष्याणां वैक्रियशरीरे वर्तमानानामवसेया । तिर्यङ्मनुष्याणामेव स्वभावस्थानां वैक्रियशरीरिणां च षट्पंचाशत् । तेषामेव तिर्यक्पंचेन्द्रियाणामुद्योतसहितानां सप्तपंचाशत् ।

प्रमत्तसंयतानामुदीरणास्थानानि पञ्च, तद्यथा–एकपंचाशत् त्रिपंचाशत् चतुःपंचाशत् पंचपंचाशत् षट्पंचाशच्चेति (५)। तत्र पंचाप्येतानि वैक्रियशरीरिणामाहारकशरीरिणां वा द्रष्टव्यानि । षट्पंचाशत्पुनरौदारिकस्थानामप्यवगन्तव्या । अप्रमत्तसंयतानां द्वे उदीरणास्थाने, तद्यथा–पंचपंचाशत् षट्पंचाशच्चेति (२) । तत्र षट्पंचाशदौदारिकशरीरस्थानां । इह केषांचित् वैक्रियशरीरस्थानामाहारकशरीरस्थानां वा संयतानां सर्वपर्याप्त्या पर्याप्तानां कियत्कालमप्रमत्तभावोऽपि लभ्यत इति तेषां द्वे अप्युक्तरूपे उदीरणास्थाने । 'एकं पंचसु त्ति' पंचसु गुणस्थानकेषु अपूर्वकरणानिवृत्तिबादरसूक्ष्मसंपरायोपशान्तमोहक्षीणमोहरूपेषु एकमुदीरणास्थानं भवति–षट्पंचाशत्, सा चौदारिकशरीरस्थानामिति । 'एक्कम्मि अट्ठ त्ति' एकस्मिन् सयोगिकेवलिगुणस्थानकेऽष्टावुदीरणास्थानानि, तद्यथा–एकचत्वारिंशत् द्विचत्वारिंशत् द्विपंचाशत् त्रिपंचाशत् चतुःपंचाशत् पंचपंचाशत् षट्पंचाशत् सप्तपंचाशच्चेति (८) । एतानि च प्रागेव सप्रपंचं भावितानीति नेह भूयो भाव्यन्ते । तदेवं चिन्तितानि गुणस्थानकेषूदीरणास्थानानि ॥

संप्रति कस्मिन्नुदीरणास्थाने कति भङ्गाः प्राप्यन्त इति चिन्तायां तन्निरूपणार्थमाह–'ठाणेत्यादि' स्थानक्रमेणैकचत्वारिंशदाद्युदीरणास्थाने क्रमेण भङ्गा अपि च वक्ष्यमाणसंख्यया ज्ञातव्याः, तद्यथा—एकचत्वारिंशत्येको भङ्गः, स चातीर्थकरकेवलिनः। द्विचत्वारिंशति त्रिंशद् भंगाः (३०), तत्र नैरयिकानधिकृत्यैकः, एकेन्द्रियानधिकृत्य पंच, द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियानधिकृत्य प्रत्येकं त्रिकं त्रिकं प्राप्यत इति नव, तिर्यक्पंचेन्द्रियानधिकृत्य पंच, मनुष्यानप्यधिकृत्य पंच, तीर्थकरमधिकृत्यैकः, देवानधिकृत्य चत्वारः । ये पुनः सुभगादेययोर्दुर्भगानादेययोश्च केवल(ला)केवलयोरप्युदयमिच्छन्ति, तन्मतेन द्विचत्वारिंशति द्विच-

त्वारिंशद् भङ्गाः (४२), यतस्तन्मतेन तिर्यक्पंचेन्द्रियानधिकृत्य नव, मनुष्यानधिकृत्य नव, देवानधिकृत्याष्टौ भङ्गाः प्राप्यन्ते, शेषं तथैव । पंचाशत्येकादश भङ्गाः (११), ते चैकेन्द्रियानेवाधिकृत्य प्राप्यन्ते, अन्यत्र पंचाशतोऽप्राप्यमाणत्वात् । एकपंचाशत्येकविंशतिभङ्गाः (२१), तत्र नैरयिकानधिकृत्यैकः, एकेन्द्रियानधिकृत्य सप्त, वैक्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियानधिकृत्य चत्वारः, वैक्रियमनुष्यानप्यधिकृत्य चत्वारः, आहारकशरीरिणः संयतानधिकृत्यैकः, देवानाश्रित्य चत्वारः इत्येकविंशतिः । मतान्तरेण पुनर्वैक्रियतिर्यङ्मनुष्यदेवानधिकृत्य प्रत्येकमष्टावष्टौ भङ्गाः प्राप्यन्ते इत्येकपंचाशति तदपेक्षया त्रयस्त्रिंशद् भङ्गाः (३३)। 'सबार तिसए य त्ति' सद्वादशा द्वादशाधिका त्रिशती भङ्गानां (३१२) द्विपंचाशत्यवगन्तव्याः, तत्रैकेन्द्रियानाश्रित्य त्रयोदश, द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियानधिकृत्य प्रत्येकं त्रिकं प्राप्यत इति नव, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियानधिकृत्य पञ्चचत्वारिंशं शतं, मनुष्यानप्यधिकृत्य पञ्चचत्वारिंशं शतमिति । अत्रापि मतान्तरेण तिर्यक्पञ्चेन्द्रियान्मनुष्यांश्चाधिकृत्य प्रत्येकं द्वे द्वे शते भङ्गानामेकोननवत्यधिके प्राप्येते इति तदपेक्षया द्विपञ्चाशति भङ्गानां षट् शतानि प्राप्यन्ते । त्रिपञ्चाशति भङ्गानामेकविंशतिः (२१), तद्यथा—नैरयिकानधिकृत्यैकः, एकेन्द्रियानधिकृत्य षट्, वैक्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियानधिकृत्य चत्वारः, वैक्रियमनुष्यानप्यधिकृत्य चत्वारः, आहारकशरीरिणोऽधिकृत्य पुनरेकः, तीर्थकरमप्याश्रित्यैकः, देवानप्यधिकृत्य चत्वारः । अत्रापि मतान्तरेण वैक्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यदेवानधिकृत्य प्रत्येकमष्टावष्टौ भङ्गाः प्राप्यन्ते इति तदपेक्षया त्रिपञ्चाशति त्रयस्त्रिंशद् भङ्गाः (३३)। चतुःपंचाशति भङ्गानां षट् शतानि षडुत्तराणि (६०६), तद्यथा—नैरयिकानधिकृत्यैकः, द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियानधिकृत्य प्रत्येकं द्वौ द्वौ प्राप्येते इति षट्, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियान् स्वभावस्थानधिकृत्य द्वे शते अष्टाशीत्यधिके, वैक्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियानधिकृत्याष्टौ, स्वभावस्थान्मनुष्यानधिकृत्य द्वे शते अष्टाशीत्य-

धिके, वैक्रियमनुष्यानधिकृत्य चत्वारः, संयतान् वैक्रियशरीरिणोऽधिकृत्योद्योतेन सहैकः, आहारकशरीरिणः संयतानधिकृत्य द्वौ, देवानधिकृत्याष्टाविति । अत्रापि मतान्तरेण प्राकृततिर्यक्पञ्चेन्द्रियानधिकृत्य पञ्चशतानि षट्सप्तत्यधिकानि (५७६), वैक्रियतिर्यक्पंचेन्द्रियानधिकृत्य षोडश, मनुष्यानधिकृत्य पञ्चशतानि षट्सप्तत्यधिकानि, वैक्रियमनुष्यानधिकृत्य नव, देवानधिकृत्य षोडश भङ्गाः प्राप्यन्ते, शेषं तथैवेति तदपेक्षया चतुःपंचाशति द्व्यधिकानि द्वादश शतानि । पञ्चपञ्चाशति भङ्गानां नव शतानि एकाधिकानि (९०१), तद्यथा–नैरयिकानधिकृत्यैकः, द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियानधिकृत्य प्रत्येकं चत्वारः प्राप्यन्ते इति द्वादश, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियान् स्वभावस्थानधिकृत्य पञ्च शतानि षट्सप्तत्यधिकानि, वैक्रियशरीरिणोऽधिकृत्याष्टौ, मनुष्यान् स्वभावस्थानधिकृत्य द्वे शते अष्टाशीत्यधिके, वैक्रियशरीरिणोऽधिकृत्य चत्वारः, वैक्रियसंयतानधिकृत्योद्योतेन सहैकः, आहारकशरीरिणोऽधिकृत्य द्वौ, तीर्थकरमधिकृत्यैकः, देवानधिकृत्याष्टाविति । अत्र मतान्तरेण तिर्यक्पञ्चेन्द्रियानधिकृत्य द्विपञ्चाशदधिकान्येकादशशतानि (११५२), वैक्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियानधिकृत्य षोडश, मनुष्यान् स्वभावस्थानधिकृत्य पञ्च शतानि षट्सप्तत्यधिकानि,वैक्रियमनुष्यानधिकृत्य नव,देवानधिकृत्य षोडश भङ्गाः प्राप्यन्ते, शेषं तथैवेति तदपेक्षया पञ्चपञ्चाशति पञ्चाशीत्यधिकानि सप्तदश शतानि (१७८५) । षट्पञ्चाशति भङ्गानामेकोनसप्तत्यधिकानि चतुर्दश शतानि, (१४६९) तद्यथा–द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियानधिकृत्य प्रत्येकं षट् षट् प्राप्यन्ते इत्यष्टादश, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियान् स्वभावस्थानधिकृत्याष्टौ शतानि चतुःषष्ट्यधिकानि, वैक्रियशरीरिणोऽधिकृत्य चत्वारः, मनुष्यानधिकृत्य पञ्च शतानि षट्सप्तत्यधिकानि, वैक्रियशरीरिणः संयतानधिकृत्योद्योतेन सहैकः, आहारकशरीरिणः संयतानधिकृत्यैकः, तीर्थकरमाश्रित्यैकः, देवानाश्रित्य चत्वारः । अत्र मतान्तरेण तिर्यक्पञ्चेन्द्रि-

गुणस्थानके नामकर्मना उदीरणास्थानोमां भांगानी संख्यानो यन्त्र.

उदीरणास्थान	एकेन्द्रियने	बेइंद्रियने	तेइंद्रियने	चतुरिंद्रियने	सामान्य तिर्यंचने स्वमत-प०	वैक्रिय तिर्यंचने स्व०-प०	सामान्य मनुष्यने स्व० पर०	वैक्रिय मनुष्यने स्व० प०	आहार मनुष्यने	सामान्यकेवली	तीर्थंकरने	देवताने	नारकीने	स्वमते कुल	परमते कुल
४१										१				१	१
४२	५	३	३	३	५—९		५—९				१	४—८	१	३०	४२
५०	११													११	११
५१	७					४-८		४—८	१			४—८	१	२१	३३
५२	१३	३	३	३	१४५—२८९		१४५-२८९							३१२	६००
५३	६					४-८		४—८	२		१	४—८	१	२१	३३
५४		२	२	२	२८८—५७६	८-१६	२८८-५७६	५—९	२			८—१६	१	६०६	१२०२
५५		४	४	४	५७६-११५२	८-१६	२८८-५७६	५—९	१		१	८—१६	१	९०१	१७८५
५६		६	६	६	८६४—१७२८	४-८	५७६-११५२	१—१	१		१	४—८		१४६९	२९१७
५७		४	४	४	५७६—११५२						१			५८९	११६८
कुल	४२	२२	२२	२२	२४५४-४९०६	२८-५६	१३०२—२६०२	१९—३५	७	१	५	३२—६४	५	३९६१	७७८९

ए प्रमाणे स्वमते कुल ३९६१ अने परमते ७७८९ उदीरणा भांगा जाणवा.

यानधिकृत्य सप्तदशशतान्यष्टाविंशत्यधिकानि (१७२८), वैक्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियानधिकृत्याष्टौ, मनुष्यानधिकृत्य द्विपञ्चाशदधिकानि एकादश शतानि, देवानधिकृत्याष्टौ भङ्गाः प्राप्यन्ते, शेषं तथैवेति तदपेक्षया षट्पञ्चाशति एकोनत्रिंशच्छतानि सप्तदशाधिकानि भङ्गानां भवन्ति । सप्तपञ्चाशति भङ्गानां पञ्चशती एकोननवत्यधिका (५८९), तद्यथा–द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियानधिकृत्य प्रत्येकं चत्वारश्चत्वारः प्राप्यन्त इति द्वादश, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियानधिकृत्य पञ्च शतानि षट्सप्तत्यधिकानि, तीर्थकरमाश्रित्यैक इति । अत्रापि मतान्तरेण तिर्यक्पञ्चेन्द्रियानधिकृत्य द्विपञ्चाशदधिकानि एकादश शतानि (११५२) भङ्गानां प्राप्यन्ते, शेषं तथैवेति तदपेक्षया सप्तपञ्चाशति पञ्चषष्ट्यधिकानि एकादश शतानि (११६५) भङ्गानां भवन्ति ॥ २५–२६–२७ ॥

संप्रति गतीराश्रित्य स्थानप्ररूपणां करोति—

पंच नव नवग छक्काणि, गईसु ठाणाणि सेसकम्माणं । एगेगमेव नेयं, साहित्तेगेगपगईउ ॥ २८ ॥

पंच त्ति–निरयगतावुदीरणास्थानानि पञ्च, तद्यथा–द्विचत्वारिंशत्,एकपञ्चाशत्,त्रिपञ्चाशत्,चतुःपञ्चाशत्, पञ्चपञ्चाशच्चेति । तिर्यग्गतावेकचत्वारिंशद्भङ्गानि शेषाणि नवोदीरणास्थानानि । मनुष्यगतावपि सयोगिकेवल्यादीनधिकृत्य पञ्चाशद्भङ्गानि शेषाणि नवोदीरणास्थानानि । देवगतौ षडुदीरणास्थानानि, तद्यथा–द्विचत्वारिंशत् एकपञ्चाशत् त्रिपञ्चाशत् चतुःपञ्चाशत् पञ्चपञ्चाशत् षट्पञ्चाशच्चेति । एतानि च सर्वाण्यपि प्राक् सप्रपञ्चं भावितानीति नेह भूयो भाव्यन्ते । तदेवमुक्तानि नामकर्मणः सप्रपञ्चमुदीरणास्थानानि । सांप्रतं शेषकर्मणामुदीरणास्थानप्रतिपादनार्थमाह–'सेसेत्यादि' शेषकर्मणां ज्ञानावरणवेदनीयायुर्गोत्रान्तराय-

गाथार्थ—गइसु=गतिओमां, पंच०छक्काणि=नरकगतिमां ५, तिर्यं० ९, मनु० ९, देवग० ६, ठाणाणि=उदीरणा स्थानो छे. सेसकम्माणं=बाकीना कर्मोमां एगेगमेव नेयं=एक एक उदी०स्थान जाणवुं. साहि०पगइओ=एकेक प्रकृतिनुं स्वामित्व स्वयं विचारवुं. २८

लक्षणानामुदीरणास्थानमेकैकमवगन्तव्यं, तद्यथा–ज्ञानावरणान्तराययोः पञ्चप्रकृत्यात्मकमेकैकमुदीरणास्थानं । वेदनीयायुर्गोत्राणां तु वेद्यमानैकप्रकृत्यात्मकं । न ह्यमीषां द्वित्र्यादिकाः प्रकृतयो युगपदुदीर्यन्ते, युगपदुदयाभावात् । एतच्च ज्ञानावरणादीनामेकैकमुदीरणास्थानं प्रागुक्तैकैकप्रकृत्युदीरणायाः स्वामित्वं साधयित्वा निश्चित्य गुणस्थानकेषु नारकादिगतिषु स्वयमेव ज्ञेयं ज्ञातव्यं (५–६) ॥ २८ ॥

तदेवमुक्ता प्रकृत्युदीरणा, सांप्रतं स्थित्युदीरणाभिधानावसरस्तत्र चैतेऽर्थाधिकारास्तद्यथा–लक्षणं १, भेदः २, साद्यनादिप्ररूपणा ३, अद्धाच्छेदः ४, स्वामित्वं ५ चेति । तत्र लक्षणभेदयोः प्रतिपादनार्थमाह—

संपत्तिए य उदए,पओगओ दिस्सए उईरणा सा । सेची(वी)काठिइहिं ता जाहिं तो तत्तिगा एसा॥२९॥

संपत्तिए त्ति–इह द्विविध उदयः संप्राप्त्युदयोऽसंप्राप्त्युदयश्च । तत्र यत्कर्मदलिकं कालप्राप्तं सत् अनुभूयते स संप्राप्त्युदयः । तथाहि–कालक्रमेण कर्मदलिकस्योदयहेतुद्रव्यक्षेत्रादिसामग्रीसंप्राप्तौ सत्यामुदयः संप्राप्त्युदयः । यत्पुनरकालप्राप्तं कर्मदलिकमुदीरणाप्रयोगेण वीर्यविशेषसंज्ञितेन समाकृष्य कालप्राप्तेन दलिकेन सहानुभूयते सोऽसंप्राप्त्युदयः । एषैव चोदीरणा । तथा चाह–या स्थितिरकालप्राप्तापि सती प्रयोगत उदीरणाप्रयोगेण संप्राप्त्युदये पूर्वोक्तस्वरूपे प्रक्षिप्ता सती दृश्यते केवलचक्षुषा सा स्थित्युदीरणा । एष लक्षणनिर्देशः (१) । अधुना भेद उच्यते–'सेचीकेत्यादि' इह यासां स्थितीनां भेदपरिकल्पना संभवति ताः पूर्वपुरुषपरि-

गाथार्थ–पओगओ=जे प्रयोगवडे, संपत्ति०उदये=संप्राप्तोदय दलिकमां दिस्सए=असंप्राप्तोदय दलिक देवाय, उईरणा सा=ते उदीरणा, जाहिंता०हिंता=उदीरणा योग्य जेटली स्थितिओमांथी, संप्राप्तोदयमां अपाय, तत्तिगा एसा=तेटला भेदवाली आ उदी० छे.२९

भाषया सेचीका ×इत्युच्यते । ताश्च द्विधा–उदीरणायाः प्रायोग्या अप्रायोग्याश्च । काः प्रायोग्याः काश्चाप्रायोग्या इति चेदुच्यते–बन्धावलिकागता संक्रमावलिकागता उदयावलिकागताश्चाप्रायोग्याः "संकमबंधुदयुवट्टणालिगाईणकरणाइं" इतिवचनप्रामाण्यात्। शेषाश्च सर्वा अपि प्रायः प्रायोग्याः । तत्रोदये सति यासां प्रकृतीनामुत्कृष्टो बन्धः संभवति, तासामुत्कर्षत आवलिकाद्विकहीना सर्वाप्युत्कृष्टा स्थितिरुदीरणाप्रायोग्या । तथाहि–उदयोत्कृष्टबन्धकानां प्रकृतीनां बन्धावलिकायामतीतायामुदयावलिकाबहिर्वर्तिनीः स्थितीः सर्वा अप्युदीरयति । अनुदयोत्कृष्टबन्धानां तु यथासंभवमुदीरणाप्रायोग्याः । आवलिकाद्विकहीनायाश्चोत्कृष्टस्थितेर्यावन्तः समयास्तावन्त उदीरणायाः प्रभेदाः । तथाहि–उदयावलिकाया उपरिवर्तिनी समयमात्रा स्थितिः कस्याप्युदीरणाप्रायोग्या, यस्य तावत्येव शेषीभूता तिष्ठति । एवं कस्यापि द्विसमयमात्रा, कस्यापि त्रिसमयमात्रा, एवं तावद्वाच्यं यावदावलिकाद्विकहीना कस्यापि सर्वाप्युत्कृष्टा स्थितिरिति । अक्षरयोजना त्वियं–सेचीकास्थितिभ्य उदीरणाप्रायोग्याभ्यो यकाभ्यो यावतीभ्य आवलिकाद्विकहीनोत्कृष्टस्थितिसमयप्रमाणाभ्य इत्यर्थः । उदीरणाप्रयोगेण समाकृष्य स्थितिः संप्राप्त्युदये दीयते, तावती तावद् भेदप्रमाणा सैषोदीरणा ॥२९॥ तदेवं कृता भेदप्ररूपणा (२) ॥

संप्रति साद्यनादिप्ररूपणा कर्तव्या । सा च द्विधा–मूलप्रकृतिविषया उत्तरप्रकृतिविषया च। तत्र मूलप्रकृतिविषयसाद्यनादिप्ररूपणार्थमाह—

×(य०उ० १६) अयं भावः–इह भेदकल्पनायोग्याः स्थितयः पूर्वपुरुषपरिभाषया 'सेवीका' इत्युच्यते, सेव्यन्ते भेदकल्पनां प्रत्याश्रीयन्ते इति सेवीका इत्यौणादिकन्युत्पत्तेः ।

मूलठिई अजहन्ना, मोहस्स चउव्विहा तिहा सेसा। वेयणियाऊण दुहा, सेसविगप्पा उ सव्वासिं ॥ ३० ॥

मूलठिइ त्ति–मूलस्थितिशब्दाभ्यां प्राकृतत्वात् प्रत्येकं षष्ठीविभक्तिलोपः। ततोऽयमर्थः–मूलप्रकृतीनां मध्ये मोहस्य मोहनीयस्य स्थितेरुदीरणाऽजघन्या चतुर्विधा चतुःप्रकारा। तद्यथा–सादिरनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च। तथा मोहनीयस्य जघन्या स्थित्युदीरणा सूक्ष्मसंपरायस्य क्षपकस्य स्वगुणस्थानकसमयाधिकावलिकाशेषे वर्तमानस्य भवति। ततोऽन्यत्र सर्वत्राप्यजघन्या, सा चोपशान्तमोहगुणस्थानके न भवति, ततः प्रतिपाते च भवति, ततोऽसौ सादिः, तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः, ध्रुवाऽभव्यानां, अध्रुवा भव्यानां। शेषा ज्ञानावरणदर्शनावरणनामगोत्रान्तरायाणां स्थित्युदीरणाऽजघन्या त्रिधा त्रिप्रकारा, तद्यथा–अनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च। तथाहि–ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणां जघन्या स्थित्युदीरणा क्षीणकषायस्य स्वगुणस्थानसमयाधिकावलिकाशेषे वर्तमानस्य भवति, शेषकालं त्वजघन्या। चा चानादिः, सदैव भावात्। ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत्। नामगोत्रयोस्तु जघन्या स्थित्युदीरणा सयोगिकेवलिचरमसमये। सा च सादिरध्रुवा च। ततोऽन्या सर्वाप्यजघन्या। सा चानादिः। ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत्। वेदनीयायुषोरजघन्या स्थित्युदीरणा द्विधा, तद्यथा–सादिरध्रुवा च। तथाहि–वेदनीयस्य जघन्या स्थित्युदीरणा एकेन्द्रियस्य सर्वस्तोकस्थितिसत्कर्मणो लभ्यते। ततः तस्यैव समयान्तरे प्रवर्धमानसत्कर्मणोऽजघन्या। ततः पुनरपि जघन्येति जघन्याऽजघन्या च सादिरध्रुवा च। आयुषः पर्यन्तावलिकायां न भवति, परभवोत्पत्तिप्रथमसमये च भवति, ततः सादिर-

मूलट्ठि०मोहस्स=मूलकर्मने विषे मोहनीयनी, अजहन्ना=अजघन्य स्थितिउदी०, चउव्विहा=४प्रकारे, सेसा=शेष कर्मनी अज० तिहा=३प्रकारे, वेय०दुहा=वेदनीय अने आयुष्यनी अज० २प्रकारे, सेस०सव्वासिं=सर्वेना शेष विकल्पो २प्रकारे.३०

ध्रुवा च । तथा सर्वासां प्रकृतीनां शेषविकल्पा उत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्यलक्षणा द्विधा द्विप्रकाराः, तद्यथा–सादयोऽध्रुवाश्च । तथाहि–सर्वेषामपि कर्मणामायुर्वर्जानामुत्कृष्टा स्थित्युदीरणा मिथ्यादृष्टेरुत्कृष्टे संक्लेशे वर्तमानस्य कियत्कालं प्राप्यते, ततः समयान्तरे तस्याप्यनुत्कृष्टा, ततः पुनरपि समयान्तरे उत्कृष्टा, संक्लेशविशुद्धयोः प्रायः प्रतिसमयमन्यथाऽन्यथाभावात्, ततो द्वे अपि साद्यध्रुवे । जघन्या च द्विधा प्रागेव भाविता । आयुषां तु विकल्पत्रयेऽपि युक्तिः प्राक्तन्येव प्रायोऽवसेया ॥ ३० ॥

तदेवं कृता मूलप्रकृतिविषया साद्यनादिप्ररूपणा । संप्रत्युत्तरप्रकृतिविषयां तां चिकीर्षुराह—

मिच्छत्तस्स चउद्धा, अजहण्णा धुवउदीरणाण तिहा। सेसविगप्पा दुविहा, सव्वविगप्पा य सेसाणं ॥३१॥

मिच्छत्तस्स त्ति–मिथ्यात्वस्याजघन्या स्थित्युदीरणा चतुर्विधा, तद्यथा–सादिरनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च । तत्र मिथ्यादृष्टेः प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयतो मिथ्यात्वस्य प्रथमस्थितौ समयाधिकावलिकाशेषायां जघन्या स्थित्युदीरणा सादिरध्रुवा च । सम्यक्त्वाच्च प्रतिपततोऽजघन्या । सा च सादिः । तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः । ध्रुवाध्रुवे अभव्यभव्यापेक्षया । तथा ध्रुवोदीरणानां पञ्चविधज्ञानावरणचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणपञ्चविधान्तरायतैजससप्तकवर्णादिविंशतिस्थिरास्थिरशुभाशुभागुरुलघुनिर्माणाख्यानामजघन्या(४७) स्थित्युदीरणा त्रिधा । तद्यथा–अनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च । तथाहि–ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणरूपाणां (१४)चतुर्दशप्रकृतीनां क्षीणकषायस्य स्वगुणस्थानकसमयाधिकावलिकाशेषे वर्तमानस्य जघन्या

मिच्छत्तस्स०अजहन्ना=मिथ्यात्वनी अज०स्थितिउदी०४प्रकारे, धुवउदी०तिहा=ध्रुवोदीरण प्रकृतिओनी अजघ० ३प्रकारे, सेस०दुविहा=तेमना बाकीना विकल्पो २प्रकारे, सव्ववि०सेसाणं=अने शेष कर्मना सर्वविकल्पो २प्रकारे. ३१

स्थित्युदीरणा, सा च सादिरध्रुवा च। शेषा सर्वाप्यजघन्या। सा चानादिः, सदैव भावात्। ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत्। तैजससप्तकादीनां च त्रयस्त्रिंशत्संख्याकानां (३३) नामप्रकृतीनां जघन्या स्थित्युदीरणा सयोगिकेवलिचरमसमये। सा च सादिरध्रुवा च। ततोऽन्या सर्वाप्यजघन्या, सा चानादिः। ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत्। एतासामेव मिथ्यात्वादिप्रकृतीनामष्टाचत्वारिंशत्संख्याकानां शेषविकल्पा उत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्यलक्षणा द्विप्रकाराः, तद्यथा–सादयोऽध्रुवाश्च। तथाहि–एतासामुत्कृष्टा स्थित्युदीरणा मिथ्यादृष्टेरुत्कृष्टे संक्लेशे वर्तमानस्य कियत्कालं लभ्यते। ततः समयान्तरे तस्याप्यनुत्कृष्टा। ततो द्वे अपि साद्यध्रुवे। जघन्या च प्रागेव भाविता। 'सव्वविगप्पा य सेसाणं ति' शेषाणां शेषप्रकृतीनां दशोत्तरशतसंख्यानां (११०) सर्वे विकल्पा उत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याजघन्यरूपा द्विविधाः, तद्यथा–सादयोऽध्रुवाश्च। साद्यध्रुवत्वं चाध्रुवोदयत्वाद् भावनीयमिति ॥ ३१ ॥

कृता साद्यनादिप्ररूपणा (३)। संप्रत्यद्धाच्छेदस्य स्वामित्वस्य च प्रतिपादनार्थमाह—

अद्धाच्छेओ सामित्तं,पि य ठिइसंकमे जहा नवरं(रि)।तव्वेइसु निरयगईएँ, वा वि तिसु हि(ह)ट्ठिमखिईसु३२

अद्धाच्छेओ त्ति–अद्धाच्छेदः स्वामित्वं च यथा स्थितिसंक्रमेऽभिहितं तथैवात्राप्यवगन्तव्यं। नवरमयं विशेषः–संक्रमकरणे तदवेदिष्वपि स्थितिसंक्रम उक्तः, उदयाभावेऽपि संक्रमस्य भावात्। उदीरणा पुनरियं तद्वेदिष्वेव वेदितव्या, उदयाभावे उदीरणाया अभावात्। इदमपि संक्षिप्तमुक्तमिति किंचिद्विशेषतो भाव्यते–तत्र येषां कर्मणामुदये सति बन्धोत्कृष्टा स्थितिस्तेषां

गाथार्थ—अद्धाच्छेओ=अद्धाच्छेद, सामित्तंपिय=अने स्वामित्व,ठिइसंकमे जहा=जेम स्थितिसंक्रममां कह्युं तेम, नवरं=विशेषमां, तव्वेइसु=उदीरणा ते प्रकृति वेदता जीवने होय. निरय०वावि=नरकद्विकनी उ०स्थि०उदी०, तिसु०खिइसु=नीचेनी ३पृथ्वीमां होय.३२

ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयतैजससप्तकवर्णादिविंशतिनिर्माणास्थिराशुभागुरुलघुमिथ्यात्वषोडशकषायत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकदुःस्वरदुर्भगानादेययशःकीर्तिवैक्रियसप्तकपंचेन्द्रियजातिहुंडोपघातपराघातोच्छ्वासातपोद्योताशुभविहायोगतिनीचैर्गोत्ररूपाणां (८६) षडशीतिसंख्यानां बन्धावलिकायामतीतायामुदयावलिकात उपरितनी सर्वापि स्थितिरुदीरणाप्रायोग्या, केवलं तानि कर्माणि वेदयमानानां वेदितव्या, उदये सत्येवोदीरणाया भावात् । बन्धावलिकारहिता च सर्वा स्थितिर्यैस्थितिः। इहावलिकाद्विकरूपोऽद्धाच्छेदः तदुभयवन्तस्तूदीरणास्वामिनः । येषां तु कर्मणां मनुजगतिसातवेदनीयस्थिरादिषट्कहास्यादिषट्कवेदत्रयशुभविहायोगतिप्रथमसंस्थानपञ्चक प्रथमसंहननपञ्चकोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकोनत्रिंशत्संख्याकानामुदये सति संक्रमेणोत्कृष्टा स्थितिः, तेषामावलिकात्रिकहीना सर्वा स्थितिरुदीरणाप्रायोग्या, केवलं तानि कर्माणि वेदयमानानां वेदितव्या । अत्र बन्धावलिकासंक्रमावलिकारहिता च सर्वा स्थितिर्यैस्थितिः । इहावलिकात्रिकरूपोऽद्धाच्छेदः, तदुदयवन्तस्तूदीरणास्वामिनः । एवमुत्तरत्रापि यावान् यावानुदीरणाया अयोग्यः कालस्तावान् तावानद्धाच्छेदः, तदुदयवन्तस्तूदीरणास्वामिनो वेदितव्याः । तथा सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा मिथ्यात्वस्य स्थितिर्मिथ्यादृष्टिना सता बद्धा, ततोऽन्तर्मुहूर्तं कालं यावन्मिथ्यात्वमनुभूय सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते । ततः सम्यक्त्वे सम्यग्मिथ्यात्वे चान्तर्मुहूर्तोनां मिथ्यात्वस्थितिं सकलामपि संक्रमयति । संक्रमावलिकायां चातीतायामुदीरणा योग्या, तत्र संक्रमावलिकातिक्रमेऽपि सान्तर्मुहूर्तोनैव । ततः सम्यक्त्वमनुभवतः सम्यक्त्वस्यान्तर्मुहूर्तोना सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणोत्कृष्टा स्थितिरुदीरणायोग्या । ततः कश्चित् सम्यक्त्वेऽप्यन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते । ततः सम्यग्मिथ्यात्वमनुभवतः सम्यग्मिथ्यात्वस्यान्तर्मुहूर्तद्विकोना सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणोत्कृष्टा स्थितिरुदीरणा-

योग्या भवति । तथाहारकसप्तकमप्रमत्तेन सता तद्योग्योत्कृष्टसंक्लेशेनोत्कृष्टस्थितिकं बद्धं तत्कालोत्कृष्टस्थितिक(स्व)मूलप्रकृत्यभिन्नप्रकृत्यन्तरदलिकं च तत्र संक्रमितं ततस्तत्सर्वोत्कृष्टान्तःसागरोपमकोटीकोटीस्थितिकं जातं । बन्धानन्तरं चान्तर्मुहूर्तमतिक्रम्याहारकशरीरमारभते । तच्चारभमाणो लब्ध्युपजीवनेनौत्सुक्यभावतः प्रमादभाग्भवति । ततस्तस्य प्रमत्तस्य सत आहारकशरीरमुत्पादयत आहारकसप्तकस्यान्तर्मुहूर्तोनोत्कृष्टा स्थितिरुदीरणायोग्या । अत्र प्रमत्तस्य सत आहारकशरीरारंभकत्वादुत्कृष्टस्थित्युदीरणास्वामी प्रमत्तसंयत एव वेदितव्यः । शेषप्रकृतीनां सूत्रकृदेव विशेषमाचष्टे 'निरयेत्यादि' नरकगतेः, अपिशब्दान्नरकानुपूर्व्याश्च तिर्यक्पञ्चेन्द्रियो मनुष्यो वोत्कृष्टां स्थितिं बद्ध्वा उत्कृष्टस्थितिबन्धानन्तरं चान्तर्मुहूर्ते व्यतिक्रान्ते सति तिसृष्वधस्तनपृथिवीषु मध्येऽन्यतरस्यां पृथिव्यां समुत्पन्नः, तस्य प्रथमसमये नरकगतेरन्तर्मुहूर्तहीना सर्वाऽपि स्थितिर्विंशतिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा उदीरणायोग्या भवति । नरकानुपूर्व्याश्चापान्तरालगतौ समयत्रयं यावदुत्कृष्टा स्थितिरुदीरणायोग्या । अधस्तनपृथिवीत्रयग्रहणे किं प्रयोजनमिति चेदुच्यते–इह नरकगत्यादीनामुत्कृष्टां स्थितिं बध्नन्नवश्यं कृष्णलेश्यापरिणामोपेतो भवति । कृष्णलेश्यापरिणामोपेतश्च कालं कृत्वा नरकेषूत्पद्यमानो जघन्यकृष्णलेश्यापरिणामः पञ्चमपृथिव्यामुत्पद्यते । मध्यमकृष्णलेश्यापरिणामः षष्ठपृथिव्यां । उत्कृष्टकृष्णलेश्यापरिणामः सप्तमपृथिव्यामित्यधस्तनपृथिवीत्रयग्रहणं ॥ ३२ ॥

देवगतिदेवमणुया–णुपुव्वी आयाव विगलसुहुमतिगे । अंतोमुहुत्तभग्गा, तावयगूणं तदुक्कस्सं ॥ ३३ ॥

गाथार्थ–देवगति०सुहुमतिगे=देवद्विक, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, विकलत्रिक, ने सूक्ष्मत्रिकनी, तदुक्कस्स=उ०स्थितिउदी०, अंतो० भग्गा=तद्बंधीने उत्कृष्ट स्थितिबंध पछी अन्तर्मुहूर्त भ्रष्ट थए, तावयगूणं=अन्तर्मुहूर्तहीन उ०स्थिति प्रमाण छे.३३

देवगति त्ति–देवगतिदेवानुपूर्वीमनुष्यानुपूर्वीणामातपस्य विकलत्रिकस्य द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातिरूपस्य सूक्ष्मत्रिकस्य च सूक्ष्मसाधारणापर्याप्तकलक्षणस्य(१०)स्वस्वोदये वर्तमाना अन्तर्मुहूर्तभग्ना उत्कृष्टस्थितिबन्धाध्यवसायादनन्तरमन्तर्मुहूर्तं कालं यावत् परिभ्रष्टाः सन्तस्तावदूनामन्तर्मुहूर्तोनां तदुत्कृष्टां देवगत्यादीनामुत्कृष्टां स्थितिमुदीरयन्ति। इयमत्र भावना–इह कश्चित्तथाविधपरिणामविशेषभावतो नरकगतेरुत्कृष्टां स्थितिं विंशतिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणां बद्ध्वा ततः शुभपरिणामविशेषभावतो देवगतेरुत्कृष्टां स्थितिं दशसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणां बद्धुमारभते। ततस्तस्यां देवगतिस्थितौ बध्यमानायामावलिकाया उपरि बन्धावलिकाहीनामावलिकात उपरितनीं सर्वामपि नरकगतिस्थितिं संक्रमयति। ततो देवगतेरपि विंशतिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा स्थितिरावलिकामात्रहीना जाता। देवगतिं च बध्नन् जघन्येनाप्यन्तर्मुहूर्तं कालं यावद्बध्नाति। बन्धानन्तरं च कालं कृत्वाऽनन्तरसमये देवो जातः। ततस्तस्य देवत्वमनुभवतो देवगतेरन्तर्मुहूर्तोना विंशतिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा उत्कृष्टा स्थितिरुदीरणायोग्या भवति। 'ननूक्तयुक्त्यनुसारेणावलिकाऽधिकान्तर्मुहूर्तोनेति प्राप्नोति कथमुच्यतेऽन्तर्मुहूर्तोनेति' ? 'नैष दोषः, यत आवलिकाप्रक्षेपेऽपि तदन्तर्मुहूर्तमेव केवलं बृहत्तरमवगन्तव्यमिति'। एवं देवानुपूर्व्या अपि वाच्यं। तथा कश्चिन्नरकानुपूर्व्या उत्कृष्टां स्थितिं विंशतिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणां बद्ध्वा ततः शुभपरिणामविशेषतो मनुष्यानुपूर्व्या उत्कृष्टां स्थितिं पञ्चदशसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणां बद्धुमारभते। ततस्तस्यां मनुष्यानुपूर्वीस्थितौ बध्यमानायामावलिकाया उपरि बन्धावलिकाहीनामावलिकात उपरितनीं सकलामपि नरकानुपूर्वीस्थितिं संक्रमयति। ततो मनुष्यानुपूर्व्या अपि विंशतिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा स्थितिरावलिकामात्रहीना जाता। मनुष्यानुपूर्वीं च बध्नन् जघन्येनाप्यन्तर्मुहूर्तं कालं

यावद्बध्नाति, तच्चान्तर्मुहूर्तमावलिकोनविंशतिसागरोपमकोटीकोटयाबुत्क्षिपति । बन्धानन्तरं च कालं कृत्वा मनुष्यानुपूर्वीमनुभवतस्तस्या उत्कृष्टा स्थितिरन्तर्मुहूर्तोना विंशतिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा उदीरणायोग्या । 'ननु मनुष्यगतेरपि पञ्चदशसागरोपमकोटीकोटयो बन्धेनोत्कृष्टा स्थितिः प्राप्यते, तथा मनुष्यानुपूर्व्या अपि, न त्वेकस्या अपि विंशतिः । तत उभे अपि संक्रमोत्कृष्टे संक्रमोत्कृष्टत्वाविशेषे च कथं मनुष्यगतेरिव मनुष्यानुपूर्व्या अपि आवलिकात्रिकहीनोत्कृष्टा स्थितिरुदीरणायोग्या न भवति' ? 'तदयुक्तं, मनुष्यानुपूर्व्या अनुदयसंक्रमोत्कृष्टत्वात् । तदुक्तं–"मणुयाणुपुव्विमीसग आहारग देवजुयल विगलाणि । सुहुमातितिगं तित्थं अणुदयसंकमणउक्कोसा ॥१॥ " अनुदयसंक्रमोत्कृष्टानां च जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्तोनाया एवोत्कृष्टस्थितेरुदीरणायोग्यत्वात् । मनुष्यगतिस्तूदयसंक्रमोत्कृष्टा । तदुक्तं–"मणुगइ सायं सम्मं थिर हासाईच्छवेयसुभखगई । रिसभचउरंसगाई पणुच्चउदसंकमुक्कोसा ॥१॥" ततस्तस्या आवलिकात्रिकहीनैवोत्कृष्टा स्थितिरुदीरणायोग्या भवतीति' । एवमातपादीनामप्यन्तर्मुहूर्तोना उत्कृष्टा स्थितिरुदीरणायोग्या भावनीया । 'नन्वनुदयसंक्रमोत्कृष्टस्थितीनां प्रकृतीनामन्तर्मुहूर्तोना उत्कृष्टा स्थितिरुदीरणायोग्या भवतु, आतपनाम तु बन्धोत्कृष्टं, ततस्तस्य बन्धोदयावलिकाद्विकरहितैवोत्कृष्टा स्थितिरुदीरणाप्रायोग्या प्राप्नोति, कथमुच्यतेऽन्तर्मुहूर्तोनेति' ? 'उच्यते–इह देव एवोत्कृष्टे संक्लेशे वर्तमान एकेन्द्रियप्रायोग्याणामातपस्थावरैकेन्द्रियजातीनामुत्कृष्टां स्थितिं बध्नाति, नान्यः । स च तां बद्ध्वा तत्रैव देवभवेऽन्तर्मुहूर्तं कालं यावदवतिष्ठते । ततः कालं कृत्वा बादरपृथ्वीकायिकेषु मध्ये समुत्पद्यते । समुत्पन्नः सन् शरीरपर्याप्त्या पर्याप्त आतपनामोदये वर्तमानस्तदुदीरयति । तत एवं सति तस्यान्तर्मुहूर्तोनैवोत्कृष्टा स्थितिरुदीरणायोग्या भवति ।' आतपग्रहणं चोपलक्षणं । तेनान्यासामपि स्थावरैकेन्द्रियजातिनरकद्विकतिर्यग्द्विकौदारिकपञ्चकान्त्यसंहननिद्रापञ्चकरूपाणामेकोनविंशतिसंख्याकानामनुदयबन्धोत्कृष्टानामन्तर्मुहूर्तोना उत्कृष्टा स्थिति-

रुदीरणायोग्या वेदितव्या । तत्र स्थावरैकेन्द्रियजातिनरकद्विकानां भावना कृता। शेषाणां क्रियते–तत्र नारकस्तिर्यग्द्विकौदारिकसप्तकान्त्यसंहननानामुत्कृष्टां स्थितिं बद्ध्वा ततो मध्यमपरिणामः सन् तत्रैवान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा तिर्यक्षूत्पन्न उत्कृष्टामुदीरणां करोति। निद्रापञ्चकस्याप्यनुदये उत्कृष्टां स्थितिमुत्कृष्टेन संक्लेशेन बद्ध्वा ततोऽन्तर्मुहूर्ते गते सति निद्रोदये उत्कृष्टामुदीरणां करोति ॥३३॥

तित्थयरस्स य पल्ला–संखिज्जइमे जहन्नगे इत्तो। थावरजहन्नसंतेण, समं अहि(ही)गं व बंधं तो ॥ ३४॥

गंतूणावलिमित्तं, कसायबारसगभयदुगं (गुं) छाणं। निद्दा य (इ,) पंचगस्स य,आयावुज्जोयनामस्स ॥३५॥

तित्थयरस्स त्ति–इह पूर्वं तीर्थकरनाम्नः स्थितिं शुभैरध्यवसायैरपवर्त्यापवर्त्य पल्योपमासंख्येयभागमात्रा शेषीकृता। ततोऽनन्तरसमये उत्पन्नकेवलज्ञानः सन् तामुदीरयति । उदीरयतश्च प्रथमसमये उत्कृष्टोदीरणा । सर्वदैव चेयन्मात्रैव स्थितिरुत्कृष्टा तीर्थकरनाम्न उदीरणाप्रायोग्या प्राप्यते ×नाधिकेति । तदेवमुक्तमुत्कृष्टस्थित्युदीरणास्वामित्वं ॥

×(य० उ० १७) उक्तं च–"हयसेसा तित्थठिई पल्लासंखिज्जमित्तिया जाया । तीसे सजोगिपढमे समए उदीरणुक्कोसा ॥१॥" आयुषां तु चतुर्णामपि स्वस्वोत्कृष्टस्थितिबन्धादूर्ध्वमुदयाद्यसमये उत्कृष्टा स्थित्युदीरणा ।

गाथार्थ—तित्थयर०संखिज्जइमे=जिननामनी पल्योपमना असंख्यातमा भाग प्रमाण उ०स्थिति उदीरणा. इत्तो=हवे, जहन्नगे=ज०स्थितिउदीरणा कहेछे. थावर०बंधंतो=स्थावरनी जघन्य स्थितिसत्ता तुल्य वा किंचित् अधिक स्थिति बांधतो गंतूण०मित्तं=बंधावलिका पछी, कसाय०दुगंछाणं=आद्य१२ कषाय, भय,दुगंछा, निद्दा०पंचगस्स उ=५निद्रा, आया०नामस्स=नामनी आतप अने उद्योत ए २१ प्रकृतिओनी ज०स्थित्युदी०करेछे,३४-३५

संप्रति जवन्यस्थित्युदीरणास्वामित्वमाह–'जहन्नगे इत्तो' इत ऊर्ध्वं जघन्ये जघन्यस्थित्युदीरणायां स्वामित्वमभिधीयते। प्रतिज्ञातमेव निर्वाहयति—'थावरेत्यादि' स्थावरस्य सतो यज्जघन्यं सर्वस्तोकं स्थितिसत्कर्म तेन सममधिकं वा मनाग्मात्रेणाभिनवं कर्म स एव सर्वजघन्यस्थितिकर्मा स्थावर एकेन्द्रियो बध्नन् बन्धावलिकां गत्वा बन्धावलिकायामतीतायामित्यर्थः, आद्यद्वादशकषायभयजुगुप्सानिद्रापञ्चकातपोद्योतनाम्नामेकविंशतिप्रकृतीनां (२१) जघन्यां स्थित्युदीरणां करोति। इहातपोद्योतवर्जानामेकोनविंशतिप्रकृतीनां ध्रुवबन्धित्वादातपोद्योतयोस्तु प्रतिपक्षाभावात् अन्यत्र जघन्यतरा स्थितिर्न प्राप्यते। तत एकेन्द्रिय एव यथोक्तस्वरूप आसां प्रकृतीनां जघन्यस्थित्युदीरणास्वामी ॥ ३४–३५ ॥

एगिंदियजोग्गाणं, इयरा बंधित्तु आलिगं गंतुं। एगिंदियागए तट्ठिईए जाईणमवि एवं ॥ ३६॥

एगिंदिय त्ति–एकेन्द्रियाणामेवोदीरणां प्रति या योग्याः प्रकृतयस्ता एकेन्द्रिययोग्या एकेन्द्रियजातिस्थावरसूक्ष्मसाधारणनामानस्तासामेकेन्द्रियो जघन्यस्थितिसत्कर्मा (४)। इतरा एकेन्द्रियजात्यादिप्रतिपक्षभूता द्वीन्द्रियजात्यादिकाः प्रकृतीर्बद्ध्वा; तद्यथा–एकेन्द्रियजातेर्द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातीः, स्थावरसूक्ष्मसाधारणानां त्रसबादरप्रत्येकनामानि, तत एकेन्द्रियजात्यादीर्बध्नाति। ततो बन्धावलिकां गत्वाऽतिक्रम्य बन्धावलिकायाश्चरमसमये एकेन्द्रियजात्यादीनां जघन्यां स्थित्युदीरणां करोति।

गाथार्थ—एगिंदिय०बंधित्तु=एकेन्द्रिय योग्यथी इतर प्रकृतिओ बांधी, आलिंग गंतुं=बन्धावलिका बाद एकेन्द्रिययोग्य ४ प्रकृतिओनी ते एकेन्द्रिय ज०स्थित्यु० करेछे. जाईण०एवं=ए प्रमाणे अन्य जातिओनो, एगिंदिया०तट्ठिईए=एकेन्द्रियमांथी आवेलो एकेन्द्रिय प्रायोग्य ज०स्थितिवाळो ते ते जातिनो वेदक ज०स्थित्युदी० करेछे.३६

इयमत्र भावना—एकेन्द्रियः सर्वजघन्यस्थितिसत्कर्मा द्वीन्द्रियादिजातीः सर्वा अपि परिपाट्या बध्नाति । ततस्तद्बन्धानन्तरमेकेन्द्रियजातिं बद्धुमारभते । ततो बन्धावलिकायाश्चरमसमये पूर्वबद्धायास्तस्या एकेन्द्रियजातेर्जघन्यां स्थित्युदीरणां करोति । इह बन्धावलिकाया अनन्तरसमये बन्धावलिकाप्रथमसमयबद्धा अपि लता उदीरणामायान्ति, ततो जघन्या स्थित्युदीरणा न प्राप्यते इति कृत्वा बन्धावलिकायाश्चरमसमये इत्युक्तं । यावता कालेन प्रतिपक्षभूताः प्रकृतीर्बध्नाति तावता कालेन न्यूना एकेन्द्रियजातेः स्थितिर्भवति, ततः स्तोकतरा प्राप्यते इति प्रतिपक्षभूतप्रकृतिबन्धोपादानं । एवं स्थावरसूक्ष्मसाधारणानामपि भावना कर्तव्या । केवलमेतेषां प्रतिपक्षभूताः प्रकृतयः त्रसबादरप्रत्येकनामानो वेदितव्याः । 'एगिंदियेत्यादि' जातीनामपि द्वीन्द्रियादिजातीनामपि एवं पूर्वोक्तेन प्रकारेण एकेन्द्रियादागतस्तत्स्थितिक एकेन्द्रियप्रायोग्यजघन्यस्थितिको जघन्यां स्थित्युदीरणां करोति । अत्रापीयं भावना—एकेन्द्रियो जघन्यस्थितिसत्कर्मा एकेन्द्रियभवादुद्धृत्य द्वीन्द्रियेषु मध्ये समुत्पन्नस्ततः पूर्वबद्धां द्वीन्द्रियजातिमनुभवितुमारभते । अनुभवप्रथमसमयादारभ्य चैकेन्द्रियजातिं दीर्घकालं बध्नुं लग्नः । ततस्तथैव त्रीन्द्रियजातिं चतुरिन्द्रियजातिं पञ्चेन्द्रियजातिं च क्रमेण बध्नाति । एवं च महान्ति चत्वार्यन्तर्मुहूर्तानि अतिक्रान्तानि । ततो द्वीन्द्रियजातिं बध्नुमारभते । ततो बन्धावलिकायाश्चरमसमये तस्या द्वीन्द्रियजातेरेकेन्द्रियभवोपार्जितस्थितिसत्कर्मापेक्षयाऽन्तर्मुहूर्तचतुष्टयबन्धावलिकान्यूनाया जघन्यां स्थित्युदीरणां करोति । बन्धावलिकाचरमसमयग्रहणे च कारणं प्रागेवोक्तं । एवं त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजात्योरपि भावना कार्या ॥ ३६ ॥

वेयणिया(य)नोकसाया-समत्तसंघयणपंचनीयाण । तिरियदुग अयस-दूभगणाइज्जाणं च संनिगए ॥३७॥

वेयणिय त्ति-सातासातवेदनीयस्य हास्यरत्यरतिशोकापर्याप्तकान्तिमपञ्चसंहननीचैर्गोत्रतिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्व्ययशःकीर्त-दुर्भगानादेयरूपाणामष्टादशप्रकृतीनां(१८)संज्ञिपञ्चेन्द्रियगतौ जघन्या स्थित्युदीरणा । भावना त्वियं-एकेन्द्रियो जघन्यस्थिति-सत्कर्मा एकेन्द्रियभवादुद्धृत्य पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु मध्ये समुत्पन्नः, उत्पत्तिप्रथमसमयादारभ्य च सातवेदनीयमनुभवन् असात-वेदनीयं बृहत्तरमन्तर्मुहूर्तकालं यावद्बध्नाति । ततः पुनरपि सातं बध्नुमारभते । ततो बन्धावलिकायाश्चरमसमये पूर्वबद्धस्य सात-वेदनीयस्य जघन्यां स्थित्युदीरणां करोति । एवमसातवेदनीयस्यापि द्रष्टव्यं । केवलं सातवेदनीयस्थानेऽसातवेदनीयमुच्चारणीयं, असातवेदनीयस्थाने सातवेदनीयमिति । हास्यरत्योः सातवत्, अरतिशोकयोरसातवद् भावना कार्या । असमाप्तमपर्याप्तकं नाम एकेन्द्रियो जघन्यस्थितिसत्कर्मा एकेन्द्रियभवादुद्धृत्यापर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियमध्ये समुत्पन्न उत्पत्तिप्रथमसमयादारभ्य च पर्याप्तकनाम बृहत्तरमन्तर्मुहूर्तं कालं यावद् बध्नाति । ततः पुनरपि अपर्याप्तकनाम बध्नुमारभते । ततो बन्धावलिकायाश्चरमसमये पूर्वबद्धस्यापर्याप्तकनाम्नो जघन्यां स्थित्युदीरणां करोति । संहननपञ्चकस्य तु मध्ये वेद्यमानं संहननं मुक्त्वा शेषसंहननानां प्रत्येकं बन्धकालोऽतिदीर्घो वक्तव्यः । ततो वेद्यमानसंहननस्य बन्धे बन्धावलिकाचरमसमये जघन्या स्थित्युदीरणा । नीचैर्गोत्रमसातवद्वेदितव्यं । तथा तैजस्कायिको वायुकायिको वा बादरः सर्वजघन्यस्थितिसत्कर्मा पर्याप्तसंज्ञितिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु मध्ये समुत्पन्नः ।

गाथार्थ—वेयणी०समत्त=२वेदनीय,९नोकषाय, अपर्याप्त,संघ०नीयाणं=५संघयण, नीचगोत्र, तिरिय०इज्जाण=तिर्यञ्चद्विक, अयश, दुर्भग अने अनादेयनी ज०स्थि०उदी०, संनिगए=जघन्य स्थितिसत्ताक एकेन्द्रियमांथी संज्ञीमां आवेलाने होय छे. ३७

ततो बृहत्तरमन्तर्मुहूर्तं कालं यावन्मनुजगतिं बध्नाति। तद्बन्धानन्तरं च तिर्यग्गतिं बध्नुमारभते। ततो बन्धावलिकायाश्चरमसमये तस्यास्तिर्यग्गतेर्जघन्यां स्थित्युदीरणां करोति। एवं तिर्यगानुपूर्व्यां अपि वक्तव्यं। नवरमपान्तरालगतौ तृतीयसमये जघन्या स्थित्युदीरणा वाच्या। अयशःकीर्तिदुर्भगानादेयानां चासातस्येव भावना कार्या। केवलमिह प्रतिपक्षप्रकृतीनां यशःकीर्तिसुभगादेयानां बन्धो वाच्यः ॥३७॥

अमणागयस्स चिरठिइ,अंत(ते) सुरनरयगइउवंगाणं। अणुपुव्वीतिसमइगे नराण एगिंदियागयगे॥३८॥

अमणागयस्स त्ति–अमनस्कादसंज्ञिपञ्चेन्द्रियादुद्धृत्य देवेषु नारकेषु वा मध्ये समागतस्य सुरगतिनिरयगतिवैक्रियांगोपांगनाम्नां स्वस्वायुर्दीर्घस्थित्यन्ते जघन्या स्थित्युदीरणा। एतदुक्तं भवति–असंज्ञिपञ्चेन्द्रियः सर्वजघन्यां सुरगत्यादिस्थितिं बध्वा बन्धानन्तरं च दीर्घकालं तत्रैव स्थित्वा देवेषु नारकेषु वा मध्ये पल्योपमासंख्येयभागमात्रायुःस्थितिकः समुत्पन्नः, ततस्तस्य देवस्य नारकस्य वा स्वस्वायुषश्चिरस्थित्यन्ते चरमसमये वर्तमानस्य यथायोगं देवगतिनरकगतिवैक्रियांगोपांगनाम्नां जघन्या स्थित्युदीरणा। तथा स एवासंज्ञिपञ्चेन्द्रियो देवस्य नारकस्य वा भवस्यापान्तरालगतौ वर्तमानो यथासंख्यं देवानुपूर्व्या नारकानुपूर्व्याश्च तृतीयसमये जघन्यां स्थित्युदीरणां करोति। 'नराण एगिंदियागयगे त्ति' एकेन्द्रियः सर्वजघन्यमनुष्यानुपूर्वी-

---

गाथार्थ—अमणागयस्स=असंज्ञीमांथी आवेला देव नारकने, चिरठिइ अंते=स्वायुष्यनी दीर्घ स्थितिने अंते, सुर०उवंगाणं=देवगति अने वैक्रियोपांगनी यथायोगपणे ज०स्थि०उदी० होय. अणु०तिसमइगे=देवानुपू० नरकानु०नी ते असंज्ञिने अपांतरालमां ३जे समये, नराण०गयगे=जघन्यस्थितियुक्त एकेन्द्रियमांथी मनुष्यमां आवतां विग्रहगतिए ३जे समये नरानुपूर्वीनी ज०स्थि०उदीरणाछे.३८

स्थितिसत्कर्मा एकेन्द्रियभवादुद्धृत्य मनुष्येषु मध्ये उत्पद्यमानोऽपान्तरालगतौ वर्तमानो मनुष्यानुपूर्व्यास्तृतीयसमये जघन्यस्थित्युदीरणास्वामी भवति ॥ ३८ ॥

समयाहिगालिगाए, पढमठिईए उ सेसवेलाए। मिच्छत्ते वेएसु य, संजलणासु वि य समत्ते (त्तं)॥३९॥

समय त्ति–इहान्तरकरणे कृतेऽधस्तनी स्थितिः प्रथमा स्थितिरित्युच्यते, उपरितनी तु द्वितीयेति। तत्र प्रथमस्थितेः शेषवेलायां समयाधिकावलिकाप्रमाणायां मिथ्यात्ववेदत्रिकसंज्वलनचतुष्टयसम्यक्त्वानां जघन्यस्थित्युदीरणा भवति। नवरं सम्यक्त्वसंज्वलनलोभयोः क्षये उपशमे वा जघन्या स्थित्युदीरणा द्रष्टव्या× ॥ ३९ ॥

पल्लासंखियभागू–णुदही एगिंदियागए मिस्से। बेसत्तभागवेउ–व्वियाए पवणस्स तस्संते ॥ ४० ॥

पल्ल त्ति–पल्योपमासंख्येयभागेन न्यूनं यदेकं सागरोपमं तावन्मात्रसम्यग्मिथ्यात्वस्थितिसत्कर्मा एकेन्द्रियभवादुद्धृत्य संज्ञिपञ्चेन्द्रियमध्ये समायातः। तस्य यतः समयादारभ्यान्तर्मुहूर्तानन्तरं सम्यग्मिथ्यात्वस्योदीरणाऽपगमिष्यति, तस्मिन् समये सम्य-

×(य०उ०१८) शेषाणां तु क्षपकश्रेण्यामेवोक्तं च–'उवसमेवि दुसु' द्वयोः सम्यक्त्वलोभयोरुपशमे, अपिशब्दात्क्षयेऽपीत्येतदर्थः।

गाथार्थ—मिथ्यात्वमो०, वेयेसु=३वेद,संजलणासु विय=४संज्वलन, सम्मत्ते=अने समकितमोहनीयनी पढमठिइए=प्रथम स्थिति, समo०गालिगाए=समयाधिक आवलि, सेसवेलाए=बाकी रहे थके ज०स्थि०उदी०थाय छे. ३९। पल्ला०णुदही=पल्यासंख्यभागहीन १ सागरोपम प्रमाण स्थितिवाळा, एगिंदियागए=एकेन्द्रियमांथी आवेला जीवने, मिस्से=मिश्रमोह०नी ज०स्थि०उदी०थायछे. बेसत्तभाग=३सागरो०नी, वेउव्वियाए=वैक्रियषट्कनी सत्तावाळा, पवणस्स=वा०वाउकायने, तस्संते=तेना अंते ज०स्थि०उदीरणा थाय छे.४०

ग्मिथ्यात्वप्रतिपन्नस्य चरमसमये सम्यग्मिथ्यात्वस्य जघन्या स्थित्युदीरणा। एकेन्द्रियसत्कजघन्यस्थितिसत्कर्मणश्च सकाशादधो वर्तमानं सम्यग्मिथ्यात्वमुदीरणायोग्यं न भवति। तावन्मात्रस्थितिके तस्मिन्नवश्यं मिथ्यात्वोदयसंभवतस्तदुद्वलनसंभवात्। तथा यैः सप्तभिर्भागैः सागरोपमं भवति, तौ द्वौ सप्तभागौ यस्य वैक्रियषट्कस्य वैक्रियशरीरवैक्रियसंघातवैक्रियबन्धनचतुष्टयरूपस्य तत् द्विसप्तभागं वैक्रियं, ततो विशेषणसमासः। प्राकृतत्वात्स्त्रीत्वनिर्देशः। इहापि च 'पल्लासंखियभागेण' इत्यनुवर्तते, ततश्च तस्य द्विसप्तभागवैक्रियषट्कस्य पल्योपमासंख्येयभागहीनस्य पवनस्य बादरवायुकायिकस्य तस्य वैक्रियस्य पर्यन्तसमये जघन्या स्थित्युदीरणा। एतदुक्तं भवति–बादरवायुकायिकः पल्योपमासंख्येयभागहीनसागरोपमद्विसप्तभागप्रमाणवैक्रियषट्कजघन्यस्थितिसत्कर्मा बहुशो वैक्रियमारभ्य चरमे वैक्रियारंभे चरमसमये वर्तमानो जघन्यां स्थित्युदीरणां करोति। अनन्तरसमये च वैक्रियषट्कमेकेन्द्रियसत्कजघन्यसत्कर्मापेक्षया स्तोकतरमिति कृत्वा उदीरणायोग्यं न भवति, किं तूद्वलनायोग्यं ॥ ४० ॥

चउरुवसमेत्तु पेज्जं, पच्छा मिच्छं खवेत्तु तेत्तीसा। उक्कोससंजमद्धा, अंते सुतणूउवंगाणं ॥ ४१ ॥

चउ त्ति–संसारपरिभ्रमणेन चतुरो वारान् प्रेम मोहनीयमुपशमय्य ततो मिथ्यात्वं, उपलक्षणमेतत्सम्यक्त्वं सम्यग्मिथ्यात्वं च क्षपितं, क्षपयित्वा च त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिको देवो जातः। ततो देवभवाच्च्युत्वा मनुष्येषु मध्ये समुत्पन्नः। ततो वर्षाष्टकानन्तरं संयमं प्रतिपन्नोऽप्रमत्तभावे चाहारकसप्तकं बद्धवान्। ततो देशोनां पूर्वकोटिं यावत्संयमं परिपालितवान्। ततो देशो-

गाथार्थ—चउरु०पेज्जं=मोहनीयने ४वार उपशमावीने, पच्छा=पछी, मिच्छं खवेत्तु=मिथ्यात्वने खपावीने, तेत्तीसा=३३ सागरोपम आयुष्य प्रमाण देव थइ, उक्को०अंते=त्यांथी मनुष्य थइ उत्कृष्ट संयम कालने अंते, सुतणूउवंगाणं=औदारिकद्विकनी उ०स्थि०उदीरणा ४१

नपूर्वकोटिपर्यन्ते आहारकशरीरं कृत्वा । 'सुतणु त्ति' आहारकशरीरं । 'उवंग त्ति' आहारकांगोपांगं । बहुवचनादाहारकबन्धचतुष्टयाहारकसङ्घातपरिग्रहः । तेषां जघन्यां स्थित्युदीरणां करोति । इह मोहोपशमं कुर्वन् शेषनामकर्मप्रकृतीनां (स्थिति) घातादिभिः प्रभूतं स्थितिसत्कर्म घातयति । देवभवे चापवर्तनाकरणेनापवर्तयति । तत आहारकसप्तकबन्धकाले स्तोकमेव स्थितिसत्कर्म संक्रमयतीति चतुःकृत्वो मोहादिग्रहणं । आहारकसप्तकस्थितिसत्कर्म च देशोनपूर्वकोटिप्रमाणेन कालेन प्रभूतं क्षयमुपयाति, ततो देशोनपूर्वकोटयुपादानं ॥ ४१ ॥

छउमत्थखीणरागे, चउदस समयाहिगालिगठिईए । सेसाणुदीरणंते, भिन्नमुहुत्तो ठिईकालो ॥ ४२ ॥

छउमत्थ त्ति–छद्मस्थक्षीणरागस्य पञ्चविधज्ञानावरणचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणपञ्चविधान्तरायलक्षणानां चतुर्दशप्रकृतीनां समयाधिकावलिकाशेषायां स्थितौ जघन्या स्थित्युदीरणा । शेषाणां च प्रकृतीनां मनुजगतिपञ्चेन्द्रियजातिप्रथमसंहननौदारिकसप्तकसंस्थानषट्कोपघातपराघातोच्छ्वासप्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तितीर्थकरोच्चैर्गोत्रदुःस्वरलक्षणानां द्वात्रिंशत्प्रकृतीनां पूर्वोक्तानां च नामध्रुवोदीरणानां त्रयस्त्रिंशत्प्रकृतीनां सर्वसंख्यया पञ्चषष्टिसंख्यानां सयोगिकेवलिचरमसमये जघन्या स्थित्युदीरणा । तस्याश्च जघन्यायाः कालो भिन्नमुहूर्तोऽन्तर्मुहूर्तमित्यर्थः । आयुषामप्युदीरणान्ते जघन्या स्थित्युदीरणा ॥ ४२ ॥

गाथार्थ—छउम०रागे=छद्मस्थ क्षीणमोहीने, चउदस०ठिईए=५ज्ञाना०४दर्श०,५अन्तराय ए १४प्रकृतिओनी समयाधिक आवलिका शेष छते ज०स्थि०उदीरणा थायछे. सेसाणुदीरणंते=शेष प्रकृतिओनी सयोगीना अंते,भिन्न०कालो=अन्तर्मुहूर्त स्थिति छते ज० स्थि०उदी०थाय छे. ४२

तदेवमुक्ता स्थित्युदीरणा। संप्रत्यनुभागोदीरणावसरः। तत्र चेमेऽर्थाधिकाराः, तद्यथा–संज्ञा १, शुभाशुभप्ररूपणा २, विपाकप्ररूपणा ३, प्रत्ययप्ररूपणा ४, साद्यनादिप्ररूपणा ५, स्वामित्वप्ररूपणा ६, चेति। तत्र संज्ञाशुभाशुभविपाकसूचनार्थमाह–

अणुभागुदीरणाए, सन्ना य सुभासुभा विवागो य। अणुभागबंध(धि)भणिया, नाणत्तं पच्चया चेमे ॥४३॥

अणुभाग त्ति–अनुभागोदीरणायां संज्ञा शुभाशुभा विपाकाश्च यथा शतकाख्ये ग्रन्थेऽनुभागबन्धाभिधानावसरे भणितास्तथाऽत्रापि द्रष्टव्याः। तत्र संज्ञा द्विभेदा–स्थानसंज्ञा घातिसंज्ञा च। स्थानसंज्ञा चतुर्विधा–एकस्थानको द्विस्थानकस्त्रिस्थानकश्चतुःस्थानकश्च। घातिसंज्ञा त्रिप्रकारा, तद्यथा–सर्वघाती देशघाती अघाती च। तथा शुभकर्मणामनुभागः क्षीरखंडरसोपमः। अशुभकर्मणां त्वशुभो घोषातकीनिंबरसोपमः। एषा च स्थानसंज्ञा घातिसंज्ञा शुभाशुभप्ररूपणा च प्रागनुभागसंक्रमाभिधानावसरे सप्रपञ्चं कृतेति न भूयो वितायते(१–२)। विपाकश्चतुर्विधः, तद्यथा–पुद्गलविपाकः क्षेत्रविपाकः भवविपाको जीवविपाकश्च। तत्र पुद्गलानधिकृत्य यस्य रसस्य विपाकोदयः स पुद्गलविपाकः। स च संस्थानषट्कसंहननषट्कातपशरीरपञ्चकाङ्गोपाङ्गत्रयोद्योतनिर्माणस्थिरास्थिरवर्णादिचतुष्कागुरुलघुशुभाशुभपराघातोपघातप्रत्येकसाधारणनाम्नां षट्त्रिंशत्प्रकृतीनामवगन्तव्यः(३६)। तथाहि–संस्थाननामादीनि औदारिकादिपुद्गलानेवाधिकृत्य स्वविपाकमुपदर्शयन्ति, तत आसां रसः पुद्ग-

---

गाथार्थ—अणु०णाए=अनुभाग उदीरणामां,सन्ना०विवागो य=संज्ञा,शुभाशुभ अने विपाक, अणु०भणिया=शतकमां अनुभाग बंधमां कह्या प्रमाणे छे. नाणत्तं०चेमे=विशेषता अने प्रत्यय प्ररूपणा आ प्रमाणे छे. ४३

लविपाक एव । 'नन्वनया युक्त्या रत्यरत्योरपि रसः पुद्गलविपाक एव प्राप्नोति । तथाहि–कंटकादिस्पर्शादरतेर्विपाकोदयो भवति, स्रक्चन्दनादिसंस्पर्शात्तु रतेः, ततः कथं स नोक्तः' ? 'उच्यते–रत्यरतिविपाकस्य पुद्गलव्यभिचारात् । तथाहि–कंटकादिसंस्पर्शव्यतिरेकेऽपि प्रियाप्रियस्मरणादिना कदाचिद्रत्यरत्योर्विपाकोदयो दृश्यते, ततोऽनयोरनुभागो जीवविपाक एव युक्तः, न पुद्गलविपाकः' । एवं क्रोधादिविपाकोऽपि भावनीयः । उक्तं च–"अरइरईणं उदओ किन्न भवे पोग्गलानि संपप्पा । अप्पुट्ठेहि वि किन्नो ? एवं कोहाइयाणं पि ॥ १ ॥" अस्याश्चाक्षरगमनिका–अरतिरत्योरुदयो विपाकोदयः पुद्गलान् प्राप्य किं न भवति ? भवत्येवेति भावः । ततः कथं तयो रसः पुद्गलविपाको नोच्यते ? । अत्राचार्यः काक्वा प्रत्युत्तरमाह–'अप्पुट्ठेहि वि किन्नो' अत्र सप्तम्यर्थे तृतीया । ततोऽयमर्थः–अस्पृष्टेष्वपि पुद्गलेषु किं तयो रत्यरत्योर्विपाकोदयो न भवति ? भवत्येवेति भावः । ततः पुद्गलव्यभिचारान्न तयो रसः पुद्गलविपाको भवति, किं तु जीवविपाक एव । एवं क्रोधादीनामपि वाच्यं । तथा क्षेत्रमधिकृत्य यस्य रसस्य विपाकोदयः स रसः क्षेत्रविपाकः, स च चतसृणामानुपूर्वीणामवगन्तव्यः(४) । तथा भवमधिकृत्य यस्य रसस्य विपाकोदयः स रसो भवविपाकः । स च चतुर्णामायुषामवसेयः(४) । अथोच्येत 'गतीनामपि भवमधिकृत्य विपाकोदयो वर्तते, ततः कथं तासां रसो भवविपाको नाभिधीयते ?' । 'तदयुक्तं, व्यभिचारात् । तथाहि–आयुषां स्वभवमन्तरेण परभवे संक्रमेणाप्युदयो न भवति । ततः सर्वथा स्वभवाव्यभिचारात्तानि भवविपाकान्युच्यन्ते । गतीनां पुनः परभवेऽपि संक्रमेणोदयो भवति । ततः स्वभवव्यभिचारान्न ता भवविपाकिन्यः' । उक्तं च–"आउव्व भवविवागा गई न आउस्स परभवे जम्हा । नो सव्वहा वि उदओ गईण पुण संकमे णत्थि ॥ १ ॥" सुगमा । शेषाणां त्वष्टसप्ततिसंख्यानां(७८)प्रकृतीनां जीव-

विपाको रसः जीवमेवाधिकृत्य विपाको यस्यासौ जीवविपाकः । 'णाणत्तमित्यादि' नानात्वं विशेषः । यत्तत्र शतकाख्ये ग्रन्थेऽनुभागबन्धे नोक्तं तदिह वक्ष्ये । उक्तस्य च विशेषमित्यर्थः । तथा तत्र बन्धमाश्रित्यान्ये एव मिथ्यात्वादयः प्रत्यया उक्ता, इह तूदीरणामाश्रित्यान्ये एवेमे वक्ष्यमाणा ज्ञातव्याः ॥ ४३ ॥

तत्र नानाप्ररूपणार्थमाह—

मीसं दुट्ठाणे सव्व–घाइदुट्ठाणएगठाणे य । सम्मत्तमंतरायं च, देसघाइ अचक्खू य ॥ ४४ ॥

मीसं त्ति–सम्यग्मिथ्यात्वं स्थानसंज्ञामधिकृत्य द्विस्थानकं द्विस्थानकरसोपेतं, घातिसंज्ञामधिकृत्य सर्वघाति । सम्यक्त्वं पुनरुत्कृष्टोदीरणामधिकृत्य द्विस्थानकरसे, जघन्योदीरणां त्वधिकृत्यैकस्थानके, घातिसंज्ञामधिकृत्य च देशघाति वेदितव्यं । एतच्च तत्र सर्वथा नोक्तं, किं त्विहैव । यतस्तत्रानुभागबन्धमाश्रित्य शुभाशुभप्ररूपणा कृता । न च सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोर्बन्धः संभवति, तत एतद्वर्जा एव तत्राशुभप्रकृतयो निर्दिष्टाः । उदीरणा त्वेतयोरपि भवति । तत इह विशेषेणैतयोरुपादानं । तथाऽन्तरायं पञ्चप्रकारमुत्कृष्टामनुभागोदीरणामधिकृत्य द्विस्थानके, (जघन्योदीरणामधिकृत्य) एकस्थानके च घातिसंज्ञामधिकृत्य देशघाति वेदितव्यं । बन्धं प्रतीत्य पुनश्चतुःप्रकारेऽपि रसे । तद्यथा–चतुःस्थानके त्रिस्थानके द्विस्थानके एकस्थानके च । अचक्षुर्दर्शनं घातिसंज्ञामधिकृत्य देशघाति ॥ ४४ ॥

गाथार्थ—मीसं=मिश्रनेा, दुट्ठाणे=द्विस्थानिक, सव्वघाइ=अने सर्वघाती, सम्म०रायं च=समकितमोह०अने अन्तराय, दुट्ठाण०ठाणे य=द्विस्थानिक एकस्थानिकने देशघाती, देस०अचक्खूय=अने अचक्षुदर्शन देशघाती. ४४

ठाणेसु चउसु अपुमं दुट्ठाणे कक्क(क्ख)डं च गुरुकं च। अणुपुव्वीओ तीसं, नरतिरिएगंतजोग्गा य ॥४५॥

ठाणेसु त्ति—नपुंसकवेदो बन्धं प्रतीत्य त्रिप्रकारे रसे। तद्यथा–चतुःस्थानके त्रिस्थानके द्विस्थानके च। अत्र तूत्कृष्टामनुभागोदीरणामधिकृत्य चतुःस्थानके। अनुत्कृष्टां त्वधिकृत्य चतुःस्थानके त्रिस्थानके द्विस्थानके एकस्थानके च। ननु बन्धाभावे कथमुदीरणायामेकस्थानको रसो नपुंसकवेदस्य प्राप्यते? उच्यते–क्षपणकाले रसघातं कुर्वतस्तस्यैकस्थानकस्यापि रसस्य संभवात्। तथा कर्कशनाम गुरुनाम च बन्धं प्रतीत्य चतुःस्थानके त्रिस्थानके द्विस्थानके च। इह त्वनुभागोदीरणामधिकृत्य द्विस्थानके। तथा चतस्र आनुपूर्व्यो याश्च नरतिरश्चामुदयं प्रत्येकान्तयोग्यास्त्रिंशत्प्रकृतयः, तद्यथा–×मनुष्यायुस्तिर्यगायुस्तिर्यग्गतिर्मनुष्यगतिरेकेन्द्रियजातिर्द्वीन्द्रियजातिस्त्रीन्द्रियजातिश्चतुरिन्द्रियजातिश्चौदारिकसप्तकमाद्यन्तवर्जसंस्थानचतुष्टयं संहननषट्कमातपं स्थावरं सूक्ष्मममपर्याप्तं साधारणं(३०)चेति ता अपि बन्धं प्रतीत्य चतुःस्थानके त्रिस्थानके द्विस्थानके च। इह त्वनुभागोदीरणामुत्कृष्टामनुत्कृष्टां वाऽधिकृत्य द्विस्थानके रसे वेदितव्याः ॥४५॥

वेय एगट्ठाणे, दुट्ठाणे वा चक्खू चक्खू य। जस्सत्थि एगमवि अक्खरं तु तस्सेगठाणाणि॥ ४६॥

×(य०उ० १९) 'तिर्यग्द्विकनरद्विक' एवं मनुष्यायुस्तिर्यगायुस्तिर्यग्गतिमनुष्यगतीनां स्थाने।

गाथार्थ—ठाणेसु०अपुमं=नपुंसकवेदनो चारे स्थानकनो रस, कक्कडं०आणुपुव्वीओ=कर्कश अने गुरुस्पर्श तथा ४आनुपूर्वीनो, तीसं नर०जोग्गाय=एकान्त मनुष्य तिर्यंच योग्य ३०प्रकृतिओनो, दुट्ठाणे=द्विस्थानिकरस उदीरणा योग्य छे. ४५ वेया=स्त्री-पुंवेदनो, अचक्खु०य=अचक्षु-चक्षुदर्श०नो, एगट्ठाणे०वा=एकस्थानिक अने द्विस्थानिक रस उदीरणा योग्य, जस्स=जेमने, एगम०तु=एक पण अक्षर, अत्थि=सर्व पर्याययुक्त छे, तस्सेगठाणाणि=ते श्रुतकेवलीने मति-श्रुतज्ञाना०नो अने अवधिदर्श०नो एकस्थानिक छे. ४६

वेय त्ति–वेदौ स्त्रीवेदपुरुषवेदौ अनुभागोदीरणामुत्कृष्टामधिकृत्य द्विस्थानके, अनुत्कृष्टां त्वधिकृत्य द्विस्थानके एकस्थानके वावगन्तव्यौ। एवमचक्षुश्चक्षुर्दर्शनावरणे च। बन्धं प्रतीत्य पुनः स्त्रीवेदश्चतुःस्थानके त्रिस्थानके द्विस्थानके वा।पुरुषवेदोऽचक्षुर्दर्शनावरणचक्षुर्दर्शनावरणे च चतुःप्रकारेऽपि, तद्यथा–चतुःस्थानके त्रिस्थानके द्विस्थानके एकस्थानके च। 'ननु देसघाई अचक्खू य त्ति' प्रागेवोक्तं तत्किमर्थं पुनरिहाचक्षुर्दर्शनावरणोपादान'? 'उच्यते–स्थाननियमार्थं। पूर्वं हि देशघातित्वमेवाचक्षुर्दर्शनावरणस्योक्तं अत्र तु रसस्थाननियमः'। 'जस्सेत्यादि' यस्य जीवस्यैकमप्यक्षरं सर्वपर्यायैः परिज्ञातं वर्तते तस्य श्रुतकेवलिनो, मतिश्रुतावधि(ज्ञानावरणावधि) दर्शनावरणप्रकृतीनामनुभागोदीरणायामेकस्थानको रसः प्राप्यते। संज्वलनानां तु बन्धेऽनुभागोदीरणायां च चतुःप्रकारोऽपि रसः, तद्यथा–चतुःस्थानकस्त्रिस्थानको द्विस्थानक एकस्थानकश्च ॥ ४६ ॥

मणनाणं सेससमं, मीसगसम्मत्तमवि य पावेसु। छट्ठाणवडियहीणा, संतुक्कस्सा उदीरणया ॥ ४७ ॥

मणनाणं ति–मनःपर्यायज्ञानं शेषैः कर्मभिः समं वेदितव्यं। इयमत्र भावना–यथा शेषकर्मणामनुभागोदीरणा चतुःस्थानकस्य त्रिस्थानकस्य द्विस्थानकस्य च रसस्य भवति, तथा मनःपर्यायज्ञानावरणस्यापि द्रष्टव्या। बन्धे पुनर्मनःपर्यायज्ञानावरणस्य चतुःप्रकारोऽपि रसो भवति। शेषकर्मणां तु बन्धे त्रिप्रकारः, तद्यथा–चतुःस्थानकस्त्रिस्थानको द्विस्थानकश्च। तानि च शेषकर्माण्यमूनि, तद्यथा–केवलज्ञानावरणं निद्रापञ्चकं केवलदर्शनावरणं सातासातवेदनीये मिथ्यात्वं द्वादश कषायाः षट् नोक-

---

गाथार्थ–मणनाण सेससमं=मनःपर्यवज्ञाना०नी शेष कर्म जेम, मीसग०पावेसु=मिश्र-समकितमोह०नी पाप प्रकृतिनी जेम,छट्ठाण०हीणा=षट्स्थान पतित हीन,संतुक्कसा उदीरणया=अनुभागसत्तानी उत्कृ०अनु०उदीरणा थाय छे. ४७

षायाः नरकायुर्देवायुर्नरकगतिर्देवगतिः पञ्चेन्द्रियजातिस्तैजससप्तकं वैक्रियसप्तकमाहारकसप्तकं समचतुरस्रसंस्थानं हुंडकसंस्थानं वर्णपञ्चकं गन्धद्विकं रसपञ्चकं स्निग्धरूक्षमृदुलघुशीतोष्णरूपं स्पर्शषट्कं अगुरुलघूपघातं पराघातमुच्छ्वासोद्योतप्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरशुभाशुभसुभगदुर्भगसुस्वरदुःस्वरादेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तिनिर्माणतीर्थकरोच्चैर्गोत्रनीचैर्गोत्राणि चैतेषां चैकोत्तरशतसंख्यानां (१०१) शेषकर्मणामुत्कृष्टामनुभागोदीरणामधिकृत्य चतुःस्थानको रसः। अनुत्कृष्टां त्वधिकृत्य चतुःस्थानकस्त्रिस्थानको द्विस्थानकश्च। तथा मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानावरणचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणानामुत्कृष्टामनुभागोदीरणामधिकृत्य रसः सर्वघाती। अनुत्कृष्टां त्वधिकृत्य सर्वघाती देशघाती वा×। केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणनिद्रापञ्चकमिथ्यात्वद्वादशकषायाणामुत्कृष्टामनुत्कृष्टां वानुभागोदीरणामधिकृत्य रसः सर्वघाती। सातासातवेदनीययुश्चतुष्टयसकलनामप्रकृतिगोत्रद्विकानामुत्कृष्टामनुत्कृष्टां वोदीरणामधिकृत्य रसः सर्वघातिप्रतिभागः। तथा चतुर्णां संज्वलनानां नवानां नोकषायाणामुत्कृष्टामनुभागोदीरणामधिकृत्य रसः सर्वघाती। अनुत्कृष्टां त्वधिकृत्य सर्वघाती देशघाती वा प्रतिपत्तव्यः। इदानीमशुभप्रकृतिविषये विशेषमाह—'मीसगेत्यादि' अपि च सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं चानुभागोदीरणामधिकृत्य पापेषु पापकर्मसु मध्येऽवगन्तव्यं, घातिस्वभावतया तयो रसस्याशुभत्वात्। शेषप्रकृतयस्तु यथा शतकग्रन्थेऽनुभागबन्धे शुभा अशुभाश्चोक्तास्तथाऽत्राप्यवगन्तव्याः।

अथ कीदृशेऽनुभागसत्कर्मणि वर्तमान उत्कृष्टानुभागोदीरणां करोति? उच्यते—'छट्ठाणेत्यादि' अनुभागसत्कर्मणः षट्स्थान-

×(य०उ०२०) उक्तं च—"देसोवघाइयाणं उदए देसो व होइ सव्वो वा। देसोवघाइओ चिय अचक्खुसम्मत्तविग्घाण॥१॥ अत्रोदय इत्यसंप्राप्त्युदये उदीरणायामित्यर्थः।

पतितहीनादपि उत्कृष्टानुभागोदीरणा प्रवर्तते। एतदुक्तं भवति—यत्सर्वोत्कृष्टमनुभागसत्कर्म तस्मिन्ननन्तभागहीने वाऽसंख्येयभागहीने वा संख्येयभागहीने वा संख्येयगुणहीने वाऽसंख्येयगुणहीने वाऽनन्तगुणहीने वोत्कृष्टानुभागोदीरणा प्रवर्तते। यतोऽनन्तानन्तानां स्पर्धकानामनुभागे क्षपितेऽपि अनन्तानि स्पर्धकानि उत्कृष्टरसान्यद्यापि तिष्ठन्ति। ततोऽनन्तभागेऽपि शेषे मूलानुभागसत्कर्मापेक्षयाऽनन्तगुणहीने उत्कृष्टानुभागोदीरणा लभ्यते, किं पुनरसंख्येयगुणहीनादावनुभागकर्मणीति ॥ ४७ ॥

संप्रति विपाके विशेषमाह—

विरियंतरायकेवल-दंसणमोहणीयणाणवरणाणं। असमत्तपज्जएसु (च) सव्वदव्वेसु उ विवागो ॥ ४८ ॥

विरियंतराय त्ति—वीर्यान्तरायकेवलदर्शनावरणाष्टाविंशतिविधमोहनीयपञ्चविधज्ञानावरणानां पञ्चत्रिंशत्प्रकृतीनां (३५)। असमस्तपर्यायेषु सर्वद्रव्येषु सर्वजीवद्रव्येषु विपाकः। तथाहि—इमा वीर्यान्तरायादयः पञ्चत्रिंशत्प्रकृतयो द्रव्यतः सकलमपि जीवद्रव्यमुपघ्नन्ति, पर्यायांस्तु न सर्वानपि। यथा मेघैरतिनिचिततरैरपि सर्वात्मनान्तरितयोरपि सूर्याचन्द्रमसोर्न तत्प्रभा सर्वथाऽपनेतुं शक्यते×। उक्तं च—"सुट्ठु वि मेहसमुदए होइ पहा चंदसूराणं ति" तथाऽत्रापि भावनीयम् ॥ ४८ ॥

×(य०उ०२१) तथैताभिः सर्वात्मनाऽऽवृतेऽपि जीवद्रव्ये तत्पर्यायाः सर्वथा नापनेतुं शक्यन्त इति भावनीयम्।

गाथार्थ—विरियंत०णाणं=वीर्यान्तराय, केवलदर्शनावरणीय,२८मोहनीय अने ५ज्ञानावरणीयनो, विवागो=विपाक विषय, सव्वदव्वेसु उ=सर्वद्रव्योमां, असम०य=अपूर्ण पर्यायोमां छे. ४८

गुरुलघुगा णंतपएसिएसु चक्खुस्स रूविदव्वेसु। ओहिस्स गहणधारण-जोग्गे सेसंतरायाणं ॥ ४९॥

गुरुलघुग त्ति–चक्षुषश्चक्षुर्दर्शनावरणस्य ये गुरुलघुका अनन्तप्रादेशिकाः स्कन्धास्तेषु विपाकः, अवधिदर्शनावरणस्य रूपिद्रव्येषु। शेषान्तरायाणां दानलाभभोगोपभोगान्तरायाणां ग्रहणधारणयोग्येषु पुद्गलद्रव्येषु विपाको न शेषेषु। यावत्येव हि विषये चक्षुर्दर्शनादीनि व्याप्रियन्ते तावत्येव विषये चक्षुर्दर्शनावरणादीन्यपि। तत उक्तरूपो विषयनियमो न विरुध्येत। शेषप्रकृतीनां तु यथा प्राक् विपाकोऽभिहितः पुद्गलविपाकादिस्तथैवावगन्तव्यः (३) ॥ ४९ ॥

संप्रति प्रत्ययप्ररूपणा कर्तव्या। प्रत्ययोऽपि द्विधा–परिणामप्रत्ययो भवप्रत्ययश्च। तत्र परिणामप्रत्ययमधिकृत्याह—

वेउव्वियतेयगकम्मवन्नरसगंधनिद्धलुक्खाउं। सीउण्हथिरसुभेयर-अगुरुलघुगा य नरतिरिए ॥५०॥

वेउव्विय त्ति–वैक्रियसप्तकं तैजसकार्मणग्रहणात्तैजससप्तकं गृहीतं। तथा वर्णपञ्चकं गन्धद्विकं रसपञ्चकं स्निग्धरूक्षशीतोष्णस्थिरास्थिरशुभाशुभागुरुलघूनि चानुभागोदीरणामधिकृत्य तिर्यङ्मनुष्याणां परिणामप्रत्ययानि। वैक्रियसप्तकं हि तिर्यङ्मनुष्याणां गुणविशेषसमुत्थलब्धिप्रत्ययं। ततस्तदुदीरणापि तेषां गुणपरिणामप्रत्यया। तैजससप्तकादयस्तु तिर्यङ्मनुष्यैरन्यथान्यथा परि-

---

गाथार्थ—चक्खूस्स=चक्षु-अचक्षुदर्श०नो, गुरु०सिएसु=अनंतप्रदेशी गुरुलघुद्रव्यमां, ओहीस्स=अवधिदर्श०नो, रूविदव्वेसु=रूपी द्रव्योमां, सेसंतरायाणं=शेष ४अन्तरायनो, गहण०जोग्गे=ग्रहण धारण योग्य द्रव्योमां विषय छे. ४९ वेउव्विय०कम्म=वैक्रियसप्तक, तैजस कार्मण सप्तक, वन्न०लुक्खाओ=५वर्ण, ५रस, २गंध, स्निग्ध रुक्ष, सीउण्ह०सुभेयर=शीत उष्ण, स्थिरास्थिर, शुभाशुभ, अगुरुलघु ए ३५नी अनुभागोदीरणा मनुष्य अने तिर्यंचने परिणाम प्रत्ययिक छे. ५०

णमप्योदीर्यन्ते, ततस्तासामपि प्रकृतीनामनुभागोदीरणा तिर्यङ्मनुष्याणां परिणामप्रत्ययाः ॥ ५० ॥

चउरंसमउयलहुगा-परघाउज्जोयइट्ठखगइसरा । पत्तेगतणू उत्तर-तणुसु दोसु विय तणू तइया ॥५१॥

चउरंस त्ति-समचतुरस्रसंस्थानमृदुलघुपराघातोद्योतप्रशस्तविहायोगतिसुस्वरप्रत्येकनामानोऽष्टौ प्रकृतय उत्तरतन्वोर्वैक्रियाहारकलक्षणयोरनुभागोदीरणामधिकृत्य परिणामप्रत्यया वेदितव्याः । यत ×उत्तरवैक्रिये आहारके वा शरीरे सति समचतुरस्रादीनामनुभागोदीरणा प्रवर्तमाना उत्तरवैक्रियादिशरीरपरिणामापेक्षा । तत एषापि परिणामप्रत्यया वेदितव्या । तथा तृतीया तनुराहारकशरीरं । आहारकशरीरग्रहणाच्चाहारकसप्तकं गृहीतं द्रष्टव्यं । ततोऽनुभागोदीरणामधिकृत्य परिणामप्रत्ययं वेदितव्यं । आहारकसप्तकं हि मनुष्याणां गुणपरिणामप्रत्ययं भवति । ततस्तदनुभागोदीरणापि गुणपरिणामप्रत्ययैवेति ॥ ५१ ॥

देसविरयविरयाणं, सुभगाएज्जजसकित्तिउच्चाणं । पुव्वाणुपुव्विगाए, असंखभागो णियाईणं ॥ ५२ ॥

×(य०उ०२२) "उत्तरतणूसु दोसु वि त्ति" उत्तरतन्वोर्वैक्रियाहारकलक्षणयोर्द्वयोरपि करणपरिणामे सतीत्यर्थः, उत्तरवैक्रिये आहारके वा क्रियमाणे तद्बलादेव समचतुरस्रादीनामनुभागोदीरणा प्रवर्तमाना, न गुणागुणपरिणामकृता, नापि भवकृता, किंतूत्तरवैक्रियादिशरीरपरिणामकृतेत्यर्थः ।

गाथार्थ—चउरंस=समचतुरस्र,मृदु, परघा०पत्तेग=पराघात,उद्योत, शुभखगति, सुस्वर. पत्तेग०दोसुविय=अने प्रत्येक ए ८ प्रकृतिओ, उत्तर०विय=उत्तरशरीररूप वैक्रिय अने आहारक करे छते, तणू=देह परिणाम प्रत्ययिक जाणवी. तणू तइया=आहारक ७ गुणपरिणाम प्रत्ययिक जाणवी. ५१ । सुभगा०उच्चाणं=सौभाग्य, आदेय,यशःकीर्ति अने उच्चैर्गोत्रनी, थियाईणं=तथा स्त्रीवेदादि ९नोक-

देसविरय त्ति–देशविरतानां विरतानां च सुभगादेययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राणामनुभागोदीरणा (गुण)परिणामकृता। तथाहि–सुभगादिप्रतिपक्षभूतदुर्भगादिप्रकृत्युदययुक्तोऽपि यो देशविरतिं सर्वविरतिं वा प्रतिपद्यते, तस्यापि देशविरत्यादिगुणप्रभावतः सुभगादीनामेव प्रकृतीनामुदयपूर्वकमुदीरणा प्रवर्तत इति। तथा स्त्रीवेदादीनां नवानां नोकषायाणां पूर्वानुपूर्व्याऽसंख्येयो भागो देशविरतानां सर्वविरतानां च प्रत्येकमुदीरणायोग्यो गुणपरिणामप्रत्ययो वेदितव्यः। इदमुक्तं भवति–स्त्रीवेदादीनामतिजघन्यानुभागस्पर्धकादारभ्य क्रमेणासंख्येयो भागो देशविरतादीनामुदीरणायोग्यो गुणप्रत्ययतो भवति, परस्त्वनुभागो ×नोदीरणामेति॥५२॥

तित्थयरं घाईणि य, परिणाम (य)पच्चयाणि सेसाओ। भवपच्चइया पुव्वुत्ता वि य पुव्वुत्तसेसाणं॥५३॥

तित्थयरं ति–तीर्थकरं घातिकर्माणि च पञ्चविधज्ञानावरणनवविधदर्शनावरणनोकषायवर्जमोहनीयपञ्चविधान्तरायरूपाणि सर्वसंख्यैकोनचत्वारिंशत्प्रकृतयोऽनुभागोदीरणामधिकृत्य तिर्यङ्मनुष्याणां परिणामप्रत्ययाः। एतदुक्तं भवति–आसां प्रकृतीनामनुभागोदीरणा तिर्यङ्मनुष्याणां परिणामप्रत्यया भवति। परिणामो ह्यन्यथाभावनयनं। तत्र तिर्यञ्चो मनुष्या वा गुणप्रत्य-

×(य०उ०२३) पञ्चसङ्ग्रहे त्वेतेषां जघन्यानुभागस्पर्धकादारभ्यानन्ता भागा उदीरणायोग्या गुणपरिणामकृता उक्ताः। तथा च तद्गाथा––"सुभगाइउच्चगोयं गुणपरिणामा उ देसमाईणं। अट्ठहीणफड्डगाओ णंतंसो णोकसायाणं॥१॥"

षायनो, पुव्वाणु० असंखभागो=पूर्वानुपूर्वीए असंख्यातमो भाग, देस०विरयाणं=देशविरति अने संयतने अनु०दीरणामां परिणाम प्रत्ययिक छे.५२ तित्थयरं=जिननाम, घाईणि य=अने ४७घातीनी अनु०दीरणा, परि०पच्चयाणि=परिणाम प्रत्ययिक, सेसाओ=बाकीनीनी, पुव्वुत्तावि य=वळी पूर्वोक्तनी पण अनु०दीरणा, पुव्वुत्तसेसाणं=पर्वोक्त जीवोथी शेष जीवोने, भवपच्चइया=भवप्रत्ययिक छे. ५३

येनान्यथाबद्धानामन्यथा परिणमय्यैतासामुदीरणां कुर्वन्तीति । 'सेसाउ त्ति' शेषाः प्रकृतयः सातासातवेदनीयायुश्चतुष्टयगतिचतुष्टयजातिपञ्चकौदारिकसप्तकसंहननषट्कप्रथमवर्जसंस्थानपञ्चककर्कशगुरुस्पर्शानुपूर्वीचतुष्टयोपघातातपोच्छ्वासाप्रशस्तविहायोगतित्रसस्थावरबादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तसाधारणदुर्भगदुःस्वरानादेययशःकीर्तिनिर्माणनीचैर्गोत्ररूपाः (५६) षट्पञ्चाशत्संख्या अनुभागोदीरणामधिकृत्य भवप्रत्यया वेदितव्याः । एतासामनुभागोदीरणा भवप्रत्ययतो भवतीत्यर्थः । 'पुव्वुत्तेत्यादि' पूर्वोक्ता अपि प्रकृतयः पूर्वोक्तशेषाणां प्रागुक्ततिर्यङ्मनुष्यव्यतिरिक्तानां भवप्रत्ययाऽनुभागोदीरणा वेदितव्या । तथाहि—देवनारकैर्व्रतरहितैश्च तिर्यङ्मनुष्यैर्नवानां नोकषायाणां पञ्चानुपूर्व्या उत्कृष्टानुभागस्पर्धकादारभ्येत्यर्थः, असंख्येया अनुभागा भवप्रत्ययादेवोदीर्यन्ते तथा वैक्रियसप्तकतैजससप्तकवर्णपञ्चकगन्धद्विकरसपञ्चकस्निग्धरूक्षशीतोष्णस्पर्शस्थिरास्थिरशुभाशुभागुरुलघुप्रकृतीनां देवा नैरयिकाश्च भवप्रत्ययादनुभागोदीरणां कुर्वन्ति । तथा समचतुरस्रसंस्थानस्य भवधारणीये शरीरे वर्तमाना भवप्रत्ययादनुभागोदीरणां देवाः कुर्वन्ति । मृदुलघुस्पर्शपराघातोद्योतप्रशस्तविहायोगतिसुस्वरप्रत्येकनाम्नामुत्तरवैक्रियशरीरिणं मुक्त्वा शेषाणां भवप्रत्ययादनुभागोदीरणा प्रवर्तते । सुभगादेययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राणामनुभागोदीरणा गुणहीनस्य भवप्रत्ययादवसेया । गुणवतां तु गुणप्रत्यया । तथा सर्वेषां घातिकर्मणामनुभागोदीरणा ×भवप्रत्ययादेव देवनारकाणां ॥ ५३ ॥

×(य०उ०२४) पञ्चसङ्ग्रहे त्वेवमुक्तम्—"जा जम्मि भवे णियमा उदीरए ताउ भवणिमित्ताओ । परिणामपच्चयाओ सेसाउसईससव्वत्थ ।१॥ " अस्या अर्थः—याः प्रकृतीर्यस्मिन् भवे नियमान्निश्चयेनोदारयन्ति ता भवनिमित्ता भवप्रत्ययोदीरणा इति भावः । तत्र नरकभवप्रत्यया नरकत्रिकस्योदीरणा, देवभवप्रत्यया देवत्रिकस्य, तिर्यग्भवप्रत्यया तिर्यक्त्रिकाद्यजातिचतुष्टयस्थावर-

तदेवं कृता प्रत्ययप्ररूपणा (४)। संप्रति साद्यनादिप्ररूपणा कर्तव्या। सा च द्विधा–मूलप्रकृतिविषया, उत्तरप्रकृतिविषया च। तत्र प्रथमतो मूलप्रकृतिविषयां तां कुर्वन्नाह—

घाईणं अजघन्ना, दोण्हमणुक्कोसियाओ तिविहाओ। वेयणिएणुक्कोसा, अजहन्ना मोहणीए उ ॥५४॥
साइअणाई धुव, अधुवा य तस्सेसिगा य दुविगप्पा। आउस्स साइ अधुवा, सव्वविगप्पा उ विन्नेया॥५५॥

सूक्ष्मसाधारणातपनाम्नां, मनुष्यभवप्रत्यया मनुष्यत्रिकस्य। शेषा एताभ्यो व्यतिरिक्ताः परिणामप्रत्ययोदीरणाः। ताश्च ध्रुवोदया एव, यतः सती विद्यमाना सोदीरणा सर्वेषु भवेषु, सा चैतासामुदीरणा निर्गुणपरिणामा द्रष्टव्येति। न चैतदपि विरुद्धं, विवक्षाभेदेनेत्थमप्युक्तेर्युक्तत्वादिति। किं च सर्वा अपि प्रकृतयो यथायोगं भव एवोदीर्यन्ते, तिर्यग्गतियोग्यास्तिर्यग्भवे, मनुष्यगतियोग्या मनुष्यभवे, नरकगतियोग्या नरकभवे, देवगतियोग्याश्च देवभवे इत्यतः सर्वा अपि भवप्रत्ययोदीरणा। यद्वा सर्वा अपि प्रकृतीस्तत्तत्परिणामवशेन प्रभूतरसाः सतीरल्परसाः कृत्वाऽल्परसाश्च सतीः प्रभूतरसाः कृत्वोदीरयन्ति सर्वेऽपि जीवा इति सर्वा अपि प्रकृतयः परिणामप्रत्ययोदीरणा वेदितव्याः। उक्तं च—"भवपच्चइया सव्वा तहेव परिणामपच्चइया" तस्मादत्र विचित्रोक्तौ विवक्षाभेद एव शरणमिति भावनीयम्।

गाथार्थ--घाईणं अजघन्ना=३घाती कर्मनी अजघन्य, दोण्हं=नाम गोत्रनी. अणुक्कोसयाय=अनुत्कृष्ट, तिविहा उ=३प्रकारे, वेय०क्कोसा=वेदनीयनी अनुत्कृष्ट, अज०मोहणीएउ=तथा मोहनीयनी अज० अनु०दीरणा, साइ०अधुवा=साद्यादि ४भांगे छे. तस्सेसिगा य=तेमना शेष विकल्पो, दुविगप्पा=२प्रकारे, आउस्स=आयुष्यना, सव्वविगप्पाउ=सर्वे विकल्पो, साइअधुवा=सादि अध्रुव, विन्नेया=जाणवा.५४-५५.

घाईणं त्ति–मोहनीयवर्जानां त्रयाणां घातिकर्मणामजघन्याऽनुभागोदीरणा त्रिधा त्रिप्रकारा । तद्यथा–अनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च। तथाहि—एषां क्षीणकषायस्य समयाधिकावलिकाशेषायां स्थितौ जघन्यानुभागोदीरणा । सा च सादिरध्रुवा च। शेषकालं त्वजघन्या। सा चानादिर्ध्रुवोदीरणत्वात्। ध्रुवाध्रुवे अभव्यभव्यापेक्षया । तथा द्वयोर्नामगोत्रयोरनुत्कृष्टानुभागोदीरणा त्रिधा। तद्यथा–अनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च । तथाहि–अनयोरुत्कृष्टानुभागोदीरणा सयोगिकेवलिनि । सा च सादिरध्रुवा च। शेषकालं त्वनुत्कृष्टा । सा चानादिः, ध्रुवोदीरणत्वात्। ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत्। तथा वेदनीयेऽनुत्कृष्टा मोहनीये चाजघन्यानुभागोदीरणा चतुःप्रकारा। तद्यथा–सादिरनादिरध्रुवा ध्रुवा च । तथाहि—उपशमश्रेण्यां सूक्ष्मसंपरायगुणस्थाने यद्बद्धं सातवेदनीयं तस्य सर्वार्थसिद्धिसंप्राप्तौ प्रथमसमये योदीरणा प्रवर्तते, सोत्कृष्टा । सा च सादिरध्रुवा च । ततोऽन्या सर्वाप्यनुत्कृष्टा । सा चाप्रमत्तगुणस्थानकादौ न भवति। ततः प्रतिपाते च भवति । ततोऽसौ सादिः । तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः । ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत् । तथा मोहनीयस्य जघन्यानुभागोदीरणा सूक्ष्मसंपरायस्य क्षपकस्य समयाधिकावलिकाशेषायां स्थितौ भवति । सा च सादिः । तदनन्तरसमये चाभावादध्रुवा। शेषकालं त्वजघन्या । सा चोपशान्तमोहगुणस्थानके न भवति । ततः प्रतिपाते च भवति । ततोऽसौ सादिः । तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः । ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत् । 'तस्सेसिगा येत्ति' तच्छेषा उक्तव्यतिरिक्ता विकल्पा द्विविकल्पा द्विप्रकारा ज्ञातव्याः । तद्यथा–सादयोऽध्रुवाश्च । तथाहि–चतुर्णां घातिकर्मणामुत्कृष्टाऽनुत्कृष्टा चानुभागोदीरणा मिथ्यादृष्टौ पर्यायेण प्राप्यते । ततो द्वे अपि साद्यध्रुवे । जघन्या च प्रागेव भाविता । तथा नामगोत्रवेदनीयानां जघन्याऽजघन्या चानुभागोदीरणा मिथ्यादृष्टौ पर्यायेण लभ्यते। ततो द्वे अपि साद्यध्रुवे। उत्कृष्टा च प्रागेव भाविता । आयुषां तु सर्वेऽपि विकल्पाः साद्यध्रुवाः । सा च साद्यध्रुवताऽध्रुवोदीरण-

त्वादवसेया ॥ ५४-५५ ॥

तदेवं कृता मूलप्रकृतिविषया साद्यनादिप्ररूपणा । संप्रत्युत्तरप्रकृतिविषयां तां चिकीर्षुराह—

मउलहुगाणुक्कोसा, चउव्विहा तिण्हमवि य अजहन्ना। णाइगधुवा य अधुवा, वीसाए होयणुक्कोसा॥५६॥
तेवीसाए अजहण्णा, विय एयासि सेसगविगप्पा। सव्वविगप्पा सेसाण, वावि अधुवा य साईय (या)॥५७॥

मउ त्ति-मृदुलघुस्पर्शयोरनुत्कृष्टाऽनुभागोदीरणा चतुर्विधा । तद्यथा—सादिरनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च । तथाहि—अनयोरुत्कृष्टानुभागोदीरणा आहारकशरीरस्थस्य संयतस्य भवति । सा च सादिरध्रुवा च । ततोऽन्या सर्वाप्यनुत्कृष्टा । सापि चाहारकशरीरमुपसंहरतः सादिः । तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः । ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत् । तथा त्रयाणां मिथ्यात्वगुरुकर्कशानामजघन्यानुभागोदीरणा चतुर्विधा । तद्यथा—सादिरनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च । तत्र सम्यक्त्वं संयमं च युगपत्प्रतिपत्तुकामस्य जन्तोर्मिथ्यात्वस्य जघन्यानुभागोदीरणा । सा च सादिरध्रुवा× च । ततोऽन्या सर्वाप्यजघन्या । सा च सम्यक्त्वात्प्रतिपततः सादिः । तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः । ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत् । कर्कशगुरुस्पर्शयोर्जघन्यानुभागोदीरणा केवलिसमुद्घातान्निवर्तमानस्य षष्ठसमये भवति । सा च

गाथार्थ-मउ०णुक्कोसा=मृदु लघुनी अनुत्कृष्ट, तिण्ह०अ जहन्ना=मिथ्यात्व,गुरु, कर्कशनी अजघन्य अनु०दीरणा,चउव्विहा=४प्रकारे, वीसाए=तैजसादि२०नी अनुत्कृष्ट, णाइग०अधुवा=अनादि,ध्रुव अने अध्रुव, होय=छे. तेवीसाए अजहन्नावि य=ज्ञानावरणीयादि२३नी अजघन्य पण ३भांगे, एयासि०विगप्पा=ए ४८ना शेष विकल्पो. सेसाण वावि=शेष प्रकृतिओना पण, सव्वविगप्पा=सर्व विकल्पो, अधुवाय साईया=सादि अने अध्रुव छे. ५६-५७

×(य०उ०२५) समयमात्रत्वात् ।

सादिरध्रुवा च, समयमात्रत्वात्। ततोऽन्या सर्वाप्यजघन्या। सापि केवलिसमुद्घातान्निवर्तमानस्य सप्तमसमये भवन्ती सादिः। ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत्। तथा तैजसषट्कमृदुलघुवर्जशुभवर्णाद्येकादशकागुरुलघुस्थिरशुभनिर्माणनाम्नां विंशतिप्रकृतीनामनुत्कृष्टानुभागोदीरणा त्रिधा। तद्यथा—अनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च। तथाहि—एतासामुत्कृष्टानुभागोदीरणा सयोगिकेवलिचरमसमये। ततोऽन्या सर्वाप्यनुत्कृष्टा। सा चानादिः, ध्रुवोदीरणत्वात्। ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत्। तथा पञ्चविधज्ञानावरणचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणकृष्णनीलदुरभिगन्धतिक्तकटुरूक्षशीतास्थिराशुभपञ्चविधान्तरायरूपाणां त्रयोविंशतिप्रकृतीनामजघन्यानुभागोदीरणा त्रिधा। तद्यथा—अनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च। तथाहि—एतासां स्वस्वोदीरणापर्यवसाने जघन्यानुभागोदीरणा। सा च सादिरध्रुवा च। ततोऽन्या सर्वाप्यजघन्या। सा चानादिः, ध्रुवोदीरणत्वात्। ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत्। 'एयासीत्यादि' एतासां पूर्वोक्तानां प्रकृतीनां शेषविकल्पा उक्तव्यतिरिक्ता विकल्पा मृदुलघुविंशतीनां जघन्याजघन्योत्कृष्टा मिथ्यात्वगुरुकर्कशत्रयोविंशतीनां चोत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याः सादयोऽध्रुवाश्च भवन्ति। तथाहि—मृदुलघुविंशतीनां जघन्याऽजघन्या चानुभागोदीरणा मिथ्यादृष्टौ पर्यायेण लभ्यते। ततो द्वे अपि साद्यध्रुवे। उत्कृष्टा च प्रागेव भाविता। तथा कर्कशगुरुमिथ्यात्वत्रयोविंशतीनामुत्कृष्टानुत्कृष्टा चानुभागोदीरणा मिथ्यादृष्टौ पर्यायेण लभ्यते, अशुभप्रकृतित्वात्। ततो द्वे अपि साद्यध्रुवे। जघन्या च प्रागेव भाविता। शेषाणामुक्तव्यतिरिक्तानां प्रकृतीनां दशोत्तरशतसंख्यानां सर्वे विकल्पा उत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याजघन्यरूपाः सादयोऽध्रुवाश्चावगन्तव्याः। सा च साद्यध्रुवताऽध्रुवोदीरणात्वादवसेया ॥ ५६-५७॥

कृता साद्यनादिप्ररूपणा (५) संप्रति स्वामित्वमभिधातव्यं। तच्च द्विधा—उत्कृष्टोदीरणाविषयं जघन्योदीरणाविषयं च।

तत्र प्रथमत उत्कृष्टोदीरणाविषयं स्वामित्वमाह

दाणाइ अचक्खूणं, जेट्ठा आयम्मि हीणलद्धिस्स। सुहुमस्स चक्खुणो पुण, तेइंदिय सव्वपज्जत्ते ॥५८॥

दाणाइ त्ति–सूक्ष्मस्य सूक्ष्मैकेन्द्रियस्य हीनलब्धिकस्य सर्वस्तोकदानाद्यचक्षुर्दर्शनविज्ञानलब्धियुक्तस्यादौ प्रथमसमये वर्तमानस्य पञ्चविधान्तरायाचक्षुर्दर्शनावरणरूपाणां षण्णां प्रकृतीनामुत्कृष्टानुभागोदीरणा भवति। तथा त्रीन्द्रियस्य सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तस्य पर्याप्तिचरमसमये ×चक्षुर्दर्शनावरणस्योत्कृष्टानुभागोदीरणा ॥ ५८ ॥

निद्दाइपंचगस्स य, मज्झिमपरिणामसंकिलिट्ठस्स। अपुमादि असायाणं, निरए जेट्ठा ठिइसमत्ते ॥५९॥

निद्दाइ त्ति–मध्यमपरिणामस्य तत्प्रायोग्यसंक्लेशयुक्तस्य सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तस्य निद्रापञ्चकस्योत्कृष्टानुभागोदीरणा। अत्यन्तविशुद्धस्यात्यन्तसंक्लिष्टस्य वा निद्रापञ्चकस्योदय एव न भवतीति कृत्वा मध्यमपरिणामग्रहणं। तथाऽपुमादीनां नपुंस-

×(य०उ०२६) दानान्तरायादिकृतलब्ध्यपकर्षस्य चक्षुर्दर्शनावरणकृतलब्धिप्रतिबन्धस्य च परमकाष्ठायाः प्रतिनियतसमय एव संभवात्तदुपादानं।

गाथार्थ—हीण०सुहुमस्स=सर्वाल्प लब्धिवाळो सूक्ष्म एकेन्द्रिय, आइम्मि=भवादिसमये, दाणाइ अचक्खूणं=दानांतरायादि ५ अने अचक्षुदर्श०नी, पुण=वळी, तेइं०पज्जते=सर्व पर्याप्तिए पर्याप्त त्रीन्द्रिय जीव, चक्खुस्स=चक्षुद०नी, जेट्ठा=उत्कृ०अनुभागोदीरणा करेछे.५८ मज्झिम०संकिलिट्ठस्स=मध्यम संक्लिष्ट परिणामी, निद्दा०य=५निद्रानी, नरए०सम्मत्तो=उत्कृष्ट स्थितिवाळो पर्याप्त नारक, अपुमादि असायाणं=नपुंसकवेदादि ५ अने अशातानी उ०अनु०दीरणा करेछे, ५९

कवेदादीनां नपुंसकवेदारतिशोकभयजुगुप्सानामसातस्य चोत्कृष्टानुभागोदीरणास्वामी नैरयिको ज्येष्ठस्थितिक उत्कृष्टस्थितिकः समाप्तः सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तः सर्वसंक्लिष्टो वेदितव्यः ॥ ५९

पंचिंदियतसबायर–पज्जत्तगसाइसुस्सरगईणं । वेउ०वुस्सासाणं, देवो जेट्ठट्ठिइसमत्ता ॥ ६० ॥

पंचिंदिय त्ति–देवो ज्येष्ठस्थितिक उत्कृष्टस्थितिकस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिकः समाप्तः सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तः सर्वविशुद्धः पञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरपर्याप्तसातवेदनीयसुस्वरदेवगतिवैक्रियसप्तकोच्छ्वासरूपाणां पञ्चदशप्रकृतीनामुत्कृष्टानुभागोदीरणास्वामी ॥ ६० ॥

सम्मत्तमीसगाणं, सेकाले गहिहिइत्ति मिच्छत्तं। हासरईणं सहस्सा–रगस्स पज्जत्तदेवस्स ॥ ६१ ॥

सम्मत्त त्ति–योऽनन्तरे समये मिथ्यात्वं गृहीष्यति, तस्य सर्वसंक्लिष्टस्य सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोर्यथासंभवमुदये सत्युत्कृष्टानुभागोदीरणा । तथा सहस्रारदेवस्य सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तस्य हास्यरत्योरुत्कृष्टानुभागोदीरणा ॥ ६१ ॥

गइहुंडुवघाया–णिट्ठखगइनीयाण दुहचउक्कस्स । निरउक्कस्ससमत्ते, असमत्ताए नरस्संते ॥ ६२ ॥

गाथार्थ—देवो०समत्तो=उत्कृष्ट स्थितिवाळो पर्याप्त देव, पंचिं०बायर=पंचेन्द्रिय,त्रस बादर,पज्ज०गईणं=पर्याप्त, शाता, सुस्वर, देवगति, वेउ०साणं=वै०७ अने उश्वासनी उ०अनु०दीरणाना स्वामी छे. ६० से काले०मिच्छत्तं=अनंतर समये मिथ्यात्वे जनार जीव, सम्म०मीसगाणं=यथायोगपणे समकित अने मिश्रनी, सहसा० देवस्स=पर्याप्त सहस्रारकल्पना देव, हासरईणं=हास्य अन रतिनी उ० अनुभागो० करेछे. ६१ निरउ०समत्ते=उत्कृष्ट स्थितियुक्त पर्याप्त नारक, गइ=नरकगति, हुंडु०खगइ=हुंडक, उपघात, अशुभखगति,

गइ त्ति–नैरयिक उत्कृष्टस्थितौ वर्तमानः सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तः सर्वोत्कृष्टसंक्लेशयुक्तो नरकगतिहुंडसंस्थानोपघाताप्रशस्तविहायोगतिनीचैर्गोत्राणां 'दुहचउक्कस्स त्ति' दुर्भगचतुष्कस्य दुर्भगदुःस्वरानादेयायशःकीर्तिरूपस्य सर्वसंख्यया नवानां प्रकृतीनामुत्कृष्टानुभागोदीरणास्वामी। तथाऽपर्याप्तकनाम्नो मनुष्योऽपर्याप्तश्चरमसमये वर्तमानः सर्वसंक्लिष्ट उत्कृष्टानुभागोदीरणास्वामी। संज्ञितिर्यक्रूपश्चेन्द्रियादपर्याप्तान्मनुष्योऽपर्याप्तोऽतिसंक्लिष्टतर इति मनुष्यग्रहणम् ॥ ६२ ॥

कक्खडगुरुसंघयणा–त्थीपुमसंठाणतिरियनामाणं। पंचिंदिओ तिरिक्खो, अट्ठमवासट्ठवासाओ ॥ ६३ ॥

कक्खड त्ति–कर्कशगुरुस्पर्शयोरादिवर्जानां च पञ्चानां संहननानां स्त्रीपुरुषवेदयोराद्यन्तवर्जानां चतुर्णां संस्थानानां तिर्यग्गतेश्च सर्वसंख्यया चतुर्दशप्रकृतीनां तिर्यक्संज्ञिपञ्चेन्द्रियोऽष्टवर्षायुरष्टमे वर्षे वर्तमानः सर्वसंक्लिष्ट उत्कृष्टानुभागोदीरणास्वामी ॥ ६३ ॥

मणुओरालियवज्ज–रिसहाण मणुओ तिपल्लपज्जत्तो। नियगठिई उक्कोसो, पज्जत्तो आउगाणं पि ॥६४॥

नीयाण० चउक्कस्स=नीचगोत्र अने दौर्भाग्य चतुष्कनी उ०अनु०दीरणानो स्वामी. नरस्संते=अन्त्य समये वर्ततो अपर्याप्त मनुष्य अमत्ताए=अपर्याप्तनामनो उ०अनु०नो स्वामी. ६२। अट्ठ०वासाओ=८वर्षना आयुष्यवाळो, ८मा वर्षमां वर्ततो, पंचिंदिओ तिरिक्खो =पंचेन्द्रिय तिर्यंच, कक्खड०संघयणा=कर्कश-गुरुस्पर्श ५अशुभ संघयण, थीपुम०नामाणं=स्त्री-पुंवेद, मध्य संस्थान ४ अने तिर्यंचगतिना उ०अनु०दीरक जाणवा. ६३ मणुओ०पज्जत्तो=३ पल्योपमना आयुष्यवाळो पर्याप्त मनुष्य, मणुओ०रिसहाण=मनुष्यगति, औदा०७ अने वज्रऋषभनाराच संघयणनी उ०अनु०नो स्वामी. निय०उक्कोसो=स्व-स्व आयुष्यनी उत्कृष्ट स्थितिमां वर्ततो, पज्जत्तो=पर्याप्त जीव, आउगाणंपि—स्व स्व आयुष्यनी उ०अनु०नो स्वामी. ६४

मणु त्ति–मनुष्यः पल्योपमत्रयायुःस्थितिकः सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तः सर्वविशुद्धो मनुष्यगत्यौदारिकसप्तकवज्रर्षभनाराचसंहननरूपाणां नवानां प्रकृतीनामुत्कृष्टानुभागोदीरणास्वामी । तथा सर्वोत्कृष्टस्वस्वस्थितौ वर्तमानः सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तस्त्रयाणामायुषां सर्वविशुद्धो नारकायुषस्तु सर्वसंक्लिष्ट उत्कृष्टानुभागोदीरको भवति ॥६४॥

हस्सट्ठिई पज्जत्ता, तन्नामा विगलजाइसुहुमाणं । थावरनिगोयएगिं–दियाणमवि बायरो नवरिं ॥६५॥

हस्सट्ठिइ त्ति–ह्रस्वस्थितिकाः पर्याप्तकास्तन्नामानो द्वीन्द्रियादिजातिसूक्ष्मकर्मानुसारिनामानो विकलेन्द्रियजातीनां सूक्ष्मनाम्नश्चोत्कृष्टानुभागोदीरणास्वामिनः । एतदुक्तं भवति–द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः सूक्ष्माश्च सर्वजघन्यस्थितौ वर्तमानाः सर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्ताः सर्वसंक्लिष्टा यथासंख्यं द्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिनाम्नां सूक्ष्मनाम्नश्चोत्कृष्टानुभागोदीरणास्वामिनः । ह्रस्वस्थितौ वर्तमानाः सर्वसंक्लिष्टा भवन्तीति कृत्वा तदुपादानं । तथा स्थावरसाधारणैकेन्द्रियजातिनाम्नां जघन्यस्थितौ वर्तमानो बादरैकेन्द्रियः सर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तः सर्वसंक्लिष्टः, स्थावरनाम्नः स्थावरः, साधारणनाम्नः साधारणः, एकेन्द्रियजातेर्द्वावपि उत्कृष्टानुभागोदीरणास्वामिनौ भवतः । बादरस्य महान् संक्लेशो भवतीति कृत्वा तदुपादानं ॥६५॥

आहारतणू पज्ज–त्तगो य चउरंसमउयलहुगाणं । पत्तेयखगइपरघा–याहारतणूण य विसुद्धो ॥६६॥

गाथार्थ—विगल०सुहुमाणं=विकलत्रिक अने सूक्ष्मनामकर्मनी, तन्नामा=ते ते प्रकृतिना उदयवाळा, हस्सट्ठिइपज्जत्ता=अल्प स्थितिवाळा पर्याप्त उ०अनु०ना स्वामी, नवरिं=विशेषमां, थावर०मवि=स्थावरनामनी, साधारण नामनी अने एकेन्द्रियजातिनी, बायरो=बादर एकेन्द्रिय उ०अनु०दीरणा करे छे. ६५ । विसुद्धो=विशुद्ध, आहार०पज्जत्तगो य=पर्याप्त आहारक शरीरी साधु,

आहारतणु त्ति–समचतुरस्रसंस्थानमृदुलघुस्पर्शप्रत्येकप्रशस्तविहायोगतिपराघाताहारकसप्तकरूपाणां (१३) त्रयोदशप्रकृतीनामाहारकशरीरी संयतः सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तः सर्वविशुद्ध उत्कृष्टानुभागोदीरणास्वामी ॥६६॥

उत्तरवेउव्विजई, उज्जोवस्सायवस्स खरपुढवी । नियगगईणं भणिया, तइए समए णुपुव्वीणं ॥६७॥

उत्तर त्ति–उत्तरवैक्रिये वर्तमानो यतिः सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तः सर्वविशुद्ध उद्योतनाम्न उत्कृष्टानुभागोदीरणास्वामी। तथा खरपृथ्वीकायिको बादरपृथ्वीकायिक उत्कृष्टायां स्थितौ वर्तमानः सर्वपर्याप्तिपर्याप्तः सर्वविशुद्ध आतपनाम्न उत्कृष्टानुभागोदीरणास्वामी। तथा मनुष्यदेवानुपूर्व्योर्विशुद्धा नरकतिर्यगानुपूर्व्योः संक्लिष्टा निजकगतीनां तृतीये समये वर्तमाना उत्कृष्टानुभागोदीरका भवन्ति ॥६७॥

जोगंते सेसाणं, सुभाणमियरासि चउसु वि गईसु । पज्जत्तुक्कडमिच्छ–स्सोहीणमणोहिलद्धिस्स ॥६८॥

चउरंस०लहुगाणं=समच०संस्थान, मृदु, लघु, पत्तेय०तणूण=प्रत्येक, सुखगइ, पराघात अने आहारक ७नी उ०अनु०दीरणा करे छे. ६६ । उत्तर०जई=उत्तरवैक्रिय शरीरी मुनि, उज्जोयस्स=उद्योतनी, आयवस्स=आतपनी, खरपुढवी=बादर पृथ्वीकाय, अणुपुव्वीणं=अनुपूर्वीना,निय०गईणं=स्व स्वगतिना,तइए समए=त्रीजा समयमां वर्तता उ०अनु०दीरक, भणिया=कह्या छे. ६७।सेसाणं=बाकीनी, सुभाणं=२५ शुभ प्रकृतिनी, जोगंते=सयोगीगुण०ना अंते उ०अनु० होय छे. पज्जत्तु०मिच्छस्स=पर्याप्त उत्कृष्ट संक्लेशी मिथ्यात्वी, इयरासि=इतर अशुभ ३१ प्रकृतिओनी, चउ०गईसु=चारे गतिमां उ०अनु० करे छे. अणोहिलद्धिस्स=अवधि लब्धिरहित जीवने, ओहिस्स=अवधिद्विकनी थाय छे. ६८

जोगंते त्ति–योगिनः सयोगिकेवलिनोऽन्ते सर्वापवर्तनरूपे वर्तमानस्य शेषाणामुक्तव्यतिरिक्तानां शुभप्रकृतीनां तैजससप्तकमृदुलघुवर्जशुभवर्णाद्येकादशकागुरुलघुस्थिरशुभसुभगादेययशःकीर्तिनिर्माणोच्चैर्गोत्रतीर्थकरनाम्नां (२५) पञ्चविंशतिसंख्यानामुत्कृष्टानुभागोदीरणा भवति। इतरासां चाशुभप्रकृतीनां मतिश्रुतमनःपर्यायज्ञानकेवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणमिथ्यात्वषोडशकषायकर्कशगुरुवर्जशेषकुवर्णादिसप्तकास्थिराशुभरूपाणामेकत्रिंशत्प्रकृतीनां (३१) चतसृष्वपि गतिषु मिथ्यादृष्टेः सर्वपर्याप्तिपर्याप्तस्योत्कृष्टे संक्लेशे वर्तमानस्योत्कृष्टानुभागोदीरणा भवति। तथाऽवधिज्ञानावरणावधिदर्शनावरणयोस्तस्यैव चतुर्गतिकस्य मिथ्यादृष्टेरनवधिलब्धिकस्यावधिलब्धिरहितस्योत्कृष्टानुभागोदीरणा भवति। अवधिलब्धियुक्तस्य हि प्रभूतोऽनुभागः क्षयं याति, तत उत्कृष्टो न लभ्यत इत्यनवधिलब्धिकस्येत्युक्तं ॥६८॥

तदेवमुक्तमुत्कृष्टानुभागोदीरणास्वामित्वं। संप्रति जघन्यानुभागोदीरणास्वामित्वं प्रतिपादयन्नाह—

सुयकेवलिणो मइसुय–अचक्खुचक्खूणुदीरणा मंदा। विपुलपरमोहिगाणं, मणणाणोहीदुगस्सावि ॥६९॥

सुयकेवलिणु त्ति–मतिश्रुतज्ञानावरणचक्षुरचक्षुर्दर्शनावरणानां श्रुतकेवलिनश्चतुर्दशपूर्वधरस्य क्षीणकषायस्य समयाधिकावलिकाशेषायां स्थितौ वर्तमानस्य मन्दा जघन्यानुभागोदीरणा वर्तते। तथा क्षीणकषायस्य विपुलमतिमनःपर्यायज्ञानस्य समयाधिकावलिकाशेषायां स्थितौ वर्तमानस्य मनःपर्यायज्ञानावरणस्य जघन्यानुभागोदीरणा। परमावधियुक्तस्य क्षीणकषायस्य सम-

---

गाथार्थ=मइ०चक्खूण=मति–श्रुतज्ञाना० चक्षु–अचक्षुदर्शना०नी, उदीरणा मंदा=जघ०अनु०, सुयकेवलिणो=श्रुतकेवलीने होय छे. विपुल०गाणं=विपुलमति अने परमावधिवंत, मणणा०दुगस्सावि=(अनुक्रमे)मनःपर्यवज्ञाना० अने अवधिद्विकनी ज०अनु० करे छे. ६९

याधिकावलिकाशेषायां स्थितौ वर्तमानस्यावधिज्ञानावरणावधिदर्शनावरणयोर्जघन्यानुभागोदीरणा ॥६९॥

खवणाए विग्घकेवल-संजलणाण य सनोकसायाणं । सयसयउदीरणंते, निद्दापयलाणमुवसंते ॥ ७० ॥

खवणाए त्ति-क्षपणायोत्थितस्य पञ्चविधान्तरायकेवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणसंज्वलनचतुष्टयनवनोकषायरूपाणां त्रिंशत्प्रकृतीनां स्वस्वोदीरणापर्यवसाने जघन्यानुभागोदीरणा । तत्र पञ्चविधान्तरायकेवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणानां क्षीणकषायस्य, चतुर्णां (त्रयाणां) तु संज्वलनानां त्रयाणां च वेदानां अनिवृत्तिबादरस्य स्वस्वोदीरणापर्यवसाने । षण्णां नोकषायाणामपूर्वकरणगुणस्थानकचरमसमये जघन्यानुभागोदीरणा । तथा निद्राप्रचलयोरुपशान्तमोहे जघन्यानुभागोदीरणा लभ्यते, तस्य सर्वविशुद्धत्वात् ॥७०॥

निद्दानिद्दाईणं, पमत्तविरए विसुज्झमाणम्मि । वेयगसम्मत्तस्स उ, सगखवणोदीरणाचरमे ॥ ७१ ॥

निद्दानिद्दाईणं त्ति-निद्रानिद्रादीनां निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानर्द्धीनां प्रमत्तसंयतस्य विशुद्ध्यमानस्य अप्रमत्तभावाभिमुखस्य जघन्यानुभागोदीरणा प्रवर्तते । तथा क्षायिकसम्यक्त्वमुत्पादयतो मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः क्षपितयोर्वेदकसम्य-

---

गाथार्थः—खवणाए-क्षपकने, विग्घ०संजलणाण य=५ अन्तराय, केवलद्विकावरण, ४ संज्वलन, सनोकसायाणं=अने ९नोकषायनी, सय०रणंते=स्व स्व उदीरणाना अंते, निद्दा०मुवसंते=निद्रा प्रचलानी उपशान्तमोह गुणस्थाने ज०अनु० प्रवर्ते छे. ७० निद्दानिद्दाईणं=निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला अने थिणद्धिनी, पमत्त०माणम्मि=अप्रमत्त सन्मुख विशुद्ध प्रमत्तसंयतने ज०अनु० थाय छे. सग०चरमे=पोताना क्षय वखते चरम उदीरणाए, वेयग०उ=समकित मोहनीयनी ज०अनु० थाय छे. ७१

क्त्वस्य क्षायोपशमिकस्य सम्यक्त्वस्य क्षपणकाले चरमोदीरणायां समयाधिकावलिकाशेषायां स्थितौ सत्यां प्रवर्तमानायां जघन्यानुभागोदीरणा भवति। सा च चतुर्गतिकानामन्यतरस्य वेदितव्या ॥ ७१ ॥

सेकाले सम्मत्तं, ससंजमं गिण्हओ य तेरसगं। सम्मत्तमेव मीसे, आऊण जहन्नगठिईसु ॥७२॥

से त्ति–अनन्तरे काले द्वितीये समये यः सम्यक्त्वं ससंयमं संयमसहितं ग्रहीष्यति तस्य त्रयोदशानां मिथ्यात्वानन्तानुबन्धिचतुष्टयाप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणरूपाणां प्रकृतीनां जघन्यानुभागोदीरणा। अयमिह संप्रदायः–योऽनन्तरसमये सम्यक्त्वं संयमसहितं ग्रहीष्यति, तस्य मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यात्वानन्तानुबन्धिनां जघन्यानुभागोदीरणा। तथा योऽविरतसम्यग्दृष्टिरनन्तरसमये संयमं प्रतिपत्स्यते तस्याप्रत्याख्यानकषायाणां जघन्यानुभागोदीरणा। यश्च देशविरतोऽनन्तरसमये संयमं ग्रहीष्यति, तस्य प्रत्याख्यानावरणकषायाणां जघन्यानुभागोदीरणा। मिथ्यादृष्ट्यपेक्षया हि अविरतसम्यग्दृष्टिरनन्तगुणविशुद्धस्ततोऽपि देशविरतोऽनन्तगुणविशुद्ध ×इत्युक्तक्रमेणैव जघन्यानुभागोदीरणासंभवः। तथा 'सम्मत्तमेव मीसे' इति यः सम्यग्मिथ्यादृष्टिरनन्तरसमये सम्यक्त्वं प्रतिपत्स्यते, तस्य सम्यग्मिथ्यात्वस्य जघन्यानुभागोदीरणा। सम्यङ्मिथ्यादृष्टिर्युगपत् सम्यक्त्वं संयमं च न

× (य०उ०२७) उक्तं च 'सम्मपडिवत्तिकाले पंचण्ह वि संजमस्स चउचउसु'।

गाथार्थः—से काले=अनंतर समये, सम्मत्तं०गिण्हओ य=संयमसहित सम्यक्त्व पामनार, तेरसग=मिथ्यात्वादिक १३नी, सम्मत्त०मीसे=अनंतर समये सम्यक्त्व पामनार मिश्रदृष्टि मिश्रमोहनीयनी, आऊण०ठिईसु=४ आयुष्यनी पोतपोतानी जघन्य स्थितिमां वर्ततो जीव ज०अनु० करे छे. ७२

प्रतिपद्यते, तथा विशुद्धेरभावात्, किंतु केवलं सम्यक्त्वमेवेति कृत्वा तदेव केवलमुक्तं । तथा चतुर्णामायुषामात्मीयात्मीयजघन्यस्थितौ वर्तमानो जघन्यमनुभागमुदीरयति । तत्र त्रयाणामायुषां संक्लेशादेव जघन्यस्थितिबन्धो भवतीति कृत्वा जघन्यानुभागोऽपि तत्रैव लभ्यते । तथा नरकायुषो विशुद्धिवशाज्जघन्यः स्थितिबन्धः, ततो जघन्यानुभागोऽपि नरकायुषस्तत्रैव लभ्यते । तथा च सति त्रयाणामायुषामतिसंक्लिष्टो जघन्यानुभागोदीरकः, नरकायुषस्त्वतिविशुद्ध इति ॥ ७२ ॥

पोग्गलविवागियाणं, भवाइसमये विसेसमवि चासिं। आइतणूणं दोण्हं, सुहुमो वाऊ य अप्पाऊ॥७३॥

पोग्गल त्ति–पुद्गलविपाकिन्यः प्रकृतयः, तासां सर्वासामपि भवादिसमये भवप्रथमसमये जघन्यानुभागोदीरणा । एतच्च सामान्येनोक्तं, ततोऽमुकस्यामुक उदीरक इत्येवंरूपं विशेषमपि चासां प्रकृतीनां वक्ष्यामि । प्रतिज्ञातमेव निर्वाहयति–'आह इत्यादि' आद्योर्द्वयोस्तन्वोः शरीरयोरौदारिकवैक्रियरूपयोर्यथासंख्यं सूक्ष्मो वायुकायिकश्चाल्पायुर्जघन्यानुभागोदीरकः । इह शरीरग्रहणेन बन्धनसंघाता अपि गृहीता द्रष्टव्याः । तत एतदुक्तं भवति–औदारिकशरीरौदारिकसंघातौदारिकबन्धनचतुष्टयरूपस्यौदारिकषट्कस्याप्यपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियो वायुकायिको वैक्रियषट्कस्य च पर्याप्तो बादरो वायुकायिकोऽल्पायुर्जघन्यानुभागोदीरको× भवति ॥ ७३ ॥

× (य०उ०२८) उक्तं च–'उरलस्स सुहुमापज्जो वाऊ बायरपज्जत्तवेउव्वे'।

गाथार्थः—पोग्गल०याणं=पुद्गलविपाकी प्रकृतिओनी, भवाइसमये=भवादि समये ज०अनु० होय छे- विसेस०चासिं=एमनी विशेषता पण कहे छे—आइ०दोण्हं=प्रथमनां बे शरीरनी, अप्पाउ=अल्पायु, सुहुमो वाऊ य=सूक्ष्म वाउकाय ज०अनु० करे छे. ७३

बेइंदिय अप्पाउग, निरय चिरठिई असण्णिणो वा वि। अंगोवंगाणाहार–गाए जइणो (अ) प्पकालम्मि।७४।

बेइंदिय त्ति–द्वयोरङ्गोपाङ्गयोरौदारिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियाङ्गोपाङ्गनाम्नोर्यथासंख्यमल्पायुर्द्वीन्द्रियस्तथाऽसंज्ञी सन् यो जातो नारकश्चिरस्थितिकः स च जघन्यानुभागोदीरको भवति । इयमत्र भावना–द्वीन्द्रियोऽल्पायुरौदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्न उदयप्रथमसमये जघन्यमनुभागमुदीरयति । तथाऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियः पूर्वोद्वलितवैक्रियो वैक्रियांगोपांगं स्तोककालं बद्ध्वा स्वभूमिकानुसारेण चिरस्थितिको नैरयिको जातस्तस्य वैक्रियांगोपांगनाम्न उदयप्रथमसमये वर्तमानस्य ×जघन्यानुभागोदीरणा । तथा आहारकस्य प्राकृतत्वादत्र स्त्रीत्वनिर्देशः । शरीरग्रहणेन च बन्धनसंघाता अपि गृह्यन्ते । तत आहारकसप्तकस्य यतेराहारकशरीरमुत्पादयतः संक्लिष्टस्याल्पे काले प्रथमसमय इत्यर्थः, जघन्यानुभागोदीरणा ।। ७४ ।।

अमणो चउरंसुसभाण, प्पाऊसगचिरट्ठिई सेसे। संघयणाण य मणुओ, हुंडुवघायाणमवि सुहुमो ।।७५।।

×(य०उ०२९) द्वीन्द्रियस्याल्पायुष्कत्वं नैरयिकस्य च चिरस्थितिकत्वं संक्लेशनिमित्तमिति संक्लेशव्यक्तये तथोपादानम् ।

गाथार्थः—अंगोवंगाण=औदारिक उपांगनी अनुक्रमे, बेइं०अप्पाउग=अल्पायुष्क द्वीन्द्रिय, निरय०वावि=वैक्रिय उपांगनी असंज्ञीमांथी स्वयोग्य दीर्घस्थितिए उपजेला नारकने ज०अनु० होय छे. आहारगाए=आहारकनी, जइ०कालम्मि=आहारक करता मुनिने प्रथम समये होय छे. ७४। अप्पाऊ=अल्पायु, अमणो=असंज्ञी, चउ० सुभाण=समचतुरस्र अने वज्रऋषभनाराचनी, सेसे=मध्य ४संस्थाननो, सग० ठिइ–स्वायुष्यनी उ०स्थितिमां वर्ततो असंज्ञी ज०अनु० करे छे. संघय०मणुओ=मध्य ४ संघयणनी मनुष्य, हुंडुव०सुहुमो=हुंडकसं० अने उपघातनी पण सूक्ष्म एके० ज०अनु० करे छे. ७५

अमणु त्ति–असंज्ञिपञ्चेन्द्रियोऽल्पायुरतिसंक्लिष्टः प्रथमसमयतद्भवस्थ आहारकः समचतुरस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहनन-योर्जघन्यमनुभागमुदीरयति । अल्पायुर्ग्रहणं संक्लेशार्थं । तथाऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रिय एवात्मीयायामायुरुत्कृष्टस्थितौ वर्तमान आहारको भवप्रथमसमये । शेषे इति, अत्र षष्ठ्यर्थे सप्तमी, जातौ चैकवचनं, ततोऽयमर्थः–शेषाणां हुंडवर्जानां चतुर्णां संस्थानानां जघन्यमनुभागमुदीरयति । तथा शेषाणां संहननानां सेवार्तवज्रर्षभनाराचवर्जानां पूर्वकोटयायुर्मनुष्य आहारकः स्वभवप्रथमसमये वर्तमानो जघन्यानुभागोदीरकः । इह दीर्घायुर्ग्रहणं विशुद्ध्यर्थं । तिर्यक्पञ्चेन्द्रियापेक्षया च प्रायो मनुष्या अल्पबला इति मनुष्योपादानं । तथा सूक्ष्मैकेन्द्रियः सुदीर्घायुःस्थितिक आहारकः प्रथमसमये हुंडोपघातनाम्नोर्जघन्यानुभागोदीरकः ॥ ७५ ॥

सेवट्टस्स बिइंदिय, बारसवासस्स मउयलहुगाणं । सन्नि विसुद्धाणाहार–गस्स वीसा अइकिलिट्ठे ॥७६॥

सेवट्टस्स त्ति–द्वीन्द्रियस्य द्वादशवर्षायुषो द्वादशे वर्षे वर्तमानस्य सेवार्तसंहननसत्का जघन्यानुभागोदीरणा भवति । तथा मृदुलघुस्पर्शयोः संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य स्वभूमिकानुसारेणातिविशुद्धस्यानाहारकस्य जघन्यानुभागोदीरणा । तथा तैजससप्तकमृदुलघुवर्जशुभवर्णाद्येकादशकागुरुलघुस्थिरशुभनिर्माणरूपाणां(२०)विंशतिप्रकृतीनां संक्लिष्टोऽपान्तरालगतौ वर्तमानोऽनाहारको मिथ्यादृष्टिर्जघन्यानुभागोदीरणास्वामी वेदितव्यः ॥ ७६ ॥

गाथार्थः—सेवट्टस्स=सेवार्तसं०नी, बेइंदिय० वासस्स=१२ वर्षना आयुष्यवाळा बेइंद्रियने, मउयलहुगाणं=मृदु–लघुस्पर्शनी, सन्नि०रगस्स=विशुद्ध अणाहारक संज्ञीने, वीसा=वैक्रियादि २० प्रकृतिनी, अइकिलिट्ठो=अति संक्लिष्ट संज्ञी ज०अनु० करे छे. ७६

पत्तेगमुरालसमं, इयरं हुंडेण तस्स परघाओ । अप्पाउस्स य आया-वुज्जोयाणमवि तज्जोगो ॥ ७७ ॥

पत्तेग त्ति–प्रत्येकनाम औदारिकेण समं वक्तव्यं, औदारिकस्येव प्रत्येकनाम्नोऽपि सूक्ष्मैकेन्द्रियः प्रथमसमये वर्तमानो जघन्यानुभागोदीरको वेदितव्य इत्यर्थः । तथा हुंडेन समानमितरत् साधारणनाम वक्तव्यं । यथा सूक्ष्मैकेन्द्रियस्याहारकस्य प्रथमसमये हुंडनाम्नो जघन्यानुभागोदीरणा प्रागभिहिता, तथा साधारणनाम्नोऽपि वक्तव्येत्यर्थः । तथा तस्य सूक्ष्मैकेन्द्रियस्य शीघ्रपर्याप्तस्याल्पायुषोऽतिसंक्लिष्टस्य पर्याप्तिचरमसमये वर्तमानस्य पराघातनाम्नो(ऽपि) जघन्यानुभागोदीरणा । तथा आतपोद्योतनाम्नोस्तद्योग्यः पृथ्वीकायिकः शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तः प्रथमसमये वर्तमानः संक्लिष्टो जघन्यानुभागोदीरकः ॥७७॥

जा नाउज्जियकरणं, तित्थगरस्स नवगस्स जोगंते । कक्खडगुरूणमंते, नियत्तमाणस्स केवलिणो ॥७८॥

ज त्ति–आयोजिकाकरणं नाम केवलिसमुद्घातादर्वागू भवति । तत्राङ् मर्यादायां । आ मर्यादया केवलिदृष्ट्या योजनं व्यापारणं आयोजनं । तच्चातिशुभयोगानामवसेयं । आयोजनमायोजिका तस्याः करणं आयोजिकाकरणं । केचिदावर्जितकरणमाहुः, तत्रायं शब्दार्थः–आवर्जितो नाम अभिमुखीकृतः । तथा च लोके वक्तारः–आवर्जितोऽयं मया, संमुखीकृत

गाथार्थः—पत्तेग०समं=प्रत्येकनो औदारिक समान, इयरं–साधारणनी, हुंडेण=हुंडक समान, परघाओ=पराघातनी, अप्पाउस्स=अल्पायुष्क, तस्स=ते सूक्ष्म एकेन्द्रियने छे. आया०मवि=आतप अने उद्योतनी पण, तज्जोगो=तद्योग्य एकेन्द्रियने ज० अनु० होय छे. ७७ । जा ना०करणं=ज्यांसुधी आयोजिका करण नथी कर्युं त्यांसुधी, तित्थगरस्स=जिननामनी, नवगस्स=नीलादि ९नी, जोगंते=सयोगीने अंते; कक्खडगुरुणं=कर्कश–गुरुस्पर्शनी, अंते नियत्तमाणस्स=समुद्घातथी पाछा फरतां अंतमां, केवलिणो=

इत्यर्थः । ततश्च तथा भव्यत्वेनावर्जितस्य मोक्षगमनं प्रत्यभिमुखीकृतस्य ×करणं शुभयोगव्यापारणं आवर्जितकरणं । अपरे 'जा नाउस्सयकरणं' इति पठन्ति । तत्रायं शब्दसंस्कारः—आवश्यककरणमिति । अन्वर्थश्चायं आवश्यकेनावश्यंभावेन करणमावश्यककरणं । तथाहि—समुद्घातं केचित्कुर्वन्ति, केचिच्च न कुर्वन्ति, इदं त्वावश्यककरणं, सर्वेऽपि केवलिनः कुर्वन्तीति । तच्चायोजिकाकरणमसंख्येयसमयात्मकमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं । यत उक्तं प्रज्ञापनायां—"कइसमएणं भंते आउंजियाकरणे पन्नत्ते ? गोयमा ! असंखिज्जसमईए अंतोमुहुत्तिए पन्नते" इति । तद्यावन्नाद्याप्यारभ्यते तावत्तीर्थकरकेवलिनस्तीर्थकरनाम्नो जघन्यानुभागोदीरणा । आयोजिकाकरणे हि प्रभूतानुभागोदीरणा प्रवर्तत इत्यर्वाग्ग्रहणं । तथा नीलकृष्णदुरभिगन्धतिक्तकटुशीतरूक्षास्थिराशुभरूपस्य प्रकृतिनवकस्य सयोगिकेवलिचरमसमये जघन्यानुभागोदीरणा, तस्यैव सर्वविशुद्धत्वात् । कर्कशगुरुस्पर्शयोस्तु केवलिसमुद्घातान्निवर्तमानस्य केवलिनो मथः संहारसमये जघन्यानुभागोदीरणा ॥७८॥

सेसाण पगइवेई मज्झिमपरिणामपरिणओ होज्जा। पच्चयसुभासुभा वि य चिंतिय नेओ विवागे य ॥७९॥

सेसाण त्ति—शेषाणां सातासातवेदनीयगतिचतुष्टयजातिपञ्चकानुपूर्वीचतुष्टयोच्छ्वासविहायोगतिद्विकत्रसस्थावरबादरसूक्ष्मप-

×(य०उ०३०) उदीरणावलिकायां कर्मप्रक्षेपणरूपं ।

केवलिने ज०अनु० होय छे. ७८। सेसाण=बाकीनी ३४ प्रकृतिओनी, पगइवेई=ते ते प्रकृतिना वेदक, मज्झिम०परिणओ=मध्यम परिणामे परिणतने होज्जा=ज०अनु०होय छे. पच्चय०विय=प्रत्यय, शुभाशुभपणुं, विवागे य=अने विपाकने, चिंतिय=चिंतवीने, नेओ=ज०उ०अनुदीरणाना स्वामी जाणवा. ७९

र्याप्तापर्याप्तसुभगदुर्भगसुस्वरदुःस्वरादेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राख्यानां चतुस्त्रिंशत्संख्यानां प्रकृतीनां तत्तत्प्रकृत्युदये वर्तमानाः सर्वेऽपि जीवा मध्यमपरिणामपरिणता जघन्यानुभागोदीरणास्वामिनो भवन्ति । संप्रति सर्वासां प्रकृतीनां सामान्येन जघन्योत्कृष्टानुभागोदीरणास्वामित्वपरिज्ञानार्थमुपायोपदेशमाह—'पच्चयेत्यादि' प्रत्ययः परिणामप्रत्ययो भवप्रत्ययश्च तथा प्रकृतीनां शुभत्वमशुभत्वं च विपाकश्चतुर्विधः पुद्गलविपाकादिः, एतान् सम्यक् चिन्तयित्वा परिभाव्य जघन्योत्कृष्टानुभागोदीरणास्वामी यथावज्ज्ञेयोऽवगन्तव्यः । तथाहि—परिणामप्रत्ययानुभागोदीरणा, प्राय उत्कृष्टा भवति । भवप्रत्यया तु जघन्या । शुभानां च संक्लेशे प्रायो जघन्यानुभागोदीरणा अशुभानां च विशुद्धौ, ×विपर्यासे तूत्कृष्टा इत्यादि परिभाव्य तत्तत्प्रकृत्युदयवत जघन्योत्कृष्टानुभागोदीरणास्वामित्वमवगन्तव्यमिति (६) ॥ ७९ ॥

तदेवमुक्ताऽनुभागोदीरणा । संप्रति प्रदेशोदीरणाभिधानावसरः । तत्र च द्वावर्थाधिकारौ । तद्यथा—साद्यनादिप्ररूपणा १ स्वामित्वप्ररूपणा २ च । साद्यनादिप्ररूपणापि च द्विधा—मूलप्रकृतिविषया उत्तरप्रकृतिविषया च । तत्र मूलप्रकृतिविषयां साद्यनादिप्ररूपणां चिकीर्षुराह—

पंचण्हमणुक्कोसा, तिहा पएसे चउव्विहा दोण्हं । सेसविगप्पा दुविहा, सव्वविगप्पा य आउस्स ॥८०॥

×(य०उ०३१) पुद्गलादिविपाकानां पुद्गलादिप्रत्ययोत्कर्षे उत्कृष्टाऽऽद्यसमये तु जघन्या ।

गाथार्थः—पएसे=प्रदेशोदीरणाने विषे, पंचण्ह=५ कर्मनी, अणुक्कोसा=अनुत्कृष्ट, तिहा=३प्रकारे, दोण्हं=२नी, चउव्विग्हा=४ प्रकारे, सेसविगप्पा=ए ७ कर्मना बाकीना विकल्पो, सव्व०आउस्स=तथा आयुष्यना ४ विकल्पो, दुविहा=२ प्रकारे छे ८०

पंचण्हं ति–ज्ञानावरणदर्शनावरणनामगोत्रान्तरायरूपाणां पञ्चानां मूलप्रकृतीनामनुत्कृष्टा प्रदेशे प्रदेशविषया उदीरणा त्रिधा त्रिप्रकारा तद्यथा–अनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च । तथाहि—एतासामुत्कृष्टा प्रदेशोदीरणा गुणितकर्मांशे स्वस्वोदीरणापर्यवसाने लभ्यते । सा च सादिरध्रुवा च । ततोऽन्या सर्वाऽप्यनुत्कृष्टा। सा चानादिः, ध्रुवोदीरणत्वात् । ध्रुवाध्रुवे अभव्यभव्यापेक्षया । तथा द्वयोर्वेदनीयमोहनीययोरनुत्कृष्टा प्रदेशोदीरणा चतुर्विधा । तद्यथा—सादिरनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च । तथाहि—वेदनीयस्योत्कृष्टा प्रदेशोदीरणा प्रमत्तसंयतस्याप्रमत्तभावाभिमुखस्य सर्वविशुद्धस्य, मोहनीयस्य पुनः स्वोदीरणापर्यवसाने सूक्ष्मसंपरायस्य । ततो द्वयोरप्येषा साद्यध्रुवा । ततोऽन्या सर्वाप्यनुत्कृष्टा । सापि चाप्रमत्तगुणस्थानकात्प्रतिपततो वेदनीयस्योपशान्तमोहगुणस्थानकाच्च प्रतिपततो मोहनीयस्य सादिः । तत्स्थानमप्राप्तस्य द्वयोरप्यनादिः ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत् । 'सेसविगप्पा दुविहि त्ति' एतासां सप्तानामपि मूलप्रकृतीनां शेषा उक्तव्यतिरिक्ता विकल्पा जघन्याजघन्योत्कृष्टा द्विविधा द्विप्रकाराः । तद्यथा–सादयोऽध्रुवाश्च । तथाहि—एतासां सप्तानामतिसंक्लिष्टे (ष्टंपरिणामे) मिथ्यादृष्टौ जघन्या प्रदेशोदीरणा । सा च सादिरध्रुवा च । संक्लेशपरिणामाच्च च्युतस्य मिथ्यादृष्टेरप्यजघन्या । ततः सापि सादिरध्रुवा च । उत्कृष्टा च प्रागेव भाविता । आयुषः सर्वेऽपि विकल्पा जघन्याजघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टा द्विविधाः, तद्यथा–सादयोऽध्रुवाश्च । सा च साद्यध्रुवताऽध्रुवोदीरणत्वादवसेया ॥८०॥

संप्रत्युत्तरप्रकृतीनां साद्यनादिप्ररूपणार्थमाह—

मिच्छत्तस्स चउद्धा, सगयालाए तिहा अणुक्कोसा। सेसविगप्पा दुविहा सव्वविगप्पा य सेसाणं ॥८१॥

गाथार्थः—मिच्छत्तस्स=मिथ्यात्वना अणुक्कोसा=अनुत्कृष्ट, चउद्धा=४प्रकारे, सगयालाए=४७ प्रकृतीओनी अनुत्कृष्ट, तिहा=३ प्रकारे, सेसविगप्पा=एमना शेष विकल्पो, सव्व०सेसाणं=शेष प्रकृतिओना सर्व विकल्पो, दुविहा=बे प्रकारे छे. ८१

मिच्छत्तस्स त्ति–मिथ्यात्वस्यानुत्कृष्टा प्रदेशोदीरणा चतुर्विधा। तद्यथा–सादिरनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च। तथाहि—योऽनन्तरसमये सम्यक्त्वं संयमसहितं प्रतिपत्स्यते तस्य मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यात्वस्योत्कृष्टा प्रदेशोदीरणा। सा च सादिरध्रुवा च, समयमात्रत्वात्। ततोऽन्या सर्वाऽप्यनुत्कृष्टा। सापि च सम्यक्त्वात्प्रतिपततो भवन्ती सादिः। तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः। ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत्। तथा सप्तचत्वारिंशतः प्रकृतीनामनुत्कृष्टा प्रदेशोदीरणा त्रिधा। तद्यथा—अनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च। तथाहि—पञ्चविधज्ञानावरणपञ्चविधान्तरायचतुर्विधदर्शनावरणरूपाणां चतुर्दशप्रकृतीनां क्षीणकषायस्य गुणितकर्मांशस्य स्वस्वोदीरणापर्यवसाने उत्कृष्टा प्रदेशोदीरणा। सा च सादिरध्रुवा च। ततोऽन्या सर्वाऽप्यनुत्कृष्टा, सा चानादिः ध्रुवोदीरणत्वात्। ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत्। तथा तैजससप्तकवर्णादिविंशतिस्थिरास्थिरशुभाशुभागुरुलघुनिर्माणनाम्नां त्रयस्त्रिंशत्संख्याकानां प्रकृतीनां गुणितकर्मांशस्य सयोगिकेवलिनश्च चरमसमये उत्कृष्टा प्रदेशोदीरणा। सा च सादिरध्रुवा च। ततोऽन्या सर्वाऽप्यनुत्कृष्टा। सा चानादिः, ध्रुवोदीरणत्वात्। आसां ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत्। 'सेसविगप्पा दुविह त्ति' उक्तशेषा विकल्पा जघन्याजघन्योत्कृष्टरूपा द्विविधाः। तद्यथा—सादयोऽध्रुवाश्च। तथाहि—सर्वासामप्युक्तप्रकृतीनामतिसंक्लिष्टपरिणामे मिथ्यादृष्टौ जघन्या प्रदेशोदीरणा लभ्यते। अतिसंक्लिष्टपरिणामप्रच्यवने चाजघन्या। ततो द्वे अपि साद्यध्रुवे। उत्कृष्टा च प्रागेव भाविता। शेषाणां चोक्तव्यतिरिक्तानां प्रकृतीनां दशोत्तरशतसंख्यानां सर्वेऽपि विकल्पा जघन्याजघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टा द्विविधाः। तद्यथा–सादयोऽध्रुवाश्च। साद्यध्रुवता चाध्रुवोदीरणत्वादवसेया ॥ ८१ ॥

कृता साद्यनादिप्ररूपणा (१)। संप्रति स्वामित्वमभिधातव्यं। तच्च द्विधा–उत्कृष्टप्रदेशोदीरणास्वामित्वं जघन्यप्रदेशोदीरणास्वामित्वं च। तत्र प्रथमत उत्कृष्टोदीरणा स्वामित्वमाह—

अणुभागुदीरणाए, जहण्णसामी पएसजेट्ठाए। घाईणं अन्नयरो, ओहीण विणोहिलंभेण ॥ ८२ ॥

अणुभाग ति–घातिकर्मणां सर्वेषामपि अनुभागोदीरणायां यो यो जघन्यानुभागोदीरणास्वामी प्राक् प्रतिपादितः स स एवोत्कृष्टप्रदेशोदीरणास्वामी गुणितकर्मांशो वेदितव्यः। नवरमन्यतर इति श्रुतकेवली इतरो वा। अवधिज्ञानावरणावधिदर्शनावरणयोरवधिलब्धिहीन उत्कृष्टप्रदेशोदीरकोऽवसेयः। अतीवेदमतिसंक्षिप्तमुक्तमिति विशेषतो विभाव्यते–अवधिज्ञानावरणवर्जानां चतुर्णां ज्ञानावरणानां चक्षुरचक्षुःकेवलदर्शनावरणानां क्षीणकषायस्य श्रुतकेवलिन इतरस्य वा गुणितकर्मांशस्य समयाधिकावलिकाशेषायां स्थितावुत्कृष्टा प्रदेशोदीरणा। अवधिज्ञानावरणावधिदर्शनावरणयोः पुनरवधिलब्धिरहितस्य क्षीणकषायस्य समयाधिकावलिकाशेषायां स्थितावुत्कृष्टा प्रदेशोदीरणा। निद्राप्रचलयोरुपशान्तकषायस्य, प्रमत्तसंयतेऽप्रमत्तभावाभिमुखे स्त्यानर्द्धित्रिकस्य, मिथ्यात्वानन्तानुबन्धिकषायाणामनन्तरसमये सम्यक्त्वं संयमसहितं प्रतिपत्तुकामस्य मिथ्यादृष्टेश्चरमसमये, सम्यग्मिथ्यात्वस्य सम्यक्त्वप्रतिपत्त्युपान्त्यसमये, अप्रत्याख्यानावरणकषायाणामविरतसम्यग्दृष्टेरनन्तरसमये देशविरतिं [1]'सर्वविरतिं इति' उपा० प्रतिपत्तुकामस्य, प्रत्याख्यानावरणकषायाणां देशविरतस्यानन्तरसमये संयमं प्रतिपत्तुकामस्य, संज्वलनक्रोधमानमायानां तत्तद्वेदकस्य स्वस्वोदयपर्यवसाने, वेदत्रयसंज्वलनलोभानां तत्तद्वेदकस्य समयाधिकावलिकाचरमसमये, क्षपकस्य हास्यादिषट्कस्यापूर्वकरणगुणस्थान कचरमसमये, सर्वत्र गुणितकर्मांशस्योत्कृष्टा प्रदेशोदीरणा वेदितव्या ॥ ८२ ॥

गाथार्थ—अणु०सामी=अनुभागोदीरणामां जघन्याणु०दीरणाना स्वामी ते, पएसजेट्ठाए=उत्कृष्ट प्रदेशोदीरणामां जाणवा. घाईणं अन्नयरो=घातीनो श्रुतकेवली वा अन्यतर, तथा, ओहीण०लंभेण=अवधिद्विकावरणना अवधिलब्धिरहित उ०प्र०उदीरणाना स्वामी छे.८२

वेयणियाणं गहिहिई, से काले अप्पामायमिय विरओ। संघयणपणगतणुदुगउज्जोया अप्पमत्तस्स ॥८३॥

वेयणियाणं ति–यः प्रमत्तो द्वितीये समयेऽप्रमादं ग्रहीष्यति अप्रमत्तो भविष्यति स प्रमत्तो विरतो वेदनीययोः सातासातरूपयोरुत्कृष्टप्रदेशोदीरको भवति, तस्य सर्वविशुद्धत्वात्। तथाऽप्रमत्तस्य प्रथमवर्जसंहननपञ्चकवैक्रियसप्तकाहारकसप्तकोद्योतनाम्नामुत्कृष्टा प्रदेशोदीरणा ॥ ८३ ॥

देवनिरयाउगाणं, जहन्नजेट्ठट्ठिई गुरुअसाए। इयराऊण वि अट्ठम–वासे णेयो अट्ठवासाऊ ॥८४॥

देव त्ति–देवनारकायुषोर्यथाक्रमं देवनारकौ जघन्योत्कृष्टस्थितिकौ गुरुदुःखोदये वर्तमानौ उत्कृष्टप्रदेशोदीरकौ वेदितव्यौ। एतदुक्तं भवति—देवो दशवर्षसहस्रायुःस्थितिको गुरुदुःखोदये वर्तमानो देवायुष उत्कृष्टप्रदेशोदीरकः। तथा नैरयिकस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुःस्थितिको गुरुदुःखोदये वर्तमानो नरकायुष उत्कृष्टप्रदेशोदीरकः। प्रभूतं हि दुःखमनुभवन् प्रभूतान् पुद्गलान्

गाथार्थ—सेकाले=अनन्तर समये, अप्पमायं=अप्रमत्तपणाने, गहिहिई=ग्रहण करशे, इय विरओ=एवो प्रमत्तसंयत, वेयणियाणं=वेदनीयद्विकनी, अपमत्तस्स=तथा अप्रमत्त संघयणं०उज्जोया=अशुभ ५ संघ०, वैक्रिय७, आहारक, तथा उद्योत७ उ०प्र०उदी० करे छे. ८३। जहन्न=जघन्य स्थितिवाळा, गुरुअसाए=उत्कृष्ट दुःखोदयमां वर्तता देवने, देवाउगाणं=देवायुनी, तथा, जेट्ठ०असाए=ज्येष्ठ स्थिति अने उत्कृष्ट अशातामां वर्तता नारकने, निरयाउगाणं=नरकायुनी, इयरा०वि=मनुष्य तिर्यंचायुनी पण, अट्ठवासाऊ=८ वर्षना आयुष्यवाळाने, अट्ठम०णेयो=आठमा वर्षमां उ०प्र०उदी० जाणवी. ८४

परिसाटयतीति तदुपादानं। इतरायुषोस्तिर्यग्मनुष्यायुषोर्यथासंख्यं तिर्यङ्मनुष्यौ अष्टवर्षायुषौ अष्टमे वर्षे वर्तमानौ गुरुदुःखोदययुक्तौ उत्कृष्टप्रदेशोदीरकौ भवतः ॥ ८४ ॥

एगंततिरियजोग्गा, नियगविसिट्ठेसु तह अपज्जत्ता। संमुच्छिममणुयंते, तिरियगई देसविरयस्स ॥८५॥

एगंत त्ति–एकान्तेन तिरश्चामेवोदयं प्रति या योग्याः प्रकृतयस्तासामेकेन्द्रियजातिद्वीन्द्रियजातित्रीन्द्रियजातिचतुरिन्द्रियजात्यातपस्थावरसूक्ष्मसाधारणनाम्नामष्टानां निजकविशिष्टेषु निजनिजप्रकृतिविशिष्टेषु। यथा एकेन्द्रियजातिस्थावरनाम्नोर्बादरपृथ्वीकायिके सर्वविशुद्धे, आतपनाम्नः खरबादरपृथ्वीकायिके, सूक्ष्मस्य पर्याप्तसूक्ष्मे, साधारणविकलेन्द्रियजातिनाम्नां तन्नामसु पर्याप्तेषु सर्वविशुद्धेषु उत्कृष्टा प्रदेशोदीरणा भवति तथाऽपर्याप्तनाम्नः संमूर्च्छिमो मनुष्योऽपर्याप्तश्चरमसमये वर्तमान उत्कृष्टप्रदेशोदीरकः। तथा तिर्यग्गतेरुत्कृष्टा प्रदेशोदीरणा देशविरतस्य, तस्य सर्वविशुद्धत्वात् ॥ ८५ ॥

अणुपुव्विगइदुगाणं, सम्मद्दिट्ठी उ दूभगाईणं। नीयस्स य से काले, गहिहिई विरय त्ति सो चेव॥८६॥

अणुपुव्वि त्ति–चतसृणामानुपूर्वीणां तस्यां तस्यां गतौ वर्तमानस्तृतीये समये सर्वविशुद्धः सम्यग्दृष्टिरुत्कृष्टप्रदेशोदीरकः।

गाथार्थ—एगंत०जोग्गा=एकांत तिर्यंचयोग्य प्रकृतिओनी, नियगविसिट्ठेसु=प्रकृतिविशिष्ट जीवोने, तह=तथा, अपज्जत्तो=अपर्याप्तनी, संमु०यंते=संमूर्च्छिम मनुष्यने अन्त्यसमये, देशविरयस्स=देशविरतने, तिरियगई=तिर्यंचगतिनी, उ०प्र०उदी० होय छे. ८५ अणुपुव्वि०दुगाणं=४अनुपूर्वी अने ४गतिनी उ०प्र०उदी, सम्मद्दिट्ठि उ=समकितीने होयछे. दूभगाईणं=दौर्भाग्यादि४, नीयस्स य=अने नीच गोत्रनी, से काले=अनन्तर समये, गहिहिइ विरयत्ति=विरति ग्रहण करशे, सो चेव=तेवा अविरतिसमकितिने उ०प्र० उदी० थायछे.८६

केवलं नरकतिर्यगानुपूर्व्योः क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्वक्तव्यः । देवनारकगत्योरपि स एव क्षायिकसम्यग्दृष्टिरुत्कृष्टप्रदेशोदीरकः× । तथा योऽनन्तरसमये संयमं प्रतिपत्स्यते स एवाविरतसम्यग्दृष्टिर्दुर्भगादीनां दुर्भगदुःस्वरानादेययशःकीर्तीनां नीचैर्गोत्रस्य चोत्कृष्टप्रदेशोदीरकः ॥ ८६ ॥

जोगंतुदीरगाणं, जोगंते सरदुगाणुपाणूणं । नियगंते केवलिणो, सव्वविसुद्धीए सव्वासिं ॥८७॥

जोगंतुदीरगाणं ति–योग्यन्तोदीरकाणां योगी सयोगिकेवली अन्ते चरमसमये उदीरको यासां ता योग्यन्तोदीरकास्तासां मनुजगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकसप्तकतैजससप्तकसंस्थानषट्कप्रथमसंहननवर्णादिविंशत्यगुरुलघूपघातपराघातविहायोगतिद्विकत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरशुभाशुभसुभगादेययशःकीर्तिनिर्माणतीर्थकरोच्चैर्गोत्राणां (६२) द्विषष्टिसंख्यानां प्रकृतीनां सयोगिकेवली चरमसमये उत्कृष्टप्रदेशोदीरकः । तथा केवलिनः स्वरद्विकप्राणापानयोर्निजकान्ते स्वस्वनिरोधकाले उत्कृष्टा प्रदेशोदीरणा । तथाहि—स्वरनिरोधकाले सुस्वरदुःस्वरयोः, प्राणापाननिरोधकाले च प्राणापाननाम्न उत्कृष्टा प्रदेशोदीरणा । इह सर्वकर्मणामुत्कृष्टप्रदेशोदीरणायामेषा परिभाषा—यो यः स्वस्वोदीरणाधिकारी स स तस्य कर्मणः सर्वविशुद्ध उत्कृष्टप्रदेशोदीरणास्वामी वेदितव्यः । आयुर्व्यतिरेकेण चान्यत्र सर्वत्रापि गुणितकर्मांशः, तेन दानान्तरायादीनामपि पञ्चानां प्रकृतीनामुत्कृष्टा प्रदे-

× (य० उ०३२) पञ्चसंग्रहे तु-'अणुपुव्विगईए खाइओ सम्मो त्ति' अविशेषेणैवोक्तं अविशेषेणैव च व्याख्यातं ।

गाथार्थ—जोगंतु०जोगंते=सयोगिने अन्त्य समये उदीरणा योग्य प्रकृतिओनी सयोगिने अन्ते. सुरदुगा०नियगंते=स्वरद्विक अने श्वासोश्वासनी स्व स्व निरोधने अंते उ०प्र०उदी० होयछे. सव्ववि०सव्वासिं=सर्व प्रकृतिओनीउ०प्र०उदी०सर्वविशुद्ध जीवने थाय छे.८७

शोदीरणा गुणितकर्मांशस्य क्षीणकषायस्य समयाधिकावलिकाशेषे वर्तमानस्यावगन्तव्या ॥ ८७ ॥

तदेवमुक्तमुत्कृष्टप्रदेशोदीरणास्वामित्वं । संप्रति जघन्यप्रदेशोदीरणास्वामित्वमाह—

तप्पगओदीरग–तिसंकिलिट्ठभावो अ सव्वपगईणं। नेयो जहण्णसामी, अणुभागुत्तो य तित्थयरे ॥८८॥

तप्पगउत्ति–यस्तासां तासां प्रकृतीनामुदीरकः सोऽतिसंक्लिष्टभावोऽतिसंक्लिष्टपरिणामः क्षपितकर्मांशः सर्वप्रकृतीनां स्वस्वयोग्यानां जघन्यप्रदेशोदीरणास्वामी वेदितव्यः । तत्रावधिज्ञानावरणवर्जानां चतुर्णां ज्ञानावरणीयानां, अवधिदर्शनावरणवर्जानां त्रयाणां दर्शनावरणीयानां, सातासातवेदनीययोः, मिथ्यात्वस्य, षोडशानां कषायाणां, नवानां नोकषायाणां, सर्वसंख्यया (३५)पञ्चत्रिंशत्संख्यानां प्रकृतीनां मिथ्यादृष्टिः सर्वपर्याप्तिपर्याप्तः सर्वसंक्लिष्टो निद्रापञ्चकस्य तत्प्रायोग्यसंक्लेशयुक्तो जघन्यप्रदेशोदीरणास्वामी। तथा योऽनन्तरसमये मिथ्यात्वं यास्यति, सोऽतिसंक्लिष्टः सम्यक्त्वसम्यङ्मिथ्यात्वयोर्जघन्यप्रदेशोदीरणास्वामी भवति। तथा गतिचतुष्टयपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकसप्तकवैक्रियसप्तकतैजससप्तकसंस्थानषट्कसंहननषट्कवर्णादिविंशतिपराघातोपघातागुरुलघूच्छ्वासोद्योतविहायोगतिद्विकत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरशुभाशुभसुभगदुर्भगसुस्वरदुःस्वरादेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तिनिर्माणोच्चैर्गोत्रनीचैर्गोत्रपञ्चविधान्तरायरूपाणामेकोननवतिसंख्यानां प्रकृतीनां संज्ञी पर्याप्तः सर्वोत्कृष्टसंक्लेशयुक्तो जघन्यप्रदेशोदीरणास्वामी । आहारकसप्तकस्य चाहारकशरीरी तत्प्रायोग्यसंक्लेशयुक्तः, आनुपूर्वीणामपि तत्प्रायोग्यसंक्लेशयुक्तः, आतपस्य खरबादरपृथ्वीकायिकः सर्वसंक्लिष्टः, एकेन्द्रियजातिस्थावरसाधारणनाम्नामेकेन्द्रियः सर्वोत्कृष्टसंक्लेशयुक्तः, सूक्ष्मनाम्नः

गाथार्थ—सव्वपगईण=सर्व प्रकृतिओनो, जहन्नसामि=ज०प्र०उदीरणा स्वामी, अति०भावो अ=अति संक्लिष्ट भाववाळो, तप्पगओदीरग=ते ते प्रकृतिनो उदीरक जाणवो. तित्थयरे=जिननामनो, अणुभागुत्तो य=ज०अनु०दीरणामां कह्या प्रमाणे जाणवो. ८८

सूक्ष्मैकेन्द्रियः सर्वसंक्लिष्टो जघन्यप्रदेशोदीरणास्वामी । अपर्याप्तकनाम्नः पुनरपर्याप्तमनुष्यः सर्वसंक्लिष्टश्चरमसमये वर्तमानो जघन्यप्रदेशोदीरको भवति । तथा द्वित्रिचतुरिन्द्रियजातीनां यथाक्रमं द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः सर्वसंक्लिष्टा जघन्यप्रदेशोदीरणास्वामिनः । 'अणुभागुत्तो य तित्थयरे त्ति' तीर्थकरनाम्नो य एव जघन्यानुभागोदीरणास्वामी प्राक् प्रतिपादितः, स एव जघन्यप्रदेशोदीरणास्वामी अपि वेदितव्यः । तीर्थकरकेवली यावन्नायोजिकाकरणमारभते तावत्तीर्थकरनाम्नो जघन्यप्रदेशोदीरको वेदितव्य इत्यर्थः ॥ ८८ ॥

ओहीणं ओहिजुए, अइसुहवेईयआउगाणं तु । पढमस्स जहण्णाठिई, सेसाणुक्कोसगठिइओ ॥८९॥

ओहीणं ति–अवधिज्ञानावरणावधिदर्शनावरणयोरवधिलब्धियुक्तः सर्वसंक्लिष्टो जघन्यप्रदेशोदीरणास्वामी । अवधिद्विकं ह्युत्पादयतो बहवः पुद्गलाः परिक्षीणा इत्यवधिलब्धिग्रहणं । तथा चतुर्णामप्यायुषां स्वस्वभूमिकानुसारेणातीव सुखमनुभवन् जघन्यप्रदेशोदीरको भवति । तत्र प्रथमस्य नरकायुषो दशवर्षसहस्रप्रमाणायां जघन्यस्थितौ वर्तमानो नैरयिकः । स हि शेषनारकापेक्षयाऽतिशयेन सुखी । शेषाणां च तिर्यङ्मनुष्यदेवायुषामुत्कृष्टस्थितौ वर्तमानाः स्वस्वयोग्यतानुसारेण परमसुखिनो यथासख्यं तिर्यङ्मनुष्यदेवा जघन्यप्रदेशोदीरणास्वामिनो वेदितव्याः ॥ ८९ ॥

॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां कर्मप्रकृतिटीकायामुदीरणाकरणं समाप्तम् ॥

गाथार्थ—ओहिजुए=अवधिलब्धियुक्त, ओहीणं=अवधिद्विकावरणनो ज०प्र०दीरक, आउगाणंतु=आयुष्यने विषे तो नरकायुनः अइ०वेईय=स्वयोग्य अतिसुख वेदक, जहन्नट्ठिइ=जघन्य स्थितिवाळो, पढमस्स=प्रथम नारक जीव, सेसाणु०ट्ठिइओ=शेष ३ आयुष्यनो उ०आयुष्यवाळा अतिसुखवेदक ते ते आयु वेदी जीवो उ०प्र०उदीरणाना स्वामी जाणवा. ८९

तदेवमभिहिता सप्रपञ्चमुदीरणा। संप्रति उपशमनाप्रतिपादनावसरः। तत्र चैतेऽधिकाराः, तद्यथा—प्रथमसम्यक्त्वोत्पादप्ररूपणा१, देशविरतिलाभप्ररूपणा२, सर्वविरतिलाभप्ररूपणा३, अनन्तानुबन्धिविसंयोजना४, दर्शनमोहनीयक्षपणा५, दर्शनमोहनीयोपशमना६, चारित्रमोहनीयोपशमना७, देशोपशमना पुनः सप्रभेदेति८। तत्रेदमुपशमनाकरणं सप्रभेदं सर्वात्मना व्याख्यातुमशक्यं।ततो यत्रांशे व्याख्यातुमात्मनोऽशक्तिस्तत्रांशे तद्वेदितृणामाचार्यो नमस्कारं चिकीर्षुराह—

करणकया अकरणा, वि य दुविहा उवसामण त्थ बिइयाए। अकरणअणुइन्नाए, अणुओगधरे पणिवयामि १

करणकय त्ति—इह द्विविधा उपशमना करणकृताऽकरणकृता च। तत्र करणं क्रिया यथाप्रवृत्तापूर्वानिवृत्तिकरणसाध्यः क्रियाविशेषः तेन कृता करणकृता। तद्विपरीताऽकरणकृता। या संसारिणां जीवानां गिरिनदीपाषाणवृत्ततादिसंभववद्यथाप्रवृत्तादिकरणक्रियाविशेषमन्तरेणापि वेदनानुभवनादिभिः कारणैरुपशमनोपजायते, साऽकरणकृतेत्यर्थः। इदं च करणकृताकरणकृतत्वरूपं द्वैविध्यं देशोपशमनाया एव द्रष्टव्यं, न सर्वोपशमनायाः, तस्याः करणेभ्य एव भावात्। उक्तं च पञ्चसंग्रहमूलटीकायां—"देशोपशमना करणकृता करणरहिता च। सर्वोपशमना तु करणकृतैवेति"। अस्याश्चाकरणकृतोपशमनाया नामधेयद्वयं, तद्यथा—अकरणोपशमना, अनुदीर्णोपशमना च। तस्याश्च संप्रत्यनुयोगो व्यवच्छिन्नः, तत आचार्यः स्वयं तस्या अनुयोगमजानानस्तद्वेदितृणां विशिष्टमतिप्रभाकलितचतुर्दशपूर्ववेदिनां नमस्कारमाह—'बिइयाए' इत्यादि, द्वितीयाया अकरणकृताया उपशमनाया

गाथार्थः—करण०दुविहा=करणकृत अने अकरणकृत ए बे प्रकारे उवसामणा य=उपशमना छे. बिइयाए=बीजी, अकर०न्नाइ=अकरणकृत अने अनुदीर्णनामवाळी उपशमनाना, अणुयोगधरे=ज्ञानने धारण करनार आचार्योंने, पणिवयामि=नमस्कार करुंछुं १

अकरणानुदीर्णरूपनामधेयद्वययुक्ताया अनुयोगधरान् व्याख्याकुशलान् प्रणिपतामि तेषु प्रणिपातं करोमि ॥ १ ॥

तस्मादिह करणकृतोपशमनयाधिकारः । सापि च द्विधा । द्वैविध्यमेवाह—

सव्वस्स य देसस्स य, करणुवसमणा दुसन्नि एक्किक्का। सव्वस्स गुणपसत्था, देसस्स वि तासि विवरीया ॥२॥

सव्वस्स त्ति—सा करणकृतोपशमना द्विविधा—सर्वस्य विषये देशस्य च, सर्वविषया देशविषया चेत्यर्थः । एकैकस्या अपि द्वे द्वे नामधेये । तद्यथा—सर्वस्य रूर्वोपशमनाया गुणोपशमना प्रशस्तोपशमना चेति, तथा देशस्य देशोपशमनायास्तयोर्द्वयोः पूर्वोक्तयोर्नामधेययोर्विपरीते नामधेये । तद्यथा—अगुणोपशमनाऽप्रशस्तोपशमना च ॥ २ ॥

सव्वुवसमणा मोह–स्सेव तस्सुवसमाक्किया जोग्गा । पंचेंदिओ उ सन्नी, पज्जत्तो लद्धितिगजुत्तो ॥३॥

पुव्वं पि विसुज्झंतो गंठियसत्ताणइक्कमिय सोहिं । अन्नयरे सागारे, जोगे य विसुद्धलेसासु ॥४॥

ठिइ सत्तकम्म अंतो–कोडीकोडी करेत्तु सत्तण्हं । दुट्ठाणं चउट्ठाणे, असुभ सुभाणं च अणुभागं ॥५॥

बंधंतो धुवपगडी, भवपाउग्गा सुभा अणाऊ य । जोगवसा य पएसं, उक्कोसं मज्झिम जहण्हं ॥६॥

गाथार्थः—करणुवसमणा=करणकृतोपशमना, सव्वस्स०स्स य=सर्वविषया अने देशविषया एम, दुसन्नि=बे नामे छे, सव्वस्स०पसत्था =सर्वोपशमनाना गुणोपशमा अने प्रशस्तोपशमना ए बे नाम छे, देसस्सवि=देशोपशमना वळी, तासि विवरीया–तेथी विपरीत छे. २ । सव्वुव०स्सेव उ=सर्वोपशमना मोहनीयनीज थाय छे, तस्सु०जोग्गो=तेनी उपशमनाने योग्य, पंचेंदि०पज्ज तो=पंचे-

ठिइबंधद्धापूरे, नवबंधं पल्लसंखभागूणं । असुभसुभाणणुभागं, अणंतगुणहाणिवुड्ढीहिं ॥७॥
करणं अहापवत्तं, अपुव्वकरणमनियट्टिकरणं च । अंतोमुहुत्तियाइं, उवसंतद्धं च लहइ कमा ॥ ८ ॥

सव्वुवसमणेत्यादि—इह सर्वोपशमना मोहस्यैव मोहनीयस्यैव । शेषाणां तु कर्मणां देशोपशमना, तत्र तस्य मोहनीयस्य सर्वोपशमनाक्रियायोग्यः पञ्चेन्द्रियः संज्ञी सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तः । इत्येवं लब्धित्रिकयुक्तः पञ्चेन्द्रियत्वसंज्ञित्वपर्याप्तत्वरूपाभिस्तिसृभिर्लब्धिभिर्युक्तः । अथवा उपशमलब्ध्युपदेशश्रवणलब्धिकरणत्रयहेतुप्रकृष्टयोगलब्धिरूपलब्धित्रिकयुक्तः । करणकालात्पूर्वमपि अन्तर्मुहूर्तकालं यावत् प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्धया विशुद्धया विशुद्धयमानोऽवदायमानचित्तसंततिः ग्रन्थिकसत्त्वाना-

द्रिय, संज्ञी, पर्याप्त, लद्धि०जुत्तो=३लब्धियुक्त; पुव्वंपि=करण पूर्वे पण, विसुज्झंतो=अनंतगुण विशुद्धिए वर्ततो, गंठिय०सोहिं=ग्रन्थिवर्ती अभव्य जीवनी विशुद्धि ओळंगीने, अन्नयरे सागारे=अन्यतर साकारोपयोगमां, जोगे य=अने योगमां, विसुद्धलेसासु=शुद्धलेश्यामां वर्ततो, सत्तण्हं=आयुर्वर्जे ७ कर्मनी, ठिइसत्तकम्म=स्थितिसत्ताने, अंतो०करेइ=अन्तःकोडाकोडी सागर प्रमाण करीने, असु० अणुभागं=अशुभ अने शुभ प्रकृतिओना रसने अनुक्रमे, दुट्ठाणं चउट्ठाणे=द्विस्थानिक अने चतुःस्थानिक करतो, बंधंतो०पगडी=ध्रुवबन्धि प्रकृतिओ बांधतो, अणाऊ य=आयुर्वर्जे, भव०सुभा=स्वभवयोग्य शुभ प्रकृतिओ बांधतो, जोगवसा य=योगानुसारे, उक्कोसं०जहन्नं=उत्कृष्ट मध्यम जघन्य, पएसं=प्रदेशबंध करतो; ठिइ०पूरे=एक स्थितिबंधनो काल पूर्ण थए, पल्ल०गूणं=पल्यासंख्यभागहीन, नवबंधं,=नवीनबंध करतो असुभ०भागं=अशुभ अने शुभ प्रकृतिओना रसने, अणंत०वुड्ढीहिं=अनंतगुणवृद्धि अने हानिवाळो करतो; अंतो०याइं=अन्तर्मुहूर्तप्रमाणवाळां, अहापवत्तं=यथाप्रवृत्त, अपुव्वकरणं=अपूर्वकरण, अनियट्टिकरणं च=अने अनिवृत्तिकरण, करणं=ए ३करणने, कमा=अनुक्रमे करीने, उव०लहइ=उपशांत अद्धाने पामे छे. ३ थी ८

मभव्यसिद्धिकानां या विशोधिस्तामतिक्रम्य वर्तमानः,ततोऽनन्तगुणविशुद्ध इत्यर्थः। तथाऽन्यतरस्मिन्मतिश्रुताज्ञानविभंगज्ञानानामन्यतमस्मिन् साकारे साकारोपयोगे(योगे)चान्यतमस्मिन्मनोयोगे वाग्योगे काययोगे वा वर्तमानः, तिसृणां विशुद्धानां लेश्यानामन्यतमस्यां लेश्यायां वर्तमानो, जघन्येन तेजोलेश्यायां, मध्यमपरिणामेन पद्मलेश्यायां, उत्कृष्टपरिणामेन शुक्ललेश्यायां।तथायुर्वर्जानां सप्तानां कर्मणां स्थितिमन्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणां कृत्वा, अशुभानां कर्मणामनुभागं चतुःस्थानकं सन्तं द्विस्थानकं करोति। शुभानां च कर्मणां द्विस्थानकं सन्तं चतुःस्थानकं करोति। तथा ध्रुवप्रकृतीः पञ्चविधज्ञानावरणनवविधदर्शनावरणमिथ्यात्वषोडशकषायभयजुगुप्सातैजसकार्मणवर्णगन्धरसस्पर्शागुरुलघूपघातनिर्माणपञ्चविधान्तरायरूपाः सप्तचत्वारिंशत्संख्या बध्नन् परावर्तमानाः स्वस्वभवप्रायोग्याः प्रकृतीः शुभा एव बध्नाति। ता अप्यायुर्वर्जाः। अतीव विशुद्धपरिणामो हि नायुर्बन्धमारभते इति कृत्वा तद्वर्जनं। भवप्रायोग्य इतिवचनाच्चैतदवगन्तव्यं–यदुत तिर्यङ् मनुष्यो वा प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयन् देवगतिप्रायोग्याः शुभाः प्रकृतीर्देवगतिदेवानुपूर्वीपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियशरीरवैक्रियांगोपांगसमचतुरस्रसंस्थानपराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतित्रसादिदशकसातवेदनीयोच्चैर्गोत्ररूपा(२१)एकविंशतिसंख्या बध्नाति। देवो नैरयिको वा प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयन् मनुजगतिप्रायोग्या मनुजगतिमनुजानुपूर्वीपञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानप्रथमसंहननौदारिकशरीरौदारिकांगोपांगपराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतित्रसादिदशकसातवेदनीयोच्चैर्गोत्ररूपा(२२)द्वाविंशतिसंख्या बध्नाति।केवलं यदि सप्तमपृथिवीनारकः प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयति ततस्तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीनीचैर्गोत्राणि वक्तव्यानि। शेषं तदेव। तथा बध्यमानप्रकृतीनां स्थितिं बध्नाति अन्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणामेव नाधिकां। योगवशाच्च प्रदेशाग्रमुत्कृष्टं मध्यमं जघन्यं च बध्नाति। तथाहि–जघन्ये योगे वर्तमानो जघन्यं

प्रदेशाग्रं बध्नाति, मध्यमे मध्यमं, उत्कृष्टे तूत्कृष्टमिति। स्थितिबन्धेऽपि च पूर्णे सत्यन्यं स्थितिबन्धं प्राक्तनस्थितिबन्धापेक्षया पल्योपमसंख्येयभागन्यूनं करोति। तस्मिन्नपि च परिपूर्णे सत्यन्यं स्थितिबन्धं प्राक्तनस्थितिबन्धापेक्षया पल्योपमसंख्येयभागन्यूनं करोति। एवमन्यमन्यं स्थितिबन्धं पूर्वपूर्वापेक्षया पल्योपमसंख्येयभागन्यूनं करोति। अशुभानां च प्रकृतीनां बध्यमानानामनुभागं द्विस्थानकं बध्नाति। तमपि प्रतिसमयमनन्तगुणहीनं शुभानां च चतुःस्थानकं बध्नाति। तमपि प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्धं। एवमसौ कुर्वन् किं करोतीत्यत आह–'करणमित्यादि' करणं यथाप्रवृत्तं करोति, ततोऽपूर्वकरणं, ततोऽपि अनिवृत्तिकरणं। करणमिति परिणामविशेषः, 'करणं परिणामोऽत्र' इतिवचनप्रामाण्यात्। एतानि च त्रीण्यपि करणानि प्रत्येकमान्तर्मौहूर्तिकानि। सर्वेषामपि करणानां कालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः। ततोऽनेन क्रमेण चतुर्थीमुपशान्ताद्धां लभते। सापि चान्तर्मुहूर्तिकी ॥ ८ ॥

सम्प्रति करणानामेव स्वरूपमाविश्चिकीर्षुराह—

अणुसमयं वड्ढंतो, अज्झवसाणाण णंतगुणणाए। परिणामट्ठाणाणं, दोसु वि लोगा असंखिज्जा ॥९॥

अणुसमयं त्ति–अनुसमयं समये समयेऽध्यवसानानामनन्तगुणनया विशुद्ध्या प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्याऽध्यवसानानां विशुद्धचेत्यर्थः। प्रवर्धमानो यावत् करणसमाप्तिर्भवति तावन्निरन्तरं वर्धते। कियन्ति पुनरध्यवसानानि करणेषु प्रत्येकं भवन्तीति चेदुच्यते—'परिणामेत्यादि' द्वयोरपि यथाप्रवृत्तापूर्वकरणयोः परिणामस्थानानामनुसमयं लोका असंख्येया भवन्ति। एतदुक्तं भवति

गाथार्थ—अणुसमयं=प्रतिसमय, अज्झव०णाए=अध्यवसायोनी अनंतगुणविशुद्धिमां वर्ततो होय छे. दोसुवि=प्रथम बे करणोमां परि०ट्ठाणाणं=अध्यवसायस्थानो, लोगा असंखिज्जा=असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण छे. ९

—यथाप्रवृत्तकरणेऽपूर्वकरणे च प्रतिसमयमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणानि अध्यवसायस्थानानि भवन्ति। तथाहि—यथाप्रवृत्तकरणे प्रथमसमये विशोधिस्थानानि नानाजीवापेक्षयाऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि। द्वितीयसमये विशेषाधिकानि। ततोऽपि तृतीयसमये विशेषाधिकानि। एवं तावद्वाच्यं यावच्चरमसमयः। एवमपूर्वकरणेऽपि द्रष्टव्यम्। अमूनि चाध्यवसायस्थानानि यथाप्रवृत्तापूर्वकरणयोः संबन्धीनि स्थाप्यमानानि विषमचतुरस्रं क्षेत्रमास्तृणन्ति। तयोरुपरि चानिवृत्तकरणाध्यवसायस्थानानि मुक्तावलीसंस्थानानि भवन्ति। उपर्युपरिमुखानि चामून्यनुचिन्त्यमानानि प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या प्रवर्धमानान्यवगन्तव्यानि, तिर्यक् षट्स्थानपतितानि। स्थापना चेयम् ॥ ९ ॥

मंदविसोही पढमस्स, संखभागाहि पढमसमयम्मि। उक्कस्सं उप्पिमहो, एक्केक्कं दोण्हं जीवाणं ॥१०॥

आचरमाओ सेसु-क्कोसं पुव्वप्पवत्तमिइनामं। बिइयस्स बिइयसमए, जहण्णमवि अणंतरुक्कस्सा ॥११॥

मंदविसोहीत्यादि—इह कल्पनया द्वौ पुरुषौ युगपत्करणप्रतिपन्नौ विवक्ष्येते। तत्रैकः सर्वजघन्यया श्रेण्या प्रतिपन्नः, अपरस्तु

गाथार्थः—दोण्ह जीवाणं=करण प्रतिपन्न बे जीवोमां एक जीवनी, पढमस्स=प्रथमकरणनी प्रथमसमयनी, मंदविसाही=जघन्य विशुद्धि अल्प, तेथी प्रतिसमय अनंतगुण वधती ज०विशुद्धि, संखभागाहि=करणना संख्यातमा भाग सुधी जाणवी. तेथी अन्यनी, पढम०उक्कस्सं=प्रथम समयनी उत्कृष्ट अनंतगुण ए प्रमाणे, उप्पिमहो एक्केक्कं=उपर नीचे एक एक समयनी अनंतगुण कहेतां, आचरमाओ=अन्त्य समयनी जघन्य अनंतगुण, सेसुक्कोसं=तेथी शेषनी उ०विशुद्धि चरम समय पर्यंत अनंतगुण. पुव्व०नामं=पूर्वप्रवृत्त एवं बीजुं नाम छे. बिइयस्स०समए=बीजा अपूर्वकरणनी द्वितीय समये जहन्नमवि=जघन्य विशुद्धि पण, अणं०क्कस्सा=पूर्वानंतर (प्रथम) समयनी उ०विशुद्धिथी अनंतगुण छे. १०-११

सर्वोत्कृष्टया विशोधिश्रेण्या । तत्र प्रथमस्य जीवस्य प्रथमसमये मन्दा सर्वजघन्या विशोधिः सर्वस्तोका । ततो द्वितीयसमये जघन्या विशोधिरनन्तगुणा । ततोऽपि तृतीयसमये जघन्या विशोधिरनन्तगुणा, एवं तावद्वाच्यं यावद्यथाप्रवृत्तकरणस्य संख्येयो भागो गतो भवति । ततः प्रथमसमये द्वितीयस्य जीवस्योत्कृष्टं विशोधिस्थानमनन्तगुणं वक्तव्यं । ततोऽपि यतो जघन्यस्थानान्निवृत्तस्तस्योपरितनी जघन्या विशोधिरनन्तगुणा । ततोऽपि द्वितीये समये उत्कृष्टा विशोधिरनन्तगुणा । तत उपरि जघन्या विशोधिरनन्तगुणा । एवमुपर्यधश्चैकैकं विशोधिस्थानमनन्तगुणतया द्वयोर्जीवयोस्तावन्नेयं यावच्चरमसमये जघन्या विशोधिः । तत आ चरमात् चरममभिव्याप्य यान्यनुक्तानि स्थानानि उत्कृष्टानि विशोधिस्थानानि तानि क्रमेण निरन्तरमनन्तगुणानि वक्तव्यानि । तदेवं समाप्तं यथाप्रवृत्तकरणं (१ क०) ।अस्य च यथाप्रवृत्तकरणस्य पूर्वप्रवृत्तमिति द्वितीयं नाम, शेषकरणाभ्यां पूर्वं प्रथमं प्रवृत्तं पूर्वप्रवृत्तमिति । अस्मिंश्च यथाप्रवृत्तकरणे स्थितिघातो रसघातो गुणश्रेणिर्वा न प्रवर्तते, केवलमुक्तरूपा विशोधिरेवानन्तगुणा । यानि चाप्रशस्तानि कर्माण्यत्र स्थितो बध्नाति तेषामनुभागं द्विस्थानकं बध्नाति । यानि च शुभानि तेषां चतुःस्थानकं । स्थितिबन्धेऽपि च पूर्णे पूर्णे सत्यन्यं स्थितिबन्धं पल्योपमसंख्येयभागन्यूनं बध्नाति ।

संप्रत्यपूर्वकरणमभिधीयते–'बिइयस्सेत्यादि' द्वितीयस्य करणस्यापूर्वकरणाख्यस्य यो द्वितीयः समयस्तत्र जघन्यमपि विशोधिस्थानमनन्तरोत्कृष्टात् प्रथमसमयभाविन उत्कृष्टात् विशोधिस्थानात् अनन्तगुणं वक्तव्यं । एतदुक्तं भवति–नेह यथाप्रवृत्तकरणे इव प्रथमतो निरन्तरं जघन्यानि विशोधिस्थानान्यनन्तगुणतया वक्तव्यानि । किंतु प्रथमसमये प्रथमतो जघन्या विशोधिः सर्वस्तोका वाच्या । सापि च यथाप्रवृत्तकरणचरमसमयभाविन उत्कृष्टाद्विशोधिस्थानादनन्तगुणा । ततः प्रथमसमय

एवोत्कृष्टा विशोधिरनन्तगुणा । ततोऽपि द्वितीयसमये जघन्या विशोधिरनन्तगुणा । ततोऽपि तस्मिन्नेव द्वितीयसमये उत्कृष्टा विशोधिरनन्तगुणा । ततोऽपि तृतीयसमये जघन्या विशोधिरनन्तगुणा । ततोऽपि तस्मिन्नेव तृतीयसमये उत्कृष्टा विशोधिरनन्तगुणा । एवं प्रतिसमयं तावद्वाच्यं यावच्चरमसमये उत्कृष्टा विशोधिरिति ॥ १०--११ ॥

निव्वयणमवि ततो से, ठिइरसघायठिइबंधगद्धा उ। गुणसेढी वि य समगं, पढमे समये पवत्तंति॥१२॥

निव्वयणंति–ततः 'से' तस्यापूर्वकरणस्य निर्वचनं निश्चयमन्वर्थानुयायि वचनमभिधानं वक्तव्यं । तद्यथा–अपूर्वाणि अपूर्वाणि करणानि स्थितिघातरसघातगुणश्रेणिस्थितिबन्धादीनां निवर्तनानि यस्मिन् तत् अपूर्वकरणं । तथाहि–अपूर्वकरणे प्रविशन् प्रथमसमय एव स्थितिघातं रसघातं गुणश्रेणिं स्थितिबन्धं चान्यं युगपदारभते । तथा चाह–'ठिइरसेत्यादि' स्थितिघातो रसघातः स्थितिबन्धाद्धा गुणश्रेणिरपि च । एते चत्वारः पदार्थाः समकं युगपत् प्रथमे समये प्रवर्तन्ते ॥ १२ ॥

तत्र स्थितिघातप्रतिपादनार्थमाह—

उयहिपुहत्तुक्कस्सं, इयरं पल्लस्स संखतमभागो । ठिइकंडगमणुभागा–णणंतभागा मुहुत्तंतं (तो)॥१३॥
अणुभागकंडगाणं, बहुहिं सहस्सेहिं पूरए एक्कं । ठिइकंडगं सहस्सेहिं, तेसिं बीयं सहस्सेहिं ॥१४॥

गाथार्थः—ततो=त्यारपछी, से=ते अपूर्वकरणनुं, निव्वयणमवि=नाम प्रमाणे अर्थवाळुं 'निर्वचन' कहुं छुं. पढमे समये=प्रथम समये, ठिइरसघाय=स्थितिघात, रसघात, ठिइबंधगद्धाउ=वळी स्थितिबंधाद्धा, गुणसेढी वि य=गुणश्रेणि पण, समगं=सामटां, पवत्तंति=प्रवर्ते छे. १२ । उयहि०क्कस्सं=(अन्त्यनी स्थितिसत्तामांथी) उत्कृष्टपणे उदधि पृथक्त्व सागरोपम प्रमाण, इयरं=जघन्यथी

उपशमनाकरणं अपूर्वकरण-स्वरूपम्

उपहि त्ति–स्थितिसत्कर्मणोऽग्रिमभागादुत्कर्षत उदधिपृथक्त्वं उदधिपृथक्त्वप्रमाणं प्रभूतसागरोपमशतप्रमाणमित्यर्थः। जघन्येन पुनः पल्योपमसंख्येयभागमात्रं स्थितिकंडकमुत्किरति। उत्कीर्य च याः स्थितीरधो न खंडयिष्यति तत्र तद्दलिकं प्रक्षिपति। अन्तर्मुहूर्तेन च कालेन तत् स्थितिकंडकमुत्कीर्यते×। ततः पुनरप्यधस्तात् पल्योपमसंख्येयभागमात्रं स्थितिकंडकमन्तर्मुहूर्तेन कालेनोत्किरति। प्रागुक्तप्रकारेणैव च निक्षिपति। एवमपूर्वकरणाद्धायां प्रभूतानि स्थितिखंडसहस्राणि व्यतिक्रामन्ति। तथा च सति यत् अपूर्वकरणस्य प्रथमसमये स्थितिसत्कर्मासीत्, तत्तस्यैव चरमसमये संख्येयगुणहीनं जातं। संप्रति रसघातोऽभिधीयते–'अणुभागाणेत्यादि' अशुभानां प्रकृतीनां यदनुभागसत्कर्म तस्यानन्ततमं भागं मुक्त्वा शेषाननन्तानुभागभागान् अन्तर्मुहूर्तेन कालेनाशेषानपि विनाशयति। ततः पुनरपि तस्य प्राग्मुक्तस्यानन्ततमस्यानन्ततमं भागं मुक्त्वा शेषान् अनुभागभागान् अन्तर्मुहूर्तेन कालेन विनाशयति। एवमनेकान्यनुभागखंडसहस्राणि एकस्मिन् स्थितिखंडे व्यतिक्रामन्ति। तेषां च स्थितिखंडानां सहस्रैर्द्वितीयमपूर्वकरणं परिसमाप्यते। संप्रति स्थितिबन्धाद्धा भण्यते–अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयेऽन्य एवापूर्वः

×(य०उ०१) उक्तं च—" उक्कोसेणं बहुसागराणि इयरेण पल्लसंखं। ठिइअग्गाओ घायइ अंतमुहुत्तेण ठिइकंडं ॥१॥"

पल्लस्स०भागो=पल्यासंख्यभाग प्रमाणे, ठिइकंडगं=स्थितिकंडकने, अणु०गुणा=अनुभाग सत्ताना अनंता भागोने, मुहुत्तंतो=अन्तर्मुहूर्तमां उकेरे छे. १३। अणु०गाणं=अनुभाग कंडकना, बहुहिं सहस्सेहिं=घणा हजारोवडे, एक्कं०कंडगं=एक स्थितिकंडकने, पूरए=पूरे छे, तेसिं=ते स्थितिकंडकना, सहस्सेहिं=हजारो वडे, बीयं=बीजुं अपूर्वकरण पूर्ण थाय छे. १४

पल्योप मसंख्येयभागहीनः स्थितिबन्ध आरभ्यते। स्थितिघातस्थितिबन्धौ युगपदेवारभ्येते, युगपदेव च निष्ठां यातः×॥१३-१४॥

अधुना गुणश्रेणिस्वरूपमाह—

गुणसेढी निक्खेवो, समये समये असंखगुणणाए। अद्धादुगाइरित्तो, सेसे सेसे य निक्खेवो ॥१५॥

गुणसेढि त्ति-यत्स्थितिकंडकं घातयति तन्मध्याद्दलिकं गृहीत्वा उदय समयादारभ्य प्रतिसमयमसंख्येयगुणनया×१निक्षिपति। तद्यथा—उदयसमये स्तोकं। द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं। ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणं। एवं तावद्वक्तव्यं यावदन्तर्मुहूर्तचरमसमयः। तच्चान्तर्मुहूर्तमपूर्वकरणानिवृत्तिकरणकालात् मनागतिरिक्तं वेदितव्यं। अक्षरयोजना त्वियं गुणश्रेण्यां निक्षेपः समये समयेऽसंख्येयगुणनया पूर्वपूर्वसमयापेक्षया उत्तरोत्तरसमये वृद्ध्यात्मकया। सोऽपि च निक्षेपोऽद्धाद्विकातिरिक्तः अपूर्वकरणानिवृत्तिकरणकालामभ्यधिकः। एष प्रथमसमयगृहीतदलिकनिक्षेपविधिः। एवं द्वितीयादिसमयगृहीतानामपि दलिकानां निक्षेपवि-

×(य०उ०२) तथा च स्थितिबन्धाद्धा कालतः सङ्ख्यया च स्थितिघाततुल्या प्रवर्तते। उक्तं च-"करणाईइ अपुव्वो जो बंधो सो न होइ जा अण्णो। बंधगअद्धा सा तुल्लिगाउ ठिइकंडगद्धाए ॥१॥"

×१(य०उ०३) उक्तं च—"उवरिल्लठिईहिंतो घित्तूणं पुग्गले उ सो खिवइ। उदयसमयम्मि थोवे तत्तो अ असंखगुणिए उ ॥१॥ बीयम्मि खिवइ समए तइए तत्तो असंखगुणिए उ। एवं समए समए अंतमुहुत्तं तु जा पुन्नं ॥२॥"

गाथार्थः—समए समए=प्रतिसमये, असं०णाए=असंख्यगुण, निक्खेवो=दलिक निक्षेप ते, गुणसेढी=गुणश्रेणि जाणवी. अद्धा० रित्तो=तेनो अन्त्य बे करण कालथी अधिक काल जाणवो. निक्खेवो=दलिकनिक्षेप, सेसे सेसे य=शेष शेष समयोमां थाय छे. १५

धिर्द्रष्टव्यः। अन्यच्च गुणश्रेणिरचनाय प्रथमसमये दलिकं यद् गृह्यते तत्स्तोकं। द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं। ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणं एवं तावद्वाच्यं यावद्× गुणश्रेणिकरणचरमसमयः। तथाऽपूर्वकरणसमयेषु अनिवृत्तिकरणसमयेषु चानुभवतः क्रमशः क्षीयमाणेषु सत्सु गुणश्रेणिदलिकनिक्षेपः शेषे शेषे भवति, उपरि च न वर्धते (क०२) ॥ १५ ॥

संप्रत्यनिवृत्तिकरणस्वरूपमाह

अनियट्टिम्मि वि एवं, तुल्ले काले समा तओ नामं। संखिज्जइमे सेसे, भिन्नमुहुत्तं अहो मुच्चा॥१६॥
किंचूणमुहुत्तसमं ठिइबंधद्धाए अंतरं किच्चा। आवलिदुगेक्कसेसे, आगाल उदीरणा समिया॥ १७ ॥

×(य०उ०४) उक्तं च—"दलियं तु गिण्हमाणो पढमे समयम्मि थोवयं गिण्हे। उवरिल्लठिईहिंतो बीयम्मि असंखगुणियं तु ॥१॥ गिण्हइ समए दलियं तइए समए असंखगुणियं तु। एवं समए समए जा चरिमो अंतसमओ त्ति ॥२॥ इहान्तर्मुहूर्त्तप्रमाणो निक्षेपकालो दलरचनारूपगुणश्रेणिकालश्चापूर्वकरणानिवृत्तिकरणाद्धाद्विकात् किञ्चिदधिको द्रष्टव्यः, तावत्कालमध्ये चाधस्तनाधस्तनोदयक्षणे वेदनतः क्षीणे शेषक्षणेषु दलिकं रचयति, न पुनरुपरि गुणश्रेणिं वर्धयति। उक्तं च—"सेढीइ कालमाणं दुण्ह य

गाथार्थः—अनियट्टि०एवं=अनिवृत्ति करणमां पण एम जाणवुं. तुल्ले काले=तुल्य कालमां, समा=समविशुद्धि होय छे. तओ=तेथी, नामं=अनिवृत्तिकरण नाम छे. संखिज्ज०सेसे=तेनो संख्यातमो भाग थाकते, भिन्नमुहुत्तं=अन्तर्मुहूर्त, अहो मुच्चो=नीचे मूकीने १६। ठिइबंधद्धाए=स्थितिबंधाद्धा प्रमाण कालवडे, किंचू०समं=कांइक हीन अन्तर्मुहूर्त प्रमाण, अंतरं किच्चा=अंतर करीने, आवलि०सेसे=२ अने १ आवलि शेष रहे थके अनुक्रमे, आगाल उदीरणा=आगाल अने उदीरणा, समिया=विच्छेद पामेछे १७

अनियट्टिम्मि त्ति–यथाऽपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य स्थितिघातादयो युगपत्प्रवर्तमाना उक्ता एवमनिवृत्तिकरणेऽपि वक्तव्याः। 'तुल्ले काले समा तओ नामं ति' तुल्ये समाने काले यतः समा सर्वेषामपि तत्प्रविष्टानां विशोधिर्भवति, न विषमा, ततो नाम सान्वयं निर्वचनीयं अनिवृत्तिकरणमिति। एतदुक्तं भवति–अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमसमये ये वर्तन्ते ये च वृत्ता ये च वर्तिष्यन्ते तेषां सर्वेषामपि समा एकरूपा विशोधिः। द्वितीयसमयेऽपि च ये वर्तन्ते ये च वृत्ता ये च वर्तिष्यन्ते, तेषामपि सर्वेषां परस्परं समा विशोधिः। नवरं प्रथमसमयभाविविशोध्यपेक्षयाऽनन्तगुणा। एव तावद्वक्तव्यं यावदनिवृत्तिकरणचरमसमयः। तत एवमस्मिन् करणे प्रविष्टानां तुल्यकालानामसुमतां परस्परमध्यवसानानां या निवृत्तिर्व्यावृत्तिः सा न विद्यत इत्यनिवृत्तिकरणमिति नाम। अस्मिंश्चानिवृत्तिकरणे यावन्तः समयास्तावन्ति अध्यवसायस्थानानि पूर्वस्मात् पूर्वस्मादनन्तगुणवृद्धानि (भवंति)। 'संखिज्जेत्यादि' अनिवृत्तिकरणाद्धायाः संख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्सु एकस्मिंश्च भागे संख्येयतमे शेषे तिष्ठति अन्तर्मुहूर्तमात्रमधो मुक्त्वा मिथ्यात्वस्यान्तरकरणं करोति।×अन्तरकरणकरणकालश्चान्तर्मुहूर्तप्रमाणः प्रथमस्थितेः किंचिन्न्यूनोऽभिनवस्थितिबन्धाद्धया समः। तथाहि–

करणाण समहियं जाण। खिज्जइ सा उदएणं ज सेसं तम्मि णिक्खेवो ॥१॥" त्ति। सूत्रगाथाक्षरयोजना त्वियम्—गुणश्रेण्यां निक्षेपः समये समयेऽसङ्ख्येयगुणनया पूर्वपूर्वसमयापेक्षयोत्तरोत्तरसमये वृद्ध्यात्मकया, सोऽपि च निक्षेपोऽद्धाद्विकातिरिक्तः अपूर्वकरणानिवृत्तिकरणकालाभ्यां मनागधिककालमानः, तथाऽपूर्वकरणानिवृत्तिकरणसमयेष्वनुभवतः क्रमशः क्षीयमाणेषु सत्सु गुणश्रेणिदलिकनिक्षेपः शेषे शेषे भवत्युपरि च न वर्धते ॥

×(य०उ०५) अन्तरकरणं नामोदयक्षणादुपरि मिथ्यात्वस्थितिमन्तर्मुहूर्त्तमानामतिक्रम्योपरितनीं च विष्कम्भयित्वा मध्येऽन्त-

अन्तरकरणकरणप्रथमसमये एवान्यं स्थितिबन्धं मिथ्यात्वस्यारभते । स्थितिबन्धान्तरकरणे च युगपदेव परिसमापयति । अन्तरकरणे च क्रियमाणे गुणश्रेणेः संख्येयतमं भागमन्तरकरणदलिकेन सहोत्किरति उत्कीर्यमाणं च दलिकं प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ च प्रक्षिपति।अन्तरकरणाच्चाधस्तनी स्थितिः प्रथमा स्थितिरित्युच्यते।उपरितनी तु द्वितीया।प्रथमस्थितौ च वर्तमान उदीरणाप्रयोगेण दलिकं प्रथमस्थितिसत्कं दलिकं समाकृष्योदयसमये प्रक्षिपति सा उदीरणा। यत्पुनः द्वितीयस्थितेः सकाशादुदीरणाप्रयोगेण समाकृष्योदये प्रक्षिपति स आगाल इति। उदीरणाया एव विशेषप्रतिपत्त्यर्थमिदं द्वितीयं नाम पूर्वसूरिभिरावेदितं। उदयोदीरणाभ्यां च प्रथमां स्थितिमनुभवन् तावद् गतो यावदावलिकाद्विकं शेषं तिष्ठति। तस्मिंश्च स्थिते आगालो न भवति, किंतु केवलोदीरणैव। साप्युदीरणा तावद्यावदावलिकाशेषो न भवति। आवलिकायां च शेषीभूतायामुदीरणापि निवर्तते । ततः केवलेनैवोदयेन

मुहूर्त्तमानं तत्प्रदेशवेद्यदलिकाभावकरणं, तन्निष्पादनकालोऽप्यन्तरकरणकाल एव, यथा तन्तुसंयोजनादिकालः पटकरणकालः, सोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणः प्रथमस्थितेः किञ्चिन्न्यूनोऽभिनवस्थितिबन्धाद्धया समानः। तथाहि—प्रथमस्थित्यन्तरकरणे द्वे अप्यन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणे युगपदारभते, अन्तरकरणप्रथमसमय एव चान्यं स्थितिबन्धं मिथ्यात्वस्यारभ्य स्थितिबन्धान्तरकरणे युगपदेव परिसमापयति, अन्तरकरणे च क्रियमाणे गुणश्रेणिसम्बन्धिनः सङ्ख्येया भागाः प्रथमद्वितीयस्थित्याश्रितास्तिष्ठन्ति, एकं तु गुणश्रेणेः सङ्ख्येयतमं भागमन्तरकरणदलिकेन सहोत्किरति विनाशयतीत्यर्थः । तदुत्किरणविधिश्चायम्—यदुतान्तरकरणस्थितेर्मध्याद्दलिकं कर्मपरमाण्वात्मकं गृहीत्वा गृहीत्वा प्रथमस्थितौ प्रक्षिपति उपरि द्वितीयस्थितौ च, एवं प्रतिसमयं तावत्प्रक्षिपति यावदन्तरकरणदलिकं सकलमपि क्षीयते, अन्तर्मुहूर्त्तेन च कालेन सकलतद्दलिकक्षय इति ॥

तामावलिकामनुभवति । तस्यामपि चापगतायामुदयोऽपि मिथ्यात्वस्य विनिवर्तते, तदूलिकाभावात् । तस्मिंश्चापगते सत्यौपशमिकं× सम्यक्त्वमवाप्नोति ॥१६-१७॥

तथा चाह—

मिच्छत्तुदए खीणे, लहए सम्मत्तमोवसमियं सो । लंभेण जस्स लप्भइ, आयहियमलद्धपुव्वं जं ॥१८॥

मिच्छत्तुदए त्ति-मिथ्यात्वस्योदये क्षीणे सति स जीव उक्तेन प्रकारेणौपशमिकं सम्यक्त्वं लभते । यस्य सम्यक्त्वस्य लाभेन यदात्महितमलब्धपूर्वमर्हदादितत्त्वप्रतिपत्त्यादि तल्लभ्यते । तथाहि—सम्यक्त्वलाभे सति जात्यन्धस्य पुंसश्चक्षुर्लाभे ए(इ)व जन्तोर्यथावस्थितवस्तुतत्त्वावलोको भवति । महाव्याध्यभिभूतस्य व्याध्यपगमे इव महांश्च प्रमोदः । तदुक्तं-"जात्यंधस्य यथा पुंसश्चक्षुर्लाभे शुभोदये । सद्दर्शनं तथैवास्य सम्यक्त्वे सति जायते ॥ १ ॥ आनन्दो जायतेऽत्यन्तं तात्त्विकोऽस्य महात्मनः । सद्व्याध्यपगमे यद्वद्व्याधितस्य सदौषधात् ॥ २ ॥"इति ॥ १८ ॥

×(य०उ०६) उक्तं च—"आवलिमेत्तं उदएणं वेइउ ठाइ उवसमद्धाए । उवसमियं तत्थ भवे सम्मत्तं मोक्खबीयं जं ॥१॥" इयं चोपशान्ताद्धा परिनिष्ठितान्तरकरणाद्धैव, तदिदमुक्तं अन्तरकरणप्रथमसमय एवौपशमिकं सम्यक्त्वमवाप्नोति, मिथ्यात्वदलिकवेदनाभावादिति ॥

गाथार्थः—मिच्छत्तु०खीणे=मिथ्यात्वना उदय क्षय थए, सो=ते, सम्म०मियं=औपशमिक समकित, लहए=पामे छे, जस्स=जेना, लंभेण=लाभवडे, अलद्धपुव्वं=पूर्वे नहि पामेल, जं=जे, आयहियं=आत्महित तेने, लप्भइ=मेळवे छे. १८

तं कालं बीयठिइं, तिहाणुभागेण(भागं तु) देसघाइ त्थ। सम्मत्तं सम्मिस्सं, मिच्छत्तं सव्वघाईओ॥१९॥

तं त्ति–तं कालं' तस्मिन् काले यतोऽनन्तरसमये औपशमिकसम्यग्दृष्टिर्भविष्यति, तस्मिन् प्रथमस्थितौ चरमसमये इत्यर्थः। मिथ्यादृष्टिः सन् द्वितीयं द्वितीयस्थितिगतं दलिकमनुभागेनानुभागभेदेन त्रिधा करोति। तद्यथा–शुद्धमर्धविशुद्धमविशुद्धं च। तत्र शुद्धं सम्यक्त्वं, तच्च देशघाति, देशघातिरसोपेतत्वात्। अर्धविशुद्धं सम्यग्मिथ्यात्वं, तच्च सर्वघाति, सर्वघातिरसोपेतत्वात्। अशुद्धं मिथ्यात्वं, तदपि सर्वघाति। तथा चाह–समिश्रं मिश्रसहितं मिथ्यात्वं सर्वघाति ॥१९॥

पढमे समए थोवो, सम्मत्ते मीसए असंखगुणो। अणुसमयमवि य कमसो, भिन्नमुहुत्ता हि विज्झाओ२०

पढमे त्ति–औपशमिकसम्यक्त्वलाभप्रथमसमयादारभ्य मिथ्यात्वदलिकं गुणसंक्रमेण सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः संक्रमयति। तच्चैवं–प्रथमसमये स्तोको दलिकनिक्षेपः सम्यक्त्वे। ततो मिश्रेऽसंख्येयगुणः। ततोऽपि द्वितीये समये सम्यक्त्वेऽसंख्येयगुणः। ततोऽपि तस्मिन्नेव द्वितीये समये सम्यग्मिथ्यात्वेऽसंख्येयगुणः। एवमनुसमयं प्रतिसमयं क्रमशः क्रमेण तावद्वक्तव्यं यावदन्त-

---

गाथार्थः—तं काल=ते समये (मिथ्यात्वना अंत समये), बियठिइं=बीजी स्थितिनां दलिकने, तिहाणुभागेण=रसभेदवडे ३ प्रकारनां करे छे. तेमां, सम्मत्तं=शुद्ध दलिकरूप समकितमो०, देसघाइत्थ=देशघाती, सम्मिस्सं=अर्धशुद्ध मिश्र सहित, मिच्छत्तं=अशुद्ध मिथ्यात्व, सव्वघाईओ=सर्वघाती छे. १९। पढमे समए=औपशमिकना प्रथम समये, सम्मत्ते=समकितमो०मां, थोवो=स्तोक निक्षेप, तेथी मीसए=मिश्रमां, असंखगुणो=असंख्यगुण एम, कमसो=अनुक्रमे, अणु०विय=प्रतिसमये, भिन्नमुहुत्ता=अन्तर्मुहूर्त सुधी असंख्यगुण कहेवु. हि= त्यारपछी, विज्झाओ=विध्यातसंक्रम प्रवर्ते २०

र्मुहूर्तं । ततः परं विध्यातसंक्रमः प्रागभिहितस्वरूपः प्रवर्तते ॥ २० ॥

ठिइरसघाओ गुणसेढी वि य तावं पि आउवज्जाणं । पढमठिइएँ एग-दुगावलिसेस त्ति मिच्छत्ते ॥२१॥

ठिइ त्ति–यावद्गुणसंक्रमस्तावदायुर्वर्जानां सप्तानां कर्मणां स्थितिघातो रसघातो गुणश्रेणिर्वा प्रवर्तते । गुणसंक्रमे च निवर्तमाने ता अपि निवर्तन्ते । मिथ्यात्वस्य पुनः प्रथमस्थितौ यावदेका आवलिका शेषा न भवति, तावन्मिथ्यात्वस्य स्थितिघातरसघातौ भवतः । आवलिकायां तु शेषीभूतायां तौ निवृत्तौ । यावच्च प्रथमस्थितौ द्वे आवलिके शेषे न भवतस्तावद्गुणश्रेणिरपि मिथ्यात्वस्य प्रावर्त्तिष्ट । आवलिकाद्विके तु शेषीभूते गुणश्रेणिर्निवृत्ता । तदेवमन्तरकरणे प्रविष्टः सन् प्रथमसमयादारभ्य औपशमिकसम्यग्दृष्टिस्तावदभूत् यावदन्तर्मुहूर्तं ॥ २१ ॥

ततः संप्रति यत्करोति तदाह—

उवसंतद्धा अंते, विहिणा ओकड्डियस्स दलियस्स । अज्झवसाणणुरूवस्सुदओ तिसु एक्कयरयस्स ।२२।

×(य०उ०७) एष च सङ्क्रमोऽन्तरकरणस्थितेनौपशमिकसम्यक्त्वलक्षणप्रशस्तगुणान्वितेन क्रियत इति गुणसङ्क्रम उच्यते । तथा म्—"गुणसंकमेण एसो संकमो होइ सम्ममीसेसु । अंतरकरणम्मि ठिओ कुणइ जओ सप्पसत्थगुणो ॥१॥"

गाथार्थः—तावंपि=(गुणसंक्रम प्रवर्ते) त्यांसुधी, आउवज्जाणं=आयुष्य वर्जीने ७ कर्मनी, ठिइ०धाओ=स्थितिघात, रसघात, गुणसेढी विय=अने गुणश्रेणि पण प्रवर्ते. पढमठिईए=मिथ्यात्वनी प्रथम स्थितिनी एग०सेसम्मि=१ अने २ आवलि थाकते, मिच्छत्ते=मिथ्यात्वना स्थितिरसघात अने गुणश्रेणि अटके छे. २१ । उवसंतद्धा अंते=उपशांत अद्धानी अन्त्य समयाधिक आवलिकाए,

उवसंतद्ध त्ति--औपशमिकसम्यक्त्वाद्धाया अन्ते पर्यन्ते किञ्चित्समधिकावलिकाशेषे वर्तमानस्त्रयाणामपि द्वितीयस्थितिगतानां सम्यक्त्वादिपुञ्जानां दलिकमध्यवसायविशेषेण समाकृष्यान्तरकरणपर्यन्तावलिकायां प्रक्षिपति । तत्र प्रथमसमये प्रभूतं । द्वितीयसमये स्तोकं । तृतीयसमये स्तोकतरं । एवं तावद्वाच्यं यावदावलिकाचरमसमयः । तानि चैवं दलिकानि निक्षिप्यमाणानि गोपुच्छसंस्थानसंस्थितानि भवन्ति । तत आवलिकामात्रे कालेऽन्तरकरणस्य शेषे अमीषां त्रयाणामेकतरस्य दलिकस्योदयो भवति । किंविशिष्टस्येत्याह—अध्यवसायानुरूपस्य । एतदुक्तं भवति–यदि तदानीं शुभः परिणामस्तर्हि सम्यक्त्वदलिकस्योदयः । मध्यमश्चेत्परिणामस्तर्हि सम्यग्मिथ्यात्वदलिकस्य । जधन्यश्चेत्ततो मिथ्यात्वदलिकस्येति ॥२२॥

सम्मत्तपढमलंभो, सव्वोवसमा तहा विगिट्ठो य । छालिगसेसाएँ परं, आसाणं कोइ गच्छेज्जा ॥ २३ ॥

सम्मत्त त्ति–एष औपशमिकसम्यक्त्वप्रथमलाभो मिथ्यात्वस्य सर्वोपशमाद् भवति, नान्यथा । तथा प्रथमस्थित्यपेक्षया विप्रकर्षश्च बृहत्तरमन्तर्मुहूर्तकालप्रमाणश्च । एष सम्यक्त्वप्रथमलाभः । अस्मिंश्च सम्यक्त्वे लभ्यमाने सति कश्चित्सम्यक्त्वेन समं देशविरतिं सर्वविरतिं वा प्रतिपद्यते । उक्तं च शतकबृहच्चूर्णौ–"उवसमसम्मद्दिट्ठी अंतरकरणट्ठिओ कोई देसविरयं पि लभेइ, कोई पमत्तापमत्तभावं पि, सासायणो पुण न किं पि लहेइ त्ति" एतत्सम्यक्त्वाद्धायां च जधन्यतः समयशेषायां परं उत्कर्षतः षडावलिकाशेषायां कश्चित् आसादनं सासादनत्वं याति । स च नियमात्तदनन्तरं मिथ्यात्वमेव प्रपद्यते ॥ २३ ॥

ओकड्डियस्स=आकर्षेल, दलियस्स=त्रण पुंजना दलिकनी, विहिणा=(गोपुच्छाकार) विधिवडे निषेक रचना करे छे. तिसु=त्रणमांथी, अज्झ०रूवस्स=अध्यवसायानुसारे, एक्कय रयस्स=एक पुंजनो, उदओ=उदय थाय छे २२ । सम्मत्त०लंभो=औपशमिक समकितनो

संप्रति सम्यग्दृष्टेः स्वरूपमाह—

सम्मद्दिट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहइ । सद्दहइ असब्भावं, अजाणमाणो गुरुनियोगा ॥ २४ ॥

सम्मद्दिट्ठि त्ति–सम्यग्दृष्टिर्जीवो गुरुभिरुपदिष्टं प्रवचनं नियमात् यथावत् श्रद्धत्ते । एवं तुरेवकारार्थो भिन्नक्रमश्च । यः पुनः सम्यग्दृष्टिरपि असद्भावमसद्भूतं प्रवचनं श्रद्दधाति सोऽवश्यमजानन् स्वयं सम्यक्परिज्ञानविकलः सन् । यद्वा गुरोस्तथाविधसम्यक्परिज्ञानविकलस्य मिथ्यादृष्टेर्वा जमालिप्रख्यस्य नियोगादाज्ञापारतंत्र्यात्, नान्यथा× ॥ २४ ॥

मिथ्यादृष्टेः स्वरूपमाह—

मिच्छद्दिट्ठी नियमा, उवइट्ठं पवयणं न सद्दहइ । सद्दहइ असब्भावं, उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥ २५ ॥

मिच्छद्दिट्ठि त्ति–मिथ्यादृष्टिर्जीवो गुरुभिरुपदिष्टं प्रवचनं नियमात् न श्रद्धत्ते न सम्यग्भावेनात्मनि परिणमयति, श्रद्धत्ते

×(य०उ०८) अत्र च सहजिकमज्ञानं ज्ञानावरणविपाकोदयसान्निध्यमात्रादुपजायमानं न सम्यक्त्वप्रतिबन्धकं। गुरुनियोगजनितं

प्रथम लाभ, सव्वोवसमा=मिथ्यात्वनी सर्वोपशमनाथी थाय. तहा=तेमज, विगिट्ठा य=बृहत्प्रमाणवाळो छे. छालिग०परं=परंतु ६ आवलिका शेष छते, कोइ=कोइक जीव, आसाणं=सास्वादनपणाने, गच्छेज्जा=पामे छे. २३ सम्मद्दिट्ठी जीवो=समकिती जीव उवइट्ठं=(गुरुए) उपदेशेल, पवयणं तु=प्रवचन तो, सद्दहइ=यथार्थ सद्दहे छे. अजाणमाणो=अजाण छतो, गुरुनियोगा=(यथार्थ ज्ञानरहित) गुरुना नियोगथी (परतन्त्रताथी), असब्भावं=असद्भूतने, सद्दहइ=सद्दहे छे. २४ मिच्छद्दिट्ठी=मिथ्यात्वी, उवइट्ठं=गुरुए उपदेशेल, पवयणं=प्रवचनने, नियमा=निश्चे, न सद्दहइ=न सद्दहे, उवइट्ठं=उपदेशेल, वा=अथवा, अणुवइट्ठ, अनुपदिष्ट, असब्भावं=असद्भावने, सद्दहइ=सद्दहे छे. २५

चेत् उपदिष्टमनुपदिष्टं वा प्रवचनं तर्हि असद्भूतं मिथ्यारूपमित्यर्थः, श्रद्धत्ते, न सम्यग्यथावदिति× ॥ २५ ॥

सम्मामिच्छद्दिट्ठी, सागारे वा तहा अणागारे । अह वंजणोग्गहम्मि य सागारे होइ नायव्वो ॥ २६ ॥

सम्मामिच्छद्दिट्ठि त्ति–सम्यग्मिथ्यादृष्टिरुपयोगे चिन्त्यमानः साकारोपयोगे वा भवति, अनाकारोपयोगे वा । यदि साकारोपयोगे तर्हि व्यञ्जनावग्रह एव व्यावहारिकेऽव्यक्तज्ञानरूपे भवति, नार्थावग्रहे । यस्मात्संशयज्ञानिप्रख्यो जिनप्रवचनु मध्यस्थस्य विनेयस्य नानामतदर्शिनो मिथ्यात्वमदेशोदयमहिम्ना विप्रतिपत्त्युपनीतप्रवचनार्थसंशयरूपं सम्यक्त्वप्रतिबन्धामिमुखमपि तमेव सच्चमित्याद्यालम्बनरूपोत्तेजकप्रभावान्न सम्यक्त्वं प्रतिबध्नुमलमित्यज्ञानाद् गुरुनियोगाद्वाऽसद्भूतार्थश्रद्धानेऽपि भावतो जिनाज्ञाप्रामाण्याभ्युपगन्तुर्न शुभात्मपरिणामरूपसम्यक्त्वोपघात इति भावनीयं । एतेन यदुच्यते केनचित् परपक्षनिश्रितस्य सर्वथा सम्यक्त्वं न भवत्येवेति तदपास्तं द्रष्टव्यं, अनभिनिविष्टस्य मिथ्यादृष्टिनिश्रयाऽपि तदुपनीतासद्भूतार्थश्रद्धानस्यास्वारसिकत्वेन स्वारसिकजिनवचनश्रद्धानाविरोधित्वात् । अभिनिविष्टस्य तु स्वपक्षपतितस्य परपक्षपतितस्य वा मिथ्यादृष्टित्वानपायादित्यलं प्रपञ्चेन।

×(य०उ०९) एकस्मिन्नपि प्रवचनार्थेऽभिनिवेशेनासद्भूतश्रद्धाने तदितरसकलसद्भूतार्थश्रद्धानस्याप्यश्रद्धानकल्पत्वात् । यत्त्वभिन्नसूत्रार्थचारिणो बहोरज्ञानतपसि पतनं स्वल्पस्य च मार्गानुसारित्वमुद्घुष्यते तदगीतार्थस्य गीतार्थानिश्रितस्यानभिनिवेशे सति फलमधिकृत्येति ध्येयम् ॥

गाथार्थ—सम्मा०हिट्ठी=मिश्रदृष्टि, सागारे=साकारोपयोगमां, वा तहा=तेमज, अणागारे=अनाकारोपयोगमां वर्ते. अह=वळी, सागारे=साकारोपयोगमां, वंजणो०म्मि अ=(व्यावहारिक) व्यंजनावग्रहमां, होइ नायव्वो=होय एम जाणवुं, २६

नानुरागविद्वेषविकलः सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्वर्ण्यते, न सम्यग्मिश्रश्रयज्ञानी । संशयज्ञानिप्रख्यता च व्यञ्जनावग्रह एवेति ॥२६॥

तदेवं कृता सम्यक्त्वोत्पादप्ररूपणा (१) । संप्रति चारित्रमोहनीयस्योपशमनाऽभिधीयते, तत्र यश्चारित्रमोहनीयोपशमनामारभते तमाह—

वेयगसम्मदिट्ठी, चरित्तमोहुवसमाए चिट्ठंतो (चेट्ठंतो)। अजउ देसजई वा, विरतो व विसोहिअद्धाए ॥२७॥

वेयग त्ति—चारित्रमोहनीयोपशमनाय चेष्टते यतते । वेदकसम्यग्दृष्टिः क्षयोपशमिकसम्यग्दृष्टिर्न प्राग्व्यावर्णितौपशमिकसम्यक्त्वयुक्तः । स चायतोऽविरतः देशयतिर्वा देशविरतो वा सर्वविरतो वा, एतेषां च प्रत्येकं द्वे द्वे अद्धे भवतः । तद्यथा—संक्लेशाद्धा विशोध्यद्धा च । तत्र विशोध्यद्धायां वर्तमानश्चारित्रमोहनीयोपशमनाय यतते, न संक्लेशाद्धायां ॥२७॥

एतेषां चाविरतादीनां त्रयाणामपीदं लक्षणं—

अण्णाणाणब्भुवगम—जयणाहजओ अवज्जविरईए । एगव्वयाइ चरिमो, अणुमइमित्तो त्ति देसजई ॥२८॥
अणुमइविरओय जई, दोण्ह वि करणाणि दोण्हि न उ तईयं। पच्छा गुणसेढी सिं तावइया आलिगा उप्पिं ॥२९॥

गाथार्थ—अजओ=अविरति, देसजई वा=देशविरति, विरतो व=अथवा सर्वविरति एवो, वेय०दिट्ठी=वेदकसमकिती, विसोहि अद्धाए=विशुद्धयद्धामां, चिट्ठतो=वर्ततो, चरि०समाए=चारित्रमोहनीयनो उपशमक जाणवो. २७ अन्नाण०जओ=अज्ञान, अनभ्युपगम, अने अजयणावडे अविरति होय छे. एगव्वयाइ=एक व्रतग्रहणादिथी, चरिमो=अंते, अणुमइमित्तोत्ति=अनुमतिमात्र सुधी, अवज्जविरईए=पापनी विरतिवाळो, देसजई=देशविरति जाणवो. २८ अणु०जई=अनुमति मात्रथी विरत ते सर्वविरति यति. दोन्हवि=

अण्णाणेत्यादि-तत्र यो व्रतानि न जानाति, न चाभ्युपगच्छति, न तत्पालनाय यतते, सोऽज्ञानानभ्युपगमायतनाभिरविरतः । अत्र च त्रिभिः पदैरष्टौ भङ्गाः, तत्राद्येषु सप्तसु भङ्गेषु नियमादविरतोऽयतो व्रतानि घुणाक्षरन्यायेन पालितान्यपि न फलवन्ति भवन्ति, किंतु सम्यग्ज्ञानसम्यग्ग्रहणपुरस्सरपालितानि । तत्राद्येषु चतुर्षु सम्यग्ज्ञानाभावः, उत्तरेषु च त्रिषु सम्यग्ग्रहणसम्यक्-पालनाभावः, इति आद्येषु सप्तसु भङ्गेषु वर्तमानो नियमादविरतः । चरमे तु भङ्गे वर्तमानो देशविरतो भवति, देशतोऽवद्यस्य पापस्य विरतेर्विरतिसद्भावात् । स चैकव्रतादिः एकव्रतग्राहि, द्विव्रतग्राही, एवं तावज्ज्ञेयो यावच्चरमोऽनुमतिमात्रोऽनुमतिमात्रसेवी

१ नो जाणइ नो आदरइ नो पालइ जिणधम्मु । तिपएहिं अट्ठ भंगा, सेसा दिट्ठन्तया नेय ॥१॥ सम्मं न याण (सम्मत्तजाण) तवलिंगधारया अगियत्थ सेणियाईया । पंचुत्तरसुर संविग्गपक्खिणो अट्ठमेसु जई ॥२॥ पढमा मिच्छदिट्ठी अरिहा निव्वाणगमणस्स ॥३॥ स्थापना चेयम्-

१ न जाणइं, न आदरइं, न पालइं-सर्वलोक ।	५ जाणइं, न आदरइं-न पालइ, श्रेणिकादिक
२ न जाणइं, न आदरइं, पालइं-(अज्ञान) तपस्वी	६ जाणइं, न आदरइं, पालइं-अनुत्तरदेव
३ न जाणइं, आदरइं न पालइं-पार्श्वस्थ,	७ जाणइं, आदरइं, न पालइं-संविग्नपाक्षिक
४ न जाणइं, आदरइं, पालइं-अगीतार्थ	८ जाणंइं, आदरइं, पालइं-महाव्रतधारी

(देशवि०अने सर्ववि०) ए बंने, भावोमां, करणाणि दोन्हि=प्रथमनां बे करणो, न उ तइयं=त्रीजुं न होय. पच्छा=पछीथी, सिं=ते बेनी, गुणसेढी=गुणश्रेणि, तावइया=तेटलाज प्रमाणवाळी, आलिगा उप्पिं=पण उदयावलिका उपर जाणवी. २९.

। शेषं तु पापं सकलमपि तेन प्रत्याख्यातं । अनुमतिरपि त्रिधा–प्रतिसेवनानुमतिः, प्रतिश्रवणानुमतिः, संवासानुमतिश्च । तत्र यः स्वयं परैर्वा कृतं पापं श्लाघते सावद्यारंभोपपन्नं वाऽशनाद्युपभुंक्ते, तदा तस्य प्रतिसेवनानुमतिः । यदा तु पुत्रादिभिः कृतं पापं शृणोति, श्रुत्वा चानुमनुते, न च प्रतिषेधति, तदा प्रतिश्रवणानुमतिः । यदा पुनः सावद्यारंभप्रवृत्तेषु पुत्रादिषु केवलं ममत्वमात्रयुक्तो भवति, नान्यत् किंचित्प्रतिशृणोति श्लाघते वा, तदा संवासानुमतिः । तत्र यः संवासानुमतिमात्रमेव सेवते, स चरमो देशविरतः, स चान्यसर्वश्रावकाणां गुणोत्तमः । यः पुनः संवासानुमतेरपि विरतः, स यतिरित्युच्यते । कथं पुनर्देशविरतिसर्वविरत्योर्लाभः ? उच्यते 'दोण्हेत्यादि' द्वयोरपि देशविरतिसर्वविरत्योः प्रतिपत्तौ द्वे करणे यथाप्रवृत्तकरणापूर्वकरणाख्ये भवतः, न तु तृतीयमनिवृत्तिकरणं । कथमिति चेदुच्यते–इह करणकालात्प्रागप्यन्तर्मुहूर्तं यावत् प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्धया विशुद्धया प्रवर्धमानोऽशुभानां कर्मणामनुभागं द्विस्थानकं करोतीत्यादि तदेव वक्तव्यं यावद्यथाप्रवृत्तं करणं, तदपि तथैव वक्तव्यं । ततोऽपूर्वकरणं, तदपि तथैव ।नवरमिह गुणश्रेणिर्न वक्तव्या । अपूर्वकरणाद्धायां च परिसमाप्तायामनन्तरसमये नियमादेशविरतिं सर्वविरतिं वा प्रतिपद्यते । ततोऽनिवृत्तिकरणं तृतीयमिति नावाप्यते । इह यद्यविरतः सन् यथोक्ते करणे करोति । ततो देशविरतिं सर्वविरतिं वा प्रतिपद्यते । अथ देशविरतस्तर्हि सर्वविरतिमेव । 'पच्छेत्यादि' द्वयोः करणयोर्गतयोः सतोः पश्चादेशविरतिं सर्वविरतिं वा प्रतिपन्नः सन् उदयावलिकाया उपरि गुणश्रेणिमारचयति । तां च तावतीमन्तर्मुहूर्तप्रमाणां प्रतिसमयं दलिकरचनामधिकृत्यासंख्येयगुणवृद्धामारचयति । तथा देशविरतः सर्वविरतो वा स्वप्रतिपत्त्यनन्तरमन्तर्मुहूर्तं कालं यावदवश्यं प्रवर्धमानपरिणामो भवति । तत ऊर्ध्वं त्वनियमः । कोऽपि हि प्रवर्धमानपरिणाम एव भवति । कोऽपि स्वभावस्थः । कोऽपि हीनपरिणामः । तत्र स्वभा-

वस्थे हीनपरिणामे वा देशविरते सर्वविरते वा स्थितिघातरसघातौ न भवतः ॥ २८-२९ ॥

परिणामपच्चया उ, णाभोगगया गया अकरणा उ। गुणसेढी सिं निच्चं, परिणामा हाणिवुड्ढिजुया ॥३०॥

परिणाम त्ति-परिणामप्रत्ययात् परिणामह्रासात् कारणादित्यर्थः। अनाभोगगता आभोगरहिता ये देशविरतिपरिणामात् सर्वविरतिपरिणामाद्वा गताः परिभ्रष्टास्ते अकरणाः करणरहिता एव भूयोऽपि तां पूर्वप्रतिपन्नां देशविरतिं सर्वविरतिं वा प्रतिपद्यन्ते। एतदुक्तं भवति-ये आभोगमन्तरेण कथञ्चित् परिणामह्रासतो देशविरता अविरतिं गताः, सर्वविरताश्च देशविरतिमविरतिं वा गताः, ते परिणामवशेन भूयोऽपि तामेव पूर्वप्रतिपन्नां देशविरतिं सर्वविरतिं वा प्रतिपद्यमाना अकृतकरणा एव प्रतिपद्यन्ते। ये पुनराभोगतो देशविरतेः सर्वविरतेर्वा प्रतिपतिताः, आभोगेनैव च मिथ्यात्वं गताः, ते पुनरपि जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तेन कालेन उत्कर्षतः प्रभूतेन कालेन देशविरतिं सर्वविरतिं वा प्रतिपत्तुकामा उक्तप्रकारेण करणपुरःसरमेव प्रतिपद्यन्ते। तथा यावद् देशविरतिं सर्वविरतिं वा प्रतिपालयति तावद् गुणश्रेणिमपि समये समये करोति। नवरं प्रवर्धमानपरिणामस्तत्तत्परिणामानुसारेण कदाचिदसंख्येयभागाधिकां कदाचित्संख्येयभागाधिकां कदाचित्संख्येयगुणां कदाचिदसंख्येयगुणां करोति। हीयमानपरिणामस्तूक्तप्रकारेण हीयमानां, अवस्थितपरिणामस्तु तावन्मात्रामिति। एषा चैवं दलिकापेक्षया द्रष्टव्या। कालतः पुनः

गाथार्थ—परि०या उ=वळी परिणामहानिरूप हेतुथी, णाभोगगया गया=अनाभोगपणे देशविरत्यादिक भावथी पडया ते, अकरणा उ=करण कर्या विना ते भावने पामे. हाणि०जुया=हानिवृद्धियुक्त, परिणामा=परिणामवाळी, सिं=ते बेनी, निच्चं=नित्य, गुणसेढी=गुणश्रेणि होय छे. ३०

सर्वदापि तावन्मात्रैव× । अधश्च क्रमशोऽनुभवतः क्षीयमाणेषु समयेषूपर्युपरि वर्धते इति ॥ ३० ॥

तदेवमुक्तो देशविरतिसर्वविरतिलाभः (२-३) । संप्रत्यनन्तानुबन्धिनां विसंयोजना भण्यते । अथ चारित्रमोहनीयोपशमनाधिकारे किमर्थमनन्तानुबन्धिनां विसंयोजनाऽभिधीयते ? उच्यते—इह यश्चारित्रमोहनीयमुपशमयितुमारभते सोऽवश्यमनन्तानुबन्धिनो विसंयोजयति । तेन तद्विसंयोजना नियमादिह वक्तव्या । तांश्चानन्तानुबन्धिनः श्रेणिमप्रतिपद्यमाना अपि वेदकसम्यग्दृष्टयश्चतुर्गतिका विसंयोजयंति । तथा चाह—

चउगइया पज्जत्ता, तिन्नि वि संयोयणा विजोयंति । करणेहिं तीहिं सहिया, नंतरकरणं उवसमो वा ३१

चउगइय त्ति—चतुर्गतिका नैरयिकतिर्यङ्मनुष्यदेवाः सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्ताः त्रयोऽपि अविरतदेशविरतसर्वविरताः।तत्राविरत सम्यग्दृष्टयश्चतुर्गतिकाः, देशविरतास्तिर्यञ्चो मनुष्या वा, सर्वविरता मनुष्या एव, संयोजनान् अनन्तानुबन्धिनो वियोजयन्ति विनाशयन्ति। किंविशिष्टाः सन्त इत्याह—करणैस्त्रिभिःसहिताः।करणानि प्रागिव वक्तव्यानि।नवरमिहान्तरकरणं न वक्तव्यं,उपशमो वा । उपशमश्चानन्तानुबन्धिनां न भवतीति गाथाक्षरार्थः।भावना त्वियम्—अनन्तानुबन्धिनः क्षपयितुं यथाप्रवृत्तादीनि त्रीणि करणानि प्रारभन्ते । करणवक्तव्यता च सर्वापि प्रागिवात्रापि वेदितव्या । नवरमिहापूर्वकरणे प्रथमसमयादेवारभ्यानन्तानुबन्धिनां

×(य०उ०१०) उक्तं च—"परिणामपच्चएणं चउव्विह हाइ वडए वा वि । परिणामवड्ढियाए गुणसेढिं तत्तियं रयइ ॥

गाथार्थ—चउ०पज्जत्ता=चारे गतिना पर्याप्त, तिन्नि वि=अविरति, देशविरति अने सर्वविरति, करणेहि०सहिया=३करण पूर्वक, संयोयणा=अनंतानुबंधिनी, विजोयंति=विसंयोजना करे छे. नंतर०समो वा=परंतु अंतरकरणअने उपशम न करे. ३१

×गुणसंक्रमोऽपि वक्तव्यः । तद्यथा–अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयेऽनन्तानुबन्धिनां दलिकं शेषकषायरूपपरप्रकृतौ स्तोकं संक्रमयति । ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं । ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणमित्येवं वक्तव्यं । एष गुणसंक्रमः । अनिवृत्तिकरणे च प्रविष्टः सन् प्रागुक्तस्वरूपेणोद्वलनासंक्रमेण निरवशेषान् विनाशयति । किंत्वधस्तादावलिकामात्रं मुञ्चति । तदपि च स्तिबुकसंक्रमेण वेद्यमानासु प्रकृतिषु संक्रमयति । ततोऽन्तर्मुहूर्तात्परतोऽनिवृत्तिकरणपर्यवसाने शेषकर्मणां स्थितिघातरसघातगुणश्रेणयो न भवन्ति, किंतु स्वभावस्थ एव भवति ॥ ३१ ॥

तदेवमुक्ताऽनन्तानुबन्धिनां विसंयोजना (४)। ये त्वाचार्या अनन्तानुबन्धिनामप्युपशमनां मन्यन्ते तन्मतेनोपशमनाविधिः ×१षडशीतिवृत्तेरवसेयः । संप्रति दर्शनमोहनीयक्षपणाविधिमाह—

×(य०उ०११) अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयेऽनन्तानुबन्धिनां दलिकं शेषकषायरूपपरप्रकृतौ स्तोकं सङ्क्रमयति, ततो द्वितीयसमयेऽसङ्ख्येयगुणं, ततोऽपि तृतीयसमयेऽसङ्ख्येयगुणं, एवं तावद्वाच्यं यावदपूर्वकरणचरमसमयः । एष गुणसङ्क्रमः, एष च प्रथमस्थितिखण्डस्य स्थित्यपेक्षया बृहत्तरस्य द्वितीयादिस्थितिखण्डानां च विशेषविशेषहीनानां यद् घातनं तेन निष्पन्नो य उद्वलनासङ्क्रमस्तदनुविद्धो द्रष्टव्यः । तदनेनोद्वलनासङ्क्रमानुविद्धेन गुणसंक्रमेणापूर्वकरणेऽनन्तानुबन्धिनः शेषप्रकृतिरूपतावस्थापनेन विनाशयति । अनिवृत्तिकरणे च वर्तमानः सन् गुणसङ्क्रमानुविद्धेनोद्वलनासङ्क्रमेण निरवशेषान् विनाशयति, किं त्वधस्तादावलिकामात्रं मुञ्चति, तदपि च स्तिबुकसङ्क्रमेण वेद्यमानासु प्रकृतिषु सङ्क्रमयति । ततोऽन्तर्मुहूर्त्तात्परतोऽनिवृत्तिकरणपर्यवसाने शेषकर्मणामपि स्थितिघातरसघातगुणश्रेणयो न भवन्ति, किं तु स्वभावस्थ एव भवति चतुर्विंशतिसत्कर्मा । ×१(य०उ०१२) ये त्वाचार्या

दंसणमोहे वि तहा, कयकरणद्धाए पच्छिमे होइ। जिणकालगो मणुस्सो, पट्ठवगो अट्ठवासुप्पिं ॥३२॥

अनन्तानुबन्धिनामुपशमनां मन्यन्ते, तन्मतेनायमुपशमनाविधिर्द्रष्टव्यः—अविरतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमत्तसंयतानामन्यतमोऽनन्तानुबन्ध्युपशमनां चिकीर्षुः प्रागुक्तक्रमेण यथाप्रवृत्तकरणमपूर्वकरणं च करोति। केवलमिहापूर्वकरणे गुणश्रेणिरन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणानां स्थितीनामुपरि याः स्थितयस्तन्मध्यादलिकं गृहीत्वोदयावलिकाया उपरितनीषु स्थितिषु प्रतिसमयमसङ्ख्येयगुणनया निक्षेपरूपा द्रष्टव्या, शेषं तथैव। ततोऽनिवृत्तिकरणे प्रविष्टोऽनिवृत्तिकरणाद्धायाः सङ्ख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्स्वेकस्मिन् भागेऽवतिष्ठमानेऽनन्तानुबन्धिनामधस्तादावलिकामात्रं मुक्त्वाऽन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणमन्तरकरणमभिनवस्थितिबन्धाद्धासमेनान्तर्मुहूर्त्तप्रमाणेन कालेन करोति। अन्तरकरणसत्कं च दलिकमुत्कीर्यमाणं परप्रकृतिषु बध्यमानासु प्रक्षिपति। प्रथमस्थितिगतं च दलिकमावलिकामात्रं वेद्यमानासु परप्रकृतिषु स्तिबुकसङ्क्रमेण सङ्क्रमयति। अन्तरकरणे च कृते सति द्वीतियसमयेऽनन्तानुबन्धिनामुपरितनस्थितिदलिकमुपशमयितुमारभते। तद्यथा—प्रथमसमये स्तोकमुपशमयति, द्वितीयसमयेऽसङ्ख्येयगुणं, तृतीयसमयेऽसङ्ख्येयगुणं, एवं तावद्वाच्यं यावदन्तर्मुहूर्त्तं। एतावता च कालेन साकल्येनानन्तानुबन्धिन उपशमिता भवन्ति। उपशमिता नाम यथा रेणुनिकरः सलिलबिन्दुनिवहैरभिषिच्याभिषिच्य द्रुघणादिभिर्निष्कुट्टितो निष्पन्दो भवति तथा कर्मरेणुनिकरोऽपि विशोधिसलिलप्रवाहेण परिषिच्य परिषिच्यानिवृत्तिकरणरूपद्रुघणनिष्कुट्टितः सङ्क्रमणोदयोदीरणानिधत्तिनिकाचनाकरणानामयोग्यो भवति। तदेवमाचार्यान्तरमतेनानन्तानुबन्धिनामुपशमनाऽप्यभिहिता।

गाथार्थ—दंसण०तहा=दर्शनमोहनीयनो क्षपक पण तेवी रीते, अट्ठवासुप्पिं=अष्ट वर्षथी अधिक आयुष्यवाळो, जिणकालगो=

दंसणमोहे वि त्ति–इह दर्शनमोहनीयक्षपणायाः प्रस्थापक आरंभको मनुष्यो जिनकालको जिनकालसंभवी। जिनकालश्च ऋषभजिनविचरणकालप्रभृतिको जंबूस्वामिकेवलोत्पत्तिलाभपर्यवसानो वेदितव्यः। तथा वर्षाष्टकस्योपरि वर्तमानो वज्रर्षभनाराचसंहननश्च भवति। दर्शनमोहेऽपि च क्षपणा तथैव वक्तव्या, यथा प्रागनन्तानुबन्धिनामुक्ता। तत्र यद्यप्येवं सामान्येनोक्तं तथापि किञ्चिद्विशेषतोऽभिधीयते–इह दर्शनमोहनीयक्षपणार्थमभ्युद्यतस्त्रीणि करणान्यारभते। तद्यथा–यथाप्रवृत्तकरणमपूर्वकरणमनिवृत्तिकरणं च। एतानि च त्रीण्यपि करणानि प्रागिव वक्तव्यानि। नवरमपूर्वकरणस्य प्रथमसमये एवानुदितयोर्मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वयोर्दलिकं गुणसंक्रमेण सम्यक्त्वे प्रक्षिपति। उद्वलनासंक्रममपि तयोरेवमारभते।तद्यथा–प्रथमस्थितिखंडं बृहत्तरमुद्वलयति। ततो द्वितीयं विशेषहीनं। ततोऽपि तृतीयं विशेषहीनं। एवं तावद्वक्तव्यं यावदपूर्वकरणचरमसमयः। अपूर्वकरणप्रथमसमये च यत् स्थितिसत्कर्मासीत्, तत्तस्यैव चरमसमये संख्येयगुणहीनं जातं। ततोऽनिवृत्तिकरणे प्रविशति। अत्रापि स्थितिघातादीन् सर्वानपि तथैव करोति। अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये च दर्शनत्रिकस्यापि देशोपशमनानिधत्तिनिकाचना व्यवच्छिद्यन्ते। दर्शनमोहनीयत्रिकस्य च स्थितिसत्कर्म अनिवृत्तिकरणप्रथमसमयादारभ्य स्थितिघातादिभिर्घात्यमानं स्थितिखंडसहस्रेषु गतेष्वसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्थितिसत्कर्मसमानं भवति। ततः स्थितिखंडसहस्रपृथक्त्वे गते सति चतुरिन्द्रियस्थितिसत्कर्मसमानं भवति। ततोऽपि तावन्मात्रेषु खंडेषु गतेषु त्रीन्द्रियस्थितिसत्कर्मसमानं। ततोऽपि तावन्मात्रेषु खंडेषु गतेषु द्वीन्द्रियस्थितिसत्कर्मसमानं। ततोऽपि तावन्मात्रेषु खंडेषु गतेष्वेकेन्द्रियस्थितिसत्कर्मसमानं। ततोऽपि तावन्मात्रेषु खंडेषु गतेषु पल्योपममात्रप्रमाणं भवति।

जिन कालिक, मणुस्सो=मनुष्य, पट्ठवगो=प्रस्थापक, पच्छिमे=अन्त्य खंड खपावतां, कय०द्धाए=कृतकरणाद्धामां, होइ=होय छे. ३२

एतच्चूर्णिकारमतेनोक्तं।पञ्चसंग्रहकारमतेन तु पल्योपमसंख्येयभागमात्रं।तदुक्तं पञ्चसंग्रहे–"ठितिखंडसहस्साइं एक्केक्के अंतरम्मि गच्छन्ति। पलिओवमसंखंसे दंसणसंते तओ जाए ॥१॥(संखेज्जम) संखेज्जा भागा खंडे ईत्यादि"।एकैकस्मिन्नन्तरे इति असंज्ञिपञ्चेन्द्रियचतुरिन्द्रियादिसमानस्थितिसत्कर्मभावनानामपान्तराले इति। तत एकं संख्येयतमं भागं मुक्त्वा शेषं सर्वमपि त्रयाणां दर्शनमोहनीयानां विनाशयति। ततस्तस्यापि प्राग्मुक्तसंख्येयभागस्यैकं संख्येयभागं मुक्त्वा शेषान् संख्येयान् भागान् विनाशयति। एवं स्थितिघाताः सहस्रशो व्रजन्ति।तदनन्तरं च मिथ्यात्वस्यासंख्येयान् भागान् खंडयति। सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोस्तु संख्येयान् भागान् खंडयति।तत एवं स्थितिखंडेषु प्रभूतेषु गतेषु सत्सु मिथ्यात्वस्य दलिकमावलिकामात्रं जातं। सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोस्तु पल्योपमासंख्येयभागमात्रं। अमूनि च स्थितिखंडानि खंड्यमानानि मिथ्यात्वसत्कानि सम्यक्त्वसम्यङ्मिथ्यात्वयोः प्रक्षिपति। सम्यङ्मिथ्यात्वसत्कानि सम्यक्त्वे, सम्यक्त्वसत्कानि त्वधस्तात् स्वस्थाने इति। तदपि च मिथ्यात्वदलिकमावलिकामात्रं स्तिबुकसंक्रमेण सम्यक्त्वे प्रक्षिपति। तदनन्तरं सम्यक्त्वसम्यङ्मिथ्यात्वयोरसंख्येयान् भागान् खंडयति, एकोऽवशिष्यते। ततस्तस्याप्यसंख्येयान् भागान् खंडयति, एकं मुञ्चति। एवं कतिपयेषु स्थितिखंडेषु गतेषु सम्यङ्मिथ्यात्वमावलिकामात्रं जातं। तदानीं च सम्यक्त्वस्य स्थितिसत्कर्म अष्टवर्षप्रमाणं भवति। तस्मिन्नेव च काले सकलप्रत्यूहापगमतो निश्चयनयमतेन दर्शनमोहनीयक्षपक उच्यते। अत ऊर्ध्वं सम्यक्त्वस्य स्थितिखंडमन्तर्मुहूर्तप्रमाणमुत्किरति। तद्दलिकं तूदयसमयादारभ्य प्रक्षिपति। केवलमुदयसमये सर्वस्तोकं। ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं। ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणं। एवं तावद्वक्तव्यं यावद् गुणश्रेणीशिरः। तत ऊर्ध्वं तु विशेषहीनं विशेषहीनं तावद्यावच्चरमा स्थितिः। एवमान्तर्मौहूर्तिकान्यनेकानि

खंडान्युत्किरति निक्षिपति च तावद्यावद् द्विचरमं स्थितिखंडं । द्विचरमात्तु खंडाच्चरमखंडं संख्येयगुणं । तदपि च गुणश्रेण्याः संख्येयतमो भागः । अन्याश्च तदुपरि संख्येयगुणाः स्थितयः । उत्कीर्य च तद्दलिकमुदयसमयादारभ्यासंख्येयगुणतया प्रक्षिपति । तद्यथा–उदयसमये स्तोकं । ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं । ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणं । एवं तावद्वाच्यं यावद् गुणश्रेणिशिरः । अत ऊर्ध्वमुत्कीर्यमाणमेव चरमस्थितिखंडं । ततो न तत्र प्रक्षिपति । चरमे च स्थितिखंडे उत्कीर्णे सत्यसौ क्षपकः कृतकरण इत्युच्यते । तथा चाह—'कयकरणद्धाए पच्छिमे होइ त्ति' पश्चिमे चरमखंडे उत्कीर्णे कृतकरणाद्धायां वर्तते कृतकरणो भवतीत्यर्थः । अस्यां कृतकरणाद्धायां वर्तमानः कश्चित्कालमपि कृत्वा चतुसृणां गतीनामन्यतमस्यां गतावुत्पद्यते । लेश्यायामपि च पूर्वं शुक्ललेश्यायामासीत्, संप्रति त्वन्यतमस्यां गच्छति । तदेवं प्रस्थापको मनुष्यो निष्ठापकस्तु चतुर्ष्वपि गतिषु भवति । उक्तं च–'पट्ठवगो य मणुस्सो निट्ठवगो चउसु वि गईसु' । अथोच्येत क्षीणसप्तको गत्यन्तरं संक्रामन् कतितमे भवे मोक्षमुपयाति ? उच्यते—तृतीये चतुर्थे वा भवे । तथाहि–यदि देवगतिं नरकगतिं वा संक्रामति ततो देवभवान्तरितो नरकभवान्तरितो वा तृतीयभवे मोक्षमुपयाति । अथ तिर्यक्षु मनुष्येषु वा समुत्पद्यते, तर्हि सोऽवश्यमसंख्येयवर्षायुष्केषु मध्ये समुत्पद्यते, न संख्येयवर्षायुष्केषु । ततस्तद्भवानन्तरं देवभवे, तस्माच्च देवभवाच्च्युत्वा मनुष्यभवं, ततो मोक्षं यातीति चतुर्थे भवे मोक्षगमनं× ।

×(य०उ०१३) इदं च प्रायोवृत्त्योक्तमिति संभाव्यते, यतः क्षीणसप्तकस्य कृष्णस्य पञ्चमभवेऽपि मोक्षगमनं श्रूयते । उक्तं च—"नरयाउ नरभवम्मि देवो होऊग पंचमे कप्पे । तत्तो चुओसमाणो बारसमो अममतित्थयरो ॥१॥" इति । इत्थमेव दुःप्रसहादीनामपि क्षायिकसम्यक्त्वमागमोक्तं युज्यत इति यथागमं विभावनीयम् ॥

उक्तं च–"तइयचउत्थे तम्मि व भवम्मि सिज्झंति दंसणे खीणे। जं देवनिरइ असंखाउचरमदेहेसु ते होंति ॥१॥ तथा क्षीणसप्तकः पूर्वबद्धायुष्कोऽपि यदि तदानीं कालं न करोति तर्हि कश्चिद्वैमानिकेष्वेव बद्धायुष्कः, चारित्रमोहनीयस्योपशमनार्थमप्युद्यतते। अथाबद्धायुष्कस्ततः सप्तकक्षयानन्तरं क्षपकश्रेणिमेव प्रतिपद्यते ॥ ३२ ॥

उपशमश्रेणिं प्रतिपत्तुकामस्यैव प्रकारान्तरमाह—

अहवा दंसणमोहं, पुव्वं उवसामइत्तु सामन्ने। पढमठिइमावलियं, करेइ दोण्हं अणुदियाणं ॥३३॥

अहव त्ति–अथवेति प्रकारान्तरे। इह यदि वेदकसम्यग्दृष्टिः सन् उपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते ततो नियमाद्दर्शनमोहनीयत्रितयं पूर्वमुपशमयति। तच्च श्रामण्ये स्थितः सन्नुपशमयति। तथा चाह—श्रामण्ये संयमे स्थितः सन् दर्शनमोहनीयत्रितयमुपशमय्य, उपशमनाविधिः सकलोऽपि प्रागिव करणत्रयानुगो वेदितव्यः। नवरमन्तरकरणं कुर्वन्ननुदितयोर्मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः प्रथमां स्थितिमावलिकामात्रां करोति। सम्यक्त्वस्य चान्तर्मुहूर्तप्रमाणां। उत्कीर्यमाणं च दलिकमन्तरकरणसत्कं त्रयाणामपि सम्यक्त्वस्य प्रथमस्थितौ प्रक्षिपति। ×शेषं तथैव वक्तव्यं॥ ३३ ॥

×(य०उ०१४) शेष उपशमनाविधिरशेषोऽपि प्राग्वदेव करणत्रयानुगोऽवसेयः। अत्र मुखं व्यादाय स्वपितीत्यत्रेव क्त्वाप्रत्ययस्य व्यत्ययेन प्रयोग इति प्रथमस्थितिमावलिकां कृत्वा पूर्वं दर्शनमोहनीयमुपशमयतीति संमुखोऽर्थः। अन्तरकरणप्रवेशसमया-

गाथार्थ—अहवा=अथवा, सामण्णे=चारित्रमां, पुव्वं=प्रथम, दंसणमोहं=दर्शनमोहनीयने, उवसामइत्तु=उपशमावीने, दोण्हं०याणं=अनुदित मिश्र अने मिथ्यात्वनी, पढम०लियं=प्रथम स्थिति आवलिका प्रमाण, करेइ=करे छे. ३३

दर्शनत्रितयमुपशमय्य किं करोतीत्यत आह—

अद्धापरिवित्तीओ, पमत्त इयरे सहस्ससो किच्चा। करणाणि तिन्नि कुणए, तइयविसेसे इमे सुणसु ॥३४॥

अद्ध त्ति–अद्धापरिवृत्तीः संक्लेशविशोधिवशात् प्रमत्तभावे इतरस्मिंश्चाप्रमत्तभावे कालपरावृत्तीः सहस्रशः कृत्वा चारित्रमोहनीयोपशमनाय त्रीणि करणानि यथाप्रवृत्तादीनि करोति। ×तानि च प्रागिव वक्तव्यानि। केवलं तृतीयेऽनिवृत्तिकरणे इमान् वक्ष्य-

---

दारभ्यान्तर्मुहूर्तेऽतिक्रान्ते गुणसङ्क्रमावसाने चात्र विध्यातसङ्क्रमः सम्यक्त्वस्य भवति विध्यातसङ्क्रमेण मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वयोर्दलिकं सम्यक्त्वे प्रविशतीत्यर्थः। उक्तं च—"पढमुवसमंव सेसं अंतमुहु त्ताउ तस्स विज्झाओ" इति।

×(य०उ० १५) केवलमिह यथाप्रवृत्तकरणमप्रमत्तगुणस्थानके द्रष्टव्यं, अपूर्वकरणमपूर्वगुणस्थाने अनिवृत्तिकरणमनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानके। अत्रापि स्थितिघातादयः पूर्ववदेव प्रवर्त्तन्ते। नवरमिह सर्वासामशुभप्रकृतीनामबध्यमानानां गुणसंक्रमः प्रवर्तत इति वक्तव्यं। अपूर्वकरणाद्धायाश्च संख्येयतमे भागे गते सति निद्राप्रचलयोर्बन्धव्यवच्छेदः। ततः प्रभूतेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु सत्स्वपूर्वकरणाद्धायाः संख्येया भागा गता भवन्त्येकोऽवशिष्यते। अत्रान्तरे सुरद्विकपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकाहारकद्विकतैजसकार्मणसमचतुरस्रवर्णचतुष्कागुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासत्रसचतुष्कशुभखगतिस्थिरपञ्चकनिर्माणतीर्थकरलक्षणानां त्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धव्यवच्छेदः। ततः स्थितिखण्डपृथक्त्वे गते सत्यपूर्वकरणाद्धायाश्चरमसमये हास्यरतिभयजुगुप्सानां बन्धव्यवच्छेदः, हास्यरत्यरतिभयशोकजुगुप्सानामुदयव्यवच्छेदः, सर्वकर्मणां देशोपशमनानिधत्तिनिकाचनाकरणव्यवच्छेदश्च। ततोऽनन्तरसमये तृतीयेऽनिवृत्तिकरणे प्रविशति।

गाथार्थ—पमत्तइयरे=प्रमत्ताप्रमत्त भावमां, सहस्ससो=हजारो, अद्धापरावित्तीओ=अद्धा परावृत्ति, किच्चा=करीने, करणाणि तिन्नि

माणान् विशेषान् शृणुत ॥ ३४ ॥

तानेवाह—

अंतोकोडाकोडी, संतं अनियट्टिणो य उदहीणं । बंधो अंतोकोडी, पुव्वकमा हाणि अप्पबहू ॥ ३५ ॥

अंतो त्ति–अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमसमये आयुर्वर्जानां सप्तानां कर्मणां स्थितिसत्कर्म अन्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणं । बन्धः पुनरन्तःसागरोपमकोटीप्रमाणः× । सोऽपि च पूर्वक्रमेण हानिं गच्छति । तद्यथा–स्थितिबन्धे पूर्णे सत्यन्यं स्थितिबन्धं पल्योपमसंख्येयभागहीनं करोति । तस्मिन्नपि पूर्णे सत्यन्यं स्थितिबन्धं पल्योपमसंख्येयभागहीनं करोतीत्यादि । अल्पबहुत्वमपि पूर्वक्रमेणैव वेदितव्यं । तद्यथा--सर्वस्तोके नामगोत्रे, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्ये । ततो ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयान्तरायाणि विशेषाधिकानि, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यानि । ततोऽपि चारित्रमोहनीयं विशेषाधिकं । एतच्चाल्पबहुत्वं सर्वकालमपि द्रष्टव्यं,

×(य० उ० १६) पञ्चसंग्रहे त्वत्र—"अंतो कोडाकोडी बंधं सन्तं च सत्तण्हं" इतिग्रन्थेनायुर्वर्जानां सप्तकर्मणां बन्धस्य सत्तायाश्चाविशेषेणान्तः–कोटाकोटीप्रमाणत्वमेवोक्तं । तत्र यद्यपि प्रागुक्तेष्वपि करणेष्वेतावान् बन्ध एतावदेव च सत्कर्म सप्तकर्मणां प्राप्यते तथाप्यत्र बन्धसत्कर्मणी तदपेक्षया संख्येयगुणहीने द्रष्टव्ये इति विशेषः ।

=३करणो, कुणए=करे छे, इमे=आ, तइय विसेसे=३जा करणनी विशेषता, सुणसु=सांभळो. ३४ अनियट्टिणो य=अनिवृत्तिकरणमां. संतं=आयुष्य विना ७कर्मनी स्थितिसत्ता, अंतो०कोडी=अन्तःकोडाकोडी, उदहीणं=सागरोपम प्रमाण छे बंधो=बंध, अंतोकोडी= अन्तःकोडी सागरोपमनो छे. पुव्वकमा=पूर्वना क्रमे, हाणि=हानि, अप्पबहू=अने अल्पबहुत्व जाणवुं. ३५

यावदेतत्स्थानमिति ॥ ३५ ॥

ठिइकंडगमुक्कस्सं पि, तस्स पल्लस्स संखतमभागो । ठिइबंधबहुसहस्से, सेक्केक्कं जं भणिस्सामो ॥३६॥

ठिइ त्ति--उत्कृष्टमपि स्थितिकंडकं हन्यमानं तस्य चारित्रमोहनीयोपशमकस्यानिवृत्तिकरणे प्रविष्टस्य पल्योपमसंख्येयतमो भागः । जघन्यमपि तस्यैतावदेव । केवलं तल्लघुतरं द्रष्टव्यं । एतदुक्तं भवति--अनिवृत्तिकरणे प्रविष्टस्य स्थितिघात उत्कर्षतोऽपि पल्योपमसंख्येयतमभागप्रमाण एव प्रवर्तते, नाधिकः । अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये च तस्याप्रशस्तोपशमनाकरणनिधत्तिकरणनिकाचनाकरणानि व्यवच्छेदमायान्ति । स्थितिघातेषु सहस्रशो गतेषु सत्सु बध्यमानप्रकृतीनां बन्धः सागरोपमसहस्रपृथक्त्वप्रमाणो भवति ततोऽनिवृत्तिकरणाद्धायाः संख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्सु असंज्ञिपञ्चेन्द्रियबन्धतुल्यः स्थितिबन्धो भवति । तदनन्तरं स्थितिखंडपृथक्त्वे गते सति चतुरिन्द्रियबन्धसमानः स्थितिबन्धः । ततो भूयोऽपि स्थितिखंडपृथक्त्वे गते सति त्रीन्द्रियबन्धतुल्यः स्थितिबन्धः । तत एवमेव द्वीन्द्रियतुल्यः । ततोऽप्येवमेवैकेन्द्रियबन्धतुल्यः । इत ऊर्ध्वं स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु आयुर्वर्जानां सप्तानां कर्मणामेकैकं यद् भवति वक्तव्यं तद् भणिष्यामि ॥ ३६ ॥

तदेवाह—

पल्लदिवड्ढबिपल्लाणि, जाव पल्लस्स संखगुणहाणी । मोहस्स जाव पल्लं, संखेज्जइभागहाऽमोहा ॥३७॥

गाथार्थ—तस्स=तेनो, ठिइ०मुक्कस्सं पि=उत्कृष्ट स्थितिकंडक पण, पल्लस्स०भागो=पल्योपमना संख्यातमा भाग तुल्य छे. ठिइ०सहस्से=घणा हजार स्थितिबंध गये थके, सेक्केक्कं=एक एक कर्मनुं, जं=जे थाय ते, भणिस्सामो=कहीशुं ३६

तो नवरमसंखगुणा, एक्कपहारेण तीसगाणमहो। मोहे वीसग हेट्ठा य, तीसगाणुप्पिं तइयं च ॥३८॥

तो तीसगाणमुप्पिं च, वीसगाइं असंखगुणणाए। तईयं च वीसगाहि य, विसेसमहियं कमेणेति ॥३९॥

पल्लेत्यादि–पल्योपमसार्धपल्योपमद्विपल्योपमानि यावत् पूर्वक्रमेणैव हानिरल्पबहुत्वं चाइयमत्र भावना–एकेन्द्रियबन्धतुल्याद् बन्धादनन्तरं स्थितिखंडसहस्रेषु गतेषु नामगोत्रयोः स्थितिबन्धः पल्योपममात्रः। ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायवेदनीयानां सार्धपल्योपमप्रमाणः। मोहनीयस्य द्विपल्योपममानः। अमुं च पल्योपमसार्धपल्योपमादिकं स्थितिबन्धं यावत् प्राक्तनः स्थितिबन्धः सर्वोऽपि पूर्वस्मात् पूर्वस्मात् पल्योपमस्य संख्येयतमेन भागेन हीनो हीनतरो वेदितव्यः। स्थितिसत्कर्मणोऽपि चाल्पबहुत्वं तथैव।

गाथार्थ—पल्ल=(नाम गोत्रनो)१ पल्योपम, दिवड्ढ=(ज्ञानावरणादि४नो) दोढ पल्योपम, बिपल्लाणि जाव=मोहनीयनो २पल्योपम प्रमाण स्थितिबंध थाय छे. पल्लस्स०हाणि=पल्योपम प्रमाण स्थितिबंध थये थके संख्यातगुणहीन स्थितिबंध थाय छे. मोहस्स० पल्लं=मोहनीयनो पल्योपम प्रमाण बंध थए थके, तेनो संख्यातगुणहीन हीन घणा स्थितिबंध सुधी कहीने पछी, संखेज्जइ भागहा =संख्यात भागहीन कहेवो. तो नवरं=विशेषमां ते वखते, अमोह०गुणा=नाम गोत्रनो असंख्यातगुणहीन, त्यार पछी, एक्कपहारेण =एक साथेज, तीसगाणमहो मोहे=मोहनीयनो ३० को०को०वाळां ४कर्मनी नीचे, वीसग हेट्ठाय=त्यार पछी २०को०को०वाळांनी नीचे, तीस०तइयं च=त्यार पछी त्रीजु वेदनीय ज्ञानावरणादि ३०को०को०वाळांथी उपर, तो=त्यारपछी, तीस०वीसगाइं=२०को० को०स्थितिवाळां ३०को०को०वाळांथी उपर थाय छे. असं०णाह=मोहनीय असंख्यगुणहीन, कमेणेति=ए प्रमाणे क्रमे, तइयं च= त्रीजु वेदनीय, वीस०महियं=२०को०को०वाळांथी उपर, विशेषाधिक थाय छे. ३७-३८-३९.

'पल्लस्स संखगुणहाणि त्ति' पल्यस्य पल्योपमस्याधः स्थितिबन्धः संख्येयगुणहान्या भवति। एतदुक्तं भवति–यस्य कर्मणो यदा पल्योपमप्रमाणः स्थितिबन्धस्तस्य तदा तत्कालादारभ्यान्योऽन्यः स्थितिबन्धः संख्येयगुणहीनो भवति । ततश्चेदानीं नामगोत्रयोः पल्योपमप्रमाणात् स्थितिबन्धात् अन्यं स्थितिबन्धं संख्येयगुणहीनं करोति । शेषाणां तु कर्मणां पल्योपमसंख्येयभागहीनं । एवं कतिपयेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयान्तरायाणां पल्योपममात्रः स्थितिबन्धः मोहनीयस्य च सार्धपल्योपममात्रः । ततो ज्ञानावरणादीनामन्यः स्थितिबन्धः संख्येयगुणहीनः, मोहनीयस्य तु संख्येयभागहीनः । तत ऊर्ध्वं स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु मोहनीयस्य स्थितिबन्धः पल्योपमप्रमाणो भवति । ततो मोहनीयस्यान्यः स्थितिबन्धः संख्येयगुणहीनः प्रवर्तते । तदानीं च शेषकर्मणां स्थितिबन्धः पल्योपमसंख्येयभागप्रमाणः । अत्राल्पबहुत्वं चिन्त्यते–नामगोत्रयोः स्थितिसत्कर्म सर्वस्तोकं । ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयान्तरायाणां संख्येयगुणं, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यं । ततोऽपि मोहनीयस्य संख्येयगुणं । 'मोहस्स जाव पल्लं संखिज्जभागहं त्ति' यावन्मोहस्य पल्योपममात्रः स्थितिबन्धो न भवति, तावत्प्राक्तनः सर्वोऽपि मोहनीयस्य स्थितिबन्धः पल्योपमसंख्येयतमेन भागेन हीनो हीनतरो वेदितव्यः । पल्योपममात्रे स्थितिबन्धे सत्यन्यं स्थितिबन्धं संख्येयगुणहीनं करोति । एतच्च प्रागेवोक्तं । अस्माच्च संख्येयगुणहीनात् मोहनीयस्य स्थितिबन्धात् प्रभूतेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु सत्सु मोहनीयस्यापि स्थितिबन्धः पल्योपमस्य संख्येयभागमात्रो भवति । तदानीं च यद् भवति तदाह–'अमोहा तो नवरमसंखिज्जगुण त्ति' 'अमोहत्ति' मोहनीयवर्जयोर्नामगोत्रयोर्ग्रहणं । सर्वेषां कर्मणां पल्योपमसंख्येयभागमात्रे स्थितिबन्धे सति अमोहयोर्नामगोत्रयोरसंख्येयगुणहीनमन्यं स्थितिबन्धमारभते।शेषाणां तु संख्येयगुणहीनं।अत्र स्थितिसत्कर्मा-

पेक्षयाऽल्पबहुत्वं चिन्त्यते–सर्वस्तोकं नामगोत्रयोः सत्कर्म। ततो ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयान्तरायाणामसंख्येयगुणं, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यं। ततोऽपि मोहनीयस्य संख्येयगुणं। ततः स्थितिघातसहस्रेषु गतेषु सत्सु ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयान्तरायाणां स्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणहीनो भवति। तदानीं च स्थितिसत्कर्मापेक्षयाऽल्पबहुत्वं चिन्त्यते–सर्वस्तोकं नामगोत्रयोः सत्कर्म। ज्ञानावरणीयादीनां चतुर्णामसंख्येयगुणं, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यं। ततो मोहनीयस्यासंख्येयगुणं। ततः स्थितिघातसहस्रेषु गतेषु सत्सु 'एक्कपहारेण तीसगाणमहो मोहे त्ति' एकप्रहारेणैकहेलयैव त्रिंशत्कानां त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीस्थितिकानां ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयान्तरायाणामधस्तात् मोहनीयस्य स्थितिरसंख्येयगुणहीना भवति। नैवात्रान्यो विकल्पः कश्चित्करणीयः। इयमत्र भावना–पूर्वं मोहनीयस्य सत्कर्म ज्ञानावरणीयादीनामुपरिष्टादसंख्येयगुणमासीत्, संप्रति पुनरेकहेलयैव तेषामधस्तादसंख्येयगुणहीनं जातमिति। अत्राल्पबहुत्वमुच्यते–सर्वस्तोकं नामगोत्रयोः सत्कर्म। ततो मोहनीयस्यासंख्येयगुणं। ततोऽपि ज्ञानावरणीयादीनां चतुर्णामसंख्येयगुणं, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यं। ततः स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु 'वीसग हेट्ठा य' मोहनीयस्य स्थितिबन्ध एकहेलयैव विंशतिकयोर्विंशतिसागरोपमकोटीकोटीस्थितिकयोर्नामगोत्रयोरधस्तादसंख्येयगुणहीनो जातः। अत्र स्थितिबन्धमाश्रित्याल्पबहुत्वं चिन्त्यते–सर्वस्तोको मोहनीयस्य स्थितिबन्धः। ततो नामगोत्रयोरसंख्येयगुणः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यः। ततो ज्ञानावरणीयादीनां चतुर्णामसंख्येयगुणः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यः। ततः कतिपयेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु 'तीसगाणुप्पि तइयं च' तृतीयं वेदनीयं स्थितिसत्कर्माधिकृत्य त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीस्थितिकानां ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणामुपरि जातं। एतदुक्तं भवति–मोहनीयनामगोत्राणि स्थितिसत्कर्माधिकृत्य प्राक् त्रिंशत्कानां

मधस्ताज्जातानि, संप्रति पुनस्त्रिंशत्कानामपि मध्ये ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणि वेदनीयस्याधस्ताज्जातानि। वेदनीयं तु सर्वोपरि जातं। तदनन्तरं च तस्य वेदनीयस्यान्यः स्थितिबन्धः सर्वेभ्योऽप्यसंख्येयगुणो जायते। स्थितिबन्धमेवाश्रित्याल्पबहुत्वमुच्यते—सर्वस्तोको मोहनीयस्य स्थितिबन्धः। ततो नामगोत्रयोरसंख्येयगुणः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यः। ततोऽपि ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणामसंख्येयगुणः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यः, ततोऽपि वेदनीयस्यासंख्येयगुणः। ततोऽनेनैव विधिना स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु, ततस्त्रिंशत्कानां त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीस्थितिकानां ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणां स्थितिबन्धमधिकृत्योपरिविंशतिके नामगोत्र जाते। अत्राल्पबहुत्वं—सर्वस्तोको मोहनीयस्य स्थितिबन्धः। ततो ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणामसंख्येयगुणः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यः। ततोऽपि नामगोत्रयोरसंख्येयगुणः, स्वस्थाने तुल्यः। ततोऽपि वेदनीयस्य विशेषाधिकः। 'असंखगुणणाए' त्ति, यत्र मोहनीयं ज्ञानावरणादिभ्योऽसंख्येयगुणहीनं जातं, ततः प्रभृति सर्वत्राप्यसंख्येयगुणहीनमेव क्रमेणेति आगच्छति। तथा तृतीयं च वेदनीयं विंशतिकाभ्यां विंशतिसागरोपमकोटीकोटी प्रमाणस्थितिकाभ्यां नामगोत्राभ्यां विशेषाधिकं संजातं सत् सर्वत्रापि विशेषाधिकमेव क्रमेणेति अनुवर्तते ॥ ३७ ॥ ३८॥ ३९ ॥

अहुदीरणा असंखेज्ज-समयबद्धाण देसघाइ त्थ । दाणंतरायमणपज्जवं च तो ओहिदुगलाभो॥४०॥
सुयभोगाचक्खूओ, चक्खू य ततो मई सपरिभोगा। विरियं च असेढिगया, बंधंति उ सव्वघाईणि॥४१॥

अहुदीरणा=हवे उदीरणा, असंखे०बद्धाए=असंख्य समय बद्धनी प्रवर्ते. दाणं०पज्जवं च=दानान्तराय अने मनःपर्यवनो,

अहेत्यादि–अथशब्दोऽधिकारान्तरसूचकः । यस्मिन् काले सर्वकर्मणां पल्योपमासंख्येयभागमात्रः स्थितिबन्धस्तस्मिन् काले ऽसंख्येयसमयबद्धानामेव कर्मणामुदीरणा प्रवर्तते । कथमेतदवसीयत इति चेदुच्यते–इह यदा पल्योपमस्य संख्येयभागमात्रं स्थितिबन्धं करोति, तदा बध्यमानप्रकृतिस्थित्यपेक्षया याः पूर्वबद्धाः समयादिहीनाः स्थितयस्ता एवोदीरणामुपगच्छन्ति, नान्याः । ताश्च चिरकालबद्धा एव क्षीणशेषाः संभवन्तीत्यसंख्येयसमयबद्धानां तदानीमुदीरणा । 'देशघाइ त्थ' इत्यादि ततः स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु, अत्र अस्मिन् प्रस्तावे दानान्तरायं मनःपर्यवज्ञानावरण च देशघाति बध्नाति, दानान्तराय-मनःपर्यायज्ञानावरणयोरनुभागबन्धं देशघातिनं करोतीत्यर्थः । ततः स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु अवधिज्ञानावरणावधिदर्शनावरणलाभान्तरायाणामनुभागं देशघातिनं बध्नाति । ततोऽपि संख्येयेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु श्रुतज्ञानावरणाचक्षुर्दर्शनावरणभोगान्तरायाणामनुभागं देशघातिनं बध्नाति । ततः संख्येयेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु चक्षुर्दर्शनावरणीयस्यानुभागं देशघातिनं बध्नाति । ततोऽपि संख्येयेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु मतेर्मतिज्ञानावरणीयस्य 'सपरिभोगत्ति' सपरिभोगान्तरायस्यानुभागं देशघातिनं बध्नाति । ततः पुनरपि स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु वीर्यान्तरायानुभागं देशघातिनं बध्नाति । 'असेढिगया' इत्यादि अश्रेणिगताः क्षपकश्रेणिरहिता उपशमश्रेणिरहिता वा बन्धकाः पूर्वोक्तान्यपि कर्माणि सर्वघातीनि बध्नन्ति, पूर्वोक्तप्रकृतीनामनुभागं सर्वघातिनं बध्नन्तीत्यर्थः ॥ ४०–४१ ॥

देसघाइत्थ=देशघाती रसबध, तो=त्यारपछी, ओहि०लाभो=अवधिद्विक अने लाभान्तरायनो देशघाती रस बांधे ४० । ततो=पछी, सुय०चक्खु य=श्रुतज्ञाना०, भोगान्तराय अने अचक्षुदर्शना०नो, मई०भोगा=पछी मतिज्ञाना० ने उपभोगान्तरायनो, विरियं च= त्यार बाद वीर्यान्तरायनो देशघाती रस बांधे. असेढिगया=श्रेणिरहित जीवो, बंधंति०घाईणि=सवघातीज रस बांधे. ४०—४१

संजमघाईणंतर-मेत्थ उ पढमट्ठिइ य अन्नयरो । संजलणावेयाणं, वेइज्जंतीण कालसमा ॥ ४२ ॥

संजमघाईणं ति-वीर्यान्तरायदेशघात्यनुभागबन्धानन्तरं संख्येयेषु स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु संयमघातिनां कर्मणामनन्तानुबन्धिवर्जानां द्वादशानां कषायाणां नवानां च नोकषायाणां सर्वसंख्यया एकविंशतिप्रकृतीनामन्तरकरणं करोति । तत्र च चतुर्णां संज्वलनानामन्यतमस्य वेद्यमानस्य संज्वलनस्य, त्रयाणां च वेदानामन्यतमस्य वेदस्य वेद्यमानस्य प्रथमा स्थितिः स्वोदयकालप्रमाणा । अन्येषां चैकादशकषायाणां अष्टानां च नोकषायाणां प्रथमस्थितिरावलिकामात्रा । स्वोदयकालप्रमाणं च चतुर्णां संज्वलनानां त्रयाणां च वेदानामिदं—स्त्रीवेदनपुंसकवेदयोरुदयकालः सर्वस्तोकः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्यः । ततः पुरुषवेदस्य संख्येयगुणः । ततोऽपि संज्वलनक्रोधस्य विशेषाधिकः । ततोऽपि संज्वलनमानस्य विशेषाधिकः । ततोऽपि संज्वलनमायाया विशेषाधिकः । ततोऽपि संज्वलनलोभस्य विशेषाधिकः । उक्तं च—"थीअपुमोदयकाला संखेज्जगुणा उ पुरिसवेदस्स । तस्स वि विसेसअहिओ कोहे तत्तो वि जहकमसो ॥१॥" तत्र संज्वलनक्रोधेनोपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्य यावदप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणक्रोधोपशमो न भवति, तावत्संज्वलनक्रोधस्योदयः । संज्वलनमानेनोपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्य यावदप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणमानोपशमो न भवति, तावत्संज्वलनमानस्योदयः । मायया चोपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्य यावदप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणमायोपशमो न भवति, तावत्संज्वलनमायाया उदयः । संज्वलनलोभेनोपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्य यावदप्रत्याख्यानप्रत्या-

गाथार्थ—एत्थ उ=वळी अहीं, संजम०तरं=संजमघाती २१ कषायोनुं अंतरकरण करे छे. संजलणा वेयाणं=संज्वलन अने वेदनी, अन्नयरो=कोइ पण, वेइज्जंतीण=वेदाती प्रकृतिनी, पढमट्ठिइ य=प्रथम स्थिति, कालसमा=उदयकाल जेटली जाणवी ४२.

ख्यानावरणलोभोपशमो न भवति, तावद्बादरसंज्वलनलोभस्योदयः। ततः परं सूक्ष्मसंपरायाद्धा। तदेवमन्तरकरणमुपरितनभागापेक्षया समस्थितिकं, अधोभागापेक्षया चोक्तनीत्या ×विषमस्थितिकमिति। यावता च कालेन स्थितिखंडं घातयति, यद्वाऽन्यं स्थितिबन्धं करोति, तावता कालेनान्तरकरणमपि करोति, त्रीण्यपि युगपदारभते युगपदेव च निष्ठां ×१नयति। तच्चान्तरं प्रथमस्थितेः संख्येयगुणं। अन्तरकरणसत्कदलिकप्रक्षेपविधिश्चायं—येषां कर्मणां तदानीं बन्ध उदयश्च विद्यते तेषामन्तरकरणसत्कं दलिकं प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ च प्रक्षिपति। यथा पुरुषवेदोदयारूढः पुरुषवेदस्य। येषां तु कर्मणामुदय एव केवलो न बन्धस्तेषामन्तरकरणसत्कं दलिकं प्रथमस्थितावेव प्रक्षिपति, न द्वितीयस्थितावपि, यथा स्त्रीवेदोदयारूढः स्त्रीवेदस्य। येषां पुनरुदयो न विद्यते, किं तु केवलो बन्धः, तेषामन्तरकरणसत्कं दलिकं द्वितीयस्थितावेव प्रक्षिपति, न प्रथमस्थितौ, यथा संज्वलनक्रोधोदयारुढः शेषसंज्वलनानां। येषां पुनर्न बन्धो नाप्युदयः तेषामन्तरकरणसत्कं दलिकं परप्रकृतिषु प्रक्षिपति, यथा द्वितीयतृतीयकषायाणां। 'अन्नयरे' इति आर्षत्वात् पुंस्त्वनिर्देश एकवचनं च। ततोऽयमर्थः—संज्वलनवेदानामन्यतरयोर्वेद्यमानयोः प्रकृत्योः प्रथमा स्थितिः कालसमा उदयकालसमा ॥४२॥

दुसमयकयंतरे, आलिगाण छण्हं उदीरणाभिनवे। मोहे एक्कट्ठाणे, बंधुदया संखवासाणि ॥४३॥

×(य० उ० १७) प्रथमस्थितिप्रतियोगिकतिपयप्रकृत्युदयकालवैषम्याद्विषमस्थितिकं।

×१(य० उ० १८) अन्तरकरणकाले चानुभागखण्डसहस्राणि व्यतिक्रामन्ति।

गाथार्थः—दुसम०तर=अंतरकरण कर्या पछी द्वितीयादि समयथी, आलि०छण्हं=६ आवलिकाबाद, उदीरणा=उदीरणा थाय.

संखगुणहाणिबंधो, एत्तो सेसाण संखगुणहाणी । पउवसमए नपुंसं, असंखगुणणाए जावंतो ॥४४॥

दुसमयेत्यादि–'दुसमयकयंतरे' इति अन्तरकरणे कृते सति द्वितीये समये इमे सप्ताधिकारा युगपत्प्रवर्तन्ते, तद्यथा—पुरुषवेदसंज्वलनानामानुपूर्व्यैव संक्रमः १ । संज्वलनलोभस्य च संक्रमाभावः २ । तथाऽन्तरकरणे कृते सति अनन्तरादिषु समयेषु याः प्रकृतयो मोहनीयसत्का अमोहनीयसत्का वा बध्यन्ते तासां षण्णामावलिकानां मध्ये उदीरणा न भवति किं तु ×षट्स्वावलिकास्वतिक्रान्तासु ३। तथा मोहे मोहनीये रसबन्ध एकस्थानकः ४। तथा मोहनीयस्य संख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धः५, संख्येयवार्षिकश्च ×१उदीरणोदयः ६। संख्येयवार्षिकात् स्थितिबन्धात् परतोऽन्योऽन्यः स्थितिबन्धः सर्वोऽपि पूर्वस्मात् पूर्वस्मात् संख्येयगुणहीनो भावी, शेषाणां तु कर्मणामसंख्येयगुणहीनः ७ । तथा 'पउवसमए नपुंस त्ति' अन्तरकरणे कृते सति द्वितीये समये नपुंसकवेदं प्रोपशमयति उपशमयितुमारभते असंख्येयगुणतया, तं च तावद्यावदन्तश्चरमसमयः, । तथाहि —नपुंसकवेदस्य प्रथमसमये स्तोकं प्रदेशाग्रमुपशमयति । ततो द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं । तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणं । एवं प्रतिसमयमसंख्येयगुणं तावद्वक्तव्यं

×(य०उ० १९) इतः पूर्वं तु बद्धं बद्धं कर्म बन्धावलिकायामतीतायां प्राक्तनोदयसत्कर्मानुविद्धमुदीरणामायाति स्म ।

×१(य०उ० २०) तथोदयोऽसंप्राप्तोदय उदीरणाख्यः सोऽपि सङ्ख्येयवार्षिको मोहस्य, उक्तं च—"उदीरणा य संखसमा" ।

अभिनवे मोहे=मोहनीयनो नवीन रसबन्ध, एकट्ठाणे=एकस्थानक, बंधु०वासाणि=तथा संख्यात वर्षनो बंध अने उदय ४३ । एत्तो=त्यार पछी, संख०बंधो=मोहनीयनो अन्य स्थितिबंध संख्येगुणहीन, सेसाण=बाकीना कर्मोनो, असं०हाणि=असंख्यगुणहीन. असंख० जावं तो=अन्य समय सुधी असंख्यगुण वृद्धिए, नपुंसं=नपुंसकवेदने, पउवसमए=उपशमावे छे. ४४.

यावच्चरमसमयः, परप्रकृतिषु च प्रतिसमयमुपशमितदलिकापेक्षयाऽसंख्येयगुणं तावत्संक्रमयति यावद् द्विचरमसमयः । चरमसमये पुनरुपशम्यमानं दलिकं परप्रकृतिषु संक्रम्यमाणदलिकापेक्षयाऽसंख्येयगुणं द्रष्टव्यं । नपुंसकवेदोपशमनारंभप्रथमसमयादारभ्य च सर्वकर्मणामुदीरणा दलिकापेक्षया स्तोका, उदयस्त्वसंख्येयगुणः । नपुंसकवेदे चोपशान्ते स्त्रीवेदं पूर्वोक्तेनैव विधिनोपशमयितुमारभते ॥ ४३–४४ ॥

एवित्थी संखतमे, गयम्मि घाईण संखवासाणि । संखगुणहाणि एत्तो, देसावरणाणुदगराई ॥ ४५ ॥

एवित्थि त्ति–एवं पूर्वोक्तेन प्रकारेण स्त्रीवेदस्योपशम्यमानस्योपशमनाद्धायाः संख्येयतमे भागे गते सति घातिकर्मणां ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणां संख्येयानि वर्षाणि संख्येयवर्षप्रमाणः स्थितिबन्धो भवति । इतश्च संख्येयवर्षप्रमाणात् स्थितिबन्धात् अन्योऽन्यः स्थितिबन्धो घातिकर्मणां पूर्वस्मात् पूर्वस्मात् संख्येयगुणहीनो भवति । अस्मादेव च संख्येयवर्षप्रमाणात् स्थितिबन्धादारभ्य देशघातिनां केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणवर्जानां ज्ञानावरणदर्शनावरणानां उदकराजि उदकराजिसमानं रसं बध्नाति, एकस्थानकं रसं बध्नातीत्यर्थः । तत एवं स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु स्त्रीवेद उपशान्तो भवति ॥ ४५ ॥

तो सत्तण्हं एवं, संखतमे संखवासितो दोण्हं । बिइयो पुण ठिइबंधो, सव्वेसिं संखवासाणि ॥ ४६ ॥

गाथार्थः—एवित्थी=ए प्रमाणे उपशमता स्त्रीवेदनो, संख० गयम्मि=संख्यातमो भाग गये थके, घाईण=३ घाती कर्मोनो, संखवासाणि=संख्यातवर्ष प्रमाण स्थितिबंध थाय छे. एत्तो=अहींथी आगल, संखगुणहाणि=संख्यातगुणहीन स्थितिबन्ध, देसा० णाण=देशघाती प्रकृतिओनो, उदगराई=जल रेखा समान (एक स्थानिक) रसबंध थाय छे. ४५ तो=स्त्रीवेद उपशम्या पछी, सत्तन्हं एवं=

तो त्ति –स्त्रीवेदे उपशान्ते ततः शेषान् सप्त नोकषायान् उपशमयितुमारभते । तेषां चैवं पूर्वोक्तेन प्रकारेणोपशम्यमानानामुपशमनाद्धायाः संख्येयतमे भागे गते सति द्वयोर्नामगोत्रयोः संख्येयवार्षिकः स्थितिबन्धो भवति । वेदनीयस्य पुनरसंख्येयवार्षिक एव । तस्मिंश्च स्थितिबन्धे पूर्णे सति अन्यो द्वितीयस्थितिबन्धो वेदनीयस्यापि संख्येयवार्षिको भवति । तथा च सति सर्वेषामपि कर्मणां ततः प्रभृति संख्येयवार्षिक एव स्थितिबन्धः । पूर्वस्माच्च पूर्वस्माच्चान्योऽन्यः स्थितिबन्धः प्रवर्तमानः संख्येयगुणहीनः प्रवर्तते । ततः स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु सत्सु सप्तापि नोकषाया उपशान्ता भवन्ति ॥ ४६ ॥ नवरं

छस्सुवसमिज्जमाणे, सेक्का उदयठिई पुरिससेसा । समऊणावलिगदुगे, बद्धा वि य तावदद्धाए ॥४७॥

छस्सु त्ति–षट्सु नोकषायेषूपशम्यमानेषु यस्मिन् समये षट् नोकषाया उपशान्तास्तस्मिन् समये पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितौ शेषा एकैवोदयस्थितिः समयमात्रावतिष्ठते । तदानीं च पुरुषवेदस्य स्थितिबन्धः षोडश वर्षाणि भवति । संज्वलनानां पुनः संख्येयानि वर्षसहस्राणि । तथा पुरुषवेदस्य प्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषायां प्रागुक्तस्वरूप आगालो व्यवच्छिद्यते, उदीरणा तु भवति । तस्मादेव च समयादारभ्य षण्णां नोकषायाणां सत्कं दलिकं पुरुषवेदे न संक्रमयति, किंतु संज्वलनेषु । यदा च

शेष ७ नोकषायने उपशमावतां ए प्रमाणे, संखमे=संख्यातमो भाग गये थके, दोन्हं=नाम गोत्रनो, संखवासितो=संख्यातवर्षनो स्थितिबन्ध. पुण=वळी, सव्वेसिं=सर्वेनो बीइयो=बीजो, ठिइबन्धो=स्थितिबंध, संखवासाणि=संख्यातवर्ष प्रमाण. ४६ छस्सु०माणे=६ नोकषाय उपशमते छते, सेक्का०ट्ठिई=एक उदयस्थिति; पुरिससेसा=पुरुषवेदनी शेष रहे छे. सम०बद्धाविय=समयोन २ आवलिका सुधी बांधेला, तावदद्धाए=तेटला कालमां उपशमावे छे. ४७

प्रागुक्ता पुरुषवेदस्य सत्का एकाप्युदयस्थितिरतिक्रान्ता तदाऽसाववेदको भवति । अवेदकाद्धायाश्च प्रथमसमये समयद्वयोनावलिकाद्विकेन कालेन यद्बद्धं तदेव केवलमनुपशान्तं तिष्ठति । शेषं पुनः सकलमपि नपुंसकवेदोक्तप्रकारेणोपशान्तं । तदपि च सम(यद्ध)योनावलिकाद्विककालबद्ध तावदद्धया तावता कालेन समयद्वयोनावलिकाद्विकप्रमाणेन कालेनेत्यर्थः, उपशमयति । तदुपशमनाविधिश्चायम्—प्रथमसमये स्तोकमुपशमयति । द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं । तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणं । एवं तावद्वाच्यं यावत्सम(यद्ध)योनावलिकाद्विकचरमसमयः । परप्रकृतिषु च प्रतिसमयं सम(यद्ध)योनावलिकाद्विककालं यावद्यथाप्रवृत्तसंक्रमेण संक्रमयति । परं प्रथमसमये प्रभूतं । द्वितीयसमये विशेषहीनं । तृतीयसमये विशेषहीनं । एवं तावद्यावच्चरमसमयः । ततः पुरुषवेद उपशान्तः । तदानीं च संज्वलनानां द्वात्रिंशद्वर्षप्रमाणोऽन्तर्मुहूर्तोनः स्थितिबन्धो भवति । शेषाणां च ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणां संख्येयानि वर्षसहस्राणि ॥ ४७ ॥

तिविहमवेओ कोहं, कमेण सेसे वि तिविहतिविहे वि । पुरिससमा संजलणा, पढमठिई आलिगा अहिगा४८

तिविहमवेओ त्ति—यस्मिन् समये पुरुषवेदस्यावेदको जातस्तस्मादेव समयादारभ्याप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधान् युगपदुपशमयितुमारभते । उपशमनां च कुर्वतः प्रथमस्थितिबन्धे पूर्णे सत्यन्यः स्थितिबन्धः संज्वलनानां संख्येयभागहीनो भवति, शेषाणां च संख्येयगुणहीनः । शेषं स्थितिघातादि तथैव । संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थितौ समयोनावलिकात्रिकशेषायां

गाथार्थ—अवेओ=अवेदी थयो थको, तिविह०कोहं=३ प्रकारना क्रोधने उपशमावे छे. कमेण=अनुक्रमे, सेसेवि=बाकीना पण, तिविहतिविहेवि=३, ३ प्रकारना मानादिकने उपशमावे छे. पुरिस०लगा=पुरुषवेदनी जेम संज्वलननी उपशमना, पढमट्ठिइ=परंतु प्रथम स्थिति, आलिगा अहिगा=आवलि अधिक छे. ४८

अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणक्रोधदलिकं न सज्वलनक्रोधे प्रक्षिपति, किंतु संज्वलनमानादौ । द्व्यावलिकाशेषायां त्वागालो न भवति, किंतूदीरणैव । साप्युदीरणा तावत्प्रवर्तते यावदावलिका शेषा भवति । उदीरणावलिकायाश्च चरमसमये संज्वलनानां स्थितिबन्धश्चत्वारो मासाः । शेषकर्मणां तु संख्येयानि वर्षसहस्राणि । संज्वलनक्रोधस्य च बन्धोदयोदीरणाव्यवच्छेदः । अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणौ च क्रोधावुपशान्तौ । तदानीमेकामावलिकां समयोनालिकाद्विकबद्धं च दलिकं मुक्त्वा शेषमन्यत्सर्वं संज्वलनक्रोधस्योपशान्तं, सापि चैका प्रथमस्थितिसत्का चरमावलिका स्तिबुकसंक्रमेण माने प्रक्षिप्यते । समयोनावलिकाद्विकबद्धं च दलिकं पुरुषवेदोक्तप्रकारेणोपशमयति संक्रमयति च । अनेनैव क्रमेण शेषानपि कषायान् त्रिविधान् त्रिप्रकारान् मानमायालोभरूपान् । पुनः कथंभूतानित्याह—त्रिविधान् प्रत्येकं त्रिप्रकारान् । तथाहि—अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनभेदात् त्रिविधो मानः । एवं मायालोभावपि, तान् उपशमयति । तत्र संज्वलनोपशमना पुरुषवेदसमाऽवसेया । अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणमानादीनां चोपशमना षड्नोकषायसमा । नवरं 'पढमठिई आलिगा अहिग त्ति' संज्वलनानां प्रथमस्थितौ पुरुषवेदापेक्षया एका आवलिकाधिका । तथाहि—षट्सु नोकषायेषूपशान्तेषु पुरुषवेदस्य प्रथमा स्थितिरेका समयमात्रा स्थितिरनुपशान्ता आसीत् । अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणमानादिषु पुनरुपशान्तेषु संज्वलनमानादीनामनुपशान्ता प्रथमस्थितेरेकावलिकेति । इदं चातिसंक्षिप्तमुक्तमिति विशेषतो भाव्यते—यदा संज्वलनक्रोधस्य बन्धोदयोदीरणा व्यवच्छिन्नास्तदैव संज्वलनमानस्य द्वितीयस्थितेः सकाशाद्दलिकमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयते च । तत्रोदयसमये स्तोकं प्रक्षिपति । द्वितीयस्थितावसंख्येयगुणं । तृतीयस्थितावसंख्येयगुणं । एवं तावद्यावत्प्रथमस्थितेश्चरमसमयः । प्रथमस्थितिचरमसमये एव संज्वलनमानस्य स्थि-

तिबन्धश्चत्वारो मासाः । शेषाणां तु ज्ञानावरणीयादीनां संख्येयानि वर्षसहस्राणि । तदानीमेव च त्रीनपि मानान् युगपदुपशमयितुमारभते । संज्वलनमानस्य च प्रथमस्थितौ समयोनावलिकात्रिकशेषायामप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणमानदलिकं न संज्वलनमाने प्रक्षिपति, किंतु संज्वलनमायादौ । आवलिकाद्विकशेषायां त्वागालो व्यवच्छिद्यते । तत उदीरणैव केवला प्रवर्तते । सापि तावद्यावदावलिकाचरमसमयः । तत एका प्रथमस्थितेरावलिका शेषीभूता तिष्ठति । तस्मिंश्च समये संज्वलनानां द्वौ मासौ स्थितिबन्धः । शेषकर्मणां तु संख्येयानि वर्षाणि । तदानीं च संज्वलनमानस्य बन्धोदयोदीरणा व्यवच्छिन्नाः । अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणमानौ चोपशान्तौ । संज्वलनमानस्यापि च प्रथमस्थितेरेकामावलिकां समयोनावलिकाद्विकबद्धाश्च लता मुक्त्वा शेषमन्यत्सर्वमुपशान्तं । तदानीमेव संज्वलनमायाद्वितीयस्थितेर्दलिकमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयते च पूर्वोक्तां च संज्वलनमानस्य प्रथमस्थितिसत्कामेकामावलिकां स्तिबुकसंक्रमेणास्यां संज्वलनमायायां प्रक्षिपति । समयोनावलिकाद्विकबद्धाश्च लताः पुरुषवेदक्रमेणोपशमयति संक्रमयति च । संज्वलनमायोदयप्रथमसमये च मायालोभयोर्द्वौ मासौ स्थितिबन्धः । शेषकर्मणां संख्येयानि वर्षाणि । तत्समयादेव चारभ्य तिस्रोऽपि माया युगपदुपशमयितुमारभते । ततः संज्वलनमायायाः प्रथमस्थितावावलिकात्रिकशेषायामप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणमायादलिकं संज्वलनमायायां न प्रक्षिपति, किंतु संज्वलनलोभे । आवलिकाद्विकशेषायां त्वागालो व्यवच्छिद्यते । तत उदीरणैव केवला प्रवर्तते । सापि तावद्यावदावलिकाचरमसमयः । तस्मिंश्च समये संज्वलनमायालोभयोः स्थितिबन्ध एको मासः । शेषकर्मणां तु संख्येयानि वर्षाणि । ततोऽनन्तरसमये संज्वलनमायाया बन्धोदयोदीरणा व्यवच्छिन्नाः । अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणमाये चोपशान्ते । संज्वलनमायायाश्च प्रथमस्थितिसत्कामेकामावलिकां

समयोनावलिकाद्विकबद्धाश्च लता मुक्त्वा शेषमन्यत् सर्वमुपशान्तं । तदानीमेव च संज्वलनलोभस्य द्वितीयस्थितेः सकाशाद्दलिकमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयते च । पूर्वोक्तां च मायायाः प्रथमस्थितिसत्कामेकामावलिकां स्तिबुकसंक्रमेण संज्वलनलोभे संक्रमयति । समयोनावलिकाद्विकबद्धाश्च लताः पुरुषवेदक्रमेणोपशमयति संक्रमयति च ॥ ४८ ॥

उपशमनाकरणे उपशमश्रेणिस्वरुपम्

संज्वलनलोभस्य प्रथमस्थितेः प्रमाणनिरूपणार्थमाह—

लोभस्स बेतिभागा, ठि(बि)इय तिभागोत्थ किट्टकरणद्धा। एगफड्डगवग्गण–अणंतभागो उ ता हेट्ठा॥४९॥

लोभस्स त्ति–संज्वलनलोभस्य प्रथमस्थितेस्त्रयो भागाः । तत्र प्रथमतो द्वौ त्रिभागौ प्रथमस्थितिं करोति द्वयोस्त्रिभागयोर्द्वितीयस्थितेः समाकृष्य दलिकं निक्षिपतीत्यर्थः । तत्र प्रथमत्रिभागोऽश्वकर्णकरणाद्धासंज्ञः, द्वितीयः किट्टिकरणाद्धासंज्ञः । संज्वलनलोभोदयप्रथमसमय एव च त्रीनपि लोभान् अप्रत्याख्यानादीन् युगपदुपशमयितुमारभते । उपशमनाविधिः प्राग्वत् । तत्राश्वकर्णकरणाद्धासंज्ञे प्रथमे त्रिभागे वर्तमानः पूर्वस्पर्धकेभ्यः प्रतिसमयं दलिकं गृहीत्वा तस्य चात्यन्तहीनरसतामापाद्यापूर्वाणि स्पर्धकानि करोति । आसंसारं हि परिभ्रमता न कदाचनापि बन्धमाश्रित्येदृशानि स्पर्धकानि कृतानि, किंतु संप्रत्येव विशुद्धिप्रकर्षवशात् करोतीत्यपूर्वाणीत्युच्यन्ते× । तत एवमपूर्वस्पर्धकानि कुर्वतः संख्येयेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु सत्सु अश्वकर्णकरणाद्धा

×(य०उ० २१) संक्रमितमायादलिकसम्बन्धिभ्यः पूर्वबद्धसंज्वलनलोभसत्केभ्यो वा पूर्वस्पर्धकेभ्यः प्रतिसमयं दलिकं गृहीत्वा

गाथार्थ—लोभस्स=संज्वलनलोभना, बेति०ठिइय=बे त्रिभाग स्थितिमां, तिभागो०करणद्धा=प्रथम अश्वकर्ण करणाद्धा अने बीजो किट्टिकरणाद्धा नामे विभाग. तो=ते किट्टि, एगफ०भागो=एक स्पर्धकनी वर्गणाओना अनंतमा भागे, हेट्ठा=हीनरसवाली छे. ४९

व्यतिक्रामति । ततः किट्टिकरणाद्धायां प्रविशति । तदानीं च संज्वलनलोभस्य स्थितिबन्धो दिनपृथक्त्वप्रमाणः । शेषकर्मणां तु वर्षपृथक्त्वमानः । किट्टिकरणाद्धायां च पूर्वस्पर्धकेभ्योऽपूर्वस्पर्धकेभ्यश्च दलिकं गृहीत्वा प्रतिसमयमनन्ताः किट्टीः करोति । किट्टयो नाम पूर्वस्पर्धकापूर्वस्पर्धकेभ्यो वर्गणा गृहीत्वा तासामनन्तगुणहीनरसतामापाद्य× बृहदन्तरालतया यद्व्यवस्थापनं । यथा यासामेवासत्कल्पनयाऽनुभागभागानां शतमेकोत्तरं द्व्युत्तरं चासीत् तासामेवानुभागभागानां पञ्चकं पञ्चशकं पञ्चविंशतिरिति । संप्रति एतासामेव किट्टीनां विशेषप्ररूपणार्थमाह—'एगफड्डुगेत्यादि' ताः किट्टीः एकस्मिन् अनुभागस्पर्धके या अनन्तवर्गणा-

---

तस्य तत्कालबध्यमानसंज्वलनलोभस्पर्धकवदत्यन्तनीरसतामापादयन्नपूर्वं च दलिकं प्रतिसमय गृह्णन्नपूर्वस्पर्धकानि करोतीत्यर्थः । इह तावदनन्तानन्तपरमाणुनिष्पन्नान् स्कन्धान् जीवः कर्मतया गृह्णाति । तत्र चैकैकस्मिन् स्कन्धे यः सर्वजघन्यो रसः सोऽपि सर्वजीवानन्तगुणान् रसाविभागान् प्रयच्छति । तदुपेतपरमाणूनां समुदायः प्रथमा वर्गणा । ततः क्रमेणैकोत्तररसाविभागवृद्ध्या सिद्धानन्तभागाभव्यानन्तगुणा वर्गणा वाच्याः । तावद्वर्गणासमुदायः स्पर्धकमुच्यते । इत ऊर्ध्वमेकोत्तरवृद्ध्या वर्धमानो रसो न लभ्यते, किंतु सर्वजीवानन्तगुणैरेव रसाविभागैः । ततः प्राक्तनक्रमेण द्वितीयं स्पर्धकमारभ्यते । एवं तृतीयादीनि तावद्वाच्यानि यावदनन्तस्पर्धकानि । एतेभ्य एव चेदानीं प्रथमादिवर्गणा गृहीत्वा विशुद्धिप्रकर्षवशादनन्तगुणहीनरसाः कृत्वा पूर्ववत्स्पर्धकानि करोति ।

×(य० उ० २२) यश्च द्वौ वारावुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते स तस्मिन् भवे क्षपकश्रेणिं न प्रतिपद्यते । यस्त्वेकवारमुपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते तस्य भवेदपि तस्मिन् भवे क्षपकश्रेणिः । एष कार्मग्रन्थिकाभिप्रायः । आगमाभिप्रायेण त्वेकस्मिन् भवे एकैव श्रेणिर्न तु द्वे अपि । तदुक्तं—" अन्नयरसेदिवज्जं एगभवेणं च सव्वाइं" इति ॥

स्तासामन ततमे भागे यावत्यो वर्ग णास्तावत्प्रमाणाः प्रथमसमये करोति । ताश्चानन्ताः । ननु ताः किं सर्वजघन्यानुभागस्पर्धकानुभागेन सदृशाः करोति, उत ततोऽपि हीनाः ? उच्यते—ततोऽपि हीनाः, तथा चाह—'हेट्ठा' यत्सर्वजघन्यमनुभागस्पर्धकं तस्याधस्तात् करोति ततोऽप्यनन्तगुणहीनरसाः करोतीत्यर्थः ॥४९॥

अणुसमयं सढीए, असंखगुगहाणि जा अपुव्वाओ । तव्विवरीयं दलियं, जहन्नगाई विसेसूणं ॥५०॥

अणुसमयं ति—या अपूर्वाः प्रतिसमयं नवा नवाः किट्टीः करोति ताः प्रतिसमयं गणनातोऽसंख्येयगुणहानेः श्रेण्या द्रष्टव्याः । नवत्वं च प्रतिसमयं यथोत्तरमनन्तगुणहीनरसत्वादवसेयं । इयमत्र भावना—प्रथमसमये प्रभूताः किट्टीः करोति । द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणहीनाः । ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणहीनाः । एवं तावद्वाच्यं यावत् किट्टीकरणाद्धायाश्चरमसमयः । 'तव्विवरीयं दलियं ति' दलिकं तद्विपरीतं किट्टिसंख्याविपरीतमवगन्तव्यं । तद्यथा—प्रथमसमये सकलकिट्टिगतं दलिकं सर्वस्तोकं । ततो द्वितीयसमये सकलकिट्टिगतं दलिकमसंख्येयगुणं । ततोऽपि तृतीयसमये समस्तकिट्टिगतं दलिकमसंख्येयगुणं । एवं तावद्वाच्यं यावत् किट्टिकरणाद्धायाश्चरमसमयः । तथा प्रथमसमयकृतासु किट्टिषु सामान्येनानुभागः सर्वप्रभूतः । ततो द्वितीयसमयकृतासु किट्टिष्वनन्तगुणः । ततोऽपि तृतीयसमयकृतासु अनन्तगुणहीनः । एवं तावद्वाच्यं यावत् किट्टिकरणाद्धाचरमसमयः । संप्रति प्रथमसमये कृतानां किट्टीनां परस्परं प्रदेशप्रमाणनिरूपणार्थमाह—'जहण्णगाई विसेसूणं ति' जघन्यां किट्टि-

गाथार्थ—जा अपुव्वाओ=जे अपूर्व किट्टिओ करे छे ते, अणुसमयं=प्रतिसमये, सेढीए०हाणि=असंख्यगुणहानिनी श्रेणिए करे छे. तव्विवरीयं=तेथी विपरीत, दलियं=दलिक प्रमाण, जहन्नगाई=जघन्यकिट्टीथी मांडीने, विसेसूणं-विशेषहीन हीन जाणवुं.५०

मादिं कृत्वा परतः क्रमेण प्रतिकिट्टि विशेषोनं विशेषोनं प्रदेशाग्रमभिधानीयं । इयमत्र भावना—प्रथमसमयकृतासु किट्टिषु मध्ये या सर्वमन्दानुभागा किट्टी तस्याः प्रदेशाग्रं सर्वप्रभूतं । ततोऽनन्तरेणानन्तगुणेनानुभागेनाधिकायां द्वितीयकिट्टौ प्रदेशाग्रं विशेषहीनं । ततोऽप्यनन्तरेणानुभागेनाधिकायां तृतीयकिट्टौ विशेषहीनं । एवमनन्तरानन्तरानुभागाधिकासु किट्टिषु विशेषहीनं विशेषहीनं तावद्वक्तव्यं यावत्प्रथमसमयकृतानां किट्टीनां मध्ये सर्वोत्कृष्टा किट्टिरिति । एवं सर्वेष्वपि समयेषु प्रत्येकं भावनीयम् ॥ ५० ॥

अणुभागो णंतगुणो, चाउम्मासाइ संखभागूणो । मोहे दिवसपुहुत्तं, किट्टीकरणाइसमयम्मि ॥ ५१ ॥

अणुभागो त्ति–प्रथमसमयकृतानां किट्टीनामनुभागो यथोत्तरमनन्तगुणो वाच्यः । तद्यथा—प्रथमसमयकृतानां किट्टीनां मध्ये या सर्वमन्दानुभागा किट्टी सा सर्वस्तोकानुभागा । ततो द्वितीयाऽनन्तगुणानुभागा । ततोऽपि तृतीयाऽनन्तगुणानुभागा । एवं तावद्वाच्यं यावत् प्रथमसमयकृतानां किट्टीनां मध्ये सर्वोत्कृष्टानुभागा किट्टिरिति× एवं द्वितीयादिष्वपि समयेषु किट्टीनां प्ररूपणा कर्तव्या । संप्रत्यासामेव किट्टीनां परस्परमल्पबहुत्वमुच्यते–प्रथमसमयकृतानां किट्टीनां मध्ये या सर्वबहुप्रदेशा किट्टी सा स्तोकप्रदेशा । ततो द्वितीयसमयकृतानां किट्टीनां मध्ये या सर्वाल्पप्रदेशा किट्टी साऽसंख्येयगुण देशा । ततोऽपि

गाथार्थ—अणु०गुणो=किट्टिओनो अनुभाग प्रतिसमये अनंतगुण, मोहे=मोहनीयना, चाउम्मासाइ=४ मासिक बंधथी, संखभागूणो=अन्य स्थितिबंधो संख्यात भागहीन थतां थतां, किट्टी०समयम्मि=किट्टिकरणना प्रथम समये दिवसपुहुत्तं=दिन पृथक्त्व स्थितिबन्ध थाय छे. ५१ । ×(य०उ० २३) उक्तं चान्यत्रापि—"आइसमयकयाणं मंदाईणं रसो अणंतगुणो" ।

तृतीयसमयकृतानां किट्टीनां मध्ये या सर्वाल्पप्रदेशा साऽसंख्येयगुणप्रदेशा। एवं तावद्वक्तव्यं यावच्चरमसमयः। तथा प्रथमसमयकृतानां किट्टीनां मध्ये या सर्वमन्दानुभागा किट्टी सा सर्वप्रभूतानुभागा। ततो द्वितीयसमयकृतानां किट्टीनां मध्ये या सर्वोत्कृष्टानुभागा किट्टी साऽनन्तगुणहीना। ततोऽपि तृतीयसमयकृतानां किट्टीनां मध्ये सर्वोत्कृष्टानुभागाऽनन्तगुणहीना। एवं तावद्वक्तव्यं यावच्चरमसमयः। 'चाउम्मासेत्यादि' मोहे मोहनीये संज्वलनानां चातुर्मासिकात् स्थितिबन्धादारभ्यान्योऽन्यः स्थितिबन्धः संख्येयेन भागेनोन ऊनतरस्तावद्वक्तव्यो यावत् किट्टिकरणाद्धायाः प्रथमसमये दिवसपृथक्त्वप्रमाणः स्थितिबन्धो भवति। स च प्रायस्तथैवोक्तः ॥ ५१ ॥

भिन्नमुहुत्तो संखि-ज्जेसु य घाईणि दिणपुहुत्तं ता। वाससहस्सपुहुत्तं, अंतो दिवसस्स अंते सिं ॥ ५२ ॥
वाससहस्सपुहुत्ता, बिवरस अंतो अघाइकम्माणं। लोभस्स अणुवसंतं, किट्टीओ जं च पुव्वुत्तं ॥५३॥

भिन्नमुहुत्तो त्ति–अत्रेति षष्ठीसप्तम्योरर्थे प्रत्यभेदात् अस्या इति द्रष्टव्यं। ततश्चास्याः किट्टिकरणाद्धायाः संख्येयेषु भागेषु

गाथार्थः–संखिज्जेसु य=संख्यात स्थितिबंध गये थके, भिन्नमुहुत्तो=सं०लोभनो अन्तर्मुहूर्त, घाईणि तु=३घातिकर्मोनो तो, दिणपुहुत्तं=दिवसपृथक्त्व, वास०पुहुत्तं=३ अघातिकर्मोनो, घणा हजार वर्ष प्रमाण स्थितिबन्ध थाय छे. सिं=तेमनो, अंते=(किट्टिकरणाद्धाना) अंते अनुक्रमे, अंतोदिवसस्स=अन्तर्मुहूर्त अने अन्तर्दिवसनो ५२. अघाइकम्माणं=अघाती कर्मोनो, वास०अंतो=घणा हजार वर्षथी हीन हीनतर थतो बे वर्ष अंदर. लोभस्स=सं०लोभनुं, किट्टीओ=किट्टीगत दलिक, जं च पुव्वुत्तं=अने पूर्वे कहेलुं (समयोन बे आवलिनुं बांधेलुं) दलिक, अणुवसंतं=अनुपशांत छे. ५३.

गतेषु सत्सु संज्वलनलोभस्य स्थितिबन्धो भिन्नमुहूर्तोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणो भवति। त्रयाणां च घातिकर्मणां दिनपृथक्त्वं दिनपृथक्त्वमानः, नामगोत्रवेदनीयानां वर्षसहस्रपृथक्त्वं प्रभूतवर्षसहस्रप्रमाणः। पृथक्त्वशब्दोऽत्र बहुत्वसूचकः। तथा किट्टिकरणाद्धाया अन्ते चरमसमये संज्वलनलोभस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः। केवलमिदमन्तर्मुहूर्तं स्तोकतरमवसेयं। तथा 'सिं ति' तेषां घातिकर्मणामन्तर्दिवसस्याहोरात्रस्य स्थितिबन्धः। अघातिनां पुनर्नामगोत्रवेदनीयानां वर्षसहस्रपृथक्त्वात् वर्षसहस्राथक्त्वप्रमाणात् स्थितिबन्धात् अन्यो हीनो हीनतरः स्थितिबन्धो भवन् तस्मिन् किट्टिकरणाद्धाचरमसमये द्विवर्षस्य द्वयोर्वर्षयोरन्तर्मध्ये भवति। तथा किट्टिकरणाद्धायां समयोनावलिकात्रिकशेषायामप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणलोभदलिकं संज्वलनलोभे न संक्रमयति×। किंतु स्वस्थाने एव स्थितमुपशमं नीयते। द्व्यावलिकाशेषायां पुनः किट्टिकरणाद्धायां बादरसंज्वलनलोभस्यागालो न भवति, किं तूदीरणैव। सापि तावद्यावदावलिका। तस्याश्च उदीरणावलिकायाश्चरमसमये यत् किट्टीकृतं द्वितीयस्थितिगतं, यच्च पूर्वोक्तं समयोनावलिकाद्विकबद्धमित्यर्थः, या चैकावलिका किट्टिकरणाद्धायाः शेषीभूता, एतत्सर्वं लोभस्य संज्वलनलोभस्यानुपशान्तं वर्तते, शेषं पुनरुपशान्तं। तथा तस्मिन्नेव समये द्वावप्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणलोभावुपशान्तौ। संज्वलनलोभबन्धव्यवच्छेदो बादरसंज्वलनलोभोदयोदीरणाव्यवच्छेदश्च। एष एव चानिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानकचरमसमयः॥ ५२–५३॥

सेसद्धं तणुरागो, तावइया किट्टिओ य पढमाठिई। वज्जिय असंखभागं, हेट्ठुवरिमुदीरई सेसा॥ ५४॥

×(य०उ०२४) तदानीं तस्य पतद्ग्रहतानिवृत्तेः।

गाथार्थः-सेसद्ध=शेष कालमां (त्रीजा भागमां), तणुरागो=सूक्ष्म संपरायी छे. किट्टिओ=किट्टिओमांथी, तावइया=तेटली, पढम-

सेसद्धं ति–शेषाद्धं शेषकालं तृतीये विभागे इत्यर्थः । सूक्ष्मरागः सूक्ष्मसंपरायो भवति । ताश्च प्राक्कृताः किट्टीर्द्वितीय-स्थितेः सकाशात् कियतीः समाकृष्य प्रथमस्थितिं तावतीं सूक्ष्मसंपरायाद्धातुल्यां करोति । किट्टिकरणाद्धायाश्चान्तिममावलिका-मात्रं स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमयति । तथा प्रथमान्तिमसमयकृताः किट्टीर्वर्जयित्वा शेषाः किट्टयः सूक्ष्मसंपरायाद्धायाः ×प्रथमसमये उदयमागच्छन्ति । 'वज्जियेत्यादि' चरमसमयकृतानां किट्टीनां अधस्तादसंख्येयं भागं प्रथमसमयकृतानां चोपरितनमसंख्येयतमं भागं वर्जयित्वा शेषाः किट्टीरुदीरयति ॥ ५४ ॥

गिण्हंतो य मुयंतो, असंखभागं तु चरमसमयम्मि । उवसामेइय बिईय, ठिइं पि पुव्वं व सव्वद्धं ॥५५॥

गिण्हंतो य त्ति–द्वितिये समये उदयप्राप्तानां किट्टीनामसंख्येयं भागं मुञ्चति उपशान्तत्वादुदये न ददातीत्यर्थः । अपूर्वं चासंख्येयभागमनुभवनार्थमुदीरणाकरणेन गृह्णाति । एवं ग्रहणमोक्षौ कुर्वन् तावज्ज्ञातव्यो यावत्सूक्ष्मसंपरायाद्धायाश्चरमसमयः । द्वितीयस्थितिगतमपि दलिकं सूक्ष्मसंपरायाद्धाप्रथमसमयादारभ्य सर्वाद्धं सकलमपि सूक्ष्मसंपरायाद्धां यावत् पूर्ववदुपशमयति ।

×(य०उ०२५) प्रथमसमये प्राय उदयमागच्छन्ति । प्रथमस्थितिभावानाक्रान्तकिट्टिव्यवच्छेदार्थं प्रायः पदं ।

ठिई=प्रथमस्थिति. हेट्ठवरिं अन्त्य किट्टिनो नीचेनो अने प्रथम किट्टिनो उपरनो, असंखभागं=असंख्यातमो भाग, वज्जिय=वर्जीने, सेसा=शेष किट्टिओने, उदीरई=उदीरे छे ५४. चरि०यम्मि=१०माना अन्त्य समय सुधी, असंखभागं=किट्टिओना असंख्यातमा भागने, गिन्हन्तो य मुयंतो=ग्रहण करतो अने मूकतो, सव्वद्ध=तेना सर्वकाल पर्यंत, बिइयठिइपि=द्वितीय स्थितिगत दलिकने, पुव्वंव=पूर्वनी जेम, उवसामेइ=उपशमावे छे. ५५

समयोनावलिकाद्विकबद्धमपि दलिकमुपशमयति । सूक्ष्मसंपरायाद्धायाश्च चरमसमये ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणामान्तर्मौहूर्तिकः स्थितिबन्धः, नामगोत्रयोश्च षोडशमुहूर्तप्रमाणः, वेदनीयस्य च चतुर्विंशतिमुहूर्तमानः । तस्मिन्नेव चरमसमये सकलमपि मोहनीयमुपशान्तं । ततोऽनन्तरसमये उपशान्तमोहगुणस्थानकमवाप्नोति ॥५५॥

उवसंतद्धा भिन्न-मुहुत्तो तीसे य संखतमतुल्ला । गुणसेढी सव्वद्धं, तुल्ला य पएसकालेहिं ॥५६॥

उवसंतद्ध त्ति-भिन्नमुहूर्तोऽन्तर्मुहूर्त उपशान्ताद्धा उपशान्तमोहगुणस्थानकाद्धा । तत्र च गुणश्रेणिमारचयति तस्या उपशान्ताद्धाया यः संख्येयतमो भागस्तावत्प्रमाणां । ताश्च गुणश्रेणीः सर्वा अपि सर्वाद्धां सकलामपि उपशान्ताद्धां यावत् प्रदेशापेक्षया कालापेक्षया च तुल्याः करोति, अवस्थितपरिणामत्वात् ॥५६॥

उवसंता य अकरणा, संकमणोवट्टणा य दिट्ठितिगे । पच्छाणुपुव्विगाए, परिवडइ पमत्तविरतो त्ति॥५७॥

उवसंत त्ति-उपशान्ता मोहनीयप्रकृतयोऽकरणाः करणरहिता भवन्ति, संक्रमणोद्वर्तनापवर्तनोदीरणानिधत्तिनिकाचनाकरणानामयोग्या भवन्तीत्यर्थः । दृष्टित्रिके दर्शनमोहनीयत्रिके पुनरुपशान्तेऽपि संक्रमणापवर्तने भवतः । तत्र संक्रमो मिथ्यात्व-

---

गाथार्थ—भिन्नमुहुत्तो=अन्तर्मुहूर्त प्रमाण; उवसंतद्धा=उपशान्त अद्धा, तीसे०तुल्ला=तेना असंख्यातमा भाग तुल्य, गुणसेढी=गुणश्रेणि रचे छे. सव्वद्धं=ते गुणश्रेणि सर्वकाल, तुल्ला०कालेहिं=प्रदेश अने काल अपेक्षाए तुल्य छे ५६ उव०अकरणा=उपशान्त प्रकृतिओ, करण असाध्य छे. दिट्ठितिगे=उपशान्त दर्शनमोहमां, संक०ट्टणा य=संक्रम अने अपवर्तना प्रवर्ते छे. त्यांथी,पच्छा० गाए=पश्चानुपूर्वीए, पमत्तविरतोत्ति=प्रमत्त संयत सुधी, परिवडइ=पडे छे ५७

सम्यग्मिथ्यात्वयोः सम्यक्त्वे, अपवर्तना पुनस्त्रयाणामपि । एवं क्रोधेन श्रेणिं प्रतिपन्नस्य द्रष्टव्यं । यदा तु मानेन श्रेणिं प्रतिपद्यते तदा मानं वेदयन्नेव प्रथमतो नपुंसकवेदोक्तक्रमेण क्रोधत्रिकमुपशमयति । ततः क्रोधोक्तप्रकारेण मानत्रिकं, शेषं तथैव । यदा तु मायया श्रेणिं प्रतिपद्यते तदा मायां वेदयन्नेव प्रथमतो नपुंसकवेदोक्तप्रकारेण क्रोधत्रिकं, ततो मानत्रिकं । ततः क्रोधोक्तप्रकारेण मायात्रिकं, शेषं तथैव । यदा तु लोभेन श्रेणिं प्रतिपद्यते तदा लोभं वेदयन्नेव प्रथमतः क्रोधत्रिकं नपुंसकवेदोक्तक्रमेणोपशमयति । ततो मानत्रिकं, ततो मायात्रिकं, तत उक्तप्रकारेण लोभत्रिकमिति ।

संप्रति प्रतिपात उच्यते—सोऽपि द्विधा भवक्षयेण अद्धाक्षयेण च । तत्र भवक्षयो म्रियमाणस्य, अद्धाक्षय उपशान्ताद्धाया व्यवच्छेदः । तत्र यो भवक्षयेण प्रतिपतति तस्य प्रथमसमये एव सर्वाण्यपि करणानि प्रवर्तन्ते× । प्रथमसमये च यानि कर्माण्युदीर्यन्ते तान्युदयावलिकायां प्रवेशयति । यानि च नोदीरणामागच्छन्ति तेषां दलिकानि उदयावलिकाया बहिस्ताद्गोपुच्छाकारसंस्थितानि विरचयति । यः पुनरुपशान्तमोहगुणस्थानकाद्धापरिक्षयेण प्रतिपतति स येनैव क्रमेण स्थितिघातादीन् कुर्वन्नारुढस्तेनैव क्रमेण पश्चानुपूर्व्या स्थितिघातादीन् कुर्वन् प्रतिपतति । स च तावत्प्रतिपतति यावत्प्रमत्तसंयतगुणस्थानकं ॥५७॥

ओकड्डित्ता बिइय--ठिईहिं उदयादिसुं खिवइ दव्वं । सेढीए विसेसूणं, आवलिउप्पिं असंखगुणं ॥५८॥

×(य०उ०२६) अविरतसम्यग्दृष्टित्वभावात् ।

गाथार्थ—बिइठिइहिं=द्वितीय स्थितिमांथी दव्व=दलिकने, ओकड्डित्ता=आकर्षीने, उदयादिसुं=उदयादि समयोमां, विसेसूणं सेढीए=विशेषहीनश्रेणिए, खिवइ=क्षेपवे छे. आवलिउप्पिं=आवलि उपर, असंखगुणं=असंख्यगुण नांखे छे. ५८.

ओकड्ढित्त त्ति–उपशान्तमोहगुणस्थानकात् प्रतिपतन् क्रमेण संज्वलनलोभादीनि कर्माण्यनुभवति । तद्यथा—प्रथमतः संज्वलनलोभं, ततो यत्र मायोदयव्यवच्छेदस्तत आरभ्य माया । ततो यत्र मानोदयव्यवच्छेदस्ततोऽर्वाक् मानं । ततो यत्र क्रोधोदयव्यवच्छेदस्तत आरभ्य क्रोधं । इत्थं च क्रमेणोदयसमयप्राप्तानामनुभवनार्थं तेषां द्वितीयस्थितेः सकाशाद्दलिकमपकृष्य समाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति । उदयादिषु चोदयसमयप्रभृतिषु च स्थितिषु श्रेण्या विशेषोनं विशोषोनं प्रक्षिपति । तद्यथा—उदयसमये प्रभूतं । ततो द्वितीयसमये विशेषहीनं । ततोऽपि तृतीयसमये विशेषहीनं । एवं तावद्वाच्यं यावदुदयावलिकायाश्चरमसमयः । तत उदयावलिकाया उपरि असंख्येयगुणं । तद्यथा—उदयावलिकाया उपरि प्रथमसमये प्राक्तनानन्तरसमयदलिकनिक्षेपापेक्षयाऽसंख्येयगुणं । ततोऽपि द्वितीयसमयेऽसंख्येयगुणं । ततोऽपि तृतीयसमयेऽसंख्येयगुणं । एवं तावद्वक्तव्यं यावद् गुणश्रेणीशिरः । ततः परतः पुनरपि प्रागुक्तक्रमेण विशेषहीनो दलिकनिक्षेपः ॥५८॥

वेइज्जंतीणेवं, इयरासिं आलिगाएँ बाहिरओ । न हि संकमोणुपुव्विं व, छावलिगोदीरणाउप्पिं ॥५९॥

वेइज्जंतीणेवं ति–एष पूर्वोक्तो दलिकनिक्षेपस्तत्कालवेद्यमानप्रकृतीनामवसेयः । इतरासां त्ववेद्यमानानामावलिकाया उपर्येव दलिकनिक्षेपः । सोऽप्यसंख्येयगुणतया तावद्यावद् गुणश्रेणीशिरः । ततः परतः पुनरपि प्रागुक्तक्रमेण विशेषहीनो विशेषहीनः । 'न हीत्यादि' हिशब्दोऽवधारणे । ततोऽयमर्थः—आनुपूर्व्यैव संक्रमो न भवति, किं त्वनानुपूर्व्याऽपि भवति । तथा

गाथार्थ—वेइज्जंतीणेवं=ए प्रकारे वेद्यमान प्रकृतिओनो, इयरासिं=इतरनो, आलिगाए=आवलिनी, बाहिरओ=बहार निक्षेप. संक०पुव्विं=अनुपूर्वी संक्रम, नहि=तथीज. छाव०उप्पिं=उदीरणा छ आवलिका उपर थाय छे. ५९

बन्धानन्तरं षण्णामावलिकानामुपरि उदीरणा भवतीति प्राक् यदुक्तं तन्न भवति, किं तु बन्धावलिकामात्रातिक्रमेऽपि उदीरणा भवति ॥ ५९ ॥

वेइज्जमाणसंजलण-द्धाए अहिगा उ मोहगुणसेढी। तुल्ला य जयारुढो, अतो य सेसेहि से तुल्ला॥६०॥

वेइज्जमाण त्ति–मोहनीयस्य मोहनीयप्रकृतीनां गुणश्रेणिः कालमाश्रित्य वेद्यमानसंज्वलनकालादभ्यधिका प्रतिपतता सता प्रारभ्यते, समारोहकालगुणश्रेण्यपेक्षया तु तुल्या। तथा 'जयं ति' प्राकृतत्वात् स्त्रीत्वनिर्देशः, येन संज्वलनेनोपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्तदुदयेन प्राप्तः सन् ततः प्रभृति तस्य गुणश्रेणिं शेषकर्मसत्कगुणश्रेणिभिः सह तुल्यामारभते। यथा कश्चित्संज्वलनक्रोधेनोपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्ततः श्रेणेः प्रतिपतन् यदा संज्वलनक्रोधमुदयेन प्राप्तस्ततः प्रभृति तस्य गुणश्रेणिः शेषकर्मभिः समाना भवति। एवं मानमाययोरपि वाच्यं। संज्वलनलोभेन पुनरुपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्य प्रतिपातकाले प्रथमसमयादेवारभ्य संज्वलनलोभस्य गुणश्रेणिः शेषकर्मगुणश्रेणिभिः सह तुल्या प्रवर्तते। शेषकर्मणां पुनरुपशमश्रेणिमारोहतो यत् यत्र बन्धनसंक्रमादि प्रवृत्तं तत्तथैव प्रतिपततोऽपि क्रमेण पश्चानुपूर्व्या अन्यूनातिरिक्तं वेदितव्यं ॥६०॥

खवगुवसामगपडि--वयमाणदुगुणो तहिं तहिं बंधो। अणुभागो णंतगुणो, असुभाण सुभाण विवरीओ॥६१॥

गाथाथ—उ=वळी, मोहगुणसेढी=मोह प्रकृतिओनी गुणश्रेणि, वेइज्जमाण=वेद्यमान, संजलणद्धा=संज्वलन कालथी, अहिग.= अधिक काळवाळी रचे छे. तुल्ला०रूढो=जे संज्वलनना उदये श्रेणि आरंभे तेनो उदय थाय, अतो०हि=त्यांथी. सेसेहिं तुल्लत्ति=तेनी गुणश्रेणि शेष कर्मनी गुणश्रणि तुल्य करे. ६० खवग०माण=क्षपकथी उपशामक अने उपशमपतितने, तहिं तहिं=ते ते स्थळे, दुगणो=

खवगुवसामग त्ति–क्षपकस्य क्षपकश्रेणिमारोहतो यस्मिन् स्थाने यावान् स्थितिबन्धस्तस्मिन्नेव स्थाने उपशमश्रेणिमारोहतस्तावान् स्थितिबन्धो द्विगुणो भवति । ततोऽपि तस्मिन्नेव स्थाने उपशमश्रेणीतः प्रतिपततो द्विगुणो भवतीति क्षपकसत्कस्थितिबन्धापेक्षया चतुर्गुणो भवतीत्यर्थः । तथा क्षपकस्य यस्मिन् स्थानेऽशुभप्रकृतीनामनुभागो यावान् भवति, तदपेक्षया तस्मिन्नेव स्थाने तासामेवाशुभप्रकृतीनामुपशमकस्यानुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽपि तस्मिन्नेव स्थाने तासामेवाशुभप्रकृतीनामुपशमश्रेणीतः प्रतिपततोऽनन्तगुणः । 'सुभाण विवरीउ त्ति' शुभप्रकृतीनां पुनरनुभागो विपरीतो वाच्यः । स चैवं–उपशमश्रेणितः प्रतिपततो यस्मिन् स्थाने शुभप्रकृतीनां यावान् अनुभागो भवति, तदपेक्षया तस्मिन्(न्नेव) स्थाने तासामेव शुभप्रकृतीनामुपशमकस्यानुभागोऽनन्तगुणः । ततोऽपि तस्मिन्नेव स्थाने तासामेव शुभप्रकृतीनां क्षपकस्यानन्तगुणः । शेषं यथाऽऽरोहतस्तथा प्रतिपततोऽपि वेदितव्यं, यावत्प्रमत्तसंयतगुणस्थानं ॥ ६१ ॥

किच्चा पमत्ततदियर--ठाणे परिवत्ति बहुसहस्साणि । हि ट्ठिल्लाणंतरदुगं, आसाणं वा वि गच्छिज्जा ॥६२॥

किच्च त्ति–प्रमत्ताप्रमत्तसंयतगुणस्थानकयोः प्रभूतानि सहस्राणि यावत् परिवृत्तीः कृत्वा कश्चिदधस्तनमनन्तरं गुणस्थानकद्विकं याति । कोऽपि देशविरतोऽपि भवति । कोऽपि अविरतसम्यग्दृष्टिरपि भवतीत्यर्थः । येषां मतेनानन्तानुबन्धिनामुपशमना

(अनुक्रमे) बमणो, बंधो=बंध छे. असुभाण=अशुभनो, अणु०गुणो=अनंतगुण रसबंध, सुभाण=शुभनो, विवरीओ=तेथी विपरीत. ६१ पमत्त०ठाणे=प्रमत्त अने अप्रमत्त गुणस्थाने, परिवत्ति०स्साणि=घणा हजार परावर्त, किच्चा=करीने, हिट्ठि०दुगं=नीचेनां अनंतर बे (४-५) गुणस्थानके, आसाणं वा वि=अथवा सास्वादने पण, गच्छेज्जा=जाय. ६२

भवति तेषां मतेन कश्चित्सासादनभावमपि गच्छति ॥ ६२ ॥

उवसमसम्मत्तद्धा, अंतो आउक्खया धुवं देवो। तिसु आउगेसु बद्धेसु जेण सेढिं न आरुहइ ॥ ६३ ॥

उवसम त्ति–औपशमिकसम्यक्त्वाद्धायां वर्तमानो यदि कश्चिदायुःक्षयात्कालं करोति तर्ह्यवश्यं (तर्हि स ध्रुवमवश्यं) देवो भवति। अपि च सास्वादनभावमपि गतः सन् कालं करोति, तथापि स देव एव भवति। यत आह–येन कारणेन देवायुर्वर्जितेषु शेषेषु त्रिष्वायुःषु मध्येऽन्यतमस्मिन्नायुषि बद्धे श्रेणिमुपशमश्रेणिं नारोहति। ततः श्रेणिस्थितः श्रेणीतः (प्रतिपतित्वा) कालं कृत्वा देव एव भवति ॥ ६३ ॥

उग्घाडियाणि करणाणि, उदयट्ठिइमाइगं इयरतुल्लं। एगभवे दुक्खुत्तो, चरित्तमोहं उवसमेइ ॥ ६४ ॥

उग्घाडियाणि त्ति–करणानि बन्धनसंक्रमणादीनि उपशमश्रेणिमारोहतो यत्र यत्र स्थाने यानि यानि व्यवच्छिन्नस्थानानि (व्यवच्छिन्नानि) उपशमश्रेणीतः प्रतिपततः सतस्तत्तत्स्थानं प्राप्तस्य तानि तानि उद्घाटितानि भवन्ति तानि तानि तत्र प्रवर्तन्त इत्यर्थः। तथोदयस्थित्यादिकं उदयस्थितिबन्धादिकं, इतरतुल्यं उपशमश्रेण्यारोहभाव्युदयस्थित्यादितुल्यं, उपशमश्रेणि-

---

गाथार्थ—उवसम०अंतो=उपशम समकितना कालमां वर्ततो, आउक्खया=आयुःक्षये, धुवं देवो=निश्चे देव थाय. जेण=जे कारण माटे, तिसु०बद्धेसु=३आयुष्य बांधे छते, सेढिं=श्रेणिने, न आरुहइ=न आरंभे. ६३. उग्घा०करणाणि=उप०श्रेणि चढतां ज्यां ज्यां जे करणो विच्छेद पामे छे ते श्रेणिथी पडतां त्यां त्यां प्रवर्ते छे. उदय०इगं=उदय अने स्थितिबंधादि, इयरतुल्लं=श्रेणि तुल्य प्रवर्ते छे. एगभवे=१भवमां, दुक्खुत्तो=बे वार, चरित्तमोहं=चारित्र मोहनीयने, उवसमेइ=उपशमावे. ६४

मारोहतो यत्र यत्र यद्यत् उदयस्थित्यादिकं व्यवच्छिन्नं प्रतिपातेऽपि तत्र तत्र तत्तत् उदयस्थित्यादिकं प्रवर्तत इत्यर्थः। तथैकस्मिन् भवे द्वौ वारौ चारित्रमोहमुपशमयति उपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते इत्यर्थः। न तु तृतीयमपि वारं× ॥ ६४ ॥

एवं पुरुषवेदोदयेनोपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्य विधिरुक्तः, संप्रति स्त्रीवेदेन प्रतिपन्नस्योच्यते—

उदयं वज्जी इत्थी, इत्थिं समयइ अवेयगा सत्त। तह वरिसवरो वरि—सवरिं इत्थिं समगं कमारद्धे ॥६५॥

उदयं त्ति—इह स्त्री उपशमश्रेणिं प्रतिपन्ना सती प्रथमतो नपुंसकवेदमुपशमयति, पश्चात् स्त्रीवेदं। तं च तावदुपशमयति यावत्स्वोदयस्य द्विचरमसमयः। तस्मिंश्च समये एकां चरमसमयमात्रामुदयस्थितिं वर्जयित्वा शेषं सकलमपि स्त्रीवेदस्य सत्कं दलिकमुपशमितं। ततश्चरमसमये व्यतिक्रान्ते अवेदका सती पुरुषवेदहास्यादिकाः सप्त प्रकृतीर्युगपदुपशमयितुमारभते। शेषं पुरुषवेदेनेव श्रेणिं प्रतिपन्नस्य वेदितव्यं। संप्रति नपुंसकवेदेनोपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्य विधिमाह—'तहेत्यादि' वर्षवरो नपुंसक उपशमश्रेणिं प्रतिपन्नः सन्, तथेति एकामुदयस्थितिं मुक्त्वेत्यर्थः, समकं युगपत् नपुंसकवेदस्त्रीवेदावुपशमयति। 'कमारद्धे' इति क्रमेणारब्धे सति। तत्रायं संप्रदायः—स्त्रीवेदेन पुरुषवेदेन वा उपशमश्रेणिं प्रतिपद्यमानो यस्मिन् स्थाने नपुंसकवेदमुपशमयति तद्दूर यावन्नपुंसकवेदेनापि श्रेणिं प्रतिपन्नः सन् नपुंसकवेदमेव केवलमुपशमयति। तत ऊर्ध्वं पुनर्नपुंसकवेदं स्त्रीवेदं च युग-

×(य०उ०२७) अहीं पेज २७८ मां मूकेल ×य०उ०२२ समजवुं अने त्यां 'एकोत्तरवृद्धित्यागेन' ए प्रमाणे जाणवुं.

गाथार्थ—उदयं वज्जिय=अन्त्य उदय समय सिवायना, इत्थि=स्त्रीवेदने उपशमावती, इत्थी=स्त्री, अवेयगा=अवेदक थकी, सत्त=पुंवेद अने हास्यषट्क ए ७ने, समयइ=उपशमावे छे, तह=तेमज, कमारद्धे=ए क्रमे उपशमश्रेणि आरंभनार, वरिसवरो=नपुंसकवेदने,

पदुपशमयितुं लग्नः । स च तावद्गतो यावन्नपुंसकवेदाद्धाया द्विचरमसमयः । तस्मिंश्च समये स्त्रीवेद उपशान्तः । नपुंसकवेदस्य च एका समयमात्रोदयस्थितिर्वर्तते । शेषं सर्वमुपशान्तं । तस्यामप्युदयस्थितावतिक्रान्तायामवेदको भवति । ततः पुरुषवेदादिकाः सप्त प्रकृतीर्युगपदुपशमयितुं यतते । शेषं तथैव ॥ ६५ ॥

तदेवमुक्ता सर्वोपशमना, संप्रति देशोपशमनामभिधातुकाम आह—

पगइठिईअणुभाग–प्पएसमूलुत्तराहि पविभत्ता । देसकरणोवसमणा, तीए समियस्स अट्ठपयं ॥ ६६ ॥

पगइ त्ति–देशतः करणाभ्यां यथाप्रवृत्तापूर्वकरणसंज्ञाभ्यां कृत्वा प्रकृत्यादीनामुपशमना देशकरणोपशमना । इदमुक्तं भवति–यथाप्रवृत्तकरणापूर्वकरणाभ्यां यत् प्रकृत्यादिकं देशतः उपशमयति, न सर्वात्मना सा देशकरणोपशमना । सा च चतुर्विधा, तद्यथा—प्रकृतिदेशोपशमना, स्थितिदेशोपशमना, अनुभागदेशोपशमना, प्रदेशदेशोपशमना चेति । पुनरप्येकैका द्विधा–मूलप्रकृतिविषया उत्तरप्रकृतिविषया च । तया च देशकरणोपशमनया शमितस्य उपशमं नीतस्य, इदमर्थपदमिदं तात्पर्यं ॥ ६६ ॥

तदेवाह—

उव्वट्टणओवट्टण–संकमणाइं च तिन्नि करणाइं । पगईतयासमईओ, पहू नियट्टिंमि वट्टंतो ॥ ६७ ॥

इत्थं समगं=स्त्रीवेद साथे, उपशमावे छे. ६५. मूलुत्तर०पविभत्ता=मूल अने उत्तरभेद वडे वहेंचाएल, देस०समणा=प्रथमना करणो वडे थती देशोपशमना, पयइ०प्पएस=प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, अने प्रदेशना भेदवाळी छे. तीए=तेना वडे, समियस्स=उपशमेल कर्मनुं, अट्ठपयं=आ तात्पर्य छे ६६ उव्व०मणाइं=उद्वर्तना, अपवर्तना अने संक्रमण, तिन्नि करणाइं=ए ३ करणो देशो

उवट्टणत्ति–देशोपशमनया उपशमितस्य कर्मण उद्वर्तनापवर्तनासंक्रमरूपाणि त्रीणि करणानि प्रवर्तन्ते, नान्यानि करणानि उदीरणाप्रभृतीनि । एष देशोपशमनाया विशेषः । तथा मूलप्रकृतिमुत्तरप्रकृतिं वा तया देशोपशमनया उपशमयितुं प्रभुः समर्थो निवृत्तिकरणेऽपूर्वकरणे वर्तमानः । इह निवृत्तिग्रहणं पर्यवसानार्थं वेदितव्यं । तत इदमुक्तं भवति–सर्वेऽप्येकद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्नारकदेवा मनुष्याश्च यथासंभवमपूर्वकरणपर्यवसानाः सर्वकर्मणां देशोपशमनास्वामिनोऽवसेयाः ॥६७॥

एतदेव भावयति—

दंसणमोहाणंता–णुबधिणं सगनियट्टिओ णुप्पि । जा उवसमे चउद्धा, मूलुत्तरणाइसंताओ ॥ ६८ ॥

दंसण त्ति–दर्शनमोहनीयानन्तानुबन्धिनां स्वकीयात् स्वकीयात् अपूर्वकरणात् परतो देशोपशमना न भवति । तत्र दर्शनत्रिकस्य क्षपका अविरता देशविरता विरता वा, उपशमकास्तु विरताः स्वापूर्वकरणान्तसमयं यावद्देशोपशमनां कुर्वन्ति । अनन्तानुबन्धिनां पुनर्विसंयोजने चातुर्गतिका अपि स्वापूर्वकरणान्तिमसमयं यावद्देशोपशमकाः, न परतः । शेषाणां पुनश्चारित्रमोहनीयप्रकृतीनामुपशमनायां क्षपणायां वा यावदपूर्वकरणगुणस्थानकचरमसमयस्तावद्देशोपशमना । शेषाणां सर्वोपशमना न भवति, किं तु देशोपशमनैव । सापि चापूर्वकरणस्थानकं यावदवगन्तव्या । तथा या मूलप्रकृतय उत्तरप्रकृतयो वाऽनादिसत्ताकास्ता

पशमनामां प्रवर्ते छे. पगइ०समईओ=प्रकृतिने देशोपशमनावडे उपशमाववाने, पहू=समर्थ, नियट्टिमि वट्टंतो=अपूर्वकरण सुधी वर्तता जीव जाणवा. ६७ । दंसण०बंधिणं=दर्शनमोहनीय, ने अनंतानुबंधीनी, सग०णुप्पिं=स्व स्व अपूर्वकरणथी आगळ उपशामना थती नथी. मूलु०संताओ=मूल प्रकृति, उत्तरप्रकृति अने अनादि सत्ताक प्रकृतिओनी, जा उव०चउद्धा=देशोपशमना ४ प्रकारे छे. ६८

उपशमे देशोपशमनामधिकृत्य चतुर्विधाः, तद्यथा—सादयोऽनादयो ध्रुवा अध्रुवाश्च। तत्र मूलप्रकृतयोऽष्टावपि चतुर्विधाः। तथाहि—अपूर्वकरणगुणस्थानकात् परतो गत्वा प्रतिपततां सा देशोपशमना प्रवर्तमाना सादिः। तत्स्थानमप्राप्तानां पुनरनादिः। ध्रुवा अभव्यानां। भव्यानां त्वध्रुवा। कृता मूलप्रकृतीनां साद्यनादिप्ररूपणा॥

संप्रत्युत्तरप्रकृतीनां सा क्रियते—तत्र वैक्रियसप्तकाहारकसप्तकमनुष्यद्विकदेवद्विकनरकद्विकसम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वोच्चैर्गोत्ररूपोद्वलनयोग्यत्रयोविंशतितीर्थकरायुश्चतुष्टयवर्जितं शेषं त्रिंशदुत्तरं प्रकृतिशतं (१३०) ध्रुवसत्कर्म, तस्य देशोपशमना चतुर्विधा, तद्यथा—सादिरनादिर्ध्रुवाऽध्रुवा च। तथाहि—मिथ्यात्वानन्तानुबन्धिनां स्वस्वापूर्वकरणात्परतो देशोपशमना न भवति। शेषकर्मणां त्वपूर्वकरणगुणस्थानकात्परतो न भवति। ततः परतः स्थानात् प्रच्यवमानानां प्रवर्तमाना सादिः। तत्स्थानमप्राप्तानां पुनरनादिः। ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत्। शेषाणां तूद्वलनयोग्यत्रयोविंशत्यादीनामष्टाविंशतिप्रकृतीनामध्रुवसत्कर्मत्वादेव देशोपशमना सादिरध्रुवा च विज्ञेया॥ ६८॥

संप्रति देशोपशमनामधिकृत्य प्रकृतिस्थानप्ररूपणार्थमाह—

चउरादिजुया वीसा, एक्कवीसा य मोहठाणाणि। संकमनियट्टिपाउग्गाइं सजसाइं नामस्स॥ ६९॥

गाथार्थ—चउरा०वीसा=४ वगेरेथी युक्त २० (२४थी २८सुधीनां ५) तथा, एक्कवीसा=२१नुं ए ६, मोहठाणाणि=मोहनीयनां देशोपशमनानां स्थान छे. नामस्स=नामकर्मने विषे, सजसाइ=यश सहित, संकम०पाउग्गाइं=प्रकृतिस्थान संक्रममां कहेलां स्थानो अपूर्वकरणमां देशोपशमना संबंधि जाणवा. ६९

चउरादिजुय त्ति–मोहनीयस्य देशोपशमनामधिकृत्य षट् प्रकृतिस्थानानि। तद्यथा—चतुरादियुता विंशतिरेकविंशतिश्च, चतुर्विंशतिः, पञ्चविंशतिः, षड्विंशतिः, सप्तविंशतिः, अष्टाविंशतिः, एकविंशतिश्चेत्यर्थः। शेषाणि पुनरनिवृत्तिबादरे प्राप्यन्ते इति कृत्वा न संभवन्ति। तत्राष्टाविंशतिस्थानं मिथ्यादृष्टिसास्वादनसम्यग्मिथ्यादृष्टिवेदकसम्यग्दृष्टीनां संप्राप्यते। सप्तविंशतिस्थानं उद्वलितसम्यक्त्वस्य मिथ्यादृष्टेः सम्यङ्मिथ्यादृष्टेर्वा। षड्विंशतिस्थानं उद्वलितसम्यक्त्वसम्यङ्मिथ्यात्वस्यानादिमिथ्यादृष्टेर्वा। पञ्चविंशतिस्थानं षड्विंशतिसत्कर्मणो मिथ्यादृष्टेः सम्यक्त्वमुत्पादयतोऽपूर्वकरणात्परतो वेदितव्यं, तस्य मिथ्यात्वदेशोपशमनाया अभावात्। तथाऽनन्तानुबन्धिनामुद्वलनेऽपूर्वकरणात्परतो वर्तमानस्य चतुर्विंशतिस्थानं, चतुर्विंशतिसत्कर्मणो वा चतुर्विंशतिस्थानं। क्षपितसप्तकस्य एकविंशतिस्थानं। संप्रति नामकर्मणः प्रकृतिस्थानान्याह—'संकमेत्यादि' प्रकृतिस्थानसंक्रमे नाम्नो यानि यशःकीर्त्या सह स्थानान्युक्तानि तान्येव निवृत्तिप्रायोग्यानि अपूर्वकरणप्रायोग्यानि भवन्ति देशोपशमनायोग्यानि भवन्तीत्यर्थः। तानि चेमानि, तद्यथा—त्र्युत्तरशतं, द्व्युत्तरशतं, षण्णवतिः, पञ्चनवतिः, त्रिनवतिः, चतुरशीतिः, द्व्यशीतिश्चेति। तत्रादिमानि चत्वारि यावदपूर्वकरणगुणस्थानकचरमसमयस्तावद्वेदितव्यानि, न परतः। शेषाणि च त्रीणि त्रिनवतिचतुरशीतिद्व्यशीतिरूपाणि एकेन्द्रियादीनां भवन्ति। श्रेणिं प्रतिपद्यमानानां तु न संभवंति। शेषाणि तु स्थानानि अपूर्वकरणगुणस्थानकात्परतो लभ्यन्ते, नार्वागिति देशोपशमनायोग्यानि। ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयान्तरायाणामेकैकं प्रकृतिस्थानं देशोपशमनायोग्यं। तत्र ज्ञानावरणान्तरायोः पञ्चप्रकृत्यात्मकं, दर्शनावरणस्य नवप्रकृत्यात्मकं, वेदनीयस्य द्विप्रकृत्यात्मकं। आयुर्गोत्रयोर्द्वे द्वे स्थाने एका द्वे च प्रकृती ॥ ६९ ॥

उक्ता प्रकृतिदेशोपशमना, संप्रति स्थितिदेशोपशमनामाह—

ठिइसंकम व्व ठिइ-उवसमणा णवरि जहन्निया कज्जा। अप्पभवसिद्धि जहन्ना, उव्वलगनियट्टिगे वियरा।७०।

ठिइसंकम व्व त्ति–स्थितिसंक्रमवत् स्थितिदेशोपशमना द्रष्टव्या । नवरमिह जघन्या जघन्यस्थितिदेशोपशमनायोग्या कार्या, अभवसिद्धिकप्रायोग्या जघन्या स्थितिः । एतदुक्तं भवति—स्थितिदेशोपशमना द्विविधा—मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां च । एकैकापि द्विधा—जघन्योत्कृष्टा च । तत्र मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां वा उत्कृष्टस्थितिदेशोपशमनास्वामी यः प्रागुत्कृष्टस्थितिसंक्रमस्वामी प्रतिपादितः स एव वेदितव्यः । जघन्यस्थितिदेशोपशमनास्वाम्यपि जघन्यस्थितिसंक्रमस्वाम्येव प्रतिपत्तव्यः । केवलं जघन्यस्थितिदेशोपशमनास्वामी अभवसिद्धिकप्रायोग्यजघन्यस्थितौ वर्तमान एकेन्द्रियो द्रष्टव्यः, तस्यैव प्रायः सर्वकर्मणामतिजघन्यायाः स्थितेः प्राप्यमाणत्वात् । याश्चेतराः प्रकृतयोऽभवसिद्धिकप्रायोग्यजघन्यस्थितयो न भवन्ति तासामुद्वलकेऽपूर्वकरणे वा जघन्यस्थितिदेशोपशमना वेदितव्या । तत्रोद्वलके उद्वलनप्रायोग्यानां प्रकृतीनामन्तिमे स्थितिखंडे पल्योपमासंख्येयभागमात्रे वर्तमानस्तत्राप्याहारकसप्तकसम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वानामेकेन्द्रियोऽनेकेन्द्रियो वा, शेषप्रकृतीनां तूद्वलनयोग्यानां वैक्रियसप्तकदेवद्विकनरकद्विकमनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकेन्द्रिय एव, अन्यासां स्वपूर्वकरणचरमसमये वर्तमानो जघन्यां देशोपशमनां करोति ॥ ७० ॥

गाथार्थ—ठिइ संकमव्व=स्थितिसंक्रमनी जेम, ठिइ०मणा=स्थिति देशोपशमना, णवरिं=विशेषमां, जहन्निया=जघन्य स्थिति देशो० मां, अभव्व०जहन्ना=अभव्वप्रायोग्य ज०स्थिति, कज्जा०कहेवी. वियरा=तेथी इतरनी, उव्व०ट्टिगे=उद्वलनामां अथवा अपूर्वकरणमां.७०.

अणुभागसंकमसमा, अणुभागुवसामणा नियट्टिम्मि । संकमपएसतुल्ला, पएसुवसामणा चेत्थ ॥ ७१ ॥

अणुभाग त्ति–अनुभागसंक्रमसमा अनुभागदेशोपशमना वक्तव्या । नवरं निवृत्तावपूर्वकरणे चरमसमयं यावत् । इयमत्र भावना—य एवोत्कृष्टानुभागसंक्रमस्वामी प्राक् प्रतिपादितः, स एवोत्कृष्टानुभागदेशोपशमनाया अपि स्वामी । तत्राशुभप्रकृतीनां मिथ्यादृष्टिः, शुभप्रकृतीनां तु सम्यग्दृष्टिः । नवरं सातवेदनीययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राणामुत्कृष्टानुभागसंक्रमस्वामिनोऽपूर्वकरणगुणस्थानकात्परतोऽपि भवन्ति । उत्कृष्टानुभागदेशोपशमनायाः पुनरुत्कर्षतोऽप्यपूर्वकरणगुणस्थानकपर्यवसाना एव वेदितव्याः । जघन्यानुभागदेशोपशमना तीर्थकरवर्जानां सर्वासामपि प्रकृतीनामेकेन्द्रिये अभवसिद्धिकप्रायोग्यजघन्यस्थितौ वर्तमाने द्रष्टव्या । तीर्थकरनाम्नस्तु जघन्यानुभागसंक्रमवत् । प्रदेशदेशोपशमना चात्र प्रदेशसंक्रमतुल्या वेदितव्या । एतदुक्तं भवति—उत्कृष्टप्रदेशोपशमना उत्कृष्टप्रदेशसंक्रमतुल्या । नवरं येषां कर्मणामपूर्वकरणात्परतोऽपि उत्कृष्टः प्रदेशसंक्रमः प्राप्यते, तेषामप्यपूर्वकरणगुणस्थानकचरमसमयमेव यावत् उत्कृष्टप्रदेशोपशमना वाच्या । जघन्या पुनः प्रदेशदेशोपशमना जघन्यप्रदेशसंक्रमतुल्यैवेति ७१

॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां कर्मप्रकृतिटीकायामुपशमनाकरणं समाप्तम् ॥

गाथार्थ—इत्थ=अहींआं, अणु०समा=अनुभागसंक्रम तुल्य, अणु०मणा=अनुभागदेशोपशमना, नियट्टिम्मि=अपूर्वकरणमां जाणवी, च=अने, संक०तुल्ला=प्रदेशसंक्रम तुल्य, पएसु०मणा=प्रदेश देशोपशमना छे. ७१

तदेवमुक्तमुपशमनाकरणं । संप्रति निधत्तिनिकाचनाकरणे प्रतिपिपादयिषुराह—

देसोवसमणतुल्ला, होइ निहत्ती निकाइया नवरं। संकमणं पि निहत्तीए, नत्थि सेसाण वियरस्स ॥७२॥

देसोवसमण त्ति–निधत्तिर्निकाचना च देशोपशमनातुल्या । इदमुक्तं भवति—ये देशोपशमनाया भेदा ये च स्वामिनस्तेऽन्यूनातिरिक्ता निधत्तिनिकाचनयोरपि वेदितव्याः । नवरं अर्थपदं निधत्तिनिकाचनयोः । इदं संक्रमणमपि परप्रकृतिसंक्रमणमपि । अपिशब्दादुदीरणादीन्यपि निधत्तौ सत्यां न भवन्ति, उद्वर्तनापवर्तने पुनर्भवत एव । इतरस्यां निकाचनायां शेषे अपि उद्वर्तनापवर्तने न भवतः । सकलकरणायोग्यं निकाचितमित्यर्थः ।। ७२ ॥

इह यत्र गुणश्रेणिस्तत्र प्रायो देशोपशमनानिधत्तिनिकाचनायथाप्रवृत्तसंक्रमा अपि संभवन्ति, ततस्तत्राल्पबहुत्वमाह—

गुणसेढिपएसग्गं, थोवं पतेगसो असंखगुणं। उवसामाणाइ (सु) तीसु वि, संकमणेहप्पवत्ते य ॥ ७३ ॥

गुणसेढि त्ति—गुणश्रेणीप्रदेशाग्रं स्तोकं । ततः प्रत्येकशः प्रत्येकं प्रत्येकं उपशमनादिषु त्रिषु यथाप्रवृत्ते च संक्रमणेऽसंख्येय-

---

गाथार्थ—निहत्ती=निधत्ति, निकायणा=निकाचना, देसो०तुल्ला=देशोपशमना तुल्य, होइ=छे. नवरं=विशेषमां, निहत्तीए=निधत्तमां संक्रमणंपि=संक्रमण पण, नत्थि=नथी. वियरस्स=इतर (निकाचना)मां, सेसाणि=शेष (उद्व०अपव०) पण नथी. ७२

गाथार्थ—गुणसेढि०थोवं=गुणश्रेणिनो प्रदेशाग्र स्तोक, तेथी उव०तीसु वि=उपशमानादि त्रण, संकम०वत्ते य=अने यथाप्रवृत्त संक्रमथी संक्रमातो प्रदेशाग्र, पत्ते०गुणं=ए दरेकनो अनुक्रमे असंख्यगुण जाणवो.७२

गुणं वक्तव्यं । इयमत्र भावना—यस्य तस्य वा कर्मणो गुणश्रेणीप्रदेशाग्रं सर्वस्तोकं । ततो देशोपशमनायामसंख्येयगुणं । ततो निधत्तमसंख्येयगुणं । ततोऽपि यथाप्रवृत्तसंक्रमेण संक्रान्तमसंख्येयगुणं ॥ ७३ ॥

संप्रत्यष्टानामपि करणानां येऽध्यवसायारतेषां परिमाणनिरूपणार्थमाह—

थोवा कसायउदया, ठिइबंधोदीरणा य(इ)संकमणा। उवसामणाइसु अज्झ·वसाया कमसो असंखगुणा॥७४॥

थोवत्ति—स्थितिबन्धे, उपलक्षणमेतत्, अनुभागबन्धे वा ये ×कषायोदीरणास्ते सर्वस्तोकाः । प्रकृतिप्रदेशबन्धौ च योगाद्भवत इति ताविह न गृह्यते, अनुभागबन्धश्चोपलक्षणव्याख्यानाद् गृहीतः । ततश्च स्थितिबन्धे कषायोदयाः स्तोका इति । किमुक्तं भवति ? बन्धनकरणाध्यवसायाः सर्वस्तोकाः । तेभ्य उदीरणाध्यवसाया असंख्येयगुणाः । ततोऽपि संक्रमाध्यवसाया असंख्येयगुणाः । संक्रमग्रहणेन चात्रोद्वर्तनापवर्तने अपि गृहीते द्रष्टव्ये, संक्रमभेदत्वात्तयोः । तत उपशमनाध्यवसाया असंख्येयगुणाः । ततोऽपि निधत्त्यध्यवसाया असंख्येयगुणाः । ततोऽपि निकाचनाध्यवसाया असंख्येयगुणाः ।॥ ७४ ॥ ३८७ ॥

॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां कर्मप्रकृतिटीकायां करणाष्टकम् ॥

×(य०उ०२८) कषायोदया बन्धनकरणाध्यवसायाः ।

गाथार्थ—ठिइबंध=स्थितिबंधना, कसायउदया=कषायोदयो (अध्यवसायो), थोवा=स्तोक, तेथी, उदी०मणे=उदीरणाना, संक्रमणना, उवसमणाइसु=उपशमनादिकना, अज्झवसाया=अध्यवसायो, कमसो=अनुक्रमे, असंखगुणा=असंख्यगुण छे ७४

तदेवमुक्तानि करणानि, संप्रत्युद्देशक्रमप्राप्तमुदयमभिधित्सुराह–

उदओ उदीरणाए, तुल्लो मोत्तूण एक्कचत्तालं । आवरणविग्घसंज-लणलोभवेए य दिट्ठिदुगं ॥ १ ॥
आलिगमहिगं वेए(इं)ति आउगाणं पि अप्पमत्ता वि । वेयणियाण य दुसमय तणुपज्जत्ता य निद्दाओ॥२॥
मणुयगइजाइ तस–बायरं च पज्जत्तसुभगमाएज्जं । जसकित्तिमुच्चगोयं, चाजोगी(गा)केइ तित्थयरं ॥३॥

उदओ इत्यादि–उदय उदीरणातुल्यः । किमुक्तं भवति ? ये उदीरणायाः प्रकृत्यादयो भेदाः प्रागुक्ताः, या च साद्यनादिप्ररूपणा, यच्च स्वामित्वं, एतत्सर्वमन्यूनातिरिक्तमुदयेऽपि द्रष्टव्यं, उदयोदीरणयोः सहभावित्वात् । तथाहि—यत्रोदयस्तत्रोदीरणा, यत्रोदीरणा तत्रोदयः । किं सर्वत्राप्येवमिति चेदत आह–मुक्त्वा एकचत्वारिंशत्प्रकृतीः । तासामुदीरणामन्तरेणापि कियत्कालमुदयस्य प्राप्यमाणत्वात् । तथाहि–ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कान्तरायपञ्चकसंज्वलनलोभवेदत्रयसम्यक्त्वमिथ्यात्वरूपा

गाथार्थ—मोत्त०चत्तालं=४१ प्रकृतिओ मूकीने, उदओ=उदय, उदीरणाए तुल्लो=उदीरणा तुल्य, आवरण० वेए य=पज्ञाना०,४दर्शना०, ५ अन्तराय, सं०लोभ, ३वेद, दिट्ठिदुगं=सम०मोह०, मिथ्यात्वमोह०, आव०वइंति=१ आवलिका अधिक वेदे छे. आउगाणंपि=४ आयुष्य पण एमज. वेयणीयाणि=२ वेदनीय अने मनुष्यायुने, अप्पमत्ता वि=अप्रमत्तादिक उदीरणा विना उदय वडे वेदे छे तणु०य= शरीरपर्याप्तिए पर्याप्त, दुसमय=द्वितीय समयथी, निद्दाओ=५ निद्राने उदी०विना भोगवे छे. मणु०बायरं च=मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसनाम, बादरनाम, पज्जत्त०माएज्जं=पर्याप्त, सौभाग्य अने आदेय, जस०गोयं च=यशःकीर्ति ने उच्चैर्गोत्रने, अजोगी=अयोगी केवली, केइ=कोइ (तीर्थंकर केवली), तित्थयरं=जिननामने फक्त उदयवडेज वेदे छे, १–२–३

विंशतिप्रकृतीः स्वस्वोदयपर्यवसाने आवलिकामात्रं कालमधिकं वेदयंति, उदीरणामन्तरेणापि केवलेनोदयेनावलिकामात्रं कालमनुभवन्तीत्यर्थः। तच्चावलिकामात्रं त्रयाणां वेदानां मिथ्यात्वस्य चान्तरकरणस्य प्रथमस्थितौ आवलिकाशेषायां, शेषाणां तु कर्मणां स्वस्वसत्तापर्यवसाने, तथा चतुर्णामप्यायुषां स्वस्वपर्यवसाने आवलिकामात्रं कालमुदय एव भवति, नोदीरणा×। मनुष्यायुर्वेदनीययोर्वाऽप्रमत्ता अप्रमत्तसंयतप्रभृतय उदीरणामन्तरेण केवलेनैवोदयेन वेदयन्ते। तथा तनुपर्याप्ताः शरीरपर्याप्त्या पर्याप्ताः सन्तो द्वितीयसमयादारभ्य शरीरपर्याप्त्यनन्तरसमयादारभ्येन्द्रियपर्याप्तिचरमसमयं यावदुदीरणामन्तरेणापि केवलेनैवोदयेन निद्राः पञ्चापि वेदयन्ते। तथा मनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरपर्याप्तसुभगादेययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्ररूपा नव प्रकृतीरयोगिकेवलिन उदीरणामन्तरेण स्वं कालं यावत् केवलेनैवोदयेन वेदयन्ते। केचित्तीर्थकरमपि ये तीर्थकृतः ॥ १-२-३ ॥

तदेवमुक्तः प्रकृत्युदयः, संप्रति स्थित्युदयमाह—

ठिइउदओ वि ठिइक्खय-पओगसाठिइउदीरणा अहिगो। उदयठिईउ हस्सो, छत्तीसा एग उदयठिई ॥४॥

ठिइउदउ त्ति—इह द्विविध उदयः स्थितिक्षयेण प्रयोगेण च। तत्र स्थितिरबाधाकालरूपा तस्याः क्षयेण द्रव्यक्षेत्रकालभवभावरूपाणामुदयहेतूनां संप्राप्तौ सत्यां यः स्वभावत उदयः प्रवर्तते स स्थितिक्षयेणोदयः। यः पुनस्तस्मिन्नुदये प्रवर्तमाने

गाथार्थ—ठिइउदओवि=स्थिति उदय पण, ठिइ०पओगसो=स्थितिक्षयथी ने प्रयोगथी, ठिइ०अहिगो=उ०स्थितिउदय उ० स्थिति उदीरणाथी समयाधिक छे. छत्तीसा=३६प्रकृतिओनो उदय०हस्सो=जघन्य स्थित्युदय, एग०ठिई=समयमात्र उदयस्थिति प्रमाण छे. ४

×(य०उ०१) आवलिकान्तर्गतस्य कर्मणः सर्वस्याप्युदीरणानर्हत्वात्।

सति उदीरणाकरणरूपेण प्रयोगेण दलिकमाकृष्यानुभवति स प्रयोगोदयः । तथा चाह—स्थित्युदयोऽपि स्थितिक्षयात् प्रयोगतश्च भवति । स च द्विधा उत्कृष्टो जघन्यश्च । तत्रोत्कृष्टः स्थित्युदीरणात उदयस्थित्याऽभ्यधिकः । तथाहि—उत्कृष्टायां स्थितौ बध्यमानायामबाधाकालेऽपि प्राग्बद्धं दलिकमस्तीति कृत्वा बन्धावलिकायामतीतायामनन्तरस्थितौ विपाकोदयेन वर्तमान उदयावलिकात उपरितनीः सर्वा अपि स्थितीरुदीरयति । उदीर्य च वेदयते । ततो बन्धावलिकोदयावलिकाहीनायाः शेषायाः सर्वस्या अपि स्थितेरुदयोदीरणे तुल्ये । वेद्यमानायां च स्थितावुदीरणा न प्रवर्तते, किंतूदय एव केवलः, ततो वेद्यमानया समयमात्रस्थित्याऽभ्यधिकः स्थित्युदीरणात उत्कृष्टस्थित्युदयः बन्धावलिकोदयावलिकाहीनश्च उत्कृष्टः स्थित्युदय उदयोत्कृष्टबन्धानां वेदितव्यः । शेषाणां तु यथायोग्यं । तत्राप्युक्तनीत्या उदयस्थित्याभ्यधिकोऽवगन्तव्यः । तथा ह्रस्वो जघन्यः स्थित्युदयः षट्त्रिंशत्प्रकृतीनामेका समयमात्रा उदयस्थितिः । एतदुक्तं भवति—षट्त्रिंशत्प्रकृतीनां जघन्यः स्थित्युदयः समयमात्रैकस्थित्युदयप्रमाणो वेदितव्यः, समयमात्रा चैका स्थितिः चरमसमयस्थितिरवसेया । षट्त्रिंशत्प्रकृतयश्च प्रागुक्ता एवैकचत्वारिंशत्प्रकृतयो निद्रापञ्चकव्यतिरिक्ता वेदितव्याः । निद्रापञ्चकस्य ह्युदीरणाया अभावेऽपि शरीरपर्याप्त्यनन्तरं केवलोदयकालेऽपवर्तते(अपवर्तनापि) । तत एकास्थितिर्न प्राप्यते इति तद्वर्जनं । शेषं जघन्योदीरणातुल्यं निरवशेषमवगन्तव्यं ॥ ४ ॥

तदेवमुक्तः स्थित्युदयः, संप्रत्यनुभागोदयमाह—

अणुभागुदओ वि जहण्ण, नवरि आवरणविग्घवेयाणं। संजलणलोभसम्मत्त-ण य गंतूणमावलिगं ॥५॥

गाथार्थ—अणु०वि=अनुभागोदय पण अनुभागोदीरणा तुल्य, नवरिं=विशेषमां, आव०वेयाणं=५ज्ञाना०,४दर्शा०,५अंत०, ३वेद, संज०

अणुभाग त्ति-यथाऽनुभागोदीरणा प्राक् सप्रपञ्चमभिहिता, तथाऽनुभागोदयोऽपि वक्तव्यः । नवरं ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चक दर्शनावरणचतुष्टयवेदत्रयसंज्वलनलोभसम्यक्त्वानामुदीरणाव्यवच्छेदे सति परत आवलिकां गत्वाऽतिक्रम्य तस्या आवलिकायाश्चरमसमये जघन्यानुभागोदयो वाच्यः ॥ ५ ॥ तदेवमुक्तोऽनुभागोदयः ।

संप्रति प्रदेशोदयाभिधानावसरः । तत्र चेमौ अर्थाधिकारौ, तद्यथा—साद्यनादिप्ररूपणा(१) स्वामित्वं (२) च । साद्यनादिप्ररूपणा द्विविधा—मूलप्रकृतिविषया उत्तरप्रकृतिविषया च । तत्र मूलप्रकृतिविषयसाद्यनादिप्ररूपणार्थमाह—

अजहण्णाणुक्कोसा, चउत्तिहा छण्ह चउव्विहा मोहे । आउस्स साइअधुवा, सेसविगप्पा य सव्वेसिं ॥ ६ ॥

अजहण्ण त्ति —मोहनीयायुर्वर्जानां षण्णां कर्मणामजघन्यः प्रदेशोदयश्चतुर्विधः, तद्यथा-सादिरनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्च । तथाहि-कश्चित् क्षपितकर्मांशो देवलोके देवो जातः । स च तत्र संक्लिष्टो भूत्वा उत्कृष्टां स्थितिं बध्नन् उत्कृष्टं प्रदेशाग्रमुद्वर्तयति । ततो बन्धावसाने कालं कृत्वा एकेन्द्रियेषूत्पन्नः, तस्य प्रथमसमये प्रागुक्तानां षण्णां कर्मणां जघन्यः प्रदेशोदयः, स चैकसामयिक इति कृत्वा सादिरध्रुवश्च, ततोऽन्यः सर्वोऽप्यजघन्यः । सोऽपि तस्य द्वितीयसमये भवन् सादिः, तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः, ध्रुवाध्रुवौ पूर्ववत् । तथा तेषामेव षण्णां कर्मणामनुत्कृष्टः प्रदेशोदयस्त्रिधा त्रिप्रकारः, तद्यथा-अनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्च । तथाहि-

---

त्ताण य=संज्य०लोभ ने समकितमो०नो, जहन्नो=ज०अनुभागोदय, गंतू०लिगं=उदीरणा विच्छेद पछी आवलिका बाद. ५ । छन्ह=६ कर्मनो, अजह०क्कोसा=अजघन्य ने अनुत्कृष्ट प्रदेशोदय, चउत्तिहा=अनुक्रमे ४ ने ३ प्रकारे, चउव्विहा मोहे=मोहनीयना बंने ४भांगे, आउस्स=आयुष्यना सर्वे, सव्वेसिं=सर्वेना, सेसविगप्पा य=शेषविकल्पो, साइअधुवा=सादि अध्रुव. ६.

अमीषां षण्णां कर्मणामुत्कृष्टः प्रदेशोदयः प्रागुक्तस्वरूपस्य गुणितकर्मांशस्य स्वस्वोदयान्ते गुणश्रेणीशिरसि वर्तमानस्य प्राप्यते। स चैकसामयिक इति कृत्वा सादिरध्रुवश्च। ततोऽन्यः सर्वोऽप्यनुत्कृष्टः, स चानादिः, सदैव भावात्। ध्रुवाध्रुवौ पूर्ववत्। तथा मोहे मोहनीयेऽजघन्योऽनुत्कृष्टश्च प्रदेशोदयश्चतुर्विधः, तद्यथा—सादिरनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्च। तथाहि—क्षपितकर्मांशस्यान्तरकरणे कृतेऽन्तरकरणपर्यन्तभाविगोपुच्छाकारसंस्थितावलिकामात्रदलिकान्तसमये मोहनीयस्य जघन्यः प्रदेशोदयः। स चैकसामयिक इति कृत्वा सादिरध्रुवश्च। ततोऽन्यः सर्वोऽप्यजघन्यः। सोऽपि ततो द्वितीयसमये भवन् सादिः। तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः। ध्रुवाध्रुवौ पूर्ववत्। तथा गुणितकर्मांशस्य सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकान्तसमये उत्कृष्टः प्रदेशोदयः। स चैकसामयिक इति कृत्वा सादिरध्रुवश्च। ततोऽन्यः सर्वोऽप्यनुत्कृष्टः। स चोपशमश्रेणीतः प्रतिपतितो भवन् सादिः। तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः। ध्रुवाध्रुवौ पूर्ववत्। तथा आयुषश्चत्वारोऽपि भेदा उत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याजघन्यरूपाः साद्यध्रुवाः, चतुर्णामपि भेदानां यथायोगं नियतकालं भावात्। तथा सर्वेषां कर्मणां प्रागुक्तानां षण्णां मोहनीयस्य उक्तशेषौ विकल्पौ उत्कृष्टजघन्यरूपौ साद्यध्रुवौ, तौ च प्रागेव भावितौ ॥ ६ ॥

कृतामूलप्रकृतीनां साद्यनादिप्ररूपणा, संप्रत्युत्तरप्रकृतीनां तां चिकीर्षुराह—

अजहण्णाणुक्कोसो, सगयालाए चउत्तिहा चउहा। मिच्छत्ते सेसासिं, दुविहा सव्वे य सेसाणं ॥ ७ ॥

गाथार्थ—सगयालाए=४७ प्रकृतिओनो, अज०क्कोसो=अजघन्य ने अनुत्कृष्ट प्रदेशोदय, चउत्तिहा=अनुक्रमे ४ ने ३ प्रकारे, मिच्छत्ते=मिथ्यात्वमां बंने, चउहा=४ प्रकारे, सेसासिं=तेमना शेष, सव्वे य सेसाणं=शेष प्रकृतिओना सर्वे, दुविहा=२ प्रकारे.

अजहण्ण त्ति—तैजससप्तकवर्णादिविंशतिस्थिरास्थिरनिर्माणागुरुलघुशुभाशुभज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयरूपाणां सप्तचत्वारिंशत्प्रकृतीनामजघन्यः प्रदेशोदयश्चतुर्विधः। तद्यथा—सादिरनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्च। तथाहि—कश्चित् क्षपितकर्मांशो देव उत्कृष्टे संक्लेशे वर्तमान उत्कृष्टां स्थितिं बध्नन् उत्कृष्टं प्रदेशाग्रमुद्वर्तयति। ततो बन्धावसाने कालं कृत्वा एकेन्द्रियेषूत्पद्यते तस्य प्रथमसमये प्रागुक्तानां सप्तचत्वारिंशत्प्रकृतीनां जघन्यः प्रदेशोदयः। नवरमवधिज्ञानावरणावधिदर्शनावरणयोर्बन्धावलिकाचरमसमये देवस्य जघन्यः प्रदेशोदयो वेदितव्यः। स चैकसामयिक इति कृत्वा सादिरध्रुवश्च। ततोऽन्यः सर्वोऽप्यजघन्यः। स च द्वितीयसमये भवन् सादिः। तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः। ध्रुवाध्रुवौ पूर्ववत्। तथाऽमूषामेव सप्तचत्वारिंशत्प्रकृतीनामनुत्कृष्टः प्रदेशोदयस्त्रिप्रकारस्तद्यथा—अनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्च। तथाहि—गुणितकर्मांशस्य स्वस्वोदयान्ते गुणश्रेणीशिरसि वर्तमानस्योत्कृष्टः प्रदेशोदयः। स चैकसामयिक इति कृत्वा सादिरध्रुवश्च। ततोऽन्यः सर्वोऽप्यनुत्कृष्टः। स चानादिः, सदैव भावात्। ध्रुवाध्रुवौ पूर्ववत्। तथा मिथ्यात्वे मिथ्यात्वस्याजघन्योऽनुत्कृष्टश्च प्रदेशोदयश्चतुर्विधः, तद्यथा—सादिरनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्च। तथाहि—क्षपितकर्मांशस्य प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयतः कृतान्तरकरणस्यौपशमिकसम्यक्त्वात्प्रच्युत्य मिथ्यात्वं गतस्यान्तरकरणपर्यन्तभाविगोपुच्छाकारसंस्थितावलिकामात्रदलिकान्तसमये वर्तमानस्य जघन्यः प्रदेशोदयः। स चैकसामयिक इति कृत्वा सादिरध्रुवश्च। ततोऽन्यः सर्वोऽप्यजघन्यः। सोऽपि द्वितीयसमये भवन् सादिः। वेदकसम्यक्त्वाद्वा प्रतिपततः सादिः। तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः। ध्रुवाध्रुवौ पूर्ववत्। तथा कश्चिद् गुणितकर्मांशो यदा देशविरतिगुणश्रेण्यां वर्तमानः सर्वविरतिं प्रतिपद्यते, ततस्तन्निमित्तां गुणश्रेणिं करोति। कृत्वा च तावद्गतो यावत् द्वयोरपि गुणश्रेण्योर्मस्तके। तदानीं च कश्चिन्मिथ्यात्वं गच्छति। ततस्तस्य मिथ्यात्वस्यो-

त्कृष्टः प्रदेशोदयः, स चैकसामायिक इति कृत्वा सादिरध्रुवश्च । ततोऽन्यः सर्वोऽप्यनुत्कृष्टः । सोऽपि ततो द्वितीयसमये भवन् सादि : । वेदकसम्यक्त्वाद्वा प्रतिपततः सादिः । तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादिः । ध्रुवाध्रुवौ पूर्ववत् । एतासां च सप्तचत्वारिंशत्प्रकृतीनां मिथ्यात्वस्य चोक्तशेषौ विकल्पौ जघन्योत्कृष्टरूपौ द्विधा द्विप्रकारौ । तद्यथा–सादी अध्रुवौ च । तौ च भावितावेव। शेषाणामध्रुवोदयानां प्रकृतीनां दशोत्तरशतसंख्यानां सर्वे विकल्पा जघन्याजघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टरूपा द्विधा ज्ञातव्याः, तद्यथा–साद्योऽध्रुवाश्च । सा च साद्यध्रुवताऽध्रुवोदयत्वादवसेया ॥ ७ ॥

कृता साद्यनादिप्ररूपणा (१) । संप्रति स्वामित्वमभिधानीयं । तच्च द्विधा–उत्कृष्टप्रदेशोदयस्वामित्वं जघन्यप्रदेशोदयस्वामित्वं च । तत्रौत्कृष्टप्रदेशोदयस्वामित्वप्रतिपादनार्थं संभवन्तीर्गुणश्रेणीः सर्वा अपि प्ररूपयति—

सम्मत्तुप्पासावय–विरए संजोयणा विणासे य । दंसणमोहक्खवगे, कसाय उवसामगुवसंते ॥८॥
खवगे य खीणमोहे, जिणे य दुविहे असंखगुणसेढी । उदओ तव्विवरीओ, कालो संखेज्जगुणसेढी ॥९॥

गाथार्थ—सम्मत्तुप्पा=सम्यक्त्वोत्पादमां, सावयविरए=देशविरति अने सर्वविरति संबंधि, संजो०विणासे य=अनंता०नी विसंयोजनामां, दंस०खवगे=दर्शनमोहनीयना क्षयमां, कसाय०संते=चारित्रमोहनीयना उपशममां अने उपशान्त मोहनीय संबंधि, खवगे०मोहे=चारित्रमोहनीयना क्षयमां अने क्षीणमोह संबंधि, जिणे य दुविहे=सयोगि अयोगि केवलि संबंधि (एम११) गुणश्रेणि. असंख०उदयो=उदय रचना (एक एकथी) असंख्य गुणकारे, कालो=काल, तव्विवरिओ=तेथी विपरीत, संखिज्जगुणसेढि=संख्यातगुणकारे छे. ८-९

सम्मत्तुप्पेत्यादि–इहैकादश गुणश्रेणयः । तद्यथा–सम्यक्त्वोत्पादे प्रथमा । द्वितीया श्रावके देशविरते । तृतीया विरते सर्वविरते प्रमत्तेऽप्रमत्ते च । चतुर्थी संयोजनानामनन्तानुबन्धिनां विसंयोजने । पञ्चमी दर्शनमोहनीयत्रितयक्षपणे । षष्ठी चारित्रमोहनीयोपशमके । सप्तमी उपशान्तमोहनीये । अष्टमी मोहनीयक्षपके । नवमी क्षीणमोहे । दशमी सयोगिकेवलिनि । अयोगिकेवलिनि त्वेकादशीति । 'असंखगुणसेढी उदउ त्ति' सर्वस्तोकं सम्यक्त्वोत्पादगुणश्रेण्यां दलिकं । ततोऽपि देशविरतिगुणश्रेण्यामसंख्येयगुणं । ततोऽपि सर्वविरतिगुणश्रेण्यामसंख्येयगुणं । एवं तावद्वाच्यं यावदयोगिकेवलिगुणश्रेण्यां दलिकमसंख्येयगुणं । तस्मात् प्रदेशोदयमप्याश्रित्य एता गुणश्रेणयो यथाक्रममसंख्येयगुणा वक्तव्याः । 'तव्विवरीओ कालो संखिज्जगुणसेढि त्ति' सर्वास्वप्येतासु गुणश्रेणिषु कालस्तद्विपरीत उदयविपरीतः संख्येयगुणश्रेण्या । तद्यथा–अयोगिकेवलिगुणश्रेणिकालः सर्वस्तोकः । सयोगिकेवलिगुणश्रेणिकालः संख्येयगुणः । ततोऽपि क्षीणमोहगुणश्रेणिकालः संख्येयगुणः । एवं तावद्वाच्यं यावत्सम्यक्त्वोत्पादगुणश्रेणिकालः संख्येयगुणः । स्थापना । एषा सम्यक्त्वोत्पादगुणश्रेणिः । पुनर्यथोत्तरमसंख्येयगुणदलिकाः । कालतश्च संख्येयगुणाः । उपरिष्टाच्च पृथक्त्वेन यथोत्तरं विशाला विशालतराः । अथोच्येत–कथं दलिकं यथोत्तरमसंख्येयगुणं प्राप्यते ? उच्यते–सम्यक्त्वं ह्युत्पादयन् मिथ्यादृष्टिर्भवति, ततस्तस्य स्तोकं गुणश्रेणिदलिकं । सम्यक्त्वोत्पत्तौ सत्यां पुनः प्राक्तनगुणश्रेण्यपेक्षयाऽसंख्येयगुणदलिका गुणश्रेणिः, विशुद्धत्वात् । ततो देशविरतस्य गुणश्रेणिरसंख्येयगुणदलिका, सम्यग्दृष्ट्यपेक्षया देशविरतस्यातिविशुद्धत्वात् । ततोऽपि सर्वविरतस्य गुणश्रेणिरसंख्येयगुणदलिका, देशविरतात्सर्वविरतस्य विशुद्धतरत्वात् । ततोऽपि संयतस्यानन्तानुबन्धिनां विसंयोजने गुणश्रेणिरसंख्येयगुणदलिका, तस्यातिविशुद्धतरत्वात् । एवमुत्तरोत्तरविशुद्धिप्रकर्षवशाद्यथोत्तरमसंख्येयगुणदलिका भावनीया ।८-९।

संप्रति का गुणश्रेणिः कस्यां गतौ प्राप्यत इत्येतन्निरूपणार्थमाह—

तिन्नि वि पढमिल्लाओ, मिच्छत्तगए वि होज्ज अन्नभवे। पगयं तु गुणियकम्मे, गुणसेढीसीसगाणुदये॥१०॥

तिन्नि त्ति–आद्यास्तिस्रो गुणश्रेणयः सम्यक्त्वोत्पादेशविरतिसर्वविरतिनिमित्ता झटित्येव मिथ्यात्वं गतस्य अप्रशस्तेन च मरणेन झटित्येव मृतस्य अन्यभवे नारकादिरूपपरभवे किञ्चित्कालमुदयमाश्रित्य प्राप्यन्ते। शेषास्तु गुणश्रेणयः परभवे नारकादिरूपे न प्राप्यन्ते। नारकादिभवो हि अप्रशस्तमरणेन प्राप्यते। न च शेषासु गुणश्रेणिषु सतीष्वप्रशस्तमरणसंभवः, किंतु क्षीणास्वेव। तथा चोक्तं–"झत्ति गुणाओ पडिए मिच्छतगयम्मि आइमा तिन्नि। लप्भंति न सेसाओ, जं झीणासु असुभमरणं ॥ १ ॥" तथा प्रकृतमत्र उत्कृष्टप्रदेशोदयस्वामित्वे गुणितकर्मांशेन गुणश्रेणीशिरसामुदये वर्तमानेन ॥ १० ॥

आवरणविग्घमोहाण, जिणोदइयाण वावि नियगंते। लहुखवणाए ओही-णणोहिलद्धिस्स उक्कस्सो॥११॥

आवरण त्ति–आवरणं पञ्चप्रकारं ज्ञानावरणं, चतुःप्रकारं दर्शनावरणं, 'विग्घ त्ति' पञ्चप्रकारमन्तरायं। एतासां चतुर्दशप्रकृतीनां लघुक्षपणया शीघ्रक्षपणार्थं, अभ्युद्यतस्य। द्विविधा हि क्षपणा–लघुक्षपणा, चिरक्षपणा च। तत्र योऽष्टवार्षिक एव सन्-

---

गाथार्थ—तिन्निवि०ल्लाओ=प्रथमनीं ३ गुणश्रेणिओ. मिच्छत्तगए वि=मिथ्यात्वे जइने शीघ्र मरण पामेलानें, अन्नभवे=अन्यभवमां, होज्ज=होय छे. गुणसेढी०दये=उ०प्रदेशोदयमां, गुणश्रेणिना शीर्षे वर्तता, गुणियकम्मे=गुणितकर्मांशनो, पगयं तु=अधिकार छे.१०। लहुखवणाए=शीघ्र क्षपणा करनार जीवने, आव०मोहाण=५ ज्ञाना०,४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय, ८ मोहनीय, जिणो०वावि=अने जिनोदयिक ५२ प्रकृतिओनो पण, उक्कोसो=उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रम, नियगंते=स्व स्व उदयना अन्ते, ओहीण०लद्धिस्स=अवधिद्विकनो अवधिलब्धिरहितने होय छे. ११

मासाभ्यधिकः संयमं प्रतिपन्नः, तत्प्रतिपत्त्यनन्तरं चान्तर्मुहूर्तेन क्षपकश्रेणिमारभते, तस्य या क्षपणा सा लघुक्षपणा। यस्तु प्रभूतेन कालेन संयमं प्रतिपद्यते। संयमप्रतिपत्तेरप्यूर्ध्वं प्रभूतेन कालेन क्षपकश्रेणिमारभते, तस्य या क्षपणा सा चिरक्षपणा। तया च प्रभूताः पुद्गलाः परिसटन्ति, स्तोका एव च शेषीभवन्ति। ततो न तया उत्कृष्टः प्रदेशोदयो लभ्यते। तत उक्तं लघुक्षपणयाऽभ्युत्थितस्येति। तस्य गुणितकर्मांशस्य क्षीणमोहगुणस्थानकचरमसमये गुणश्रेणीशिरसि वर्तमानस्योत्कृष्टः प्रदेशोदयो भवति। नवरं 'ओहीणणोहिलद्धिस्स त्ति' अवध्योरवधिज्ञानावरणावधिदर्शनावरणयोरनवधिलब्धिकस्यावधिलब्धिरहितस्य क्षपणायोत्थितस्योत्कृष्टः प्रदेशोदयो वाच्यः। अवधिज्ञानं ह्युत्पादयतो बहवः पुद्गलाः परिसटन्ति क्षीयन्ते। ततो नावधियुक्तस्योत्कृष्टप्रदेशोदयलाभ इत्यनवधिलब्धियुक्तस्येत्युक्तं। तथा मोहानां मोहनीयप्रकृतीनां सम्यक्त्वसंज्वलनचतुष्टयवेदत्रयाख्यानामष्टानां गुणितकर्मांशस्य क्षपकस्य स्वस्योदयचरमसमये उत्कृष्टः प्रदेशोदयः। तथा जिने केवलिनि उदयो यासां ता जिनोदयिकास्तासां मध्ये औदारिकसप्तकतैजससप्तकसंस्थानषट्कप्रथमसंहननवर्णादिविंशतिपराघातोपघातागुरुलघुविहायोगतिद्विकप्रत्येकस्थिरास्थिरशुभाशुभनिर्माणरूपाणां द्विपञ्चाशत्प्रकृतीनां गुणितकर्मांशस्य सयोगिकेवलिगुणस्थानकचरमसमये उत्कृष्टः प्रदेशोदयः सुस्वरदुःस्वरयोः स्वरनिरोधकाले, उच्छ्वासनाम्नः पुनरुच्छ्वासनिरोधकाले। तथाऽन्यतरवेदनीयमनुष्यगतिमनुष्यायुःपञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरपर्याप्तसुभगादेययशःकीर्तितीर्थकरोच्चैर्गोत्राणां द्वादशप्रकृतीनां गुणितकर्मांशस्यायोगिकेवलिनश्चरमसमये उत्कृष्टः प्रदेशोदयः ॥ ११ ॥

उवसंतपढमगुण--सेढीए निद्दादुगस्स तस्सेव। पावइ सीसगमुदयंति जाय देवस्स सुरनवगे ॥१२॥

उवसंत त्ति–उपशान्तकषायस्यात्मीयप्रथमगुणश्रेणीशिरसि वर्तमानस्य गुणितकर्मांशस्य निद्राद्विकस्य निद्राप्रचलयोरुत्कृष्टः प्रदेशोदयः। तथा तस्यैवोपशान्तकषायस्यात्मीयप्रथमगुणश्रेणीशीर्षकोदयमनन्तरसमये प्राप्स्यतीति तस्मिन् पाश्चात्ये समये जाते देवस्य, ततः स्वप्रथमगुणश्रेणीशिरसि वर्तमानस्य सुरनवकस्य वैक्रियसप्तकदेवद्विकरूपस्योत्कृष्टः प्रदेशोदयः ॥ १२ ॥

मिच्छत्तमीसणंता--णुबंधिअसमत्तथीणगिद्धीणं। तिरिउदए गंताण य, बिइया तइया य गुणसेढी॥१३॥

मिच्छत्त त्ति—इह केनचिद्देशविरतेन सता देशविरतिप्रत्यया गुणश्रेणिः कृता। ततः स संयमं प्रतिपन्नः। ततः संयम-प्रत्यया गुणश्रेणिः कृता। ततो यस्मिन् काले द्वयोरपि गुणश्रेण्योः शिरसी एकत्र मिलिते, तस्मिन् काले वर्तमानो गुणितकर्मांशः कश्चिन्मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते तस्य तदा मिथ्यात्वानन्तानुबन्धिनामुत्कृष्टः प्रदेशोदयः। यदि पुनः सम्यङ्मिथ्यात्वं प्रतिपन्नस्तर्हि सम्यङ्मिथ्यात्वस्य, स्त्यानर्द्धित्रिकस्य पुनर्मिथ्यात्वं गत्तस्यागतस्य वा उत्कृष्टः प्रदेशोदयो वाच्यः। यतः स्त्यानर्द्धित्रिकस्य प्रमत्तसंयतेऽप्युदयः प्राप्यते। तथा तिर्यक्ष्वेव उदय एकान्तेन यासां तास्तिर्यगुदयैकान्ताः एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिस्थावर-

---

गाथार्थ—उव०सेढीए=पोतानी प्रथम गुणश्रेणिना शीर्ष पर वर्तता उपशान्त कषायीने, निद्दादुगस्स=निद्राद्विकनो, जायदेव-स्स=देव थएला, तस्सेव=तेज जीवने, सीसगमुदयंति–ते समये स्व गुणश्रेणि शीर्षने पामेलाने, सुरनवगे=देव नवकनो, पावइ=उ०प्रदेशोदय प्राप्त थाय छे. १२ मिच्छत्त०गिद्धीणं–मिथ्यात्व, मिश्र, अनंतानु०, अपर्याप्त, थीणद्धीत्रिक, तिरि०ताण य=अने एकांत तिर्यंच प्रायोग्य प्रकृतिओनो उ०प्रदेशोदय, बिइया०सेढी=बीजी अने त्रीजी गुणश्रेणिना शीर्षे एक साथे वर्तताने होय. १३

सूक्ष्मसाधारणनामानस्तासां, अपर्याप्तनाम्नश्च तिर्यग्भवप्राप्तौ सत्यां देशविरतिसर्वविरतिगुणश्रेणीशिरसोरेकत्र योगे वर्तमानस्य मिथ्यादृष्टेः स्वस्वोदये वर्तमानस्योत्कृष्टः प्रदेशोदयः ॥ १३ ॥

अंतरकरणं होहित्ति, जायदेवस्स तं मुहुत्तंतो । अट्ठण्ह कसायाणं, छण्हं पि य नोकसायाणं ॥ १४ ॥

अंतरकरणं ति—इह कश्चित् उपशमश्रेणि प्रतिपन्नोऽन्तरकरणं भविष्यतीति 'तं ति' तस्मिन् पाश्चात्ये समये कालं कृत्वा देवो जातः, तस्य देवस्योत्पत्त्यनन्तरमन्तर्मुहूर्तात्परतो गुणश्रेणीशिरसि वर्तमानस्याप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणकषायाष्टके वेदत्रिकवर्जषट्नोकषायाणामुत्कृष्टः प्रदेशोदयः× ॥ १४ ॥

हस्सठिइं बंधित्ता, अद्धाजोगाइठिइनिसेगाणं । उक्कस्सपए पढमो-दयम्मि सुरनारगाऊणं ॥१५॥

हस्सठिइ त्ति—अद्धा बन्धकालः, योगो मनोवाक्कायनिमित्तं वीर्यं, आदिस्थितिः प्रथमा स्थितिः तस्यां दलिकनिक्षेपः आदिस्थितिदलिकनिक्षेपः, एतेषामुत्कृष्टे पदे सति । किमुक्तं भवति ? उत्कृष्टेन बन्धकालेन उत्कृष्टे योगे वर्तमानो ह्रस्वां जघन्यां

×(य०उ०२)इहान्तर्मुहूर्तात्परत एव गुण श्रेणीशिरः प्राप्यत इति 'जायदेवस्स तं मुहुत्तंतो' इत्युक्तम् ।

गाथार्थ—अन्तर०होहित्ति=अनन्तर समये अंतरकरण करनार, जायदेवस्स=काळ करी देवपणे उपजेला, तं=तेने, मुहुत्तंतो=अन्तर्मुहूर्त पछी, अट्ठण्ह कसायाणं,=८कषाय, छण्हं०याणं=अने हास्य षट्कनो उ०प्रदेशोदय थाय छे. १४ अद्धा=बन्धकाल, जोगाइ०गाणं=योग अने आदिस्थितिमां दलिकनिक्षेपना, उक्कसपए-उत्कृष्टपदमां, हस्सठिइं-जघन्यस्थिति बांधीने, सुर०ऊणं=देवायुष्य अने नरकायुष्यना, पढमोदयम्मि=प्रथमोदयमां ते ते आयुष्यनो उ० प्रदेशोदय जाणवो. १५

स्थितिं बद्ध्वा, प्रथमस्थितौ च दलिकनिक्षेपमुत्कृष्टं कृत्वा मृतः सन् देवो नारको वा जातः, तस्य प्रथमोदये प्रथमस्थित्युदये वर्तमानस्य देवस्य देवायुषो नारकस्य नारकायुष उत्कृष्टप्रदेशोदयः ॥ १५ ॥

अद्धाजोगुक्कोसो, बंधित्ता भोगभूमिगेसु लहुं। सव्वप्पजीवियं वज्ज–इत्तु ओवट्टिया दोण्हं ॥१६॥

अद्ध त्ति—उत्कृष्टे बन्धकाले उत्कृष्टे च योगे वर्तमानो भोगभूमिगेषु तिर्यक्षु मनुष्येषु वा विषये कश्चित्तिर्यगायुः कश्चिन्मनुष्यायुः उत्कृष्टं त्रिपल्योपमस्थितिकं बद्ध्वा, लघु शीघ्रं च मृत्वा त्रिपल्योपमायुष्केष्वेकस्तिर्यक्ष्वपरो मनुष्येषु मध्ये समुत्पन्नः, तत्र च सर्वाल्पजीवितमन्तर्मुहूर्तप्रमाणं वर्जयित्वाऽन्तर्मुहूर्तमेकं धृत्वेत्यर्थः। शेषमशेषमपि (तौ द्वावपि) स्वस्वायुरपवर्तनाकरणेनापवर्तयतः। ततोऽपवर्तनानन्तरं प्रथमसमये तयोस्तिर्यङ्मनुष्ययोर्यथासंख्यं तिर्यङ्मनुष्यायुषोरुत्कृष्टः प्रदेशोदयः ॥ १६ ॥

दूभगणाएज्जाजस–गइदुगअणुपुव्वितिगसनीयाणं। दंसणमोहक्खवणे, देसविरइ विरइगुणसेढी ॥१७॥

दूभग त्ति—इहाविरतसम्यग्दृष्टिर्दर्शनमोहनीयत्रितयं क्षपयितुमभ्युद्यतो गुणश्रेणिं करोति। ततः स एव देशविरतिं प्रतिपन्न-

---

नाथार्थ—अद्धाजोगुक्कोसो=उ०बन्धकाल अने उ०योगमां; भोगभूमिगेसु=युगलिक मनुष्य तिर्यंच संबंधी आयुष्य, बंधित्ता=बांधीने, लहुं=शीघ्र मरीने, सव्वप्पजीवियं=सर्वाल्प (अन्तर्मुहूर्त) जीवित वर्जीने, दोण्हं=बंने आयुष्यनी, ओवट्टिया=अपवर्तना बाद प्रथमोदयमां उ० प्रदेशोदय करे. १६ दंसण०वणे=दर्शनमोहनीय क्षयनी, देसविरइ=देशविरतिनी, विरइगुणसेढी=अने सर्वविरतिनी गुणश्रेणिना शीर्षे वर्तताने. सनीयाणं=नीचगोत्र सहित, दुभग०जस=दुर्भग अनादेय अने अपयशनो, गइदुग०तिग=देवद्विक विना ३ गति अने ३ अनुपूर्वीनो उ०प्रदेशोदय थाय छे. १७

स्तन्निमित्तां गुणश्रेणिं करोति । ततः स एव सर्वविरतिं प्रतिपन्नस्ततः सर्वविरतिनिमित्तां गुणश्रेणिं करोति । ततः करणपरिसमाप्तौ सत्यां संक्लिष्टो भूत्वा पुनरप्यविरतो जातः, तस्य तिसृणामपि गुणश्रेणीनां शिरस्सु वर्तमानस्य तस्मिन्नेव भवे स्थितस्य दुर्भगानादेययशःकीर्तिनीचैर्गोत्राणामुत्कृष्टः प्रदेशोदयः । अथ नरकेषु बद्धायुष्कत्वान्नारको जातस्तर्हि तस्य पूर्वोक्तानां नरकद्विकसहितानामुत्कृष्टः प्रदेशोदयः । अथ तिर्यक्षूत्पन्नस्तर्हि तस्य पूर्वोक्तानां तिर्यग्द्विकसहितानामुत्कृष्टः प्रदेशोदयः । अथ मनुष्यो जातस्तर्हि मनुष्यानुपूर्वीसहितानामिति ॥ १७॥

संघयणपंचगस्स य, बिइयादीतिन्नि होंति गुणसेढी । आहारगउज्जोया--णुत्तरतणु अप्पमत्तस्स ॥१८॥

संघयण त्ति--इह कश्चिन्मनुष्यो देशविरतिं प्रतिपन्नः, ततः स देशविरतिप्रत्ययां गुणश्रेणिं करोति । ततः स एव विशुद्धिप्रकर्षवशतः सर्वविरतिं प्रतिपन्नः, ततः सर्वविरतिप्रत्ययां गुणश्रेणिं करोति । ततः स एव तथाविधविशुद्धिवशादनन्तानुबन्धिनां विसंयोजनायोत्थितः, ततस्तन्निमित्तां गुणश्रेणिं करोति । एवं द्वितीयादयस्तिस्रो गुणश्रेणयो भवन्ति । ताश्च कृत्वा तासां शिरस्सु वर्तमानस्य प्रथमसंहननवर्जानां पञ्चानां संहननानां यथायोग्यमुदयप्राप्तानामुत्कृष्टः प्रदेशोदयः । तथोत्तरतनौ उत्तरशरीरे आहारके वर्तमानस्याप्रमत्तभावं गतस्य संयतस्य प्रथमगुणश्रेणीशिरसि वर्तमानस्याहारकसप्तकोद्योतयोरुत्कृष्टः प्रदेशोदयः× ॥१८॥

×(य०उ० ३) उक्तं चान्यत्र—'आहारुज्जोयाणं अपमत्तो आइगुणसीसे' ।

गाथार्थ—बिइयादी तिन्नि=द्वितीयादि ३, गुणसेढी होंति=गुणश्रेणिना शीर्षे वर्ततो, संघ०गस्स य=अशुभ ५संघयणनो उ०प्रदेशोदय करे, उत्तम०मत्तस्स=आहारकशरीरी अप्रमत्तसाधुने आहारग उज्जोय=आहारकशरीर अने उद्योतनो उ०प्रदेशोदय होय छे. १८

बेइंदिय थावरगो, कम्मं काऊण तस्समं खिप्पं । आयावस्स उ तव्वेइ, पढमसमयम्मि वट्टंतो ॥१९॥

बेइंदिय त्ति—गुणितकर्मांशः पञ्चेन्द्रियः सम्यग्दृष्टिर्जातः, ततः सम्यक्त्वनिमित्तां गुणश्रेणिं कृतवान् । ततस्तस्या गुणश्रेणीतः प्रतिपतितो मिथ्यात्वं गतः । गत्वा च द्वीन्द्रियमध्ये समुत्पन्नः । तत्र च द्वीन्द्रियप्रायोग्यां स्थितिं मुक्त्वा शेषां सर्वामप्यपवर्तयति । ततस्ततोऽपि मृत्वा एकेन्द्रियो जातः । तत्रैकेन्द्रियसमां स्थितिं करोति । शीघ्रमेव च शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तः, तस्य तद्वेदिन आतपवेदिनः खरबादरपृथ्वीकायिकस्य शरीरपर्याप्त्यनन्तरं प्रथमसमये आतपनाम्न उत्कृष्टः प्रदेशोदयः । एकेन्द्रियो द्वीन्द्रियस्थितिं झटित्येव स्वयोग्यां करोति न त्रीन्द्रियादिस्थितिमिति द्वीन्द्रियग्रहणं ॥१९॥

तदेवमुक्त उत्कृष्टप्रदेशोदयस्वामी, संप्रति जघन्यप्रदेशोदयस्वाम्यभिधीयते—

पगयं तु खवियकम्मे, जहन्नसामी जहन्नदेवठिइ । भिन्नमुहुत्ते सेसे मिच्छतगतो अतिकिलिट्ठो ॥२०॥
कालगएगिंदियगो, पढमे समये व मइसुयावरणे। केवलदुगमणप॰ज्जवचक्खुअचक्खुण आवरणा॥२१॥

गाथार्थ—बेइंदिय=बेइंद्रिय जीव, थावरगो=एकेन्द्रिय (पृथ्वीकायी) थइ, तस्समं=एकेन्द्रिय तुल्य, कम्मं काऊण=कर्मस्थिति करीने, खिप्पं=शीघ्र शरीरपर्याप्त थइने, तव्वेइ=आतपोदयी, पढ०वट्टंतो=प्रथम समयमां वर्ततो, आयवस्स=आतपनामनो उ० प्रदेशोदय करे छे. १९ जहन्नसामी=जघन्य प्रदेशोदय स्वामित्वमां, पगयं०कम्मे=क्षपितकर्मांश जीव अधिकारी छे. जहन्नदेवट्ठिइ=जघन्य स्थितिवाळो देव थइ, भिन्न०सेसे=अन्तर्मुहूर्तायु शेष छते, मिच्छतगतो=मिथ्यात्वे जइने, अतिकिलिट्ठो=अत्यंत संक्लेशी थइने, काल०यगो=मरण पामी एकेन्द्रिय थइ, पढमे समये=प्रथम समयमां वर्ततो, मइ०रणे=मतिज्ञा०,श्रुतज्ञा०, केव०पज्जव=केव-

पगयं ति—जघन्यस्वामीति भावप्रधानोऽयं निर्देशः, प्राकृतत्वाच्च ततः परस्याः सप्तम्या लुक् । ततोऽयमर्थः—जघन्यप्रदेशोदयस्वामित्वे प्रकृतमधिकारः क्षपितकर्मांशेन । सूत्रे चात्र सप्तमी तृतीयार्थे वेदितव्या । तत्र कश्चित्क्षपितकर्मांशो देवो जघन्यस्थितिर्दशवर्षसहस्रायुरुत्पत्त्यनन्तरमन्तर्मुहूर्ते गते सति सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते । तच्च सम्यक्त्वं दशवर्षसहस्राणि देशोनानि यावत् परिपाल्यान्तर्मुहूर्तावशेषे जीविते मिथ्यात्वं गतः । स चातिसंक्लिष्टपरिणामो वक्ष्यमाणकर्मणामुत्कृष्टां स्थितिं बध्नुमारभते । प्रभूतं च दलिकं तदानीमुद्वर्तयति तावद्यावदन्तर्मुहूर्तं । ततः संक्लिष्टपरिणाम एव कालं कृत्वा एकेन्द्रियो जातः । तस्य प्रथमसमये मतिज्ञानावरणश्रुतज्ञानावरणकेवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणमनःपर्यवज्ञानावरणचक्षुर्दर्शनावरणाचक्षुर्दर्शनावरणानां जघन्यः प्रदेशोदयो भवति । इह हि प्रायेण सर्वं दलिकमुद्वर्तितमिति कृत्वा प्रथमसमये स्तोकं प्राप्यते । अन्यच्चोत्कृष्टसंक्लेशयुक्तस्य प्रदेशोदीरणा स्तोका भवति । यतस्तस्यानुभागोदीरणा बह्वी प्रवर्तते । यत्र चानुभागोदीरणा बह्वी प्रवर्तते तत्र स्तोका प्रदेशोदीरणा, ततो मिच्छत्तगतो अतिकिलिट्ठो इत्याद्युक्तं ॥ २०–२१ ॥

ओहीणसंजमाओ, देवत्तगए गयस्स मिच्छत्तं । उक्कोसठिइबंधे, विकड्ढणा आलिगं गंतुं ॥ २२ ॥

ओहीण त्ति—क्षपितकर्मांशः संयमं प्रतिपन्नः समुत्पन्नावधिज्ञानदर्शनोऽप्रतिपतितावधिज्ञानदर्शन एव देवो जातः, तत्र

लब्धा०, केवलदर्श० मनःपर्यवज्ञा०, चक्खू०रणा=चक्षुदर्श०अने अचक्षुदर्शनावरणनो जघन्य प्रदेशोदय करे. २०–२१ संजमाओ=चारित्रवडे अवधिलब्धि पामीने, देवगए=देवपणे उपजी, गयस्स मिच्छत्तं=मिथ्यात्वे गएलाने, उक्को०बंधे=उत्कृष्ट स्थिति बांधी, विकड्ढणे=घणा दलिकनी उद्वर्तना करी, आलिगं गंतुं=आवलिका गये छते, ओहीण=अवधिद्विकाव०नो ज०प्रदेशोदय होय छे. २२

चान्तर्मुहूर्ते गते मिथ्यात्वं प्रतिपन्नः । ततो मिथ्यात्वप्रत्ययेनोत्कृष्टां स्थितिं बद्धुमारभते, प्रभूतं च दलिकं विकर्षयति उद्वर्तयतीत्यर्थः । तत आवलिकां गत्वाऽतिक्रम्य बन्धावलिकायामतीतायामित्यर्थः । अवध्योरवधिज्ञानावरणावधिदर्शनावरणयोर्जघन्यः प्रदेशोदयः× ॥ २२ ॥

वेयणियंतरसागा-रउच्च ओहि व्व निद्दपयला य । उक्कस्स ठिईबंधा, पडिभग्गपवेइया नवरं॥ २३ ॥

वेयणियंतर त्ति—द्वयोर्वेदनीययोः सातासातयोः पञ्चानामन्तरायाणां शोकारत्युच्चैर्गोत्राणां च जघन्यः प्रदेशोदयोऽवधिज्ञानावरणस्येव वेदितव्यः । निद्राप्रचलयोरपि तथैव । केवलमुत्कृष्टस्थितिबन्धात् प्रतिभग्नस्य प्रतिपतितस्य निद्राप्रचलयोरनुभवितुं लग्नस्य चेति द्रष्टव्यं । उत्कृष्टस्थितिबन्धो हि अतिशयेन संक्लिष्टस्य भवति । न चातिसंक्लेशे वर्तमानस्य निद्रोदयसंभवः, तत उक्तं उत्कृष्टस्थितिबन्धात्प्रतिभग्नस्येति ॥२३॥

वरिसवरतिरियथावर-नीयं पि य मइसमं नवरि तिन्नि। निद्दानिद्दा इंदिय-पज्जत्ती पढमसमयम्मि ।२४।

×(य०उ०४) उक्तक्रमेण तदानीं स्तोकप्रदेशोदीरणोपनीतस्य तस्य स्तोकतरस्यैव लाभात् ।

गाथार्थ—वेयणिय०उच्च=२ वेदनीय, ५ अन्तराय, शोक अरति अने उच्चगोत्रनो, ओहिव्व=अवधिज्ञानावरणनी जेम ज०प्रदे० जाणवो, निद्दापयला य=निद्रा प्रचलानो पण एमज, नवरं=विशेषमां, उक्कस०पवेइया=उत्कृष्ट स्थितिबंधथी पडेला अने निद्राद्विकने भोगवताने होय. २३ वरिसवर=नपुंसकवेद, तिरिय०नीयंपि=तिर्यग्गति, स्थावर अने नीचगोत्रनो ज०प्रदेशोदय, मइसमं=मतिज्ञानावरण पेठे जाणवो. नवरि=विशेषमां, तिन्नि निद्दानिद्दा=निद्रानिद्रादि ३नी, इंदिय०समयम्मि=इंद्रियपर्याप्ति पर्याप्तने प्रथम समयमां होय. २४

वरिसवर त्ति—वर्षवरो नपुंसकवेदः, ततो नपुंसकवेदतिर्यग्गतिस्थावरनीचैर्गोत्राणां जघन्यः प्रदेशोदयो मतिज्ञानावरणस्येवावसेयः । निद्रानिद्रादयोऽपि तिस्रः प्रकृतयो जघन्यप्रदेशोदयविषये मतिज्ञानावरणवद्भावनीयाः । नवरमिन्द्रियपर्याप्त्या पर्याप्तस्य प्रथमसमये इति द्रष्टव्यं । ततोऽनन्तरसमये उदीरणायाः संभवेन जघन्यप्रदेशोदयासंभवात् ॥२४॥

दंसणमोहे तिविहे, उदीरणुदए उ आलिगं गंतुं । सत्तरसण्ह वि एवं, उवसमइत्ता गए देवे ॥२५॥

दंसणमोहे त्ति—क्षपितकर्मांशस्य औपशमिकसम्यग्दृष्टेरौपशमिकसम्यक्त्वात् प्रच्यवमानस्य अन्तरकरणे स्थितेन द्वितीयस्थितेः सकाशात् सम्यक्त्वादीनां दलिकानि समाकृष्य यान्यन्तरकरणे चरमे आवलिकामात्रभागे गोपुच्छाकारसंस्थानेन रचितानि, तद्यथा—प्रथमसमये प्रभूतं । द्वितीयसमये विशेषहीनं । तृतीयसमये विशेषहीनं । एवं यावच्चरमसमये विशेषहीनं । तेषामुदय उदीरणोदय उच्यते । तस्मिन् उदीरणोदये आवलिकामात्रं गत्वा आवलिकायाश्चरमसमये सम्यक्त्वमिश्रमिथ्यात्वानां स्वस्वोदययुक्तस्य जघन्यप्रदेशोदयः । तथाऽनन्तानुबन्धिवर्जद्वादशकषायपुरुषवेदहास्यरतिभयजुगुप्सारूपाः सप्तदश प्रकृतीरुपशमय्य देवलोकं गतस्य एवमेवेति उदीरणोदयचरमसमये तासां सप्तदशप्रकृतीनां जघन्यः प्रदेशोदयः । आसां हि सप्तदशानामपि प्रकृतीनामन्तरकरणं कृत्वा देवलोकं गतः सन् प्रथमसमये एव द्वितीयस्थितेः सकाशाद्दलिकमाकृष्योदयसमयादारभ्य गोपुच्छाकारेण विरचयति । तद्यथा—उदयसमये प्रभूतं । द्वितीयसमये विशेषहीनं । तृतीयसमये विशेषहीनं । एवं यावदावलिकाचरमसमयः ।

गाथार्थ—दंसणमोहे तिविहे=३ दर्शन मोहनीयनी, उदीरणुदए उ=उदीरणोदयनी, आलिगं गंतुं=आवलिका गये ज०प्रदेशोदीरणा थाय छे. एवं=ए प्रमाणे, सत्तरसण्ह वि=अप्रत्याख्यानादि १७ नो, उव०देवे=उपशमावीने देवमां गएलाने होय ते. २५

तत आवलिकाचरमसमये जघन्यः प्रदेशोदयो× लभ्यन्ते ॥ २५ ॥

चउरुवसमित्तु पच्छा, संजोइय दीहकालसम्मत्ता । मिच्छत्तगए आवलि-गाए संजोयणाणं तु ॥ २६॥

चउरुवसमित्तु त्ति–चतुरो वारान् मोहनीयमुपशमय्य पश्चादन्तर्मुहूर्ते गते सति मिथ्यात्वं गतः । ततोऽपि मिथ्यात्वप्रत्ययेन संयोजनान् अनन्तानुबन्धिनो बध्नाति । ततः सम्यक्त्वं गतः । तत्र दीर्घकालं द्वात्रिंशं सागरोपमाणां शतं यावत् अनुपालयन् सम्यक्त्वप्रभावत प्रभूतान् पुद्गलान् अनन्तानुबन्धिनां संबन्धिनः प्रदेशसंक्रमतः परिसाटयति । ततः पुनरपि मिथ्यात्वं गतः, मिथ्यात्वप्रत्ययेन च भूयोऽप्यनन्तानुबन्धिनो बध्नाति । तस्यावलिकाया बन्धावलिकायाश्चरमसमये पूर्वबद्धानामनन्तानुबन्धिनां जघन्यः प्रदेशोदयः । आवलिकाया अनन्तरसमये हि प्रथमसमयबद्धस्य दलिकस्योदयो×१ भवति । ततो जघन्यः प्रदेशोदयो न लभ्यते इति कृत्वा आवलिकायाश्चरमसमये इत्युक्तम् । संसारे चै(त्वै)कजीवस्य चतुःकृत्व एव मोहनीयस्योपशमो भवति, न पञ्चकृत्व इति चतुःकृत्वोग्रहणं । मोहोपशमनेन किं प्रयोजनमिति चेदुच्यते–इह मोहोपशमं कुर्वन्नप्रत्याख्यानादिकषायाणां दलिकमन्यत्र गुणसंक्रमेण प्रभूतं संक्रमयति । ततः क्षीणशेषाणां तेषां अनन्तानुबन्धिषु बन्धकाले स्तोकमेव संक्राम(क्रमय)ति,

×(य०उ०५) उपशान्तकषाय उपशमको वा कालगतः सन् सर्वार्थसिद्धे महाविमाने यातीति भगवत्यादौ सिद्धं । तत्र च नपुंसकवेदस्त्रीवेदशोकमोहनीयानन्तानुबन्ध्यरतिमोहनीयप्रकृतीनामुदयो नास्तीति तत्प्रतिषेधः कृतः ।

×१(य०उ०६) उदीरणानिष्पन्नः उदयः ।

गायार्थ—चउ०मित्तु=४वार मोहनीय उपशमावी, पच्छा=पछीथी, संजोइय=अनंतानुबंधी बांधी, दीह०सम्मत्त=दीर्घ काल सम्यक्त्व पाली, मिच्छत्तगए=मिथ्यात्वे गएलाने, आवलिगाए=आवलिकाना अन्ते, संजोयणाणं तु=अनंतानुबंधिनी ज०प्रदे० होय २६

ततो मोहोपशमग्रहणं ॥ २६ ॥

इत्थीए संजमभवे, सव्वनिरुद्धम्मि गंतु मिच्छत्तं। देवीए लहुमिच्छी, जेट्ठठिइ आलिगं गंतुं ॥२७॥

इत्थीए-संयमेनोपलक्षितो भवः संयमभवस्तस्मिन् । सर्वनिरुद्धेऽन्तर्मुहूर्तावशेषे । स्त्रिया मिथ्यात्वं गतायाः, ततोऽनन्तरभवे देवीभूतायाः शीघ्रमेव च पर्याप्ताया उत्कृष्टस्थितिबन्धानन्तरमावलिकां गत्वा आवलिकायाश्चरमसमये स्त्रीवेदस्य जघन्यः प्रदेशोदयः। इयमत्र भावना-क्षपितकर्मांशा काचित् स्त्री देशोनां पूर्वकोटिं यावत्संयममनुपाल्यान्तर्मुहूर्ते आयुषोऽवशेषे मिथ्यात्वं गत्वा अनन्तरभवे देवी समुत्पन्ना, शीघ्रमेव च पर्याप्ता । तत उत्कृष्टे संक्लेशे वर्तमाना स्त्रीवेदस्योत्कृष्टां स्थितिं बध्नाति, पूर्वबद्धां चोद्वर्तयति । तत उत्कृष्टबन्धारम्भात् परत आवलिकायाश्चरमसमये तस्याः स्त्रीवेदस्य जघन्यः प्रदेशोदयो× भवति ॥ २७ ॥

अप्पद्धाजोगचिया-णाऊणुक्कस्सगठिईणंते । उवरिं थोवनिसेगे, चिरतिव्वासायवेईणं ॥ २८ ॥

×(य०उ०७) तदेवोद्वर्तनादिविरलीकृतत्वादनन्तरसमयभाव्युदीरणाद्यभावाच्च स्तोकप्रदेशप्राप्तेः ।

गाथार्थ—संजमभवे=संयमभवमां, सव्वनिरुद्धमि=सर्वनिरुद्ध एटले अन्तर्मुहूर्त शेष रह्ये थके, गंतु मिच्छत्तं=मिथ्यात्वे जइ, देवीए=देवी पणे उपजी, लहु=शीघ्र पर्याप्त थइ, मिच्छा=मिथ्यात्ववडे, जेट्ठट्ठिइ=उ०स्थिति बांधी, आलिगं गंतुं=आवलिकाना अन्ते, इत्थीए=स्त्रीवेदनो ज०प्रदे० करे. २७ अप्पद्धा०ऊण=अल्प बंध काल अने अल्प योगवडे बांधेलां ४आयुष्यनो, उक्क०णंते=उत्कृष्ट स्थितिना अंते, उवरिं=उपरना समयमां, थोवनिसेगे=स्तोक दलिकनिक्षेप करी, चिर०वेईणं=दीर्घ काळ सुधी तीव्र अशाता वेदीने ते ते आयुष्यनो ज०प्रदेशोदय थाय छे. २८

अप्पद्ध त्ति–अल्पया बन्धाद्धया अल्पेन च योगेन चितानां बद्धानां चतुर्णामप्यायुषां ज्येष्ठस्थितीनामुत्कृष्टस्थितीनामन्तेऽन्तिमे उपरि सर्वोपरितने समये सर्वस्तोकदलिकनिक्षेपे चिरकालं तीव्रासातवेदनाभिभूतानां क्षपितकर्मांशानां तत्तदायुर्वेदिनां जघन्यः प्रदेशोदयः । तीव्रासातवेदनया ह्यभिभूतानां बहवः पुद्गलाः परिसटन्तीति कृत्वा तीव्रासातवेदिग्रहणं ।। २८ ॥

संजोयणा विजोजिय, देवभवजहन्नगे अइनिरुद्धे। बंधिय उक्कस्सठिई, गंतूणेगिंदिया सन्नी ॥ २९॥
सव्वलहुं नरयगए, निरयगई तम्मि सव्वपज्जत्ते। अणुपुव्वीओ, य गई-तुल्ला नेया भवादिम्मि ॥३०॥

संजोयणेत्यादि—संयोजनान् अनन्तानुबन्धिनो विसंयोज्य, तद्विसंयोजने हि शेषाणामपि कर्मणां भूयांसः पुद्गलाः परिसटन्ति इति तदुपादानं । ततो जघन्यं देवत्वं प्राप्तः, तत्र चातिनिरुद्धे पश्चिमेऽन्तर्मुहूर्ते प्रतिपन्नमिथ्यात्व एकेन्द्रियप्रायोग्यानां प्रकृतीनामुत्कृष्टां स्थितिं बद्ध्वा सर्वसंक्लिष्ट एकेन्द्रियेषूत्पन्नस्तत्र चान्तर्मुहूर्तं स्थित्वाऽसंज्ञिषु मध्ये समायातः । देवो हि मृत्वा नासंज्ञिषु मध्ये गच्छतीति कृत्वा एकेन्द्रियग्रहणं । ततोऽसंज्ञिभवाल्लघु शीघ्रं मृत्वा, नारको जातः, सर्वपर्याप्तिभिश्च शी पर्याप्तः । तस्मिन् सर्वपर्याप्तिपर्याप्ते नारके नरकगतेर्जघन्यः प्रदेशोदयः । पर्याप्तस्य हि प्रभूताः प्रकृतयो विपाकोदय-

गाथार्थ—संजो०जिय=अनंतानुबंधीनी विसंयोजना करी, देव०भवे=जघन्य स्थितिए देव थइ, अइनीरुद्धे=अन्त्य अन्तर्मुहूर्ते मिथ्यात्वी थइ, बंधिय०ट्ठिइ=उत्कृष्ट स्थितिए एकेन्द्रिय योग्य प्रकृतिओ बांधी, गंतूण०सन्नी=एकेन्द्रिय थइ असंज्ञीमां उपजी, सव्व०गए=शीघ्र मरण पामी नारकी थइ, तम्मि=त्यां, सव्वपज्जत्ते=शीघ्र पर्याप्त थएलाने, निरयगइ=नरकगतिनो ज०प्रदे० थाय. अणु० तुल्ला=अनुपूर्वीओनो गति तुल्य, नेया भवादिम्मि=भव प्रथम समये जाणवो. २९-३०

मायान्ति, उदयगताश्च स्तिबुकसंक्रमेण न संक्रामन्ति, तेन प्रकृत्यन्तरदलिकसंक्रमाभावात् जघन्यः प्रदेशोदयः प्राप्यत इति सव्वपज्जत्त इत्युक्तं । आनुपूर्व्यश्चतस्रोऽपि गतितुल्याः स्वस्वगतितुल्या ज्ञेया ज्ञातव्याः । केवलं भवादौ भवप्रथमसमये वेदितव्याः । तृतीये हि समयेऽन्या अपि बन्धावलिकातीता· कर्मलता उदयमागच्छन्ति, ततो भवप्रथमसमयग्रहणम् ॥ २९-३० ॥

देवगई ओहिसमा, नवरिं उज्जोयवेयगो ताहे । आहार(रि)जाइ अइचिर-संजममणुपालिऊणंते॥ ३१ ॥

देवगइ त्ति-देवगतिरवधिसमा अवधिज्ञानावरणसमा अवधिज्ञानावरणस्येव देवगतेरपि जघन्यः प्रदेशोदयो भावनीय इत्यर्थः । नवरं यदा उद्योतवेदको भवति 'ताहे' तदा देवगतेर्जघन्यः प्रदेशोदयो द्रष्टव्यः । किं कारणमिति चेदुच्यते-यावदुद्योतस्योदयो न भवति तावद्देवगतौ स्तिबुकसंक्रमेण तं संक्रमयति । ततो जघन्यः प्रदेशोदयो न लभ्यते । तत उदयप्राप्तस्य पुनरुद्योतस्य स्तिबुकसंक्रमो न भवति, तत उद्योतवेदकग्रहणं । उद्योतवेदकत्वं च पर्याप्तस्य भवति, नापर्याप्तस्येति पर्याप्तावस्थायां देवगतेर्जघन्यः प्रदेशोदयः । तथा यश्चिरकालं देशोनपूर्वकोटिरूपं यावत्संयममनुपाल्यान्तिमे काले आहारकशरीरी जातः, उद्योतं च वेदयते, तस्याहारकसप्तकस्य जघन्यः प्रदेशोदयः । चिरकालसंयमपरिपालने हि भूयांसः कर्मपुद्गलाः परिसटिता भवन्तीति कृत्वा चिरकालसंयमग्रहणं । उद्योतग्रहणे च कारणं प्रागुक्तमेवानुसर्तव्यं ॥ ३१ ॥

गाथार्थ—देव०समा=देवगतिनो अवधि तुल्य, नवरिं=विशेषमां, उज्जो०तहिं=त्यां उद्योत वेदीने ज०प्रदे० होय. अइ०णंते=अति चिरकाल संयम पाली अन्ते, आहारिजाय=आहारक शरीर करतो आहा०सप्तकनो ज०प्रदे० करे ३१

सेसाणं चक्खुसमं, तंमि व अन्नंमि व भवे अचिरा। तज्जोगा बहुगीओ, पवेययं तस्स ता ताओ ॥३२॥

सेसाइं ति—उक्तशेषाणां प्रकृतीनां चक्षुःसमं चक्षुर्दर्शनावरणसमं वक्तव्यं तावद्यावदेकेन्द्रियो जातः, ततो येषां कर्मणां तस्मिन्नेव एकेन्द्रियभवे उदयो विद्यते तेषां तत्रैव जघन्यः प्रदेशोदयो वाच्यः। येषां तु कर्मणां मनुजगतिद्वीन्द्रियादिजाति-चतुष्टयाद्यसंस्थानपञ्चकौदारिकांगोपांगवैक्रियांगोपांगसंहननषट्कविहायोगतिद्विकत्रससुभगसुस्वरदुःस्वरादेयरूपाणां न तत्रोदय-संभवः तेषामेकेन्द्रियभवादुद्धृत्य तत्तदुदययोग्येषु भवेषूत्पन्नस्य तास्तास्तद्भवयोग्या बह्वीः प्रकृतीर्वेदयमानस्य, तत्तद्भवयोग्य-बहुप्रकृतिवेदनं च पर्याप्तस्योपपद्यते। ततः सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तस्य जघन्यः प्रदेशोदयः। पर्याप्तस्य बह्व्यः प्रकृतय उदयमा-गच्छन्ति, उदयप्राप्तानां च प्रकृतीनां स्तिबुकसंक्रमो न भवति। तथा च सति विवक्षितप्रकृतीनां जघन्यः प्रदेशोदयो लभ्यते इति पर्याप्तस्येति विवृतं। तीर्थकरनाम्नस्तु क्षपितकर्मांशस्योदयप्रथमसमये जघन्यः प्रदेशोदयो ज्ञेयः, परतो गुणश्रेणिदलिकं प्रभूतमवाप्यते इति स न भवति (२) ॥ ३२ ॥ ४१९ ॥

॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां कर्मप्रकृतिटीकायामुदयः समाप्तः ॥

गाथार्थ—सेसाणं चक्खुसमं=शेष प्रकृतिओनो चक्षुदर्शनावरण पेठे ज०प्रदेशोदय. तंमिव०भवे=तेज (एकेन्द्रियना) भवमां अथवा अन्य भवमां. तज्जोगा०तस्स- ते ते भव योग्य घणी प्रकृतिओ वेदतो, ता ताओ=ते ते प्रकृतिओनो ज०प्रदेशोदय करे. ३२

तदेवमुक्त उदयः, संप्रति सत्ताभिधानावसरः । तत्र चेमेऽर्थाधिकाराः । तद्यथा–भेदः (१) साद्यनादिप्ररूपणा (२) स्वामित्वं (३) चेति । तत्र भेदनिरूपणार्थमाह—

मूलुत्तरपगइगयं, चउव्विहं संतकम्ममवि नेयं । धुवमधुवणाईयं, अट्ठण्हं मूलपगईणं ॥ १ ॥

मूलुत्तर त्ति—सत्कर्म द्विधा–मूलप्रकृतिगतं उत्तरप्रकृतिगतं च । तत्र मूलप्रकृतिगतमष्टप्रकारं, तद्यथा–ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयमित्यादि । उत्तरप्रकृतिगतमष्टपञ्चाशदधिकशतप्रकारं, तद्यथा–मतिज्ञानावरणीयमित्यादि । पुनरेकैकं चतुर्विधं, तद्यथा–प्रकृतिसत्कर्म, स्थितिसत्कर्म, अनुभागसत्कर्म, प्रदेशसत्कर्म च । तदेवमुक्तो भेदः (१), संप्रति साद्यनादिप्ररूपणार्थमाह–'धुवेत्यादि' अष्टानां मूलप्रकृतीनां सत्कर्म त्रिधा, तद्यथा–ध्रुवमध्रुवमनादि च । तत्रानादित्वं सदैव भावात् । ध्रुवाध्रुवताऽभव्यभव्यापेक्षया ॥ १ ॥

संप्रत्युत्तरप्रकृतीनां साद्यनादिप्ररूपणार्थमाह—

दिट्ठिदुगाउगछग्ग–तितणुचोद्दसगं च तित्थगरमुच्चं।दुविहं पढमकसाया, होंति चउद्धा तिहा सेसा ॥२॥

गाथार्थ—मूलु०गयं=मूल प्रकृतिगत अने उत्तर प्रकृतिगत, संतकम्ममवि=सत्कर्म पण, चउव्विहं=४ प्रकारे, नेयं=जाणवुं. अट्ठ०पगईणं=८ मूल प्रकृतिओनी, धुव०णाईयं=ध्रुव, अध्रुव अने अनादि एम ३ प्रकारे सत्ता छे. १ । दिट्ठि०गति=सम०मो० मिश्रमो० ए २ दृष्टि, ४ आयुष्य, अने गतिषट्क, तणु०गं च=वैक्रिय ७, आहारक ७, तित्थगरमुच्चं=जिननाम अने उच्चगोत्रनी, दुविहं=२ प्रकारे, पढम०चउद्धा=अनंतानु०नी ४प्रकारे, तिहा सेसा=अने शेष कर्मोनी ३प्रकारे सत्ता होय छे. २

दिट्ठिदुग त्ति—दृष्टिद्विकं सम्यक्त्वसम्यङ्मिथ्यात्वरूपं, आयूंषि चत्वारि, 'छग्गइ त्ति' मनुष्यद्विकं देवद्विकं नरकद्विकं च, तनुचतुर्दशकं वैक्रियसप्तकाहारकसप्तकरूपं, तथा तीर्थकरनामोच्चैर्गोत्रं च, एतासामष्टाविंशतिप्रकृतीनां सत्कर्म द्विविधं द्विप्रकारं, तद्यथा—सादि अध्रुवं च । साद्यध्रुवता चाध्रुवसत्कर्मत्वादवसेया । तथा प्रथमकषाया अनन्तानुबन्धिनः सत्कर्मापेक्षया चतुर्विधाः, तद्यथा—सादयोऽनादयो ध्रुवा अध्रुवाश्च । तथाहि—ते सम्यग्दृष्टिना प्रथममुद्वलिताः ततो मिथ्यात्वं गतेन यदा भूयोऽपि मिथ्यात्वप्रत्ययेन बध्यन्ते, तदा सादयः । तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादयः । ध्रुवाध्रुवता पूर्ववत् । तथा शेषाः षड्विंशतिशतसंख्याः प्रकृतयः सत्कर्मापेक्षया त्रिधा त्रिप्रकाराः, तद्यथा—अनादयो ध्रुवा अध्रुवाश्च । तत्रानादित्वं ध्रुवसत्कर्मत्वात् । ध्रुवाध्रुवता पूर्ववत् ॥ २ ॥ तदेवं कृता साद्यनादिप्ररूपणा (२) ।

संप्रति स्वामित्वं वक्तव्यं । तच्च द्विधा—एकैकप्रकृतिगतं प्रकृतिस्थानगतं च । तत्रैकैकप्रकृतिगतं स्वामित्वमभिधित्सुराह—

छउमत्थंता चउदस, दुचरमसमयंमि अत्थि दो निद्दा। बद्धाणि ताव आऊणि, वेइयाइं ति जा कसिणं॥३॥

छउमत्थंत त्ति—ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयरूपाश्चतुर्दश प्रकृतयः छद्मस्थान्ताः क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थगुणस्थानकं यावत्सत्यो भवन्तीत्यर्थः । परतरतासामभावः । एवमुत्तरत्राप्युक्तगुणस्थानकात्परतोऽभावो वेदितव्यः । तथा द्वे निद्रे क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थगुणस्थानकद्विचरमसमयं यावत्सत्यौ स्तः । आयूंषि चत्वार्यपि बद्धानि तावत्सन्ति

गाथार्थ—चउ०दस=५ज्ञाना०, ४दर्श०ने ५अन्तराय ए १४प्रकृतिनी १२मा गुणस्थानना अंते; दो निद्दा=निद्राद्विकनो, दुचर० अत्थि=१२माना द्विचरम समये, आऊणि=४आयुष्यनी, बद्धाणि=बंधथी, वेइ०कसिणं=त्यांसुधी संपूर्ण वेदाइ रहे, ताय=त्यांसुधी सत्ता.३

यावत्कृत्स्नं निरवशेषं वेदितानि न भवन्ति ॥ ३ ॥

तिसु मिच्छत्तं नियमा, अट्ठसु ठाणेसु होइ भइयव्वं । आसाणे सम्मत्तं, नियमा सम्मं दससु भज्जं ॥४॥

तिसु त्ति—त्रिषु गुणस्थानकेषु मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यङ्मिथ्यादृष्टिलक्षणेषु नियमादवश्यंतया मिथ्यात्वं सत् विद्यमानं । शेषेषु पुनरष्टसु गुणस्थानकेषु उपशान्तमोहगुणस्थानकपर्यवसानेषु भाज्यं । तथाहि—अविरतसम्यग्दृष्ट्यादिना क्षपिते न भवति, उपशान्ते तु भवति । क्षीणमोहादिषु पुनस्तस्यावश्यमभावः । तथा आसादने सासादने सम्यक्त्वं ×नियमादस्ति । दशसु पुनर्गुणस्थानकेषु मिथ्यादृष्ट्याद्युपशान्तमोहगुणस्थानकपर्यवसानेषु भाज्यं, कदाचिद्भवति कदाचिन्न भवतीत्यर्थः । तथाहि—मिथ्यादृष्टावभव्ये न भवति, भव्येऽपि कदाचिद्भवति कदाचिन्न । तथा सम्यङ्मिथ्यादृष्टित्वं कियत्कालं सम्यक्त्वे उद्वलितेऽपि भवति, ततस्तत्रापि तद्भाज्यं । अविरतादिषु पुनः क्षपकेषु न भवति, उपशमकेषु तु भवति, अतस्तत्रापि तद्भाज्यं ॥४॥

बिइयतईएसु मिस्सं, नियमा ठाणनवगम्मि भयणिज्जं।संजोयणा उ नियमा, दुसु पंचसु होइ भइयव्वं ५

×(य०उ० १) यत औपशमिकसम्यक्त्वाद्धायां जघन्यतः समयमात्रशेषायामुत्कर्षतः षडावलिकाशेषायां सासादनो लभ्यते । तत्र च नियमादष्टविंशतिसत्कर्मैवासौ भवतीति भावः ।

गाथार्थ—तिसु=प्रथमना ३ गुणस्थानके, मिच्छत्तं नियमा=मिथ्यात्वनी निश्चय सत्ता. अट्ठसु ठाणेसु=४ थी ११मा सुधीना ८ गुणस्थानके, भइयव्वं=भजना, आसाणे=सास्वादने, सम्मत्तं नियमा=निश्चे समकितमो०नी सत्ता, सम्मं०भज्जं=१० गुणस्थानके समकित०नी भजना. ४. बिइयतइएसु=२ जे ३ जे, मिस्सं नियमा=मिश्र मोह०नी सत्ता निश्चे, ठाण०भयणिज्ज=नव गुणस्थानके

बिइय त्ति—द्वितीये तृतीये च गुणस्थानके मिश्रं सम्यङ्मिथ्यात्वं नियमादस्ति । यतः सासादनो नियमादष्टाविंशतिसत्कर्मैव भवति, ×सम्यङ्मिथ्यादृष्टिश्च सम्यङ्मिथ्यात्वं विना न भवति, ततः सासादने सम्यङ्मिथ्यादृष्टौ च सम्यङ्मिथ्यात्वमवश्यमस्ति । स्थाननवके गुणस्थानकनवके मिथ्यादृष्ट्यविरतसम्यग्दृष्ट्यादौ उपशान्तगुणस्थानकान्ते भजनीयं, कदाचिद्भवति कदाचिन्न भवति । भावना च प्रागुक्तप्रकारेण स्वयमेव कर्तव्या, सुगमत्वात्[×१] । तथा संयोजना अनन्तानुबन्धिनो द्वयोर्मिथ्यादृष्टिसासादनयोर्नियमाद् भवन्ति । यत एताववश्यमनन्तानुबन्धिनो बध्नातः । पञ्चसु पुनर्गुणस्थानकेषु सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यादिष्वप्रमत्तसंयतपर्यन्तेषु भजनीयाः[×२] । यदि उद्वलितास्ततो न सन्ति, इतरथा तु सन्तीत्यर्थः ॥ ५ ॥

×(य०उ० २) मिश्रस्त्वष्टाविंशतिसत्कर्मा विसंयोजितसम्यक्त्वः सप्तविंशतिसत्कर्मोद्वलितानन्तानुबन्धिचतुष्कश्चतुर्विंशतिसत्कर्मा वा भवतीत्येतेषु च सत्तास्थानेषु मिश्रसत्ताऽवश्यं लभ्यते । षड्विंशतिसत्कर्मा तु मिश्रो न संभवत्येव, मिश्रपुञ्जस्य सत्तोदयाभ्यां विना मिश्रगुणस्थानाप्राप्तेः ।×१(य०उ० ३) मो मिथ्यादृष्टिः षड्विंशतिसत्कर्मा ये चाविरतसम्यग्दृष्ट्यादय उपशान्तमोहान्ताः क्षायिकसम्यग्दृष्टयस्तेषु मिश्रं सत्तायां न प्राप्यतेऽन्यत्र च प्राप्यत इत्यर्थः । ×२(य०उ० ४) विसंयोजितानन्तानुबन्धिनश्चतुर्विंशतिसत्कर्मणः सम्यग्मिथ्यादृष्टेः क्षीणसप्तकतयैकविंशतिसत्कर्मणोऽनन्तानुबन्धिराहित्येन चतुर्विंशतिसत्कर्मणो वाऽविरतसम्यग्दृष्ट्यादेरनन्तानुबन्धिनः-सत्तायां न सन्ति, तदितरस्य तु सन्तीति । अत्र गुणस्थानपञ्चक एवानन्तानुबन्धिनां भजनीयत्वं । यदुक्तं—"तद्विसंयोजिता-

---

भजना, संजोयणा उ=वळी अनंतानुबंधीनी, दुसु=२गुणस्थाने, नियमा=अवश्य सत्ता, पंचसु०यव्वं=३थी ७मा सुधी ५ गुणस्थानके भजना होय. ५

खवगानियट्टिअद्धा; संखिज्जा होंति अट्ठ वि कसाया।निरयातिरियतेर--सगं निद्दानिद्दातिगेणुवरिं॥६॥

खवग त्ति—क्षपकस्य अनिवृत्तिबादरसंपरायाद्धाया यावत् संख्येया भागास्तावदष्टावपि अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्ञाः कषायाः सन्ति । परतो न विद्यन्ते, क्षीणत्वात् । उपशमश्रेणिमधिकृत्य पुनरुपशान्तमोहगुणस्थानकं यावत् सन्तो वेदितव्याः । निरयतिर्यगेकान्तप्रायोग्यं यन्नामत्रयोदशकं नरकद्विकतिर्यग्द्विकैकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिस्थावरातपोद्योतसूक्ष्मसाधारणरूपं निद्रानिद्रात्रिकेण सह संयुक्तं कषायाष्टकक्षयादुपरि स्थितिखंडेषु सहस्रेषु गतेषु सत्सु युगपत्क्षयमेति । ततो यावन्न क्षयं याति तावत् सत्, क्षये च सति असत् । उपशमश्रेण्यां पुनरेताः षोडशापि प्रकृतय उपशान्तमोहगुणस्थानकं यावत् सत्यो वेदितव्याः

अपुमित्थीए समं वा, हासच्छक्कं च पुरिससंजलणा । पत्तेगं तस्स कमा, तणुरागंतो त्ति लोभो य॥७॥

अपुमित्थीए त्ति—पूर्वोक्तप्रकृतिषोडशकक्षयादनन्तरं संख्येयेषु स्थितिखंडेषु गतेषु सत्सु नपुंसकवेदः क्षीयते, यावच्च न

नन्तानुबन्धिकषाय एवोपशमश्रेणिमपि प्रतिपद्यत" इति स्वमताभिप्रायेण । कर्मग्रन्थान्तरे तु "आइदुगे अण नियमा भइया मीसा इणवगम्मि" इत्युक्तमिति ध्येयम् ।

गाथार्थ—खवगा=क्षपकने, अट्ठवि कसाया=८ कषायोनी, अनिवृत्तिना संख्याता भागसुधी सत्ता होय छे. निरय०तेरसगं=नरक तिर्यंचप्रायोग्य १३, निद्दा०णुवरिं=अने निद्रानिद्रादि ३ नी सत्ता, अनिवृत्तिना संख्यातमा भागथी आगळ पण होय छे. ६। अपुमि० समं वा=त्यारपछी नपुंसकवेद अने स्त्रीवेद क्रमे अथवा साथे, हास०पुरिस=त्यार पछी हास्यषट्क अने पुरुषवेदनो क्रमे अथवा साथे, संजलणा=संज्वलनमांथी, पत्तेगं०कमा=तेना प्रत्येकनो अनुक्रमे क्षय थाय. तणु०लोभो य=सं०लोभनो १०माना अंते क्षय. ७

क्षीयते तावत् सन् । ततः पुनरपि स्थितिखंडेषु संख्येयेषु गतेषु सत्सु स्त्रीवेदः क्षीयते, सोऽपि यावत्क्षयं न याति तावत्सन् । एवं स्त्रीवेदेन पुरुषवेदेन वा क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्य द्रष्टव्यं । नपुंसकवेदेन प्रतिपन्नस्य तु स्त्रीवेदनपुंसकवेदौ युगपत्क्षयमुपगच्छतः, यावच्च न क्षयमुपगच्छतस्तावत्सन्तौ॥उपशमश्रेणिमधिकृत्य पुनरुपशान्तमोहगुणस्थानकं यावत्सन्तौ।ततःस्त्रीवेदक्षयानन्तरं संख्येयेषु स्थितिखंडेषु गतेषु सत्सु हास्यादिषट्कं युगपत्क्षयमुपयाति, ततः समयोनावलिकाद्विकातिक्रमे पुरुषवेदः। एवं पुरुषवेदेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्य द्रष्टव्यं । स्त्रीवेदेन नपुंसकवेदेन वा क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्य पुनः पुरुषवेदो हास्यादिषट्कं च युगपत्क्षीयते । ततः पुरुषवेदक्षयानन्तरं संख्येयेषु स्थितिखंडेषु गतेषु सत्सु संज्वलनक्रोधः क्षयमुपयाति । ततः पुनरपि संख्येयेषु स्थितिखंडेषु गतेषु सत्सु संज्वलनमानः । ततोऽपि संख्येयेषु स्थितिखंडेषु गतेषु संज्वलनमाया । यावच्च हास्यादिप्रकृतयः क्षयं नोपयान्ति तावत्सत्यः । 'तणुरागंतो त्ति लोभो य' लोभः संज्वलनलोभो यावत्तनुरागान्तः सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकान्तः तावत् सन् वेदितव्यः, परतोऽसन् । उपशमश्रेणिमधिकृत्य पुनर्हास्यादिप्रकृतयः सर्वा अपि उपशान्तमोहगुणस्थानकं यावत् सत्योऽवसेयाः ।।७।।

मणुयगइजाइतस–बायरं च पज्जत्तसुभगआएज्जं । जसकित्ती तित्थयरं, वेयणिउच्चं च मणुयाणं ॥८॥

भवचरिमस्समयम्मि उ, तम्मग्गिल्लसमयम्मि सेसाउ।आहारगतित्थयरा, भज्जा दुसु नत्थि तित्थयरं॥९॥

गाथार्थ—मणुय०बायरं च=मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पज्जत्त०आएज्जं=प्रत्येक, सौभाग्य, आदेय, जस०तित्थयरं=यशःकीर्ति, जिननाम, वेयणि०याऊ=वेदनीय, उच्चगोत्र अने मनुष्यायुनी सत्ता, भव०समयम्मि उ=भव (अयोगीना) चरिम समयसुधी. सेसाउ=शेष ८३ नी, तस्स०यम्मि=अयोगिना उपान्त्य समय सुधी सत्ता. आहार०भज्जा=आहारक अने जिननामनी

मणुयगईत्यादि–मनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरपर्याप्तसुभगादेययशःकीर्तितीर्थकरान्यतरवेदनीयोच्चैर्गोत्रमनुष्यायूरूपा द्वादश प्रकृतयो भवचरमसमये सन्ति, अयोगिकेवलिचरमसमयं यावत् विद्यन्ते, परतोऽसत्य इत्यर्थः । शेषाः पुनरुक्तव्यतिरिक्ताः सर्वा अपि त्र्यशीतिसंख्याः×। 'तम्मग्गिल्लसमयम्मि त्ति' भवचरमसमयपाश्चात्यसमयेऽयोगिकेवलिद्विचरमसमये इत्यर्थः। सत्यो भवन्ति, चरमसमये त्वसत्यः । आहारकतीर्थकरनामनी सर्वेष्वपि गुणस्थानकेषु भाज्ये×१ । द्वयोः पुनर्गुणस्थानकयोः सासादनसम्यङ्मिथ्यादृष्टिरूपयोरतीर्थकरनाम नियमान्न विद्यते, तीर्थकरनामसत्कर्मणः स्वभावत एवोक्तरूपे गुणस्थानकद्विके गमनासंभवात् ॥८–९॥

×(य०उ० ५) अन्यतरवेदनीयदेवद्विकौदारिकसप्तकवैक्रियसप्तकाहारकसप्तकतैजसकार्मणसप्तकप्रत्येकसंहननषट्कसंस्थानषट्कवर्णादिविंशतिविहायोगतिद्विकागुरुलघुपराघातोपघातोच्छ्वासस्थिरास्थिरशुभाशुभदुर्भगसुस्वरदुःस्वरायशःकीर्तिमनुष्यानुपूर्वीनिर्माणानादेयापर्याप्तकनीचैर्गोत्ररूपाऽयशीतिसङ्ख्या ।

×१(य०उ० ६) योऽप्रमत्तसंयतादिः संयमप्रत्ययादाहारकसप्तकबन्धं विधाय विशुद्धिवशादुपरितनगुणस्थानेषु समारोहति । यश्च तद्बन्धानन्तरमुपरितनगुणस्थानेभ्योऽविशुद्धाध्यवसायेनाधः पतति तस्याहारकसप्तकं सर्वगुणस्थानेषु सत्तायां प्राप्यते। यस्त्वाहारकसप्तकं न बध्नात्येव, तद्बन्धं विनैव चोपरितनानि गुणस्थानान्यध्यारोहति तस्य तत्तेषु सत्तायां नावाप्यते । तथा यः कश्चिदविरतसम्यग्दृष्ट्यादिरपूर्वकरणभागषट्कं यावत्सम्यक्त्वप्रत्ययात्तीर्थकरनामबन्धो(बध्नो) परितनगुणस्थानकान्यधिरोहति। कश्चिच्च

सर्व गुणस्थाने भजना, दुसु०यरं–२जे ३जे जिननामनी सत्ता नथी. ८–९

तदेवमुक्तमेकैकप्रकृतिसत्कर्म, संप्रति प्रकृतिस्थानसत्कर्मप्ररूपणार्थमाह—

पढमचरिमाणमेगं, छन्नवचत्तारि बीयगे तिन्नि। वेयणियाउयगोएसु, दोन्नि एगो त्ति दो होंति ॥१०॥

पढम त्ति–प्रथमचरमयोर्ज्ञानावरणान्तराययोरेकैकं पञ्चप्रकृत्यात्मकं स्थानं। तच्च क्षीणकषायचरमसमयं यावत् सत्, परतोऽसत्। तथा द्वितीये दर्शनावरणीये त्रीणि प्रकृतिस्थानानि, तद्यथा—षट् नव चतस्रः। तत्र सकलदर्शनावरणीयप्रकृतिसमुदायो नव। ताश्च नव प्रकृतय उपशमश्रेणिमधिकृत्य उपशान्तमोहगुणस्थानकं यावत् सत्यः। क्षपकश्रेणिमधिकृत्य पुनरनिवृत्तिबादरसंपरायाद्धाया यावत् संख्येयभागास्तावत्सत्यः, परतः स्त्यानर्द्धित्रिकक्षये षट् भवन्ति। ताश्च तावत्सत्यो यावत् क्षीणबद्धतीर्थकरनामाऽविशुद्धिवशान्मिथ्यात्वमपि गच्छति तदा सासादनमिश्ररहितेषु द्वादशसु गुणस्थानकेषु तीर्थकरनाम सत्तायां प्राप्यते। यस्तु विशुद्धसम्यक्त्वे सत्यपि तन्न बध्नाति तस्य सर्वगुणस्थानकेषु तत्सत्ता न लभ्यते, यदनयोः स्वहेतुसद्भावेऽपि बन्धाप्रौव्यान्नावश्यं सत्तासंभव इति। तथा तीर्थकराहारकद्वयस्य मिथो मिलितस्य सत्ता मिथ्यादृष्टौ नावाप्यते। उक्तं च—"उभए संति न मिच्छो"। केवलतीर्थकरनामसत्ताकोऽपि मिथ्यादृष्टिरन्तर्मुहूर्त्तमात्रं कालं भवेन्नाधिकं। उक्तं च—"तित्थगरे अंतरमुहुत्तं"। इदमुक्तं भवति—यो नरके बद्धायुष्को वेदकसम्यग्दृष्टिर्बद्धतीर्थकरनामा संस्तत्रोत्पित्सुरवश्यं सम्यक्त्वं परित्यज्य तत्रोत्पद्यते, उत्पत्तिसमयानन्तरमन्तर्मुहूर्त्तादूर्ध्वमवश्यं सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते, तस्यायमुक्तप्रमाणः कालो लभ्यत इति द्रष्टव्यम्।

गाथार्थ—पढम०मेगं=प्रथम अने अन्त्य कर्मनुं एकेक, बीयगे=दर्श०मां, छ०त्तरि=६नु ९नुं ४नुं एम, तिन्नि=त्रण, वेय०गोएसु=वेदनीय, आयुष्य अने गोत्रमां, दोन्नि०त्ति= २नु ने १नुं एम, दो होंति–२ सत्तास्थान होय छे. १०

कषायस्य द्विचरमसमयः । तस्मिन् द्विचरमसमये निद्राप्रचले व्यवच्छिद्येते । ततश्चरमसमये चतस्र एव सत्यः । ता अपि तत्र व्यवच्छिद्यन्ते । तथा वेदनीयायुर्गोत्राणां द्वे प्रकृतिस्थाने, तद्यथा—द्वे एका च । तत्र वेदनीयस्य यावदेकं न क्षीणं तावत् द्वे सत्यौ । एकस्मिंस्तु क्षीणे एका । गोत्रस्य यावदेकं न क्षीणं उद्वलितं वा तावत् द्वे सत्यौ । नीचैर्गोत्रे वा उद्वलिते पुनरेका सती । आयुषस्तु यावद्बद्धमायुर्नोदेति तावत् द्वे प्रकृती सत्यौ । उदिते तु तस्मिन् प्राक्तनं क्षीणमिति एका प्रकृतिः ॥ १० ॥

संप्रति मोहनीयस्य प्रकृतिसत्कर्मस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

एगाइ जाव पंचग-मेक्कारस बार तेरसिगवीसा । बिय तिय चउरो छ, सत्त अट्ठवीसा य मोहस्स ॥ ११ ॥

एगाइ त्ति–मोहनीयस्य पञ्चदश प्रकृतिसत्कर्मस्थानानि । तद्यथा–एका, द्वे, तिस्रः, चतस्रः पञ्च, एकादश, द्वादश, त्रयोदश, एकविंशतिः, द्वाविंशतिः, त्रयोविंशति चतुर्विंशतिः, षड्विंशतिः, सप्तविंशतिः, अष्टाविंशतिश्चेति । एतानि सुखावबोधार्थं गाथाक्रमवैपरीत्येन भाव्यन्ते—तत्र मोहनीयस्य सर्वप्रकृतिसमुदायोऽष्टाविंशतिः । सम्यक्त्वे उद्वलिते सप्तविंशतिः । ततोऽपि सम्यङ्मिथ्यात्वे उद्वलिते षड्विंशतिः । अथवाऽनादिमिथ्यादृष्टेः षड्विंशतिः । अष्टाविंशतिरनन्तानुबन्धिचतुष्टये क्षीणे चतुर्विंशतिः । ततो मिथ्यात्वे क्षीणे त्रयोविंशतिः । ततः सम्यङ्मिथ्यात्वे क्षीणे द्वाविंशतिः । ततः सम्यक्त्वे क्षीणे एकविंशतिः । ततोऽष्टसु कषायेषु क्षीणेषु त्रयोदश । ततो नपुंसकवेदे क्षीणे द्वादश । ततः स्त्रीवेदे क्षीणे एकादश । ततः षट्सु नोकषायेषु क्षीणेषु पञ्च । ततः पुरुषवेदे क्षीणे चतस्रः । ततः संज्वलनक्रोधे क्षीणे तिस्रः । ततः संज्वलनमाने क्षीणे द्वे ।

गाथार्थ—मोहनीयस्स=मोहनीय कर्मना, एगा०पंचगं=१ थी ५ सुधी, एक्का०वीश=११, १२, १३, ने २१, बिय०अट्ठवीसा=२२,

संज्वलनमायायां च क्षीणायामेका ॥ ११ ॥

संप्रत्येतानि प्रकृतिसत्कर्मस्थानानि गुणस्थानकेषु विचिन्तयन्नाह—

तिन्नेग तिगं पणगं, पणगं पणगं च पणगमह दोन्नि। दस तिन्नि दोन्नि मिच्छा-इगेसु जावोवसंतो त्ति ॥१२॥

तिन्नेग त्ति—यावदुपशान्तमोहगुणस्थानकं तावन्मिथ्यादृष्ट्यादिषु गुणस्थानकेषु यथासंख्यं त्र्यादीनि प्रकृतिसत्कर्म स्थानानि भवन्ति। तत्र मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके त्रीणि प्रकृतिसत्कर्मस्थानानि। तद्यथा—अष्टाविंशतिः, सप्तविंशतिः, षड्विंशतिश्च। एतानि प्रागेव भावितानि। सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके एकं प्रकृतिसत्कर्मस्थानं अष्टाविंशतिरूपं। सम्यङ्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके त्रीणि प्रकृतिसत्कर्मस्थानानि, तद्यथा—अष्टाविंशतिः सप्तविंशतिश्चतुर्विंशतिश्च। इह योऽष्टाविंशतिसत्कर्मा सन् सम्यङ्मिथ्यात्वं गतस्तमाश्रित्याष्टाविंशतिः। येन पुनर्मिथ्यादृष्टिना सता पूर्वं सम्यक्त्वमुद्वलितं ततः सप्तविंशतिसत्कर्मणा सता सम्यङ्मिथ्यात्वमनुभवितुमारब्धं तं प्रति सप्तविंशतिः। चतुर्विंशतिसत्कर्मणां सम्यङ्मिथ्यादृष्टिं प्रतीत्य पुनश्चतुर्विंशतिः प्राप्यते। तथाऽविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके पञ्च प्रकृतिसत्कर्मस्थानानि, तद्यथा—अष्टाविंशतिः चतुर्विंशतिः त्रयोविंशतिः द्वाविंशतिः एकविंशतिश्च। तत्राष्टाविंशतिरौपशमिकसम्यग्दृष्टेः क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टेर्वा। अष्टाविंशतिसत्कर्मणोऽनन्तानुबन्धिक्षये वेदकसम्यग्दृष्टेरौपशमिकसम्यग्दृष्टेर्वा चतुर्विंशतिः। वेदकसम्यग्दृष्टेर्मिथ्यात्वे क्षपिते त्रयोविंशतिः। तस्यैव सम्यङ्मिथ्यात्वे क्षपिते द्वाविंशतिः। क्षायिकसम्य-

२३ २४, २६, २७ अने २८ एम १५ सत्तास्थानो छे ११। मिच्छा०संतो त्ति=मिथ्यात्वथी उपशान्त मोह सुधीना ११ गुणस्थाने मोहनीयना, तिन्नेगतिगं-३, १, ३, पणगं०दोन्नि=५, ५, ५, ५, २, दस०दोन्नि-१०, ३ अने २ सत्तास्थानो छे. १२

ग्दृष्टेरेकविंशतिः। तथा देशविरतिगुणस्थानके पञ्च प्रकृतिसत्कर्मस्थानानि, तानि च पूर्वोक्तान्येव। तान्येव प्रमत्तसंयतगुणस्थानके। तान्येव चाप्रमत्तसंयतगुणस्थानके। 'अह दोन्नि त्ति' अथानन्तरं अपूर्वकरणगुणस्थानके द्वे प्रकृतिस्थाने, तद्यथा–चतुर्विंशतिरेकविंशतिश्च। तत्रोपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्य चतुर्विंशतिः, क्षायिकसम्यग्दृष्टिमधिकृत्य द्वयोरपि श्रेण्योरेकविंशतिः। तथाऽनिवृत्तिबादरसंपरायगुणस्थानके दश प्रकृतिसत्कर्मस्थानानि, तद्यथा–चतुर्विंशतिः एकविंशतिः त्रयोदश द्वादश एकादश पञ्च चतस्रः तिस्रः द्वे एका च। तत्र चतुर्विंशतिरुपशमश्रेणिमधिकृत्य, एकविंशतिः क्षायिकसम्यग्दृष्टेर्द्वयोरपि श्रेण्योः, शेषाणि पुनः क्षपकश्रेण्यां, तानि च प्रागेव भावितानि। सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानके त्रीणि प्रकृतिसत्कर्मस्थानानि, तद्यथा—चतुर्विंशतिः एकविंशतिः एका च। तत्र चतुर्विंशतिरौपशमिकसम्यग्दृष्टेः, एकविंशतिश्च क्षायिकसम्यग्दृष्टेः, एते च द्वे अपि प्रकृतिसत्कर्मस्थाने उपशमश्रेण्यां, एका च क्षपकश्रेण्यां। तथा द्वे प्रकृतिसत्कर्मस्थाने उपशान्तमोहगुणस्थानके, तद्यथा–चतुर्विंशतिरेकविंशतिश्च। एते च द्वे अपि प्रागिव भावनीये ॥ १२ ॥

संप्रति मतान्तरमाह—

संखीणदिट्ठिमोहे, केई पणवीसइं पि इच्छंति। संजोयणाण पच्छा, नासं तेसिं उवसमं च ॥ १३ ॥

संखीण त्ति–केचिदाचार्याः पञ्चविंशतिलक्षणमपि प्रकृतिसत्कर्मस्थानमिच्छन्ति। ते हि प्रथमतो दृष्टिमोहे दर्शनमोहनी-

---

गाथार्थ—केई=केटलाक आचार्यो, सखी०मोहे=प्रथम दर्शनत्रिकनो क्षय मानता होवाथी, पण०इच्छंति=२५नुं सत्तास्थान इच्छे छे. पच्छा=पछीथी, संजोयणाण=४ अनंतानुबंधिनुं नाश, तेसिं उवसमं च=अने ते ४ नो उपशम पण माने छे. १३

यत्त्रितये संक्षीणे क्षयमुपगते सति पश्चादनन्तानुबन्धिनां नाशमिच्छन्ति । ततस्तन्मतेन दर्शनमोहनीयत्रितयक्षये सति पञ्चविंशतिरूपमपि प्रकृतिसत्कर्मस्थानं प्राप्यते । यद्येवं तर्हि तन्मतमिह कस्मान्नाभ्युपगम्यते ? उच्यते—आर्षेण विरोधात् । यदाह चूर्णिकृत्—"तं आरिसे न मिलइ तेण न इच्छिज्जइ त्ति ' तथा त एवाचार्यास्तेषामनन्तानुबन्धिनामुपशमं चेच्छन्ति, नान्ये परमार्थवेदिनः । अत एव च प्रागनन्तानुबन्धिनामुपशमनाऽस्माभिर्नोपदर्शिता ॥ १३ ॥

संप्रति नामकर्मणः प्रकृतिसत्कर्मस्थानानि प्रतिपिपादयिषुराह—

तिदुगसयं छप्पंचग-तिगनउई नउइ गुणनउई य। चउतिगदुगाहिगासी, नव अट्ठ य नामठाणाइं ॥१४॥

तिदुगसयं ति—नामकर्मणो द्वादश प्रकृतिसत्कर्मस्थानानि, तद्यथा—त्र्युत्तरशतं द्व्युत्तरशतं षण्णवतिः पञ्चनवतिः त्रिनवतिः नवतिः एकोननवतिः चतुरशीतिः त्र्यशीतिः द्व्यशीतिः नव अष्टौ चेति । तत्र सर्वनामकर्मप्रकृतिसमुदायरूपं त्र्युत्तरशतं । तदेव तीर्थकररहितं द्व्युत्तरशतं । त्र्युत्तरशतमेवाहारकसप्तकरहितं षण्णवतिः । सैव तीर्थकररहिता पञ्चनवतिः । पञ्चनवतिरेव देवद्विकरहिता नरकद्विकरहिता वा त्रिनवतिः । तथा त्र्युत्तरशतमेव नामत्रयोदशकरहितं नवतिः । सैव तीर्थकररहिता एकोननवतिः तथा त्रिनवतिर्नरकद्विकवैक्रियसप्तकरहिता देवद्विकवैक्रियसप्तकरहिता वा चतुरशीतिः । षण्णवतिस्त्रयोदशरहिता त्र्यशीतिः । पञ्चनवतिस्त्रयोदशरहिता द्व्यशीतिः, अथवा चतुरशीतिर्मनुजद्विकरहिता द्व्यशीतिः । मनुजगतिपञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरपर्याप्तसुभगा-

गाथार्थ—तिदुगसयं=१०३, १०२, छप्पंच०नउई=९६, ९५, ९३, नउई०नउईय=९०, ८९, चउ०गासी=८४, ८३, ८२, नव अट्ठ य =९ ने ८, नामट्ठाणाई=र १२ नाम कर्मना सत्तास्थानो छे. १४

देययशःकीर्तितीर्थकररूपा नव । ता एव तीर्थकररहिता अष्टौ ॥ १४ ॥

एतान्येव प्रकृतिसत्कर्मस्थानानि गुणस्थानकेषु चिन्तयन्नाह—

एगे छ दोसु दुगं, पंचसु चत्तारि अट्ठगं दोसु । कमसो तीसु चउक्कं, छत्तु अजोगम्मि छठाणाणि ॥१५॥

एगे त्ति—एकस्मिन्मिथ्यादृष्टिलक्षणे गुणस्थानके षट् प्रकृतिसत्कर्मस्थानानि, तद्यथा—द्व्युत्तरशतं षण्णवतिः पञ्चनवतिः त्रिनवतिः चतुरशीतिः द्व्यशीतिः । ननु षण्णवतिस्तीर्थकरनामसहिता भवति ततः सा कथं मिथ्यादृष्टौ प्राप्यते ? उच्यते—इह कश्चित् नरकेषु बद्धायुष्कः पश्चात्सम्यक्त्वं प्राप्य, तन्निमित्तं तीर्थकरनामकर्म बद्धवा नरकाभिमुखः सन् सम्यक्त्वं त्यक्त्वा मिथ्यादृष्टिर्जातः, ततो नरके उत्पन्नः सन् अन्तर्मुहूर्तानन्तरं पुनरपि सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते, ततोऽन्तर्मुहूर्तं कालं यावत् षण्णवतिर्मिथ्यादृष्टौ प्राप्यते, आहारकसप्तकतीर्थकरनामसत्कर्मा च मिथ्यात्वं न प्रतिपद्यते । उक्तं च—" उभए संति न मिच्छो " इति । ततस्त्र्युत्तरशतं मिथ्यादृष्टौ न प्राप्यते । तथा द्वयोः सासादनसम्यङ्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकयोर्द्वे द्वे प्रकृतिसत्कर्मस्थाने, तद्यथा—द्व्युत्तरशतं पञ्चनवतिश्च । तथा पञ्चसु अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकप्रभृतिषु अपूर्वकरणगुणस्थानकान्तेषु चत्वारि चत्वारि प्रकृतिसत्कर्मस्थानानि । तद्यथा—त्र्युत्तरशतं द्व्युत्तरशतं षण्णवतिः पञ्चनवतिः । शेषाणि क्षपकश्रेण्यामेकेन्द्रियादौ च संभवन्तीति कृत्वा इह न प्राप्यन्ते । तथा द्वयोरनिवृत्तिबादरसूक्ष्मसंपरायलक्षणयोर्गुणस्थानकयोरष्टकं अष्टौ प्रकृतिसत्कर्मस्थानानि । तद्यथा—त्र्युत्तरशतं द्व्युत्तरशतं षण्णवतिः पञ्चनवतिः नवतिः एकोननवतिः त्र्यशीतिः द्व्यशीतिश्च । तत्रानिवृत्तिबादरस्यादिमानि चत्वारि

गाथार्थ—एगे छ=१गुणस्थानमां ६, दोसु दुगं=२ गुण०मां २, पंचसु चत्तारि=५ गुण०मां ४, अट्ठगं दोसु=२ गुण०मां ८, तीसु

उपशमश्रेण्यां क्षपकश्रेण्यां वा यावन्न त्रयोदशकं क्षीयते । शेषाणि पुनः क्षपकश्रेण्यामेव । सूक्ष्मसंपरायस्यादिमानि चत्वारि उपशमश्रेण्यां, शेषाणि तु क्षपकश्रेण्यां । तथा त्रिषु उपशान्तमोहक्षीणमोहसयोगिकेवलिलक्षणेषु गुणस्थानकेषु चत्वारि चत्वारि प्रकृतिसत्कर्मस्थानानि भवन्ति । तत्रोपशान्तमोहे इमानि चत्वारि, तद्यथा—त्र्युत्तरशतं द्व्युत्तरशतं षण्णवतिः पञ्चनवतिः । क्षीणमोहसयोगिकेवलिनोः पुनरमूनि, तद्यथा—नवतिः एकोननवतिः त्र्यशीतिः द्व्यशीतिश्च । ' छ त्तु अजोगम्मि ठाणाणि त्ति' अयोगिकेवलिनि षट् प्रकृतिसत्कर्मस्थानानि, तद्यथा—नवतिः एकोननवतिः त्र्यशीतिः द्व्यशीतिः नव अष्टौ चेति । एतेषामादिमानि चत्वारि अयोगिकेवलिद्विचरमसमयं यावत्, चरमसमये तु तीर्थकरातीर्थकरौ प्रतीत्य द्वे अन्तिमे प्रकृतिसत्कर्मस्थाने (३) १५॥

तदेवमुक्तं प्रकृतिसत्कर्म । संप्रति स्थितिसत्कर्म वक्तव्यं। तत्र त्रयोऽर्थाधिकाराः, तद्यथा—भेदः (१) साद्यनादिप्ररूपणा (२) स्वामित्वं (३) चेति । तत्र भेदः प्रागिव (१)। साद्यनादिप्ररूपणा च द्विधा—मूलप्रकृतिविषया उत्तरप्रकृतिविषया च। तत्र प्रथमतो मूलप्रकृतिविषयां साद्यनादिप्ररूपणां चिकीर्षुराह—

मूलठिई अजहन्नं, तिहा चउद्धा य पढमगकसाया । तित्थयरुव्वलणायु-गवज्जाणि तिहा दुहाणुत्तं॥१६॥

मूलठिइ त्ति—मूलप्रकृतिस्थितिसत्कर्म अजघन्यं त्रिधा त्रिप्रकारं । तद्यथा—अनादि ध्रुवमध्रुवं च । तथाहि—मूलप्रकृतीनां

चउक्कं=३ गुण०मां ४, छ त्तु अजोगम्मि=अयोगीमां ६, कमसो=अनुक्रमे, ठाणाणि=सत्तास्थानो छे. १५ । मूलट्ठिइ०तिहा=मूल प्रकृतिनी अजघन्य स्थितिसत्ता ३ प्रकारे, चउ०कसाया=प्रथम कषायनी अजघन्य ४ प्रकारे, तित्थ०वज्जाण=जिननाम, उद्वलन योग्य २३ ने ४आयुष्य वर्जीने १२६नी अज०' तिहा=३प्रकारे, दुहाणुत्त=अनुक्त विकल्पो २ प्रकारे. १६

जघन्यं स्थितिसत्कर्म स्वस्वक्षयपर्यवसाने समयमात्रैकस्थित्यवशेषे भवति, तच्च सादि अध्रुवं च । ततोऽन्यत्सर्वमजघन्यं, तच्चानादि, सदैव भावात् । ध्रुवाध्रुवता पूर्ववत् । उत्कृष्टमनुत्कृष्टं च साद्यध्रुवं द्वयोरपि पर्यायेणानेकशो भवनात् । कृता मूलप्रकृतीनां साद्यनादिप्ररूपणा । संप्रत्युत्तरप्रकृतीनां क्रियते 'चउद्धा य ' इत्यादि, अत्र षष्ठ्यर्थे प्रथमा, ततोऽयमर्थः—प्रथमकषायाणामनन्तानुबन्धिनामजघन्यं स्थितिसत्कर्म चतुर्धा चतुःप्रकारं, तद्यथा—सादि अनादि ध्रुवमध्रुवं च । तथाहि—एषां जघन्यं स्थितिसत्कर्म स्वक्षयोपान्त्यसमये स्वरूपापेक्षया समयमात्रैकस्थितिरूपं, अन्यथा तु द्विसमयमानं, तच्च साद्यध्रुवं, ततोऽन्यत्सर्वमजघन्यं, तदपि चोद्वलितानां भूयो बन्धे सादि, तत्स्थानमप्राप्तानां पुनरनादि, ध्रुवाध्रुवता पूर्ववत् । तथा तीर्थकरनामोद्वलनयोग्यत्रयोविंशत्यायुश्चतुष्टयवर्जितानां शेषाणां षड्विंशत्यधिकशतसंख्यानां प्रकृतीनामजघन्यं स्थितिसत्कर्म त्रिधा, तद्यथा—अनादि ध्रुवमध्रुवं च । तथाहि—एतासां जघन्यं स्थितिसत्कर्म स्वस्वक्षयपर्यवसाने उदयवतीनां समयमात्रैकस्थितिरूपं, अनुदयवतीनां स्वरूपतः समयमात्रैकस्थितिकं । अन्यथा तु द्विसमयमात्रं× । तच्च साद्यध्रुवं । ततोऽन्यत्सर्वमजघन्यं । तच्चानादि, सदैव भावात् । ध्रुवाध्रुवता पूर्ववत् । 'दुहाणुत्तं त्ति' अनुक्तं उक्तप्रकृतीनामुत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्यरूपं तीर्थकरनामोद्वलनयोग्यदेवद्विकनरकद्विकमनुजद्विकवैक्रियसप्तकाहारकसप्तकोच्चैर्गोत्रसम्यक्त्वसम्यङ्मिथ्यात्वरूपत्रयोविंशतिआयुश्चतुष्टयानां जघन्याजघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टरूपं विकल्पचतुष्टयं द्विधा द्विप्रकारं, तद्यथा—सादि अध्रुवं च । तथाहि—उक्तप्रकृतीनामुत्कृष्टमनुत्कृष्टं च स्थितिसत्कर्म पर्यायेणानेकशो भवति । ततो द्वितयमपीदं साद्यध्रुवं । जघन्यं च प्रागेव भावितं । तीर्थकरनामादीनां चाध्रुवसत्कर्मत्वाच्चत्वारोऽपि

×(य०उ०७) स्तिबुकसंक्रमोपनीतपररूपानुगतकर्मत्वसामान्यापेक्षया द्विसमयमात्रं ।

विकल्पाः साद्यध्रुवा अवसेयाः । मूलप्रकृतीनां चानुक्तं जघन्यमुत्कृष्टमनुत्कृष्टं च द्विप्रकारं, प्रागेव चोक्तं ॥१६॥

तदेवं कृता साद्यनादिप्ररूपणा (२) । संप्रति स्वामित्वं वक्तव्यं । तच्च द्विधा–उत्कृष्टस्थितिसत्कर्मस्वामित्वं जघन्यस्थितिसत्कर्मस्वामित्वं च । तत्र प्रथमत उत्कृष्टस्थितिसत्कर्मस्वामित्वमाह—

जेट्ठठिई बंधसमं, जेट्ठं बंधोदया उ जासि सह । अणुदयबंधपराणं, समऊणा जट्ठिई जेट्ठं ॥ १७ ॥

जेट्ठठिइ त्ति–यासां प्रकृतीनां सह युगपत् बन्धोदयौ भवतः । कासां युगपत् बन्धोदयौ भवत इति चेदुच्यते–ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयासातवेदनीयमिथ्यात्वषोडशकषायपञ्चेन्द्रियजातितैजससप्तकहुंडसंस्थानवर्णादिविंशत्यगुरुलघुपराघातोपघातोच्छ्वासाप्रशस्तविहायोगत्युद्योतत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकास्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेययशःकीर्तिनिर्माणनीचैर्गोत्रपञ्चविधान्तरायाणां तिर्यङ्मनुष्यानधिकृत्य वैक्रियसप्तकस्य सर्वसंख्यया षडशीतिप्रकृतीनां (८६) । तासां ज्येष्ठमुत्कृष्टं स्थितिसत्कर्म ज्येष्ठस्थितिबन्धसमं उत्कृष्टस्थितिबन्धप्रमाणं भवति । तासां हि उत्कृष्टस्थितिबन्धारंभेऽबाधाकालेऽपि प्राग्बद्धं दलिकं प्राप्यते । न च तासां प्रथमस्थितिरन्यत्र स्तिबुकसंक्रमेण संक्रामति, उदयवतीत्वात् । ततस्तासामुत्कृष्टस्थितिबन्धप्रमाणमुत्कृष्टं स्थितिसत्कर्म प्राप्यते । अनुदयबन्धपराणां समयोना ज्येष्ठा स्थितिर्ज्येष्ठमुत्कृष्टं स्थितिसत्कर्म । तत्रानुदये उदयाभावे पर उत्कृष्टः स्थितिबन्धो यासां ता अनुदयबन्धपराः निद्रापञ्चकनरकद्विकतिर्यग्द्विकौदारिकसप्तकैकेन्द्रियजातिसेवार्तसंहननातपस्थावररूपा विंश-

गाथार्थ—बंधो०सह=जे प्रकृतिओनो बन्ध ने उदय समकाळे छे ते प्रकृतिओनी, जेट्ठ०समं=उत्कृष्ट स्थितिबंध समान, जेट्ठं उत्कृष्ट स्थिति सत्ता छे. अणु०पराणं=अनुदय बन्धवतीनी, समऊणा०जेट्ठं=समयोन उ०स्थितिबन्ध तुल्य उ०स्थितिसत्ता छे १७

तिसंख्यास्तासां समयोना उत्कृष्टा स्थितिरुत्कृष्टं स्थितिसत्कर्म । तथाहि—एतासामुत्कृष्टस्थितिबन्धारंभे यद्यप्यबाधाकालेऽपि प्राग्बद्धं दलिकमस्ति तथापि प्रथमस्थितिं तासामुदयवतीषु मध्ये स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमयति । तेन तया प्रथमस्थित्या समयमात्रया ऊना उत्कृष्टा स्थितिरुत्कृष्टं स्थितिसत्कर्म । अथोच्येत—कथं निद्रादीनामनुदये सति बन्धेनोत्कृष्टा स्थितिः प्राप्यते ? उच्यते—उत्कृष्टो हि स्थितिबन्ध उत्कृष्टे संक्लेशे भवति । न चोत्कृष्टे संक्लेशे वर्तमानस्य निद्रापञ्चकोदयसंभवः । नरकद्विकस्य तिर्यञ्चो मनुष्या वा उत्कृष्टस्थितिबन्धकाः । न च तेषां नरकद्विकोदयः संभवतीति । शेषकर्मणां तु देवा नारका वा यथायोगमुत्कृष्टस्थितिबन्धकाः । न च तेषु तेषामुदयो घटते ॥ १७ ॥

संकमओ दीहाणं, सहालिगाए उ आगमो संतो(तं)। समऊणमणुदयाणं, उभयासिं जट्ठिई तुल्ला॥१८॥

संकमओ त्ति—यासां प्रकृतीनां संक्रमत उत्कृष्टं स्थितिसत्कर्म प्राप्यते, न बन्धतः, उदयोऽपि च विद्यते तासां संक्रमतो दीर्घाणां संक्रमवशलब्धोत्कृष्टस्थितिकानां य आगमः संक्रमेण आवलिकाद्विकहीनोत्कृष्टस्थितिसमागमः स आवलिकया उदयावलिकया सह उत्कृष्टं स्थितिसत्कर्म । एतदुक्तं भवति—सातं वेदयमानः कश्चिदसातमुत्कृष्टस्थितिकं बध्नाति । तच्च बद्ध्वा सातं बद्धुं लग्नः । असातवेदनीयं च बन्धावलिकातीतं सत् आवलिकात उपरितनं सकलमपि आवलिकाद्विकहीनं त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीप्रमाणं स्थितिसत्कर्म तस्मिन् सातवेदनीये वेद्यमाने बध्यमाने च उदयावलिकाया उपरिष्टात् संक्रममिति । ततस्तया उदयावलि-

---

गाथार्थ—संकमओ दीहाणं=संक्रमथी दीर्घस्थितिवाळी प्रकृतिओनो, सहालि०संतो=आवलिका सहित आगम ते उ०स्थितिसत्ता, सम०दयाणं=४ अनुदयवतीनी तेथी समयोन, उभया०तुल्ला=बंने प्रकारनी प्रकृतिओनी स्थितिसत्ता, यत्स्थिति तुल्य जाणवी. १८

कया सहितः संक्रमेणावलिकाद्विकहीनोत्कृष्टस्थितिसमागमः सातवेदनीयस्योत्कृष्टं स्थितिसत्कर्म । एवं नवनोकषायमनुजगति-प्रथमसंहननपञ्चकप्रथमसंस्थानपञ्चकप्रशस्तविहायोगतिस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्राणामष्टाविंशतिप्रकृतीनामावलिकाद्विकहीनः स्वस्वसजातीयोत्कृष्टस्थितिसमागमः उदयावलिकया सहित उत्कृष्टं स्थितिसत्कर्म भावनीयं । सम्यक्त्वस्य पुनरन्तर्मुहूर्तेन उत्कृष्टस्थितिसमागम उदयावलिकया सहित उत्कृष्टं स्थितिसत्कर्म । तथाहि–मिथ्यात्वस्योत्कृष्टां स्थितिं बद्ध्वा तत्रैव च मिथ्यात्वेऽन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा ततः सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते । तस्मिंश्च प्रतिपन्ने सति मिथ्यात्वस्योत्कृष्टां स्थिति–आवलिकात उपरितनीं स्थितिं–तथापि संख्ययाऽन्तर्मुहूर्तेनसप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणां सकलामपि सम्यक्त्वे उदयावलिकात उपरि संक्रमयति । ततोऽन्तर्मुहूर्तेन एवोत्कृष्टस्थितिसमागम उदयावलिकया सहितः सम्यक्त्वस्योत्कृष्टं स्थितिसत्कर्म ।

यासां पुनः प्रकृतीनां संक्रमत उत्कृष्टा स्थितिः प्राप्यते, न च संक्रमकाले उदयोऽस्ति, तासां संक्रमकालेऽनुदयानां तावदेव पूर्वोक्तं स्थितिसत्कर्म समयोनमवगन्तव्यं, आवलिकाद्विकहीनोत्कृष्टस्थितिसमागम आवलिकया सहितः समयोनस्तासामुत्कृष्टं स्थितिसत्कर्मेत्यर्थः । तथाहि–कश्चिन्मनुष्य उत्कृष्टसंक्लेशवशादुत्कृष्टां नरकगतिस्थितिं बद्ध्वा परिणामपरावर्तनेन देवगतिं बद्धुमारब्धवान् । तस्यां च देवगतौ बध्यमानायामावलिकाया उपरि नरकस्थितिं बन्धावलिकातीतां उदयावलिकाया उपरितनीं सकलामपि विंशतिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणां संक्रमयति । प्रथमा च स्थितिः समयमात्रा देवगतेः सत्का मनुजगतौ वेद्यमानायां स्तिबुकसंक्रमेण संक्रामति । ततस्तया समयमात्रया स्थित्या ऊन आवलिकायाऽभ्यधिक आवलिकाद्विकहीनोत्कृष्टस्थितिसमागमो देवगतेरुत्कृष्टं स्थितिसत्कर्म । एवं द्वित्रिचतुरिन्द्रियजात्याहारकसप्तकमनुजानुपूर्वीदेवानुपूर्वीसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणतीर्थकरा-

रूयानामपि षोडशप्रकृतीनां यथोक्तमानमुत्कृष्टं स्थितिसत्कर्म भावनीयं। सम्यङ्मिथ्यात्वस्य पुनरन्तर्मुहूर्तेन उत्कृष्टस्थितिसमागम आवलिकयाऽभ्यधिकसमयेन उत्कृष्टं स्थितिसत्कर्म वाच्यं। तच्च सम्यक्त्वोक्तभावनानुसारेण भावनीयं। 'उभयासिं जट्ठिई तुल्ल त्ति' उभयीषामुदयवतीनामनुदयवतीनां च प्रकृतीनां संक्रमोत्कृष्टस्थितीनां संक्रमकाले यत्स्थितिः सर्वा स्थितिस्तुल्या। यतोऽनुदयवतीनामपि तदानीं प्रथमस्थितिः स्तिबुकसंक्रमेणोदयवतीषु संक्रम्यमाणापि दलिकरहिता विद्यते एव। न हि कालः संक्रमयितुं शक्यते, किं तु तत्स्थं दलिकमेव। ततः प्रथमस्थितिगतदलिकसंक्रान्तावपि दलिकरहिता प्रथमा स्थितिः तदानीं विद्यत एवेति कृत्वा उभयीषामपि यत्स्थितिः तुल्या×। यश्च यासां प्रकृतीनां उत्कृष्टां स्थितिं बध्नाति, यश्च यामुत्कृष्टां स्थितिं संक्रमयति, स तासामुत्कृष्टस्थितिसत्कर्मस्वामी ॥ १८ ॥

तदेवमुक्तमुत्कृष्टस्थितिसत्कर्मस्वामित्वं, संप्रति जघन्यस्थितिसत्कर्मस्वामित्वमाह—

संजलणातिगे सत्तसु य, नोकसाएसु संकमजहन्नो। सेसाण ठिई एसा दुसमयकाला अणुदयाणं॥ १९॥

×(य०उ० ८) यतोऽनुदयवतीनामपि प्रथमा स्थितिः स्तिबुकसङ्क्रमेणोदयवतीषु सङ्क्रम्यमाणाऽपि दलिकरहिता तदानीं विद्यत एव, न हि कालः सङ्क्रमयितुं शक्यते, किं तु दलिकमेव, ततः प्रथमस्थितिगतदलिकसङ्क्रान्तावपि दलिकरहितप्रथमस्थितेर्विद्यमानत्वानपायादुभयीषामपि यत्स्थितेस्तुल्यतेति सङ्क्रमकृतपरस्वरूपनिरूपिततया प्रथमस्थितेः स्वस्थितिबहिर्भाव एव युक्त इति चेन्न तथाप्येकस्थितिसंततयुपादानत्वेन प्रथमस्थितेः स्वस्थित्यन्तर्भावाविरोधादिति युक्तं पश्यामः।

गाथार्थ—संजलणतिगे=संज्व०त्रिक, सत्त०कसाएसु=ने ७नोकषायनी ज०स्थितिसत्ता, संकमजहन्नो=ज०स्थितिसंक्रम प्रमाण छे.

संजलणतिगे त्ति–संज्वलनत्रिकस्य क्रोधमानमायारूपस्य सप्तानां च नोकषायाणां पुरुषवेदहास्यादिषट्करूपाणां जघन्यस्थितिसत्कर्म जघन्यस्थितिसंक्रमो वेदितव्यः । एता हि प्रकृतयो बन्धे उदये च व्यवच्छिन्ने सति अन्यत्र संक्रमेण क्षयं नीयन्ते, तेन कारणेन एतासां य एव चरमसंक्रमः स एव जघन्यं स्थितिसत्कर्म । उक्तं च–"हासाइपुरिसकोहादि तिन्नि संजलण जेण बंधुदये । वोच्छिन्ने संकमइ तेण इहं संकमो चरिमो ॥ १ ॥" जघन्यं स्थितिसत्कर्मेति संबन्धः । शेषाणां पुनरुदयवतीनां ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयवेदकसम्यक्त्वसंज्वलनलोभायुश्चतुष्टयनपुंसकवेदस्त्रीवेदसातासातवेदनीयोच्चैर्गोत्रमनुजगतिपञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरपर्याप्तसुभगादेययशःकीर्तितीर्थकरान्तरायपञ्चकरूपाणां प्रकृतीनां चतुस्त्रिंशत्संख्यानां स्वस्वक्षयपर्यवसानसमये या एका समयमात्रा स्थितिः सा जघन्यं स्थितिसत्कर्म । अनुदयवतीनां पुनः प्रकृतीनां स्वस्वक्षयोपान्त्यसमये या स्वरूपापेक्षया समयमात्रा स्थितिरन्यथा तु द्विसमयमात्रकाला, सा जघन्यं स्थितिसत्कर्म । अनुदयवतीनां हि चरमसमये स्तिबुकसंक्रमेणोदयवतीषु प्रकृतिषु मध्ये प्रक्षिपति । तत्स्वरूपेण चानुभवति । तेन चरमसमये तासां दलिकं स्वरूपेण न प्राप्यते, किं तु पररूपेण । अत उक्तं 'उपान्त्यसमये स्वरूपापेक्षया समयमात्रा अन्यथा तु द्विसमयमात्रकालेति । संप्रति सामान्येन सर्वकर्मणां जघन्यस्थितिसत्कर्मस्वामी प्रतिपाद्यते—तत्रानन्तानुबन्धिनां दर्शनमोहनीयत्रिकस्य चाविरतादिरप्रमत्तपर्यन्तो यथासंभवं जघन्यस्थितिसत्कर्मस्वामी । नारकतिर्यग्देवायुषां नारकतिर्यग्देवाः स्वस्वभवचरमसमये वर्तमानाः । कषायाष्टकस्त्यानर्द्धित्रिकनामत्रयोदशकनवनोकषायसंज्वलनत्रिकरूपाणां षट्त्रिंशत्प्रकृतीनामनिवृत्तिबादरसंपरायः । संज्वलनलोभस्य सूक्ष्मसंपरायः । ज्ञानावरणपञ्चकदर्श-

सेसाण०एगा=शेष उदयवतीनी १ समय प्रमाण, दुसमय०दुयाणं=अनुदयवतीनी २ समय प्रमाण ज० स्थितिसत्ता छे १९

नावरणषट्कान्तरायपञ्चकानां क्षीणकषायः, शेषाणां पञ्चनवतिसंख्यानामयोगिकेवली जघन्यस्थितिसत्कर्मस्वामी ॥१९॥

तदेवमुक्तं जघन्यस्थितिसत्कर्मस्वामित्वं (३)। संप्रति स्थितिभेदप्ररूपणार्थमाह—

ठिइसंतट्ठाणाइं, नियगुक्कस्सा हि थावरजहन्नं। नेरंतरेण हेट्ठा, खवणाइसु संतराइं पि ॥ २० ॥

ठिइसंतट्ठाणाइं त्ति—सर्वेषां कर्मणां स्वकीयात् स्वकीयात् उत्कृष्टात् स्थितिस्थानात् समयमात्रादारभ्याधस्तात्तावदवतरीतव्यं यावत् स्थावरजघन्यं एकेन्द्रियप्रायोग्यं जघन्यं स्थितिसत्कर्म। एतावता(ति) स्थितिकंडके यावन्तः समयास्तावन्ति स्थितिस्थानानि नानाजीवापेक्षया निरन्तरेण नैरन्तर्येण लभ्यन्ते। तद्यथा—उत्कृष्टा स्थितिरेकं स्थितिस्थानं। समयोना उत्कृष्टा स्थितिर्द्वितीयं स्थितिस्थानं। द्विसमयोना उत्कृष्टा स्थितिस्तृतीयं स्थितिस्थानं। एवं तावद्वाच्यं यावदेकेन्द्रियप्रायोग्यं जघन्यं स्थितिसत्कर्म। एकेन्द्रियप्रायोग्याच्च जघन्यस्थितिसत्कर्मणोऽधस्तात् क्षपणादिषु क्षपणे उद्वलने च सान्तराणि स्थितिस्थानानि लभ्यन्ते। अपिशब्दान्निरन्तराणि च। कथमिति चेदुच्यते—एकेन्द्रियप्रायोग्यजघन्यस्थितिसत्कर्मण उपरितनाग्रिमभागात्पल्योपमासंख्येयभागमात्रं स्थितिखंडं खंडयितुमारभते। खंडनारंभप्रथमसमयादारभ्य च समये समयेऽधस्तादुदयवतीनामनुभवेनानुदयवतीनां स्तिबुकसंक्रमेण समयमात्रा समयमात्रा स्थितिः क्षीयते। ततः प्रतिसमयं स्थितिविशेषा लभ्यन्ते। तद्यथा—तत्स्थावरप्रायोग्यं जघन्यं स्थितिसत्कर्म प्रथमसमयेऽतिक्रान्ते समयहीनं। द्वितीये समयेऽतिक्रान्ते द्विसमयहीनं।

गाथार्थ—नियगुक्कसा=पोताना उत्कृष्ट, ठिइ०ठाणाइं=स्थितिसत्तास्थानथी, हेट्ठा=नीचे, हि थावरजहन्नं=स्थावरयोग्य ज० स्थितिस्थान सुधी, निरंतरेण=निरंतरपणे स्थितिस्थानो छे. खवणा०पि=क्षपकने विषे सांतर पण होय छे. २०

तृतीये समयेऽतिक्रान्ते त्रिसमयहीनमित्यादि । अन्तर्मुहूर्तेन च कालेन तत् स्थितिखंडं खंडयति । तत एतावती स्थितिर्युगपदेव त्रुटितेति कृत्वाऽन्तर्मुहूर्तादूर्ध्वं निरन्तराणि स्थितिस्थानानि न लभ्यन्ते । ततः पुनरपि द्वितीयं पल्योपमासंख्येयभागमात्रमन्तर्मुहूर्तमात्रेण खंडयति । तत्रापि प्रतिसमयमधः समयमात्रसमयमात्रस्थितिक्षयापेक्षया निरन्तराणि स्थितिस्थानानि पूर्वप्रकारेण लभ्यन्ते । द्वितीये च स्थितिखंडे खंडिते सति पुनरपि पल्योपमासंख्येयभागमात्रा स्थितिर्युगपदेव त्रुटितेति न भूयोऽप्यन्तर्मुहूर्तादूर्ध्वं निरन्तराणि स्थितिस्थानानि लभ्यन्ते । एवं तावद्वाच्यं यावदावलिका× शेषा भवति । सापि चावलिका उदयवतीनामनुभवेनानुदयवतीनां स्तिबुकसंक्रमेण समये समये क्षयमुपयाति तावद्यावदेका स्थितिः । ततोऽमूनि आवलिकामात्रसमयप्रमाणानि स्थितिस्थानानि निरन्तराणि लभ्यन्ते ॥ २० ॥

तदेवं स्थितिस्थानभेदोपदर्शनमपि कृतं । संप्रत्यनुभागसत्कर्मप्ररूपणार्थमाह—

संकमसममणुभागे, नवरि जहन्नं तु देसघाईणं । छन्नोकसायवज्जाण(वज्जं) एगट्ठाणंमि देसहरं ॥२१॥
मणनाणे दुट्ठाणं, देसहरं सामिगोयसम्मत्ते । आवरणविग्घसोलसग–किट्टिवेएसु य सगंते ॥ २२ ॥

×(य०उ०९) एवं निरन्तरसान्तरस्थितिस्थानलाभक्रमस्तावद् भावनीयो यावदावलिका शेषा भवति ।

गाथार्थ—संकम०भागे=अनुभागसंक्रम तुल्य अनुभागसत्ता जाणवी, नवरि=विशेषमां, छन्नोक०वज्जाण=हास्यषट्क सिवायनी देसघाईणं=देशघातीनी, जहन्नं तु=ज०अनु०सत्ता, एग०देसहरं=एकस्थानिक ने देशघाती जाणवी. मण०दुट्ठाणं=मनःपर्यवनी द्विस्थानिक, देसहरं=ने देशघाती, सम्मत्ते=समकितमो०नी, आव०सोलसग=५ज्ञाना०, ६दर्श०, ५अन्तराय ए १६नी, किट्टिवेएसु य=किट्टि-

संक्रमसममित्यादि—अनुभागसंक्रमेण तुल्यमनुभागसत्कर्म वक्तव्यं । एतदुक्तं भवति—यथानुभागसंक्रमे स्थानप्रत्ययविपाकशुभाशुभत्वसाद्यनादित्वस्वामित्वानि प्राक् प्रतिपादितानि तथैवात्राप्यनुभागसत्कर्मणि वक्तव्यानि । नवरमयं विशेषो—यदुत देशघातिनीनां हास्यादिषट्कवर्जितानां मतिश्रुतावधिज्ञानावरणचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणसंज्वलनचतुष्टयवेदत्रिकान्तरायपञ्चकरूपाणामष्टादशप्रकृतीनां जघन्यानुभागसत्कर्मस्थानमधिकृत्य एकस्थानीयं, घातिसंज्ञामधिकृत्य देशहरं देशघाति वेदितव्यं । मनःपर्यायज्ञानावरणे पुनर्जघन्यमनुभागसत्कर्मस्थानमधिकृत्य द्विस्थानं, घातिसंज्ञामधिकृत्य देशहरं देशघाति। इहोत्कृष्टानुभागसत्कर्मस्वामिन उत्कृष्टानुभागसंक्रमस्वामिन एव वेदितव्याः । जघन्यानुभागसत्कर्मस्वामिनः पुनराह—'सामि गोयेत्यादि' सम्यक्त्वज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणषट्कान्तरायपञ्चकरूपप्रकृतिषोडशकविद्विरूपसंज्वलनलोभवेदत्रयाणां स्वस्वामित्वसमये वर्तमानो जघन्यानुभागसत्कर्मस्वामिनो वेदितव्याः ॥ २१–२२ ॥

अत्रैव विशेषमाह—

मइसुयचक्खुअचक्खूण, सुयसमत्तस्स जेट्ठलद्धिस्स । परमोहिस्सोहिदुगं, मणनाणं विउलनाणस्स॥२३॥

मइसुय त्ति—मतिज्ञानावरणश्रुतज्ञानावरणचक्षुर्दर्शनावरणाचक्षुर्दर्शनावरणानां श्रुतसमाप्तस्य सकलश्रुतपारगामिनश्चतुर्दश-

---

कृत सं०लोभ ने ३वेदनी ज०अनुभागसत्ताना, सामिगो=स्वामी, सगंते=स्व अन्त्य समये वर्तता जीवो जाणवा. २१–२२

गाथार्थ—मइ०अचक्खूण=मतिज्ञा०,श्रुतज्ञा०, चक्षुर्द०, अचक्षुर्द०नी ज०अनु०सत्ता, सुय०लद्धिस्स=उत्कृष्ट लब्धिवंत श्रुतसमाप्त(१४ पूर्वी) ने होय. पर०दुगं=अवधिद्विकावरणनी परमावधिवंतने, मण०नाणस्स=अने मनःपर्यवज्ञा०नी विपुलमतिने ज०अनु० सत्ता छे.२३

पूर्वधरस्येत्यर्थः, ज्येष्ठलब्धिकस्य उत्कृष्टायां श्रुतार्थलब्धौ वर्तमानस्य जघन्यमनुभागसत्कर्म । इदमत्र तात्पर्यम्–मतिज्ञानावरणादीनां चतसृणां प्रकृतीनामुत्कृष्टश्रुतार्थसंपन्नश्चतुर्दशपूर्वधरो जघन्यानुभागसत्कर्मस्वामी वेदितव्यः । तथा परमावधिज्ञानेनावधिद्विकमवधिज्ञानावरणावधिदर्शनावरणरूपं जघन्यानुभागसत्कर्म भवति । एतदुक्तं भवति–अवधिज्ञानावरणावधिदर्शनावरणयोर्जघन्यानुभागसत्कर्मस्वामी परमावधियुक्तो वेदितव्यः । तथा मनोज्ञानं मनःपर्यायज्ञानावरणं जघन्यानुभागसत्कर्म विपुलमनःपर्यायज्ञानिनोऽवगन्तव्यं । स्वामित्वभावनाऽवधिज्ञानावरणवत् । लब्धिसहितस्य हि प्रभूतोऽनुभागः प्रलयमुपयातीति परमोहिस्सेत्याद्युक्तं । शेषाणां तु प्रकृतीनां य एव जघन्यानुभागसंक्रमस्वामिनस्त एव जघन्यानुभागसत्कर्मणोऽपि द्रष्टव्याः२३

इदानीमनुभागसत्कर्मस्थानभेदप्ररूपणार्थमाह—

बंधहयहयहउप्प–त्तिगाणि कमसो असंखगुणियाणि। उदयोदीरणवज्जाणि, होंति अणुभागठाणाणि॥२४॥

बंधत्ति—इहानुभागस्थानानि त्रिधा, तद्यथा–बन्धोत्पत्तिकानि हतोत्पत्तिकानि हतहतोत्पत्तिकानि च । तत्र बन्धादुत्पत्तिर्येषां तानि बन्धोत्पत्तिकानि । तानि चासंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि, तद्धेतूनामसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात् । तथा उद्वर्तनापवर्तनाकरणवशतो वृद्धिहानिभ्यामन्यथाऽन्यथा यान्यनुभागस्थानानि वैचित्र्यभाञ्जि भवन्ति, तानि हतोत्पत्तिकान्युच्यन्ते । हतात् घातात् पूर्वावस्थाविनाशरूपादुत्पत्तिर्येषां तानि हतोत्पत्तिकानि तानि च पूर्वेभ्योऽसंख्येयगुणानि, एकैकस्मिन्

गाथार्थ—उदयो०वज्जाणि=उदय उदीरणाजन्य अनु०स्थानो वर्जीने, बंध०गाणि=बंधोत्पत्तिक, हतोत्पत्तिक अने हतहतोत्पत्तिक, अणु०ठाणाणि=अनुभागस्थानो, कमसो=अनुक्रमे, असंखगुणियाणि=असंख्यातगुणां होंति=होय छे. २४

बन्धोत्पत्तिके स्थाने नानाजीवापेक्षया उद्वर्तनापवर्तनाभ्यामसंख्येयभेदकरणात् । यानि पुनः स्थितिघातेन रसघातेन चान्यथाऽन्यथाभवनादनुभागस्थानानि जायन्ते तानि च हतहतोत्पत्तिकान्युच्यन्ते । हते उद्वर्तनापवर्तनाभ्यां घाते सति भूयोऽपि हतात् स्थितिघातेन रसघातेन वा घातादुत्पत्तिर्येषां तानि हतहतोत्पत्तिकानि । तानि चोद्वर्तनापवर्तनाजन्येभ्योऽसंख्येयगुणानि । संप्रत्यक्षरयोजना क्रियते--यानि उदयत उदीरणातश्च प्रतिसमयं क्षयसंभवात् अन्यथाऽन्यथानुभागस्थानानि जायन्ते, तानि वर्जयित्वा शेषाणि बन्धोत्पत्तिकादीनि अनुभागस्थानानि क्रमशोऽसंख्येयगुणानि वक्तव्यानि । उदयोदीरणाजन्यानि कस्माद्वर्ज्यन्त इति चेदुच्यते--यस्मादुदयोदीरणयोः प्रवर्तमानयोर्नियमात् बन्धोद्वर्तनापवर्तनास्थितिघातरसघातजन्यानामन्यतमान्यवश्यं संभवन्ति, तत उदयोदीरणाजन्यानि तत्रैवान्तः प्रविशन्तीति न पृथक् क्रियन्ते× ॥ २४ ॥

तदेवमुक्तमनुभागसत्कर्म । संप्रति प्रदेशसत्कर्म वक्तव्यं, तत्र चैतेऽर्थाधिकाराः, तद्यथा–भेदः (१) साद्यनादिप्ररूपणा (२) स्वामित्वं (३) चेति । तत्र भेदः प्राग्वत् (१)। संप्रति साद्यनादिप्ररूपणा कर्तव्या, सा च द्विधा—मूलप्रकृतिविषया उत्तरप्रकृतिविषया च । तत्र मूलप्रकृतिविषयां तां चिकीर्षुराह—

सत्तण्हं अजहण्णं, तिविहं सेसा दुहा पएसम्मि । मूलपगईसु आऊसु(स्स), साई अधुवा य सव्वेवि।२५।

×(य०उ०१०) तुल्यजातीयत्वेऽपि हेतुभेदात्तद्भेद आवश्यक इत्यपि न शङ्कनीयं, बन्धोत्पत्तिकाद्यन्तर्भूतत्वे सति तादृशभेदस्य स्थानभेदानौपधिकत्वेनादूषणत्वादिति दिक् ।

गाथार्थ—मूलपगईसु=मूलप्रकृतिमां पएसम्मि=प्रदेशसत्ताने विषे, सत्तण्हं=७ नी, अजहन्नं=अजघन्य प्रदेशसत्ता, तिविहं=

सत्तर्हंति–आयुर्वर्जानां सप्तानां मूलप्रकृतीनामजघन्यं प्रदेशसत्कर्म त्रिविधं त्रिप्रकारं, तद्यथा–अनादि ध्रुवमध्रुवं च । तत्र क्षपितकर्मांशस्य आयुर्वर्जानां सप्तानां कर्मणां स्वस्वक्षयावसरे चरमस्थितौ वर्तमानस्य जघन्यं प्रदेशसत्कर्म । तच्च साद्यध्रुवं । ततोऽन्यत्सर्वमजघन्यं, तच्चानादि, सदैव सद्भावात् । ध्रुवाध्रुवताऽभव्यभव्यापेक्षया । 'सेसा दुह त्ति' शेषा विकल्पा उत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्यरूपा द्विधा द्विप्रकाराः, तद्यथा—सादयोऽध्रुवाश्च । तत्रोत्कृष्टप्रदेशसत्कर्म गुणितकर्मांशस्य मिथ्यादृष्टेः सप्तमपृथिव्यां वर्तमानस्य प्राप्यते । शेषकालं तु तस्याप्यनुत्कृष्टं । ततो द्वे अपि साद्यध्रुवे । जघन्यं तु भावितमेव । तथा आयुषः सर्वेऽपि विकल्पा उत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याजघन्यरूपाः सादयोऽध्रुवाश्च, अध्रुवसत्कर्मत्वात् ॥ २५ ॥

संप्रत्युत्तरप्रकृतीरधिकृत्य साद्यनादिप्ररूपणां चिकीर्षुराह—

बायालाणुक्कस्सं, चउवीससया जहन्न चउतिविहं । होइह छण्ह चउध्धा, अजहन्नमभासियं दुविहं ॥२६॥

बायाल त्ति—सातवेदनीयसंज्वलनचतुष्टयपुरुषवेदपञ्चेन्द्रियजातितैजससप्तकप्रथमसंस्थानप्रथमसंहननशुभवर्णाद्येकादशकागुरुलघुपराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तिनिर्माणरूपाणां द्विचत्वारिंशत्प्रकृतीनामनुत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म चतुर्विधं । तद्यथा–साद्यनादि ध्रुवमध्रुवं च । तद्यथा—वज्रर्षभनाराचवर्जानां शेषाणामेकचत्वा-

३प्रकारे: सेसा दुहा=शेषनी २प्रकारे, आउसु=आयुष्यमां, सव्वेवि=सर्वे पण, साइ अधुवाय=सादि अध्रुव छे. २५

गाथार्थ—बायालाणुक्कस्सं=४२ नी अनुत्कृष्ट, चउ०जहन्नं=१२४ नी जघन्य, चउतिविहं=अनुक्रमे ४ अने ३ प्रकारे, छण्ह=६ प्रकृतिओनी, अजहन्नं=अजघन्य, चउद्धा=४ प्रकारे, अभासियं दुविहं=अने अनुक्तनी २ प्रकारे, होइह=होय छे. २६

रिंशत्प्रकृतीनां क्षपकश्रेण्यां स्वस्वबन्धान्तसमये गुणितकर्मांशस्योत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म भवति, तच्चैकसामयिकमिति कृत्वा साद्यध्रुवं । ततोऽन्यत्सर्वमनुत्कृष्टं । तदपि च द्वितीये समये भवत्सादि । तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादि, ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत् । वज्रर्षभनाराचसंहननस्य तु सप्तमपृथिव्यां सम्यग्दृष्टेर्नारकस्य मिथ्यात्वं गन्तुकामस्योत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म तच्च साद्यध्रुवं, ततोऽन्यदनुत्कृष्टं, तदपि च द्वितीये समये भवत् सादि । तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादि । ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत् । अनन्तानुबन्धियशःकीर्तिसंज्वलनलोभवर्जितानां चतुर्विंशत्यधिकशतसंख्यानां ध्रुवसत्कर्मप्रकृतीनामजघन्यं प्रदेशसत्कर्म त्रिविधं । तद्यथा—अनादि ध्रुवमध्रुवं च । तथाहि—एतासां क्षपितकर्मांशस्य स्वस्वक्षयचरमसमये जघन्यं प्रदेशसत्कर्म, तच्चैकसामायिकमिति कृत्वा साद्यध्रुवं च । ततोऽन्यदजघन्यं, तच्चानादि, सदैव सद्भावात् । ध्रुवाध्रुवता पूर्ववत् । 'चउतिविहंति' यथासंख्येन योजनीयं, द्विचत्वारिंशत्प्रकृतीनामनुत्कृष्टं चतुर्विधं, ध्रुवसत्कर्मणां चाजघन्यं त्रिविधमिति । तथाऽनन्तानुबन्धिचतुष्टयसंज्वलनलोभयशःकीर्तिरूपाणां षण्णां प्रकृतीनामजघन्यं प्रदेशसत्कर्म चतुर्विधं । तद्यथा—साद्यनादि ध्रुवमध्रुवं च । तथाहि—अनन्तानुबन्धिनामुद्वलके क्षपितकर्मांशे यदा शेषीभूता एका स्थितिर्भवति तदा जघन्यं प्रदेशसत्कर्म । तच्चैकसामयिकमिति कृत्वा साद्यध्रुवं च । ततोऽन्यत्सर्वमजघन्यं । तच्चोद्वलितानां मिथ्यात्वप्रत्ययेन भूयोऽपि बध्यमानानां सादि । तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादि । ध्रुवाध्रुवे पूर्ववत् । यशःकीर्तिसंज्वलनलोभयोः पुनः क्षपितकर्मांशस्य क्षपणायोद्यतस्य यथाप्रवृत्तिकरणस्यान्तिमसमये जघन्यं प्रदेशसत्कर्म । तच्चैकसामयिकमिति कृत्वा साद्यध्रुवं च । ततोऽन्यत्सर्वमजघन्यं । तदपि चानिवृत्तिकरणप्रथमसमये गुणसंक्रमेण प्रभूतस्य दलिकस्य प्राप्यमाणत्वात् अजघन्यं भवत् सादि, तत्स्थानमप्राप्तस्य पुनरनादि । ध्रुवाध्रुवता पूर्ववत् । 'अभासियं दुविहं ति'

अभाषितं अनुक्तं सर्वासां प्रकृतीनां द्विविधं द्विप्रकारमवगन्तव्यं। तद्यथा—साद्यध्रुवं च। तत्र द्विचत्वारिंशत्प्रकृतीनामभाषितं जघन्यमजघन्यमुत्कृष्टं च। तत्रोत्कृष्टं द्विप्रकारं भावितमेव। जघन्याजघन्यता च वक्ष्यमाणं स्वामित्वमवलोक्य स्वयमेव भावनीया। ध्रुवसत्कर्मणां च चतुर्विंशतिशतसंख्यानामभाषितमुत्कृष्टमनुत्कृष्टं जघन्यं च। तत्र जघन्यं भावितमेव। उत्कृष्टानुत्कृष्टे मिथ्यादृष्टौ गुणितकर्मांशे प्राप्येते। ततो द्वे अपि साद्यध्रुवे। एवमनन्तानुबन्धिसंज्वलनलोभयशःकीर्तीनामपि उत्कृष्टानुत्कृष्टे भावनीये। जघन्यं तु भावितमेव। शेषाणां चाध्रुवसत्कर्मणां चत्वारोऽपि विकल्पाः साद्यध्रुवा अध्रुवसत्कर्मत्वादवसेयाः ॥२६॥

तदेवं कृता साद्यनादिप्ररूपणा (२)। संप्रति स्वामित्वं वक्तव्यं। तच्च द्विधा—उत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मस्वामित्वं जघन्यप्रदेशसत्कर्मस्वामित्वं च। तत्रोत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मस्वामित्वमाह—

संपुन्नगुणियकम्मो, पएसउक्कस्ससंतसामी उ। तस्सेव उ उप्पिवि–णिग्गयस्स कासिंचि वण्णेऽहं ॥२७॥

संपुन्न त्ति—उत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मस्वामी संपूर्णगुणितकर्मांशः सप्तमपृथिव्यां नारकश्चरमसमये वर्तमानः प्रायः सर्वासामपि प्रकृतीनामवगन्तव्यः। कासांचित्पुनः प्रकृतीनां तस्यैव संपूर्णगुणितकर्मांशस्य सप्तमपृथिव्या विनिर्गतस्योपरिष्टात् विशेषोऽस्ति। ततस्तमहं वर्णयामि वर्णयिष्यामि। वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वेति (श्रीम–३–४–८४) भविष्यति वर्तमाना ॥२७॥

प्रतिज्ञातमेवाह—

गाथार्थ—पएस०सामीउ=उत्कृष्ट प्रदेशसत्तानो स्वामी, संपु०कम्मो=संपूर्ण गुणितकर्मांश सप्तम पृथ्वीनो नारक जाणवो. तस्सेव०गयस्स=त्यांथी नीकळेला तेनेज, कासिंचि=केटलीक प्रकृतिनी विशेषता, वण्णेऽहं=हुं वर्णवु छुं २७

मिच्छत्ते मीसम्मि य, संपक्खित्तम्मि मीससुद्धाणं । वरिसवरस्स उ ईसाणगस्स चरमम्मि समयम्मि ॥२८॥

मिच्छत्ते त्ति–स प्रागभिहितस्वरूपो गुणितकर्मांशः सप्तमपृथिव्या उद्वृत्य तिर्यक्षूत्पन्नः, तत्राप्यन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा मनुष्येषु मध्ये समुत्पन्नः, तत्र सम्यक्त्वं प्राप्य सप्तकक्षपणाय शीघ्रमभ्युद्यतः । ततो यस्मिन् समये मिथ्यात्वं सम्यङ्मिथ्यात्वे सर्वसक्रमेण प्रक्षिपति, तस्मिन्समये सम्यङ्मिथ्यात्वस्योत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म । तदपि च सम्यङ्मिथ्यात्वं यस्मिन् समये सर्वसंक्रमेण सम्यक्त्वे प्रक्षिपति, तस्मिन् समये सम्यक्त्वस्योत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म । अक्षरयोजना त्वियम्––मिथ्यात्वे मिश्रे च यथासंख्यं मिश्रे सम्यक्त्वे च प्रक्षिप्ते सति तयोर्मिश्रशुद्धयोः मिश्रसम्यक्त्वयोरुत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म भवति । तथा स एव गुणितकर्मांशो नारकस्तिर्यग्भूत्वा कश्चिदीशानदेवो जातः । सोऽपि च तत्रातिसंक्लिष्टो भूत्वा भूयो भूयो नपुंसकवेदं बध्नाति । तदानीं च तस्य स्वभवान्तसमये वर्तमानस्य वर्षवरस्य नपुंसकवेदस्योत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म ॥२८॥

ईसाणे पूरित्ता, नपुंसगं तो असंखवासा(सी)सु । पल्लासंखेयभागेण, पूरिए इत्थिवेयस्स ॥ २९ ।

गाथार्थ––मिच्छत्ते०संपक्खित्तम्मि=मिथ्यात्वने मिश्रमां अने मिश्रने सम्यक्त्वमां सर्वसंक्रमवडे प्रक्षेपे छते, मीससुद्धाणं=मिश्रमो० ने समकितमो०नी उ०प्र०सत्ता होय छे. वरिसवरस्सउ=नपुंसकवेदनी, ईसाण०समयम्मि=ईसाण देवलोकमां गएलाने चरम समये उ०प्र०सत्ता होय छे. २८ । ईसाणे=ईशान देवलोकमां, नपुंसगं=नपुंसकवेदने, पूरित्ता=पूरीने, तो=त्यांथी संख्यातवर्षायुष्क भवमां उपजी, असंखवासासु=असंख्य वर्षायुष्क भवमां उपजी, पल्ला०भागेण=पल्योपमना संख्यातमा भाग सुधी, पूरिए=स्त्रीवेद पूरे छते, इत्थिवेयस्स=स्त्रीवेदनी उ०प्र०सत्ता थाय छे. २९

ईसाणे त्ति–ईशानदेवलोके उक्तप्रकारेण नपुंसकवेदमापूर्य नपुंसकवेदस्योत्कृष्टं प्रदेशसंचयं कृत्वा ततः संख्येयवर्षायुष्केषु मध्ये समुत्पद्य पुनरसंख्येयवर्षायुष्केषु मध्ये समुत्पन्नः । तत्र च तेन संक्लिष्टेन भूत्वा पल्योपमासंख्येयभागमात्रेण कालेन पूरिते स्त्रीवेदे बन्धेन नपुंसकवेददलिकसंक्रमेण च प्रभूतमापूरिते स्त्रीवेदे सति तदानीं तस्य स्त्रीवेदस्योत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म भवति ॥२९॥

पुरिसस्स पुरिस–संकमपएसउक्कस्स सामिगस्सेव । इत्थी जं पुण समयं, संपक्खित्ता हवइ ताहे ॥३०॥

पुरिसस्स त्ति––पुरुषस्य पुरुषवेदस्योत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म उत्कृष्टपुरुषवेदसंक्रमस्वामिन एव वेदितव्यं । एतदुक्तं भवति––य एवोत्कृष्टपुरुषवेदसंक्रमस्वामी स एवोत्कृष्टपुरुषवेदप्रदेशसत्कर्मस्वाम्यपि वेदितव्यः । नवरं यं समयं यस्मिन् समये स्त्रीवेदं पुरुषवेदे संप्रक्षेप्ता भवति संक्रमयति 'ताहे' तदानीं पुरूषवेदस्योत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मस्वामी× ॥३०॥

तस्सेव उ संजलणा, पुरिसाइकमेण सव्वसंछोभे । चउरुवसामित्तु खिप्पं, रागंते सायउच्चजसा ॥३१॥

×(य०उ०११) गुणितकर्मांशः क्षपकः पुरुषवेदे स्त्रीवेदस्य सवसङ्क्रमसमये तदुत्कृष्टप्रदेशसङ्क्रमस्वामीति निर्गलितोऽर्थः । उक्तं च पञ्चसंग्रहेऽपि—"जो सव्वसंकमेणं इत्थिं पुरिसम्मि छुहइ सो सामी" इति ।

गाथार्थः—पुरिस०सामिगस्सेव=पुरुषवेदनो उत्कृष्ट प्रदेश संक्रम स्वामी, पुरिसस्स=पुरुषवेदनो उ०प्रदेशसत्तानो स्वामी, जाणवो. पुण=वळी, जं समयं=जे समये, इत्थी=स्त्रीवेदनो, संपक्खित्ता=प्रक्षेप करे, ताहे हवइ=त्यारे होय. ३० । पुरिसाइ=पुरुष वेदादिकनो, कमेण=क्रमे, सव्वसंछोभे=सर्वसंक्रम थतां, तस्सेव उ संजलणा=तेनेज संज्वलन चतुष्कनी उ०प्रदेश सत्ता, चउरुवसमित्तु=४ वार मोहनीय उपशमावी, खिप्पं=शीघ्र क्षपणावंत, रागंते=सूक्ष्मसंपरायना अन्ते, सायउच्चजसा=शातावेदनीय, उच्चगोत्र

तस्सेव त्ति—य एव पुरुषवेदोत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मस्वामी तस्यैव संज्वलनाश्चत्वारः क्रोधादयः क्रमेण पुरुषवेदादिसत्कदलिकसर्वसंछोभे उत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मणो भवन्ति । इयमत्र भावना—य एव पुरुषवेदोत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मस्वामी यदा पुरुषवेदं सर्वसंक्रमेण संज्वलनक्रोधे संक्रमयति तदा संज्वलनक्रोधोत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मस्वामी । स एव यदा संज्वलनक्रोधं सर्वसंक्रमेण माने संक्रमयति तदा संज्वलनमानोत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मस्वामी । स एव संज्वलनमानं सर्वसंक्रमेण संज्वलनमायायां संक्रमयति तदा संज्वलनमायोत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मस्वामी । स एव यदा संज्वलनमायां सर्वसंक्रमेण संज्वलनलोभे संक्रमयति तदा संज्वलनलोभोत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मस्वामी । तथा चतुरो वारान् मोहनीयमुपशमय्य गुणितकर्मांशः शीघ्रं क्षपणायोत्थितस्तस्य सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानकचरमसमये वर्तमानस्य सातवेदनीयोच्चैर्गोत्रयशःकीर्तीनामुत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म । यस्मादेतासु प्रकृतिषु श्रेण्यामारूढः सन् गुणसंक्रमेण प्रभूतान्यशुभप्रकृतिदलिकानि संक्रमयति । ततः सूक्ष्मसंपरायचरमसमये एतासामुत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म प्राप्यते । उक्तं च—"चउरुवसामिय मोहं जसुच्चसायाण सुहुमखवगंते । जं असुभपगइदलियाण संकमो होइ एयासु" ॥३१॥

देवनिरियाउगाणं, जोगुक्कस्सेहिं जेट्ठगद्धाए । बद्धाणि ताव जावं, पढमे समए उदिन्नाणि ॥ ३२ ॥

देवनिरियाउगाणं ति—देवनारकायुषोरुत्कृष्टैर्योगैरुत्कृष्टया च बन्धाद्धया द्वयोः (बद्धयोः) सतोस्तावदुत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म प्राप्यते, यावत्प्रथमे समये उदीर्णे उदयप्राप्ते भवतः । किमुक्तं भवति—बन्धादारभ्योदयप्रथमसमयं यावद्देवनारकायुषोरुक्तप्रकारेण

अने यशनामनो उ०प्रदेश सत्तावंत होय. ३१। जोगुक्कसेहिं=उत्कृष्ट योगवडे, जेट्ठगद्धाए=अने उत्कृष्ट बंद्धाद्धावडे, बद्धाणि=बंधाएल, देवा० उगाणं=देवायु अने नरकायुनी, ताव=त्यां सुधी उत्कृष्ट सत्ता, जावं=ज्यां सुधी, पढमे०उदिन्नाणि=उदयना प्रथम समयने न पामे.३२

(बद्धयोः) द्वयोरुत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म भवति ॥३२॥

सेसाउगाणि नियगेसु, चेव आगम्म पुव्वकोडीए । सायबहुलस्स अचिरा, बंधंते जाव नोवट्टे(ट्टे) ॥३३॥

सेसाउगाणि त्ति—शेषायुषी तिर्यङ्मनुष्यायुषी । 'पुव्वकोडीए त्ति' पूर्वकोट्योपलक्षिते पूर्वकोटिप्रमाणे । उत्कृष्टया बन्धाद्धया उत्कृष्टैर्योगैर्बद्धे । बध्ध्वा च निजकेषु भवेषु निजनिजभवे समागत्य । सातबहुलः सन् ते आयुषी यथायोगमनुभवति । सुखितस्य हि न भूयांस आयुःपुद्गलाः परिसटन्तीति कृत्वा सातग्रहणं कृतं । ततोऽचिरात् बन्धान्ते इति उत्पत्तिसमयादूर्ध्वमन्तर्मुहूर्तमात्रमेव स्थित्वा मर्तुकामो जातः सन् उत्कृष्टया बन्धाद्धया उत्कृष्टैश्च योगैरन्यत् पारभविकं समानजातीयं मनुष्यो मनुष्यायुः तिर्यङ् च तिर्यगायुर्बध्नाति । ततो बन्धान्तसमये यावन्नाद्याप्यपवर्तयति तावत्तस्य सातबहुलस्य मनुष्यस्स सतो मनुष्यायुषः तिरश्चः (च) सतस्तिर्यगायुष उत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म भवति। यतस्तस्य तदानीं स्वभवायुः किञ्चिदूनं परभवायुश्च समानजातीयं परिपूर्णदलिकमस्तीति कृत्वा, बन्धानन्तरं चायुर्वेद्यमानं द्वितीये समयेऽपवर्तयिष्यति, तत उक्तं बन्धान्ते इति ॥३३॥

पूरित्तु पुव्वकोडी–पुहुत्त नारगदुगस्स बंधंते । एवं पल्लातिगंते, वेउव्विय सेसनवगम्मि ॥ ३४ ।

गाथार्थः—सेसाउगाणि=शेष आयुष्यनो, पुव्वकोडीए=पूर्व क्रोड प्रमाण बांधीने, आगम्म=त्यां उपजी, सायबहुलस्स=अधिक शातावेदनीय अनुभवतो, अचिरा=थोडा वखतमां मरण सन्मुख थइ, नियगेसु=समान आयुष्यना, बंधंते=बन्धना अन्ते, जाव नो वट्टे=अपवर्ते नहि त्यां सुधी स्वायुनी उ०प्रदेशसत्ता. ३३ । पुव्वकोडीपुहत्त=पूर्वक्रोड पृथक्त्व सुधी, पूरित्तु=नरकद्विकने बंधवडे पूरीने, नारगदुगस्स=नरकद्विकनी, बंधंते=बन्धना अन्ते उ०प्रदेशसत्ता होय छे. वेउव्वि०नवगम्मि=शेष वैक्रियनवकनी, एवं=ए

पूरित्तु त्ति—पूर्वकोटिपृथक्त्वं पूर्वकोटिसप्तकं यावत् संक्लिष्टाध्यवसायवशेन नरकद्विकं नरकगतिनरकानुपूर्वीलक्षणं भूयो भूय आपूर्य बन्धेन निचितं कृत्वा नरकाभिमुखो बन्धान्तसमये नरकद्विकस्योत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मस्वामी। तथा एवमनेनैव प्रकारेण पूर्वकोटिपृथक्त्वं यावत् (अभोगभूमिषु) भोगभूमिषु मध्ये पल्योपमत्रयं च यावद्विशुद्धाध्यवसायवशेन वैक्रियैकादशकात् नरकद्विकेऽपनीते शेषं यद्वैक्रियनवकं देवद्विकं वैक्रियसप्तकं चेत्यर्थः, तत् बन्धेनापूर्य देवत्वाभिमुखस्तासां देवद्विकवैक्रियसप्तकरूपाणां नवप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मस्वामी ॥३४॥

तमतमगो सव्वलहुं, सम्मत्तं लभिय सव्वचिरमद्धं। पूरित्ता मणुयदुगं, सवज्जरिसहं सबंधंते ॥ ३५ ॥

तमतमगो त्ति—तमस्तमगः सप्तमपृथ्वीनारकः। सर्वलघु अतिक्षिप्रं जन्मानन्तरमन्तर्मुहूर्ते गते सतीत्यर्थः। सम्यक्त्वं लब्ध्वा। 'सव्वचिरमद्धं ति' अतिदीर्घं कालं यावत् सम्यक्त्वमनुपालयन्। मनुष्यद्विकं वज्रर्षभनाराचसंहननं च बन्धेनापूर्य। यतोऽनन्तरसमये मिथ्यात्वं यास्यति तस्मिन् समये बन्धाद्धाचरमभूते तयोर्मनुष्यद्विकवज्रर्षभनाराचसंहननयोरुत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म भवति॥३५॥

सम्मद्दिट्ठिधुवाणं, बत्तीसुदहीसयं चउक्खुत्तो। उवसामइत्तु मोहं, खवेंतगे नियगबंधंते ॥ ३६ ॥

प्रमाणे पूर्वक्रोड पृथक्त्व, पल्लतिगंते=अने ३पल्योपम सुधी पूराए छते अन्त्य समये उ०प्रदेशसत्ता होय छे. ३४ तमतमगो=तमःतमा नारकी, सव्वलहुं=अतिशीघ्र, सम्मत्तं लभिय=समकित पामी, सव्व०मद्धं=चिरकाल सम्यक्त्वने, पुरित्ता=पालीने, मणु०रिसहं=वज्रर्षभनाराच सहित मनुष्यद्विकनी उ०प्र०सत्तानो स्वामी, सबधते=स्वबधना अंत समये होय छे ३५। सम्म०धुवाणं=समकितीने ध्रुवबन्धि १२प्रकृतिओने, बत्ती०सयं=१३२ सागरोपम सुधी बांधी, मोहं=माहनीयने, चउक्खुत्तो=४वार, उवसामइत्तु=उप-

सम्मद्दिट्ठि त्ति--याः प्रकृतयः सम्यग्दृष्टीनां बन्धमाश्रित्य ध्रुवाः पञ्चेन्द्रियजातिसमचतुरस्रसंस्थानपराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकसुस्वरसुभगादेयरूपा द्वादश तासां द्वात्रिंशदधिकसागरोपमाणां शतं यावद्बन्धेनोपचितानां चतुःकृत्वश्चतुरो वारान् मोहनीयं चोपशमय्य । मोहनीयं हि उपशमयन् प्रभूतानि दलिकानि गुणसंक्रमेण संक्रमयतीति कृत्वा चतुःकृत्वो मोहोपशमग्रहणं । ततः क्षपणायोद्यतस्य निजबन्धव्यवच्छेदकाले उत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म भवति ॥३६॥

धुवबंधीण सुभाणं, सुभथिराणं च नवरि सिग्घयरं। तित्थगराहारगतणू, तेत्तीसुदही चिरचिया य ॥३७॥

धुवबंधीण त्ति--याः शुभध्रुवबन्धिन्यः प्रकृतयस्तैजससप्तकशुभवर्णाद्येकादशकागुरुलघुनिर्माणरूपा विंशतिप्रकृतयः तासां शुभस्थिरयोश्च पूर्वोक्तेन प्रकारेणोत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म भावनीयं । नवरं चतुःकृत्वो मोहनीयोपशमनानन्तरं शीघ्रतरं क्षपणायोद्यतस्येति वक्तव्यं । शेषं तथैव । तथा तीर्थकरनाम्नो गुणितकर्मांशेन देशोनपूर्वकोटिद्विकाधिकानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि यावद् बन्धेन पूरितस्य स्वबन्धान्तसमये उत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म । आहारकतनोराहारकसप्तकस्य तु चिरचितस्य देशोनपूर्वकोटिं यावत् भूयो भूयो बन्धेनोपचितस्य स्वबन्धव्यवच्छेदसमये उत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म ॥३७॥

शमावी, खवेंतगे=खपावनाने तत्पर जीवने, नियगबन्धन्ते=स्वस्व बन्धना अन्ते उ०प्रदेशसत्ता जाणवी. ३६ धुव०सुभाणं=शुभ ध्रुवबन्धि २०प्रकृतिओनी, सुभथिराणं च=शुभ अने स्थिरनी ए प्रमाणे, नवरि=विशेषमां, सिग्घयरं=अतिशीघ्रपणे खपावनाने सन्मुख थएलाने होय, तित्थ०तणू=जिननाम अने आहारक सप्तकनी, तेत्तीसुदही=३३ सागरोपम सुधी, चिरचियाय=बंध बडे पूरे छते बन्धान्त्य समये उ०प्रदेशसत्ता होय ३७

तुल्ला नपुंसवेए–णेगिंदिए य थावरायवुज्जोया।विगलसुहुमत्तिया।विय, नरतिरियचिरज्जि (च्चि)या होंति ॥३८॥

तुल्ल त्ति–नपुंसकवेदेन तुल्या एकेन्द्रियजातिस्थावरातपोद्योता वेदितव्याः । यथा नपुंसकवेदस्य ईशानदेवभवचरमसमये उत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्मोक्तं तथा एतेषामपि द्रष्टव्यमित्यर्थः । विकलत्रिकं द्वित्रिचतुरिन्द्रयजातिरूपं, सूक्ष्मत्रिकं सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणरूपं यदा पूर्वकोटिपृथक्त्वं यावत् तिर्यङ्मनुष्यभवैरर्जितं भवति तदा स्वबन्धान्तसमये तेषां तिर्यङ्मनुष्याणां तत् विकलत्रिकादिकमुत्कृष्टप्रदेशसत्कर्म भवति ॥३८॥

तदेवमुक्तमुत्कृष्टप्रदेशसत्कर्मस्वामित्वं । संप्रति जघन्यप्रदेशसत्कर्मस्वामित्वमाह—

खवियंसयम्मि पगयं, जहन्नगे नियगसंतकम्मंते । खणसंजोइयसंजो–यणाण चिरसम्मकालंते ॥ ३९ ॥

खविय त्ति—जघन्ये जघन्यप्रदेशसत्कर्मस्वामित्वे प्रकृतमधिकारः क्षपितकर्मांशेन । सूत्रे चात्र सप्तमी तृतीयार्थे वेदितव्या । ' नियगसंतकम्मंते त्ति ' स्वस्वसत्ताचरमसमये । एवं तावत्सर्वकर्मणां सामान्येनोक्तं । संप्रति पुनर्येषां कर्मणां विशेषोऽस्ति तानि पृथगेवाह–'खणेत्यादि' इह क्षपितकर्मांशेन सम्यग्दृष्टिना सता अनन्तानुबन्धिन उद्वलिताः । ततः पुनरपि मिथ्यात्वं

गाथार्थ—एगिंदिय०ज्जोया=एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप अने उद्योतनी उ०प्रदेशसत्ता, तुल्ला०वेएण=नपुंसकवेद तुल्य जाणवी. विगल०विय–विकलत्रिक अने सूक्ष्मत्रिकनी, नर०यिज=मनुष्य तिर्यंच भवमां लांबा काल सुधी उपार्जीने, होंति=बन्धान्तसमये होय छे. ३८। जहन्नगे=जघन्य प्रदेशसत्ता स्वामित्वमां, निय०कम्मंते=स्वस्व सत्ताना अन्ते, खवियं०पगयं=क्षपितकर्मांशनो अधिकार

गतेनान्तर्मुहूर्तं कालं यावदनन्तानुबन्धिनो बद्धाः । ततो भूयोऽपि सम्यक्त्वं प्रतिपन्नः । तच्च समयक्त्वं द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां यावत् अनुपाल्य क्षपणार्थमभ्युद्यतस्तस्यानन्तानुबन्धिनं क्षपयतो यदा एका स्थितिः स्वरूपापेक्षया समयमात्रावस्थाना, अन्यथा तु द्विसमयावस्थाना शेषीभवति तदा तेषां जघन्यं प्रदेशसत्कर्म ॥ ३९ ॥

उव्वलमाणीण उव्वल–णा एगट्ठिई दुसामइगा । दिट्ठिदुगे बत्तीसे, उदहिसए पालिए पच्छा ॥ ४० ॥

उव्वलमाणीण त्ति—उद्वल्यमानानां त्रयोविंशतिप्रकृतीनामुद्वलनकाले या एका स्थितिः स्वरूपापेक्षया समयमात्रावस्थाना, अन्यथा तु द्विसमयमात्रावस्थाना, सा तासां जघन्यं प्रदेशसत्कर्म । एतच्च सामान्येनोक्तं । अत्रैव विशेषमाह—'दिट्ठिदुगेत्यादि ' द्वात्रिंशदधिकं सागरोपमाणां शतं यावत् सम्यक्त्वमनुपाल्य पश्चान्मिथ्यात्वं गतो मन्दोद्वलनया च पल्योपमासंख्येयभागमात्रप्रमाणया सम्यक्त्वमिश्रे उद्वलयितुमारभते स्म । उद्वलयंश्च तद्दलिकं मिथ्यात्वे संक्रमयति । सर्वसंक्रमेण चावलिकाया उपरितनं सकलमपि दलिकं संक्रमितं । आवलिकागतं च दलिकं स्तिबुकसंक्रमेण संक्रमयति । संक्रमयतश्च यदैका स्थितिः स्वरूपापेक्षया समयमात्रावस्थाना, अन्यथा तु द्विसमयमात्रावस्थाना, तदा तयोः सम्यक्त्वमिश्रयोर्जघन्यं प्रदेशसत्कर्म ॥४०॥

छे. खण०यणाण-अनंत नुबंधीनी विसंयोजना करी मिथ्यात्वे अन्तर्मुहूर्त सुधी बांधी, चिर०कालंते=दीर्घकालिक समकितना कालने अंते अनंतानुबंधी खपावतां अन्ते ज०प्रदेशसत्ता होय. ३९ । उव्व०लणाय=उद्वल्पमान २३ प्रकृतिओनी उद्वलना करतां, एग०मइगा=द्विसामायिक एकस्थिति बाकी होय त्यारे ज०प्रदेशसत्ता. बत्तीसे०सए=१३२ सागरोपम सुधी, पालिए=समकित पालीने, पच्छा=पछीथी मिथ्यात्वे जइ, दिट्ठिदुगे=समकितमो० ने मिश्रमो०ने उवेलतां द्विसामयिक एक स्थिति रहे छते ज०प्रदे० होय ४०

अंतिमलोभजसाणं, मोहं अणुवसमइत्तु खीणाणं(सेसाणं)। नेयं अहापवत्त–करणस्स चरमम्मि समयम्मि॥

अंतिम त्ति––अन्तिमलोभः संज्वलनलोभः। ततः संज्वलनलोभयशःकीर्त्योश्चतुरो वारान् मोहनीयमनुपशमय्य मोहस्योपशममकृत्वा उपशमश्रेणिमकृत्वेत्यर्थः। शेषाभिः क्षपितकर्मांशक्रियाभिः क्षीणयोर्यथाप्रवृत्तकरणचरमसमये जघन्यं प्रदेशसत्कर्म ज्ञेयं। मोहनीयोपशमे हि क्रियमाणे गुणसंक्रमेण प्रभूतं दलिकमवाप्यते, न च तेन प्रयोजनमिति कृत्वा मोहनीयोपशमनप्रतिषेधः ॥४१॥

वेउव्विक्कारसगं, खणबंधगते उ नरय जिट्ठठिइ। उव्वट्टित्तु अबंधिय, एगेंदिगए चिरुव्वलणे ॥ ४२ ॥

वेउव्विक्कारसगंति—नरकद्विकदेवद्विकवैक्रियसप्तकरूपं वैक्रियैकादशकं पूर्वं क्षपितकर्मांशेनोद्वलितं। ततो भूयोऽप्यन्तर्मुहूर्तं कालं यावद् बद्धं। ततो ज्येष्ठस्थितौ नरकेऽप्रतिष्ठानाभिधाने नरके जातः। तत्र च सता तेन तत् वैक्रियैकादशकं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि यावत् विपाकतः संक्रमतश्च यथायोगमनुभूतं। ततो नरकादुद्वृत्य तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु मध्ये समुत्पन्नः। तत्र च वैक्रियैकादशकस्य भूयोऽपि बन्धो न कृतः, तथाविधाध्यवसायाभावात्। तत एकेन्द्रियो जातः। स च तद्वैक्रियैकादशकं चिरोद्वलनया उद्वलयितुं लग्नः। चिरोद्वलनया चोद्वलयतः सतो यदैका स्थितिः स्वरूपापेक्षया समयमात्रावस्थाना, अन्यथा तु

गाथार्थ—मोहं०मइत्तु=मोहने उपशमाव्या विना, खीणाणं=शेष क्षपितकर्मांशनी क्रियावडे क्षय कराता, अंति०साणं=संज्वलोभ अने यशःकीर्तीनी, अहा०करणस्स=यथाप्रवृत्तकरणना, चरमम्मि समयम्मि=चरिम समये, नेयं=ज०प्रदेसत्ता जाणवी ४१। वेउ०सगं=वैक्रिय एकादशकने उंवेलीने, खण०गते उ=अन्तर्मुहूर्त सुधी बांधीने, नरय०ट्ठिइ=नारकीमां उत्कृष्ट काल सुधी अनुभवीने, उव्वट्टित्तु=त्यांथी नीकली, अबंधिय=बांध्या विना, एगिंदिगए=एकेन्द्रियमां गएलाने, चिरुव्वलणे–चिरोद्वलना करतां बे समय

द्विसमयमात्रावस्थाना शेषीभवति तदा तस्य वैक्रियैकादशकस्य जघन्यं प्रदेशसत्कर्म ॥ ४२ ॥

मणुयदुगुच्चागोए, सुहुमखणबद्धगेसु सुहुमतसे । तित्थयराहारतणू, अप्पद्धा बंधिया सुचिरं ॥ ४३ ॥

मणुय त्ति—मनुष्यद्विकमुच्चैर्गोत्रं च पूर्वं सूक्ष्मत्रसेन क्षपितकर्मांशेनोद्वलितं । ततः 'सुहुमखणबद्धगेसु त्ति' सूक्ष्मेण सूक्ष्मैकेन्द्रियेण पृथिव्यादिना सता क्षणमन्तर्मुहूर्तकालं यावत् भूयोऽपि बद्धं । ततः सूक्ष्मत्रसेषु तेजोवायुषु मध्ये समुत्पन्नः । तत्र च चिरोद्वलनया उद्वलयितुं लग्नः । उद्वलयतश्च यदा तेषामेका स्थितिर्द्विसमयमात्रावस्थाना शेषीभवति तदा तयोर्मनुष्यद्विकोच्चैर्गोत्रयोः सूक्ष्मक्षणबद्धयोर्जघन्यं प्रदेशसत्कर्म । तथा तीर्थकरनाम 'अप्पद्धा बंधिय त्ति' अल्पं कालं चतुरशीतिवर्षसहस्राणि सातिरेकाणि यावद् बद्ध्वा केवली जातः । ततः 'सुचिरं ति' प्रभूतं कालं देशोनपूर्वकोटिरूपं यावत् केवलिपर्यायं परिपाल्ययोगिकेवलिनः सतः क्षपितकर्मांशस्य चरमसमये वर्तमानस्य तीर्थकरनाम्नो जघन्यं प्रदेशसत्कर्म । अन्ये तु ब्रुवते—तीर्थकरनाम्नः क्षपितकर्मांशेन तत्प्रायोग्यजघन्ययोगिना प्रथमसमये या लता बद्धा सा जघन्यं प्रदेशसत्कर्म । 'आहारतणु त्ति' आहारकतनूपलक्षितमाहारकसप्तकं । 'अप्पद्धा बंधिय त्ति' अल्पकालं (स्तोकंकालं बद्ध्वा मिथ्यात्वं गतः, ततः 'सुचिर त्ति' चिरोद्वलनया उद्वलयतः सतो यदा एका स्थितिर्द्विसमयमात्रावस्थाना शेषीभवति तदा तस्य जघन्यं प्रदेशसत्कर्म ॥ ४३ ॥

तदेवमुक्तं जघन्यप्रदेशसत्कर्मस्वामित्वं (३) । संप्रति प्रदेशसत्कर्मस्थानप्ररूपणार्थं स्पर्धकप्ररूपणामाह—

चरमावलियपविट्ठा, गुणसेढी जासिमत्थि न य उदओ । आवलिगासमयसमा, तासिं खलु फड्डगाइं तु ॥४४॥

प्रमाण एक स्थिति बाकी होय त्यारे ज०प्रदेशसत्ता जाणवी. ४२ । मणुय०गोएसु=मनुष्यद्विक ने उच्चगोत्रने उवेलीने, सुहु०बद्ध-

चरमावलिय त्ति–चरमा सर्वान्तिमा या क्षपणकाले आवलिका तां प्रविष्टा गुणश्रेणिर्यासां प्रकृतीनामस्ति, न च उदयः, तासां स्त्यानर्द्धित्रिकमिथ्यात्वाद्यद्वादशकषायनरकद्विक तिर्यग्द्विकपञ्चेन्द्रियजातिवर्जजातिचतुष्टयातपोद्योतस्थावरसूक्ष्मसाधारणरूपाणामेकोनत्रिंशत्संख्यानामावलिकायां यावन्तः समयास्तावन्ति स्पर्धकानि भवन्ति। खलुशब्दो वाक्यालंकारे। तुरेवकारार्थः। आवलिकासमयसमान्येवेत्यर्थः। इयमत्र भावना–अभव्यप्रायोग्यजघन्यप्रदेशसत्कर्मयुक्तसत्त्वेषु मध्ये समुत्पन्नः। तत्र च सर्वविरतिं देशविरतिं चानेकशो लब्ध्वा चतुरश्च वारान् मोहनीयमुपशमय्य भूयोऽप्येकेन्द्रियेषु मध्ये समुत्पन्नः। तत्र च पल्योपमासंख्येयभागमात्रं कालं यावत् स्थित्वा मनुष्येषु मध्ये समुत्पन्नः। तत्र च क्षपणायामभ्युद्यतः। तस्य चरमे स्थितिखंडकेऽपगते सति चरमावलिकायां स्तिबुकसंक्रमेण क्षीयमाणायां यदा एका स्थितिर्द्विसमयमात्रावस्थाना शेषीभवति तदा सर्वजघन्यं यत् प्रदेशसत्कर्म तत् प्रथमं प्रदेशसत्कर्मस्थानं। तत एकस्मिन् परमाणौ प्रक्षिप्ते सति अन्यत् द्वितीयं प्रदेशसत्कर्मस्थानं भवति। ततो द्वयोः परमाण्वोः प्रक्षिप्तयोरन्यत्तृतीयं प्रदेशसत्कर्मस्थानं। त्रिषु परमाणुषु प्रक्षिप्तेषु अन्यत्। एवमेकैकपरमाणुप्रक्षेपेण प्रदेशसत्कर्मस्थानानि नानाजीवापेक्षयाऽनन्तानि तावद्वाच्यानि यावत्तस्मिन्नेव चरमे स्थितिविशेषे गुणितकर्मांशस्योत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्मस्थानं

गेसु=सूक्ष्म जीवे अन्तर्मुहूर्त, बांध्या बाद, सुहुमतसे=सूक्ष्म तेउ वाउवडे उवेलानां पूर्व रीते ज०प्रदेशसत्ता. तित्थ०तणू=जिननाम ने आहारकसप्तकने, अप्पद्धा=अल्पकाल, बन्धिया=बांधीने, सुचिरं=घणो काल भोगव्या पछी स्वक्षयांते ज०प्रदेशसत्ता. ४३. जासिं=जे प्रकृतिओनी, गुणसेढी=गुणश्रेणि चर०पविट्ठा=क्षय कालनी अन्त्य आवलिकाने विषे प्रवेशेली, अत्थि=होय, न य उदओ=अने उदय न होय, तासिं=तेमनां, आव०समा=आवलिकाना समय तुल्य, खलु फड्डगाइं तु=निश्चे स्पर्धको होय. ४४.

भवति । अत ऊर्ध्वमन्यत्प्रदेशसत्कर्मस्थानं न प्राप्यते । तत इदमेकं स्पर्धकं । इदं तु चरमस्थितिमधिकृत्य । एवं द्वयोश्चरमस्थित्योर्द्वितीयं स्पर्धकं वक्तव्यं । तिसृषु च स्थितिषु तृतीयं । एवं तावद्वाच्यं यावत्समयोनावलिकासमयप्रमाणानि स्पर्धकानि भवन्ति× । तथा चरमस्थितिघातस्य चरमं प्रक्षेपमादिं कृत्वा पश्चानुपूर्व्या प्रदेशसत्कर्मस्थानानि यथोत्तरं वृद्धानि तावद्वक्तव्यानि यावदात्मीयमात्मीयमुत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म । तत एतावदेतदपि सकलस्थितिगतं यथासंभवमेकं स्पर्धकं विवक्ष्यते । तत×१ एतेन स्पर्धकेन सहावलिकासमयप्रमाणानि स्पर्धकानि भवन्ति ॥ ४४ ॥

संजलणतिगे चेवं, अहिगाणि य आलिगाए समएहिं। दुसमयहीणेहिं, गुणाणि जोगट्ठाणाणि कसिणाणि ॥

संज्वलणतिगे त्ति–संज्वलनत्रिके क्रोधमानमायारूपे । एवं पूर्वोक्तेन प्रकारेण स्पर्धकानि वाच्यानि । इयमत्र भावना–क्रोधादीनां प्रथमस्थितिर्यावदावलिकाशेषा न भवति तावत् स्थितिघातरसघातबन्धोदयोदीरणाः प्रवर्तन्ते । आवलिकाशेषायां तु प्रथमस्थितौ व्यवच्छिद्यन्ते । ततोऽनन्तरसमये समयोनावलिकागतं समयद्वयोनावलिकाद्विकबद्धं च सदस्ति, अन्यत् सर्वं क्षीणं ।

×(य०उ०१२) अत्र समयोनावलिकाप्रमाणं स्पर्धकं सर्वोत्कृष्टं, एकस्थितिकं सर्वजघन्यं, द्वित्रादिकासु च स्थितिषु शेषीभूतासु मध्यममिति विवेकः । ×१(य०उ० १३) तत एतेन स्पर्धकेन सहितानि पररूपान्तःप्रवेशगलितैकसमयकचरमैकस्थितिकादीन्यावलिकासमयप्रमाणानि स्पर्धकानि भवन्ति ।

गाथार्थः—संज० तिगे=संज्वलन त्रिकमां, चेवं=ए प्रमाणे, य=वळी, जोग०कसिणाणि=समस्त योगस्थानोने, दुसमयहीणेहिं=बे समयहीन, आलि०समएहिं=आवलिकाना समय साथे, गुणाणि=गुणतां आवे तेटलां, अहिगाणि=अधिक जाणवां. ४५

तत्र समयोनावलिकागतस्य दलिकस्य स्पर्धकभावना यथा प्राक् कृता तथात्रापि कर्तव्या। यच्च समयद्वयोनावलिकाद्विकबद्धं दलिकमस्ति तस्यान्यथा स्पर्धकभावना क्रियते, पूर्वप्रकारेणात्र स्पर्धकस्वरूपस्याप्राप्यमाणत्वात्। अथोच्येत 'कथं स्थितिघात-रसघातबन्धोदयोदीरणाव्यवच्छेदानन्तरसमये समयद्वयोनावलिकाद्विकबद्धमेव दलिकमस्ति न शेषमिति ज्ञायते ?' उच्यते—"इह चरमसमयक्रोधादिवेदकेन यद्बद्धं दलिकं तद् बन्धावलिकातीतं आवलिकामात्रेण कालेन निरवशेषं संक्रमयति। तथा च सत्यावलिकाचरमसमये स्वरूपापेक्षयाऽकर्मी भवति। द्विचरमसमयवेदकेन यद्बद्धं तदपि च बन्धावलिकायामतीतायामन्येनावलिका-मात्रेण कालेन संक्रमयति। आवलिकायाश्चरमसमये अकर्मी भवति। एवं यत्कर्म यस्मिन् समये बद्धं तत्तस्मात्समयादारभ्य (तत्तस्माद्-द्वितीयसम०) द्वितीयावलिकाचरमसमयेऽकर्मी भवति। तथा च सति बन्धाद्यभावप्रथमसमये समयद्वयोनावलिकाद्विकबद्धमेव सत्प्राप्यते, न शेषं। तथाहि—तत्त्वतोऽसंख्यातसमयात्मिकाप्यावलिका किलासत्कल्पनया चतुःसमयात्मिका कल्प्यते। ततो बन्धा-दिव्यवच्छेदचरमसमयादर्वाक् अष्टमे समये यद् बद्धं तद् बन्धावलिकायां चतुःसमयात्मिकायामतीतायां अन्यया चतुःसमयात्मिकया आवलिकया अन्यत्र संक्रम्यमाणं चरमसमये बन्धादिव्यवच्छेदसमयरूपे सर्वथा स्वरूपेण न प्राप्यते, अन्यत्र सर्वात्मना संक्रमित-त्वात्। सप्तमे समये यद् बद्धं तच्चतुःसमयात्मिकायामावलिकायामतिक्रान्तायामन्यया चतुःसमयात्मिकया अन्यत्र संक्रम्यमाणं बन्धा-दिव्यवच्छेदानन्तरसमये स्वरूपेण न प्राप्यते, सर्वात्मनाऽन्यत्र संक्रमितत्वात्। शेषषष्ठादिसमयबद्धं तु प्राप्यते। ततो बन्धादौ व्यव-च्छिन्ने सति अनन्तरसमये समयद्वयोनावलिकाद्विकबद्धमेव सत् प्राप्यते नान्यदिति"। तत्र बन्धादिव्यवच्छेदसमये जघन्ययोगिना सता यद् बद्धं तस्य बन्धावलिकायामतीतायामन्यया आवलिकयान्यत्र संक्रम्यमाणस्य चरमसमये यत् संक्रमयिष्यति न तावत्संक्रम-

यति तत् संज्वलनक्रोधस्य जघन्यं प्रदेशसत्कर्मस्थानं । एवं द्वितीययोगस्थानवर्तिना बन्धादिव्यवच्छेदसमये यद् बद्धं तस्यापि दलिकं चरमसमये द्वितीयं प्रदेशसत्कर्मस्थानं । एवं तावद्वाच्यं यावदुत्कृष्टयोगस्थानवर्तिना सता बन्धादिव्यवच्छेदसमये यद् बद्धं तस्य दलिकं चरमसमये सर्वोत्कृष्टमन्तिमं प्रदेशसत्कर्मस्थानं । एवं जघन्यं योगस्थानमादिं कृत्वा यावन्ति योगस्थानानि भवन्ति तावन्ति प्रदेशसत्कर्मस्थानान्यपि चरमसमये प्राप्यन्ते, इदमेकं स्पर्धकं । एवं बन्धादिव्यवच्छेदद्विचरमसमये जघन्ययोगादिना यद् बध्यते तत्रापि द्वितीयावलिकाचरमसमये प्रागिव तावन्ति प्रदेशसत्कर्मस्थानानि भावनीयानि । केवलं स्थितिद्वयभावीनि तानि प्रतिपत्तव्यानि, बन्धादिव्यवच्छेदचरमसमये बद्धस्यापि दलिकस्य तदानीं द्विसमयस्थितिकस्य प्राप्यमाणत्वात् । इदं द्वितीयं स्पर्धकं । एवं बन्धादिव्यवच्छेदत्रिचरमसमये जघन्ययोगादिना यद् बध्यते तत्रापि द्वितीयावलिकाचरमसमये प्रागिव तावन्ति प्रदेशसत्कर्मस्थानानि भवन्ति । नवरं स्थितित्रयभावीनि तानि भावनीयानि, तदानीं बन्धादिव्यवच्छेदचरमसमयबद्ध-सत्कस्यापि दलिकस्य (द्विचरमसमयबद्धसत्कस्यापि) त्रिसमयस्थितिकस्य प्राप्यमाणत्वात् । इदं तृतीयं स्पर्धकं । एवं समयद्वयोनावलिकाद्विके यावन्तः समयास्तावन्ति स्पर्धकानि भवन्ति× । तत आह—'अहिगाणि य आवलिगाए' इत्यादि । योगस्थानानि कृत्स्नानि समस्तानि समुदायैकरूपतया विवक्षितानि सकलयोगस्थानसमुदाय इत्यर्थः । आवलिकागतैः समयैः समयद्वयहीनैर्गुण्यन्ते । गुणिते सति यावन्तः सकलयोगस्थानसमुदायास्तावन्ति प्रथमस्थितौ व्यवच्छिन्नायामधिकानि स्पर्धकानि भवन्ति । तथाहि—बन्धादिव्यवच्छेदानन्तरसमये समयद्वयोनावलिकाद्विकसमयप्रमाणानि स्पर्धकानि प्राप्यन्ते । एतच्चानन्तरमेव भावितं ।

×(य०उ०१४) एवं संज्वलनमानमाययोरपि तावन्ति स्पर्धकानि प्रत्येकं वाच्यानि ।

बन्धादिव्यवच्छेदादूर्ध्वं च प्रथमस्थितिरावलिकामात्रा तिष्ठति । ततस्तस्यामावलिकामात्रायां प्रथमस्थितौ संक्रमेण व्यवच्छिद्यमानायां परत आवलिकासमयप्रमाणानि स्पर्धकानि अन्यत्र संक्रमेण व्यवच्छिद्यन्ते । अत एव च तानि पृथक् न गुण्यन्ते । ततस्तेषु व्यवच्छिन्नेषु प्रथमस्थितौ च व्यवच्छिन्नायां शेषाणि समयद्वयोनावलिकासमयप्रमाणान्येवाधिकानि प्राप्यन्ते, नान्यानीति ॥४५॥

वेएसु फड्डगदुगं, अहिगा पुरिसस्स बे उ आवलिया। दुसमयहीणा गुणिया, जोगट्ठाणेहिं कसिणेहिं ॥४६॥

वेएसु त्ति–वेदेषु स्त्रीवेदपुरुषवेदनपुंसकवेदेषु प्रत्येकं द्वे द्वे स्पर्धके भवतः । कथमिति चेदुच्यते–कश्चिज्जन्तुरभवसिद्धिकप्रायोग्यजघन्यप्रदेशसत्कर्मा त्रसेषु मध्ये समुत्पन्नः । तत्र देशविरतिं सर्वविरतिं च बहुशो लब्ध्वा चतुरश्च वारान् मोहनीयमुपशमय्य द्वात्रिंशदधिकं च सागरोपमाणां शतं यावत्सम्यक्त्वमनुपाल्याप्रतिपतितसम्यक्त्वो नपुंसकवेदेन क्षपकश्रेणिमारुढः । ततो नपुंसकवेदस्य प्रथमस्थितौ द्विचरमसमये वर्तमाने उपरितनस्थितिखंडमन्यत्र संक्रमितं । तथा सति उपरितनी स्थितिः सर्वात्मना निर्लेपीकृता । ततः प्रथमस्थितौ चरमसमये सर्वजघन्यं यत् प्रदेशसत्कर्म तत् प्रथमं प्रदेशसत्कर्मस्थानं । तत एकस्मिन् परमाणौ प्रक्षिप्ते सति द्वितीयं प्रदेशसत्कर्मस्थानं । परमाणुद्वयप्रक्षेपे च तृतीयं । एवं नानाजीवापेक्षया एकैकपरमाणुवृद्ध्या प्रदेशसत्कर्मस्थानानि अनन्तानि तावद्वाच्यानि यावद् गुणितकर्मांशस्योत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्मस्थानं । इदमेकं स्पर्धकं । ततो द्वितीयस्थितौ चरमखंडे संक्रम्यमाणे चरमसमये पूर्वोक्तप्रकारेण सर्वजघन्यं यत् प्रदेशसत्कर्मस्थानं तत् आदि कृत्वा नानाजीवापेक्षया

गाथार्थः—वेएसु=वेदमां, फड्डगदुगं=बे बे स्पर्धक छे. पुरिसस्स उ=पुरुषवेदमां तो, जोग०कसिणेहिं=समग्र योगस्थानो साथे, दुसमयहीणा=बे समयहीन, बे आवलिया=बे आवलिका साथे, गुणिया=गुणतां आवे तेटलां, अहिगा=अधिक स्पर्धको जाणवां. ४६

यथासंभवमुत्तरोत्तरवृद्ध्या निरन्तरप्रदेशसत्कर्मस्थानानि तावद्वाच्यानि यावद् गुणितकर्मांशस्योत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्मस्थानं । तानि द्वितीयं स्पर्धकं । अथवा यावत्प्रथमा स्थितिर्द्वितीया च स्थितिर्विद्यते तावदेकं स्पर्धकं । द्वितीयस्थितौ च क्षीणायां प्रथमस्थितौ शेषीभूतायां समयमात्रायां द्वितीयं स्पर्धकमिति । एवं प्रकारद्वयेन स्त्रीवेदस्यापि स्पर्धकद्वयं भावनीयं ।

पुरुषवेदस्य पुनः स्पर्धकद्वयमेवं भावनीयं—उदयचरमसमये जघन्यं प्रदेशसत्कर्म आदिं कृत्वा नानाजीवापेक्षया एकैकपरमाणुवृद्ध्या निरन्तरं प्रदेशसत्कर्मस्थानानि तावद्वाच्यानि यावद् गुणितकर्मांशस्योत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्मस्थानं । एतानि सर्वाण्यनन्तानि । एतान्येकं स्पर्धकं । उदयचरमसमये च द्वितीयस्थितौ चरमखंडे संक्रम्यमाणे सर्वजघन्यं प्रदेशसत्कर्मस्थानमादिं कृत्वा प्रागिव द्वितीयं स्पर्धकं वाच्यं । किं च ' अहिगा पुरिसस्स त्ति' पुरुषवेदस्याधिकान्यपि स्पर्धकानि भवन्ति । कियन्ति भवन्तीति चेदुच्यते—'बे उ आवलिया' इत्यादि, अत्र द्वे आवलिके इत्यत्र तृतीयार्थे प्रथमा, 'जोगट्ठाणेहिं कसिणेहिं' इत्यत्र तु तृतीया प्रथमार्थे । ततोऽयमर्थः—कृत्स्नानि सकलयोगस्थानसमुदाय इत्यर्थः । द्वाभ्यामावलिकाभ्यां द्विसमयहीनाभ्यां आवलिकाद्विकसमयैर्द्विरूपहीनैरित्यर्थः । गुण्यन्ते, गुणिते च सति यावन्तः सकलयोगस्थानसमुदायास्तावन्ति स्पर्धकान्यधिकानि भवन्ति, समयद्वयहीनावलिकाद्विकसमयप्रमाणानि अधिकानि भवन्तीत्यर्थः । तथाहि—पुरुषवेदस्य बन्धोदयादिव्यवच्छेदे स ति समय द्वयोनावलिकाद्विकबद्धं पुरुषवेदस्य दलिकं विद्यते । ततोऽवेदकस्य सतः संज्वलनत्रिकोक्तप्रकारेण योगस्थानापेक्षया समयद्वयहीनावलिकाद्विकसमयप्रमाणानि स्पर्धकानि वाच्यानि× ॥४६॥

×(य०उ०१५) इदं च द्वितीयस्थितिप्रकाराभिधानमेव द्रष्टव्यं (इदं च प्रकारांतराभिधानाभिप्रायेण द्रष्टव्यं) 'दो इगि संतं

संप्रत्युक्तानां वक्ष्यमाणानां च स्पर्धकानां सामान्यरूपं लक्षणमाह—

सव्वजहन्नाढत्तं, खंधुत्तरओ निरंतरं उप्पिं । एगं उव्वलमाणी, लोभजसा नोकसायाणं ॥ ४७ ॥

सव्वजहन्न त्ति—सर्वजघन्यात् प्रदेशसत्कर्मस्थानादारब्धमेकैकेन कर्मस्कन्धेनोत्तरतः पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तरोत्तरेण निरन्तरं प्रदेशसत्कर्मस्थानजालं तावन्नेयं यावत् 'उप्पिं' उपरितनं सर्वोत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्मस्थानं भवति । इयमत्र भावना—सर्वजघन्यप्रदेशसत्कर्मस्थानादारभ्य योगस्थानापेक्षया एकैकेन कर्मस्कन्धेन वृद्धानि प्रदेशसत्कर्मस्थानानि निरन्तराणि तावन्नेतव्यानि यावदुत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्मस्थानं भवति । एकैककर्मस्कन्धेनोत्तरत इति चोक्तं योगस्थानवशलब्धस्पर्धकापेक्षया, अन्यथा 'चरमावलिय पविट्ठेत्यादौ' यानि स्पर्धकान्युक्तानि तेष्वेकैकेन प्रदेशेनैवोत्तरोत्तरा वृद्धिः प्राप्यते इति । तदेवमुक्तं सामान्येन लक्षणं स्पर्धकानां । संप्रत्युद्वल्यमानप्रकृतीनां स्पर्धकप्ररूपणार्थमाह—'एगं उव्वलमाणी' एकं स्पर्धकं उद्वल्यमानप्रकृतीनां त्रयोविंशति-

---

हवा एए' इति पञ्चसङ्ग्रहप्रतीकस्य अथवा 'एते द्वे स्पर्धके द्रष्टव्ये, यावत्प्रथमा स्थितिर्द्वितीया च स्थितिर्विद्यते तावदेकं । प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ वाऽपरस्थितिक्षये शेषीभूतायां द्वितीयं स्पर्धकं । तत्र स्त्रीवेदस्य नपुंसकवेदस्य वा द्वितीयस्थितिसत्कचरमदलिकप्रक्षेपे एका स्थितिः प्रथमस्थितेः शेषीभूता भवति, पुरुषवेदस्य च प्रथमस्थितावुदयेन क्षीणायां समयद्वयोनावलिकाद्विकबद्धप्रमाणा द्वितीया स्थितिः शेषीभूता भवती' त्येवं वृत्तौ व्याख्यानात् ॥

गाथार्थः—सव्व०ढत्तं=सर्व जघन्य प्रदेश सत्कर्मथी आरंभी, निरंतरं उप्पिं=आगल निरंतर पणे, खंधुत्तरओ=एक एक स्कंधवडे अधिक अधिक सत्तास्थानो जाणवां. उव्वलमाणी=उद्वलनयोग्य २३, लोभजसा=सं०लोभ, यशःकीर्ति, नोकसायाणं अने ९नोकषायमां, एगं=एक एक स्पर्धक छे. ४७

संख्यानां । तत्र सम्यक्त्वस्य (तावद्) भावना क्रियते—अभव्यप्रायोग्यजघन्यस्थितिसत्कर्मा त्रसेषु मध्ये समुत्पन्नस्तत्र सम्यक्त्वं देशविरतिं चानेकवारान् लब्ध्वा चतुरश्च वारान् मोहनीयमुपशमय्य द्वात्रिंशदधिकं च सागरोपमाणां शतं यावत्सम्यक्त्वमनुपाल्य मिथ्यात्वं गतः, ततश्चिरोद्वलनया सम्यक्त्वमुद्वलयतो यदा चरमखंडं संक्रान्तं एका च शेषा उदयावलिका तिष्ठति, तामपि स्तिबुकसंक्रमेण मिथ्यात्वे संक्रयमति । संक्रमयतश्च या एका स्थितिर्द्वितीयसमयमात्रावस्थाना शेषीभूता यदावतिष्ठते तदा सम्यक्त्वस्य सा जघन्यं प्रदेयसत्कर्मस्थानं । ततो नानाजीवापेक्षया एकैकप्रदेशवृद्ध्या प्रदेशसत्कर्मस्थानानि तावन्नेतव्यानि यावद् गुणितकर्मांशस्योत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्मस्थानं भवति । इदमेकं स्पर्धकं । एवं सम्यग्मिथ्यात्वस्यापि । एवमेव च शेषाणामप्युद्वलनयोग्यानां वैक्रियैकादशकाहारकसप्तकोच्चैर्गोत्रमनुष्यद्विकरूपाणां प्रकृतीनां । नवरं तासां द्वात्रिंशदधिकसागरोपमशतप्रमाणः सम्यक्त्वकालो मूलत एव न वक्तव्यः× । 'लोभजसेत्यादि' संज्वलनलोभयशःकीर्त्योरपि एकं स्पर्धकं । तथाहि—स एवाभवसिद्धिकप्रायोग्यजघन्यस्थितिसत्कर्मा त्रसेषु मध्ये समुत्पन्नः । तत्र च ×१चतुःकृत्वो मोहोपशममन्तरेण शेषाभिः क्षपितकर्मां-

×(य०उ०१६)इहोद्वलनप्रकृतीनामेकस्पर्धकाभिधानमुपलक्षणपरं द्रष्टव्यं, न तु शेषनिषेधपरं, यावता प्रागुक्तानामनुदयवतीनामिवासामप्यावलिकासमयसमान्येव स्पर्धकानि लभ्यन्त इति । उक्तं च पञ्चसंग्रहे—"अणुदयतुल्लं उव्वलणिगाण जाणिज्ज दीहउव्वलणे त्ति" उद्वलनप्रकृतीनां दीर्घोद्वलने चिरोद्वलने क्रियमाणे स्पर्धकपटलमनुदयतुल्यमनुदयप्रकृतितुल्यं जानीहीत्येतदर्थः ।

×१(य०उ०१७) उपशमश्रेणिकरणे प्रभूतानां प्रकृत्यन्तरदलिकानां गुणसङ्क्रमेण समागमाज्जघन्यं प्रदेशसत्कर्म न प्राप्यत इति चतुष्कृत्वो मोहोपशममन्तरेणेति व्याकृतं ।

शक्रियाभिः कर्मदलिकं प्रभूतं क्षपयित्वा चिरकालं च संयममनुपाल्य क्षपणायोत्थितः । तस्य यथाप्रवृत्तकरणचरमसमये जघन्यं प्रदेशसत्कर्म । ततस्तस्मादारभ्य नानाजीवापेक्षया एकैकप्रदेशवृद्धया निरन्तराणि प्रदेशसत्कर्मस्थानानि तावद्वाच्यानि यावद् गुणितकर्मांशस्योत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्मस्थानं । एवमेकं संज्वलनलोभयशःकीर्त्योः स्पर्धकं । षण्णामपि च नोकषायाणां प्रत्येकमेकैकं स्पर्धकं । तदपि चैवं—स एवाभवसिद्धिकप्रायोग्यजघन्यप्रदेशसत्कर्मा त्रसेषु मध्ये समुत्पन्नः । तत्र सम्यक्त्वं देशविरतिं चानेकशो लब्ध्वा चतुरश्च वारान्मोहनीयमुपशमय्य स्त्रीवेदनपुंसकवेदौ च भूयो भूयो बन्धेन हास्यादिदलिकसंक्रमेण च प्रभूतमापूर्य मनुष्यो जातस्तत्र चिरकालं संयममनुपाल्य क्षपणायोत्थितः । तस्य चरमखंडचरमसमये यद्विद्यमानं प्रत्येकं षण्णां नोकषायाणां प्रदेशसत्कर्म तत्सर्वं जघन्यं । ततस्तस्मादारभ्य नानाजीवापेक्षया एकैकप्रदेशवृद्धया निरन्तराणि प्रदेशसत्कर्मस्थानानि अनन्तानि तावद्वाच्यानि यावद् गुणितकर्मांशस्योत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म । एवमेकं षण्णां नोकषायाणां प्रत्येकं स्पर्धकं ॥४७॥

संप्रति मोहनीयवर्जानां घातिकर्मणां स्पर्धकनिरूपणार्थमाह—

ठिइखंडगविच्छेया, खीणकसायस्स सेसकालसमा । एगहिया घाईणं, निद्दापयलाण हिच्चेकं ॥ ४८ ॥

ठिइखंडग त्ति—क्षीणकषायस्य स्थितिखंडव्यवच्छेदात् स्थितिघातव्यवच्छेदात् परतो यः शेषकालस्तिष्ठति तत्समानि

गाथार्थः—खीणकसायस्स=क्षीणकषायी जीवना, ठिइ०विच्छेया=स्थितिखंड विच्छेदथी, सेसकालसमा=बाकी रहेता कालना समयथी, एगहिया=एक स्पर्धक अधिक, घाईणं=घाती प्रकृतिओनां स्पर्धको, निद्दापयलाण=निद्रा प्रचलाने, हिच्चेकं=एक स्पर्धक वर्जीने स्पर्धको कहेवां ४८

शेषकालसमयसमानि स्पर्धकानि एकाधिकानि घातिकर्मणां भवन्ति । निद्राप्रचलयोस्तु हित्वा परित्यज्य एकं चरमं स्थितिगतं स्पर्धकं, शेषाणि वाच्यानि, निद्राप्रचलयोर्हि उदयाभावात् स्वस्वरूपेण चरमसमये दलिकं न प्राप्यते, किंतु परप्रकृतिरूपेण, तेन तयोरेकं स्पर्धकं चरमस्थितिगतं परित्यज्यते×। स्पर्धकानां चेयं भावना—क्षीणकषायाद्धायाः संख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्सु एकस्मिंश्च संख्येयतमेऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणे भागेऽवतिष्ठमाने ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयान्तरायपञ्चकानां स्थितिसत्कर्म सर्वापवर्तनयाऽपवर्त्य क्षीणकषायाद्धासमं करोति । निद्राप्रचलयोस्त्वेकसमयहीनं । अत्र च कारणं प्रागेवोक्तं । तदानीं च स्थितिघातादयो निवृत्ताः । यदपि च क्षीणकषायाद्धासमं स्थितिसत्कर्म कृतं, तदपि च क्रमेण यथासंभवमुदयोदीरणाभ्यां क्षयमुपगच्छत्तावद्वक्तव्यं यावदेका स्थितिः शेषीभवति । तस्यां च क्षपितकर्मांशस्य सर्वजघन्यं यत्प्रदेशसत्कर्म तत्प्रथमं स्थानं । तत एकस्मिन् परमाणौ प्रक्षिप्ते सति द्वितीयं प्रदेशसत्कर्मस्थानं एवमेकैकपरमाणुवृद्ध्या निरन्तराणि प्रदेशसत्कर्मस्थानानि तावद्वाच्यानि यावद् गुणितकर्मांशस्य सर्वोत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्मस्थानं । इदमेकं स्पर्धकं । द्वयोश्च स्थित्योः शेषीभूतयोरुक्तप्रकारेण द्वितीयं स्पर्धकं । तिसृषु स्थितिषु शेषीभूतासु तृतीयं स्पर्धकं । एवं क्षीणकषायाद्धासमीकृते सत्कर्मणि यावन्तः स्थितिविशेषास्तावन्ति स्पर्धकानि वाच्यानि । चरमस्य च स्थितिघातस्य चरमं प्रक्षेपमादौ कृत्वा पश्चानुपूर्व्या प्रदेशसत्कर्मस्थानानि यथोत्तरं वृद्धानि तावद्वक्तव्यानि यावदात्मीयमात्मीयं सर्वोत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म तावदेतदपि सकलनिजनिजस्थितिगतं यथासंभवमेकैकं स्पर्धकं द्रष्टव्यं । ततस्तेनाधिकानि स्थितिघातव्यवच्छेदात् परतः क्षीणकषायाद्धासमयसमानि स्पर्धकानि भवन्ति। निद्राप्रचलयोस्तु द्विचरमस्थिति-

×(य०उ०१८) शेषघातिकर्मणां तूदयवत्त्वात्तन्न परित्यज्यते ।

मधिकृत्य स्पर्धकानि वाच्यानि, चरमसमये तद्लिकस्यामाप्यमाणत्वात्। तत एकेन हीनानि तस्य स्पर्धकानि द्रष्टव्यानि ॥४८॥

सेलेसिसंतिगाणं,उदयवईणं तु तेण कालेणं । तुल्ला णेगहियाइं, सेसाणं एगऊणाइं ॥ ४९ ॥

सेलेसि त्ति–शैलेशी अयोग्यवस्था तस्यां सत्ता यासां प्रकृतीनां ताः शैलेशीसत्ताकाः । ताश्च द्विधा, तद्यथा–उदयवत्योऽनुदयवत्यश्च । तत्रोदयवत्यो मनुष्यगतिमनुष्यायुःपञ्चेन्द्रियजातित्रससुभगादेयपर्याप्तबादरयशःकीर्तितीर्थकरोच्चैर्गोत्रसातासातान्यतरवेदनीयरूपा द्वादश । तासां प्रकृतीनां तेनायोगिकालेन तुल्यानि स्पर्धकानि एकैकेनाधिकानि भवन्ति, अयोगिकाले यावन्तः समयास्तावन्ति स्पर्धकानि एकेनाधिकानि भवन्तीत्यर्थः । कथमिति चेदुच्यते—अयोगिकेवलिनश्चरमसमये क्षपितकर्मांशमधिकृत्य यत्सर्वजघन्यं प्रदेशसत्कर्मस्थानं तत् प्रथमं स्थानं । तत एकस्मिन् परमाणौ प्रक्षिप्ते सति द्वितीय प्रदेशसत्कर्मस्थानं । एवं नानाजीवापेक्षया एकैकप्रदेशवृद्ध्या तावत्प्रदेशसत्कर्मस्थानानि द्रष्टव्यानि यावद् गुणितकर्मांशस्य सर्वोत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्मस्थानं । इदमेकं स्पर्धकं । तत एवमेव द्वयोः स्थित्योः शेषीभूतयोर्द्वितीयं स्पर्धकं, तिसृषु स्थितिषु तृतीयं । एवं निरन्तरं तावदवगन्तव्यं यावदयोगिप्रथमसमयः।तथा सयोगिकेवलिचरमसमये चरमस्थितिखंडसत्कं चरमप्रक्षेपमादिं कृत्वा यावदात्मीयमात्मीयं सर्वोत्कृष्टं प्रदेशसत्कर्म तावदेतदपि सकलस्वस्वस्थितिगतमेकैकं स्पर्धकं द्रष्टव्यं । ततोऽयोगिकेवलिगुणस्थानके यावन्तः समयास्तावन्ति स्पर्धकानि एकाधिकानि उदयवतीनां प्रकृतीनां प्रत्येकं भवन्ति । शेषाणां त्वनुदयवतीनां प्रकृतीनां त्र्यशीतिसंख्यानां तावन्ति

गाथार्थः—सेलेसि०वईणं तु=शैलेशी (अयोगी) अवस्थामां सत्तावाली उदयवतीनां तो, तेण कालेण=तेना कालवडे, तुल्ला० हियाइं=तुल्य अने एक स्पर्धक अधिक, सेसाणं=शेष अनुदयवतीमां, एगऊणाइं=तेथी १ स्पर्धकहीन स्पर्धको जाणवां. ४९

स्पर्धकान्येकेन हीनानि भवन्ति । यतस्ता अयोगिकेवलिचरमसमये उदयवतीषु मध्ये स्तिबुकसंक्रमेण संक्रम्यन्ते । ततस्तासां चरमसमयगतं स्पर्धकं न प्राप्यत इति तेन हीनानि तासां स्पर्धकानि भवन्ति । इह यद्यपि मनुष्यगत्यादीनां 'एगं उव्वलमाणी' इत्यनेन ग्रन्थेन प्रागेव स्पर्धकप्ररूपणा कृता तथापि इहापि तासां स्पर्धकानि प्राप्यन्त इति भूय उपादानं । एवं करणेष्वपि बन्धनादिषु यथासंभवं स्पर्धकानि वाच्यानि ॥ ४९ ॥ तथा चाह—

संभवतो ठाणाइं, कम्मपएसेहिं होंति नेयाइं । करणेसु य उदयम्मि य, अणुमाणेणेवमेएणं ॥ ५० ॥

संभवतो त्ति—संभवतः संभवमाश्रित्य स्थानानि प्रदेशसत्कर्मस्थानानि । करणेषु बन्धनादिषु उदये च । कर्मप्रदेशेभ्यः कर्मप्रदेशानधिकृत्य ज्ञेयानि ज्ञातव्यानि । कथमित्याह—एवमुपदर्शितेन, एतेन प्रागुक्तेन अनुमानेन प्रकारेण ज्ञातव्यानि । तथाहि—बन्धनकरणे जघन्यं योगस्थानमादिं कृत्वा यावदुत्कृष्टयोगस्थानं एतावन्ति प्रदेशसत्कर्मस्थानानि बन्धमाश्रित्य प्राप्यन्ते, तावन्ति चैकं स्पर्धकं । एवं संक्रमणादिष्वपि प्रत्येकं यथायोगं भावनीयम् ॥ ५० ॥

करणोदयसंताणं, पगइट्ठाणेसु सेसगतिगे य । भूयक्कारप्पयरो, अवट्ठिओ तह अवत्तव्वो ॥ ५१ ॥

गाथार्थः—संभवतो=संभव आश्रयी, करणेसु य=करणोमां अने, उदयम्मि य=उदयमां, ठाणाइं=सत्तास्थानो, एवमेएणं=एबीजरीते, अणुमाणेण=अनुमानवडे, कम्मपएसेहिं=कर्मप्रदेशोनी अपेक्षाए, होंति नेयाइं=जाणवा योग्य छे. ५०

गाथार्थः—करणो०संताणं=आठ करणोना, उदयना अने सत्ताना, पग०णेसु=प्रकृति स्थानोमां सेसेगतिगे य=अने स्थितिस्थानादि शेष त्रिकमां, भूय०पयरो=भूयस्कार, अल्पतर, अवट्ठिओ=अवस्थित, तह=तेमज, अवत्तव्वो=अवक्तव्य एम ४ विकल्प जाणवा ५१.

करणोदयसंताणं ति–अष्टानां करणानां उदयसत्तयोश्च प्रकृतिस्थानेषु 'सेसगतिगे य त्ति' शेषके च त्रिके स्थित्यनुभाग-प्रदेशरूपे प्रत्येकं चत्वारो विकल्पा ज्ञातव्याः । तद्यथा—भूयस्कारः, अल्पतरः, अवस्थितः, अवक्तव्यश्च ॥५१॥

एतेषां चतुर्णां लक्षणमिदम्—

एगादहिगे पढमो, एगाईऊणगम्मि बिइओ उ । तत्तियमेत्तो तईओ, पढमे समये अवत्तव्वो ॥ ५२ ॥

एगादहिगे त्ति–इह बन्धमाश्रित्य भावना क्रियते । बन्धो द्विधा–मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां च । तत्र मूलप्रकृतीनां बन्धः कदाचित् अष्टानां, कदाचित्सप्तानां, कदाचित् षण्णां, कदाचिदेकस्याः । तत्र यदा स्तोकाः प्रकृतीराबध्नन् परिणामविशेषतो भूयसीः प्रकृतीर्बध्नाति, यथा सप्त बद्ध्वा अष्टौ बध्नाति, यद्वा षट् एकां च बद्ध्वा सप्त, तदा स बन्धो भूयस्कारः । तथा चाह–'एगादहिगे पढमो' एकादिभिरेकद्वित्र्यादिभिः प्रकृतिभिरधिके बन्धे प्रथमः प्रकारो भवति, भूयस्कारो बन्धो भवतीत्यर्थः । यदा तु प्रभूताः प्रकृतीर्बध्नन् परिणामविशेषतः स्तोका बद्धुमारभते, यथाऽष्टौ बद्ध्वा सप्त बध्नाति, सप्त वा बद्ध्वा षट्, षड् वा बद्ध्वा एकां, तदानीं स बन्धोऽल्पतरः । तथा चाह–'एगाईऊणगम्मि बिइओ उ' एकादिभिरेकद्वित्र्यादिभिः प्रकृतिभिरूने बन्धे द्वितीयः प्रकारोऽल्पतर इत्यर्थः । तथा स एव भूयस्कारोऽल्पतरो वा द्वितीयादिषु समयेषु तावन्मात्रतया प्रवर्तमानोऽवस्थित

गाथार्थः—एगा०पढमो=एकादि प्रकृतिए अधिक बंधादिक ते प्रथम, एगाई०बिइओ अ=एकादिक प्रकृतिए हीन ते द्वितीय, तत्तिय०तईओ=तेटलोज बन्धादिक ते तृतीय, पढमे०अवत्तव्वो=बंधादि विच्छेद पछी पुनः करतां प्रथम समये अवक्तव्य. ५२.

इति व्यपदेशं लभते । तथा चाह 'तत्तिगमेत्तो तईओ' तावन्मात्रस्तृतीयोऽवस्थित इत्यर्थः । एते त्रयोऽपि प्रकारा मूलप्रकृतीनां संभवन्ति । चतुर्थस्तु न संभवति । न हि मूलप्रकृतीनां सर्वासां बन्धव्यवच्छेदे सति भूयोऽपि बन्धः संभवति येन चतुर्थो बन्धः स्यात् । तत उत्तरप्रकृतीरधिकृत्य स वेदितव्यः । यथा मोहनीयस्य तद्गतसर्वोत्तरप्रकृतिबन्धव्यवच्छेदे सति उपशान्तमोहगुणस्थानकात् प्रतिपाते भूयोऽपि बन्धारंभप्रथमसमये, स हि तदानीं न भूयस्कारो वक्तुं शक्यते, नाप्यल्पतरः, नाप्यवस्थितः, तल्लक्षणायोगात्, ततोऽसाववक्तव्य इत्युच्यते, भूयस्कारादिनाम्ना वक्तुमशक्यत्वात् । एवमुत्तरप्रकृतीरधिकृत्य ज्ञानावरणीयादीनां वेदनीयवर्जानामवक्तव्यो भावनीयः । वेदनीयस्य त्ववक्तव्यो न संभवति, तस्य हि सर्वथा बन्धव्यवच्छेदः सयोगिकेवलिचरमसमये । न च ततः प्रतिपातो येन भूयो बन्धः प्रवर्तमानः प्रथमसमयेऽवक्तव्यः स्यात् । तदेवं मूलप्रकृतीरधिकृत्यावक्तव्यवर्जाः शेषास्त्रयः प्रकाराः, उत्तरप्रकृतीस्त्वधिकृत्य चत्वारोऽपि प्रकाराः संभवन्ति । यथा च बन्धे चत्वारोऽपि प्रकारा भाविता एवं संक्रमे उद्वर्तनायामपवर्तनायामुदीरणायामुपशमनायामुदये सत्तायां च प्रकृतिस्थानेषु स्थित्यनुभागप्रदेशस्थानेषु च यथायोगं स्वयमेव भावनीयाः× ॥ ५२ ॥

करणोदयसंताणं,सामित्तोघेहिं सेसगं नेयं । गईयाइमग्गणासुं संभवओ सुट्ठु आगमिय ॥ ५३ ॥

×(य०उ०१९) माटे जुओ पृष्ठ आ॥१॥ थी–आ॥१२॥ सुधी ।

गाथार्थः—करणो०संताणं=करण, उदय अने सत्ताना, सामित्तोघेहिं=ओघ स्वामित्व वडे, गई०मग्गणासु०गत्यादिक मार्गणामां, संभवओ=यथा संभव, सुट्ठु आगमिय=सारीरीते विचारीने, सेसगं नेयं=बाकीनुं जाणवुं. ५३.

करणोदयसंताणं ति–अष्टानां करणानामुदयसत्तयोश्च यदुक्तं प्रत्येकं सप्रपञ्चं स्वरूपं तत् ओघस्वामित्वमुच्यते । 'सामित्तो-घेहिं ति' द्वितीयार्थे तृतीया, व्यक्त्यपेक्षया च बहुवचनं । ततश्च तानि ओघस्वामित्वानि यथोक्तकरणाष्टकोदयसत्तास्वरूपरू-पाणि सुष्ठु आगम्य परिभाव्य शेषकमपि ज्ञातव्यं । क्व ज्ञातव्यमित्याह–गत्यादिषु चतुर्दशसु मार्गणास्थानेषु । कथमित्याह— संभवतो यथा संभवति यथा घटते तथैव, नान्यथा ॥ ५३ ॥

बंधोदीरणसंकम–संतुदयाणं जहन्नगाईहिं । संवेहो पगइ ठिई, अणुभागपएसओ नेओ ॥ ५४ ॥

बंधोदीरण त्ति—बन्धोदीरणासंक्रमसत्तोदयरूपाणां पञ्चानां पदार्थानां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशतः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदे-शानधिकृत्य जघन्याजघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टैः ×संबन्धः (संवेधः) परस्परमेककालमागमाविरोधेन मीलनं । यथा ज्ञानावरणीयस्य जघन्ये स्थितिबन्धे जघन्योऽनुभागबन्धः, जघन्यः प्रदेशबन्धः, अजघन्याः स्थित्युदीरणासंक्रमसत्तोदया इत्यादिरूपं, तत्पूर्वापरौ सुष्ठु परिभाव्य ज्ञातव्यम् ॥ ५४ ॥

×(य०उ०२०) माटे जुओ पृष्ठ अ॥१३॥ थी–अ॥५८॥ सुधी ।

गाथार्थः—बन्धो०दयाणं=बन्ध, उदीरणा, संक्रम, सत्ता अने उदयना, पगइ०पएसओ=प्रकृति, स्थिति, अनुभाग अने प्रदेश आश्रयी, जहन्नगाईहिं=जघन्यादिक चार विकल्पोवडे, संवेधो=संवेध, नेओ=जाणवो. ५४.

तदेवमुक्ता सत्ता, तदभिधानाच्च यत्प्राक् प्रतिज्ञातं 'कम्मट्ठगस्स करणट्ठगुदयसंताणि वोच्छामि' इति तत्समर्थितं। संप्रति प्रकरणपरिज्ञाननिबन्धनां विशिष्टफलसंप्राप्तिमाह—

करणोदयसंतविऊ, तन्निज्जरकरणसंजमुज्जोगा। कम्मट्ठगुदयनिट्ठा–जणियमणिट्ठं सुहमुवेंति ॥ ५५ ॥

करणोदय त्ति–करणानामुक्तस्वरूपाणामुदयसत्तयोश्च सम्यक् परिज्ञानयुक्ताः। 'तन्निज्जरकरणसंजमुज्जोग त्ति' तासां करणोदयसत्तानां या निर्जरा तस्याः करणं निर्वर्तनं तदर्थं संयमं प्रति उद्योग उद्यमो येषां ते तन्निर्जराकरणसंयमोद्योगाः। ते इत्थंभूताः सन्तः किमित्याह—कर्माष्टकोदय(सत्ता)निष्ठाजनितं कर्माष्टकस्याष्टानां कर्मणामुदयनिष्ठया, उदयग्रहणं बन्धसत्ताद्युपलक्षणं, ततोऽयमर्थः–बन्धोदयसत्ताक्षयेण जनितमुत्पादितं यत् 'मणिट्ठं ति' मनस इष्टं। अथवा 'अणिट्ठं ति' न विद्यते निष्ठा पर्यवसानं यस्य तदनिष्ठं अपर्यवसानं सुखं। उभयत्रापि मोक्षसुखं। तत् उपयन्ति प्राप्नुवन्ति×। तस्मादवश्यमिह प्रकरणे प्रेक्षावद्भिर्निरन्तरमभ्यासः करणीयः, कृत्वा च यथाशक्ति संयमाध्वनि प्रवर्तितव्यं। प्रवृत्तेन च सता संक्लिष्टाध्यवसायरूपकुपथपरिहारे यत्न आस्थेय इति ॥ ५५ ॥

×(य०उ०२१) माटे जुओ पृष्ट अ॥५९॥ थी–अ॥६४॥ सुधी।

गाथार्थः—करणो०विऊ=करण, उदय अने सत्ताना जाणनार, तन्निजर०मुज्जोगा=तेनी निर्जरा करनार संयममां तत्पर, कम्म०निट्ठा–आठ कर्मना उदयना क्षयथी, जणियमणिट्ठं=थएल मनेच्छित, सुहमुवेंति=सुखने पामे छे. ५५.

संप्रत्याचार्य आत्मन औद्धत्यं परिहरन्नन्येषां बहुश्रुतानां प्रकरणार्थपरिभावनाविषये प्रार्थनां च कुर्वन् प्रेक्षावतां प्रकरणविषये उपादेयबुद्धिपरिग्रहार्थं प्रकरणस्य परंपरया सर्वविन्मूलतां ख्यापयति—

इय कम्मप्पगडीओ, जहासुयं नीयमप्पमइणा वि। सोहियणाभोगकयं. कहंतु वरदिट्ठिवायन्नू। । ५६ ॥

इय ति—अल्पमतिनापि अल्पबुद्धिनापि सता। इत्येवमुक्तेन प्रकारेण गुरुचरणकमलपर्युपासनां कुर्वता गुरुपादमूले यथा मया श्रुतं तथा कर्मप्रकृतिनामकात्प्राभृतात्। दृष्टिवादे हि चतुर्दश पूर्वाणि। तत्र च द्वितीयेऽग्रायणीयाभिधानेऽनेकवस्तुसमन्विते पूर्वे पञ्चमं वस्तु विंशतिप्राभृतपरिमाणं। तत्र कर्मप्रकृत्याख्यं चतुर्थं प्राभृतं चतुर्विंशत्यनुयोगद्वारमयं। तस्मादिदं प्रकरणं नीतं आकृष्टमित्यर्थः। अस्मिंश्च प्रकरणे यत्किमपि स्खलितमनाभोगकृतमनाभोगजनितं, छद्मस्थस्य हि कृतप्रयत्नस्याप्यावरणसामर्थ्यतोऽनाभोगः संभवति, ततोऽनाभोगजनितं यत्किमपि स्खलितं तत् शोधयित्वाऽपनीय। ये वरा उत्कलितबुद्ध्यतिशयसंपन्ना दृष्टिवादज्ञा द्वादशकांगविदस्ते। ममोपरि महतीमनुग्रहबुद्धिमास्थाय। तत्रान्यत् पदमागमानुसारि प्रक्षिप्य कथयन्तु यथेदमत्र पदं समीचीनं नेदमिति, न पुनरुपेक्षारूपोऽप्रसादस्तैः कर्तव्यः। अत्र 'इय कम्मपयडीओ' इत्यादिना ग्रन्थेन प्रकरणस्य सर्वविन्मूलता ख्यापिता द्रष्टव्या। दृष्टिवादो हि भगवता साक्षादर्थतोऽभिहितः। सूत्रतस्तु सुधर्मस्वामिना। दृष्टिवादान्तर्गतं च कर्मप्रकृतिप्राभृतं। तस्माच्चेदं प्रकरणमुद्धृतमिति परंपरया सर्वविन्मूलम् ॥ ५६ ॥ ४७४ ॥

गाथार्थः—इय=ए प्रमाणे, नीय०इणा वि=अल्प मति वडे पण, जहासुयं=जेम (गुरुमुखे) सांभळ्युं तेम, कम्मप्पगडीओ=कर्मप्रकृति प्राभृतमांथी, आ प्रकरण रच्युं. सोहिय०कयं=तेमां जे अनुपयोगथी कहेवायुं होय ते शोधीने, वर०वायन्नू=उत्तम दृष्टिवादने जाणनारा, कहंतु=कहो ५६

इह शास्त्रस्यादौ मध्येऽवसाने च मंगलमवश्यमभिधातव्यं । आदिमंगलाभिधाने हि शास्त्रमविघ्नेन परिसमाप्तिमियर्ति, मध्यमंगलाभिधानतश्च शिष्यप्रशिष्यादिपरंपरागमनेन स्थैर्यमाधत्ते, पर्यन्तमंगलाभिधानप्रभावतः पुनः शिष्यप्रशिष्यादिभिरवधार्यमाणं तेषां चेतसि सुप्रतिष्ठितं भवति । तत्रादिमंगलं 'सिद्धं सिद्धत्थसुयं' इत्याद्युक्तं । मध्यमंगलं तु 'अकरण अणुइन्नाए अणुयोगधरे पणिवयामि' इति । संप्रति पुनः पर्यवसानमंगलमाह—

जस्स वरसासणावयव-फरिसपविकसिय विमलमइकिरणा। विमलंति कम्ममइले. सो मे सरणं महावीरो।५७

जस्स त्ति–यस्य भगवतो महावीरस्य वरमनुत्तरं यच्छासनं तदवयवसंस्पर्शात् ये प्रकर्षेण विकसिता उद्बोधं गता विमला अपगतमिथ्याज्ञानत्वरूपमला मतिकिरणा मतिरश्मयः ते कर्ममलिनान् कर्मतमोमलीमसान् असुमतो विमलयन्ति विमलीकुर्वन्ति। स भगवान महावीरो वर्धमानस्वामी मे मम संसारभयभीतस्य शरणं परित्राणहेतुः, नान्य इति ॥ ५७ ॥ ४७५ ॥

कर्मप्रपञ्चं जगतोऽनुबन्धक्लेशावहं वीक्ष्य कृपापरीतः । क्षयाय तस्योपदिदेश रत्नत्रयं स जीयाज्जिनवर्धमानः ॥ १ ॥
निरस्तकुमतध्वान्तं सत्पदार्थप्रकाशकम् । नित्योदयं नमस्कुर्मो जैनसिद्धान्तभास्करम् ॥ २ ॥
पूर्वान्तर्गतकर्मप्रकृतिप्राभृतसमुद्धृता येन । कर्मप्रकृतिरियमतः श्रुतकेवलिगम्यभावार्था ॥ ३ ॥ युग्मम् ॥
ततः क्व चैषा विषमार्थयुक्ता क्व चाल्पशास्त्रार्थकृतश्रमोऽहम् । तथापि सम्यग्गुरुसंप्रदायात् किञ्चित्स्फुटार्था विवृता मयैषा ॥४॥

गाथार्थः—जस्स=जेमना, वर०यव=उत्तम शासनरूपी अवयवना, फरिस=स्पर्शवडे, पवि०किरणा=प्रफुल्लित निर्मल बुद्धिरूपी किरणो, कम्ममइले=कर्मथी मलिन प्राणीओने, विमलंति=निर्मल करे छे, सो=ते, महावीरो=महावीर प्रभु, मे=मने, सरणं=शरण थाओ.'५७.

कर्मप्रकृतिनिधानं बह्वर्थं येन मादृशां योग्यम् । चक्रे परोपकृतये श्रीचूर्णिकृते नमस्तस्मै ॥ ५ ॥
एनामतिगभीरां कर्मप्रकृतिं विवृण्वता कुशलम् । यदवापि मलयगिरिणा सिद्धिं तेनाश्नुतां लोकः ॥ ६ ॥
अर्हन्तो मंगलं मे स्युः सिद्धाश्च मम मंगलम् । मंगलं साधवः सम्यग् जैनो धर्मश्च मंगलम् ॥ ७ ॥

॥ इति श्रीमलयगिरिविरचिता कर्मप्रकृतिटीका ॥

×(य०उ०२२) ज्ञात्वा कर्मप्रपञ्चं निखिलतनुभृतां दुःखसंदोहबीजं, तद्विध्वंसाय रत्नत्रयमथसमर्थं यो हितार्थी दिदेश । अन्तः-सङ्क्रान्तविश्वव्यतिकरविलसत्कैवलैकात्मदर्शः, स श्रीमान् विश्वरूपः प्रतिहतकुमतः पातु वो वर्द्धमानः ॥१॥ सूरिश्रीविजयादिदेवसुगुरोः पट्टाम्बराहर्मणौ, सूरिश्रीविजयादिसिंहसुगुरौ शक्रासने भेजुषि । सूरिश्रीविजयप्रभे श्रितवति प्राज्यं च राज्यं कृतो, ग्रन्थोऽयं वित-नोतु कोविदकुले मोदं विनोदं तथा ॥२॥ सूरिश्रीगुरुहीरशिष्यपरिषत्कोटीरहीरप्रभाः, कल्याणाद्विजयाभिधाः समभवँस्तेजस्विनो वाचकाः । तेषामन्तिषदश्च लाभविजयप्राज्ञोत्तमाः शाब्दिकश्रेणिकीर्तितकार्तिकीविधिरुचिप्रस्पर्द्धिकीर्त्तिप्रथाः ॥ ३ ॥ तच्छिष्याः स्म भवन्ति जीतविजयाः सौभाग्यभाजो बुधा, भ्राजन्ते सनया नयादिविजयास्तेषां सतीर्थ्या बुधाः । तत्पादाम्बुजभृङ्गपद्मविजय-प्राज्ञानुजन्मा बुध–स्तत्त्वं किञ्चिदिदं यशोविजय इत्याख्याभृदाख्यातवान् ॥ ४ ॥ इदं हि शास्त्रं श्रुतकेवलिस्फुटाधिगम्य पूर्वो-द्धृतभावपावनम् । ममेह धीर्वामनयष्टिवद्यथौ तथापि शक्त्यैव विभोरियद्भुवम् ॥ ५ ॥ प्राक्तनार्थलिखनाद्वितन्वतो नेह कश्चि-दधिको मम श्रमः । वीतरागवचनानुरागतः पुष्टमेव सुकृतं तथाप्यतः ॥ ६ ॥

॥ इति न्यायविशारदन्यायाचार्य श्रीमद्यशोविजयवाचकपुङ्गवविरचितकर्मप्रकृतिवृत्तेः **विशेषाधिकाराः** ॥

॥ आ० श्रीमलयगिरिकृता कर्मप्रकृतिटीका समाप्ता ॥



× (य०उ०१९) इह प्रकृतिबन्धोदयोदीरणासत्ताश्रितं भूयस्कारादिस्वरूपं पञ्चसंग्रहानुसारेण भाव्यते—तत्र मूलप्रकृतीनां चत्वारि बन्धस्थानानि एका षट् सप्ताष्टौ च। तत्रैकां प्रकृतिं सातवेदनीयलक्षणां बध्नत एका, सा चोपशान्तमोहादेः। षट् प्रकृतीर्बध्नतः षट्, ताश्च सूक्ष्मसंपरायस्य। सप्त बध्नतां सप्त, ताश्च मिश्रापूर्वकरणानिवृत्तिबादराणां सदा, शेषाणां चायुर्बन्धाभावे। अष्टौ बध्नतामष्टौ, ताश्च मिश्रवर्जितमिथ्यादृष्ट्यादिप्रमत्तसंयतान्तानामायुर्बन्धकाले द्रष्टव्याः। अत्र त्रयो भूयस्काराः, तथाहि—उपशान्तमोहगुणस्थानके एकां प्रकृतिं बद्ध्वा ततः प्रतिपत्य सूक्ष्मसम्परायगुणस्थाने षट् प्रकृतीर्बध्नतः प्रथमे समये भूयस्कारः, शेषकालं त्ववस्थितः, एष प्रथमो भूयस्कारः। ततोऽपि प्रतिपततोऽनिवृत्तिबादरसम्पराये सप्त बध्नतः प्रथमसमये द्वितीयो भूयस्कारः, शेषकालं त्ववस्थितः। सप्त बद्ध्वाऽष्टौ प्रमत्तादिगुणस्थानेषु बध्नतः प्रथमसमये तृतीयो भूयस्कारः, शेषकालं त्ववस्थितः। तथा त्रयोऽल्पतराः, ते चैवम्—अष्ट बद्ध्वा सप्त बध्नतः प्रथमे समयेऽल्पतरः, शेषकालं त्ववस्थितः. इत्येष प्रथमोऽल्पतरः। यदा तु सप्त बद्ध्वा सूक्ष्मसम्परायगतः षड् बध्नाति तदा प्रथमसमये द्वितीयोऽल्पतरः। शेषकालं त्ववस्थितः। षड् बध्ध्वोपशान्तमोहे क्षीणमोहे वैकां बध्नतः प्रथमसमये तृतीयोऽल्पतरः; शेषकालं त्ववस्थितः। तदेवं मूलप्रकृतिबन्धस्थानेषु त्रयो भूयस्कारास्त्रयोऽल्पतराश्चत्वारश्चावस्थिता बन्धाश्चतुर्ष्वपि स्थानेष्ववस्थितस्य प्राप्यमाणत्वादिति सिद्धं। अवक्तव्यबन्धस्तु मूलप्रकृतीनां न संभवति, सर्वमूलप्रकृत्यबन्धकस्यायोगिकेवलिनो भूयोऽपि बन्धकत्वाभावात्।

उदयस्थानानि मूलप्रकृतीनां त्रीणि—अष्टौ सप्त चतस्रश्चेति। तत्राष्टानामुदयः सूक्ष्मसम्परायं यावत्, मोहोदयं विना सप्तानामुपशान्ते क्षीणमोहे वा, चतसृणां घातिवर्जानां केवलिनः, अत्रैक एव भूयस्कारः। उपशान्तमोहे सप्तवेदको भूत्वा ततः प्रतिपाते

भूयोऽप्यष्टौ वेदयत इति। चतुर्वेदकस्तु भूत्वा सप्ताष्टौ वा न वेदयते, चतुर्वेदकत्वस्य सयोग्यवस्थायां भावात्, ततश्च प्रतिपाताभावात्. तत एक एवात्र भूयस्कारो, द्वावल्पतरौ, त्रयोऽवस्थिताः, अवक्तव्यस्तु नास्ति, सर्वकर्मावेदकस्य सिद्धस्य भूयोऽपि कर्मवेदकत्वासंभवात्।

उदीरणास्थानानि मूलप्रकृतीनां पञ्च। तथाहि—अष्टौ, सप्त, षट्, पञ्च, द्वे चेति। अत्र त्रयो भूयस्काराः, तथाहि—उपशान्तमोहः पञ्चकर्मोदीरको भूत्वा प्रतिपतन् सूक्ष्मसम्पराये समागतः षण्णामुदीरको भवति, ततोऽपि प्रतिपतन् प्रमत्तसंयतगुणस्थानादावागत आयुष्यावलिकाशेषे सप्तानां, तत ऊर्ध्वं परभवेऽष्टानां, द्विकोदीरकास्तु क्षीणमोहः सयोगिकेवली च, न चानयोरेकतरोऽपि प्रतिपततीत्येतदपेक्षया भूयस्कारो न लभ्यत इति त्रय एव भूयस्काराः, चत्वारोऽल्पतराः, पञ्चावस्थिताः, अवक्तव्यस्त्वत्रापि नास्ति, सर्वमूलप्रकृत्यनुदीरकस्यायोगिकेवलिनो भूयोऽप्युदीरकत्वाभावात्।

सत्तास्थानानि मूलप्रकृतीनां त्रीणि—अष्टौ सप्त चतस्रश्चेति। अत्रैकोऽपि भूयस्कारो न संभवति, सप्तादिसत्ताकस्य क्षीणमोहादेः प्रतिपाताभावेनाष्टादिसत्ताकत्वासंभवात्, द्वावल्पतरौ. त्रयोऽवस्थिताः, अवक्तव्यस्त्वत्रापि नास्ति, क्षीणशेषकर्मणो भूयः कर्मसत्ताया असंभवात्।

तदेवमुक्ता मूलप्रकृतीनां बन्धोदयोदीरणासत्तास्थानेषु भूयस्कारादयः, सम्प्रत्युत्तरप्रकृतीनां तेषु तेऽभिधातव्याः।

तत्र दर्शनावरणीयस्य त्रीणि बन्धस्थानानि—नव षट् चतस्रश्चेति। तत्र सर्वप्रकृतिसमुदायो नव, तद्बन्धश्चाद्यगुणस्थानद्वयं यावत्, ततः परं स्त्यानर्द्धित्रिकबन्धव्यवच्छेदे सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यादिषु षड्विधं बध्नतः प्रथमसमये प्रथमोऽल्पतरबन्धः। एतत्

षड्विधं बन्धस्थानमपूर्वकरणप्रथमसप्तभागं यावत्, ततः परं निद्राप्रचलाबन्धव्यवच्छेदे चतुर्विधं बध्नत आद्यसमये द्वितीयोऽल्पतरबन्धः। एतच्चतुर्विधं बन्धस्थानं सूक्ष्मसम्परायं यावत्, ततः कस्यचित् प्रतिपत्य षड्विधं बध्नतः प्रथमसमये प्रथमो भूयस्कारबन्धः। ततोऽपि प्रतिपत्य नवविधं बन्धत आद्यसमये द्वितीयो भूयस्कारबन्धः। अत्र नवविधादिषु त्रिष्वपि द्वितीयादिसमयेषु तदेव बध्नतस्त्रयोऽवस्थितबन्धाः। यदा तूपशान्तमोहावस्थायां दर्शनावरणप्रकृतीनां सर्वथाऽबन्धको भूत्वा पुनरद्धाक्षयेण प्रतिपत्य चतुर्विधं बध्नाति तदाऽऽद्यसमये प्रथमोऽवक्तव्यबन्धः, भूयस्कारादिलक्षणैर्वक्तुमशक्यत्वात्, द्वितीयादिसमयेषु त्ववस्थितः। यदा तूपशान्तमोहावस्थात एवायुःक्षयेणानुत्तरसुरेषूत्पद्यते तदा तत्राद्यसमय एव षड्विधं बध्नतो द्वितीयोऽवक्तव्यः, द्वितीयादिसमयेषु त्ववस्थितः। तदेवमत्र द्वौ भूयस्कारौ, द्वावल्पतरौ बन्धौ, अवस्थितास्तु गणनया षड् भवन्तोऽपि बन्धस्थानानि त्रीण्येवेति तद्भेदास्त्रय एव, अवक्तव्यौ तु बन्धौ द्वाविति स्थितं।

मोहनीयस्य दश बन्धस्थानानि—द्वाविंशतिरेकविंशतिः सप्तदश त्रयोदश नव पञ्च चतस्रः तिस्रो द्वे एका च (१०)। तत्र द्वाविंशतिकं बन्धस्थानं मिथ्यादृष्टौ, एकविंशतिकं सासादने, सप्तदशकं मिश्रेऽविरतसम्यग्दृष्टौ (च), त्रयोदशकं देशविरते, नवकं प्रमत्ताप्रमत्तयोरपूर्वकरणे च, पञ्चादीन्येकपर्यन्तानि अनिवृत्तिबादरे प्रथमादिषु पञ्चान्तेषु भागेषु। अत्र भूयस्कारा नव, ते चोपशमश्रेणीतः प्रतिपाते संज्वलनलोभरूपैकप्रकृतिबन्धादारभ्य क्रमेण वेदितव्याः। अल्पतरबन्धास्त्वष्टौ, यतो द्वाविंशतिबन्धादेकविंशतिबन्धे, एकविंशतिबन्धाद्वा सप्तदशबन्धे गमनं न संभवति द्वाविंशतिबन्धकस्य मिथ्यादृष्टेरेकविंशतिबन्धकसासादनभावस्यानन्तर्येणाप्राप्तेः, एकविंशतिबन्धकस्य च सासादनस्य नियमतो मिथ्यात्व एव गमनात् सप्तदशबन्धकमिश्राविरतसम्यग्दृष्टिभावालाभात्। अवस्थितबन्धा

दश "अवस्थितबन्धः सर्वत्रापि बन्धस्थानसम" इतिवचनात्। एकसप्तदशप्रकृत्यात्मकौ द्वावबक्तव्यबन्धौ। तौ चोपशान्तमोहगुणस्थानादद्धाक्षयेण भवक्षयेण च प्रतिपाते भावनीयौ।

नाम्नो बन्धस्थानान्यष्टौ। तथाहि—त्रयोविंशतिः पंचविंशतिः, षड्विंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशदेका च। एतानि च नानाजीवानपेक्ष्य नानाप्रकाराणीति सप्ततिकार्थसंग्रहाद्भावनीयानि। अत्र भूयस्काराः षट् त्रयोविंशत्यादेः पञ्चविंशत्यादिषु एकत्रिंशदन्तेषु गमनात् एकत्रिंशद्बन्धादुत्तीर्यैकप्रकृतिबन्धस्य च क्रियमाणस्य गुरुत्वाभावादष्टान्तरेष्वपि षण्णामेव भूयस्काराणां संभवात्। "अथ प्रतिपातकाले एकस्याः प्रकृतेर्बन्धमाधायैकत्रिंशत्प्रकृतिबन्धमपि करोति, एकप्रकृत्यपेक्षया चैकत्रिंशत्प्रकृतिबन्धो भूयस्कार इति सप्त भूयस्काराः प्राप्नुवन्ति। युक्तं चैतत्, सप्तानां भूयस्काराणां शास्त्रान्तरेऽप्यभिधानात्। उक्तं च शतकचूर्णौ—'एक्काओ वि एक्कतीसं जाइ त्ति भूओगारा सत्त' इति," "तदयुक्तं, एकत्रिंशद्बन्धरूपस्य भूयस्कारस्याष्टाविंशत्याद्यपेयक्षा प्रागेव गृहीतत्वात् एकापेक्षया तस्य पृथग्भावायोगात्। न ह्यवधिभेदाद्भूयस्कारभेदो विवक्ष्यते, तथा सति भूयस्काराणामतिबाहुल्यप्रसक्तेः। तथाहि—कदाचिदष्टाविंशतेरेकत्रिंशद्बन्धं गच्छति कदाचिदेकोनत्रिंशतः कदाचित्त्रिंशतः कदाचिदेकस्याः, तथा कदाचित्त्रयोविंशतेरप्यष्टाविंशतिबन्धं गच्छति कदाचित्पञ्चविंशतेरित्यादि। तदेवं सप्तातिरिक्ता बहवोऽपि भूयस्काराः प्राप्नुवन्ति। न चैतदिष्टं। ततो नावधिभेदाद्भूयस्कारभेद इति षडेव भूयस्कारभेदाः। शास्त्रान्तरे सप्ताभिधानं बन्धादनुत्तीर्णावधिभेदो न भूयस्कारभेदप्रयोजकः, तदुत्तीर्णावधिभेदस्तु भूयस्कारभेदप्रयोजक इति प्रसङ्गाभिप्रायेण, तत्रापि परमार्थतः षडन्तर्भाव एवोन्नेय इति तत्त्वं"। अल्पतराः सप्त, तथाहि—देवत्वं प्राप्तस्यैकत्रिंशतस्त्रिंशति गमनं संभवति, तस्यैव देवभवाच्च्यवमानस्य त्रिंशत एकोनत्रिंशति, तथा क्षपकश्रेण्यारोहे उपशमश्रेण्या-

रोहे वाऽष्टाविंशत्यादेरेकस्यां, नानाजीवानां यथायोगं त्रिंशदादेस्त्रयोविंशत्यन्तेषु गमनं। ततः सप्तालपतराः। अवस्थिता अष्टैव। अवक्तव्यास्तु त्रयः, ते पुनरेवं—उपशान्तमोहावस्थायां नामकर्मणः सर्वथाऽबन्धको भूत्वा इहैवोपशान्ताद्धाक्षयेण यदा पुनरप्येकविधं बध्नाति तदाद्यसमये प्रथमोऽवक्तव्यबन्धः, यदा चोपशान्तमोहावस्थायानेवायुःक्षयेणानुत्तरसुरेषु समुत्पद्यते उपात्ततीर्थकरनामा च तदा तस्य प्रथमसमय एव मनुष्यगतिप्रायोग्यां तीर्थकरनामसहितां त्रिंशतं बध्नतो द्वितीयोऽवक्तव्यबन्धः, यदि चानुपात्ततीर्थकरनामा भवति तदा तस्य तीर्थकरनामरहितां तत्रैव मनुष्यगतिप्रायोग्यामेकोनत्रिंशतं बध्नतः प्रथमसमये तृतीयोऽवक्तव्यबन्धः।

शेषेषु ज्ञानावरणवेदनीयायुर्गोत्रान्तरायलक्षणेषु पञ्चसु कर्मसु बन्धस्थानमेकैकमेव भवति, ज्ञानावरणान्तराययोः प्रकृतिपञ्चकस्य समुदितस्यैव वेदनीयायुर्गोत्राणां चान्यतरैकप्रकृतेरेव बन्धात्। अवस्थितबन्धश्चैतेषां प्रभूतकालमवस्थितत्वेन बध्यमानत्वादेकैकोऽस्त्येव। अवक्तव्यबन्धोऽपि वेदनीयवर्जानां चतुर्णामेकैकोऽस्ति। तत्र ज्ञानावरणस्यान्तरायस्य चोपशान्तमोहगुणस्थानाद्धाक्षयेण भवक्षयेण वा प्रतिपाते पञ्चपञ्चप्रकृत्यात्मकः प्रथमसमये एकैकोऽवक्तव्यो बन्धः। गोत्रस्य तूपशान्तमोहगुणस्थानादेव द्विधाऽपि प्रतिपतितस्योच्चैर्गोत्रं बध्नत प्रथमसमये उच्चैर्गोत्रप्रकृत्यात्मक एकोऽवक्तव्यबन्धः। आयुषो बन्धारम्भे तां तामायुःप्रकृतिं बध्नतः प्रथमसमये तत्तदेकप्रकृत्यात्मक एकोऽवक्तव्यबन्धः। वेदनीयस्य त्ववक्तव्यबन्धः सर्वथाऽनुपपन्नः, अयोग्यवस्थायां तद्बन्धे व्यवच्छिन्ने भूयोऽपि बन्धासंभवात्॥

तदेवमुक्ताः प्रत्येकं ज्ञानावरणीयाद्युत्तरप्रकृतीनां बन्धस्थानेषु भूयस्कारादयः। सम्प्रति सामान्यतः सर्वोत्तरप्रकृतीनां बन्धस्थानेषु ते वक्तव्याः। तत्र सामान्यतः सर्वोत्तरप्रकृतीनां बन्धस्थानान्येकोनत्रिंशत्, तद्यथा—एका सप्तदश तत ऊर्ध्वमेकोत्तराणि स्थानानि

द्वाविंशतिं यावत् ततः षड्विंशतिः ततस्त्रिपञ्चाशदादीनि द्विषष्टिवर्जान्येकोत्तरवृद्धानि स्थानानि चतुःसप्ततिं यावद्वाच्यानि १–१७–१८–१९–२०–२१–२२–२६–५३–५४–५५–५६–५७–५८–५९–६०–६१–६३–६४–६५–६६-६७–६८–६९–७०-७१–७२–७३–७४ । अत्राष्टाविंशतिर्भूयस्काराः, तथाहि—एकप्रकृत्यात्मकं स्थानमुपशान्तमोहगुणस्थानादौ, तत उपशान्तमोहात् परिभ्रंशे सूक्ष्मसम्परायमागतस्य ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टययशःकीर्त्युच्चैर्गोत्ररूपाः षोडश प्रकृतीरधिका बध्नतः सप्तदशप्रकृत्यात्मक एको भूयस्कारः । ततोऽनिवृत्तिबादरं प्रविशतः प्रथमतः संज्वलनलोभमेकमधिकं बध्नतोऽष्टादशप्रकृत्यात्मको द्वितीयो भूयस्कारः । ततो मायामपि बध्नत एकोनविंशतिप्रकृत्यात्मकस्तृतीयः । ततः संज्वलनमानबन्धे विंशतिप्रकृत्यात्मकस्तुरीयः । ततः संज्वलनक्रोधस्यापि बन्धे एकविंशतिप्रकृत्यात्मकः पञ्चमः । ततोऽप्यधोऽवतरतः पुरुषवेदमपि बध्नतो द्वाविंशतिप्रकृत्यात्मकः षष्ठः । ततोऽपूर्वकरणगुणस्थानकं प्रविशतो भयजुगुप्साहास्यरतिरूपप्रकृतिचतुष्टयमधिकं बध्नतः षड्विंशतिप्रकृत्यात्मकः सप्तमः । ततस्तस्मिन्नेवापूर्वकरणगुणस्थानके क्रमेणाधोऽवतरतो नाम्नोऽष्टाविंशतिं बध्नतो यशःकीर्त्तिवर्जाः शेषाः सप्तविंशतिप्रकृतयोऽधिकाः प्राप्यन्त इति त्रिपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकोऽष्टमो भूयस्कारः । तस्यैव तीर्थकरनामसहितां देवगतिप्रायोग्यामेकोनत्रिंशतं बध्नतश्चतुःपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मको नवमः । आहारकद्विकसहितां त्रिंशतं बध्नतः पञ्चपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मको दशमः । आहारकद्विकतीर्थकरनामसहितामेकत्रिंशतं बध्नतः षट्पञ्चाशत्प्रकृत्यात्मक एकादशः । ततस्तस्मिन्नेवापूर्वकरणगुणस्थानकेऽधस्तादवतरतो नामत्रिंशता सह निद्राद्विकं बध्नतः सप्तपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मको द्वादशः । एकत्रिंशता सह निद्राद्विकं बध्नतोऽष्टपञ्चाशत्प्रकृत्यात्मकस्त्रयोदशः । ततोऽप्रमत्तगुणस्थाने समागतस्य तामेवाष्टपञ्चाशतं देवायुषा सह बध्नत एकोनषष्टिप्रकृत्यात्मकश्चतुर्दशः । ततो देशविरतगुणस्थानमागतस्य नाम्नोऽष्टाविंशतिब-

न्धकस्य प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्टयमधिकं बध्नतः षष्टिप्रकृत्यात्मकः पञ्चदशः । तस्यैव नाम्न एकोनत्रिंशतं बध्नत एकषष्टिप्रकृत्यात्मकः षोडशः । ततोऽविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमागतस्य नाम्नोऽष्टाविंशतिबन्धकस्यायुरबन्धेऽप्रत्याख्यानकषायचतुष्टयस्याधिकस्य बन्धे त्रिषष्टिप्रकृत्यात्मकः सप्तदशः । इह प्रकारान्तरासंभवात् द्विषष्टिप्रकृत्यात्मकं बन्धस्थानं सर्वथा न संभवति, ततस्तदात्मको भूयस्कारो न लभ्यते । ततस्तस्यैवाविरतसम्यग्दृष्टेर्नाम्नः एकोनत्रिंशतं बध्नतश्चतुःषष्टिप्रकृत्यात्मकोऽष्टादशो भूयस्कारः । तस्यैव मनुष्यगतिप्रायोग्यां त्रिंशतं बध्नतः पञ्चषष्टिप्रकृत्यात्मक एकोनविंशतितमः । तस्यैवायुर्बन्धकस्य षट्षष्टिप्रकृत्यात्मको विंशतितमः । ततो मिथ्यात्वं गतस्य नाम्नस्त्रयोविंशतिं बध्नत आयुर्बन्धकस्य मिथ्यात्वानन्तानुबन्धिचतुष्टयस्त्यानर्द्धित्रिकाणि च बध्नत सप्तषष्टिप्रकृत्यात्मक एकविंशतितमः । तस्यैव पञ्चविंशतिबन्धकस्यायुरबन्धेऽष्टषष्टिप्रकृत्यात्मको द्वाविंशतितमः । तस्यैव पञ्चविंशतिबन्धकस्यायुषो बन्धे एकोनसप्ततिप्रकृत्यात्मकस्त्रयोविंशतितमः । तस्यैव मिथ्यादृष्टेः षड्विंशतिबन्धकस्यायुषो बन्धे सप्ततिप्रकृत्यात्मकश्चतुर्विंशतितमः । तस्यैव नाम्नोऽष्टाविंशतिबन्धकस्यायुरबन्धे एकसप्ततिप्रकृत्यात्मकः पञ्चविंशतितमः । तस्यैवायुर्बन्धकस्य द्वासप्ततिप्रकृत्यात्मकः षड्विंशतितमः । तस्यैव मिथ्यादृष्टेरेकोनत्रिंशतमायुश्च बध्नतस्त्रिसप्ततिप्रकृत्यात्मकः सप्तविंशतितमः । तस्यैव नाम्नस्त्रिंशतं बध्नत आयुर्बन्धकस्य चतुःसप्ततिप्रकृत्यात्मकोऽष्टाविंशतितमः । इह केचिद्भूयस्कारा अन्यान्यावधिस्थानाद्भूयो भूयः संभवन्तोऽप्येकवारं गृहीतत्वान्न पृथग्गणनायामधिक्रियन्ते, ततोऽष्टाविंशतिरेव भूयस्काराः, एतदनुसारेणाल्पतरा अप्यष्टाविंशतिरेव भावनीयाः, अवस्थितबन्धास्तु स्थानसमा इत्येकोनत्रिंशत्, अवक्तव्यस्त्वत्रानुपपन्नः सर्वोत्तरप्रकृत्यबन्धकोभूतस्य भूयो बन्धकत्वानुपपत्तेः ॥

तदेवमुक्ताः प्रत्येकं ज्ञानावरणीयाद्युत्तरप्रकृतीनां सामान्यतः सर्वोत्तरप्रकृतीनां च बन्धस्थानेषु भूयस्कारादयोऽथोदयस्थानेषु

वक्तव्याः । तत्र प्रथमतः प्रत्येकं ज्ञानावरणीयाद्युत्तरप्रकृतीनामुदयस्थानेषु भावनीयाः । ते चैवम्—ज्ञानावरणीयान्तराययोर्वेदनीयायुर्गोत्राणां चैकैकमुदयस्थानं पञ्चपञ्चप्रकृत्यात्मकमेकैकप्रकृत्यात्मकं च । दर्शनावरणीयस्य द्वे उदयस्थाने—चतस्रः पञ्च चेति । तत्र चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणरूपाश्चतस्रः, ता एव निद्रापञ्चकान्यतमसहिताः पञ्च, निद्रा हि परावर्त्तमानोदया इति द्वित्रादिका नोदयमायान्ति । अत्रैको भूयस्कारः, एक एव चाल्पतरः, द्वाववस्थितौ, अवक्तव्यस्तु नास्ति, क्षीणमोहे सर्वदर्शनावरणप्रकृत्युदयव्यवच्छेदे सति भूय उदयासंभवात् ।

मोहनीयस्य नवोदयस्थानानि—एका द्वे चतस्रः पञ्च षट् सप्ताष्टौ नव दश च । एतानि चाग्रे संवेधे भावयिष्यन्ते अत्राष्टौ भूयस्काराः, अष्टावल्पतराः, नवावस्थिताः, अवक्तव्या उदयास्तु पञ्च, तथाहि—एका षट् सप्ताष्टौ नव च । तत्र यदोपशान्तमोहाद्धाक्षयेण प्रतिपतति तदा सूक्ष्मसम्परायं प्रविशतः संज्वलनलोभरूपैकप्रकृत्यात्मकोऽवक्तव्योदयः । भवक्षयेण ततः प्रातपाते चाद्यसमय एव चतुर्थगुणस्थानं गच्छति । स च यदि क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्भवस्य जुगुप्सायाश्चावेदकस्तदा तस्यानन्तानुबन्धिवर्जा अन्यतमे त्रयः क्रोधादिकाः पुरुषवेदो हास्यरतियुगलमिति षट् प्रकृतय उदये प्राप्यन्त इत्याद्यसमये षट्प्रकृत्यात्मकोऽवक्तव्योदयः । यदि चाद्यसमय एव क्षायोपशमिकसम्यक्त्वं वेदयते क्षायिकसम्यग्दृष्टिरेव वा सन् भयं जुगुप्सां वाऽनुभवति तदा सप्तप्रकृत्यात्मकः । क्षायोपशमिकसम्यक्त्वभययोस्तज्जुगुप्सयोर्वा क्षायिकसम्यक्त्ववतोऽप्याद्यसमये भयजुगुप्सयोर्युगपदुदये वाऽष्टप्रकृत्यात्मकः । क्षायिकसम्यक्त्वाभावे क्षायोपशमिकसम्यक्त्वभयजुगुप्सानां समुदितानामुदये नवप्रकृत्यात्मकः ।

नाम्न उदयस्थानानि द्वादश, तथाहि—विंशतिरेकविंशतिश्चतुर्विंशत्यादीन्येकत्रिंशदन्तानि नवाष्टौ च, (२०–२१–२४–

२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-९-८) एतान्यप्यग्रे संवेधेऽभिधास्यामः । अत्राष्टौ भूयस्कारोदयाः, अष्टोदयान्नवोदये नवोदयाद्विंशत्युदये विंशत्युदयाच्चैकविंशत्युदयेऽगमनात् . किं त्वेकविंशत्युदयस्थानादारभ्य यथायोगं संसारे समुद्घाते वा चतुर्विंशत्याद्युदयस्थानेष्वेव गमनसंभवात् । अल्पतरोदया नव, यतो नवकोदयादष्टकोदये एकविंशत्युदयाद्विंशत्युदये पञ्चविंशत्युदयाच्च चतुर्विंशत्युदये गमनं न संभवति, ततो नवैवाल्पतरोदयाः, ते च तीर्थकरातीर्थकरयोः समुद्घातप्रतिपत्तिमयोगित्वप्रतिपत्तिं चाश्रित्य भाव्यन्ते—तत्र स्वभावस्थस्यातीर्थकृतो मनुजगतिपञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरपर्याप्तसुभगादेययशःकीर्त्यगुरुलघुतैजसकार्मणनिर्माणवर्णादिचतुष्टयस्थिरास्थिरशुभाशुभाद्यसंहननोपघातप्रत्येकौदारिकद्विकषडन्यतमसंस्थानपराघातोच्छ्वासान्यतरविहायोगतिसुस्वरदुःस्वरान्यतरलक्षणत्रिंशत्प्रकृत्युदयो भवति । एष एव तीर्थकृतस्तीर्थकरनामान्वित एकत्रिंशदुदयः । ततः समुद्घातं कुर्वतोऽतीर्थकृतो द्वितीयसमये औदारिकमिश्रकाययोगे वर्त्तमानस्य पराघातोच्छ्वासान्यतरविहायोगतिसुस्वरदुःस्वरान्यतरनिरोधे षड्विंशतिः १ । पराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतिसुस्वरनिरोधे तीर्थकृतः सप्तविंशतिः २ । षड्विंशतिरेवातीर्थकरकेवलिनः समुद्घातं प्रविष्टस्य तृतीयसमये कार्मणकाययोगे वर्त्तमानस्योदितसंस्थानाद्यसंहननौदारिकद्विकोपघातप्रत्येकरूपप्रकृतिषट्कनिरोधे विंशतिः ३ । तस्मिन्नेव समये तीर्थकृत उक्तप्रकृतिषट्कनिरोधे एकविंशतिः ४ । अयोगित्वं प्रतिपद्यमानस्य तु तीर्थकृत एकत्रिंशतः स्वरनिरोधे त्रिंशद्भवति ५ । ततोऽप्युच्छ्वासे निरुद्धे एकोनत्रिंशत् ६ । अतीर्थकृतस्त्रिंशतः स्वरनिरोधे एकोनत्रिंशत्, तत उच्छ्वासे निरुद्धेऽष्टाविंशतिः ७ । ततोऽष्टाविंशतेरतीर्थकृत्केवलिनोऽयोगित्वप्रतिपत्तिप्रथमसमये पराघातोदितविहायोगतिप्रत्येकोपघातान्यतमसंस्थानाद्यसंहननौदारिकद्विकस्थिरास्थिरागुरुलघुशुभाशुभतैजसकार्मणवर्णादिचतुष्टयनिर्माणलक्षणविंशतिप्रकृत्युदयव्यवच्छेदेऽष्टकोदयः ८ । तीर्थकृत्केवलिन एकोनत्रिंश-

त उक्तविंशतिप्रकृत्युदयव्यवच्छेदे नवकोदयः ९ । संसारिणां त्वेकत्रिंशदादेरुदयस्थानादेकविंशत्यन्तेषु कतिपयेष्वेवाल्पतरोदयस्थानेषु सङ्क्रमणं । तत इत्थं विचार्यमाणमल्पतरोदयस्थानमधिकं न प्राप्यत इति नवैवाल्पतरोदयाः । अवस्थितोदयाः स्थानतुल्याः । अवक्तव्योदयस्त्वसंभवी, यतः सर्वनामोत्तरप्रकृत्युदयव्यवच्छेदोऽयोगिचरमसमये, न च ततः पुनरुदय इति ॥

तदेवमुक्ताः प्रत्येकं ज्ञानावरणीयाद्युत्तरप्रकृतीनामुदयस्थानेषु भूयस्कारादयः । सम्प्रति सामान्यतः सर्वोत्तरप्रकृतीनामुदयस्थानेषु वक्तव्याः । तत्र सामान्यतः सर्वोत्तरप्रकृतीनामुदयस्थानानि षड्विंशतिः । तद्यथा—एकादश द्वादश त्रयोविंशतिश्चतुर्विंशतिः, तत एकोनत्रिंशदादीनि चतुस्त्रिंशदन्तानि ततश्चतुश्चत्वारिंशदादीनि एकोनषष्ट्यन्तानि ११–१२–२३–२४–२९–३०–३१–३२–३३–३४–४४–४५–४६–४७–४८–४९–५०–५१–५२–५३–५४–५५–५६–५७–५८–५९ । तत्र मनुष्यगतिमनुष्यायुःपञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरपर्याप्तसुभगादेययशःकीर्त्तयोऽन्यतरवेदनीयमुच्चैर्गोत्रं चेत्येकादशप्रकृत्युदयोऽतीर्थकृतोऽयोगित्वावस्थायां । एष एव तीर्थकरनामान्वितो द्वादशोदयस्तीर्थकृतः । एतावेव द्वावुदयावगुरुलघुनिर्माणस्थिरास्थिरशुभाशुभतैजसकार्मणवर्णादिचतुष्टयरूपनामध्रुवोदयसहितौ समुद्घाते कार्मणकाययोगे त्रयोविंशतिचतुर्विंशत्युदयौ भवतः । एतेषूदयस्थानेषु न भूयस्कारप्राप्तिः, अयोगिनः सयोगित्वस्य अतीर्थकृतश्च तीर्थकरत्वस्याप्राप्तेः । तावेव त्रयोविंशतिचतुर्विंशत्युदयौ प्रत्येकोपघातौदारिकद्विकान्यतमैकसंभविसंस्थानाद्यसंहननसमेतौ यथासम्भवमेकोनत्रिंशत्त्रिंशदुदयौ भवतः । तथास्वभावस्थयोस्तीर्थकरातीर्थकरयोर्यविकत्रिंशत्त्रिंशदूपौ नाम्न उदयौ तावन्यतरवेदनीयमनुष्यायुरुच्चैर्गोत्रसमेतौ चतुस्त्रिंशत्त्रयस्त्रिंशदुदयौ भवतः । तयोः स्वरनिरोधे क्रमेण त्रयस्त्रिंशद्वात्रिंशदुदयौ । तयोरप्युच्छ्वासनिरोधे द्वात्रिंशदेकत्रिंशदुदयौ । एते दशोदयाः केवलिनां । एतेषु दशसूदयस्थानेषु षड् भूयस्कारोदयाः । ते चातीर्थ-

करतीर्थंकरावधिकृत्य क्रमेणैकोनत्रिंशत्त्रिंशदादयो द्रष्टव्याः । शेषास्तु न संभवन्ति । तत्र कारणमुक्तमेव । नवाल्पतरोदयाः, ते च चतुस्त्रिंशद्वर्जाः शेषाः सर्वेऽपि । चतुश्चत्वारिंशदुदयः क्षीणसप्तकस्याविरतसम्यग्दृष्टेरन्तरालगतौ वर्त्तमानस्य । तत्र ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कमन्तरायपञ्चकमनन्तानुबन्धिवर्जास्त्रयोऽन्यतमे क्रोधादयस्त्रयाणां वेदानामन्यतमो वेदः द्वयोर्युगलयोरन्यतरद्युगलमिति षड्मोहनीयप्रकृतयः सर्वसङ्ग्रहेण विंशतिर्घातिप्रकृतयः । तथा चतसृष्वन्यतमा गतिरन्यतमानुपूर्वी पञ्चेन्द्रियजातिः त्रसबादरपर्याप्तसुभगदुर्भगैकतरादेयानादेयैकतरयशःकीर्त्ययशःकीर्त्त्येकतरनिर्माणागुरुलघुस्थिरास्थिरशुभाशुभतैजसकार्मणानि वर्णादिचतुष्टयं चेति नाम्न एकविंशतिरन्यतरदायुरन्यतरद्वेदनीयमन्यतरद्गोत्रमिति सर्वाग्रेणाघातिप्रकृतयश्चतुर्विंशतिरुभयमीलनेन च चतुश्चत्वारिंशदुदयः । तत्रैव वेदकसम्यक्त्वभयजुगुप्सानामन्यतमैकप्रक्षेपे पञ्चचत्वारिंशदुदयः । अन्यतमद्वयप्रक्षेपे षट्चत्वारिंशदुदयः । त्रयप्रक्षेपे सप्त चत्वारिंशदुदयः । भवस्थस्य क्षायिकसम्यग्दृष्टेर्देवस्य नारकस्य वा प्रागुक्ता चतुश्चत्वारिंशत् आनुपूर्वीरहिता शरीरस्थस्य वैक्रियद्विकोपघातप्रत्येकसमचतुरस्रप्रक्षेपेऽष्टचत्वारिंशदुदयमायाति । ततो वेदकसम्यक्त्वभयजुगुप्सानामन्यतमैकप्रक्षेपे एकोनपञ्चाशत् । अन्यतमद्वयप्रक्षेपे पञ्चाशत् । युगपत्त्रयप्रक्षेपे एकपञ्चाशत् । यद्वा प्रागुक्तैव चतुश्चत्वारिंशदानुपूर्वीरहिता भवस्थस्य तिरश्चो मनुष्यस्य वा क्षायिकसम्यग्दृष्टेरौदारिकद्विकाद्यसंस्थानसंहननोपघातप्रत्येकलक्षणप्रकृतिषट्कप्रक्षेपे एकोनपञ्चाशत् । सैव वेदकसम्यक्त्वभयजुगुप्सानामन्यतमैकप्रकृतिप्रक्षेपे पञ्चाशत् । अन्यतमप्रकृतिद्वयप्रक्षेपे एकपञ्चाशत् । त्रयस्यापि प्रक्षेपे द्विपञ्चाशत् । निद्राप्रक्षेपे त्रिपञ्चाशत् । अथवा भवस्थदेवनारकयोग्याऽष्टचत्वारिंशत् शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य देवस्य नारकस्य वा क्षायिकसम्यग्दृष्टेः पराघातान्यतरविहायोगतिप्रक्षेपे पञ्चाशत्। ततोवेदकसम्यक्त्वभयजुगुप्सानामन्यतमैकप्रकृतिप्रक्षेपे एकपञ्चाशत्। अन्यतमद्वयप्रक्षेपे द्विपञ्चाशत्। त्रयस्यापि प्रक्षेपे त्रिपञ्चाशत्।

यद्वा तिरश्चो मनुष्यस्य वा शरीरस्थस्य क्षायिकसम्यग्दृष्टेः प्रागुक्तैकोनपञ्चाशच्छरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य पराघातप्रशस्तविहायोगत्यन्वितैकपञ्चाशत् । ततो वेदकसम्यक्त्वभयजुगुप्सानिद्राणामन्यतमैकप्रकृतिप्रक्षेपे द्विपञ्चाशत् । अन्यतमद्वयप्रक्षेपे त्रिपञ्चाशत् । अन्यतमत्रयप्रक्षेपे चतुःपञ्चाशत् । चतुष्टयप्रक्षेपे पञ्चपञ्चाशत् । यद्वा तिर्यङ्मनुष्ययोरेव क्षायिकसम्यग्दृष्ट्योरनन्तरोक्तैकपञ्चाशत्प्राणापानपर्याप्तिसमाप्त्यनन्तरमुच्छ्वासोदयेन मीलिता द्विपञ्चाशत् । ततो वेदकसम्यक्त्वभयजुगुप्सानिद्राणामन्यतमैकद्वयत्रयचतुष्टयप्रक्षेपैः क्रमात्त्रिपञ्चाशच्चतुःपञ्चाशत्पञ्चपञ्चाशत् षट्पञ्चाशच्च । यद्वा प्रागुक्ता प्राणापानपर्याप्तिपर्याप्तयोग्या द्विपञ्चाशद्भाषापर्याप्त्या पर्याप्तस्य स्वरे प्रक्षिप्ते त्रिपञ्चाशत् । ततो वेदकसम्यक्त्वभयजुगुप्सानिद्राणामुक्तनीत्या प्रक्षेपे सप्तपञ्चाशदन्ताः । तिरश्चोऽधिकृत्योद्योतनाम्नि प्रक्षिप्तेऽष्टपञ्चाशत् । एते चाविरतोदयाः सर्वेऽपि भूयस्कारा अल्पतराश्च संभवन्ति । निद्राभयजुगुप्सोद्योतानामध्रुवोदयत्वात् । मिथ्यादृष्टेः षट्चत्वारिंशत्प्रभृतीन्येकोनषष्टिपर्यन्तान्युदयस्थानानि । तानि च सप्ततिकार्थं परिभाव्य निद्राभयजुगुप्सोद्योतानां संचारणेन स्वयमेव ज्ञातव्यानि । अथ मिथ्यादृष्टेः सप्तकोदये नाम्न एकविंशत्युदयस्थस्य पञ्चचत्वारिंशद्रूपमुदयस्थानं कुतो न भवतीति चेदन्तरालगतौ मिथ्यादृष्टेरनन्तानुबन्धिसहितस्यैव प्राप्तेरनन्तानुबन्धिरहितस्य तस्य मरणनिषेधात् । तथा च सत्यष्टकोदय इति षट्चत्वारिंशदादीन्येव तस्योदयस्थानानि । एकोनषष्टिरूपं तु तस्योदयस्थानमन्यतमक्रोधादिचतुष्टयान्यतमवेदान्यतमयुगलभयजुगुप्सामिथ्यात्वरूपमोहनीयदशकोदये वर्त्तमानस्य तिर्यग्गतिपञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरपर्याप्तसुभगदुर्भगैकतरादेयानादेयैकतरयशःकीर्त्ययशःकीर्त्येकतरवर्णादिचतुष्टयागुरुलघुस्थिरास्थिरशुभाशुभतैजसकार्मणनिर्माणौदारिकद्विकान्यतमसंस्थानान्यतमसंहननप्रत्येकोपघातपराघातान्यतरविहायोगतिसुस्वरदुःस्वरान्यतरोच्छ्वासोद्योतरूपनामसत्कैकत्रिंशत्प्रकृत्युदयवतो ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकदर्श-

नावरणचतुष्टयान्यतमनिद्रोदयवतोऽन्यतरवेदनीयान्यतमायुरन्यतरगोत्राण्यनुभवतो द्रष्टव्यं । अत्रावक्तव्योदयो न घटते सर्वप्रकृत्युदयव्यवच्छेदे भूय उदयासंभवात् । अवस्थितोदयाः षड्विंशतिः स्थानसमत्वात्तेषां । अथान्तरालगतौ समुद्घाते च संभवीनि यान्युदयस्थानानि तेषु कथमवस्थितत्वं ? सत्यं, तत्रापि समयद्वयत्रयावस्थानोपपत्तेः । भूयस्कारोदया एकविंशतिः, यतो न छद्मस्थोदयेषु केवली याति, नाप्यतीर्थकरस्तीर्थकरोदयं, नाप्ययोगी सयोगिकेवल्युदयमित्येकादशद्वादशत्रयोविंशतिचतुर्विंशतिचतुश्चत्वारिंशल्लक्षणानि पञ्चोदयस्थानानि भूयस्कारतया न प्राप्यन्ते । अल्पतरोदयाश्चतुर्विंशतिः, यतोऽविरतसम्यग्दृष्टिर्मिथ्यादृष्टिर्वा न केवल्युदयस्थानमारोहतीति चतुस्त्रिंशल्लक्षणोऽल्पतरोदयो न लभ्यते । अथ स्वभावस्थे तीर्थकरे संभविनि चतुस्त्रिंशदुदये चतुश्चत्वारिंशदादीनामन्यतमस्मादुदयस्थानात्सङ्क्रमे चतुस्त्रिंशदुदयोऽल्पतरो भवतीति चेन्न, गुणस्थानक्रमारोहं विना केवलित्वाप्राप्तेः । क्रमानुसरणे च क्षीणमोहगुणस्थाने [1]त्रयस्त्रिंशत्प्रकृत्यात्मकमेकमेवोदयस्थानं मनुजगतिपञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरपर्याप्तसुभगादेययशःकीर्त्तितैजसकार्मणस्थिरास्थिरशुभाशुभवर्णादिचतुष्टयागुरुलघुनिर्माणौदारिकद्विकप्रत्येकोपघातान्यतरविहायोगतिपराघातसुस्वरदुःस्वरान्यतरोच्छ्वासान्यतमसंस्थानाद्यसंहननान्यतरवेदनीयमनुष्यायुरुच्चैर्गोत्रलक्षणं प्राप्यते। ततः केवलज्ञानोत्पत्तौ तीर्थकरनामोदये चतुस्त्रिंशल्लक्षणमुदयस्थानं भूयस्कारतयैव प्राप्यते, नाल्पतरतयेति । यदपि चैकोनषष्टिरूपमुदयस्थानं तदपि ततोऽन्यस्य महत उदयस्थानस्याभावान्नाल्पतरत्वमास्कन्दतीति द्वयापगमाच्चतुर्विंशतिरेवाल्पतराः । तदेवमुक्ताः सामान्यतः सर्वोत्तरप्रकृतीनामुदयस्थानेषु भूयस्कारादयः । उदीर-

१ क्षीणमोहे नामनी ३०, वेदनीयनी १, गोत्रनो १, आयुष्यनी १, एम ४ कर्मनी ३३ प्रकृतिओनो उदय गणाव्यो पण अहीं तो मूल ७ कर्मनो उदय होवाथी ३३ मां ज्ञाना० ५, दर्शना० ४ अने अन्तरायनी ५ उमेरतां ४७ प्रकृतिओनो उदय संभवे छे.

णाधिकारोऽपि प्राय उदयसम एव द्रष्टव्यः । नवरं नाम्नोऽष्टनवोदयस्थानयोरुदीरणाभावः सामान्यतः सर्वोत्तरप्रकृतिसमुदाये चाप्रमत्तादौ वेदनीयायुर्वर्जनमित्यादिरूपो यो विशेषस्तमुदीरणाप्रस्थानतः सम्यक् परिभाव्य तद्गता भूयस्कारादयो निरूपणीयाः ।

सम्प्रति प्रत्येकं ज्ञानावरणीयाद्युत्तरप्रकृतीनां सामान्यतः सर्वोत्तरप्रकृतीनां च सत्तास्थानेषु भूयस्कारादयो वाच्याः । तत्र प्रत्येकं ज्ञानावरणीयाद्युत्तरप्रकृतीनां ते भाव्यन्ते—ज्ञानावरणीयस्यान्तरायस्य च प्रत्येकं पञ्चपञ्चप्रकृत्यात्मकमेकं सत्तास्थानं । अत्रान्यस्य महतोऽल्पस्य वा स्थानस्याभावाद्भूयस्काराल्पतरासंभवः, अवक्तव्योऽप्यत्र नास्ति, सकलैतदुत्तरप्रकृतिसत्ताव्यवच्छेदे भूयः सत्ताऽसंभवात् । वेदनीयस्य द्वे सत्तास्थाने, तद्यथा—द्वे एका च । तत्र द्वे अयोग्यवस्थाद्विचरमसमयं यावत्, एका चरमसमये । अत्र न भूयस्कारसत्कर्मता, एकप्रकृत्यात्मकसत्तास्थानाद्द्विप्रकृत्यात्मकसत्तास्थाने सङ्क्रमाभावात् । एकमल्पतरं, तच्चैकप्रकृत्यात्मकं । एकं द्विप्रकृत्यात्मकमवस्थितं, एकप्रकृत्यात्मकस्य स्थानस्यैकसामयिकत्वेनावस्थितत्वाभावात् । गोत्रायुषोर्द्वे द्वे सत्तास्थाने, तद्यथा—द्वे एका च । तत्र गोत्रप्रकृत्योरन्यतरानपगमे द्वे । यदा तु तेजोवायुभवगतेनोच्चैर्गोत्रमुद्वलितं भवति, नीचैर्गोत्रं वाऽयोग्यवस्थाद्विचरमसमये क्षीणं तदैका । आयुषः परभवायुरबन्धं यावदेका, तद्बन्धे च द्वे सत्यौ । तत्र गोत्रस्यैकं द्विप्रकृत्यात्मकं भूयस्कारसत्कर्म यदोद्वलितोच्चैर्गोत्रो नीचैर्गोत्रैकसत्कर्मा सन् भूय उच्चैर्गोत्रं बध्नाति तदाऽवसेयं, एकमेकप्रकृत्यात्मकमल्पतरं, तदपि चोच्चैर्गोत्रे उद्वलिते नीचैर्गोत्रे वा क्षीणे, द्वे अवस्थितसत्कर्मणी, द्वयोरपि चिरकालमवस्थानात् । नवरमेकप्रकृत्यात्मके सत्तास्थाने चिरमवस्थानमुद्वलितोच्चैर्गोत्रस्य नीचैर्गोत्ररूपे द्रष्टव्यं, नोच्चैर्गोत्ररूपे, तस्य द्वितीयसमय एव क्षयात् । आयुषोऽप्येकं द्विप्रकृत्यात्मकं भूयस्कारसत्कर्म, तच्च परभवायुर्बन्धे, एकमेकप्रकृत्यात्मकमल्पतरसत्कर्म, तच्चानुभूयमानभवायुषः सत्ताव्यवच्छेदे परभवायुष

उदयसमये । द्वे अवस्थितसत्कर्मणी, द्वयोरपि सत्तास्थानयोश्चिरकालमवस्थानात् । यत्त्ववक्तव्यं तदुभयत्रापि नास्ति, उभयोरपि सर्वस्वस्वोत्तरप्रकृतिसत्ताव्यवच्छेदे भूयः सत्ताया अयोगात् ।

दर्शनावरणीयस्य त्रीणि सत्कर्मस्थानानि—नव षट् चतस्रश्चेति । तत्र क्षपकश्रेण्यामनिवृत्तिबादराद्धायाः संख्येयान् भागान् यावदुपशमश्रेण्यामुपशान्तमोहगुणस्थानं यावन्नव । क्षपकश्रेण्यामनिवृत्तिबादरसम्परायाद्धायाः संख्येयेभ्यो भागेभ्यः परतः क्षीणमोहगुणस्थानस्य द्विचरमसमयं यावत् षट् । चरमसमये चतस्रः । अत्र द्वे अल्पतरे—षट् चतस्रश्चेति । नवषडात्मके द्वे अवस्थितसत्कर्मणी, चतुःप्रकृत्यात्मकस्य सत्तास्थानस्यैकसामयिकत्वेनावस्थितत्वासंभवात् । भूयस्कारमवक्तव्यं चात्र नास्ति, द्व्यादिप्रकृतिसत्ताव्यवच्छेदे भूयः सत्ताऽसंभवात् ।

मोहनीयस्य पञ्चदश सत्तास्थानानि, तद्यथा—अष्टाविंशतिः सप्तविंशतिः षड्विंशतिश्चतुर्विंशतिस्त्रयोविंशतिर्द्वाविंशतिरेकविंशतिस्त्रयोदश द्वादशैकादश पञ्च चतस्रस्तिस्रो द्वे एका च । तत्र सर्वप्रकृतिसमुदायोऽष्टाविंशतिः । ततः सम्यक्त्व उद्वलिते सप्तविंशतिः । सम्यङ्मिथ्यात्वेऽप्युद्वलिते षड्विंशतिः, अनादिमिथ्यादृष्टेर्वा षड्विंशतिः । अष्टाविंशतेरनन्तानुबन्धिचतुष्टये क्षीणे चतुर्विंशतिः । ततो मिथ्यात्वे क्षीणे त्रयोविंशतिः । ततः सम्यङ्मिथ्यात्वे क्षीणे द्वाविंशतिः । ततः सम्यक्त्वे क्षीणे एकविंशतिः । ततः कषायाष्टकक्षये त्रयोदश । ततो नपुंसकवेदे क्षीणे द्वादश । ततोऽपि स्त्रीवेदे क्षीणे एकादश । ततो नोकषायषट्कक्षये पञ्च । ततः पुरुषवेदे क्षीणे चतस्रः । ततः संज्वलनक्रोधे क्षीणे तिस्रः । ततः संज्वलनमाने क्षीणे द्वे । ततः संज्वलनमायायामपि क्षीणायामेकेति । अत्र पञ्चदशावस्थितसत्कर्माणि, सर्वेषामपि जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तमवस्थानसंभवात् । चतुर्दशाल्पतराणि, तानि चाष्टाविंशतिविनिर्मुक्तानि

सर्वाण्यपि द्रष्टव्यानि । एकं भूयस्कारसत्कर्म, तच्चाष्टाविंशतिलक्षणं, चतुर्विंशतिसत्तास्थानात् पञ्चविंशतिसत्तास्थानाद्वाऽष्टाविंशतिरूपे सत्तास्थाने सङ्क्रमणसंभवाच्छेषाणि सत्तास्थानानि भूयस्कारतया न प्राप्यन्ते, अनन्तानुबन्धिसम्यक्त्वसम्यङ्मिथ्यात्वव्यतिरेकेणान्यस्याः प्रकृतेः सत्ताव्यवच्छेदे भूयः सत्ताया अयोगात् । अवक्तव्यं तु सत्कर्मात्र नास्ति, मोहनीयस्य सर्वोत्तरप्रकृतिसत्ताव्यवच्छेदे भूयः सत्ताया असंभवात् ।

नाम्नो द्वादश सत्कर्मस्थानानि—त्रिनवतिर्द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिः षडशीतिरशीतिरेकोनाशीतिः अष्टसप्ततिः षट्सप्ततिः पञ्चसप्ततिर्नवाष्टौ चेति । तत्र सर्वप्रकृतिसमुदायस्त्रिनवतिः । सा तीर्थकररहिता द्विनवतिः । त्रिनवतिराहारकचतुष्टयरहितैकोननवतिः । द्विनवतिराहारकचतुष्कहीनाऽष्टाशीतिः । इदं प्रथमसत्तास्थानचतुष्कं । अस्मान्नामत्रयोदशके क्षीणेऽशीतिरेकोनाशीतिः षट्सप्ततिः पञ्चसप्ततिश्चेति द्वितीयसत्तास्थानचतुष्कं भवति । अष्टाशीतेर्देवद्विके नरकद्विके वोद्वलिते षडशीतिः । ततोऽपि देवद्विकसहिते नरकद्विकसहिते वा वैक्रियचतुष्टये उद्वलितेऽशीतिः । ततोऽपि मनुष्यद्विके उद्वलितेऽष्टसप्ततिः । एतानि त्रीणि सत्तास्थानान्यध्रुवसंज्ञान्याहुः । नवप्रकृत्यात्मकं तीर्थकृतोऽष्टप्रकृत्यात्मकमतीर्थकृतोऽयोग्यवस्थाचरमसमये सुप्रसिद्धं । अत्र दशावस्थितसत्कर्माणि, नवाष्टरूपसत्तास्थानयोरेकसामयिकतयावस्थितत्वायोगात् । दशाल्पतरस्थानानि, तथाहि—प्रथमचतुष्काद्वितीयचतुष्कगमने चत्वारि, द्वितीयचतुष्कान्नवाष्टगमने च द्वे, प्रथमसत्तास्थानचतुष्कसत्कचतुर्थसत्तास्थानात् प्रथमाध्रुवसंज्ञ षडशीति ८६ सत्तास्थानगमने, ततोऽपि तृतीयाध्रुवसत्तास्थानगमने द्वे, त्रिनवतिद्विनवतिभ्यामाहारकचतुष्टयोद्वलने एकोननवत्यष्टाशीतिसङ्क्रान्तौ द्वे । तदेवं सर्वसङ्ख्यया दशाल्पतरसत्तास्थानानि । भूयस्कारसत्तास्थानानि षट्, तथाहि—भूयो मनुष्यद्विकबन्धेनाष्टसप्ततेरशीतौ गमनं,

ततोऽपि नरकद्विके देवद्विके वा वैक्रियचतुष्टयसहिते भूयोऽपि बध्यमाने षडशीतौ, ततोऽपि देवद्विके नरकद्विके वा पुनरपि बध्यमानेऽष्टाशीतौ, ततोऽपि तीर्थकरनामबन्धे एकोननवत्यां गमनमिति चत्वारि । अष्टाशीतेरेवाहारकचतुष्टयबन्धेन द्विनवतौ गमनं, ततोऽपि तीर्थकरनामबन्धे त्रिनवतौ, एवं सर्वसङ्ख्यया षडेव भूयस्कारसत्कर्माणि, नाधिकानि, शेषात्सत्तास्थानात्प्रभूतेऽन्यस्मिन् सत्तास्थाने गमनासंभवात् । यच्चवक्तव्यं तदिह न भवति, नाम्नः सर्वोत्तरप्रकृतिसत्ताव्यवच्छेदे भूयः सत्तोपादानासंभवात् ।

तदेवमुक्ताः प्रत्येकं ज्ञानावरणीयाद्युत्तरप्रकृतीनां सत्तास्थानेषु भूयस्कारादयः । सम्प्रति सामान्यतः सर्वोत्तरप्रकृतीनां तेऽभिधेयाः । तत्र सामान्यतः सर्वोत्तरप्रकृतीनां सत्तास्थानान्यष्टचत्वारिंशत् । तथाहि—एकादश द्वादशाशीतिरेकाशीतिश्चतुरशीतिः पञ्चाशीतिः, ततश्चतुर्नवत्यादीनि चतुर्दशाधिकशतान्तानि, ततः पञ्चविंशाच्छतादारभ्य षट्चत्वारिंशशतपर्यन्तानि स्थानानि द्वात्रिंशशतवर्जानि निरन्तरं वाच्यानि—११-१२-८०-८१-८४-८५-९४-९५-९६-९७-९८-९९-१००-१०१-१०२-१०३-१०४-१०५-१०६-१०७-१०८-१०९-११०-१११-११२-११३-११४-१२५-१२६-१२७-१२८-१२९—१३०-१३१—१३३-१३४-१३५-१३६-१३७-१३८-१३९-१४०-१४१-१४२-१४३-१४४-१४५-१४६ । तत्रातीर्थकरकेवलिनोऽयोग्यवस्थाचरमसमये एकादशप्रकृत्यात्मकं सत्तास्थानं । तस्मिन्नेव समये तीर्थकृतो द्वादशप्रकृत्यात्मकं, ताश्च द्वादश मनुष्यायुर्मनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजातित्रसबादरपर्याप्तसुभगादेययशःकीर्त्तितीर्थकरनामान्यतरवेदनीयोच्चैर्गोत्रलक्षणाः । एता एव जिननामरहिता एकादश । सयोगिकेवल्यवस्थायामशीत्यादीनि चत्वारि सत्तास्थानानि ८०-८१-८४-८५ । तत्राशीतिरियं—

देवद्विकमौदारिकचतुष्टयं वैक्रियचतुष्टयं तैजसकार्मणशरीरे तैजसकार्मणबन्धने तैजसकार्मणसङ्घाते संस्थानषट्कं संहननषट्कं वर्णादिविंशतिरगुरुलघुपराघातोपघातोच्छ्वासविहायोगतिद्विकानि स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुस्वरदुःस्वरे दुर्भगमयशःकीर्त्तिरनादेयं निर्माणं प्रत्येकमपर्याप्तं मनुष्यानुपूर्वी नीचैर्गोत्रमन्यतरवेदनीयमित्येकोनसप्ततिरेकादश च प्रागुक्ता इति । सैवाशीतिर्जिननामसहितैकाशीतिः । अशीतिरेवाहारकचतुष्टयान्विता चतुरशीतिः । सैव जिननामान्विता पञ्चाशीतिः । एतान्येवाशीत्यादीनि चत्वारि सत्तास्थानानि ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्टयान्तरायपञ्चकसहितानि चतुर्नवत्यादीनि चत्वारि सत्तास्थानानि भवन्ति ९४–९५–९८–९९ । एतानि च क्षीणकषायचरमसमये नानाजीवानधिकृत्य प्राप्यन्ते । एतान्येव निद्राप्रचलासहितानि यथाक्रमं षण्णवत्यादीनि चत्वारि सत्तास्थानानि भवन्ति ९६–९७–१००–१०१ । एतानि क्षीणकषायगुणस्थानके द्विचरमसमयं यावन्नानाजीवापेक्षया प्राप्यन्ते । एतेष्वेव संज्वलनलोभप्रक्षेपे सप्तनवत्यादीनि चत्वारि भवन्ति ९७–९८–१०१–१०२ । एतानि सूक्ष्मसम्पराये लभ्यन्ते । एतेष्वेव संज्वलनमायाप्रक्षेपेऽष्टनवत्यादीनि चत्वारि भवन्ति ९८–९९–१०२–१०३ । एतान्यनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थानपर्यन्ते लभ्यन्ते । तस्मिन्नेव गुणस्थाने तेष्वेव चतुर्षु सत्तास्थानेषु संज्वलनमानप्रक्षेपे नवनवत्यादीनि चत्वारि भवन्ति ९९–१००–१०३–१०४ । तस्मिन्नेव गुणस्थाने तेष्वेव चतुर्षु संज्वलनक्रोधप्रक्षेपे शतादीनि चत्वारि स्थानानि भवन्ति १००–१०१–१०४–१०५ । तस्मिन्नेव गुणस्थाने पुरुषवेदप्रक्षेपे एकोत्तरशतादीनि चत्वारि १०१–१०२–१०५–१०६ । ततस्तस्मिन्नेव गुणस्थाने हास्यादिषट्कप्रक्षेपे सप्तोत्तरशतादीनि चत्वारि १०७–१०८–१११–११२ । ततस्तस्मिन्नेव गुणस्थाने स्त्रीवेदप्रक्षेपेऽष्टोत्तरशतादीनि चत्वारि १०८–१०९–११२–११३ । ततस्तस्मिन्नेव गुणस्थाने नपुंसकवेदप्रक्षेपे नवोत्तरशतादीनि

चत्वारि १०९–११०–११३–११४ । तस्मिन्नेव गुणस्थाने तेष्वेव चतुर्षु नामत्रयोदशकस्त्यानर्द्धित्रिकरूपप्रकृतिषोडशकप्रक्षेपे पञ्चविंशत्युत्तरशतादीनि चत्वारि १२५–१२६–१२९–१३० । ततोऽपि तस्मिन्नेव गुणस्थाने मध्यमकषायाष्टकप्रक्षेपे त्रयस्त्रिंशशतादीनि चत्वारि १३३–१३४–१३७–१३८ । तथा यानि क्षीणमोहसत्कानि षण्णवतिसप्तनवतिशतैकोत्तरशतात्मकानि चत्वारि सत्तास्थानानि तेषु मोहनीयद्वाविंशतिस्त्यानर्द्धित्रिकनामत्रयोदशकप्रक्षेपादिमानि चत्वारि सत्तास्थानानि भवन्ति—चतुस्त्रिंशं शतं पञ्चत्रिंशं शतं अष्टत्रिंशं शतं एकोनचत्वारिंशं शतं (१३४–१३५–१३८–१३९) चेति । तेष्वेव षण्णवत्यादिषु चतुर्षु मोहनीयत्रयोविंशतिनामत्रयोदशकस्त्यानर्द्धित्रिकप्रक्षेपे पञ्चत्रिंशशतादीनि चत्वारि १३५–१३६–१३९–१४० । मोहनीयचतुर्विंशतिप्रक्षेपे चैतानि षट्त्रिंशशतादोनि चत्वारि सत्तास्थानानि भवन्ति १३६–१३७–१४०–१४१ । मोहनीयषड्विंशतिप्रक्षेपे चाष्टत्रिंशशतादोनि चत्वारि १३८–१३९–१४२–१४३ । मोहनीयसप्तविंशतिप्रक्षेपे चैतान्येकोनचत्वारिंशशतादीनि चत्वारि भवन्ति १३९–१४०–१४३–१४४ । मोहनीयाष्टाविंशतिप्रक्षेपाच्चैतानि चत्वारिंशशतादीनि चत्वारि भवन्ति १४०–१४१–१४४–१४५ । अमूनि च मोहनीयद्वाविंशत्यादिप्रकृतिप्रक्षेपभावीनि चतुस्त्रिंशशतादीनि पञ्चचत्वारिंशशतपर्यन्तानि सत्तास्थानान्यविरतसम्यग्दृष्ट्यादीनामप्रमत्तान्तानामवसेयानि । यच्चानन्तरं पञ्चचत्वारिंशशतलक्षणं सत्तास्थानं तदेव परभवायुर्बन्धे षट्चत्वारिंशशतात्मकसत्तास्थानं (१४६) भवति । तथा यदा जन्तोस्तेजोवायुभवे वर्तमानस्य नाम्नोऽष्टसप्ततिरेकमेव च नीचैर्गोत्रलक्षणं गोत्रं सत्तदा तस्य ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणनवकवेदनीयद्विकमोहनीयषड्विंशत्यन्तरायपञ्चकतिर्यगायुषां मीलनेन सप्तविंशं शतं (१२७) सत्तास्थानं भवति, तदेव पारभविकतिर्यगायुर्बन्धेऽष्टाविंशत्यधिकं शतं (१२८) । तथा वनस्पतिकायिकेषु यदा स्थितिक्षयाद्देवद्विकनरकद्विकवै-

क्रियचतुष्टयरूपास्वष्टासु प्रकृतिषु क्षीणासु नाम्नोऽशीतिप्रकृतयः सत्तायां लभ्यन्ते तदा नाम्नोऽशीतिर्द्वे वेदनीये द्वे गोत्रे अनुभूयमानं तिर्यगायुरावरणचतुर्दशकं मोहनीयषड्विंशतिरन्तरायपञ्चकं चेति त्रिंशशतात्मकं (१३०) सत्तास्थानं, तदेव परभवायुर्बन्धे एकत्रिंशशतात्मकं (१३१) सत्तास्थानं । तदेवं परिभाव्यमानं द्वात्रिंशशतामत्कं सत्तास्थानं न प्राप्यत इति तद्वर्जनं कृतं । इह यद्यपि सप्तनवत्यादीनि तत्तत्प्रकृतिप्रक्षेपादन्यथाऽन्यथाऽनेकधा लभ्यन्ते तथापि सङ्ख्यया तुल्यानीति न पृथग्विवक्ष्यन्ते । ततोऽष्टचत्वारिंशदेव सत्तास्थानानि, नोनाधिकानि । अत्रावक्तव्यं सत्कर्म नास्ति,सर्वप्रकृतिसत्ताव्यवच्छेदे भूयः सत्ताया अयोगात् । अवस्थितानि चतुश्चत्वारिंशत्, एकादशद्वादशचतुर्नवतिपञ्चनवतिरूपाणां चतुर्णां सत्तास्थानानामेकसामयिकतयाऽवस्थितत्वायोगात् । सप्तचत्वारिंशदल्पतराणि । सप्तदश भूयस्काराणि, यतस्तानि सप्तविंशशतादारभ्य परत एव प्राप्यन्ते, नार्वाक्, परतोऽपि यत्रयस्त्रिंशशतात्मकं सत्तास्थानं तदपि भूयस्कारतया न लभ्यते, सप्तविंशशतादर्वाक्तनानां सत्तास्थानानां परतोऽपि त्रयस्त्रिंशशतात्मकस्य सत्तास्थानस्य क्षपकश्रेण्यामेव प्राप्तिसंभवात् । ततश्च प्रतिपाताभावेन तेषां भूयस्कारत्वायोगात्, ततः सप्तदशैव भूयस्काराणि । तदेवमुक्ता उत्तरप्रकृतिमाश्रित्य बन्धादिषु भूयस्कारादयः । एवं बन्धादीनां स्थित्यादित्रये सङ्क्रमादीनां चतुर्षु चागमानुसारेण स्वयमेव भावना विधेया ॥

मूल तथा उत्तर प्रकृति आश्री बन्धादि ४ मां भूयस्कारादि ४ नो यन्त्र.

नाम.	बन्ध आश्री					उदय आश्री					उदीरणा आश्री					सत्ता आश्री				
	बन्धस्थान	भूयस्कार	अल्पतर	अवस्थित	अवक्तव्य	उदयस्थान	भूयस्कार	अल्पतर	अवस्थित	अवक्तव्य	उदीरणास्थान	भूयस्कार	अल्पतर	अवस्थित	अवक्तव्य	सत्तास्थान	भूयस्कार	अल्पतर	अवस्थित	अवक्तव्य
मूल प्रकृतिमां	४	३	३	४		३	१	१	३		५	३	४	५		३		१	३	
ज्ञानावरणीय	१			१	१	१			१		१			१		१			१	
दर्शनावरणीय	३	२	२	३	२	२	१	१	२		२	१	१	२		३		२	२	
वेदनीय	१			१		१			१		१			१	१	२		१	१	
मोहनीय	१०	९	८	१०	२	९	८	८	९	५	९	८	८	९	५	१५	१	१४	१५	
आयु	१			१	१	१			१		१			१	१	२	१	१	२	
नाम	८	६	७	८	३	१२	८	९	१२		१०	८	९	१०		११	६	१०	१०	
गोत्र	१			१	१	१			१		१			१		२	१	१	२	
अन्तराय	१			१	१	१			१		१			१		१		१	१	
सर्वोत्तर प्रकृतिमां	२९	२८	२८	२९		२६	२१	२४	२६							४८	१७	४७	४४	

बन्धादिस्थानोना जघन्योत्कृष्ट कालनो यन्त्र.

स्थाननुं नाम	जघन्य काल	उत्कृष्ट काल	कया गुणस्थाने
८ नुं बन्धस्थान	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	३ जा सिवाय १ थी ७
७ नुं बन्धस्थान	,,	छ मासहीन ३३ सागरोपमाधिक अन्तर्मुहूर्तहीन पूर्वक्रोडनो त्रीजो भाग	१ थी ९ सुधी
६ नुं बन्धस्थान	१ समय	अन्तर्मुहुर्त	१० मे
१ नुं बन्धस्थान	१ समय	देशोन पूर्वक्रोड वर्ष	११-१२-१३ मे
८ नुं उदयस्थान	अन्तर्मुहूर्त	अनादि अनंत १, अनादि सांत २, सादि सांत एम ३ भांगे	१ १० सुधी
७ नुं उदयस्थान	१ समय	अन्तर्मुहूर्त	११-१२ मे
४ नुं उदयस्थान	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वक्रोड वर्ष	१३-१४ मे
८ नुं सत्तास्थान	अनादिसांत (अनंतकाल)	अनादि अनंत (अनंतकाल)	१ थी ११ सुधी
७ नुं सत्तास्थान	जल्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	१२ मे
४ नुं सत्तास्थान	,,	देशोन पूर्वक्रोड वर्ष	१३-१४ मे

मूल कर्मबन्धमां बन्धस्थान उदयस्थान अने सत्तास्थाननो यन्त्र.

कर्मनुं नाम	बन्धस्थानो				उदयस्थानो			सत्तास्थानो		
	८	७	६	१	८	७	४	८	७	४
ज्ञानावरणीय	१	१	१		१			१		
दर्शनावरणीय	१	१	१		१			१		
वेदनीय	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
मोहनीय	१	१			१			१		
आयु	१				१			१		
नाम	१	१	१		१			१		
गोत्र	१	१	१		१			१		
अन्तराय	१	१	१		१			१		

मूल कर्मना उदयमां बन्धस्थान, उदयस्थान अने सत्तास्थाननो यन्त्र.

बन्धस्थानो				उदस्थानो			सत्तास्थानो		
८	७	६	१	८	७	४	८	७	४
१	१	१	१	१	१		१	१	
१	१	१	१	१	१		१	१	
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१			१	१			
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१	१	१	१	१		१	१	

मूल कर्मनी सत्तामां बन्धस्थान, उदयस्थान अने सत्तास्थान.

कर्मनुं नाम	बन्धस्थानो				उदयस्थानो			सत्तास्थानो		
	८	७	६	१	८	७	४	८	७	४
ज्ञानावरणीय	१	१	१	१	१	१		१	१	
दर्शनावरणीय	१	१	१	१	१	१		१	१	
वेदनीय	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
मोहनीय	१	१	१	१	१			१		
आयु	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
नाम	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
गोत्र	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
अन्तराय	१	१	१	१	१	१		१	१	

बन्धादिस्थान आश्री स्थानोनो संवेध.

स्थाननुंनाम	बन्धस्थान				उदयस्थान			सत्तास्थान		
	८	७	६	१	८	७	४	८	७	४
८ ना बंधे	१				१			१		
७ ना बंधे		१			१			१		
६ ना बंधे			१		१			१		
१ ना बंधे				१		१	१	१	१	१
८ ना उदये	१	१	१	१	१			१		
७ ना उदये	१	१				१		१	१	
४ ना उदये				१			१			१
८ नी सत्ताए	१	१	१	१	१	१		१		
७ नी सत्ताए				१		१			१	
४ नी सत्ताए				१			१			१

×(य० उ० २०) तदेवमुक्ता सत्ता । समाप्तः प्रकृतग्रन्थार्थः। अथ संवेधप्रसङ्गाद्बन्धोदयसत्तासंवेधप्रतिपादकसप्ततिकार्थौ महोपयोगोत्यत्रैवायं दिङ्मात्रेणोपदर्श्यते, तत्र प्रथमतो मूलप्रकृतिषु बन्धस्य बन्धेन संवेध उच्यते—आयुषि बध्यमानेऽष्टापि कर्माणि नियमाद्बध्यन्ते आप्रमत्तगुणस्थानं । शेषेषु (सप्तसु बध्यमानेष्वेवायुषोऽबंधात्) गुणस्थानेषु सप्तबन्धेऽप्यायुषो न बन्ध इति । मोहनीये बध्यमाने सप्तानामष्टानां वा बन्धः । तद्बन्धो ह्यनिवृत्तिबादरान्तः, तत्र मिश्रापूर्वकरणानिवृत्तिबादरेषु सप्तानामेव, शेषेषु त्वप्रमत्तान्तेष्वायुर्बन्धाभावे सप्तानां तद्बन्धे त्वष्टानां बन्धः । वेदनीये बध्यमाने एकस्य षण्णां सप्तानामष्टानां वा बन्धः, तत्रोपशान्तमोहादौ वेदनीये बध्यमाने तदेवैकं बध्यते, सूक्ष्मसम्पराये मोहायुर्वर्जानि षट्, सप्ताष्टभावना प्राग्वत् । ज्ञानावरणदर्शनावरणनामगोत्रान्तरायेषु बध्यमानेषु षट् सप्ताष्टौ च, तत्र षट् सूक्ष्मसम्पराये, सप्ताष्टभावना प्राग्वत् । तदेवं चिन्तितो बन्धस्य बन्धेन संवेधः, अथोदयस्योदयसत्ताभ्यां सह चिन्त्यते—मोहस्योदये नियमादष्टावप्युदये सत्तायां च लभ्यन्ते । तदुदयो हि सूक्ष्मसम्परायान्तः । सूक्ष्मसम्परायं यावच्च सर्वाण्यपि कर्माण्युदये सत्तायां च प्राप्यन्त इति । ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणामुदये सति सप्ताष्टौ च सत्तायामुदये च लभ्यन्ते । तत्राष्टावुदये सूक्ष्मसम्परायं यावत्, सत्तायां तूपशान्तमोहेऽपि । सप्त तूदयमाश्रित्योपशान्तमोहे क्षीणमोहे वा सत्तामधिकृत्य तु क्षीणमोह एव । वेदनीयायुर्नामगोत्राणामुदये सत्यष्टौ सप्त चत्वारि वा सन्त्युदयवन्ति च प्राप्यन्ते । तत्राष्टावुदयमधिकृत्य सूक्ष्मसम्परायं, सत्तामधिकृत्य तूपशान्तमोहं यावत् । सप्तोदयमधिकृत्योपशान्तमोहे क्षीणमोहे वा, सत्तामधिकृत्य तु क्षीणमोह एव । चत्वारि त्रयोदशे चतुर्दशे वा गुणस्थाने तान्येव । तदेवमुक्त उदयस्योदयसत्ताभ्यां संवेधः । अथ सत्ताया उदयसत्ताभ्यां चिन्त्यते—तत्र मोहनीयस्य सत्तायामुदयोऽष्टानां सप्तानां वा । तत्राष्टानां सूक्ष्मसम्परायं यावत्, सप्तानां तूपशान्तमोहे, सत्ता पुनरष्टानामेव, मोहनीयसत्तायाः शेषसर्वसत्ताना-

न्तरीयकत्वात् । ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणां सत्तायां सप्तानामष्टानां वोदयः । तत्राष्टानामुदयः सूक्ष्मसम्परायं यावत्, सप्तानामुपशान्तमोहे क्षीणमोहे वा । सत्ताऽप्यष्टानां सप्तानां वा, अष्टानामुपशान्तमोहं यावत्, सप्तानां क्षीणमोहे । वेदनीयायुर्नामगोत्राणां सत्तायां सप्तानामष्टानां चतुर्णां वा सत्तोदयौ । तत्र सप्तानामष्टानां वा सत्तोदयौ प्राग्वत् । चतुर्णां त्रयोदशे चतुर्दशे च गुणस्थाने । तदेवमुक्तः सत्ताया उदयसत्ताभ्यां संवेधः । अथोदयस्य बन्धेन सह संवेध उच्यते—मोहनीयस्योदये षट् सप्ताष्टौ वा बध्यन्ते । तत्राष्टावायुर्बन्धकाले, तदभावे तु सप्त, तानि चानिवृत्तिबादरं यावत्, षट् सूक्ष्मसम्पराये । मोहनीयवर्जानां शेषाणामुदये एकं षट् सप्ताष्टौ च बध्यन्ते । तत्र षट्सप्ताष्टभावना प्राग्वत् । एकं ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणामुदये उपशान्तमोहे क्षीणमोहे वा, वेदनीयायुर्नामगोत्राणामुदये सयोगिकेवलिन्यपि, तच्चैकं सातवेदनीयरूपं द्रष्टव्यं । तदेवमुक्त उदयस्य बन्धेन सह संवेधः । अथ बन्धस्योदयेन सहोच्यते—षण्णां सप्तानामष्टानां वा बन्धे मोहस्योदयो भवति, अष्टसप्तषड्बन्धानां क्रमेणाप्रमत्तानिवृत्तिबादरसूक्ष्मसम्परायान्तत्वात्, मोहोदयस्य चावश्यं सूक्ष्मसम्परायान्तत्वात् । शेषाणां तूदयोऽष्टानां सप्तानां षण्णामेकस्य च बन्धे भवति । तथाहि—ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणामुदयः क्षीणमोहं यावत्, वेदनीयायुर्नामगोत्राणामयोगिकेवलिनं यावत् । एकस्य च बन्ध उपशान्तमोहादौ । ततः शेषाणामुदयः सप्ताष्टषडेकबन्धेऽपि भवति । तदेवमुक्तो बन्धस्योदयेन सह संवेधः । अथ सत्ताया बन्धेन सहोच्यते—एकैकस्यापि कर्मणः सत्तायामेकषट्सप्ताष्टभेदैश्चतुर्विधोऽपि बन्धः संभवति । मोहनीयस्य सत्ताया उपशान्तमोहं शेषघातिनां क्षीणमोहं अघातिनां चतुर्णामयोगिकेवलिनं यावत्प्राप्तेः, अष्टसप्तषडेकबन्धानां च यथाक्रमं अप्रमत्तमनिवृत्तिबादरं सूक्ष्मसम्परायमुपशान्तमोहादिकं च यावत्प्राप्तेः । तदेवमुक्तः सत्ताया बन्धेन संवेधः । अथ बन्धस्य सत्तया सहोच्यते—अष्टबन्धे सप्तबन्धे षड्बन्धे च

नियमादष्टानां सत्ता, एकस्य च बन्धेऽष्टानां सप्तानां चतुर्णां च क्रमेणोपशान्तमोहे क्षीणमोहे सयोगिकेवलिनि च। उक्तो बन्धस्य सत्तया संवेधः। सम्प्रत्युदयेन सहाभिधीयते—सप्तानामष्टानां षण्णां वा बन्धे नियमादष्टानामपि प्रकृतीनामुदयो भवति। सातवेदनीयस्यैवैकस्य बन्धे सप्तानां चतुर्णां चोदयः। तत्र सप्तानामुपशान्तमोहे क्षीणमोहे वा। चतुर्णां सयोगिकेवलिनि॥

तदेवमुक्तो मूलप्रकृतीरधिकृत्य बन्धोदयसत्तानां संवेधः। अथैतासामेव स्थानान्युच्यन्ते—स्थानं नाम द्वित्रादिप्रकृतिसमुदायः। तत्र वेदनीयायुर्गोत्राणां प्रत्येकं द्वे द्वे सत्तास्थाने—द्वे एका चेति। तत्र वेदनीयस्यायोगिकेवलिद्विचरमसमयं यावद् द्वे अपि सत्यौ, एकतरस्या व्यवच्छेदे चरमसमय एका, गोत्रस्योच्चैर्गोत्रे उद्वलिते नीचैर्गोत्रे वाऽयोगिद्विचरमसमये क्षीणे एका सती, शेषकालं तु द्वे। बन्धे उदये च वेदनीयायुर्गोत्राणामेकमेवैकप्रकृतिरूपं स्थानं। न ह्यमीषां द्वित्रादिप्रकृतयो युगपद्बन्धमुदयं वा गच्छन्ति। तथा ज्ञानावरणान्तरायोः प्रत्येकं बन्धोदयसत्तास्वेकैकं पञ्चपञ्चप्रकृत्यात्मकं स्थानं।

अथायुषो गुणस्थानेषु बन्धोदयसत्ताश्चिन्त्यन्ते—आद्यं गुणस्थानं यावन्नरकायुषो द्वितीयं यावत्तिर्यगायुषश्चतुर्थं यावन्मनुष्यायुषः सप्तमं यावद्देवायुषो बन्धः। तथा चतुर्थे यावन्नरकायुषो देवायुषश्चोदयः, पञ्चमं यावत्तिर्यगायुषश्चतुर्दशं यावन्मनुष्यायुषः। तथा चतुर्थे यावन्नरकायुषः[1] सत्ता, देशविरतिं यावत्तिर्यगायुषोऽयोगिकेवलिनं यावन्मनुष्यायुषः, देवायुषस्तूपशान्तमोहगुणस्थानकं यावत्, यतो देवायुषि बद्धेऽप्युपशमश्रेणिमारभते, सा चोपशान्तमोहगुणस्थानं यावद्भवतीति। सम्प्रत्यायुषो बन्धोदयसत्तासंवेध उच्यते—तत्र तिर्यञ्चो मनुष्याश्च सर्वत्रोत्पद्यन्त इति तेषां चतुर्णामप्यायुषां बन्धसंभवः, देवा नारकाश्च तिर्यङ्मनुष्यगत्योरेवोत्पद्यन्त इति तेषां

१ नरकायुषस्तिर्यगायुषश्च सत्ता सप्तमं यावत् इति 'षष्ठे कर्मग्रन्थे' अस्मिन्नेवाधिकारे अग्रेऽपि।

द्वयोरेवायुषोर्बन्धः । ततस्तियङ्मनुष्यगत्योर्नव नव, देवनारकयोश्च पञ्च पञ्च भङ्गाः संभवन्तीति सर्वसङ्कलयाऽष्टाविंशतिर्भङ्गाः। तथाहि– नैरयिकस्य परभवायुर्बन्धकालात् पूर्वं नारकायुष उदयो नारकायुषः सत्ता १, एष भङ्ग आद्येषु चतुर्षु गुणस्थानेषु प्राप्यते, शेषगुणस्थानस्य नरकेष्वसंभवात् । परभवायु र्बन्धकाले तिर्यगायुषो बन्धो नारकायुष उदयो नारकतिर्यगायुषी सती २, एष भङ्गो मिथ्यादृष्टेः सासादनस्य वा । अथवा मनुष्यायुषो बन्धो नारकायुष उदयो मनुष्यनारकायुषी सती ३, एष भङ्गो मिथ्यादृष्टेः सासादनस्याविरतसम्यग्दृष्टेर्वा । बन्धोपरमे नारकायुष उदयो नारकतिर्यगायुषी सती ४, एष भङ्ग आद्येषु चतुर्ष्वपि गुणस्थानेषु, तिर्यगायुर्बन्धानन्तरं कस्यचिन्नारकस्य सम्यङ्मिथ्यात्वे सम्यक्त्वे वा गमनसंभवात् । अथवा नारकायुष उदयो मनुष्यनारकायुषी सती ५, एषोऽपि भङ्ग आद्येषु चतुर्ष्वपि गुणस्थानेषु, मनुष्यायुर्बन्धानन्तरं मिश्रे सङ्क्रमसंभवात् । एव देवानामपि पञ्च भङ्गा भावनीयाः । नवरं नारकायुः स्थाने देवायुरुच्चारणीयं। तिरश्चां परभवायुर्बन्धकालात् पूर्वं तिर्यगायुष उदयस्तिर्यगायुषः सत्ता १, एष भङ्ग आद्येषु पञ्चसु गुणस्थानेषु, शेषगुणस्थानस्य तिर्यक्ष्वसंभवात् । बन्धकाले नारकायुषो बन्धस्तिर्यगायुष उदयो नारकतिर्यगायुषी सती, एष भङ्गो मिथ्यादृष्टेः, अन्यस्य नारकायुरबन्धकत्वात् २। अथवा तिर्यगायुषो बन्धस्तिर्यगायुष उदयो द्वे तिर्यगायुषी सती, एष भङ्गो मिथ्यादृष्टेः सासादनस्य वा ३। यद्वा मनुष्यायुषो बन्धस्तिर्यगायुष उदयो मनुष्यतिर्यगायुषी सती, एषोऽपि भङ्गो मिथ्यादृष्टेः सासादनस्य वा, तिरश्चोऽविरतसम्यग्दृष्टेर्देशविरतस्य वा देवायुष एव बन्धसंभवात् ४। यद्वा देवायुषो बन्धस्तिर्यगायुष उदयो देवतिर्यगायुषी सती, एष भङ्गो मिश्रवर्जितेष्वाद्येषु चतुर्ष्वपि गुणस्थानेषु, मिश्रस्यायुर्बन्धायोगात्तद्वर्जनं ५। बन्धोपरमे तु तिर्यगायुष उदयो नरकतिर्यगायुषी सती ६, एष भङ्ग आद्येषु पञ्चसु गुणस्थानेषु, नरकायुर्बन्धानन्तरं मिश्रसम्यक्त्वादावपि गमन-

संभवात् । अथवा तिर्यगायुष उदयो द्वे तिर्यगायुषी सती ७, अथवा तिर्यगायुष उदयो मनुष्यतिर्यगायुषी सती ८, अथवा तिर्यगायुष उदयो देवतिर्यगायुषी सती ९, एते त्रयोऽपि भङ्गा आद्येषु पञ्चसु गुणस्थानेषु । तदेवं सर्वसङ्कलया तिरश्चां नव भङ्गाः, मनुष्याणामप्येवं नवैव । तत्र मनुष्यायुष उदयो मनुष्यायुषः सत्तेत्येष १ भङ्गोऽयोगिकेवलिनं यावत् । परभवायुर्बन्धकाले नरकायुषो बन्धो मनुष्यायुष उदयो नारकमनुष्यायुषी सती, एष भङ्गो मिथ्यादृष्टेः, अन्यस्य नरकायुरबन्धकत्वात् २ । तिर्यगायुषो बन्धो मनुष्यायुष उदयस्तिर्यङ्मनुष्यायुषी सती ३, एष विकल्पो मिथ्यादृष्टेः सासादनस्य वा । मनुष्यायुषो बन्धो मनुष्यायुष उदयो द्वे मनुष्यायुषी सती ४, एष भङ्गो मिथ्यादृष्टेः सासादनस्य वा । देवायुषो बन्धो मनुष्यायुष उदयो देवमनुष्यायुषी सती, एष भङ्गोऽप्रमत्तगुणस्थानं यावत् ५ । बन्धोपरमे तु मनुष्यायुष उदयो नरकमनुष्यायुषी सती ६, मनुष्यायुष उदयस्तिर्यङ्मनुष्यायुषी सती ७, मनुष्यायुष उदयो द्वे मनुष्यायुषी सती ८, एते त्रयोऽपि भङ्गा अप्रमत्तगुणस्थानं यावत्, नरकतिर्यङ्मनुष्यायुर्बन्धानन्तरं कस्यचित्संयममप्रतिपत्तेरपि भावात् । मनुष्यायुष उदयो देवमनुष्यायुषी सती, एष भङ्ग उपशान्तमोहगुणस्थानं यावत्, देवायुषि बद्धेऽप्युपशमश्रेण्यारोहसंभवात् ९ ।

अथ दर्शनावरणस्य बन्धोदयसत्तास्थानान्युच्यन्ते—अस्य त्रीणि बन्धस्थानानि नव षट् चतस्रश्चेति । तत्र सर्वप्रकृतिसमुदायो नव, तद्बन्धश्चाद्यगुणस्थानद्वयं यावत् । ता एव नव प्रकृतयः स्त्यानर्द्धित्रिकरहिताः षड् भवन्ति, तद्बन्धश्च मिश्रगुणस्थानादारभ्यापूर्वकरणगुणस्थानस्य प्रथमभागं यावत् । ता एव षट् प्रकृतयो निद्राप्रचलाहीनाश्चतस्रः, तद्बन्धश्चापूर्वकरणगुणस्थानप्रथमभागादूर्ध्वं सूक्ष्मसम्परायं यावत् । सत्तास्थानान्यपि दर्शनावरणस्य त्रीणि नव षट् चतस्रश्चेति । तत्र क्षपकश्रेणिमधिकृत्यानिवृत्तिबादरसम्परायाद्यभागं यावन्नव सत्यः । तत ऊर्ध्वं तु स्त्यानर्द्धित्रिके क्षीणे षट् प्रकृतयः, ताश्च क्षीणमोहद्विचरमसमयं यावत्सत्यः । द्विचरमसमये

निद्राप्रचलयोः सत्ताव्यवच्छेदे चतस्रः सत्यः, ताश्च क्षीणमोहचरमसमय एव क्षीयन्ते । उपशमश्रेण्यां तु नवापि प्रकृतय उपशान्तमोहगुणस्थानं यावत्सत्यः, अत्र नवबन्धस्थाने कालमधिकृत्य भङ्गत्रयं, तथाहि—तदनाद्यनन्तमनादिसान्तं सादिसान्तं चेति । तत्रानाद्यनन्तमभव्यानां, तेषां कदापि नवविधबन्धव्यवच्छेदासंभवात् । अनादिसान्तं भव्यानां, तेषां कालान्तरे नवविधबन्धव्यवच्छेदसंभवात् । सादिसान्तं सम्यक्त्वात्पतितानां द्रष्टव्यं, तच्च जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं कालं यावत् उत्कर्षतो देशोनार्धपुद्गलपरावर्त्तं यावत् । तथा षट्प्रकृत्यात्मकस्य बन्धस्थानस्य निरन्तरं बध्यमानत्वेनावस्थानमुत्कर्षतो द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां, अन्तरा सम्यङ्मिथ्यात्वान्तरितस्य सम्यक्त्वस्यैतावन्तं कालं यावदवस्थानसंभवात् , तत ऊर्ध्वं तु कश्चित् क्षपकश्रेणिं प्रतिपद्यते, कश्चित्तु मिथ्यात्वं, मिथ्यात्वप्रतिपत्तौ चावश्यं नवविधो बन्ध इति, जघन्येन चान्तर्मुहूर्त्तं। चतुर्विधबन्धस्थानं जघन्येनैकं समयं उत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तं । तत्रोपशमश्रेण्यामपूर्वकरणद्वितीयभागे चतुर्विधबन्धमारभ्यानन्तरसमये कश्चित्कालं करोति, कालं च कृत्वा दिवं गतः सन्नविरतो भवति, अविरतत्वे च षड्विधबन्ध इति । चतुर्विधबन्धस्थानस्यैकसामायिकी स्थितिरुत्कर्षेण त्वान्तर्मौहूर्तिकी, अपूर्वकरणद्वितीयभागादारभ्य सूक्ष्मसम्परायान्तस्यापि कालस्यान्तर्मुहूर्त्तप्रमाणत्वात् । तथा नवप्रकृत्यात्मकं दर्शनावरणस्य सत्तास्थानं कालमधिकृत्य द्विधाऽनाद्यनन्तमनादिसान्तं च। अनाद्यनन्तमभव्यानां, कदाप्यव्यवच्छेदात्, अनादिसान्तं भव्यानां, कालान्तरे व्यवच्छेदात् । सादिसान्तं तु न भवति, नवात्मकसत्तास्थानव्यवच्छेदस्य क्षपकश्रेण्यां भावात् , ततश्च प्रतिपाताभावात् । षट्प्रकृत्यात्मकं तु सत्तास्थानमजघन्योत्कृष्टमन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणं । चतुःप्रकृत्यात्मकं त्वेकसामयिकं ॥ उदयस्थाने दर्शनावरणस्य द्वे, तद्यथा—चतस्रः पञ्च च । तत्र दर्शनावरणचतुष्कस्य केवलस्योदये चतुःप्रकृत्यात्मकमुदयस्थानं, अन्यतमनिद्रोदयसाहित्ये च पञ्चप्रकृत्यात्मकं, एते द्वे अप्युदयस्थाने क्षीणमोहगुणस्थानं यावद्द्रष्टव्ये । अयं च

चतसृणां पञ्चानां वा प्रकृतीनामुदय एकत्र युगपद्भावापेक्षया द्रष्टव्यः, सामान्यचिन्तायां तु प्रमत्तसंयतं यावन्नवानामप्युदयः, ततः परं स्त्यानर्द्धित्रिकस्योदयाभावात् षण्णामुदयः। स च तावद्यावत्क्षीणमोहस्योपान्त्यसमयः। तत्र च निद्राप्रचलयोरपि व्यवच्छेदाच्चरमसमये चतसृणामुदयः॥ अथ बन्धोदयसत्तास्थानानां परस्परं संवेध उच्यते—नवविधो बन्धश्चतुर्विध उदयो नवविधा सत्ता १, एष भङ्गो निद्रोदयाभावे द्रष्टव्यः, निद्रोदये तु नवविधो बन्धः पञ्चविध उदयो नवविधा सत्ता २, एतौ द्वावपि भङ्गौ मिथ्यादृष्टिसासादनानां। तथा षड्विधो बन्धश्चतुर्विध उदयो नवविधा सत्ता ३, अथवा षड्विधो बन्धः पञ्चविध उदयो नवविधा सत्ता ४, एतौ द्वावपि मिश्रगुणस्थानादारभ्यापूर्वकरणगुणस्थानाद्यभागं यावद्वेदितव्यौ। तथा चतुर्विधो बन्धश्चतुर्विध उदयो नवविधा सत्ता ५, अथवा चतुर्विधो बन्धः पञ्चविध उदयो नवविधा सत्ता ६, एतौ द्वावुपशमश्रेण्यामपूर्वकरणद्वितीयभागादारभ्य सूक्ष्मसम्परायचरमसमयं यावत्, उपशान्ते तु बन्धाभावाच्चतुर्विध उदयो नवविधा सत्ता ७, अथवा पञ्चविध उदयो नवविधा सत्ता ८ इति द्वौ भङ्गौ। क्षीणमोहचरमसमये च चतुर्विध उदयश्चतुर्विधा सत्ता इत्येष नवमो भङ्गः ९। तथा चतुर्विधो बन्धश्चतुर्विध उदयः षड्विधा सत्तेत्येष विकल्पः स्त्यानर्द्धित्रिकक्षयानन्तरं सूक्ष्मसम्परायचरमसमयं यावत् १०। तथाऽबन्धश्चतुर्विध उदयः षड्विधा सत्तेत्येष विकल्पः क्षीणमोहे द्विचरमसमयं यावत् ११। तदेवं सर्वसङ्ग्रहया दर्शनावरणस्य सप्ततिकाकारमतेनैकादश भङ्गा उक्ताः। केचिदाचार्याः कर्मस्तवकारादयः क्षपके क्षीणमोहे च द्विचरमसमयं यावत् पञ्चानामप्युदयमिच्छन्ति, तन्मतेनान्यौ द्वौ भङ्गौ भवतः, तद्यथा—चतुर्विधो बन्धः पञ्चविध उदयः षड्विधा सत्ता १२, एष भङ्गः स्त्यानर्द्धित्रिकक्षयानन्तरं सूक्ष्मसम्परायं यावत्। बन्धाभावे पञ्चविध उदयः षड्विधा सत्ता १३, एष भङ्गः क्षीणमोहे द्विचरमसमयं यावत्। तदेवं सर्वसङ्ग्रहया त्रयोदश भङ्गाः॥

अथ गोत्रस्य प्रागुक्तानां बन्धोदयसत्तास्थानानां संवेध उच्यते—तत्र नीचैर्गोत्रस्य सासादनगुणस्थानं यावद्बन्धो देशविरतिगुणस्थानं यावदुदयः। उच्चैर्गोत्रस्य तु सूक्ष्मसम्परायं यावद्बन्धोऽयोगिकेवलिनं यावदुदयः। सत्कर्मता तु द्वयोरपि सर्वेष्वपि गुणस्थानेषु। एवं चात्र सप्त भङ्गाः संभवन्ति, तथाहि—नीचैर्गोत्रस्य बन्धो नीचैर्गोत्रस्योदयो नीचैर्गोत्रं सत् १, एष भङ्गस्तेजोवायुकायिकेषु लभ्यते, तत्रोच्चैर्गोत्रोद्वलनात्तद्भवादुद्धृत्तेषु च शेषजीवेषु कियत्कालं लभ्यते। नीचैर्गोत्रस्य बन्धो नीचैर्गोत्रस्योदय उच्चैर्नीचैर्गोत्रे सती २। अथवा नीचैर्गोत्रस्य बन्ध उच्चैर्गोत्रस्योदयो द्वे सती ३ एतौ भङ्गौ मिथ्यादृष्टिषु सासादनेषु वा, अग्रे तु बन्धो नीचैर्गोत्रस्य नास्तीत्येतदसंभवः। तथोच्चैर्गोत्रस्य बन्धो नीचैर्गोत्रस्योदयो द्वे सती ४, एष भङ्गो मिथ्यादृष्टेरारभ्य देशविरतिं यावत्, न परतः, परतो नीचैर्गोत्रोदयाभावात्। तथोच्चैर्गोत्रस्य बन्ध उच्चैर्गोत्रस्योदयो द्वे सती, एष भङ्गः सूक्ष्मसम्परायं यावत्, न परतः, परतो गोत्रबन्धाभावात् ५। अबन्ध उच्चैर्गोत्रस्योदयो द्वे सती, एष विकल्प उपशान्तमोहादारभ्यायोगिद्विचरमसमयं यावत् ६। चरमसमये उच्चैर्गोत्रस्योदय उच्चैर्गोत्रं सत् ७॥

अथ वेदनीयस्य प्रागुक्तानां बन्धोदयसत्तास्थानानां संवेध उच्यते—असातस्य बन्धोऽसातस्योदयः सातासाते सती १, अथवाऽसातस्य बन्धः सातस्योदयो द्वे सती २, एतौ द्वौ भङ्गौ मिथ्यादृष्टेरारभ्य प्रमत्तसंयतं यावत्प्राप्येते, न परतः, परतोऽसातस्य बन्धाभावात्। सातस्य बन्धोऽसातस्योदयो द्वे सती ३, यद्वा सातस्य बन्धः सातस्योदयो द्वे सती ४, इमौ द्वौ भङ्गौ मिथ्यादृष्टेरारभ्य सयोगिकेवलिचरमसमयं यावत्। परतो बन्धाभावेऽसातस्योदयः सातासाते सती ५, अथवा सातस्योदयः सातासाते सती ६, एतौ द्वौ भङ्गौ अयोगिकेवलिद्विचरमसमयं यावत्। चरमसमयेऽसातस्योदयोऽसातं सत् यस्य द्विचरमसमये सातं क्षीणं ७, यस्य त्वसातं

द्विचरमसमये क्षीणं तस्य सातस्योदयः सातस्य सत्ता ८। सर्वसङ्ख्यया वेदनीयाः सांवेधिका अष्टौ भङ्गाः ॥

ज्ञानावरणान्तराययोश्च पञ्चानामेव बन्ध उदयः सत्ता च, बन्धोपरमेऽपि पञ्चानामेवोदयः सत्ता चेति द्वौ भङ्गौ। तदेवमल्पवक्तव्यत्वादुक्तानि प्रथमतः षट् कर्माणि।

अथ मोहनीयस्य बन्धोदयसत्तास्थानान्युच्यन्ते—मोहनीयस्य दश बन्धस्थानानि, तद्यथा—प्रथमं बन्धस्थानं द्वाविंशतिः, सा चाद्यगुणस्थाने। द्वितीयमेकविंशतिः, सा च द्वितीयगुणस्थाने। तृतीयं सप्तदश, तत्तृतीयचतुर्थगुणस्थानयोः। चतुर्थं त्रयोदश, तच्च पञ्चमे गुणस्थाने। पञ्चमं नव, तच्च षष्ठसप्तमाष्टमगुणस्थानेषु। षष्ठं पञ्चप्रकृत्यात्मकं, सप्तमं चतुःप्रकृत्यात्मकं, अष्टमं त्रिप्रकृत्यात्मकं, नवमं द्विप्रकृत्यात्मकं दशममेकप्रकृत्यात्मकं, इमानि पञ्चादीनि पञ्च बन्धस्थानानि नवमगुणस्थाने द्रष्टव्यानि। अत्र मिथ्यात्वं षोडश कषाया अन्यतमो वेदोऽन्यतरद्युगलं भयं जुगुप्सा चेति द्वाविंशतिः। एषा च हास्यरतियुगलेऽरतिशोकयुगले च पर्यायेण प्राप्यत इति द्विधा, नवकबन्धं यावत्सर्वेषामपि हास्यरत्योररतिशोकयोश्च विकल्पेन बन्धकत्वात्। भूयः सा त्रिष्वपि वेदेषु प्रत्येकं विकल्पेन प्राप्यत इति षोढा। सैव द्वाविंशतिर्मिथ्यात्वाबन्धे एकविंशतिः, नवरमत्र द्वयोर्वेदयोरन्यतरो वेद इति वाच्यं। एकविंशतिबन्धकानां सासादनानां नपुंसकवेदाबन्धकत्वात्तद्बन्धस्य मिथ्यात्वोदयहेतुकत्वात्सासादनानां च तदुदयाभावात्ततो द्वयोर्युगलयोर्द्वयोश्च वेदयोः संचारणया चतुर्धैकविंशतिः। प्रथमकषायाबन्धे सप्तदशको बन्धः, द्वितीयकषायाबन्धे त्रयोदशकः, तृतीयकषायाबन्धे नवकः, एतेषु सप्तदशादिषु अनन्तानुबन्ध्युदयाभावात् स्त्रीवेदस्य न बन्ध इति पुरुषवेद एक एव बध्यते इति द्वावेव भङ्गौ युगलद्विकेन लभ्येते। तत्रापि नवकबन्धे प्रमत्तगुणस्थाने युगलविकल्पः प्राप्यते, अप्रमत्तापूर्वकरणयोश्च हास्यरतिरूपमेकमेव युगलं प्राप्यते, अरतिशोकयुगल-

स्याप्रमत्तगुणस्थान एव स्थितत्वादित्येतद्गुणस्थानद्वये नवकबन्ध एकरूप एव। तथा हास्यरतिभयजुगुप्सा अपूर्वकरण एव तिष्ठन्ति, परतो नानुवर्त्तन्ते। ततोऽनिवृत्तिबादरे प्रथमसमयादारभ्य पञ्चको बन्धः, स चानिवृत्तिबादराद्धायाः प्रथमपञ्चभागान्तं यावत्। ततः परतः पुरुषवेदस्य बन्धाभावाच्चतुर्विधो बन्धः, सोऽप्यनिवृत्तिबादरसम्परायाद्धाया द्वितीयपञ्चभागान्तं यावत्। ततः परतः संज्वलनक्रोधस्य बन्धाभावात् त्रिको बन्धः, सोऽपि तृतीयपञ्चभागान्तं यावत्। ततः परतः संज्वलनमानस्य बन्धाभावाद् द्विको बन्धः, सोऽपि चतुर्थपञ्चभागान्तं यावत्। ततः परतः संज्वलनमायाया बन्धाभावात्संज्वलनलोभस्यैकस्य बन्धः, स चानिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थानचरमसमयं यावत्। अमीषामेव बन्धस्थानानां कालप्रमाणमभिधास्यामः—तत्र द्वाविंशतिबन्धे कालमधिकृत्य भङ्गत्रयं, तथाहि—अभव्यानामेष बन्धोऽनाद्यपर्यवसितः, भव्यानामनादिसपर्यवसितः, सम्यक्त्वपरिभ्रष्टानां सादिसपर्यवसानः,स च जघन्येनान्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कर्षेण देशोनपुद्गलपरावर्त्तार्द्धमानः। एकविंशतिबन्धस्तु सासादनभावे लभ्यते, ततो यावानेव सासादनभावस्य कालस्तावानेवास्य द्रष्टव्यः, स च जघन्यत एकः समय उत्कर्षतः षडावलिकाः। सप्तदशबन्धे चोत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि किञ्चित्समधिकानि। त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि हि अनुत्तरसुरेषु प्राप्यन्ते, ततश्च्युत्वेहागत्य यावदद्यापि देशविरतिं सर्वविरतिं वा न पतिपद्यन्ते तावत्सप्तदशबन्ध इति किञ्चित्समधिकानीत्युच्यन्ते। जघन्यतस्त्वन्तर्मुहूर्त्तं। त्रयोदशबन्धे नवकबन्धे चोत्कृष्टा स्थितिर्देशोना पूर्वकोटी, यतस्त्रयोदशबन्धो देशविरतौ नवकबन्धश्च सर्वविरतौ, देशविरतेः सर्वविरतेश्चोत्कर्षतोऽपि देशोनपूर्वकोटिरेव काल इति। जघन्यतस्त्वनयोः स्थितिरान्तर्मौहूर्त्तिकी। शेषेषु तु पञ्चादिषूत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणा स्थितिः, जघन्यतस्तु समयमात्रा। तद्भावना चैवं—उपशमश्रेण्यां पञ्चविधबन्धमारभ्य द्वितीयसमये कश्चित् कालं कृत्वा देवलोकं याति, तत्र च गतः सन्नविरतो भवति, अविरतत्वे च सप्तदशबन्ध इत्येकसमयता। एवं चतुर्विधादिष्वपि भावनीयं। तदेवमुक्तानि

मोहनीयस्य बन्धस्थानानि ।

अथोदयस्थानान्युच्यन्ते—नव मोहनीयस्योदयस्थानानि, तद्यथा—एकं द्वे चत्वारि पञ्च षट् सप्ताष्टौ नव दश च । तत्र चतुर्णां संज्वलनानामेकतमस्योदये एककमुदयस्थानं, तदेव त्रयान्यतमवेदप्रक्षेपे द्विकं, तत्रापि हास्यरतिरूपयुगलप्रक्षेपे चतुष्कं, तत्रैव भयप्रक्षेपे पञ्चकं, ततो जुगुप्साप्रक्षेपात् षट्कं । तत्रैव चतुर्णां प्रत्याख्यानावरणानामन्यतमोदयप्रक्षेपे सप्तकं, तत्रैवाप्रत्याख्यानानां चतुर्णामन्यतमप्रक्षेपेऽष्टकं, तत्रैव चतुर्णामनन्तानुबन्धिनामन्यतमप्रक्षेपे नवकं, तत्रैव मिथ्यात्वप्रक्षेपे दशकमिति । तत्र द्विकादयो दशान्ता उदयाः प्रत्येकं क्रोधे माने मायायां लोभे च प्राप्यन्त इति चतुर्विधा भवन्ति । ते च चतुर्विधाः सन्तः प्रत्येकमेकैकस्मिन् वेदे प्राप्यन्त इति वेदत्रयवशाद् द्वादशधा भवन्ति । द्वादशधा च सन्तो द्विकोदयरहिताः, शेषा उदयाः प्रत्येकमेकैकस्मिन् युगले प्राप्यन्त इति युगलसंचारणया द्विगुणा भवन्ति, ततो द्विकोदये द्वादशैव भङ्गाः । शेषेषु तूदयेषु प्रत्येकं चतुर्विंशतिः, सा चैकैकस्मिन् गुणस्थानेऽनेकधा प्राप्यते, तथाहि—अनन्तानुबन्धिनां वेदकसम्यक्त्वस्य भयजुगुप्सयोश्च कादाचित्क उदयो भवति, यतः सम्यक्त्वप्रभावेणोद्वलितानामनन्तानुबन्धिनां भूयोऽपि मिथ्यात्वप्रतिपत्तौ तन्महिम्नोपचितानामावलिकामात्रमुदयो न भवति, शेषकालं तु भवति । अविरतसम्यग्दृष्ट्यादीनामप्यौपशमिकसम्यक्त्ववतां क्षायिकसम्यक्त्ववतां वा वेदकसम्यक्त्वस्योदयो न भवति, शेषाणां तु भवति । भयजुगुप्सयोस्त्वध्रुवोदयत्वादेव मिथ्यादृष्ट्यादिष्वपूर्वकरणान्तेषु कदाचिदुदयो भवति कदाचिन्नेत्येकैकस्मिन् गुणस्थाने उदयास्तद्भाविभङ्गचतुर्विंशतयश्च बहुधा भवन्ति । तत्र मिथ्यादृष्टौ सप्ताष्टौ नव दश चेति चत्वार उदया भवन्ति । तत्र मिथ्यात्वमनन्तानुबन्धिवर्जा अन्यतमे त्रयः क्रोधादिकाः त्रयाणां वेदानामन्यतमो वेदो द्वयोर्युगलयोरन्यतरद्युग-

लमित्येतासां सप्तानां नियमादुदयो भवति । अत्र द्वाभ्यां युगलाभ्यां त्रिभिर्वेदैश्चतुर्भिश्च क्रोधादिभिः परस्परं ताडने भङ्गाश्चतुर्विंशतिः। तस्मिन्नेव सप्तके भये वा जुगुप्सायां वाऽनन्तानुबन्धिनि वा प्रक्षिप्तेऽष्टानामुदयः, अत्र भयादौ प्रत्येकमेकैका चतुर्विंशतिः प्राप्यत इति तिस्रश्चतुर्विंशतयः । ननु सप्तोदयेऽष्टोदये वा क्वचिन्मिथ्यादृष्टिरनन्तानुबन्ध्युदयरहितः कथं प्राप्यत इति चेदुच्यते-यः कश्चित्सम्यग्दृष्टिः सन्ननन्तानुबन्धिविसंयोजनयैव विश्रान्तो मिथ्यात्वादिक्षयाय नोद्युक्तवान् तस्य कालान्तरे मिथ्यात्वं गतस्य तत्प्रत्ययतो भूयोऽप्यनन्तानुबन्धिनां बन्धे प्रवर्तमाने बन्धावलिका यावन्नातिक्रामति तावदुदयो न भवति बन्धावलिकायां त्वतिक्रान्तायां भवेदपि । 'अथ कथं बन्धावलिकातिक्रमेऽप्युदयः संभवी ? जघन्यतोऽप्यनन्तानुबन्धिनामबाधाकालस्यान्तर्मुहूर्त्तमानत्वात्' , 'नैष दोषः, यतो बन्धसमयादारभ्य तेषां सत्ता भवति सत्तायां च सत्यां बन्धकालं यावत् पतद्ग्रहता, पतद्ग्रहतायां च सत्यां शेषसजातीयप्रकृतिदलिकसङ्क्रान्तिः, सङ्क्रान्तं च पतद्ग्रहप्रकृतिरूपतया परिणमते । ततः सङ्क्रमावलिकायामतीतायामुदयो भवतीति बन्धावलिकायामतीतायां तदभिधानमविरुद्धं' । तथा तस्मिन्नेव सप्तके भयजुगुप्सयोरथवा भयानन्तानुबन्धिनोर्यद्वा जुगुप्सानन्तानुबन्धिनोः प्रक्षिप्तयोर्नवानामुदयः । तत्राप्येकैकस्मिन् विकल्पे भङ्गानां चतुर्विंशतिः प्राप्यत इति तिस्रश्चतुर्विंशतयः । तथा तस्मिन्नेव सप्तके भयजुगुप्सानन्तानुबन्धिषु युगपत्प्रक्षिप्तेषु दशानामुदयः । अत्रैकैव भङ्गानां चतुर्विंशतिः । रूर्वसङ्ख्यया मिथ्यादृष्टावष्टौ चतुर्विंशतयः ॥ सासादने मिश्रे च सप्ताष्टनवलक्षणास्त्रय उदयाः, तत्रानन्तानुबन्ध्यादीनामन्यतमे चत्वारः क्रोधादिकास्त्रयाणां वेदानामन्यतमो वेदो द्वयोर्युगलयोरन्यतरद्युगलमित्येतासां सप्तानां प्रकृतीनामुदयः सासादने ध्रुवः । अत्र प्रागुक्तरीत्या भङ्गानामेका चतुर्विंशतिः । तथा तस्मिन्नेव सप्तके भये वा जुगुप्सायां वा क्षिप्तायामष्टानामुदयः, अत्र द्वे चतुर्विंशती भङ्गानां । भयजुगुप्सयोर्युगपत्क्षिप्तयोर्नवानामुदयः, अत्रैका

भङ्गानां चतुर्विंशतिः । सर्वसङ्ख्यया सासादने चतस्रश्चतुर्विंशतयः । तथा सम्यङ्मिथ्यादृष्टावनन्तानुबन्धिवर्जास्रयोऽन्यतमे क्रोधादयः त्रयाणां वेदानामन्यतमो वेदो द्वयोर्युगलयोरन्यतरद्युगलं सम्यग्मिथ्यात्वं चेति सप्तानां प्रकृतीनामुदयो ध्रुवः । अत्र प्रागुक्तरीत्या भङ्गानामेका चतुर्विंशतिः । अस्मिन्नेव सप्तके भये जुगुप्सायां वा क्षिप्तायामष्टानामुदयः, अत्र द्वे चतुर्विंशती । भयजुगुप्सयोर्युगपत्क्षिप्तयोर्नवानामुदयः, अत्रैका चतुर्विंशतिः । सर्वसङ्ख्यया सम्यग्मिथ्यादृष्टौ चतस्रश्चतुर्विंशतयः ॥ अविरतसम्यग्दृष्टौ षट् सप्ताष्टौ नव चेति चत्वार उदयाः । तत्रौपशमिकसम्यग्दृष्टेः क्षायिकसम्यग्दृष्टेर्वा, अस्यानन्तानुबन्धिवर्जास्रयोऽन्यतमे क्रोधादिका अन्यतमो वेदोऽन्यतरच्च युगलमिति षण्णामुदयो ध्रुवः, अत्रापि प्राग्वद्भङ्गानामेका चतुर्विंशतिः । अस्मिन्नेव षट्के भये जुगुप्सायां वा वेदकसम्यक्त्वे वा क्षिप्ते सप्तानामुदयः, अत्र भयादिषु प्रत्येकमेकैकचतुर्विंशतिप्राप्तेस्तिस्रश्चतुर्विंशतयः। तस्मिन्नेव षट्के भयजुगुप्सयोर्वा भयवेदकयोर्वा जुगुप्सावेदकयोर्वा क्षिप्तयोरष्टानामुदयः, अत्रापि तिस्रश्चतुर्विंशतयः । युगपत् त्रयप्रक्षेपे नवानामुदयः, अत्रैका चतुर्विंशतिः । सर्वसङ्ख्ययाऽविरतसम्यग्दृष्टावष्टौ ॥ देशविरते पञ्च षट् सप्ताष्टौ चेति चत्वार उदयाः । तत्रौपशमिकसम्यग्दृष्टेः क्षायिकसम्यग्दृष्टेर्वा देशविरतस्य तृतीयचतुर्थकषायाणामन्यतमौ द्वौ क्रोधादिकावन्यतमो वेदोऽन्यतरद्युगलं चेति पञ्चानामुदयो ध्रुवः, अत्रैका चतुर्विंशतिः । भयजुगुप्सावेदकसम्यक्त्वानामन्यतमस्मिन् प्रक्षिप्ते षण्णामुदयः, अत्र तिसश्चतुर्विंशतयः । अन्यतरद्वयप्रक्षेपे सप्तानामुदयः, अत्रापि तिस्रश्चतुर्विंशतयः । युगपत् त्रयप्रक्षेपेऽष्टानामुदयः, अत्रैका चतुर्विंशतिः। सर्वसङ्ख्यया देशविरतेऽष्टौ ॥ प्रमत्तसंयते चतस्रः पञ्च षट् सप्त चेति चत्वार उदयाः। तत्र संज्वलनानामन्यतम एकः क्रोधादिरन्यतमो वेदोऽन्यतरच्च युगलमित्येतासां चतसृणामुदयः प्रमत्तसंयते ध्रुवः, अत्रैका चतुर्विंशतिः। ततो भयजुगुप्सावेदकसम्यक्त्वानामन्यतरैकप्रक्षेपे पञ्चानामुदयः, तत्र तिस्रश्चतुर्विंशतयः, अन्यतरद्वयप्रक्षेपे षण्णामुदयः, तत्रापि तिस्रश्चतुर्विंशतयः, युग-

पत्रयप्रक्षेपे सप्तानामुदयः, तत्रैका चतुर्विंशतिः । सर्वसङ्ख्यया प्रमत्तेऽष्टौ ॥ एवमेवाप्रमत्तेऽपि चतुर्ष्वुदयेष्वष्टौ भावनीयाः ॥ अपूर्वकरणे चतस्रः पञ्च षट् चेति त्रय उदयाः । तत्र चतस्रः प्राग्वत् , अत्रैका चतुर्विंशतिः । अस्मिन्नेव चतुष्के भये वा जुगुप्सायां वा क्षिप्तायां पञ्चानामुदयः, अत्र द्वे चतुर्विंशती । भयजुगुप्सयोस्तु युगपत् क्षिप्तयोः षण्णामुदयः, अत्रैका चतुर्विंशतिः । सर्वसङ्ख्ययाऽपूर्वकरणे चतस्रश्चतुर्विंशतयः ॥ इहाप्रमत्तापूर्वकरणयोरुदयाः प्रमत्तोदयापेक्षया गुणस्थानभेदमात्रेणैव भिन्ना न परमार्थत इति प्रमत्तोदयग्रहणेनैव ते गृहीता द्रष्टव्याः । अत एवाग्रे तयोश्चतुर्विंशतयः पृथग् न गणयिष्यन्ते । अथ दशोदयादिषु यावत्यश्चतुर्विंशतयो भवन्ति तावत्यो निर्दिश्यन्ते—तत्र दशकोदये एका चतुर्विंशतिर्मिथ्यादृष्टौ । नवोदये षट्, तत्र तिस्रो मिथ्यादृष्टौ, सासादने मिश्रेऽविरते चैकैका । अष्टोदये एकादश, तथाहि—तिस्रो मिथ्यादृष्टौ, द्वे सासादने, द्वे मिश्रे, तिस्रोऽविरतसम्यग्दृष्टौ, देशविरते चैका । सप्तोदये दश, तद्यथा—मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रप्रमत्तसंयतेष्वेकैका, अविरतसम्यग्दृष्टौ देशविरते च तिस्रस्तिस्रः । षडुदये सप्त, तथाहि—अविरतसम्यग्दृष्टावेका, देशविरते तिस्रः, प्रमत्ते च तिस्र इति। पञ्चकोदये चतस्रः, तत्र देशविरतस्यैका, प्रमत्तस्य च तिस्रः। चतुष्कोदये एका, सा च प्रमत्तस्येति। सर्वसङ्ख्यया चत्वारिंशच्चतुर्विंशतयः, ताश्च चतुर्विंशत्या गुण्यन्ते, जातानि नव शतानि षष्ठ्यधिकानि। तथा पञ्चादिषु बन्धस्थानेषु क्रमेण द्वादश चत्वारः त्रयो द्वावेकश्चत्युदयविकल्पा भवन्ति । तथाहि—पञ्चविधबन्धकाले द्वयोः प्रकृत्योरुदयः, चतुर्णां संज्वलनानामन्यतमस्यैकस्य क्रोधादेस्त्रयाणां वेदानामन्यतमस्य वेदस्य चेति, अत्र त्रिभिश्चतुर्णां ताडने द्वादश भङ्गाः । चतुर्विधबन्धे त्वेकोदयः, यतः पुरुषवेदबन्धव्यवच्छेदे चतुर्विधबन्धो भवति, पुरुषवेदस्य च बन्धोदयौ युगपद्व्यवच्छिद्येते इति, स चैककोदयश्चतुर्णां संज्वलनानामन्यतमस्य, अत्र च चत्वारो भङ्गाः, यतः कोऽपि संज्वलनक्रोधेनोदयप्राप्तेन श्रेणिं प्रतिपद्यते, कोऽपि संज्वलनमानेन, कोऽपि

संज्वलनमायया, कोऽपि संज्वलनलोभेनेति चत्वारो भङ्गाः। संज्वलनक्रोधबन्धव्यवच्छेदे त्रिविधो बन्धः, तत्राप्येकविध उदयः, स च संज्वलनक्रोधवर्जानां त्रयाणामन्यतमस्यात्र त्रयो भङ्गाः। संज्वलनमानबन्धव्यवच्छेदे द्विविधो बन्धः, अत्राप्येकविध उदयः, स च संज्वलनमायालोभयोरन्यतरस्य द्रष्टव्यः, अत्र द्वौ भङ्गौ। संज्वलनमायाबन्धव्यवच्छेदे एकविधो बन्धः, तत्राप्युदय एकविधः, स च संज्वलनलोभोदयरूपोऽवगन्तव्यः, अत्रैक एव भङ्गः। इह यद्यपि पञ्चादिषु बन्धस्थानेषु संज्वलनानामुदयमधिकृत्य न विशेषस्तथापि बन्धस्थानापेक्षया भेदोऽस्तीति पृथग् भङ्गा गण्यन्ते। प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वकरणानां तु बन्धस्थानापेक्षयाऽपि न भेदः, सर्वेषामपि नवबन्धकत्वात्, तत एतेषां भङ्गाः पार्थक्येन न गणिताः। तथाऽबन्धकेऽपि सूक्ष्मसम्पराये एककोदयः। सर्वसङ्ख्ययाऽमी उदयविकल्पास्त्रयोविंशतिः, एते प्रागुक्तेषूदयविकल्पेषु क्षिप्ता नव शतानि त्र्यशीत्यधिकानि भवन्ति। इह केचिदाचार्याश्चतुर्विधबन्धकस्याप्याद्यविभागे वेदोदयमिच्छन्ति, ततश्च तन्मतेन चतुर्विधबन्धकेऽपि द्विकोदय भङ्गा द्वादश भवन्ति, ते च बन्धकभेदेन भिन्ना इति पृथग्गण्यन्ते, तत्प्रक्षेपादुदयविकल्पानां नव शतानि पञ्चनवत्यधिकानि भवन्ति। यदि तु बन्धकभेदेन भङ्गानां भेदो न विवक्ष्यते, तदा पञ्चविधबन्धे चतुर्विधबन्धे च ये द्विकोदयभङ्गास्ते एकरूपा एवेति द्वादशैव। ये चैककोदयभङ्गास्ते चत्वार एवेति षोडशैव, एतेषां प्रागुक्तोदयभङ्गराशौ षष्ट्यधिकनवशतप्रमाणे प्रक्षेपे षट्सप्तत्यधिकानि नवशतान्युदयविकल्पानां भवन्ति॥ अथ मोहनीयोदया एते गुणस्थानेषु चिन्त्यन्ते—तत्र मिथ्यादृष्ट्यविरतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमत्ताप्रमत्तानामष्टावष्टौ चतुर्विंशतयो भवन्ति, सासादनमिश्रापूर्वकरणेषु चतस्रश्चतस्रः, भावितचरा एता इति न भूयो भाव्यन्ते, सर्वसङ्ख्ययाऽमूर्द्विपञ्चाशत्, तस्याश्चतुर्विंशत्या गुणने जातानि द्वादश शतान्यष्टचत्वारिंशदधिकानि। अन्ये चानिवृत्तिबादरसम्पराये पञ्चविधबन्धादौ षोडश सूक्ष्मसम्पराये चैक इति सप्तदश भङ्गा अधिकाः क्षिप्यन्ते। ततः

सर्वेष्वपि गुणस्थानेषु सर्वसङ्ख्यया मोहनीयस्योदयाः पञ्चषष्ट्यधिकानि द्वादश शतानि । एत एव च भङ्गा उदीरणायामपि द्रष्टव्याः, उदयोदीरणयोः सहभावित्वात् । यद्यपि वेदत्रयसंज्वलनानां पर्यन्तावलिकायामुदीरणा न भवति, किं तु केवल एवोदयः, तथापि शेषकालमुदीरणा लभ्यत इति भङ्गसङ्ख्या न व्याहन्यते । एते चैकादयो दशान्ता उदयास्तदन्तर्गता भङ्गाश्च जघन्यत एकसामयिका उत्कर्षत आन्तर्मौहूर्त्तिकाः। तथाहि—चतुरुदयादिषु दशोदयपर्यन्तेष्ववश्यमन्यतमो वेदोऽन्यतरच्च युगलं विद्यते, वेदयुगलयोश्च मध्येऽवश्यमन्यतरन्मुहूर्त्तादारतः परावर्त्तते । तदुक्तं पञ्चसङ्ग्रहमूलटीकायां—"युगलेन वेदेन वाऽवश्यं मुहूर्त्तादारतः परावर्त्तितव्यमिति" । तत एते उत्कर्षत आन्तर्मौहूर्तिकाः, द्विकोदयैककोदयानां चान्तर्मौहूर्तिकत्वं सुप्रसिद्धमेव। एकसामयिकतात्वेवं—यदा विवक्षिते उदये भङ्गे वा समयमेकं वर्त्तित्वा गुणस्थानान्तरे गच्छति तदाऽवश्यं बन्धस्थानभेदाद्गुणस्थानभेदात्स्वरूपतो वा भिन्नमुदयान्तरं भङ्गान्तरं वा यातीति सर्वेऽप्युदया भङ्गाश्च जघन्यत एकसामयिकाः ।

तदेवमुक्तानि मोहनीयस्योदयस्थानानि । अथ सत्तास्थानान्युच्यन्ते—मोहनीयस्य सत्तास्थानानि पञ्चदश, तथाहि—अष्टाविंशतिः सप्तविंशतिः षड्विंशतिश्चतुर्विंशतिस्त्रयोविंशतिर्द्वाविंशतिरेकविंशतिस्त्रयोदश द्वादशैकादश पञ्च चतस्रस्तिस्रो द्वे एका चेति । एतेषामेव सत्तास्थानानां गुणस्थानेषु व्यवच्छेदश्चिन्त्यते—अविरतादयोऽप्रमत्तान्ता अनन्तानुबन्धिमिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वानां क्षपका भवन्ति ततस्तेषु सप्तकं कियत्कालं प्राप्यते, परतः सर्वथा न भवति । तथाऽनिवृत्तिबादरसम्परायः प्रथमं युगपन्मध्यमाष्टकषायान् विनाशयति, ततो नपुंसकवेदं, ततः स्त्रीवेदं, ततो हास्यादिषट्कं, ततः पुरुषवेदं, ततः क्रमेण त्रीन् क्रोधमानमायारूपान्, सूक्ष्मसम्परायस्तु किट्टीकृतं लोभं विनाशयति । अनेन व्यवच्छेदक्रमेण चतुर्विंशत्यादीनि द्वादश सत्तास्थानानि व्याख्यातानि भवन्ति । त्रीणि चैवं

भाव्यानि—सर्वप्रकृतिसमुदायोऽष्टाविंशतिः, ततः सम्यक्त्वे उद्वलिते सप्तविंशतिः, ततः सम्यङ्मिथ्यात्वे उद्वलिते षड्विंशतिः, अनादिमिथ्यादृष्टेर्वा षड्विंशतिरिति । अथ गुणस्थानेषु सत्तास्थानानि चिन्त्यन्ते— मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने त्रीणि सत्तास्थानानि—अष्टाविंशतिः सप्तविंशतिः षड्विंशतिश्च, यतो मिथ्यादृष्टिः सम्यक्त्वमिश्रयोरुद्वलको भवति । सासादने एकं सत्तास्थानमष्टाविंशतिः । मिश्रे त्रीणि सत्तास्थानानि—अष्टाविंशतिश्चतुर्विंशतिः सप्तविंशतिश्च, तत्र चतुर्विंशतिर्विसंयोजितानन्तानुबन्धिनि सम्यग्दृष्टौ मिश्रत्वं प्रपन्ने, सप्तविंशतिश्चोद्वलितसम्यक्त्वपुञ्जे मिथ्यादृष्टौ तद्भावं प्रपन्ने द्रष्टव्या । तथाऽविरतदेशविरतप्रमत्ताप्रमत्तेषु प्रत्येकं पञ्च सत्तास्थानानि—अष्टाविंशतिश्चतुर्विंशतित्रयोविंशतिर्द्वाविंशतिरेकविंशतिश्च । अपूर्वकरणे त्रीणि, तद्यथा—अष्टाविंशतिश्चतुर्विंशतिरेकविंशतिश्च। अनिवृत्तिबादरसम्पराये एकादश सत्तास्थानानि, तद्यथा—अष्टाविंशतिश्चतुर्विंशतिरेकविंशतित्रयोदश द्वादशैकादश पञ्च चतस्रस्तिस्रो द्वे एका च । सूक्ष्मसम्पराये चत्वारि सत्तास्थानानि, तद्यथा–अष्टाविंशतिश्चतुर्विंशतिरेकविंशतिरेका च। उपशांतमोहगुणस्थानके त्रीणि सत्तास्थानानि, तद्यथा–अष्टाविंशतिः चतुर्विंशतिरेकविंशतिश्च । तदेवमुक्तानि सप्तपञ्च मोहनीयस्य सत्तास्थानानि ॥

अथ बन्धोदयसत्तास्थानानां संवेधश्चिन्त्यते—तत्र द्वाविंशतिबन्धे मिथ्यादृष्टेः सप्तोदयेऽष्टाविंशतिलक्षणमेकमेव सत्तास्थानं भवति । कथमिदं प्रत्येयमिति चेदुच्यते—सप्तोदयोऽनन्तानुबन्धिराहित्ये संभवति, तद्रहितश्च मिथ्यादृष्टिरवश्यमष्टाविंशतिसत्कर्मा, येन हि पूर्वं सम्यग्दृष्टिना सताऽनन्तानुबन्धिन उद्वलिताः, ततश्च स कालान्तरे परिणामवशान्मिथ्यात्वं गतः तत्प्रत्ययेन चानन्तानुबन्धिनो बध्नाति तदाऽसौ मिथ्यादृष्टिर्बन्धावलिकामात्रं कालं यावदनन्तानुबन्ध्युदयरहितः प्राप्यते, नान्यः, स चाष्टाविंशतिसत्कर्मेति तस्य सत्तास्थानमष्टाविंशतिरेव । अष्टनवदशकोदये चाष्टाविंशतिसप्तविंशतिषड्विंशतिलक्षणानि त्रीणि सत्तास्थानानि, तथाहि—

अष्टोदयो द्विधाऽनन्तानुबन्ध्युदयरहितस्तत्सहितश्च, तत्रानन्तानुबन्ध्युदयरहिते प्रागुक्तयुक्तेरष्टाविंशतिरेव सत्तास्थानं, तत्सहिते तु त्रीण्यपि सत्तास्थानानि। तत्र मिथ्यादृष्टिसम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोरुद्वलको भवति, स च यावन्नाद्यापि सम्यक्त्वमुद्वलयति तावदष्टाविंशतिः, तस्मिन्नुद्वलिते सप्तविंशतिः, सम्यग्मिथ्यात्वेऽप्युद्वलिते षड्विंशतिरनादिमिथ्यादृष्टेर्वा। एवं नवोदयेऽपि द्रष्टव्यं। दशोदयस्त्वनन्तानुबन्तिसहित एव भवतीति तत्रापि त्रीणि सत्तास्थानानि भावनीयानि॥ सासादने त्वेकविंशतिबन्धे त्रिष्वपि सप्ताष्टनवकरूपेषूदयेष्वष्टाविंशतिरेवैकं सत्तास्थानं। तथाहि--सासादनत्वमौपशमिकसम्यक्त्वात्प्रच्यवमानस्योपजायते, सम्यक्त्वगुणेन च तेन मिथ्यात्वं त्रिधा कृतं--सम्यक्त्वं सम्यग्मिथ्यात्वं मिथ्यात्वं चेति। ततो दर्शनत्रिकस्यापि सत्कर्मतया प्राप्तेः सासादने त्रिष्वप्युदयस्थानेष्वष्टाविंशतिरेवैकं सत्तास्थानं॥ सप्तदशबन्धो द्वयानां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनामविरतसम्यग्दृष्टीनां च। तत्र सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां त्रीण्युदयस्थानानि--सप्ताष्टौ नव चेति। अविरतसम्यग्दृष्टीनां चत्वारि, तद्यथा-षट् सप्ताष्टौ नव चेति। तत्र षडुदयोऽविरतानामौपशमिकसम्यग्दृष्टीनां क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां वा प्राप्यते। तत्रौपशमिकसम्यग्दृष्टीनां द्वे सत्तास्थाने अष्टाविंशतिश्चतुर्विंशतिश्च। तत्राष्टाविंशतिः प्रथमसम्यक्त्वोत्पादकाले, उपशमश्रेणिप्रतिपाते तूपशान्तानन्तानुबन्धिनामष्टाविंशतिः, उद्वलितानन्तानुबन्धिनां चतुर्विंशतिः, क्षायिकसम्यग्दृष्टिनां तु सप्तकक्षयादेकविंशतिरेव। सप्तोदये मिश्रदृष्टीनां त्रीणि सत्तास्थानानि अष्टाविंशतिः सप्तविंशतिश्चतुर्विंशतिश्च। तत्राष्टाविंशतिसत्कर्मणः सतो मिश्रभावं प्रपन्नस्याष्टाविंशतिः, यस्तु मिथ्यादृष्टिः सम्यक्त्वोद्वलनं कृत्वा मिश्रं नाद्याप्युद्वलयितुं लग्नोऽन्तरे च परिणाममहिम्ना मिथ्यात्वान्निवृत्त्य मिश्रभावं प्रपन्नः, तस्य सप्तविंशतिः। यश्च विसंयोजितानन्तानुबन्धिचतुष्कः सम्यग्दृष्टिर्मिश्रभावं प्रपद्यते, तस्य चतुर्विंशतिः, सा च चतसृषु गतिषु प्राप्यते, चतुर्गतिकानामपि सम्यग्दृशामनन्तानुबन्धिविसंयोजकत्वाच्चद्विसंयोजनानन्तरं

च केषाञ्चित् परिणामवशेन मिश्रभावप्राप्तिसंभवात् , ततश्च चतसृष्वपि गतिषु मिश्रदृष्टीनां चतुर्विंशतिः संभवति । अविरतसम्यग्दृष्टीनां सप्तोदये पञ्च सत्तास्थानानि—अष्टाविंशतिश्चतुर्विंशतिस्त्रयोविंशतिर्द्वाविंशतिरेकविंशतिश्च । तत्राष्टाविंशतिरौपशमिकसम्यग्दृष्टीनां वेदकसम्यग्दृष्टीनां च । चतुर्विंशतिरप्युभयेषां, नवरं विसंयोजितानन्तानुबन्धिनां । त्रयोविंशतिर्वेदकसम्यग्दृष्टीनामेव क्षपणायोद्यतानामनन्तानुबन्धिषु मिथ्यात्वे च क्षपिते सति । द्वाविंशतिरपि तेषामेव सम्यग्मिथ्यात्वे क्षपिते, स च द्वाविंशतिसत्कर्मा सम्यक्त्वं क्षपयँस्तच्चरमग्रासे वर्त्तमानः कश्चित्पूर्ववद्बद्धायुष्कः कालमपि करोति, कालं च कृत्वा चतसृणां गतीनामन्यतमस्यां गतावुत्पद्यते । उक्तं च—"पट्ठवगो उ मणुस्सो णिट्ठवगा चउसु वि गईसु" । ततो द्वाविंशतिश्चतसृष्वपि गतिषु प्राप्यते । एकविंशतिः, क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां । एवमष्टोदयेऽपि मिश्रदृष्टीनामविरतसम्यग्दृष्टीनां चोक्तरूपाण्यन्यूनानतिरिक्तानि सत्तास्थानानि भावनीयानि । एवं नवोदयेऽपि, नवरं नवोदयोऽविरतानां वेदकसम्यग्दृष्टीनामेवेति । तत्राष्टाविंशतिचतुर्विंशतित्रयोविंशतिद्वाविंशतिलक्षणानि चत्वारि सत्तास्थानानि वाच्यानि ॥ त्रयोदशबन्धकानां देशविरतानां चत्वार्युदयस्थानानि, तद्यथा—पञ्च षट् सप्ताष्ट । तत्र देशविरता द्विधा तिर्यञ्चो मनुष्याश्च । तत्र तिरश्चां चतुर्ष्वप्युदयेषु द्वे द्वे सत्तास्थाने अष्टाविंशतिश्चतुर्विंशतिश्च । तत्राष्टाविंशतिरौपशमिकसम्यग्दृष्टीनां वेदकसम्यग्दृष्टीनां वा । तत्रौपशमिकसम्यग्दृष्टीनां प्रथमसम्यक्त्वेन सह देशविरतिप्रतिपत्तिकाले, वेदकसम्यग्दृष्टीनां त्वष्टाविंशतिः सुप्रतीता । चतुर्विंशतिरनन्तानुबन्धिषु विसंयोजितेषु वेदकसम्यग्दृष्टीनामवगन्तव्या । शेषाणि तु त्रयोविंशत्यादीनि सत्तास्थानानि तिरश्चां न संभवन्ति, तानि हि क्षायिकसम्यक्त्वमुत्पादयतः प्राप्यन्ते । न च तिर्यञ्चः क्षायिकसम्यक्त्वमुत्पादयन्ति, किं तु मनुष्या एव । अथ मनुष्यः क्षायिकसम्यक्त्वमुत्पाद्य यदा तिर्यक्षूत्पद्यते तदा तिरश्चोऽप्येकविंशतिः कथं न प्राप्यते ? मैवं, क्षायिकसम्यग्दृष्टेस्तिर्य

क्षुत्पित्सोरसङ्ख्येयवर्षायुष्केष्वेव समुत्पादात्, तत्र च देशविरत्यभावाद्देशविरतेषु तिर्यक्षु त्रयोविंशत्यादिप्रतिषेधस्य युक्तत्वात्। उक्तं च सप्ततिकाचूर्णौ—"एगवीसा तिरिक्खेसु संजयासंजएसु न लब्भइ, कहं ? भन्नइ—संखेज्जवासाउएसु खाइगसम्मद्दिट्ठी न उववज्जइ, असंखेज्जवासाउएसु उववज्जेज्जा, तस्स देसविरई णत्थि त्ति"। ये तु मनुष्या देशविरतास्तेषां पञ्चकोदये त्रीणि सत्तास्थानानि एकविंशतिचतुर्विंशत्यष्टाविंशतिरूपाणि। षट्कोदये सप्तोदये च प्रत्येकं पञ्चापि सत्तास्थानानि। अष्टकोदये चैकविंशतिवर्जानि शेषाणि चत्वारि सत्तास्थानानि भवन्ति, तानि चाविरतसम्यग्दृष्ट्युक्तया दिशा भावनीयानि। एवं नवकबन्धे प्रमत्तेऽप्रमत्ते च प्रत्येकं चतुष्कोदये त्रीणि त्रीणि सत्तास्थानान्यष्टाविंशतिचतुर्विंशत्येकविंशतिलक्षणानि। पञ्चकोदये षट्कोदये च पञ्च पञ्च सत्तास्थानान्यष्टाविंशतिचतुर्विंशतित्रयोविंशतिद्वविंशत्येकविंशतिलक्षणानि। एतान्येवैकविंशतिवर्जानि शेषाणि चत्वारि सप्तकोदये प्रागुक्तदिशा भावनीयानि ॥ अपूर्वकरणस्य तु नवबन्धकस्य त्रीण्युदयस्थानानि चत्वारि पञ्च षट् चेति। एतेषु च त्रिष्वपि प्रत्येकं त्रीणि त्रीणि सत्तास्थानान्यष्टाविंशतिचतुर्विंशत्येकविंशतिलक्षणानि द्रष्टव्यानि। अपूर्वकरणो हि वेदकसम्यग्दृष्टिर्न भवति, किं त्वौपशमिकसम्यग्दृष्टिः क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्वा। तत्रौपशमिकसम्यग्दृष्टेरष्टाविंशतिचतुर्विंशती एव प्राग्बद्धावनीये, क्षायिकसम्यग्दृष्टेस्त्वेकविंशतिः। पञ्चचतुस्त्रिद्व्येकबन्धकेष्वबन्धके च सूक्ष्मसम्पराये उपशान्तमोहे च प्रत्येकं त्रीणि त्रीणि सत्तास्थानान्यष्टाविंशतिचतुर्विंशत्येकविंशतिलक्षणान्युपशान्तसप्तकमुद्वलितानन्तानुबन्धिनं क्षीणसप्तकं चाधिकृत्य यथायोगं द्विकोदये एककोदयेऽनुदये चोपशमश्रेण्यां भवन्ति ॥ तथा पञ्चविधबन्धकस्यानिवृत्तिबादरक्षपकस्य प्रागुक्ताया एकविंशतेरष्टसु कषायेषु क्षीणेषु त्रयोदशकं सत्तास्थानं, ततो नपुंसकवेदे क्षपिते द्वादशकं, ततः स्त्रीवेदे क्षपिते एकादशकमिति, एतान्यन्यान्यपि त्रीणि सत्तास्थानानि त्रीणि च प्रागुक्तानीति

सर्वसङ्क्रमया पञ्चबन्धकस्य षट् सत्तास्थानानि। तथेह यः कश्चिन्नपुंसकवेदेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नः, स स्त्रीवेदनपुंसकवेदौ युगपत् क्षपयति तयोर्युगपत्क्षयसमकालमेव च पुरुषवेदस्य बन्धो व्यवच्छिद्यते, तदनन्तरं पुरुषवेदहास्यादिषट्के युगपत् क्षपयति । यदि तु स्त्रीवेदेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्तदादौ नपुंसकवेदं क्षपयति, ततोऽन्तर्मुहूर्त्तेन स्त्रीवेदं, स्त्रीवेदक्षयसमकालमेव च पुरुषवेदस्य बन्धव्यवच्छेदः, तदनन्तरं पुरुषवेदहास्यादिषट्के युगपत्क्षपयति, यावच्चोभयत्रापि पुरुषवेदहास्यादिषट्के न क्षीयेते तावच्चतुर्विधबन्धकस्य वेदोदयरहितस्यैकोदये वर्त्तमानस्यैकादशकं सत्तास्थानं लभ्यते, तयोस्तु क्षीणयोश्चतुःप्रकृत्यात्मकं । इत्थं च स्त्रीवेदेन नपुंसकवेदेन वा क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्य पञ्चप्रकृत्यात्मकं सत्तास्थानं न प्राप्यते । यस्तु पुरुषवेदेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्तस्य नोकषायषट्कक्षयसमकालं पुरुषवेदस्य बन्धव्यवच्छेद इति तस्य चतुर्विधबन्धकाले एकादशप्रकृत्यात्मकं सत्तास्थानं न प्राप्यते, किन्तु पञ्चप्रकृत्यात्मकं, द्वे च प्रागुक्ते, त्रीणि चोपशमश्रेण्याश्रितानि सर्वसङ्क्रमया चतुर्विधबन्धकस्य षट् सत्तास्थानानि । तथा संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थितावावलिकाशेषायां बन्धोदयोदीरणा युगपद् व्यवच्छिद्यन्ते, तासु च व्यवच्छिन्नासु बन्धस्त्रिविधो भवति, तदानीं च संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थितिगतमावलिकामात्रं समयद्वयोनावलिकाद्विकबद्धं च दलिकं मुक्त्वान्यत्सर्वं क्षीणं, तदपि च सत् समयद्वयोनावलिकाद्विकमात्रेण कालेन क्षयमुपयास्यति, यावच्च न याति तावच्चतस्रः प्रकृतयस्त्रिविधबन्धे सत्यः, क्षीणे तु तस्मिंस्तिस्रः, तदेवं त्रिविधबन्धकस्यैते द्वे त्रीणि चोपशमश्रेण्याश्रितानीति सर्वसङ्क्रमया पञ्च सत्तास्थानानि । तथा संज्वलनमानस्य प्रथमस्थितावावलिकाशेषायां बन्धोदयोदीरणानां युगपद्व्यवच्छेदे द्विविधो बन्धो भवति, तदानीं च संज्वलनमानस्य प्रथमस्थितिगतमावलिकामात्रं समयद्वयोनावलिकाद्विकबद्धं च दलिकं मुक्त्वाऽन्यत् सर्वं क्षीणं, तदपि सत् समयद्वयोनावलिकाद्विकमात्रेण कालेन क्षयं यास्यति, यावच्च न याति

तावत्त्रिसः सत्यः, क्षीणे तु तस्मिन् द्वे, तदेवं द्विविधबन्धकस्यैते द्वे त्रीणि चोपशमश्रेण्याश्रितानीति सर्वसङ्ख्यया पञ्च सत्तास्थानानि । तथा संज्वलनमायायाः प्रथमस्थितावावलिकाशेषायां बन्धोदयोदीरणानां युगपद्व्यवच्छेदे एकविधबन्धो भवति, तदानीं च संज्वलनमायायाः प्रथमस्थितिगतमावलिकामात्रं समयद्वयोनावलिकाद्विकबद्धं च सदस्ति, अन्यत्समस्तं क्षीणं सत् तदपि च, समयद्वयोनावलिकाद्विकेन कालेन क्षयं यास्यति, यावच्च न याति तावद् द्वे सती, क्षीणे तु तस्मिन्नेका, तदेवमेकविधबन्धकस्येमे द्वे त्रीणि चोपशमश्रेण्याश्रितानीति सर्वसङ्ख्यया पञ्च । अबन्धके च सूक्ष्मसम्पराये क्षपके एकं सत्तास्थानमेकप्रकृत्यात्मकं, त्रीणि चोपशमश्रेण्याश्रितानीति चत्वारि ।

एतेषामेव सत्तास्थानानामवस्थानकालमानमुच्यते-सप्तविंशतिसत्तास्थानस्याजघन्योत्कर्षमवस्थानकालः पल्योपमासङ्ख्येयभागः । तथाहि-अष्टाविंशतिसत्कर्मणो मिथ्यादृष्टेः सम्यक्त्वे उद्वलिते सप्तविंशतिः सत्तास्थानमवाप्यते । तदनन्तरं यावन्नाद्यापि सम्यङ्मिथ्यात्वमुद्वलयितुमारभते तावत्सम्यग्मिथ्यात्वोदयमपि गच्छति । उक्तं च पञ्चसङ्ग्रहमूलटीकायां—"उद्वलनाया अप्रारम्भे तस्य सम्यग्मिथ्यात्वोदयो भवती"ति । ततः सम्यग्मिथ्यादृष्टेरप्यन्तर्मुहूर्त्तं यावत्सप्तविंशतिसत्तास्थानं प्राप्यते, अन्तर्मुहूर्त्तानन्तरं च सोऽप्यवश्यं मिथ्यात्वं गच्छति । मिथ्यात्वं गतश्च सन् सम्यङ्मिथ्यात्वमुद्वलयितुमारभते, पल्योपमासङ्ख्येयभागमात्रेण च कालेन तन्निःशेषमुद्वलयति, यावच्च न निःशेषमुद्वलयति तावत्सदित्यजघन्योत्कर्षं सप्तविंशतिसत्तास्थानस्य पल्योपमासङ्ख्येयभागः कालः । सम्यग्मिथ्यात्वे चोद्वलिते षड्विंशतिः सत्तास्थानं, तस्य चावस्थानमुत्कर्षतो देशोनपुद्गलपरावर्त्तार्धकालं, ततः परमवश्यमौपशमिकं सम्यक्त्वं करणत्रयपूर्वमासादयति, ततश्च भूयोऽप्यष्टाविंशतिसत्कर्मा भवति, जघन्यतस्तु षड्विंशतिसत्तास्थानमन्तर्मुहूर्त्तं ।

तथाऽष्टाविंशतिचतुर्विंशतिसत्तास्थानयोरवस्थानकालो द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां, तथाहि—वेदकसम्यक्त्वान्वितस्याष्टाविंशतिसत्कर्मण एकां षट्षष्टिं सागरोपमाणां संपूर्य ततोऽन्तर्मुहूर्त्तं सम्यग्मिथ्यात्वे स्थित्वा ततो भूयोऽपि सम्यक्त्वसहितामेकां षट्षष्टिं सागरोपमाणां संपूर्य स्थितस्य, ततः परमवश्यं क्षपकश्रेणेर्मिथ्यात्वस्य वा प्रतिपत्तिर्भवति। तत्र क्षपकश्रेणिप्रतिपत्तौ मिथ्यात्वादिक्षयादष्टाविंशतिसत्तास्थानमपैति, आन्तरालिकं मिश्रसत्कमन्तर्मुहूर्त्तं च स्तोकत्वान्न विवक्षितं, ततः क्षपकश्रेणिप्रतिपत्त्यपेक्षयाऽष्टाविंशतिसत्तास्थानस्यावस्थानकालो द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां, यस्तु मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते स पल्योपमासङ्ख्येयभागमात्रेण कालेन सम्यक्त्वं निःशेषमुद्वलयति, तावच्च तत्सदिति तस्य पल्योपमासङ्ख्येयभागमात्राधिके द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणामष्टाविंशतिसत्तास्थानस्यावस्थानकालः। एवं चतुर्विंशतिसत्तास्थानस्यापि भावनीयं। नवरं योऽपि सागरोपमषट्षष्टिद्वयानन्तरं मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते तस्यापि प्रथमसमय एवानन्तानुबन्धिबन्धसंभवाच्चतुर्विंशतिसत्तास्थानमपयातीति परिपूर्णे द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां चतुर्विंशतिसत्तास्थानस्यावस्थानकालः। जघन्यतस्तु द्वे अप्यान्तर्मौहूर्त्तिके। तथाहि—अष्टाविंशतिसत्कर्मा वेदकसम्यक्त्वोपेतः सप्तकक्षपणमारभमाणो यावन्नानन्तानुबन्धिनः क्षपयति तावदष्टाविंशतिरेव सत्तास्थानं, अनन्तानुबन्धिषु क्षपितेषु तु चतुर्विंशतिः, साऽपि तावद्यावन्मिथ्यात्वं न क्षपयति, क्षपिते तु तस्मिन्त्रयोविंशतिः। तदेवं चतुर्विंशत्यष्टाविंशती जघन्यत आन्तर्मौहूर्त्तिके। एकविंशतिसत्तास्थानमुत्कर्षतः साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिकं। तथाहि—इह मनुष्यभवे सप्तकक्षयं कृत्वा सर्वार्थसिद्धे महाविमाने देवो जातः, तत्र च त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यनुभूय पुनरपीह मनुष्यभवे समायातः, ततो यावन्नाद्यापि क्षपकश्रेणिमारभते तावत्तस्यैकविंशतिरेव सत्तास्थानं। जघन्यतस्त्वेतदप्यान्तर्मौहूर्त्तिकं, तच्च सप्तकक्षयानन्तरं क्षपकश्रेणिमारोहतो द्रष्टव्यं। शेषाणां सत्तास्थानानां जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तर्मुहूर्त्तमेव सत्तास्थानं

प्राप्यते, तच्च सुप्रतीतमेव । तथाऽनादिमिथ्यादृष्टीनां षड्विंशतिसत्तास्थानमभव्यापेक्षयाऽनाद्यपर्यवसानं, भव्यापेक्षयाऽनादिसपर्यवसानं च द्रष्टव्यं । तदेवं कृता सत्तास्थानानां कालप्ररूपणा, तत्करणाच्च समाप्तं मोहनीयं ॥

अथ नामवर्मणो बन्धादिस्थानानि वाच्यानि—तत्र याभिः प्रकृतिभिः सहिता नामकर्मणो बद्धव्यः प्रकृतयो बन्धमुदयं वा गच्छन्ति ता आदौ निर्दिश्यन्ते—अपर्याप्तकजातिपर्याप्तकगतिनामकर्मभिः प्रेरिता इव बद्धव्यः शेषप्रकृतयो बन्धमुदयं वोपयान्ति । तथाहि—अपर्याप्तकनाम्नि बध्यमाने उदयप्राप्ते वा मनुष्यगतिप्रायोग्यास्तिर्यग्गतिप्रायोग्या वा बद्धव्यो नाम्नः प्रकृतयो बन्धमुदयं वोपयान्ति । जातिनाम्नि चैकेन्द्रियादिजातिरूपे बादरसूक्ष्मादयः पर्याप्तकनाम्नि च यशःकीर्त्यादयः, देवादिगतौ च वैक्रियद्विकादय इति । अत्रोदयस्थितेरियं वक्तव्यता—उदयसमयप्राप्तानामबाधाकालक्षयेणोदयो भवति, स च द्विधा प्रदेशतोऽनुभागतश्च । तत्रानुदयवतीनां प्रकृतीनां दलिकमबाधाकालक्षये प्रतिसमयमुदयवतीषु स्तिबुकसङ्क्रमेण सङ्क्रमय्य यदनुभूयते स प्रदेशोदयः, स चानुपशान्तानामवसेयः, उपशान्तानां तु न भवति । अनुभागोदयश्च विपाकोदयः, स च नित्योदयानां सदा प्रवर्त्तते, शेषाणां तु भजनीयः । यस्तु प्रयोगोदय उदीरणापरनाम्ना स विपाकोदये प्रवर्त्तत इति न पृथग्निरूपयिष्यते ॥ अथ याः प्रकृतयो देवगत्या सह बन्धमुदयं वा गच्छन्ति ता उच्यन्ते—अशुभास्थिरसमचतुरस्रपराघातोच्छ्वासत्रसदशकवर्णगन्धरसस्पर्शतैजसकार्मणागुरुलघुनिर्माणोपघातायशःकीर्त्तिपञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकाहारकद्विकशुभविहायोगतिदेवानुपूर्वीलक्षणा द्वात्रिंशत्प्रकृतयो देवगत्या सह बन्धमुदयं वा गच्छन्ति । यदा तु तीर्थकरनामापि बध्यते तदा तत्सहितास्त्रयस्त्रिंशत्प्रकृतयो वेदितव्याः । तथा यदा देवगतौ स्थितः सँस्तीर्थकरनाम बध्नाति तदा तीर्थकरनामसहिता देवद्विकवैक्रियद्विकरहिताः शेषा देवगतिप्रायोग्या सप्तविंशतिं बध्नाति, मनुजद्विकौदारिकद्विकाद्यसंहननलक्षणाश्च

पञ्चेति, सर्वसङ्ख्यया द्वात्रिंशद्(तँ ब) बध्नाति। तथा सूक्ष्मेण साधारणेनापर्याप्तेन वा सह न यशःकीर्त्तिं बध्नाति, नाप्युदयेनानुभवति न चाहारकद्विके बध्यमाने उदयप्राप्ते वाऽयशःकीर्त्त्यस्थिराशुभरूपास्तिस्रः प्रकृतयो बन्धमुदयं वाऽऽयान्ति। अथ बन्धमधिकृत्य नरकगतिसहचराः प्रकृतय उपदर्श्यन्ते-हुण्डं वर्णगन्धरसस्पर्शा अगुरुलघुतैजसकार्मणोपघातनिर्माणान्यस्थिराशुभदुर्भगानादेययशःकीर्त्तयस्तिर्यग्द्विकमनुष्यद्विकयोरन्यतरदन्यतरा जातिर्बादरप्रत्येकनामनी दुःस्वरपराघातोच्छ्वासपर्याप्तकनामानि त्रसनामाप्रशस्तविहायोगतिर्वैक्रियद्विकं चेत्यष्टाविंशतिर्नरकगत्या सह बन्धमायान्ति। हुण्डाद्या विंशतिरौदारिकशरीरापर्याप्तकनामसहिता द्वाविंशतिरपर्याप्तकबन्धसंज्ञाः पर्याप्तकनाम्ना सहैतासां मिलितानां बन्धे उदये वाऽसंभवात्। एता अपर्याप्तकबन्धसंज्ञाः प्रकृतीर्बध्नन् यदैकेन्द्रियप्रायोग्या बध्नाति तदाऽन्या अपि स्थावरसूक्ष्मसाधारणरूपास्तिस्रः प्रकृतयो बन्धे प्रविशन्तीत्यपर्याप्तकैकेन्द्रियप्रायोग्याः पञ्चविंशतिः, त्रसप्रायोग्याश्च ता बध्नंस्त्रसनामौदारिकाङ्गोपाङ्गसेवार्तसंहननाख्या अन्या अपि तिस्रः प्रकृतीर्बध्नातीत्यपर्याप्तकत्रसप्रायोग्या अपि पञ्चविंशतिरवसेया। पर्याप्तकनाम्नि बध्यमानेऽपर्याप्तस्थाने पर्याप्ताभिधेकेन स्थिरशुभयशःकीर्त्युच्छ्वासोद्योतपराघाताख्यानां षण्णां च प्रकृतीनामधिकानां प्रक्षेपेणैकत्रिंशज्ज्ञातव्या। एषा च पर्याप्तस्थावरैकेन्द्रियप्रायोग्ये पर्याप्तत्रसप्रायोग्ये च बन्धे प्रत्येकं संभवतो ज्ञातव्या। तथा यदा खरबादरपर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यं बध्नाति तदा द्वात्रिंशत्तममातपनामापि द्रष्टव्यं। यदा तु विकलेन्द्रियप्रायोग्यं बध्नाति तदाऽप्रशस्तविहायोगतिदुःस्वरनाम्नोरधिकयोर्बन्धात् पर्याप्तविकलेन्द्रियप्रायोग्ये बन्धे त्रयस्त्रिंशत्। पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यप्रायोग्यबन्धारम्भे च सुस्वरसुभगादेयप्रशस्तविहायोगतिसंहननपञ्चकसंस्थानपञ्चकलक्षणाश्चतुर्दश प्रकृतयोऽधिकाः प्रविशन्तीति सप्तचत्वारिंशत्। तदेवं पर्याप्तापर्याप्तस्थावरत्रसप्रायोग्यबन्धेषु यावत्यः प्रकृतयो यथा संभवन्ति

तावत्यस्तथा प्ररूपिताः ।

अथ बन्धस्थानानि नाम्न उपदर्श्यन्ते (विन्नियन्ते), तत्राष्टौ बन्धस्थानानि–त्रयोविंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत् त्रिंशदेकत्रिंशदेका चेति । एतेषां मध्ये यति यस्यां गतौ वर्तमानो बध्नाति तस्यां गतौ तति बन्धस्थानानि प्ररूप्यन्ते–तत्र मनुजगतौ वर्तमानो जीवः सर्वाण्यपि नाम्नो बन्धस्थानानि यथासंभवं बध्नाति, तथाहि–मनुष्यः सर्वास्वपि गतिषूत्पद्यते, तत्रैकेन्द्रियेषु मध्ये उत्पित्सुस्त्रयोविंशतिं पञ्चविंशतिं षड्विंशतिं वा बध्नाति, विकलेन्द्रियेषूत्पित्सुः पञ्चविंशतिमेकोनत्रिंशतं त्रिंशतं वा, नरकेषूत्पित्सुरष्टाविंशतिं, देवगतावुत्पित्सुरष्टाविंशतिमेकोनत्रिंशतं त्रिंशतमेकत्रिंशतं च, क्षपकश्रेण्यामुपशमश्रेण्यां च वर्तमान एकामिति। तथा तिर्यग्गतौ वर्तमान आद्यानि षट् बन्धस्थानानि यथायोगं बध्नाति, तिरश्चोऽपि यथायोगं चतसृष्वपि गतिषु गमनसंभवात्, यस्तु देवगतिप्रायोग्य एकत्रिंशद्बन्धः स तीर्थकराहारकबन्धसहितः, एकविधबन्धश्च श्रेणिगतस्येति तौ निषिध्येते तिरश्चः । तथा नरकगतौ वर्तमान एकोनत्रिंशतं त्रिंशतं वा बध्नाति, यतोऽवश्यं नारकः पर्याप्तेषु तिर्यक्षु मनुष्येषु वा मध्ये समुत्पद्यते, तत्प्रायोग्यश्चैकोनत्रिंशद्बन्धः, यस्तु नारकः श्रेणिकादिवद्भावितीर्थकरः स मनुष्यगतिप्रायोग्यं बध्नंस्त्रिंशतं बध्नाति । तथा देवगतौ वर्त्तमानः पञ्चविंशतिं षड्विंशतिमेकोनत्रिंशतं त्रिंशतं वा बध्नाति, तत्र पञ्चविंशतिं पृथिव्यम्बुवनस्पतिषु मध्ये समुत्पित्सुः, तामेव पञ्चविंशतिमातपप्रक्षेपेण षड्विंशतिं स्वबादरपृथिवीकायिकेषु समुत्पद्यमानः । एकोनत्रिंशद्भावना च नारकवत् । तदेवं नाम्नो बन्धस्थानानां गतिभेदेन बन्धका उक्ताः ॥ अथ कस्यां गतेः प्रायोग्यं बध्नतः कति बन्धस्थानानि प्रायोग्यानि भवन्तीत्येतन्निरूप्यते—नारकगति-

१ उद्योतसहित तिर्यंचगति योग्य ३० पण नारक बांधे,

प्रायोग्यं बध्नत एकमेवाष्टाविंशतिरूपं बन्धस्थानं देवगतिप्रायोग्यं बध्नतोऽष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशल्लक्षणानि चत्वारि, एकेन्द्रियप्रायोग्यं बध्नतस्त्रयोविंशतिपञ्चविंशतिषड्विंशतिलक्षणानि त्रीणि, द्वीन्द्रियादितिर्यग्गतिमनुष्यगतिगमनप्रायोग्यं बध्नतः पञ्चविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशल्लक्षणं बन्धस्थानत्रयमवाप्यते । एतानि सर्वाण्यपि बन्धस्थानान्यदूर एवाग्रे भावयिष्यन्ते ॥ सम्प्रति गुणस्थानेषु बन्धस्थानानि चिन्त्यन्ते—तत्र मिथ्यादृष्टौ षड् नामबन्धाः त्रयोविंशतिपञ्चविंशतिषड्विंशत्यष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशल्लक्षणाः, ते च चतुर्गतिप्रायोग्यबन्धसंभवेन भावनीयाः । सासादनेऽष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशल्लक्षणानि त्रीणि बन्धस्थानानि, तत्र तिरश्चो मनुष्यस्य वा सासादनस्य देवगतिप्रायोग्यं बध्नतोऽष्टाविंशतिः, देवस्य नारकस्य वा सासादनस्य तिर्यग्मनुष्यप्रायोग्यं बध्नत एकोनत्रिंशत्, तिर्यक्प्रायोग्यं बध्नतस्त्रिंशत् । सम्यग्मिथ्यादृष्टौ द्वे बन्धस्थाने अष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशच्च, तत्र तिरश्चो मनुष्यस्य वा देवगतिप्रायोग्यं बध्नतोऽष्टाविंशतिः, देवस्य नारकस्य वा नृगतिप्रायोग्यं बध्नत एकोनत्रिंशत्। अविरतसम्यग्दृष्टावष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशल्लक्षणानि त्रीणि बन्धस्थानानि, तत्र तिर्यङ्मनुष्याणां देवगतिप्रायोग्यं बध्नतामष्टाविंशतिः, मनुष्याणां देवगतिप्रायोग्यं बध्नतामेकोनत्रिंशत्, देवनारकाणां मनुष्यगतिप्रायोग्यं बध्नतामेकोनत्रिंशत्त्रिंशच्च । देशविरते प्रमत्ते च द्वे द्वे बन्धस्थाने अष्टाविंशत्येकोनत्रिंशल्लक्षणे । एते च द्वे अपि देवगतिप्रायोग्यं बध्नतो वेदितव्ये । तत्रापि देशविरतस्य तिरश्चोऽष्टाविंशतिरेव, मनुष्यस्य तु द्विविधस्यापि द्वे अपि । 'अथ प्रमत्तसंयते आहारकद्विकस्य कथं न बन्धः तद्बन्धस्य संयमप्रत्ययत्वात्' 'मैवं, तद्बन्धस्य विशिष्टसंयमप्रत्ययत्वात्तादृशस्य च विशिष्टसंयमस्याप्रमत्तादिगुणस्थान एव भावात् । ' अप्रमत्तेऽष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशल्लक्षणानि चत्वारि बन्धस्थानानि । अपूर्वकरणेऽष्टाविंशत्यादीनि पञ्च बन्धस्थानानि, तत्र चत्वारि प्रागुक्तान्येव, पञ्चमं तु यशःकीर्त्तिरूपैकप्रकृत्यात्म-

कमिति । नवमदशमयोस्तु गुणस्थानयोर्यशःकीर्त्तिरेकस्या एव बन्धः । तदेवं गुणस्थानेषु बन्धस्थानान्युक्तानि ॥

अथैकेन्द्रियादिप्रायोग्याणि यानि त्रयोविंशत्यादीनि स्थानानि प्रागुक्तानि तानि भावयितुमुपक्रम्यते, तत्र तिर्यग्गतिस्तिर्यगानुपूर्वी एकेन्द्रियजातिर्दुःस्वरवर्जं स्थावरदशकं तैजसकार्मणवर्णादिचतुष्टयागुरुलघूपघातनिर्माणाख्यानामध्रुवबन्धिन्य औदारिकशरीरं हुण्डसंस्थानं चेत्येषा (२३) त्रयोविंशतिरपर्याप्तकैकेन्द्रियस्य प्रायोग्या द्रष्टव्या । इहापर्याप्तकैकेन्द्रियप्रायोग्याः पञ्चविंशतिप्रकृतयः प्राक् संभवत उपात्तास्ततो बादरप्रत्येकरूपाभ्यां द्वाभ्यामुद्धरिताभ्यां प्रकृतिभ्यां प्रक्षिप्ताभ्यां सूक्ष्मसाधारणयोः प्रतिपक्षभूतयोः संचारणे त्रयोविंशतौ चत्वारो भङ्गा भवन्ति । तथाहि—बादरनाम्नि बध्यमाने एका त्रयोविंशतिः प्रत्येकनाम्ना सह प्राप्यते, द्वितीया साधारणनाम्ना । एवं सूक्ष्मनाम्न्यपि बध्यमाने द्वे त्रयोविंशती इति । तदेवमुक्तमपर्याप्तकैकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धस्थानचिन्तायामपर्याप्तमपनीय पर्याप्तकं प्रक्षेप्यं । सैव च त्रयोविंशतिः पराघातोच्छ्वाससहिता पञ्चविंशतिर्भवति, सा च पर्याप्तकैकेन्द्रियप्रायोग्यं बध्नतो मिथ्यादृष्टेरवगन्तव्या । इह पर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्याः प्रागातपेन सह द्वात्रिंशत्प्रकृतयः संभविन्य उक्तास्तत्र पञ्चविंशतिबन्धे आतपमुद्योतं वा न संभवति उच्छ्वासपराघाते च प्रक्षिप्ते इति स्थिरशुभयशःकीर्त्तिरूपास्तिस्रः प्रकृतय उद्धरितास्तिष्ठन्ति, ताश्चास्थिराशुभायशःकीर्त्तिप्रतिपक्षभूताः, ततो विकल्पेन तासामेव स्थाने प्रक्षेप्तव्याः। तथा च सत्येवमभिलापः—तिर्यग्गतिस्तिर्यगानुपूर्वी एकेन्द्रियजातिरौदारिकतैजसकार्मणानि हुण्डं वर्णादिचतुष्टयमगुरुलघूपघातोच्छ्वासस्थावरपराघातनामानि पर्याप्तं बादरसूक्ष्मयोरेकतरं प्रत्येकसाधारणयोरेकतरं स्थिरास्थिरयोरेकतरं शुभाशुभयोरेकतरं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरेकतरा दुर्भगमनादेयं निर्माणं चेति । अत्र विंशतिर्भङ्गाः, तत्र बादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभेषु बध्यमानेषु यशःकीर्त्या सहैको द्वितीयश्चायशःकीर्त्या, एतौ च द्वौ शुभेन

लब्धौ, एवमशुभेनापि द्वौ लब्धौ, ततो जाताश्चत्वारः, एते चत्वारः स्थिरेण लब्धाः, एवमस्थिरेणापि चत्वारो लभ्यन्ते, जाता अष्टौ, ते च बादरपर्याप्तप्रत्येकैः सह लब्धाः। यदा तु प्रत्येकस्थाने साधारणमभिषिच्यते तदा स्थिरास्थिरशुभाशुभायशःकीर्त्तिभिश्चत्वारः, साधारणेन सह यशःकीर्त्तिबन्धप्रतिषेधात्तदाश्रितभङ्गाप्राप्तेः। सूक्ष्मपर्याप्तनाम्नोस्तु बध्यमानयोः प्रत्येकसाधारणस्थिरास्थिरशुभाशुभायशःकीर्त्तिभिरष्टौ। सूक्ष्मेणापि सह यशःकीर्त्तेर्बन्धाभावादत्रापि तदाश्रिता भङ्गा न प्राप्यन्ते। तदेवं सर्वसङ्ख्यया पञ्चविंशतिबन्धे विंशतिर्भङ्गाः। सैव पञ्चविंशतिरातपसहिता षड्विंशतिर्भवति नवरमिहातपस्थाने उद्योतमपि विकल्पेन प्रक्षेप्यं, पर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धे उद्योतस्यापि बन्धसंभवात्। अत्र भङ्गाः षोडश, ते चातपोद्योतस्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिपदैरवसेयाः। आतपोद्योताभ्यां च सह सूक्ष्मसाधारणयोर्बन्धो न भवति, ततस्तदाश्रिता विकल्पा नोपजायन्ते। तदेवमेकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धस्थानत्रये सर्वसङ्ख्यया चत्वारिंशद्भङ्गाः॥ अथ द्वीन्द्रियप्रायोग्यबन्धस्थानवक्तव्यमुच्यते—तत्र प्रागुक्ता त्रयोविंशतिः स्थावरनामापनयनात्तत्श्चावश्यं सूक्ष्मसाधारणयोः स्थाने बादरप्रत्येकनामप्रक्षेपात्सेवार्तसंहननत्रसनामौदारिकाङ्गोपाङ्गनाम्नां चाधिकानां प्रक्षेपाद् द्वीन्द्रियस्य प्रायोग्या पञ्चविंशतिर्भवति, सा चैवमभिलाप्या—तिर्यग्गतिस्तिर्यगानुपूर्वी द्वीन्द्रियजातिरौदारिकतैजसकार्मणानि हुण्डसंस्थानं सेवार्तसंहननमौदारिकाङ्गोपाङ्गं वर्णादिचतुष्टयं अगुरुलघूपघातत्रसबादरापर्याप्तप्रत्येकास्थिराशुभदुर्भगानादेययशःकीर्त्तिनिर्माणानि चेति। एषा चापर्याप्तद्वीन्द्रियप्रायोग्यं बध्नतो मिथ्यादृष्टेरवसेया। अत्र प्रतिपक्षभूता परावर्तमाना प्रकृतिरेकापि न बन्धमेतीत्येक एव भङ्गः (१)। एषैव पञ्चविंशतिर्दुःस्वरपराघातोच्छ्वासाशुभविहायोगतियुक्ता एकोनत्रिंशद्भवति। एषा च पर्याप्तद्वीन्द्रियप्रायोग्यं बध्नतो मिथ्यादृष्टेर्ज्ञेया। अत एवापर्याप्तकस्थाने पर्याप्तकं प्रक्षिप्यते, पर्याप्तकबन्धे च स्थिरशुभयशःकी-

तैयोऽपि बन्धमायान्तीति ता अप्यस्थिराशुभायशःकीर्त्तिस्थाने विकल्पेन प्रक्षेप्तव्याः । अत्र स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिपदैरष्टौ भङ्गाः (८) । सैवैकोनत्रिंशदुद्योतसहिता त्रिंशत् । अत्रापि त एवाष्टौ भङ्गाः (८)। सर्वसङ्ख्यया सप्तदश (१७)। एवं त्रीन्द्रियप्रायोग्याणि चतुरिन्द्रियप्रायोग्याणि च त्रीणि त्रीणि बन्धस्थानानि । तेषु च प्रत्येकं सप्तदश सप्तदश भङ्गा वाच्याः । नवरं त्रीन्द्रियाणां त्रीन्द्रियजातिश्चतुरिन्द्रियाणां चतुरिन्द्रियजातिरभिलाप्या ॥ तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यमपि बध्नतस्त्रीणि बन्धस्थानानि, तद्यथा—पञ्चविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशत् । तत्र पञ्चविंशतिर्द्वीन्द्रियप्रायोग्यं बध्नत इव ज्ञेया, नवरं द्वीन्द्रियजातिस्थाने पञ्चेन्द्रियजातिरभिलाप्या । सैव पञ्चविंशतिः पराघातोच्छ्वासदुःस्वराप्रशस्तविहायोगतिभिः सहैकोनत्रिंशद्भवति । सा च पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यं बध्नतोऽवसेया, तत्प्रायोग्यबन्धारम्भे च सुस्वरसुभगादेयप्रशस्तविहायोगत्याद्यसंहननपञ्चकाद्यसंस्थानपञ्चकलक्षणाश्चतुर्दश प्रकृतयोऽन्या अपि बन्धमाश्रित्य संभवन्ति, ताश्च दुःस्वरादीनां प्रतिपक्षभूताः, ततो विकल्पेन दुःस्वरदुर्भगानादेयानां स्थाने सुस्वरसुभगादेयानामप्रशस्तविहायोगतिस्थाने प्रशस्तविहायोगतेर्हुण्डसंस्थानस्य स्थाने विकल्पेन पञ्चसंस्थानानां सेवार्त्तसंहननस्थाने पञ्चसंहननानां प्रक्षेपे षड्भिः संस्थानैः षड्भिः संहननैः प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिभ्यां स्थिरास्थिराभ्यां शुभाशुभाभ्यां सुभगदुर्भगाभ्यां सुस्वरदुःस्वराभ्यामादेयानादेयाभ्यां यशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिभ्यां भङ्गा अष्टाधिकषट्चत्वारिंशत्शतसङ्ख्या(४६०८)भवन्ति। सेवैकोनत्रिंशदुद्योतसहिता त्रिंशद्भवति । अत्रापि भङ्गाः प्राग्वदष्टाधिकानि षट्चत्वारिंशच्छतानि (४६०८) । सर्वसङ्ख्यया तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यबन्धस्थानेषु भङ्गा द्विनवतिशतानि सप्तदशाधिकानि (९२१६)। सर्वस्यां तिर्यग्गतौ सर्वसङ्ख्यया भङ्गास्त्रिनवतिशतान्यष्टाधिकानि (९३०८)। तदेवं व्याख्यातानि तिर्यग्गतिप्रायोग्याणि बन्धस्थानानि॥ अथ मनुष्यगतिप्रायोग्याण्युच्यन्ते—

तत्र यान्येव तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्याणि बन्धस्थानानि तान्येव मनुष्याणां प्रायोग्याणि द्रष्टव्यानि, नवरं तिर्यग्गतितिर्यगानुपूर्वीस्थाने मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्व्यौ वक्तव्ये । तथा त्रिंशद्बन्धस्थाने त्रिंशत्तमं तीर्थकरनाम वक्तव्यमिति विशेषः । तत्र पञ्चविंशतिबन्धस्थाने प्राग्वदेको भङ्गः (१) । एकोनत्रिंशद्बन्धस्थानेऽष्टाधिकानि षट्चत्वारिंशच्छतानि (४६०८), सैवैकोनत्रिंशत्तीर्थकरनामसहिता त्रिंशद्भवति, परमस्यां संस्थानं समचतुरस्रमेव संहननं वज्रर्षभनाराचमेव विहायोगतिः प्रशस्तैव वाच्या, शेषसंस्थानसंहननविहायोगतीनां तीर्थकरनाम्ना सह बन्धायोगात् । एवं चाभिलाप्या—मनुष्यद्विकमौदारिकद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिस्तैजसकार्मणे आद्यसंहननमाद्यसंस्थानं वर्णादिचतुष्टयमगुरुलघुपराघातोपघातोच्छ्वासनामानि प्रशस्तविहायोगतिस्त्रसचतुष्कं स्थिरास्थिरयोरेकतरं शुभाशुभयोरेकतरं सुभगं सुस्वरमादेयं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरेकतरा तीर्थकरनाम निर्माणमिति (३०) । एनां च त्रिंशतं देवा नारका वा सम्यग्दृष्टयो मनुष्यगतिप्रायोग्यं बध्नन्तो बध्नन्ति । अत्र स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिभिरष्टौ भङ्गाः । सर्वसङ्ख्यया मनुष्यगतिप्रायोग्यबन्धस्थानेषु भङ्गाः सप्तदशोत्तरषट्चत्वारिंशच्छतानि (४६१७) । नरकगतिप्रायोग्यं बध्नतोऽष्टाविंशतिरेकमेव बन्धस्थानं, सा चेयं—नरकद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकं तैजसकार्मणे हुण्डं वर्णचतुष्कमगुरुलघूपघातं पराघातमुच्छ्वासं कुखगतित्रसचतुष्कमस्थिरषट्कं निर्माणं चेति, एतदष्टाविंशतिप्रकृत्यात्मकं बन्धस्थानं मिथ्यादृष्टेरवसेयं । अत्र सर्वासामशुभत्वादेक एव भङ्गः ॥ अथ देवगतिप्रायोग्याणि बन्धस्थानान्युच्यन्ते—तानि चाष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशल्लक्षणानि चत्वारि, तत्राष्टाविंशतिरियं—देवगतिर्देवानुपूर्वी पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकं तैजसकार्मणे समचतुरस्रं वर्णचतुष्कं अगुरुलघूपघातपराघातोच्छ्वासनामानि प्रशस्तविहायोगतिस्त्रसचतुष्कं स्थिरास्थिरयोरेकतरं शुभाशुभयोरेकतरं सुभगत्रिकं यशःकी-

र्त्ययशःकीर्त्योरेकतरा निर्माणं चेति। एतच्च बन्धस्थानं मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्राविरतसम्यग्दृष्टिदेश (सर्व) विरतानां देवगतिप्रायोग्यं बध्नतामवसेयं। अत्र स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिभिरष्टौ भङ्गाः (८)। एषैव जिननामसहितैकोनत्रिंशत्, अत्रापि त एवाष्टौ भङ्गाः (८), नवरमेतद्बन्धस्थानं देवगतिप्रायोग्यं बध्नतामविरतसम्यग्दृष्टी(ष्ट्यादी)नामवसेयं। त्रिंशत्पुनरियं–देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिवैक्रियद्विकमाहारकद्विकं तैजसकार्मणे समचतुरस्रं वर्णचतुष्टयमगुरुलघूपघातं पराघातमुच्छ्वासं सुखगतित्रसदशकं निर्माणं चेति, एतद्बन्धस्थानं देवगतिप्रायोग्यं बध्नतोऽप्रमत्तस्यापूर्वकरणस्य चावगन्तव्यं। अत्र सर्वाण्यपि कर्माणि शुभान्येवेत्येक एव भङ्गः (१)। एषैव त्रिंशज्जिननामसहिता एकत्रिंशद्भवति, इयमपि त्रिंशदिवैकान्तशुभपदा द्रष्टव्येत्यत्राप्येक एव भङ्गः (१)। सर्वसङ्ख्यया देवगतिप्रायोग्येषु बन्धस्थानेष्वष्टादश भङ्गाः (१८)। एकं तु बन्धस्थानं यशःकीर्त्तिलक्षणं देवगतिप्रायोग्ये बन्धे व्युच्छिन्नेऽनिवृत्तिबादरसूक्ष्मसम्पराययोरवसेयं॥ सर्वसङ्ख्यया बन्धस्थानेषु भङ्गास्त्रयोदश सहस्राणि नव शतानि पञ्चचत्वारिंशच्च॥ १३९४५॥

अथ नामप्रकृतीनां गुणस्थानेषु बन्धव्यवच्छेद उच्यते—साधारणसूक्ष्मातपस्थावरनरकद्विकैकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिहुण्डापर्याप्तसेवार्त्तलक्षणानां त्रयोदशप्रकृतीनां मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने बन्धव्यवच्छेदो मिथ्यादृष्टय एवैतासां बन्धका न सासादनादय इत्यर्थः। एवमेवाग्रेऽपि व्यवच्छेदार्थोऽभ्यूह्यः। अप्रशस्तविहायोगतिदुःस्वरदुर्भगोद्योतानादेयतिर्यग्द्विकाद्यन्तवर्जसंहननरूपाणां पञ्चदशप्रकृतीनां सासादने बन्धव्यवच्छेदः। औदारिकद्विकमनुष्यद्विकाद्यसंहननलक्षणानां पञ्चानां प्रकृतीनामविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने बन्धव्यवच्छेदः, मिथ्यादृष्ट्यादयोऽविरतसम्यग्दृष्टय एवासां बन्धका न देशविरतादय इति यावत्। अस्थिराशुभायशःकीर्त्तीनां प्रमत्तसंयते बन्धव्यवच्छेदः। सुरद्विकवैक्रियद्विकतैजसकार्मणवर्णचतुष्टयागुरुलघूपघातनिर्माणपराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतित्रसद-

शकसमचतुरस्रपञ्चेन्द्रियजातिरूपाणामष्टाविंशतिप्रकृतीनामपूर्वकरणे बन्धव्यवच्छेदः । तथा प्रमत्तेऽप्रमत्ते चाहारकद्विकस्योदयो भवति, बन्धस्त्वप्रमत्तादारभ्य यावदपूर्वकरणस्तावत् । तीर्थकरनाम्न उदयः सयोगिकेवलिन्ययोगिकेवलिनि च, बन्धस्त्वविरतसम्यग्दृष्टेरारभ्य यावदपूर्वकरणमध्यभागस्तावत् । यशःकीर्तेस्तु मिथ्यादृष्टेरारभ्य यावत्सूक्ष्मसम्परायस्तावद् बन्धः। तदेवमुक्तं नाम्नो बन्धवक्तव्यं ॥

अधुनोदयेऽपि यद्वक्तव्यं तदुच्यते—एकेन्द्रियानधिकृत्योच्छ्वासात् द्वीन्द्रियादीनधिकृत्योच्छ्वासस्वराभ्यां पूर्वं पश्चाद्वोद्योतातपयोर्यथायोगमुदयो भवति, तथैव चाग्रे भावयिष्यामः । तथा सूक्ष्मस्यापर्याप्तस्य साधारणस्योद्योतस्य चोदयेन सह नापतदुदयमेति । तथोद्योतेन सहातपं न बध्यते । नापि सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणरूपेण त्रिकेण सहातपोद्योतोभयं । अयं बन्धविषयोऽपवादः। अथोदयविषयेऽयमभिधीयते—साधारणोदयेऽप्युद्योतयशःकीर्त्योरुदयो भवति, दुर्भगानादेययशःकीर्त्तीनामुदये बादरपवनः पर्याप्तो वैक्रियशरीरमारभ्य तदुभयभाग्भवति, बादरपर्याप्तग्रहणात् पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्मापर्याप्तबादरव्युदासः, तेषां वैक्रियलब्धेरेवाभावात् । उक्तं च प्रज्ञापनाचूर्णौ—"तिण्हं रासीणं वेउव्वियलद्धी चेव णत्थि बायरपज्जत्ताणं संखेज्जइमे भागे तस्स त्ति" । तथा दुर्भगानादेययोरुदयेऽपि देवगत्युदयो न विरुध्यते । तथाऽऽहारकद्विकस्योदयो दुर्भगानादेययशःकीर्त्युदयविरुद्धः अस्थिराशुभोदयेन चाविरुद्धः, तयोर्ध्रुवोदयत्वात् । तथा विकलेन्द्रियेषु सुस्वरोदयोऽप्यविरुद्धः । तथा मनुष्याणां [1]देशविरतानां सर्वविरतानां वा यथायोगं वैक्रियाहारककरणाद्धायां वर्त्तमानानामुद्योतोदयो भवति, न शेषाणां ॥ तदेवमुदयविषयसंभवचिन्तां विधायोदयस्थानान्यभिधीयन्ते—तत्र चतुर्गतिकान् प्राणिनोऽधिकृत्य सर्वसङ्ख्यया नाम्नो द्वादशोदयस्थानानि । तथाहि—विंशतिरेकविंशति-

१ 'देशविरतमनुष्याणामुद्योतोदयो न' इति षष्ठे कर्मग्रन्थे नात्र उदयभङ्गेषु ।

श्चतुर्विंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशन्नवाष्टौ (१२) च। एतान्येवोदयस्थानानि गतिषु चिन्त्यन्ते—मनुष्येषु चतुर्विंशतिवर्जानि शेषाण्येकादशाप्युदयस्थानानि संभवन्ति, तस्या एकेन्द्रियेष्वेव संभवात्। विंशत्यष्टनवोदयवर्जिताः शेषा नवोदयास्तिर्यक्षु संभवन्ति, नवाष्टोदयावयोगिकेवलिनि प्राप्येते, विंशत्युदयस्तु केवलिसमुद्घातावस्थायामिति तिर्यक्ष्वेतत्त्रयवर्जनं। तथा नरकगतौ पञ्चोदयाः, तद्यथा—एकविंशतिः पञ्चविंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशच्च। एत एव च पञ्चोदयाः सुरगतौ त्रिंशत्सहिताः षड् वेदितव्याः॥ अथ गुणस्थानेषूदयस्थानानि चिन्त्यन्ते—मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने एकविंशतिचतुर्विंशतिपञ्चविंशतिषड्विंशतिसप्तविंशत्यष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशल्लक्षणा नवोदया भवन्ति, मिथ्यादृष्टेः सर्वजीवयोनिषु संभवात्, विंशत्यष्टनवोदयास्तु केवल्यवस्थाभाविनो न संभवन्ति। एत एव नवोदयाः सप्तविंशत्यष्टाविंशतिहीनाः शेषाः सप्त सासादने संभवन्ति, तत्रैकविंशत्युदयो भवान्तरे, चतुर्विंशत्युदयः पर्याप्तप्रत्येकबादरैकेन्द्रियस्य जन्माद्यसमये, षड्विंशतिर्द्वीन्द्रियादिषूत्पद्यमानस्य, पञ्चविंशतिरुत्तरवैक्रियकरणप्रथमकाले, एकोनत्रिंशत्पर्याप्तनारकाणां, त्रिंशत्पर्याप्तमनुष्यदेवानां, एकत्रिंशत्पञ्चेन्द्रियतिरश्चामुद्योतवेदकानां, सप्तविंशत्युदयाभ्यां तु किञ्चिदूनपर्याप्तावस्थायां भवितव्यं, तदानीं च सासादनत्वं न लभ्यत इति तयोरत्रासंभवः॥ त एवैकविंशत्यादयो नवोदयाश्चतुर्विंशत्यूनाः शेषा अष्टाविरतसम्यग्दृष्टौ, तस्य चतसृष्वपि गतिषूत्पत्त्यवस्थायां पर्याप्तावस्थायां वा प्राप्यमाणत्वात्, चतुर्विंशत्युदयस्तु तस्य न संभवति, एकेन्द्रियेष्वेव चतुर्विंशत्युदयप्राप्तेः। एत एवाष्टौ पञ्चविंशत्यूना विंशत्युदयसहिताः सयोगिकेवलिन्यष्टावेव भवन्ति, तत्र विंशत्येकविंशतिषड्विंशतिसप्तविंशत्युदयाः समुद्घातावस्थायां अष्टाविंशत्येकोनत्रिंशदुदयौ योगनिरोधावस्थायां, त्रिंशदुदयः सामान्यकेवलिनः स्वभावस्थस्य तीर्थकृतो वा कृतवाग्निरोधस्य,

एकत्रिंशदुदयस्तीर्थकरस्य ।। तथा पञ्चविंशत्यादयः सप्तोदयाः षड्विंशत्यूनाः षड् देशविरते भवन्ति, तत्र पञ्चविंशतिसप्तविंशत्यष्टाविंशतिनवविंशत्युदया उत्तरवैक्रियं कुर्वतो वेदितव्याः, त्रिंशदुदयः(प्राकृत)तिर्यङ्मनुष्ययोः पर्याप्तयोः (वैक्रिययोर्वा), एकत्रिंशदुदय उद्योतमनुभवतस्तिरश्च इति ॥ तथा प्रमत्तसंयते पञ्चविंशत्यादयः षड्विंशतिहीनाः पञ्चोदया भवन्ति, तत्र पञ्चविंशतिसप्तविंशत्यष्टाविंशतिनवविंशत्युदया वैक्रियमाहारकं वा कुर्वतः संयतस्य वेदितव्याः, त्रिंशदुदयस्तु सामान्यसंयतस्य, यस्त्वेकत्रिंशदुदयः स तिरश्चामेव भवतीत्यत्र न संभवति । तथा एकोनत्रिंशदादयस्त्रय उदयाः सम्यग्मिथ्यादृष्टौ भवन्ति, तत्रैकोनत्रिंशन्नारकाणां, त्रिंशद् देवमनुष्यतिरश्चां, एकत्रिंशत्तिरश्चां । तथाऽप्रमत्ते द्वे उदयस्थाने एकोनत्रिंशत्त्रिंशच्च, तत्रैकोनत्रिंशद्वैक्रिये आहारके वा व्यवस्थिते ज्ञेया, त्रिंशत्सामान्यमनुष्ये । अपूर्वकरणानिवृत्तिबादरसूक्ष्मसम्परायोपशान्तमोहक्षीणमोहेष्वपि त्रिंशदेवोदयस्थानं ।। तथाऽयोगिकेवलिन्यष्टकोदयो नवोदयो वा, तत्राष्टकोदयोऽतीर्थकृतः नवोदयस्तीर्थकृतः । अथेन्द्रियेषूदयस्थानानि चिन्त्यन्ते—तत्रैकेन्द्रियाणामुदयस्थानानि पञ्च—एकविंशतिश्चतुर्विंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिश्चेतिः । तत्र तैजसकार्मणे अगुरुलघु स्थिरास्थिरे शुभाशुभे वर्णचतुष्कं निर्माणं चेत्येता द्वादश प्रकृतय उदयमाश्रित्य ध्रुवाः, तिर्यग्द्विकं स्थावरमेकेन्द्रियजातिर्बादरसूक्ष्मयोरेकतरं पर्याप्तापर्याप्तयोरेकतरं दुर्भगमनादेयं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरेकतरा चेत्येतन्नवकसहिता एकविंशतिः । अत्र भङ्गाः पञ्च बादरसूक्ष्माभ्यां प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्ताभ्यामयशःकीर्त्या सह चत्वारः, बादरपर्याप्तयशःकीर्त्तिभिः सह चैक इति (५) । सूक्ष्मापर्याप्ताभ्यां सह यशःकीर्त्तेरुदयो न स्यादिति तदाश्रिता विकल्पा न प्राप्यन्ते । एषा चैकविंशतिर्योऽग्रे सर्वा अपि स्वपर्याप्तीः पूरयिष्यति तस्य योग्यतया लब्धिमाश्रित्य भवान्तरालादावपि पर्याप्तिरस्तीति लब्धिपर्याप्त्यपेक्षया एकेन्द्रियस्य भवान्तरालगतौ वर्तमान-

स्यावगन्तव्या, अन्तराले बादरपर्याप्तयशःकीर्त्तीनामप्युदयसंभवात्, ततः शरीरस्थस्यौदारिकं हुण्डं उपघातं प्रत्येकसाधारणयोरेकतरमिति चतस्रः प्रकृतयः क्षिप्यन्ते, प्रागुक्तैकविंशतिमध्याच्च तिर्यगानुपूर्व्यपनीयते, ततश्चतुर्विंशतिः स्यात्। इह च भङ्गा दश, तद्यथा—बादरपर्याप्तस्य प्रत्येकसाधारणयशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिपदैर्भङ्गाश्चत्वारः, बादरापर्याप्तस्य प्रत्येकसाधारणाभ्यामयशःकीर्त्तिनियन्त्रिताभ्यां सह द्वौ, सूक्ष्मस्य पर्याप्तापर्याप्तप्रत्येकसाधारणैरयशःकीर्तिनियन्त्रितैः सह चत्वार इति । तथा बादरवायुकायिकस्य वैक्रियं कुर्वत औदारिकस्थाने वैक्रियं वक्तव्यं, ततश्च तस्यापि चतुर्विंशतिरुदये प्राप्यते, केवलमिह बादरपर्याप्तप्रत्येकायशःकीर्त्तिपदैरेक एव भङ्गः, तेजस्कायिकवायुकायिकयोर्यशःकीर्त्तिसाधारणयोरुदयो न स्यादिति तदाश्रिता भङ्गा न प्राप्यन्ते । सर्वसङ्ख्यया चतुर्विंशतौ भङ्गा एकादशः (११) । तत शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य पराघाते क्षिप्ते पञ्चविंशतिः, सा च पर्याप्तकस्यैवेत्यपर्याप्तकमपसार्यते, अत्र भङ्गाः षट्, तद्यथा—बादरपर्याप्तस्य प्रत्येकसाधारणयशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिपदैश्चत्वारः, सूक्ष्मस्य च प्रत्येकसाधारणाभ्यामयशःकीर्त्या सह द्वाविति । तथा बादरवायुकायिकस्य वैक्रियं कुर्वतः शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य पराघाते क्षिप्ते पञ्चविंशतिः, अत्र च प्राग्वदेक एव भङ्गः । सर्वसङ्ख्यया पञ्चविंशतौ सप्त भङ्गाः (७) । ततः प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्ते षड्विंशतिः । अत्रापि भङ्गाः प्रागिव षट् । अथवा शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासेऽनुदिते आतपोद्योतयोरन्यतरस्मिन्नुदिते षड्विंशतिर्भवति, अत्रापि भङ्गाः षट्, तद्यथा—बादरस्योद्योतेन सहितस्य प्रत्येकसाधारणयशःकीर्त्ययशःकीर्तिभिश्चत्वारः, आतपसहितस्य प्रत्येकयशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिपदैश्च द्वाविति । तथा बादरवायुकायिकस्य वैक्रियं कुर्वतः प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्ते प्रागुक्ता पञ्चविंशतिः षड्विंशतिर्भवति, तत्र च प्राग्वदेक एव भङ्गः, तैजस्कायिकवायुकायिकयोरातपोद्योतयशःकी-

त्तीनामुदयाभावात्तदाश्रितविकल्पाभावः। सर्वसङ्ख्यया षड्विंशतौ त्रयोदश भङ्गाः (१३)। तथा प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वास-सहितायां षड्विंशतौ आतपोद्योतयोरन्यतरस्मिन्नुदिते सप्तविंशतिर्भवति। अत्र ये प्रागातपोद्योतान्यतरसहितायां षड्विंशतौ प्रतिपादितास्त एव षड् भङ्गाः (६)। सर्वसङ्ख्ययैकेन्द्रियाणां भङ्गा द्विचत्वारिंशत् (४२)।

अथ द्वीन्द्रियाणामुदयस्थानान्युच्यन्ते–द्वीन्द्रियाणामुदयस्थानानि षट्, तथाहि–एकविंशतिः षड्विंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशच्चेति। तत्र तिर्यग्द्विकं द्वीन्द्रियजातित्रसं बादरं पर्याप्तापर्याप्तयोरेकतरं दुर्भगमनादेयं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरेकतरा चेत्येता नव प्रकृतयः प्रागुक्तद्वादशध्रुवोदयप्रकृतिसहिता एकविंशतिः, इयं चान्तरालगतिस्थस्य द्वीन्द्रियस्यावाप्यते, अत्र भङ्गास्त्रयः–अयशःकीर्त्या सहापर्याप्तनामोदये वर्त्तमानस्यैकः, पर्याप्तकनामोदये वर्त्तमानस्य च यशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिभ्यां द्वाविति (३)। तस्यैव शरीरस्थस्य औदारिकद्विकहुण्डसेवार्त्तोपघातप्रत्येकलक्षणाः षट् प्रकृतय उपनीयन्ते तिर्यगानुपूर्वी चापनीयत इति षड्विंशतिर्भवति, अत्रापि भङ्गास्त्रयः प्राग्वत् (३)। ततः शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य पराघाताप्रशस्तविहायोगत्योः क्षिप्तयोरष्टाविंशतिः, अत्र यशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिभ्यां द्वौ भङ्गौ (२), अपर्याप्तकप्रशस्तविहायोगत्योरत्रोदयाभावात्। ततः प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्ते एकोनत्रिंशत्, अत्रापि तावेव द्वौ भङ्गौ, यद्वा शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासेऽनुदिते उद्योते तूदिते एकोनत्रिंशत्, इहापि प्राग्वत् द्वौ भङ्गौ, सर्वमीलने एकोनत्रिंशति चत्वारो भङ्गाः (४)। ततो भाषापर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वाससहितायामेकोनत्रिंशति सुस्वरदुःस्वरयोरेकतरस्मिन् प्रक्षिप्ते त्रिंशद् भवति, अत्र सुस्वरदुःस्वरयशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिभ्यां चत्वारो भङ्गा। अथवा प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्य स्वरेऽनुदिते उद्योते तूदिते त्रिंशत्, अत्र यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यां द्वौ भङ्गौ, सर्वे त्रिंशति षड् भङ्गाः (६)। ततो भाषापर्याप्त्या पर्याप्तस्य स्वरसहितायां त्रिंशत्युद्योतनाम्नि क्षिप्ते

एकत्रिंशत्, तत्र सुस्वरदुःस्वरयशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिभिश्चत्वारो भङ्गाः (४)। सर्वसङ्ख्यया द्वीन्द्रियाणां द्वाविंशतिर्भङ्गाः (२२)। एवं त्रीन्द्रियाणां चतुरिन्द्रियाणां च प्रत्येकं षट् षडुदयस्थानानि सभङ्गानि भावनीयानि, नवरं स्वस्वजातिरुच्चारणीया। सर्वसङ्ख्यया विकलेन्द्रियाणां भङ्गाः षट्षष्टिः (६६)। अथ तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणामुदयस्थानान्युच्यन्ते—तत्र प्राकृततिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणामुदयस्थानानि षट्, तथाहि—एकविंशतिः षड्विंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशच्च। तत्र तिर्यग्द्विकं पञ्चेन्द्रियजातिस्त्रसं बादरं पर्याप्तापर्याप्तयोरेकतरं सुभगदुर्भगयोरेकतरं आदेयानादेययोरेकतरं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरेकतरेत्येता नव प्रकृतयो द्वादश ध्रुवोदयप्रकृतिभिः सहिता एकविंशतिः, एषा च भवान्तरालगतौ वर्त्तमानस्य तिर्यक्पञ्चेन्द्रियस्य ज्ञेया, अत्र भङ्गा नव, तत्र पर्याप्तनामोदये वर्त्तमानस्य सुभगदुर्भगाभ्यामादेयानादेयाभ्यां यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यां चाष्टौ भङ्गाः, अपर्याप्तकनामोदये वर्त्तमानस्य तु दुर्भगानादेययशःकीर्त्तिभिरेक इति (९)। अपरे त्वाहुः— सुभगादेये युगपदुदयमागच्छतो दुर्भगानादेये च, न तु पर्यायेण, ततः पर्याप्तस्य सुभगादेययुगलदुर्भगानादेययुगलाभ्यां यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यां च चत्वारो भङ्गाः, अपर्याप्तस्य त्वेक इति सर्वसङ्ख्यया पञ्च, एवमुत्तरत्रापि मतान्तरेण भङ्गवैषम्यं स्वधियाऽभ्यूह्यं। ततः शरीरस्थस्यानुपूर्वीमपनीयौदारिकद्विकषडन्यतमसंस्थानषडन्यतमसंहननोपघातप्रत्येकरूपप्रकृतिषट्कप्रक्षेपे कृते षड्विंशतिर्भवति। अत्र भङ्गानां द्वे शते एकोननवत्यधिके। तत्र पर्याप्तस्य षड्भिः संस्थानैः षड्भिः संहननैः सुभगदुर्भगाभ्यामादेयानादेयाभ्यां यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यां च द्वे शते भङ्गानामष्टाशीत्यधिके, अपर्याप्तकस्य तु हुण्डसेवार्तदुर्भगानादेययशःकीर्त्तिभिरेक इति (२८९)। तस्यामेव षड्विंशतौ शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य पराघातेऽन्यतरविहायोगतौ च प्रक्षिप्तायामष्टाविंशतिः। तत्र ये प्राक् पर्याप्तानां द्वे शते भङ्गानामष्टाशीत्यधिके उक्ते ते अत्र विहायोगतिद्विकेन गुणिते अवगन्तव्ये, तथा च सत्यत्र भङ्गानां पञ्च शतानि

षट्सप्तत्यधिकानि भवन्ति (५७६)। ततः प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्ते एकोनत्रिंशत्। अत्रापि भङ्गाः प्राग्वत् पञ्च शतानि षट्सप्तत्यधिकानि, अथवा शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासेऽनुदिते उद्योतनाम्नि तूदिते एकोनत्रिंशत्, अत्रापि भङ्गाः पञ्च शतानि षट्सप्तत्यधिकानि, सर्वसङ्ख्यया भङ्गानामेकोनत्रिंशति द्विपञ्चाशदधिकान्येकादश शतानि (११५२)। ततो भाषापर्याप्त्या पर्याप्तस्य सुस्वरदुःस्वरयोरन्यतरस्मिन् प्रक्षिप्ते त्रिंशद्भवति। अत्र ये उच्छ्वासेन षट्सप्तत्यधिकपञ्चशतप्रमाणा भङ्गा उक्तास्ते स्वरद्विकेन गुण्यन्ते, जातान्येकादश शतानि द्विपञ्चाशदधिकानि, अथवा प्राणापानपर्याप्तस्य स्वरेऽनुदिते उद्योतनाम्नि तूदिते त्रिंशद्भवति। अत्र भङ्गानां पञ्च शतानि षट्सप्तत्यधिकानि। सर्वसङ्ख्यया त्रिंशति भङ्गानां सप्तदश शतान्यष्टाविंशत्यधिकानि (१७२८)। ततः स्वरसहितायां त्रिंशत्युद्योतनाम्नि प्रक्षिप्ते एकत्रिंशद्भवति, तत्र ये स्वरसहितायां त्रिंशति द्विपञ्चाशदधिकैकादशशतसङ्ख्या भङ्गा उक्तास्त एवात्रापि द्रष्टव्याः (११५२)। सर्वसङ्ख्यया प्राकृतपञ्चेन्द्रियतिरश्चां भङ्गाश्चत्वारि सहस्राणि नव शतानि षट् च (४९०६)॥ अथ वैक्रियं कुर्वतां तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणामुदयस्थानानि वाच्यानि, तानि च पञ्च, तथाहि—पञ्चविंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशच्च। तत्र वैक्रियद्विकं समचतुरस्रमुपघातं प्रत्येकमिति पञ्च प्रकृतयः प्रागुक्तायां तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यायामेकविंशतौ प्रक्षिप्यन्ते, तिर्यगानुपूर्वी चापनीयते, ततः पञ्चविंशतिः स्यात्, इह सुभगदुर्भगाभ्यामादेयानादेयाभ्यां यशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिभ्यां च भङ्गा अष्टौ (८)। ततः शरीरेण पर्याप्तस्य पराघाते प्रशस्तविहायोगतौ च क्षिप्तायां सप्तविंशतिः, तत्रापि भङ्गाः प्राग्वदष्टौ (८)। ततः प्राणापानेन पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्तेऽष्टाविंशतिः, अत्रापि भङ्गाः प्राग्वदष्टौ, अथवा शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासेऽनुदिते उद्योते तूदितेऽष्टाविंशतिः, अत्रापि भङ्गाः प्राग्वदष्टौ, सर्वसङ्ख्ययाऽष्टाविंशतौ भङ्गाः

षोडश (१६)। ततो भाषया पर्याप्तस्योच्छ्वाससहितायामष्टाविंशतौ सुस्वरे क्षिप्ते एकोनत्रिंशत्, अत्रापि प्राग्वद्भङ्गा अष्टौ, अथवा प्राणापानेन पर्याप्तस्य स्वरेऽनुदिते उद्योते तूदिते एकोनत्रिंशत्, अत्रापि प्राग्वद्भङ्गा अष्टौ, सर्वसङ्ख्ययैकोनत्रिंशति भङ्गाः षोडश (१६) । ततः सुस्वरसहितायामेकोनत्रिंशत्युद्योते क्षिप्ते त्रिंशत्, अत्रापि भङ्गाः प्राग्वदष्टौ (८) । सर्वसङ्ख्यया वैक्रियं कुर्वतां तिरश्चां भङ्गाः षट्पञ्चाशत् (५६)। सर्वेषां तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां सर्वमीलनेन भङ्गाश्चत्वारि सहस्राणि नव शतानि द्विषष्टिश्च (४९६२)॥

अथ मनुष्याणामुदयस्थानानि वाच्यानि, तत्र सामान्यमनुष्याणामुदयस्थानानि पञ्च, तद्यथा—एकविंशतिः षड्विंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशच्च । एतानि सर्वाण्यपि यथा प्राक् तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणामुक्तानि तथाऽत्रापि वक्तव्यानि, नवरमेकोनत्रिंशत्त्रिंशच्चोद्योतरहिता वक्तव्या, वैक्रियाहारकसंयतान्मुक्त्वा शेषमनुष्याणामुद्योतोदयाभावात् , तत एकोनत्रिंशति भङ्गाः पञ्च शतानि षट्सप्तत्यधिकानि । त्रिंशति चैकादश शतानि द्विपञ्चाशदधिकान्येवेति सर्वसङ्ख्यया प्राकृतमनुष्याणां भङ्गाः षड्विंशतिशतानि द्विकाधिकानि (९+२८९+५७६+५७६+११५२=२६०२)। वैक्रियमनुष्याणामुदयस्थानानि पञ्च, तद्यथा—पञ्चविंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशच्च । तत्र मनुष्यगतिः पञ्चेन्द्रियजातिर्वैक्रियद्विकं समचतुरस्रमुपघातत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकानि सुभगदुर्भगयोरेकतरं आदेयानादेययोरेकतरं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरेकतरेति त्रयोदश द्वादशभिर्ध्रुवोदयिनीभिः सहिता पञ्चविंशतिः, अत्र सुभगदुर्भगाभ्यामादेयानादेयाभ्यां यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यां चाष्टौ भङ्गाः (८)। देशविरतानां सर्वविरतानां वा वैक्रियं कुर्वतां सर्वप्रशस्त एव भङ्गोऽवधारणीयः (८) । ततः शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य पराघाते प्रशस्तखगतौ च क्षिप्तायां सप्तविंशतिः, अत्रापि प्राग्वदष्टौ भङ्गाः (८) । ततः प्राणापानेन पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्तेऽष्टाविंशतिः, अत्रापि भङ्गाः प्राग्वदष्टौ, अथवा संयतानामुत्तरवैक्रियं कुर्वतां

शरीरेण पर्याप्तानामुच्छ्वासेऽनुदिते उद्योते तूदितेऽष्टाविंशतिः, अत्रैक एव प्रशस्तपदो भङ्गः, संयतानां दुर्भगानादेययशःकीर्त्यनुदयात्, सर्वसङ्ख्यया ऽष्टाविंशतौ भङ्गा नव (९)। ततो भाषया पर्याप्तस्योच्छ्वाससहितायामष्टाविंशतौ सुस्वरे क्षिप्ते एकोनत्रिंशत्, इहापि भङ्गाः प्राग्वदष्टौ, अथवा संयतानां स्वरेऽनुदिते उद्योते तूदिते एकोनत्रिंशत्, इहापि प्राग्वदेक एव भङ्गः, सर्वसङ्ख्ययैकोनत्रिंशति नव भङ्गाः (९)। सुस्वरसहितायामेकोनत्रिंशत्युद्योते क्षिप्ते संयतानां त्रिंशदुदयः अत्रैक एव भङ्गः (१)। सर्वसङ्ख्यया वैक्रियमनुष्याणां पञ्चत्रिंशद्भङ्गाः (३५)। आहारकसंयतानामुदयस्थानानि पञ्च, तद्यथा—पञ्चविंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशच्च। तत्राहारकद्विकं समचतुरस्रमुपघातं प्रत्येकं चेति पञ्च प्रकृतयः प्रागुक्तायां मनुष्यगतिप्रायोग्यायामेकविंशतौ प्रक्षिप्यन्ते ततो मनुष्यानुपूर्वी चापनीयते जाता पञ्चविंशतिः, केवलमियं सर्वप्रशस्तपदा, संयतानां दुर्भगानादेययशःकीर्त्युदयाभावादित्यत्रैक एव भङ्गः (१)। ततः शरीरेण पर्याप्तस्य पराघाते प्रशस्तखगतौ च क्षिप्तायां सप्तविंशतिः, अत्राप्येक एव भङ्गः (१)। ततः प्राणापानेन पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्तेऽष्टाविंशतिः, इहाप्येको भङ्गः, अथवा शरीरेण पर्याप्तस्योच्छ्वासेऽनुदिते उद्योते तूदितेऽष्टाविंशतिः, इहापि भङ्ग एकः। सर्वसङ्ख्यया ऽष्टाविंशतौ द्वौ भङ्गौ। ततो भाषया पर्याप्तस्योच्छ्वाससहितायामष्टाविंशतौ सुस्वरे क्षिप्ते एकोनत्रिंशत्, इहाप्येक एव भङ्गः, अथवा प्राणापानेन पर्याप्तस्य स्वरेऽनुदिते उद्योते तूदिते एकोनत्रिंशत्, इहाप्येक एव भङ्गः, सर्वसङ्ख्ययैकोनत्रिंशति द्वौ (२)। ततो भाषापर्याप्तस्य सुस्वरसहितायामेकोनत्रिंशत्युद्योते क्षिप्ते त्रिंशत्, इहैको भङ्गः (१)। सर्वसङ्ख्यया ऽऽहारकशरीरिणां सप्त भङ्गाः (७)। केवलिनामुदयस्थानानि दश, तद्यथा—विंशतिरेकविंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशन्नवाष्टौ च। तत्र मनुष्यगतिः पञ्चेन्द्रियजातिस्त्रसं बादरं पर्याप्तं सुभगमादेयं यशःकीर्त्तिरित्येता अष्ट ध्रुवोदयिनीभिर्द्वादशभिः

सह विंशतिः, इहाप्येक एव भङ्गः, एषा चातीर्थकृत्केवलिनः समुद्घातगतस्य कार्मणयोगे वर्त्तमानस्यावसेया (१)। सैव विंशतिस्तीर्थकरसहितैकविंशतिः, इहाप्येको भङ्गः, एषा च तीर्थकृत्केवलिनः समुद्घातगतस्य कार्मणकाययोगवर्तिनो द्रष्टव्या (१)। तस्यामेव विंशतौ औदारिकद्विकं षण्णामेकतमं संस्थानमाद्यसंहननं प्रत्येकमुपघातमिति षट्कं प्रक्षिप्यते, ततः षड्विंशतिर्भवति, एषा चातीर्थकृत्केवलिन औदारिकमिश्रकाययोगे वर्त्तमानस्यावसेया, अत्र षड्भिः संस्थानैः षड् भङ्गाः स्युः, परं सामान्यमनुष्योदयस्थानेष्वपि संभवन्तीति पृथग् न गण्यन्ते। एषैव षड्विंशतिस्तीर्थकरसहिता सप्तविंशतिः स्यात्, एषा तीर्थकृत औदारिकमिश्रकाययोगस्थस्यावसेया, अत्र संस्थानं समचतुरस्रमेवेत्येक एव भङ्गः (१)। सैव षड्विंशतिः पराघातोच्छ्वासान्यतरस्वरसहिता त्रिंशत्, एषा चातीर्थकरस्य सयोगिकेवलिन औदारिककाययोगवर्त्तिनोऽवगन्तव्या, अत्र संस्थानषट्कप्रशस्ताप्रशस्तखगतिसुस्वरदुःस्वरैर्भङ्गाश्चतुर्विंशतिः, ते च सामान्यमनुष्योदयस्थानेष्वपि लभ्यन्ते इति पृथङ् न गण्यन्ते। एषैव त्रिंशत्तीर्थकरनामसहितैकत्रिंशद्भवति, सा च सयोगिकेवलिनस्तीर्थकरस्यौदारिककाययोगवर्त्तिन एकभङ्गाऽवधारणीया (१)। एषैवैकत्रिंशद्वाग्योगे निरुद्धे त्रिंशत्, तत उच्छ्वासे निरुद्धे एकोनत्रिंशत्। अतीर्थकरकेवलिनः प्रागुक्ता त्रिंशद्वाग्योगे निरुद्धे एकोनत्रिंशत्। अत्र षड्भिः संस्थानैः प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिभ्यां च द्वादश भङ्गाः, परं प्राग्वत् पृथङ् न गण्यन्ते। तत उच्छ्वासे निरुद्धेऽष्टाविंशतिः, अत्रापि द्वादश भङ्गाः प्राग्वत्, प्राग्वदेव च सामान्यमनुष्योदयस्थानग्रहणगृहीतत्वात् पृथङ् न गण्यन्ते। तथा मनुष्यगतिः पञ्चेन्द्रियजातिस्त्रसबादरपर्याप्तसुभगादेयानि यशःकीर्त्तिस्तीर्थकरं चेति नव, एतदुदयस्थानं तीर्थकृदयोगिकेवलिनश्चरमसमयवर्तिनो लभ्यते। तथा स एव नवोदयोऽतीर्थकरकेवलिनस्तीर्थकरनामरहितोऽष्टोदयः। सर्वसङ्ख्यया सामान्यतीर्थकरसयोग्ययोगिकेवलिभङ्गा द्विषष्टिः, किंतु ये सामान्यकेवलिनो भङ्गाः षड्विंशतौ षट्, अष्टाविंशतौ द्वादश,

एकोनत्रिंशति द्वादश, त्रिंशति चतुर्विंशतिः, सर्वसङ्ख्यया चतुःपञ्चाशत्, ते सामान्यमनुष्योदयस्थानान्तःपातित्वात् पृथङ्न गण्यन्ते इति। शेषा अष्टावेवोदयभङ्गाः परमार्थतः केवलिनां द्रष्टव्याः। तत्र विंत्यष्टकयोर्भङ्गावतीर्थकृतः, एकविंशतिसप्तविंशत्येकोनत्रिंशत्रिंशन्नवगताश्च षड् भङ्गास्तीर्थकृत इति विवेकः। सर्वसङ्ख्यया मनुष्याणामुदयस्थानभङ्गाः द्वे सहस्रे षट् शतानि द्विपञ्चाशच्च (२६५२)। तदेवमुक्तानि मनुष्याणामुदयस्थानानि।

अथ देवानामुच्यते-देवानामुदयस्थानानि षट्, तद्यथा—एकविंशतिः पञ्चविंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्रिंशच्च। तत्र देवद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिस्त्रसं बादरं पर्याप्तं सुभगदुर्भगयोरेकतरं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरेकतरमिति नव प्रागुक्ताभिर्द्वादशभिर्ध्रुवोदयिनीभिः सहितैकविंशतिः, अत्र सुभगदुर्भगादेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तिभिरष्टौ भङ्गाः, इह च दुर्भगानादेययशःकीर्त्तीनामुदयः पिशाचादीनामवसेयः (८)। ततः शरीरस्थस्य वैक्रियद्विकमुपघातं प्रत्येकं समचतुरस्रमिति पञ्च प्रकृतयः क्षिप्यन्ते देवानुपूर्वी चापनीयते, ततो जाता पञ्चविंशतिः, अत्रापि भङ्गास्तथैवाष्टौ (८)। ततः शरीरेण पर्याप्तस्य पराघाते प्रशस्तविहायोगतौ च क्षिप्तायां सप्तविंशतिः, अत्रापि भङ्गाः प्राग्वदष्टौ (८)। देवानामप्रशस्तविहायोगतेरुदयो न भवतीति तदाश्रिता विकल्पा न लभ्यन्ते। ततः प्राणापानेन पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्तेऽष्टाविंशतिः, अत्रापि प्राग्वदष्टौ भङ्गाः, अथवा शरीरेण पर्याप्तस्योच्छ्वासेऽनुदिते उद्योते तूदितेऽष्टाविंशतिः, इहापि भङ्गाः प्राग्वदष्टौ, सर्वसङ्ख्ययाऽष्टाविंशतौ भङ्गाः षोमश (१६)। ततो भाषापर्याप्तस्य सुस्वरे क्षिप्ते एकोनत्रिंशत्, इहापि भङ्गाः प्राग्वदष्टौ। दुःस्वरोदया देवा न भवन्तीति तदाश्रितविकल्पा न भवन्ति, अथवा प्राणापानेन पर्याप्तस्य सुस्वरेऽनुदिते उद्योते तूदिते एकोनत्रिंशत्, उत्तरवैक्रियं हि कुर्वतो देवस्योद्योतोदयो लभ्यते, अत्रापि प्राग्वदष्टौ भङ्गाः, सर्वसङ्ख्ययैकोनत्रिंशति षोमश भङ्गाः (१६)।

ततो भाषापर्याप्तस्य सुस्वरसहितायामेकोनत्रिंशत्युद्योते क्षिप्ते त्रिंशत्, अत्रापि भङ्गाः प्राग्वदष्टौ। सर्वसङ्ख्यया देवानां भङ्गाश्चतुःषष्टिः (६४)। तदेवमुक्तानि देवानामुदयस्थानानि।

अथ नैरयिकाणामुच्यन्ते—तत्र नैरयिकाणामुदयस्थानानि पञ्च, तद्यथा—एकविंशतिः पञ्चविंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्। तत्र नरकद्विकं पञ्चेन्द्रियजातिस्त्रसबादरपर्याप्तानि दुर्भगमनादेयमयशःकीर्त्तिश्चेत्येता नव द्वादशसङ्ख्याभिर्ध्रुवोदयिनीभिः सहिता एकविंशतिः, अत्र सर्वाण्यपि पदान्यप्रशस्तान्येवेत्येक एव भङ्गः, एवमन्यत्रापि ज्ञेयं। ततः शरीरस्थस्य वैक्रियद्विकं प्रत्येकं हुण्डमुपघातमिति पञ्च प्रकृतयः क्षिप्यन्ते नरकानुपूर्वी चापनीयते, ततो जाता पञ्चविंशतिः। ततः शरीरेण पर्याप्तस्य पराघातेऽप्रशस्तखगतौ च प्रक्षिप्तायां सप्तविंशतिः। ततः प्राणापानेन पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्तेऽष्टाविंशतिः। ततो भाषापर्याप्तस्य दुःस्वरे क्षिप्ते एकोनत्रिंशत्। सर्वसङ्ख्यया नैरयिकेषु भङ्गाः पञ्च (५)। समग्रोदयस्थानभङ्गाः पुनः सप्तसप्ततिशतान्येकनवत्यधिकानि (७७९१)।

अथ नामप्रकृतीनामेव गुणस्थानके उदयव्यवच्छेदश्चिन्त्यते-इह मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने नानाजीवानपेक्ष्य तीर्थकराहारकद्विकवर्जितानां सर्वासामपि नामप्रकृतीनां चतुःषष्टिसङ्ख्यानामुदयः संभवति। तत्र साधारणसूक्ष्मापर्याप्तातपानां मिथ्यादृष्टावुदयो व्यवच्छिद्यते। व्यवच्छेदो नाम तत्र भाव उत्तरत्राभावः। तथा सासादने स्थावरैकेन्द्रियविकलेन्द्रियजातीनामुदयव्यवच्छेदः, इह पूर्वोक्तानां साधारणादीनामुदयासंभवात् षष्टिप्रकृतीनामुदयः। सम्यग्मिथ्यादृष्टौ च स्थावरादिपञ्चप्रकृतीनां सासादने व्यवच्छिन्नानामुदयो न भवति, तथा तस्य कालकरणाभावेनानुपूर्वीणामप्युदयो न भवतीत्येकपञ्चाशत्प्रकृतीनामुदयः। अविरतसम्यग्दृष्टिस्त्वपान्तरालगतावपि प्राप्यत इति तत्र चतसृणामप्यानुपूर्वीणामुदयः संभवतीति ततस्तत्र पञ्चपञ्चाशत्प्रकृतीनामुदयः। देवद्विकनरकद्विकवैक्रियद्विकदुर्भगानादेययशःकीर्त्तितिर्यङ्मनुष्या-

नुपूर्वीणां सर्वसङ्ख्ययैकादशप्रकृतीनामत्रोदयव्यवच्छेदः । अत्र च वैक्रियद्विकस्य निषेधः कर्मस्तवस्याभिप्रायेण, न तु पञ्चसङ्ग्रहस्य, तन्मते देशविरतप्रमत्ताप्रमत्तेषु उदुदयाभ्युपगमादिति स्मर्त्तव्यं । ततो देशविरते चतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतीनामुदयः, अत्र तिर्यग्गत्युद्योतनाम्नोरुदयव्यवच्छेदः । ततः प्रमत्तसंयतेऽप्रमत्तसंयते च द्विचत्वारिंशत्प्रकृतीनामाहारकद्विकस्य चाधिकस्योदयो द्रष्टव्यः । इहान्तिमानां त्रयाणां संहननानामुदयव्यवच्छेदः, तथाऽऽहारकद्विकमपि श्रेण्यामुदये न प्राप्यत इत्यपूर्वकरणादिपूपशान्तमोहपर्यवसानेष्वेकोनचत्वारिंशत्प्रकृतीनामुदयोऽवगन्तव्यः । उपशान्तमोहे द्वितीयतृतीयसंहननयोरुदयव्यवच्छेदः, तेन क्षीणकषाये सयोगिकेवलिनि च शेषाणां सप्तत्रिंशत्प्रकृतीनामेवोदयो भवति, क्वचित् सयोगिकेवलिनि तीर्थकरनाम्नोऽपि, तत्र च नामध्रुवोदयद्वादशकस्वरद्विकखगतिद्विकौदारिकद्विकप्रत्येकोपघातपराघातोच्छ्वाससंस्थानषट्काद्यसंहननलक्षणानामेकोनत्रिंशत्प्रकृतीनामुदयव्यवच्छेदः । ततोऽयोगिकेवलिनि अष्टानां नवानां वोदयः, ताश्चोक्ता एव । तदेवं चिन्तितो गुणस्थानकेषु नामोदयव्यवच्छेदः, तच्चिन्तनाच्चाभिहितः सप्रपञ्चमुदयः ।

अथ नाम्नः सत्तास्थानान्युच्यन्ते, तानि च द्वादश, तत्र सर्वनामप्रकृतिसमुदायः पिण्डः, स त्रिनवतिप्रमाण इहाधिक्रियते, तथाविवक्षणात्, तत्प्रथमं सत्तास्थानं । तस्मिंस्तीर्थकरोने द्विनवतिप्रकृत्यात्मकं द्वितीयं । आहारकशरीराहारकोपाङ्गाहारकबन्धनाहारकसङ्घातरूपप्रकृतिचतुष्टयहीने च तस्मिंस्तृतीयमेकोननवतिप्रकृत्यात्मकं । तीर्थकराहारकचतुष्टयोभयविहीने च तस्मिन्नष्टाशीतिप्रकृत्यात्मकं चतुर्थं । इदं प्रथमं सत्तास्थानचतुष्कं भवति । तस्मात्प्रकृतित्रयोदशके क्षीणेऽशीत्येकोनाशीतिषट्सप्ततिपञ्चसप्ततिलक्षणं द्वितीयं सत्तास्थानचतुष्कं भवति । ततोऽष्टाशीतेः सुरद्विके नरकद्विके वोद्वलिते षडशीतिः । अष्टाशीतेर्वैक्रियचतुष्टयदेवद्विकनरकद्विकेषूद्वलितेष्वशीतिः । ततो मनुष्यद्विके उद्वलितेऽष्टसप्ततिः। एतानि त्रीण्यपि सत्तास्थानानि अध्रुवसंज्ञानि । तथा

नवकं सत्तास्थानमष्टकं च। यद्यप्येवं गणनया त्रयोदश सत्तास्थानानि प्राप्नुवन्ति तथाप्यशीत्यात्मकं सत्तास्थानं द्विप्रकारमपि तुल्यसङ्ख्यत्वादेकमेव विवक्ष्यत इत्यदोषः। तदेवं द्वादशापि सत्तास्थानानि सप्ततिकाभिप्रायेण व्याख्यातानि, प्रकृतग्रन्थाद्यभिप्रायेण तु त्र्युत्तरशतादीनि व्याख्येयानि। अत्र यान्त्रयोदश प्रकृतयः क्षीणाः सत्यो द्वितीयचतुष्कनिष्पादिकास्ता इमाः—स्थावरद्विकं तिर्यग्द्विकमातपमेकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातयः साधारणं नरकद्विकमुद्योतं चेति, एतास्वाद्या दश एकान्ततिर्यग्योग्या इष्यन्ते, तथात्वं चोदयमुदीरणां चाश्रित्य द्रष्टव्यं, बन्धसत्तापेक्षया तासामन्येषामपि योग्यत्वात्। एतेष्वध्रुवसत्तास्थानस्वामिन उच्यन्ते—पृथिव्यम्बुवनस्पतिषु षडशीत्यशीत्यात्मके द्वे अध्रुवसत्तास्थाने प्राप्येते, तृतीयं त्र्यशीत्यात्मकं तेजोवायुषु प्राप्यते, नान्येषु, तेषामेव मनुष्यद्विकोद्वलकत्वात्, अथवा तेजोवायुभ्य उद्धृत्यैकेन्द्रियादिषु तिर्यक्पञ्चेन्द्रियपर्यन्तेषु समागतस्य कियत्कालं लभ्यते यावन्नाद्यापि मनुष्यद्विकं बध्नाति, तेजोवायुभ्य उद्धृत्य मनुष्यादिषु गमनासंभवात् तिर्यक्पञ्चेन्द्रियपर्यवसानानुधावनं। अथ गतिषु सत्तास्थानानि प्ररूप्यन्ते—तत्र नरकगतौ त्रीणि सत्तास्थानानि—द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिश्च, त्रिनवतिस्तु न प्राप्यते, तस्यास्तीर्थकराहारकद्विकसहितत्वात्, तदुभयसत्कर्मणश्च नरकेषूत्पादप्रतिषेधात्। देवगतौ प्रथमसत्तास्थानचतुष्कं प्राप्यते, न शेषाणि, शेषाणामेकेन्द्रियादिषु क्षपकश्रेण्यां वा संभवात्। तिर्यक्षु यानि मिथ्यादृष्टौ वक्ष्यन्ते तान्येव तीर्थकरसहितानि प्राप्यन्ते एकोननवतिरहितानीतियावत्। मनुष्यगतौ त्वष्टसप्ततिस्थानं वर्जयित्वा शेषाणि सर्वाण्यपि द्रष्टव्यानि।

अथ गुणस्थानेषु चिन्त्यन्ते—मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने प्रथमसत्तास्थानहीनप्रथमचतुष्काध्रुवसंज्ञकत्रिकलक्षणानि ९२–८९–८८–८६–८०–७८ षट् सत्तास्थानानि, त्रिनवतिस्तु तीर्थकराहारकसत्कर्मणो मिथ्यात्वगमनप्रतिषेधान्न भवति। सासादने मिश्रे च द्विनवत्यष्टा-

शीतिलक्षणे द्वे सत्तास्थाने। अविरतसम्यग्दृष्टौ देशविरतप्रमत्ताप्रमत्तापूर्वकरणेषु प्रथमसत्तास्थानचतुष्कं भवति। अनिवृत्तिबादरसम्पराये सूक्ष्मसम्पराये च प्रथमसत्तास्थानचतुष्कं द्वितीयसत्तास्थानचतुष्कं चेति प्रत्येकमष्टावष्टौ सत्तास्थानानि, तत्राद्यानि चत्वार्युपशमश्रेण्यां, उत्तराणि तु चत्वारि क्षपकश्रेण्यां प्रकृतित्रयोदशकक्षये। उपशान्तमोहे तु प्रथमसत्तास्थानचतुष्कमेव। क्षीणमोहे सयोगिकेवलिनि च द्वितीयसत्तास्थानचतुष्कमेव। अयोगिकेवलिनि च षट् सत्तास्थानानि द्वितीयसत्तास्थानचतुष्कं नवाष्टौ च, तत्र द्वितीयसत्तास्थानचतुष्कं नानाजीवापेक्षया द्विचरमसमयं यावत्, चरमसमये तु तीर्थकरातीर्थकरावधिकृत्य नवाष्टाविति। तदेवं गुणस्थानेष्वभिहितानि सत्तास्थानानि।

अथ बन्धोदयसत्तास्थानानां परस्परं संवेध उच्यते—तत्र त्रयोविंशतिबन्धे पञ्चविंशतिबन्धे षड्विंशतिबन्धे च प्रत्येकं नव नवोदयस्थानानि पञ्च पञ्च सत्तास्थानानि। तत्र त्रयोविंशतिबन्धोऽपर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्य एव। तद्बन्धकाश्चैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रिया मनुष्याश्च। एतेषां त्रयोविंशतिबन्धकानां यथायोगं सामान्येन नवोदयस्थानानि, तद्यथा—एकविंशतिश्चतुर्विंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशत्। तत्रैकविंशत्युदयोऽपान्तरालगतौ वर्त्तमानानामेकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्याणां ज्ञेयः, तेषामपर्याप्तकैकेन्द्रियप्रायोग्यबन्धसंभवात्। चतुर्विंशत्युदयोऽपर्याप्तपर्याप्तैकेन्द्रियाणां, अन्यत्र चतुर्विंशत्युदयस्याप्राप्यमाणत्वात्। पञ्चविंशत्युदयः पर्याप्तैकेन्द्रियाणां वैक्रियतिर्यङ्मनुष्याणां च मिथ्यादृष्टीनां। षड्विंशत्युदयः पर्याप्तैकेन्द्रियाणां पर्याप्तापर्याप्तद्वित्रिचतुरिन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्याणां च मिथ्यादृष्टीनां। सप्तविंशत्युदयः पर्याप्तैकेन्द्रियाणां वैक्रियतिर्यङ्मनुष्याणां च मिथ्यादृष्टीनां। अष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशदुदयाः पर्याप्तद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्याणां च मिथ्यादृष्टीनां। एकत्रिंशदुदयो विकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां मिथ्यादृष्टीनां। उक्तशेषास्त्रयोविंशतिबन्धका न

भवन्ति । तेषां त्रयोविंशतिबन्धकानां सामान्येन पञ्च सत्तास्थानानि, तद्यथा—द्विनवतिरष्टाशीतिः षडशीतिरशीतिरष्टसप्ततिश्च । तत्रैकविंशत्युदये वर्तमानानां सर्वेषामपि पञ्चापि सत्तास्थानानि । नवरं मनुष्याणामष्टसप्ततिवर्जानि चत्वारि, यतोऽष्टसप्ततिर्मनुष्यद्विके उद्वलिते प्राप्यते, न च मनुष्याणां तदुद्वलनसंभवः । चतुर्विंशत्युदयेऽपि पञ्च सत्तास्थानानि, केवलं वायुकायिकस्य वैक्रियं कुर्वतश्चतुर्विंशत्युदये वर्त्तमानस्याशीत्यष्टसप्ततिवर्जानि त्रीणि वाच्यानि, यतस्तस्य वैक्रियषट्कं मनुष्यद्विकं च नियमादस्ति, यतोऽसौ वैक्रियद्विकं साक्षादनुभवत्येवेति न तदुद्वलयति, तदभावाद्देवद्विकनरकद्विके अपि नोद्वलयति, तथास्वाभाव्येन वैक्रियषट्कस्य समकालमुद्वलनसंभवात्, वैक्रियषट्के चोद्वलिते सति पश्चान्मनुष्यद्विकमुद्वलयति, न पूर्वं, ततोऽष्टसप्तत्यशीतिसत्तास्थानासंभवः । पञ्चविंशत्युदये पञ्चापि सत्तास्थानानि, तत्राष्टसप्ततिरवैक्रियवायुकायिकतेजस्कायिकानधिकृत्य प्राप्यते, नान्यान् , यतस्तेजस्कायिकवायुकायिकवर्जोऽन्यः सर्वोऽपि पर्याप्तको नियमान्मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्व्यौ बध्नाति, ततोऽन्यत्राष्टसप्ततिर्न प्राप्यते । षड्विंशत्युदयेऽपि पञ्चापि सत्तास्थानानि, तत्राष्टासप्ततिरवैक्रियवायुकायिकतैजसकायिकानां द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियाणां वा तेजोवायुभवादनन्तरमागतानां पर्याप्तापर्याप्तानां, ते हि यावन्मनुष्यगतिमनुष्यानुपूर्व्यौ न बध्नन्ति तावत्तेषामष्टसप्ततिः प्राप्यते, नान्येषां। सप्तविंशत्युदयेऽष्टसप्ततिवर्जानि चत्वारि सत्तास्थानानि, सप्तविंशत्युदयो हि तेजोवायुवर्जपर्याप्तबादरैकेन्द्रियवैक्रियतिर्यङ्मनुष्याणां, तेषु चावश्यं मनुष्यद्विकसंभवादष्टसप्ततिर्नावाप्यते । 'अथ कथं तेजोवायुनां सप्तविंशत्युदयो न भवति येन तद्वर्जनं क्रियते ?' उच्यते—'सप्तविंशत्युदय एकेन्द्रियाणामातपोद्योतान्यतरप्रक्षेपे भवति, न च तेजोवायुष्वातपोद्योतोदयसंभव इति तद्वर्जनं ।' अष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशदुदयेषु नियमादष्टसप्ततिवर्जानि चत्वारि चत्वारि सत्तास्थानानि, अष्टाविंशत्याद्युदया हि पर्याप्तविकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्याणां, एकत्रिंशदुदयश्च पर्याप्तविकलेन्द्रियाणां पञ्चेन्द्रिय-

तिरश्चां च, ते चाक्ष्यं मनुजद्विकसत्कर्माण इति। तदेवं त्रयोविंशतिबन्धकानां यथायोगं नवाप्युदयस्थानान्यधिकृत्य चत्वारिंशत्सत्तास्थानानि भवन्ति। पञ्चविंशतिषड्विंशतिबन्धकानामप्येवमेव, नवरं पर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यपञ्चविंशतिषड्विंशतिबन्धकानां देवानामेकविंशतिपञ्चविंशतिसप्तविंशत्यष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशद्रूपेषु षट्सूदयस्थानेषु द्विनवतिरष्टाशीतिश्चेति द्वे द्वे सत्तास्थाने वाच्ये। अपर्याप्तविकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यप्रायोग्यां तु पञ्चविंशतिं देवा न बध्नन्ति, अपर्याप्तेषु विकलेन्द्रियेषु च मध्ये देवानामनुत्पादात्। सामान्येन पञ्चविंशतिबन्धे षड्विंशतिबन्धे च प्रत्येकं नवाप्युदयस्थानानि प्रतीत्य चत्वारिंशच्चत्वारिंशत्सत्तास्थानानि।

तथाऽष्टाविंशतौ बध्यमानायामष्टावुदयस्थानानि, तद्यथा—एकविंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशच्च। इहाष्टाविंशतिर्द्वेधा देवगतिप्रायोग्या नरकगतिप्रायोग्या च, तत्र देवगतिप्रायोग्याया बन्धेऽष्टावप्युदयस्थानानि नानाजीवापेक्षया प्राप्यन्ते, नरकगतिप्रायोग्यायास्तु बन्धे त्रिंशदेकत्रिंशच्चेति द्वे, तत्र देवगतिप्रायोग्याष्टाविंशतिबन्धकानामेकविंशत्युदयः क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां वेदकसम्यग्दृष्टीनां वा पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याणामपान्तरालगतौ वर्त्तमानानामवसेयः, न मिथ्यादृष्टेः, यतो भवादौ सर्वपर्याप्तिपर्याप्त एव मिथ्यादृष्टिर्देवगतिप्रायोग्याऽष्टाविंशतिबन्धकः। एकविंशतिपञ्चविंशतिषड्विंशतिसप्तविंशत्यष्टाविंशत्येकोनत्रिंशदुदयवर्ती चापर्याप्त एवेति। वैक्रियतिर्यङ्मनुष्याणां (आहारकशरीरिणां) च पञ्चविंशत्याद्युदये (२५-२७-२८-२९) वर्त्तमानानां मिथ्यादृष्टीनां यद्देवगतिप्रायोग्याष्टाविंशतिबन्धकत्वं वक्ष्यते तद्भवादौ पूरितपर्याप्तिकस्यापि पश्चाद्वैक्रियाङ्गनिष्पत्तिकाले औदारिकादितनुनिवृत्तौ पर्याप्त्युदयनिवृत्तिमभिप्रेत्येत्यदोष इति स्मर्त्तव्यं। पञ्चविंशत्युदय आहारकसंयतानां वैक्रियतिर्यङ्मनुष्याणां च सम्यग्दृष्टीनां मिथ्यादृष्टीनां वा। षड्विंशत्युदयः क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां वेदकसम्यग्दृष्टीनां वा पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याणां शरीरस्थानां। सप्तविंशत्युदय

आहारकसंयतानां वैक्रियतिर्यङ्मनुष्याणां च सम्यग्दृष्टीनां मिथ्यादृष्टीनां वा। अष्टाविंशत्येकोनत्रिंशदुदयावपि यथाक्रमं शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तानां तिर्यङ्मनुष्याणां क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां वेदकसम्यग्दृष्टीनां वा, तथाऽऽहारकसंयतानां वैक्रियतिर्यङ्मनुष्याणां तु सम्यग्दृष्टीनां मिथ्यादृष्टीनां चावसेयौ। त्रिंशदुदयस्तिर्यङ्मनुष्याणां सम्यग्दृष्टीनां मिथ्यादृष्टीनां सम्यङ्मिथ्यादृष्टीनां च, तथाऽऽहारकसंयतानां वैक्रियसंयतानां च। एकत्रिंशदुदयः पञ्चेन्द्रियतिरश्चां सम्यग्दृष्टीनां मिथ्यादृष्टीनां वा। नरकगतिप्रायोग्यां त्वष्टाविंशतिं बध्नतां त्रिंशदुदयः पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याणां मिथ्यादृष्टिनां, एकत्रिंशदुदयः पञ्चेन्द्रियतिरश्चां मिथ्यादृशां। अष्टाविंशतिबन्धकानां सामान्येन चत्वारि सत्तास्थानानि—द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिः षडशीतिश्च। तत्रैकविंशत्युदये वर्त्तमानानां देवगतिप्रायोग्याष्टाविंशतिबन्धकानां द्विनवत्यष्टाशीतिलक्षणे द्वे सत्तास्थाने, एकविंशत्युदयस्थस्य तीर्थकरनामसत्कर्मणस्तद्बन्धोऽप्यवश्यं भावीत्येकोनत्रिंशद्बन्धकता स्यादिति। देवगतिप्रायोग्याष्टाविंशतिबन्धकस्यैकविंशत्युदये न त्रिनवतिसत्ता। पञ्चविंशत्युदयेऽप्यष्टाविंशतिबन्धकानामाहारकसंयतवैक्रियतिर्यङ्मनुष्याणां सामान्येन ते एव द्वे सत्तास्थाने, तत्राहारकसंयतो नियमादाहारकसत्कर्मेति तस्य द्विनवतिरेव सत्तास्थानं, शेषाश्च तिर्यञ्चो मनुष्या वाऽऽहारकसत्कर्माणस्तद्रहिताश्च भवन्ति, ततस्तेषां द्वे अपि सत्तास्थाने। षड्विंशतिसप्तविंशत्यष्टाविंशत्येकोनत्रिंशदुदयेष्वप्येते एव द्वे सत्तास्थाने। त्रिंशदुदये देवगतिनरकगतिप्रायोग्याष्टाविंशतिबन्धकानां सामान्येन चत्वारि सत्तास्थानानि, तद्यथा—द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिः षडशीतिश्च। तत्र द्विनवतिरष्टाशीतिश्च प्राग्वद्भावनीया। एकोननवतिस्त्वेवं—कश्चिन्मनुष्यस्तीर्थकरनामसत्कर्मा वेदकसम्यग्दृष्टिः प्राग्बद्धनरकायुष्को नरकगमनाभिमुखः सम्यक्त्वात् प्रच्युत्य मिथ्यात्वं गतः, तस्य तदा तीर्थकरनामबन्धाभावात् नरकगतिप्रायोग्यामष्टाविंशतिं बध्नत एकोननवतिः। षडशीतिश्चैवं—इह तीर्थकराहारकचतुष्टयदेवद्विकनरकद्विकवै-

क्रियचतुष्टयरहिता त्रिनवतिरशीतिर्भवति, ततस्तावत्सत्कर्मा पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्यो वा जातः सन् सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तो यदि विशुद्धस्ततो देवगतिप्रायोग्यामष्टाविंशतिं बध्नाति, तद्बन्धे च देवद्विकं वैक्रियचतुष्टयं च सत्तायां प्राप्यत इति तस्य षडशीतिः। अथ सर्वसंक्लिष्टस्ततो नरकगतिप्रायोग्यामष्टाविंशतिं बन्धाति, तद्बन्धे च नरकद्विकं वैक्रियचतुष्टयं चावश्यं सत्तायां प्राप्यत इत्येवमपि तस्य षडशीतिः। एकत्रिंशदुदये द्विनवतिरष्टाशीतिः षडशीतिश्चेति त्रीणि सत्तास्थानानि। एकोननवतिरिह न प्राप्यते, एकत्रिंशदुदयस्य पञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु प्राप्तेस्तत्र च तीर्थकरनामसत्ताप्रतिषेधात्। षडशीतिस्थानभावना तु प्राग्वदेव। तदेवमष्टाविंशतिबन्धकानामष्टस्वप्युदयस्थानेष्वेकोनविंशतिः सत्तास्थानानि।

एकोनत्रिंशति त्रिंशति च बध्यमानायां प्रत्येकं नव नवोदयस्थानानि सप्त सप्त च सत्तास्थानानि। तत्रोदयस्थानान्यमूनि—एकविंशतिश्चतुर्विंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशच्च। तत्रैकविंशत्युदयस्तिर्यङ्मनुष्यप्रायोग्यामेकोनत्रिंशतं बध्नतां पर्याप्तापर्याप्तैकेन्द्रियविकलेन्द्रियपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याणां देवनैरयिकाणां च। चतुर्विंशत्युदयः पर्याप्तापर्याप्तैकेन्द्रियाणां। पञ्चविंशत्युदयः पर्याप्तैकेन्द्रियाणां देवनैरयिकाणां वैक्रियतिर्यङ्मनुष्याणां च मिथ्यादृष्टीनां। षड्विंशत्युदयः पर्याप्तैकेन्द्रियाणां पर्याप्तापर्याप्तविकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्याणां च। सप्तविंशत्युदयः पर्याप्तैकेन्द्रियाणां देवनैरयिकाणां वैक्रियतिर्यङ्मनुष्याणां च मिथ्यादृष्टीनां। अष्टाविंशत्युदय एकोनत्रिंशदुदयश्च विकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्याणां वैक्रियपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्यदेवनैरयिकाणां च। त्रिंशदुदयो विकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्याणां देवानां चोद्योतवेदकानां। एकत्रिंशदुदयः पर्याप्तविकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणामुद्योतवेदकानां। तथा देवगतिप्रायोग्यामेकोनत्रिंशतं बध्नतो मनुष्यस्याविरतसम्यग्दृष्टेरुदयस्थानानि सप्त, तद्यथा—एकविंशतिः पञ्चवि-

शतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशच्च। आहारकसंयतानां वैक्रियसंयतानां चेमानि पञ्चोदयस्थानानि, तद्यथा—पञ्चविंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशत्। असंयतानां संयतासंयतानां च वैक्रियं कुर्वतां मनुष्याणां त्रिंशद्वर्जानि चत्वार्युदयस्थानानि। त्रिंशद्वर्जनं च संयतान्मुक्त्वाऽन्येषां मनुष्याणां वैक्रियमपि कुर्वतामुद्योतोदयाभावात्। सामान्येनैकोनत्रिंशद्बन्धे सप्त सत्तास्थानानि—त्रिनवतिर्द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिः षडशीतिरशीतिरष्टसप्ततिश्च। तत्र विकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यामेकोनत्रिंशतं बध्नतां पर्याप्तापर्याप्तैकेन्द्रियविकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणामेकविंशत्युदये वर्त्तमानानां पञ्च पञ्च सत्तास्थानानि—द्विनवतिरष्टाशीतिः षडशीतिरशीतिरष्टसप्ततिश्च। एवं चतुर्विंशतिपञ्चविंशतिषड्विंशत्युदयेष्वपि वक्तव्यं। सप्तविंशत्यष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशदुदयेष्वष्टसप्ततिवर्जानि चत्वारि चत्वारि सत्तास्थानानि, भावना त्रयोविंशतिबन्धकानां प्राग्यथा कृता तथाऽत्रापि कार्या। मनुजगतिप्रायोग्यामेकोनत्रिंशतं बध्नतामेकेन्द्रियविकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां, तिर्यग्गतिमनुष्यगतिप्रायोग्यां पुनर्बध्नतां मनुष्याणां च स्वस्वोदयस्थानेषु यथायोगं वर्त्तमानानामष्टसप्ततिवर्जानि तान्येव चत्वारि चत्वारि सत्तास्थानानि। देवनैरयिकाणां तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यगतिप्रायोग्यामेकोनत्रिंशतं बध्नतां स्वस्वोदयेषु वर्त्तमानानां द्वे द्वे सत्तास्थाने द्विनवतिरष्टाशीतिश्चेति। केवलं नैरयिकस्य मिथ्यादृष्टेस्तीर्थकरसत्कर्मणो मनुष्यगतिप्रायोग्यामेकोनत्रिंशतं बध्नतः स्वोदयेषु पञ्चसु यथायोगं वर्त्तमानस्यैकोननवतिरेवैका वक्तव्या, तीर्थकरनामसहितस्याहारकचतुष्टयरहितस्यैव मिथ्यात्वगमनसंभवात् त्रिनवतेराहारकचतुष्टयेऽपनीते एकोननवतेरेव संभवात्। देवगतिप्रायोग्यामेकोनत्रिंशतं तीर्थकरनामसहितां बध्नतः पुनरविरतसम्यग्दृष्टेर्मनुष्यस्यैकविंशत्युदये वर्त्तमानस्य द्वे सत्तास्थाने त्रिनवतिरेकोननवतिश्च। एवं पञ्चविंशतिषड्विंशतिसप्तविंशत्यष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशदुदयेष्वपि एते एव द्वे सत्तास्थाने वाच्ये। आहारकसंयतानां

अ॥३८॥

तु स्वस्वोदय वर्त्तमानानामेकमेव त्रिनवतिरूपं सत्तास्थानं ज्ञेयं। तदेवं सामान्येनैकोनत्रिंशद्बन्धे एकविंशत्युदये सत्तास्थानानि पञ्च, (सप्त) चतुर्विंशत्युदये पञ्च, पञ्चविंशत्युदये सप्त, षड्विंशत्युदये सप्त, सप्तविंशत्युदये षट्, अष्टाविंशत्युदये षट्, एकोनत्रिंशदुदये षट्, त्रिंशदुदये षट्, एकत्रिंशदुदये चत्वारि, सर्वसङ्ख्यया चतुःपञ्चाशत्सत्तास्थानानि (५४)। तथा यथा तिर्यग्गतिप्रायोग्यामेकोनत्रिंशतं बध्नतामेकेन्द्रियविकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुजदेवनैरयिकाणामुदयसत्तास्थानानि भावितानि तथा त्रिंशतमप्युद्योतसहितां तिर्यग्गतिप्रायोग्यां बध्नतामेकेन्द्रियादीनामुदयसत्तास्थानानि भावनीयानि। मनुष्यगतिप्रायोग्यां तीर्थकरसहितां त्रिंशतं बध्नतां देवनैरयिकाणामुदयसत्तास्थानान्युच्यन्ते—तत्र देवस्य यथोक्तां त्रिंशतं बध्नत एकविंशत्युदये वर्त्तमानस्य द्वे सत्तास्थाने त्रिनवतिरेकोननवतिश्च। एकविंशत्युदय एव वर्त्तमानस्य नैरयिकस्यैकं सत्तास्थानमेकोननवतिलक्षणं। त्रिनवतिस्तु न भवति, तीर्थकराहारकसत्कर्मणो नरकेषूत्पादाभावात्। उक्तं च सप्ततिकाचूर्णौ—"जस्स तित्थगराहारगाणि जुगवं संति सो नरएसु न उववज्जइ त्ति"। एवं पञ्चविंशतिसप्तविंशत्यष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशदुदयेष्वपि भावनीयं। नवरं नैरयिकस्य त्रिंशदुदयो नास्ति, त्रिंशदुदयस्योद्योतान्वितत्वान्नैरयिकस्य चोद्योतोदयाभावात्। तदेवं सामान्येन त्रिंशद्बन्धकानामेकविंशत्युदये सप्त, चतुर्विंशत्युदये पञ्च, पञ्चविंशत्युदये सप्त, षड्विंशत्युदये पञ्च, सप्तविंशत्युदये षट्, अष्टाविंशत्युदये षट्, एकोनत्रिंशदुदये षट्, त्रिंशदुदये षट्, एकत्रिंशदुदये चत्वारि, सर्वसङ्ख्यया द्विपञ्चाशत् (५२)।

एकत्रिंशति बध्यमानायामेकमुदयस्थानं त्रिंशल्लक्षणं, यत एकत्रिंशद्देवगतिप्रायोग्यं तीर्थकराहारकसहितं बध्नतोऽप्रमत्तसंयतस्यापूर्वकरणस्य वा प्राप्यते, न च ते वैक्रियमाहारकं वा कुर्वन्ति, ततः पञ्चविंशत्यादय उदया न प्राप्यन्ते। एकं सत्तास्थानं त्रिनवतिस्तीर्थकराहारकचतुष्टययोरपि सत्तासंभवात्। एकस्मिन् यशःकीर्त्तिरूपे कर्मणि बध्यमाने एकं त्रिंशदुदयस्थानं, एकबन्धका ह्यपूर्वकरणा-

दयोऽतिशुद्धत्वाद्वैक्रियमाहारकं वा नारभन्त इति तत्र पञ्चविंशत्याद्युदयस्थानाप्राप्तिः । अष्टौ सत्तांशाः—त्रिनवतिर्द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिरशीतिरेकोनाशीतिः षट्सप्ततिः पञ्चसप्ततिश्च । तत्राद्यानि चत्वारि सत्तास्थानानि उपशमश्रेण्यां, क्षपकश्रेण्यामपि तावद्यावदनिवृत्तिबादरगुणस्थानं गत्वा त्रयोदश नामानि न क्षिप्यन्ते, क्षीणेषु च त्रयोदशनामसु नानाजीवापेक्षयोपरितनानि चत्वारि सूक्ष्मसम्परायं यावल्लभ्यन्ते ।

परतो बन्धाभावे दशोदयस्थानानि, तद्यथा—विंशतिरेकविंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशन्नवाष्टौ चेति । तत्र विंशत्येकविंशती यथासङ्ख्यं तीर्थकृदतीर्थकृतोः सयोगिकेवलिनोः कार्मणकाययोगे वर्त्तमानयोः, षड्विंशतिसप्तविंशती तयोरेवौदारिकमिश्रकाययोगे वर्त्तमानयोः, अतीर्थकृतः स्वभावस्थस्य त्रिंशत्, तस्यैव स्वरे निरुद्धे एकोनत्रिंशत्, तस्यैवोच्छ्वासेऽपि निरुद्धेऽष्टाविंशतिः, तीर्थकृतः स्वभावस्थस्यैकत्रिंशत्, तस्यैव स्वरे निरुद्धे त्रिंशत्, उच्छ्वासेऽपि निरुद्धे एकोनत्रिंशत्, अयोगिनस्तीर्थकृतो नवोदयोऽतीर्थकृतोऽष्टोदयः । दश सत्तास्थानानि, तद्यथा—त्रिनवतिर्द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिरशीतिरेकोनाशीतिः षट्सप्ततिः पञ्चसप्ततिर्नवाष्टौ च । विंशत्युदये द्वे सत्तास्थाने—एकोनाशीतिः पञ्चसप्ततिश्च । एवं षड्विंशत्युदयेऽष्टाविंशत्युदयेऽपि च द्रष्टव्यं । एकविंशत्युदये अशीतिषट्सप्ततिलक्षणे द्वे सत्तास्थाने, एवं सप्तविंशत्युदयेऽपि । एकोनत्रिंशति चत्वारि सत्तास्थानानि, तद्यथा—अशीतिः षट्सप्ततिरेकोनाशीतिः पञ्चसप्ततिश्च । यत एकोनत्रिंशत्तीर्थकरस्यातीर्थकरस्य च स्यात् । तत्राद्ये द्वे तीर्थकरमधिकृत्य, अन्त्ये च द्वे अतीर्थकरमधिकृत्य । त्रिंशदुदयेऽष्टौ सत्तास्थानानि, तद्यथा—त्रिनवतिर्द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिरशीतिरेकोनाशीतिः षट्सप्ततिः पञ्चसप्ततिश्च । तत्राद्यानि चत्वार्युपशान्तकषायस्य, अशीतिः क्षीणकषायस्य सयोगिकेवलिनो वा तीर्थकृत आहारकसत्कर्म-

णोऽतीर्थकृतस्तु तादृशस्यैकोनाशीतिः । आहारकचतुष्टयरहितयोस्तीर्थकृदतीर्थकृतोः क्षीणमोहयोः सयोगिकेवलिनोर्वा षट्सप्ततिपञ्चसप्तती । एकत्रिंशदुदयेऽशीतिषट्सप्तत्यात्मके द्वे सत्तास्थाने अतीर्थकरस्यैव ज्ञेये, अतीर्थकरस्यैकत्रिंशदुदयाभावात्, । नवोदयेऽशीतिषट्सप्ततिनवलक्षणानि त्रीणि सत्तास्थानानि, तत्राद्ये द्वे अयोगिकेवलिद्विचरमसमयं यावत् तीर्थकरस्य चरमसमये तु नव । अष्टोदये त्रीणि सत्तास्थानानि—एकोनाशीतिः पञ्चसप्ततिरष्टौ च, तत्राद्ये द्वे अयोगिकेवलिनोऽतीर्थकृतो द्विचरमसमयं यावत् चरमसमये त्वष्टाविति । एवमबन्धकस्य दशस्वप्युदयस्थानेषु त्रिंशत्सत्तास्थानानि भवन्ति । तदेवं सर्वेषामपि कर्मणां प्रत्येकं बन्धोदयसत्तास्थानानि सामान्यतो मिथः संवेधतश्च चिन्तितानि ॥

अथ सर्वेषामपि कर्मणां (गुणस्थाने) बन्धोदयसत्ताः प्रत्येकं संवेधतश्चिन्त्यन्ते—तत्र ज्ञानावरणान्तराययोर्मिथ्यादृष्टेरारभ्य सूक्ष्मसम्परायं यावत् पञ्चैव प्रकृतयो बन्धे उदये सत्तायां च लभ्यन्ते, उपशान्तमोहे (क्षीणमोहे) च द्वयोरपि पञ्च पञ्च प्रकृतय उदयवत्यः सत्यश्च, क्षीणमोहादौ (सयोगिकेवल्यादौ) त्वनयोरेकापि नास्ति । दर्शनावरणस्य मिथ्यादृष्टौ सासादने च द्वौ भङ्गौ, नवविधो बन्धश्चतुर्विध उदयो नवविधा सत्ता, एष विकल्पो निद्रोदयाभावे । नवविधो बन्धः पञ्चविध उदयो नवविधा सत्ता, एष विकल्पो निद्रोदयकाले । मिश्रादारभ्यापूर्वकरणप्रथमभागं यावत् इमौ द्वौ भङ्गौ—षड्विधो बन्धश्चतुर्विध उदयो नवविधा सत्ता, यद्वा षड्विधो बन्धः पञ्चविध उदयो नवविधा सत्तेति । अपूर्वकरणे निद्राप्रचलयोर्बन्धव्यवच्छेदादूर्ध्वमारभ्योपशमश्रेण्यां सूक्ष्मसम्परायं यावत् चतुर्विधो बन्धश्चतुर्विध उदयो नवविधा सत्ता, यद्वा चतुर्विधो बन्धः पञ्चविध उदयो नवविधा सत्तेति द्वौ भङ्गौ । बन्धाभावेऽप्युपशान्तमोहे बन्धाभिलापनिर्मुक्तावेतावेव द्वौ भङ्गौ । अनिवृत्तिबादरस्य सूक्ष्मसम्परायस्य च क्षपकस्य चतुर्विधे बन्धे षट्कसत्तायामति-

विशुद्धत्वेन निद्रोदयाभावाच्चतुर्विध एवोदय इत्येक एव भङ्गः । क्षीणमोहस्य बन्धाभावे द्वौ भङ्गौ, चतुर्विध उदयः षड्विधा सत्ता इत्येष भङ्गः क्षीणमोहस्य द्विचरमसमयं यावत्, चरमसमये तु चतुर्विध उदयश्चतुर्विधा सत्तेति । उक्ता गुणस्थानेषु दर्शनावरणीयस्य भङ्गाः । अथ वेदनीयस्योच्यन्ते—वेदनीयस्याद्याश्चत्वारो भङ्गा असातस्य बन्धः सातस्योदयो द्वे सती, यद्वाऽसातस्य बन्धोऽसातस्योदयो द्वे सती, (यद्वा) सातस्य बन्धः सातस्योदयो द्वे सती, यद्वा सातस्य बन्धोऽसातस्योदयो द्वे सती इत्येते मिथ्यादृष्टेरारभ्य यावत्प्रमत्तसंयतस्तावन्नानाजीवापेक्षया कालभेदेनैकजीवापेक्षया च भावनीयाः । सातस्य बन्धः सातस्योदयो द्वे सती, सातस्य बन्धोऽसातस्योदयो द्वे सती इत्येतौ द्वौ प्रमत्तसंयतादारभ्य यावत्सयोगिकेवली तावत् । बन्धाभावेऽयोगिकेवलिनि चत्वारो विकल्पाः, तत्रासातस्योदयः सातासाते सती, यद्वा सातस्योदयः सातासाते सती, एतौ द्वौ द्विचरमसमयं यावत्, चरमसमये त्वन्यतरस्मिन् सति द्वौ भङ्गौ, तत्रासातस्योदयोऽसातस्य सत्तेत्येष भङ्गो, यस्य द्विचरमसमये सातं क्षीणं तस्य, यस्य तु द्विचरमसमयेऽसातं क्षीणं तस्य सातस्योदयः सातस्य सत्तेत्येष भङ्गः । भाविता गुणस्थानेषु वेदनीयस्य भङ्गाः । अथायुषो भाव्यन्ते—आयुषो मिथ्यादृष्टिगुणस्थानेऽष्टाविंशतिरपि भङ्गा नैरयिकान् देवांश्चाधिकृत्य पञ्च पञ्च, तिरश्चो मनुष्यांश्चाधिकृत्य नव नवेति । सासादनस्य षड्विंशतिः, यतस्तिर्यञ्चो मनुष्या वा सासादनभावे वर्त्तमाना नरकायुर्न बध्नन्तीति परभवायुर्बन्धकाले तिरश्चां नृणां चैकैको भङ्गो न प्राप्यते । सम्यग्मिथ्यादृष्टेः षोडश, तस्य हि नायुर्बन्धारम्भ इति आयुर्बन्धकालीना द्वादश भङ्गा अपयान्तीति षोडश भवन्ति । अविरतसम्यग्दृष्टेर्विंशतिर्भङ्गाः, कथमिति चेदुच्यते—तिर्यङ्मनुष्याणां प्रत्येकमायुर्बन्धकाले ये नरकतिर्यङ्मनुष्यगतिविषयास्त्रयस्त्रयो भङ्गाः देवनैरयिकाणां च तिर्यग्गतिविषय एकैकभङ्गः, ते सर्वसङ्कलया अष्टौ अविरतसम्यग्दृष्टेर्न भवन्तीति शेषा विंशतिरेव भवन्तीति । देशविरते द्वादश भङ्गाः, यतो देशविरति-

देवानां नारकाणां च न संभवतीति तदाश्रिता दश भङ्गा अपयान्ति। तिर्यङ्मनुष्या अपि देशविरता देवायुरेव बध्नन्ति, न नरकतिर्यङ्मनुष्यायूंषि, ततस्तिर्यङ्मनुष्याणामायुर्बन्धकालीनास्त्रयस्त्रयो भङ्गा न प्राप्यन्ते इति षडप्येतेऽपगच्छन्ति इत्यष्टाविंशतेः षोडशस्वपनीतेष्ववशिष्टा द्वादशैव भवन्ति। प्रमत्ताप्रमत्तयोर्य एव मनुष्ये नव भङ्गास्त एव परभवायुर्बन्धकालीननारकतिर्यङ्मनुष्यायुर्बन्धघटितभङ्गत्रयहीनाः षड् द्रष्टव्याः, प्रमत्ताप्रमत्ता हि देवायुरेवैकं बध्नन्ति न शेषं, बन्धोत्तरकालं चरणप्रतिपत्त्या सत्ता तु चतुर्णामप्यायुषां संभवत्येव। अपूर्वकरणानिवृत्तिबादरसूक्ष्मसम्परायोपशान्तमोहेषूपशमश्रेण्यां द्वौ भङ्गौ, तद्यथा—मनुष्यायुष उदयो मनुष्यायुषः सत्ता, एष भङ्गः परभवायुर्बन्धकालात्पूर्वं, यद्वा मनुष्यायुष उदयो देवमनुष्यायुषी सती, एष भङ्गः परभवायुर्बन्धोत्तरं पूर्वबद्धदेवायुष उपशमश्रेणिप्रतिपत्तिसंभवात्, क्षपकश्रेण्यां त्वेतेषां मनुष्यायुष उदयो मनुष्यायुषः सत्तेत्येष एक एव भङ्गः, पूर्वबद्धायुषां क्षपकश्रेण्यप्रतिपत्तेः। क्षीणमोहादिगुणस्थानत्रयेऽप्येष एवैको भङ्गो द्रष्टव्यः। उक्ता गुणस्थानेष्वायुषो भङ्गाः। अथ गोत्रस्योच्यन्ते—मिथ्यादृष्टौ गोत्रस्यादिमाः पञ्च भङ्गाः, तद्यथा—नीचैर्गोत्रस्य बन्धो नीचैर्गोत्रस्योदयो नीचैर्गोत्रं सत्, एष तेजोवायुषु तद्भवादुद्धृतेषु वा कियत्कालं। नीचैर्गोत्रस्य बन्धो नीचैर्गोत्रस्योदयो द्वे सती, यद्वा नीचैर्गोत्रस्य बन्ध उच्चैर्गोत्रस्योदयो द्वे सती, यद्वोच्चैर्गोत्रस्य बन्धो नीचैर्गोत्रस्योदयो द्वे सती, यद्वोच्चैर्गोत्रस्य बन्ध उच्चैर्गोत्रस्योदयो द्वे सती, एते चत्वारोऽपि यथायोगं मिथ्यादृशां संभवन्ति। एत एवादिमहीनाश्चत्वारः सासादने संभवन्ति, आद्यभङ्गस्थानेषु तेजोवायुषु सासादनभावो न लभ्यते, नापि तद्भवादुद्धृतेषु तदात्वे इति तत्प्रतिषेधः। मिश्रादारभ्य देशविरतिं यावदुच्चैर्गोत्रबन्धोपलक्षितौ प्रत्येकं द्वौ भङ्गौ भवतः। प्रमत्तसंयतादारभ्य सूक्ष्मसम्परायं यावन्नीचैर्गोत्रोदयाभावादुच्चैर्गोत्रस्य बन्ध उच्चैर्गोत्रस्योदयो द्वे सती इत्येक एव भङ्गः। अबन्धेऽयोगिद्विचरमसमयं यावदुच्चैर्गोत्रस्योदयो

द्वे सती इति षष्ठ एव, चरमसमये तूच्चैर्गोत्रस्योदय उच्चैर्गोत्रमेव च सदिति सप्तम एव भङ्गः। उक्ता गुणस्थानेषु गोत्रभङ्गाः, अथ मोहनीये गुणस्थानेष्वपि बन्धोदयसत्तास्थानान्युक्तान्येवेति न भूय उच्यन्ते।

सम्प्रत्युद्धरितं पदसमूहविषयं यद्वक्तव्यं तदुच्यते—तत्र पदसमूहो द्विविधः—अव्यक्तोदयसम्बन्धी गुणस्थानकोदयसम्बन्धी च। तत्राव्यक्तोदया गुणस्थानकविनिर्मुक्तसामान्योदयास्तत्सम्बन्धिपदसमूहपरिमाणं तावदुच्यते—तत्र दशकोदये एका चतुर्विंशतिः। नवोदये षट्—तिस्रो मिथ्यादृष्टौ, सासादनमिश्राविरतसम्यग्दृष्टिषु चैकैकेति। अष्टोदये एकादश—तिस्रो मिथ्यादृष्टौ, सासादनमिश्रयोर्द्वे द्वे, तिस्रोऽविरतसम्यग्दृष्टौ, देशविरते चैकेति। सप्तोदये दश—मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रेष्वेकैका, अविरतसम्यग्दृष्टिदेशविरतयोस्तिस्रस्तिस्रः, प्रमत्ताप्रमत्तयोर्मिलितयोः स्वरूपेण भेदाभावादेका चेति। षडुदये सप्त—एकाऽविरतसम्यग्दृष्टौ, देशविरते प्रमत्ताप्रमत्तयोश्च तिस्रस्तिस्र इति। अपूर्वकरणसत्कानि षट्कादीन्युदयस्थानानि तु प्रमत्ताप्रमत्तसत्केभ्यः स्वरूपभेदाभावात् पृथङ्न गण्यन्ते। पञ्चकोदये चतस्रः—एका देशविरते, तिस्रश्च प्रमत्ताप्रमत्तयोरिति। एका चतुष्कोदये, सा च प्रमत्ताप्रमत्तयोः। स्थापना—१-६-११-१०-७-४-१। एताश्चतुर्विंशतयस्तेन तेनोदयेन दशकादिना गुण्यन्ते। तथाहि—दशकोदये एका चतुर्विंशतिः, सा दशकेन गुण्यते, जाता दश। नवकोदये षट् चतुर्विंशतय इति षड् नवकेन गुण्यन्ते, जाताश्चतुःपञ्चाशत्। अष्टोदये एकादश चतुर्विंशतय इत्येकादश अष्टभिर्गुण्यन्ते, जाता अष्टाशीतिः। सप्तोदये दश चतुर्विंशतय इति दश सप्तकेन गुण्यन्ते, जाता सप्ततिः। षडुदये सप्त चतुर्विंशतय इति सप्त षड्भिर्गुण्यन्ते, जाता द्विचत्वारिंशत्। पञ्चोदये चतस्रश्चतुर्विंशतय इति चतस्रः पञ्चभिर्गुण्यन्ते, जाता विंशतिः। चतुरुदये एका चतुर्विंशतिरित्येका चतुर्भिर्गुण्यते, जाताश्चत्वारः। स्थापना—१०-५४-८८-७०-४२-२०-४। इत्थं गुणित्वा चतुर्विंशतय एकत्र मील्यन्ते,

जातं शतद्वयमष्टाशीतं २८८। तत एतच्चतुर्विंशत्या गुण्यते, जातानि द्वादशोत्तराण्येकोनसप्ततिशतानि ६९१२। तत्र द्विकोदयभङ्गा द्वादश, तेषां द्विकसंज्ञेनोदयेन गुणितानि पदानि चतुर्विंशतिः, एकोदयभङ्गाश्चत्वारः तेषां चैकोदयगुणितानि पदान्यपि चत्वार्येवेति सर्वसङ्ख्ययाऽष्टाविंशतिपदान्यधिकानि प्रक्षिप्यन्ते, ततो जातानि षष्टिहीनानि सप्त सहस्राणि ६९४०। यद्वा पञ्चकबन्धे चतुर्विंशतिपदानि, चतुष्कबन्धे चत्वारि, त्रिकबन्धे त्रीणि, द्विकबन्धे द्वे, एककबन्धे एकं, अबन्धेऽप्येकमिति बन्धकभेदेन सर्वसङ्ख्यया पञ्चत्रिंशत्पदानि; तानि पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जातानि त्रिपञ्चाशद्धीनानि सप्त सहस्राणि ६९४७। यद्वा मतान्तरेण चतुर्विधबन्धे द्वादश द्विकोदयभङ्गा लभ्यन्ते, पदानि च तत्र सर्वसङ्ख्यया चतुर्विंशतिः, तत्प्रक्षेपादेकोनसप्ततिशतान्येकसप्तत्यधिकानि भवन्ति ६९७१। एतदव्यक्तोदयपदसङ्ख्यायां मतत्रयं द्रष्टव्यं।

अथ गुणस्थानोदयपदसङ्ख्याऽभिधीयते—मिथ्यादृष्टावष्टषष्टिः पदध्रुवकाः चतुर्विंशतिगुणनयोग्यानि पदानीत्यर्थः, तथाहि—दशोदये एका चतुर्विंशतिः, तत एको दशकेन गुण्यते, जाता दश। नवोदये तिस्रश्चतुर्विंशतय इति त्रयो नवभिर्गुण्यन्ते, जाता सप्तविंशतिः। अष्टकोदये तिस्रश्चतुर्विंशतयस्ततस्त्रयोऽष्टभिर्गुण्यन्ते, जाता चतुर्विंशतिः। सप्तोदये एका चतुर्विंशतिस्तत एकः सप्तभिर्गुण्यते, जाताः सप्त। सर्वसङ्ख्यया मिथ्यादृष्टौ पदध्रुवका अष्टषष्टिः। एवं सासादने द्वात्रिंशत्। मिश्रे द्वात्रिंशत्। अविरतसम्यग्दृष्टौ षष्टिः। देशविरते द्विपञ्चाशत्। प्रमत्ते चतुश्चत्वारिंशत्। अप्रमत्ते चतुश्चत्वारिंशत्। अपूर्वकरणे विंशतिः। सर्वसङ्ख्यया त्रीणि शतानि द्विपञ्चाशदधिकानि पदध्रुवकाः। एते चतुर्विंशत्या गुण्यन्ते, जातानि चतुरशीतिशतान्यष्टचत्वारिंशदधिकानि। ततोऽनिवृत्तिबादरोदयपदानि प्रागुक्तान्यष्टाविंशतिसङ्ख्यानि प्रक्षिप्यन्ते, सूक्ष्मसम्परायगतं चैकमबन्धकपदं तत्सहिता पूर्णा पदसङ्ख्या भवति। सा च

त्रयोविंशत्यूनानि पञ्चाशीतिशतानि ८४७७। अथवा पञ्चविधबन्धके चतुर्विंशतिः पदानि, चतुष्कबन्धके चत्वारि, त्रिकबन्धे त्रीणि, द्विकबन्धे द्वे, एककबन्धे एकं, अबन्धके च सूक्ष्मसम्पराये एकमित्येवं बन्धभेदेन सर्वसङ्ख्यया पञ्चत्रिंशत्पदानि, तानि पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते, ततस्त्रयशीत्यधिकानि चतुरशीतिशतानि पदानां भवन्ति ८४८३। यद्वा चतुर्विधबन्धकस्य मतान्तरेण द्वादश द्विकोदयभङ्गाः प्राप्यन्ते, तेषां पदानि च चतुर्विंशतिः, ततस्तेषामप्यधिकानां क्षेपे सप्तोत्तराणि पञ्चाशीतिशतानि पदानां भवन्ति ॥

एवं योगोपयोगलेश्यादिभेदतोऽपि बहवो भेदा भवन्ति, तत्र योगानां बहुवक्तव्यत्वात्तान् विहाय प्रथमत उपयोगभेदतो भेदा भाव्यन्ते –इह मिथ्यादृष्टावष्टौ चतुर्विंशतयः, सासादने चतस्रः, मिश्रे चतस्रः, अविरतसम्यग्दृष्टेरष्टौ, देशविरतस्याष्टौ, प्रमत्तसंयतस्याष्टौ, अप्रमत्तसंयतस्याष्टौ, अपूर्वकरणस्य चतस्रः। तथा मिथ्यादृष्टौ सासादने सम्यग्मिथ्यादृष्टौ च प्रत्येकं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानचक्षुर्दर्शनरूपाः पञ्चोपयोगाः। अविरतसम्यग्दृष्टिदेशविरतयोर्मतिश्रुतावधिज्ञानचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनरूपाः प्रत्येकं षट्। प्रमत्तादीनां सूक्ष्मसम्परायान्तानां त एव षट् मनःपर्यवज्ञानसहिताः सप्त सप्त। तत्र मिथ्यादृष्ट्यादिषु चतुर्विंशतिगता अष्टादय उदयस्थानभङ्गा यथायोगमुपयोगैर्गुण्यन्ते, तद्यथा–मिथ्यादृष्टेरष्टौ, सासादने चत्वारः, मिश्रे चत्वारः, मिलिताः षोडश, पञ्चभिरुपयोगैर्गुण्यन्ते, अशीतिर्भवति ८०। अविरतसम्यग्दृष्टेरष्टौ, देशविरतस्याष्टौ, मिलिताः षोडश चतुर्विंशतिभङ्गाः, षड्भिरुपयोगैर्गुण्यन्ते षण्णवतिः स्यात् ९६। प्रमत्तस्याष्टावप्रमत्तस्याप्यष्टौ, अपूर्वकरणस्य चत्वारः, मिलिता विंशतिः, सप्तभिरुपयोगैर्गुण्यन्ते, चत्वारिंशं शतं स्यात् १४०। सर्वसङ्ख्यया त्रीणि शतानि षोडशोत्तराणि ३१६। एतानि चतुर्विंशत्या गुण्यन्ते, पञ्चसप्ततिशतानि चतुरशीत्यधिकानि स्युः ७५८४। ततो द्विकोदयभङ्गा द्वादश, एकोदयभङ्गाः पञ्च, मिलिताः सप्तदश, सप्तभिरुपयोगैर्गुण्यन्ते, जातमेकोनविंशं शतं ११९। तत् पूर्वराशौ प्रक्षिप्यते, ततः सप्तसप्ततिशतानि

त्युत्तराण्युदयभङ्गाः स्युः ७७०३ ॥ अथ पदसङ्ख्या समानीयते—तत्र मिथ्यादृष्टावष्टषष्टिः पदध्रुवकाः, सासादने द्वात्रिंशत्, मिश्रे द्वात्रिंशत्, अविरतसम्यग्दृष्टौ षष्टिः, देशविरते द्विपञ्चाशत्, प्रमत्ते चतुश्चत्वारिंशत्, अप्रमत्तेऽपि चतुश्चत्वारिंशत्, अपूर्वकरणे विंशतिः । एते पदध्रुवका यथायोगमुपयोगैर्गुण्यन्ते, तथाहि—मिथ्यादृष्टेरष्टषष्टिः, सासादने द्वात्रिंशत्, मिश्रे द्वात्रिंशत्, मिलिता द्वात्रिंशं शतं, तत्पञ्चभिरुपयोगैर्गुण्यते, षट्शती षष्ट्यधिका स्यात् ६६० । तथाऽविरतसम्यग्दृष्टेः षष्टिर्देशविरतस्य द्विपञ्चाशत्, मिलिता द्वादशोत्तरं शतं, तत् षड्भिरुपयोगैर्गुण्यते, षट्शती द्विसप्तत्यधिका स्यात् ६७२ । तथा प्रमत्तस्य चतुश्चत्वारिंशत्, अप्रमत्तस्य चतुश्चत्वारिंशत्, अपूर्वकरणस्य विंशतिः, सर्वसङ्ख्ययाऽष्टाधिकं शतं १०८, तत्सप्तभिरुपयोगैर्गुण्यते, सप्तशती षट्पञ्चाशदधिका स्यात् ७५६ । सर्वसङ्ख्यया विंशतिशतान्यष्टाशीत्यधिकानि २०८८ । एतानि चतुर्विंशत्या गुण्यन्ते, ततः पञ्चाशत्सहस्राणि द्वादशोत्तरशताधिकानि स्युः ५०११२ । ततो द्विकोदयपदानि चतुर्विंशतिः एकोदयपदानि पञ्च, सर्वमीलने एकोनत्रिंशत्, सा सप्तभिरुपयोगैर्गुण्यते, जाते त्युत्तरे द्वे शते, ते पूर्वराशौ प्रक्षिप्येते, ततो जातः पूर्वराशिः पञ्चाशत्सहस्राणि शतत्रयं च पञ्चदशोत्तरं ५०३१५ । एतावन्त्युपयोगगुणितान्युदयपदानि भवन्ति ॥

अथ लेश्यागुणिता उदयभङ्गा उदयपदानि च भाव्यन्ते—तत्र मिथ्यादृष्ट्यादिष्वविरतसम्यग्दृष्ट्यन्तेषु प्रत्येकं षड् लेश्याः, देशविरतप्रमत्ताप्रमत्तेषु तेजःपद्मशुक्ललेश्यास्तिस्रस्तिस्रः, कृष्णादिलेश्यासु देशविरत्यादिप्रतिपत्तेरभावात्, अपूर्वकरणादौ चैका शुक्ललेश्या । मिथ्यादृष्ट्यादिषु चाष्टचतुरादिकाश्चतुर्विंशतयो यथायोगं लेश्याभिर्गुण्यन्ते । तथाहि— मिथ्यादृष्टेरष्टौ, सासादनमिश्रयोश्चतस्रश्चतस्रः, अविरतसम्यग्दृष्टेरष्टौ, मिलिताश्चतुर्विंशतिः, सा षड्भिर्लेश्याभिर्गुण्यते, जातं चतुश्चत्वारिंशं शतं १४४ । तथा देशविरतप्रमत्ताप्रमत्तानां

प्रत्येकमष्टौ, मिलिताश्चतुर्विंशतिः, तस्यास्तिसृभिर्लेश्याभिर्गुणने द्विसप्ततिः ७२। अपूर्वकरणे चतस्रश्चतुर्विंशतयः, ता एकया लेश्यया गुणिताश्चतस्र एव ४। सर्वे मिलिता द्वे शते विंशत्यधिके २२०, ते चतुर्विंशत्या गुण्यन्ते, जातान्यशीत्यधिकानि द्विपञ्चाशच्छतानि ५२८०। ततो द्विकोदया द्वादश, एकोदयाः पञ्च, मिलिताः सप्तदश, ते पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते, ततः सप्तनवत्यधिकानि द्विपञ्चाशच्छतानि स्युः ५२९७, इयन्तो लेश्यागुणिता उदयभङ्गाः। उक्तं च—'तिगहीणा तेवन्ना सया उ उदयाण हुंति लेसाणं'॥ अथैतत्पदसङ्ख्या समानीयते—मिथ्यादृष्टौ पदध्रुवका अष्टषष्टिः, सासादने मिश्रे च द्वात्रिंशत्, अविरतसम्यग्दृष्टौ षष्टिः, सर्वसङ्ख्यया द्विनवत्यधिकं शतं। एते षड्भिर्लेश्याभिर्गुण्यन्ते, ततो द्विपञ्चाशदधिकान्येकादश शतानि स्युः ११५२। तथा देशविरते द्विपञ्चाशत्, प्रमत्तेऽप्रमत्ते च चतुश्चत्वारिंशत्, सर्वसङ्ख्यया चत्वारिंशं शतं जातं १४०, तच्च तिसृभिर्लेश्याभिर्गुण्यते, ततो जाता विंशत्यधिका चतुःशती ४२०। सर्वसङ्ख्यया जातानि द्विनवत्यधिकानि पञ्चदश शतानि, एतानि चतुर्विंशतिगतानीति चतुर्विंशत्या गुण्यन्ते, जातान्यष्टात्रिंशत्सहस्राणि द्वे शते चाष्टाधिके ३८२०८। ततो द्विकोदयैकोदयपदान्येकोनविंशत्यप्रक्षिप्यन्ते, ततो जातान्यष्टात्रिंशत्सहस्राणि शतद्वयं च सप्तत्रिंशदधिकं ३८२३७। उक्तं च—"अडतीससहस्साइं पयाण सय दो य सगतीसा"॥

अथ योगैः सह गुणनयोदयभङ्गा उदयपदानि च भाव्यन्ते—इह मिथ्यादृष्ट्यादिषु सूक्ष्मसम्परायान्तेषु द्विपञ्चाशच्चतुर्विंशतीनां (८, ४, ४, ८, ८, ८, ८, ४) द्वादशानां (१२) चानिवृत्तौ द्विकोदयभङ्गानां पञ्चानां (५) चैकोदयभङ्गानां मीलने द्वादश शतानि पञ्चषष्टिश्चोदयभङ्गा भवन्ति १२६५। तत्र वाग्योगचतुष्टयमनोयोगचतुष्टयौदारिककाययोगाः सर्वेष्वपि मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु संभवन्तीति प्रागुक्तभङ्गा नवभिर्गुण्यन्ते, जातान्येकादश सहस्राणि त्रीणि शतानि पञ्चाशीतिश्च ११३८५। तथा मिथ्या-

दृष्टेर्वैक्रियकाययोगेऽष्टापि चतुर्विंशतयः प्राप्यन्ते । वैक्रियमिश्रे औदारिकमिश्रे कार्मणकाययोगे च प्रत्येकं चतस्रश्चतस्रः, यतः सप्तोदय एका, अष्टोदये द्वे, नवोदये चैकेति चतस्रोऽनन्तानुबन्ध्युदयरहिता इह न प्राप्यन्ते, पूर्वं हि वेदकसम्यग्दृष्टिना सताऽनन्तानुबन्धिनो विसंयोज्य परिणामपरावृत्त्या मिथ्यात्वं गतेन भूयस्ते बध्नुमारभ्यन्ते, तस्यैव मिथ्यादृष्टेर्बन्धावलिकामात्रं कालं यावदनन्तानुबन्ध्युदयो न प्राप्यते, अनन्तानुबन्धिनश्च विसंयोज्य भूयोऽपि मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते, जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तावशेषायुष्क एवानन्तानुबन्ध्युदयरहितस्य मिथ्यादृष्टेः कालकरणप्रतिषेधात् , ततोऽपान्तरालगतौ वर्त्तमानस्य भवान्तरे वा प्रथमत एवोत्पन्नस्य मिथ्यादृष्टेः सतोऽनन्तानुबन्ध्युदयरहिता उदयविकल्पा न प्राप्यन्ते । अत्र च कार्मणकाययोगोऽपान्तरालगतौ औदारिकमिश्रवैक्रियमिश्रकाययोगौ च भवान्तरे उत्पद्यमानस्य, एतच्च बाहुल्यमाश्रित्योक्तं, अन्यथा तिर्यङ्मनुष्याणामपि मिथ्यादृशां वैक्रियकारिणां वैक्रियमिश्रमवाप्यत एव, परं चूर्णिकृता तन्नात्र विवक्षितं, ततः कार्मणकाययोगादौ प्रत्येकं चतस्रश्चतुर्विंशतयोऽनन्तानुबन्ध्युदयरहिता न प्राप्यन्ते । तथा सासादनस्य कार्मणकाययोगे वैक्रियकाययोगे औदारिकमिश्रकाययोगे च प्रत्येकं चतस्रश्चतुर्विंशतयः । सम्यङ्मिथ्यादृष्टेर्वैक्रियकाययोगे चतस्रः । अविरतसम्यग्दृष्टेर्वैक्रिय(काय)योगेऽष्टौ । देशविरतस्य वैक्रिये वैक्रियमिश्रे च प्रत्येकमष्टावष्टौ । प्रमत्तसंयतस्यापि वैक्रिये वैक्रियमिश्रे च प्रत्येकमष्टावष्टौ । अप्रमत्तसंयतस्त वैक्रियकाययोगेऽष्टौ । सर्वसङ्कलया चतुरशीतिश्चतुर्विंशतयः । एताश्चतुर्विंशत्या गुणिता द्वे सहस्रे षोडशोत्तरे भवन्ति, तानि पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते । तथा सासादनस्य वैक्रियमिश्रे वर्त्तमानस्य ये चत्वारोऽमी उदयस्थानविकल्पाः— सप्तोदय एकविधः, द्विविधोऽष्टोदये, एकविधश्च नवोदये इति, एषु नपुंसकवेदो न लभ्यते, वैक्रियमिश्रकाययोगिषु नपुंसकवेदिषु नारकेषु मध्ये सासादनस्योत्पादाभावात् । ये चाविरतसम्यग्दृष्टेर्वैक्रियमिश्रे कार्मणकाययोगे च प्रत्येकमष्टावष्टावुदयस्थानविकल्पास्तेषु

स्त्रीवेदो न लभ्यते, वैक्रियकाययोगिषु स्त्रीवेदिषु मध्येऽविरतसम्यग्दृष्टेरुत्पादाभावात् । एतच्च प्रायोवृत्त्योक्तम्, अन्यथा कदाचित् स्त्रीवेदिष्वपि मध्ये तदुत्पादो द्रष्टव्यः, उक्तं च सप्ततिकाचूर्णौ—'कयाइ होज्ज इत्थिवेयगेसु वित्ति,' ततश्चतुर्विंशत्यष्टकस्य द्विनवत्यधिकशतप्रमाणस्य १९२ त्रिभागश्चतुःषष्टिरूपः स्त्रीवेदोदयलभ्यः प्रत्येकं कार्मणकाययोगे च न संभवति, सर्वसङ्ख्ययाऽष्टाविंशत्यधिकं शतं १२८, तथाऽविरतिसम्यग्दृष्टेरौदारिकमिश्रकाययोगे वर्त्तमानस्य पुंवेद एवैको भवति, न स्त्रीवेदनपुंसकवेदौ, तिर्यग्मनुष्येषु स्त्रीवेदनपुंसकवेदिषु मध्येऽविरतसम्यग्दृष्टेरुत्पादाभावात् । एतच्च प्राचुर्यमधिकृत्योक्तं, तेन मल्लिस्वामिन्यादिभिर्न व्यभिचारः । तथा प्रमत्तसंयतस्याहारककाययोगे आहारकमिश्रे चाप्रमत्तस्याहारककाययोगे च ये प्रत्येकमुदयस्थानविकल्पा अष्टौ तेऽपि स्त्रीवेदरहिता द्रष्टव्याः । आहारकं हि चतुर्दशपूर्विणामेव स्यात्, स्त्रीणां च पूर्वाधिगमलब्ध्यभाव इति । एते च सर्वेऽप्युदयस्थानविकल्पाश्चतुश्चत्वारिंशत, एतेषु चोक्तप्रकारेण द्वौ द्वावेव वेदौ लब्धौ, ततः प्रत्येकं षोडश भङ्गाः, ततश्चतुश्चत्वारिंशत् षोडशभिर्गुणिताः सप्त शतानि चतुरुत्तराणि भवन्ति, तानि सर्वाणि पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते । तथाऽविरतसम्यग्दृष्टेरौदारिकमिश्रे येऽष्टोदयस्थानविकल्पास्ते पुंवेदसहिता एव प्राप्यन्ते, तिर्यङ्मनुष्येषु स्त्रीवेदनपुंसकवेदिषु मध्येऽविरतसम्यग्दृष्टेरनुत्पादात् । एतेषु चैकेन वेदेन प्रत्येकमष्टावेव लभ्यन्ते, ततोऽष्टावष्टभिर्गुणयित्वा पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते, ततो जातानि चतुर्दश सहस्राणि शतमेकं चैकोनसप्तत्यधिकं १४१६९. एतावन्तो मिथ्यादृष्ट्यादिषु सूक्ष्मसम्परायान्तेषु गुणस्थानेषूदयभङ्गा योगगुणिताः प्राप्यन्ते ॥ प्रतिगुणस्थानं पुनरेवं—मिथ्यादृष्टावुदयस्थानभङ्गा अष्टौ, ते चतुर्विंशत्या गुण्यन्ते, जातं द्विनवत्युत्तरं शतं । तत्र नव योगाः प्राग्वत् , दशमश्च वैक्रियकाययोग इत्येतैर्दशभिर्गुणने जातान्येकोनविंशतिशतानि विंशत्युत्तराणि । तथा वैक्रियमिश्रादियोगत्रये प्रत्येकं चतस्रश्चतुर्विंशतयश्चतुर्विंशत्या गुण्यन्ते, षण्णवतिर्भवति,

वैक्रियमिश्रादित्रयेण गुणने जाते द्वे शते अष्टाशीत्युत्तरे, तयोः पूर्वराशौ प्रक्षेपे द्वाविंशतिशतान्यष्टोत्तराणि स्युः २२०८। सासादने चत्वारो भङ्गाश्चतुर्विंशतिगुणिताः षण्णवतिः स्युः, ते द्वादशयोगैर्गुण्यन्ते, जातान्येकादश शतानि द्विपञ्चाशदुत्तराणि। सासादनस्य वैक्रियमिश्रस्थस्य चत्वारो भङ्गाः, तत्र नपुंसकवेदो न स्यात्, ततः प्रत्येकं षोडश भङ्गाः, तैश्चत्वारो गुणिता जाताश्चतुःषष्टिः, ते पूर्वराशौ क्षिप्यन्ते, जातानि द्वादश शतानि षोडशोत्तराणि। एवं मिश्रादिष्वपि पूर्वोक्तानुसारेणावगन्तव्यं॥ अथ पदसङ्ख्या योगगुणिता भाव्यते—तत्र मिथ्यादृष्टेरष्टषष्टिः पदध्रुवकाः, ते त्रयोदशभिर्योगैर्गुण्यन्ते, जातान्यष्टौ शतानि चतुरशीत्यधिकानि ८८४। सासादने द्वात्रिंशत् पदध्रुवकाः, तेऽपि त्रयोदशभिर्योगैर्गुण्यन्ते, जातानि षोडशाधिकानि चत्वारि शतानि ४१६। मिश्रे द्वात्रिंशत् पदध्रुवकाः, ते दशभिर्योगैर्गुण्यन्ते, जातानि विंशानि त्रीणि शतानि ३२०। अविरतसम्यग्दृष्टौ षष्टिः पदध्रुवकाः, ते त्रयोदशभिर्योगैर्गुण्यन्ते, जातानि सप्त शतान्यशीत्यधिकानि ७८०। देशविरते द्विपञ्चाशत्पदध्रुवकाः, ते चैकादशभिर्योगैर्गुण्यन्ते, जातानि पञ्च शतानि द्विसप्तत्यधिकानि ५७२। प्रमत्तसंयतेऽपि चतुश्चत्वारिंशत्पदध्रुवकाः, ते त्रयोदशभिर्योगैर्गुण्यन्ते, जातानि पञ्च शतानि द्विसप्तत्यधिकानि ५७२। अप्रमत्तसंयतेऽपि चतुश्चत्वारिंशत्पदध्रुवकाः, ते चैकादशभिर्योगैर्गुण्यन्ते, जातानि चत्वारि शतानि चतुरशीत्यधिकानि ४८४। अपूर्वकरणे विंशतिः पदध्रुवकाः, ते नवभिर्योगैर्गुण्यन्ते जातमशीतं शतं १८०। सर्वसङ्ख्यया द्विचत्वारिंशच्छतान्यष्टाधिकानि ४२०८। एतानि चतुर्विंशत्या गुण्यन्ते, जातं द्विनवत्यधिकनवशतोत्तरं लक्षं १००९९२। तथा द्विकोदयपदानि चतुर्विंशतिः, एकोदयपदानि च पञ्च, सर्वमीलने एकोनत्रिंशत्, ते नवभिर्योगैर्गुण्यन्ते, जातमेकषष्टयधिकं शतद्वयं, तच्च पूर्वराशौ क्षिप्यते, ततो जातमेकं लक्षं द्वादश च शतानि त्रिपञ्चाशदधिकानि १०१२५३। अस्माच्च राशेरसंभवीनि पदानि शोध्यन्ते,

तद्यथा—सप्तोदय एकः अष्टोदयौ द्वौ नवोदयश्चैक इत्येतेऽनन्तानुबन्ध्युदयरहिताः। तत्र सर्वसङ्ख्यया द्वात्रिंशत्पदध्रुवकाः, ते वैक्रियमिश्रादियोगत्रये न संभवन्ति, हेतुः प्रागेवोक्तः, ततो द्वात्रिंशत्त्रिभिर्गुणिता जाताः षण्णवतिः, ते चतुर्विंशत्या गुण्यन्ते, जातानि त्रयोविंशतिशतानि चतुरुत्तराणि २३०४। एतावन्ति पदानि मिथ्यादृष्टेरसंभवीनि। तथा सासादनस्य वैक्रियमिश्रकाययोगे वर्त्तमानस्य नपुंसकवेदोदयो न घटते, हेतुस्त्वुक्त एव, नपुंसकवेदेन चाष्टौ भङ्गा लभ्यन्ते, ते द्वात्रिंशता पदध्रुवकैर्गुण्यन्ते, जाते द्वे शते षट्पञ्चाशदधिके २५६। इयन्ति पदानि सासादने न संभवन्ति। तथाऽविरतसम्यग्दृष्टेः कार्मणकाययोगिनो वैक्रियमिश्रकाययोगिनो वा स्त्रीवेदोदयो नोपपद्यते, षष्टिश्च तत्र पदध्रुवकाः, स्त्रीवेदेन चाष्टौ भङ्गा लभ्यन्ते, ततः षष्टिरष्टभिर्गुणिताश्चत्वारि शतान्यशीत्यधिकानि भवन्ति। एतानि च प्रत्येकं कार्मणे वैक्रियमिश्रे च न संभवन्तीति नव शतानि षष्ट्यधिकानि भवन्ति ९६०। तथाऽविरतसम्यग्दृष्टेरौदारिकमिश्रकाययोगे वर्त्तमानस्य स्त्रीनपुंसकवेदौ न भवतः, ताभ्यां च षोडश भङ्गा लभ्यन्ते, ततः षष्टिः षोडशभिर्गुणिता जातानि नव शतानि षष्ट्यधिकानि। सर्वसङ्ख्ययाऽविरतसम्यग्दृष्टावसंभवीनि पदानि विंशान्येकोनविंशतिशतानि १९२०। तथा प्रमत्तसंयतस्याहारके आहारकमिश्रे च स्त्रीवेदो न लभ्यते, प्रमत्तसंयते च पदध्रुवकाश्चतुश्चत्वारिंशत् स्त्रीवेदेन चाष्टौ भङ्गा लभ्यन्ते, ततश्चतुश्चत्वारिंशदष्टगुणितास्त्रीणि शतानि द्विपञ्चाशदधिकानि स्युः, तानि चाहारकद्विकेन गुणितानि, सर्वसङ्ख्यया प्रमत्तसंयतस्यासंभवीनि पदानि सप्त शतानि चतुरुत्तराणि ७०४। अप्रमत्तसंयतस्याप्युक्तरीत्याऽऽहारककाययोगे त्रीणि शतानि द्विपञ्चाशदधिकानि ३५२ पदान्यसंभवीनि। सर्वसङ्ख्ययाऽसंभवीनि पदानि पञ्चपञ्चाशच्छतानि षट्त्रिंशदुत्तराणि ५५३६, एतानि पूर्वराशेः शोध्यन्ते, ततो भवन्ति पञ्चनवतिसहस्राणि सप्त शतानि च सप्तदशोत्तराणि ९५७१७। एतावन्ति योगगुणितानि पदानि मोहनीयस्य सकलगुणस्थानकेषु

भवन्ति । तदेवमुक्तो मोहनीयस्य प्रागनुक्तो विशेषः ॥

अथ नामकर्मणो विशेष उच्यते—तत्र नाम्नोऽव्यक्तबन्धोदयसत्तास्थानाभिधानप्रस्तावे गुणस्थानेषु गतिषु च बन्धोदयसत्तास्थानानि यद्यपि सामान्यतः कथितानि तथापि नाप्रपञ्चितज्ञैः सामान्यतः कथितान्यवगन्तुं शक्यन्ते इति तेषामवबोधाय तानि प्रपञ्चतः कथ्यन्ते—तत्र मिथ्यादृष्टौ नाम्नः षड् बन्धस्थानानि—त्रयोविंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशच्चेति । तत्रापर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यं बध्नतस्त्रयोविंशतिः, तस्यां च बध्यमानायां बादरसूक्ष्मप्रत्येकसाधारणैश्चत्वारो भङ्गाः । पर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यमपर्याप्तद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्यप्रायोग्यं च बध्नतः पञ्चविंशतिः । तत्र पर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यायां पञ्चविंशतौ बध्यमानायां भङ्गा विंशतिः । अपर्याप्तद्वीन्द्रियादिप्रायोग्यायां तु बध्यमानायां प्रत्येकमेकैको भङ्ग इति सर्वसङ्कलया पञ्चविंशतिः । पर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यं बध्नतः षड्विंशतिः, तस्यां च बध्यमानायां भङ्गाः षोडश । देवगतिप्रायोग्यं नरकगतिप्रायोग्यं च बध्नतोऽष्टाविंशतिः, तत्र देवगतिप्रायोग्यायामष्टाविंशतावष्टौ भङ्गाः, नरकगतिप्रायोग्यायां चैक इति सर्वसङ्कलया नव । पर्याप्तद्वित्रिचतुरिन्द्रियतिर्यङ्पञ्चेन्द्रियमनुष्यप्रायोग्यं बध्नत एकोनत्रिंशत् । तत्र पर्याप्तद्वित्रिचतुरिन्द्रियप्रायोग्यायामेकोनत्रिंशति बध्यमानायां प्रत्येकमष्टौ भङ्गाः । तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यायां षट्चत्वारिंशच्छतान्यष्टाधिकानि ४६०८ । मनुष्यगतिप्रायोग्यायामप्येतावन्त एव भङ्गाः । सर्वसङ्कलया चत्वारिंशदधिकानि द्विनवतिशतानि ९२४० । देवगतिप्रायोग्या त्वेकानत्रिंशत्तीर्थकरनामसहितेति मिथ्यादृष्टेर्न बन्धमायाति । पर्याप्तद्वित्रिचतुरिन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यं बध्नतस्त्रिंशत्, तत्र पर्याप्तद्वित्रिचतुरिन्द्रियप्रायोग्यायां त्रिंशति बध्यमानायां प्रत्येकमष्टौ भङ्गाः । तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यायां त्वष्टाधिकानि षट्चत्वारिंशच्छतानि ४६०८ । सर्वसङ्कलया द्वात्रिंशदुत्तराणि षट्चत्वारिंशच्छतानि ४६३२ ।

या च मनुष्यगतिप्रायोग्या जिननामसहिता त्रिंशत् या च देवगतिप्रायोग्याऽऽहारकद्विकसहिता ते उभे अपि मिथ्यादृष्टेर्न बन्धमायातः। तथा मिथ्यादृष्टेर्नवोदयस्थानानि, तद्यथा—एकविंशतिश्चतुर्विंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशत्। एतानि सर्वाण्यपि नानाजीवापेक्षया यथा प्रागुक्तानि तथाऽत्रापि वाच्यानि, केवलमाहारकसंयतानां वैक्रियसंयतानां केवलिनां च सम्बन्धीनि न वाच्यानि, तेषाममिथ्यादृष्टित्वात्, सर्वसङ्ख्यया मिथ्यादृष्टावुदयस्थानभङ्गाः सप्त सहस्राणि सप्त शतानि त्रिसप्तत्यधिकानि ७७७३।

तथा मिथ्यादृष्टेः षट् सत्तास्थानानि, तद्यथा—द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिः षडशीतिरशीतिरष्टसप्ततिश्च। तत्र द्विनवतिश्चतुर्गतिकानामपि मिथ्यादृष्टीनां, एकोननवतिः प्राग्बद्धनरकायुष्कस्य वेदकसम्यग्दृष्टेस्तीर्थकरनाम बध्ध्वा परिणामपरावृत्त्या मिथ्यात्वं गतस्य नरकेषु समुत्पद्यमानस्यान्तर्मुहूर्तं यावदुत्पत्तेरूर्ध्वमन्तर्मुहूर्त्तानन्तरं तु सोऽपि सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते, अष्टाशीतिश्चतुर्गतिकानामपि मिथ्यादृष्टीनां, षडशीतिरशीतिश्चैकेन्द्रियेषु यथायोगं देवगतिप्रायोग्ये नरकगतिप्रायोग्ये चोद्वलिते सति लभ्यते, एकेन्द्रियभवादुद्धृत्य विकलेन्द्रियेषु तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु मनुष्येषु वा समुत्पन्नानां सर्वपर्याप्तिभावादूर्ध्वमप्यन्तर्मुहूर्त्तं यावल्लभ्यते, अष्टसप्ततिस्तेजोवायूनां मनुष्यद्विके उद्वलितेऽवसेया, तद्भवादुद्धृत्योत्पन्नानामन्तर्मुहूर्त्तं यावत् परतो नियमेन मनुष्यद्विकबन्धसंभवात्। तदेवं सामान्येन मिथ्यादृष्टेर्बन्धोदयसत्तास्थानान्युक्तानि॥

अथ संवेध उच्यते—तत्र मिथ्यादृष्टेस्त्रयोविंशतिं बध्नतः प्रागुक्तानि नवाप्युदयस्थानानि ज्ञेयानि। नवरमेकविंशतिपञ्चविंशतिसप्तविंशत्यष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशद्रूपेषु षट्सूदयस्थानेषु देवनैरयिकाश्रिता भङ्गा न प्राप्यन्ते, तेषां त्रयोविंशत्यबन्धकत्वात् तस्या

अपर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यत्वात् । सत्तास्थानानि पञ्च—द्विनवतिरष्टाशीतिः षडशीतिरशीतिरष्टसप्ततिश्चेति । तत्रैकविंशतिचतुर्विंशतिपञ्चविंशतिषड्विंशत्युदयेषु पञ्च सत्तास्थानानि । नवरं पञ्चविंशत्युदये तेजोवायुकायिकानधिकृत्याष्टसप्ततिः प्राप्यते, षड्विंशत्युदये तेजोवायुकायिकान् तद्भवादुद्धृत्य विकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु वोत्पन्नानाश्रित्य प्राप्यते । सप्तविंशत्यष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशद्रूपेषूदयेषु अष्टसप्ततिवर्जानि चत्वारि। सर्वसङ्ख्यया त्रयोविंशतिबन्धके चत्वारिंशत्सत्तास्थानानि॥ एवं पञ्चविंशतिषड्विंशतिबन्धकानामपि वाच्यं । केवलमिह देवोऽप्यात्मीयेषु सर्वेष्वप्युदयस्थानेषु वर्त्तमानः पर्याप्तैकेन्द्रियप्रायोग्यां पञ्चविंशतिं च बध्नन् संग्राह्यः । नवरं पञ्चविंशतिबन्धे बादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरशुभाशुभदुर्भगानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिपदैरष्टौ भङ्गाः,न शेषाः,सूक्ष्मसाधारणपर्याप्तेषु देवस्यानुत्पादात्। सत्तास्थानभावना पञ्चविंशतिबन्धे षड्विंशतिबन्धे च प्राग्वत् । सर्वसङ्ख्यया चत्वारिंशत् प्रत्येकं सत्तास्थानानि। अष्टाविंशतिबन्धकस्य मिथ्यादृष्टेर्द्वे उदयस्थाने त्रिंशदेकत्रिंशच्चेति, तत्र त्रिंशत्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यानधिकृत्य, एकत्रिंशत्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियानेव । सत्तास्थानानि चत्वारि—द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिः षडशीतिश्च । तत्र त्रिंशदुदये चत्वार्यपि, तत्राप्येकोननवतिर्बद्धजिननाम्नो वेदकसम्यग्दृष्टेः परिणामपरावृत्त्या मिथ्यात्वं गतस्य नरकाभिमुखस्य तद्योग्यामष्टाविंशतिं बध्नतोऽवसेया । शेषाणि तु त्रीण्यविशेषेण तिर्यक्मनुष्याणां । एकत्रिंशदुदये एकोननवतिवर्जानि त्रीणि, एकोननवतिस्तु जिननामसहितेति तिर्यक्षु न संभवति । सर्वसङ्ख्याऽष्टाविंशतिबन्धे सत्तास्थानानि सप्त ॥ देवगतिप्रायोग्यवर्जां शेषामेकोनत्रिंशतं विकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यां मनुष्यगतिप्रायोग्यां च बध्नतो मिथ्यादृष्टेः सामान्येन नवापि प्राक्तनान्युदयस्थानानि, षट् च सत्तास्थानानि—द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिः षडशीतिरशीतिरष्टसप्ततिश्च । तत्रैकविंशत्युदये सर्वाण्यपीमानि प्राप्यन्ते, तत्राप्येकोननवतिर्बद्धतीर्थकरनामानं मिथ्यात्वगतं नैरयिकमधिकृत्य ज्ञेया,

द्विनवतिरष्टाशीतिश्च देवनैरयिकमनुजविकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियैकेन्द्रियानपेक्ष्य, षडशीतिश्च विकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुजैकेन्द्रियानधिकृत्य, अष्टसप्ततिरेकेन्द्रियविकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियानधिकृत्य । चतुर्विंशत्युदये एकोननवतिवर्जानि शेषाणि पञ्च सत्तास्थानानि, तानि चैकेन्द्रियानेवाधिकृत्य ज्ञेयानि, अन्यत्र चतुर्विंशत्युदयाभावात् । पञ्चविंशत्युदये षडपि सत्तास्थानानि यथैकविंशत्युदये भावितानि तथा भावनीयानि । षड्विंशत्युदये एकोननवतिवर्जानि पञ्च प्राग्वद्भाव्यानि, एकोननवतिश्च नरकेषूत्पित्सोः संभविनी, न च नैरयिकस्य षड्विंशत्युदय इति तद्वर्जनं । सप्तविंशत्युदयेऽष्टसप्ततिवर्जानि पञ्च, तत्रैकोननवतिः प्रागुक्तस्वरूपं नैरयिकमधिकृत्य, द्विनवतिरष्टाशीतिश्च देवनैरयिकमनुजविकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियानधिकृत्य, षडशीतिरशीतिश्चैकेन्द्रियविकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यानधिकृत्य, अष्टसप्ततिस्तु न संभवति, तेजोवायुवर्जानामातपोद्योतान्यतरसहितानां नारकादीनां वा सप्तविंशत्युदयस्य भावात् तेषां चाष्टसप्ततेर्मनुष्यद्विकबन्धावश्यकत्वेनासंभवात् । एतान्येव पञ्चाष्टाविंशत्युदयेऽपि द्रष्टव्यानि, तत्रैकोननवतिद्विनवत्यष्टाशीतिभावना प्राग्वदेव, षडशीतिरशीतिश्च विकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यानधिकृत्यावसेया । एवमेकोनत्रिंशदुदयेऽप्येतान्येव सत्तास्थानानि भावनीयानि । त्रिंशदुदये चत्वारि—द्विनवतिरष्टाशीतिः षडशीतिरशीतिश्चेति । एतानि विकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यानधिकृत्य ज्ञेयानि । एकत्रिंशदुदयेऽप्येतान्येव चत्वारि, तानि विकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियानधिकृत्य द्रष्टव्यानि । सर्वसङ्ग्रहया मिथ्यादृष्टेरेकोनत्रिंशतं बध्नतः पञ्चचत्वारिंशत्सत्तास्थानानि । देवगतिप्रायोग्या या त्वेकोनत्रिंशत्सा मिथ्यादृशा न बध्यते, हेतुस्तत्रोक्त एव ॥ तथा मनुष्यगतिदेवगतिप्रायोग्यवर्जां शेषां त्रिंशतं विकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यां बध्नतः सामान्येन प्रागुक्तानि नवोदयस्थानानि, पञ्च च सत्तास्थानानि एकोननवतिवर्जानि, एकोननवतिस्त्वेकोननवतिसत्कर्मणस्तिर्यग्गतिप्रायोग्यबन्धारम्भासंभवान्न संभवति, तानि च पञ्च सत्तास्थानान्येक-

विंशतिचतुर्विंशतिपञ्चविंशतिषड्विंशत्युदयेषु प्राग्वद्भावनीयानि। सप्तविंशत्यष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशद्रूपेषु पञ्चसूदयस्थानेष्वष्टसप्ततिवर्जानि चत्वारि चत्वारि सत्तास्थानानि। अष्टसप्ततिनिषेधहेतुश्च प्रागुक्त एव स्मर्त्तव्यः। सर्वसङ्कलया मिथ्यादृष्टेस्त्रिंशतं बध्नतश्चत्वारिंशत्सत्तास्थानानि। मनुजगतिदेवगतिप्रायोग्या च त्रिंशन्मिथ्यादृष्टेर्न बन्धमायाति, मनुजगतिप्रायोग्यायास्त्रिंशतो जिननाम्ना देवगतिप्रायोग्यायाश्चाहारकद्विकेन सहितत्वात्, जिननामाहारकद्विकयोश्च मिथ्यादृष्टेर्बन्धायोगात्। तदेवमुक्तो मिथ्यादृष्टेर्बन्धोदयसत्तासंवेधः॥

सम्प्रति सासादनस्य बन्धोदयसत्तास्थानान्युच्यन्ते—सासादनस्य त्रीणि बन्धस्थानानि—अष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशच्चेति। तत्राष्टाविंशतिर्द्विधा—देवगतिप्रायोग्या नरकगतिप्रायोग्या (च)। तत्र द्वितीया सासादनस्य बन्धानर्हा, आद्यायाश्च बन्धकास्तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया मनुष्याश्च। तस्यां च बध्यमानायामष्टौ भङ्गाः। एकोनत्रिंशतं तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यां मनुष्यप्रायोग्यां वा सासादना एकेन्द्रिया विकलेन्द्रिया मनुष्या देवा नैरयिकाश्च बध्नन्ति, न शेषाः, अत्र भङ्गाश्चतुःषष्टिशतानि, तथाहि—द्विविधामप्येकोनत्रिंशतं बध्नतः सासादना हुण्डं सेवार्त्तं च न बध्नन्ति, मिथ्यात्वोदयाभावात्। ततस्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यामेकोनत्रिंशतं बध्नतः पञ्चभिः संस्थानैः पञ्चभिः संहननैः शुभाशुभखगतिभ्यां स्थिरास्थिराभ्यां शुभाशुभाभ्यां सुभगदुर्भगाभ्यां सुस्वरदुःस्वराभ्यामादेयानादेयाभ्यां यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यां च भङ्गा द्वात्रिंशच्छतानि ३२००। इयन्त एवेत्थं मनुष्यगतिप्रायोग्यामपि बध्नतः ३२००। सर्वसङ्कलया चतुःषष्टिशतानि ६४००। त्रिंशतं च तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यामेव सोद्योतां सासादना एकेन्द्रिया विकलेन्द्रियास्तिर्यक्पञ्चेन्द्रिया मनुष्या देवा नैरयिका वा बध्नन्ति, न शेषाः, तां च बध्नतां भङ्गाः प्राग्वत् द्वात्रिंशच्छतानि ३२००। सर्वबन्धस्थानभङ्गा अष्टोत्तराणि

षण्णवतिशतानि ९६०८ ॥ सासादनस्योदयस्थानानि सप्त, तथाहि—एकविंशतिश्चतुर्विंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशच्च । तत्रैकविंशत्युदय एकेन्द्रियविकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यदेवानधिकृत्य, नरकेषु सासादनानुत्पत्तेस्तद्विषयैकविंशत्युदयालाभः । तत्रैकेन्द्रियाणां एकविंशत्युदये बादरपर्याप्तेन सह यशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिभ्यां द्वावेव भङ्गौ, न शेषाः, सूक्ष्मेष्वपर्याप्तेषु मध्ये सासादनस्यानुत्पादात् । अत एव विकलेन्द्रियाणां तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां मनुष्याणां च प्रत्येकमपर्याप्तेन सह य एकैको भङ्गः स इह न भवति, किं तु शेषा एव । ते च विकलेन्द्रियाणां प्रतिभेदं द्वौ द्वाविति षट्, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणामष्टौ, मनुष्याणामष्टौ, देवानामष्टौ, सर्वसङ्कलयैकविंशत्युदये द्वात्रिंशत् । चतुर्विंशत्युदय एकेन्द्रियेषूत्पन्नमात्रस्य, अत्रापि बादरपर्याप्तेन सह यशःकीर्त्ययशःकीर्तिभ्यां द्वावेव भङ्गौ संभवतः, न शेषाः, सूक्ष्मेषु साधारणेषु तेजोवायुषु च मध्ये सासादनस्यानुत्पादात् । पञ्चविंशत्युदयो देवेषूत्पन्नमात्रस्य, तत्राष्टौ भङ्गाः, ते च स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्तिपदैः प्रत्येयाः । षड्विंशत्युदयो विकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्येषु मध्ये उत्पन्नमात्रस्य, अत्राप्यपर्याप्तकसहित एकैको भङ्गोऽसंभवी, अपर्याप्तकमध्ये सासादनस्यानुत्पादात्, शेषास्तु सर्वेऽपि संभविनः, ते च विकलेन्द्रियाणां प्रत्येकं द्वाविति षट्, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां द्वे शते अष्टाशीत्यधिके २८८, मनुष्याणामपि ते एव २८८, सर्वसङ्कलयया षड्विंशत्युदये पञ्च शतानि व्यशीत्यधिकानि ५८२ । सप्तविंशत्युदयाष्टाविंशत्युदयौ उत्पद्यनन्तरमन्तर्मुहूर्त्तानन्तरभाविनावुत्पद्यनन्तरमुत्कर्षतः किञ्चिदूनषडावलिकामात्रकालभाविनि सासादने न घटेते । एकोनत्रिंशदुदयो देवनैरयिकाणां स्वस्थानगतानां प्रथमसम्यक्त्वात्प्रच्यवमानानामाप्यते, तत्र देवस्याष्टौ नैरयिकस्य चैक इति सर्वसङ्कलयया नव भङ्गाः । त्रिंशदुदयस्तिर्यङ्मनुष्याणां पर्याप्तानां प्रथमसम्यक्त्वात्प्रच्यवमानानां देवानां वोत्तरवैक्रियस्थानां सासादनानां, तत्र तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां मनुष्याणां च प्रत्येकं द्विपञ्चाशा-

न्येकादश शतानि ११५२, देवस्याष्टाविति सर्वसङ्ख्यया द्वादशाधिकानि त्रयोविंशतिशतानि भङ्गाः २३१२ । एकत्रिंशदुदयस्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्तानां प्रथमसम्यक्त्वात्प्रच्यवमानानां, अत्र भङ्गा एकादश शतानि द्विपञ्चाशदधिकानि ११५२, सर्वसङ्ख्यया सप्तनवत्यधिकानि चत्वारिंशच्छतानि सासादनस्योदयभङ्गाः ४०९७ । सत्तास्थाने द्वे—द्विनवतिरष्टाशीतिश्च, तत्र द्विनवतिराहारकचतुष्टयं बध्ध्वोपशमश्रेणिमारुह्य प्रतिपततः सासादनभावमुपगतस्य, न शेषस्य । अष्टाशीतिश्चतुर्गतिकानामपि सासादनानां ॥ अथ संवेध उच्यते—तत्राष्टाविंशतिं बध्नतः सासादनस्य द्वे उदयस्थाने—त्रिंशदेकत्रिंशच्च । अष्टाविंशतिर्हि सासादनस्य बन्धयोग्या देवगतिप्रायोग्या, न च करणापर्याप्तः सासादनो देवगतिप्रायोग्यां बध्नाति, ततः शेषा उदया नोपपद्यन्ते । तत्र मनुष्यमधिकृत्य त्रिंशदुदये द्वे अपि ९२–८८ सत्तास्थाने । तिर्यक्पञ्चेन्द्रियानधिकृत्याष्टाशीतिरेव, द्विनवतेरुपशमश्रेणीतः प्रतिपात एव लाभात्, तिरश्चां चोपशमश्रेण्यसंभवात् । एकत्रिंशदुदये त्वष्टाशीतिरेव, यतोऽसौ तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणामेव, न च तेषां द्विनवतिर्घटते । एकोनत्रिंशतं तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यप्रायोग्यां बध्नतः सप्ताप्युदयस्थानानि, तत्रैकेन्द्रियविकलेन्द्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यदेवनैरयिकाणां सासादनानां स्वस्वोदयस्थानेषु वर्त्तमानानामेकमेव सत्तास्थानमष्टाशीतिः । नवरं मनुष्यस्य त्रिंशदुदये वर्त्तमानस्योपशमश्रेणीतः प्रतिपततः सासादनस्य द्विनवतिः । एवं त्रिंशद्बन्धकस्यापि वाच्यं ॥

अथ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्बन्धोदयसत्तास्थानान्यभिधीयन्ते—तत्र सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्द्वे बन्धस्थाने अष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशच्च । तत्र तिर्यङ्मनुष्याणां सम्यङ्मिथ्यादृष्टीनां देवगतिप्रायोग्यमेव बन्धमायाति, ततस्तेषामष्टाविंशतिः, तत्र भङ्गा अष्टौ । एकोनत्रिंशन्मनुष्यगतिप्रायोग्यं बध्नतां देवनैरयिकाणां, तत्राप्यष्टौ भङ्गाः । ते चोभयत्रापि स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिपदैः, शेषास्तु

परावर्त्तमानाः प्रकृतयः शुभा एव सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां बन्धमायान्ति, ततः शेषभङ्गा न प्राप्यन्ते १६ ॥ त्रीण्युदयस्थानानि—एकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशच्च । तत्रैकोनत्रिंशति देवानधिकृत्याष्टौ, नैरयिकानधिकृत्य चैक इति सर्वसङ्ख्यया नव भङ्गाः । त्रिंशति तिर्यक्पञ्चेन्द्रियानधिकृत्य सर्वपर्याप्तिपर्याप्तयोग्यानि द्विपञ्चाशान्येकादश शतानि ११५२ । मनुष्यानधिकृत्यापि तावन्त्येव ११५२ भङ्गाः । सर्वसङ्ख्यया त्रयोविंशतिशतानि चतुरुत्तराणि २३०४ । एकत्रिंशदुदयस्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियानधिकृत्य, तत्र भङ्गा द्विपञ्चाशान्येकादश शतानि ११५२ । सर्वोदयस्थानभङ्गाश्चतुस्त्रिंशच्छतानि पञ्चषष्ट्यधिकानि ३४६५ । द्वे सत्तास्थाने—द्विनवतिरष्टाशीतिश्चेति ॥ अथ संवेध उच्यते—सम्यङ्मिथ्यादृष्टेरष्टाविंशतिबन्धकस्य द्वे उदयस्थाने त्रिंशदेकत्रिंशच्चेति । एकैकस्मिन्नुदयस्थाने द्वे द्वे सत्तास्थाने—द्विनवतिरष्टाशीतिश्च । एकोनत्रिंशद्बन्धकस्यैकोनत्रिंशदात्मकमेकमुदयस्थानं, अत्रापि ते एव द्वे सत्तास्थाने । तदेवमेकैकस्मिन्नुदयस्थाने द्वे द्वे सत्तास्थाने इति सर्वसङ्ख्यया षट् ॥

सम्प्रत्यविरतसम्यग्दृष्टेर्बन्धोदयसत्तास्थानानि वाच्यानि—तत्राविरतसम्यग्दृष्टेस्त्रीणि बन्धस्थानानि—अष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशच्च । तत्र तिर्यङ्मनुष्याणामविरतसम्यग्दृष्टीनां देवगतिप्रायोग्यं बध्नतामष्टाविंशतिः, अत्राष्टौ भङ्गाः, ते हि न शेषगतिप्रायोग्यं बध्नन्ति, तेन नरकगतिप्रायोग्याऽष्टाविंशतिर्न लभ्यते । मनुष्याणां देवगतिप्रायोग्यं जिननामसहितं बध्नतामेकोनत्रिंशत् , अत्राप्यष्टौ भङ्गाः । देवनैरयिकाणां मनुष्यगतिप्रायोग्यं बध्नतामेकोनत्रिंशत् , अत्रापि त एवाष्टौ भङ्गाः । तेषामेव मनुष्यगतिप्रायोग्यं जिननामसहितं बध्नतां त्रिंशत् , अत्रापि त एवाष्टौ भङ्गाः ॥ अष्टावुदयस्थानानि—एकविंशतिः पञ्चविंशत्यादीन्येकत्रिंशदन्तानि च । तत्रैकविंशत्युदयो नैरयिकतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यदेवानधिकृत्य क्षायिकसम्यग्दृष्टेः प्राग्बद्धायुष्कस्यैतेषु सर्वेष्वपादसंभवात् । अविर-

तसम्यग्दृष्टिरपर्याप्तेषु नोत्पद्यते, तेनापर्याप्तोदयवर्जाः शेषाः सर्वेऽपि भङ्गा ज्ञेयाः, ते च पञ्चविंशतिः, तत्र तिर्यक्पञ्चेन्द्रियान्मनुष्यान् देवांश्चाधिकृत्य प्रत्येकमष्टौ नैरयिकानधिकृत्य चैक इति। पञ्चविंशतिसप्तविंशत्युदयौ देवनैरयिकान् वैक्रियतिर्यङ्मनुष्यांश्चाधिकृत्यावसेयौ। तत्र नैरयिकः क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्वेदकसम्यग्दृष्टिर्वा, देवस्त्रिविधसम्यग्दृष्टिरपि। उक्तं च सप्ततिकाचूर्णौ—"पणवीससत्तावीसोदया देवनेरइए वेउव्वियतिरिमणुए य पडुच्च णेरइगा खइगवेयगसम्मद्दिट्ठी देवो तिविहसम्मद्दिट्ठी वि त्ति"। भङ्गा अत्र सर्वेऽप्यात्मीया द्रष्टव्याः। शतकबृहच्चूर्ण्यनुसारेण तु देवोऽपि द्विविधसम्यग्दृष्टिरेव ग्राह्यो भवति, तस्यापर्याप्तस्यौपशमिकसम्यक्त्वनिषेधात्। तथा च तत्रोक्तं—"जो उवसमसम्मद्दिट्ठी उवसमसेढीए कालं करेइ सो पढमसमए चेव सम्मत्तपुंजं उदयावलिआए छोढूणं सम्मत्तपोग्गले वेएइ, तेण न उवसमसम्मद्दिट्ठी अपज्जत्तगो लब्भइ त्ति"। तत्त्वमत्रत्यं केवलिगम्यं। षड्विंशत्युदयस्तिर्यङ्मनुष्याणां क्षायिकवेदकसम्यग्दृष्टीनां, औपशमिकसम्यग्दृष्टिश्च तिर्यङ्मनुष्येषु नोत्पद्यते इति त्रिविधदृष्टीनामिति नोक्तं, वेदकसम्यग्दृष्टिता च तिरश्चो द्वाविंशतिसत्कर्मणो ज्ञेया। अष्टाविंशत्येकोनत्रिंशदुदयौ नैरयिकतिर्यङ्मनुष्यदेवानां। त्रिंशदुदयस्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यदेवानां। एकत्रिंशदुदयस्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां। भङ्गाः स्वीयस्वीयाः सर्वेऽपि द्रष्टव्याः। चत्वारि सत्तास्थानानि त्रिनवतिर्द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिश्च। तत्र योऽप्रमत्तसंयतोऽपूर्वकरणो वा तीर्थकराहारकसहितामेकत्रिंशतं बध्ध्वा पाश्चदविरतसम्यग्दृष्टिर्देवो वा जातः तमधिकृत्य त्रिनवतिः। यस्त्वाहारकं बध्ध्वा परिणामपरावृत्त्या मिथ्यात्वं गत्वा चतसृणामन्यतमस्यां गतावुत्पन्नस्तस्य तत्र गतौ भूयोऽपि सम्यक्त्वं प्रतिपन्नस्य द्विनवतिः। देवमनुष्येषु मध्ये मिथ्यात्वमप्रतिपन्नस्यापि द्विनवतिः प्राप्यते। एकोननवतिर्देवनैरयिकमनुष्याणामविरतसम्यग्दृष्टीनां। ते हि त्रयोऽपि तीर्थकरनामार्जयन्ति, तिर्यक्षु तीर्थकरनामसत्कर्मा नोत्पद्यत इति तदग्रहणं। अष्टाशीतिश्चतु-

गतिकानामविरतसम्यग्दृष्टीनां । अथ संवेध उच्यते—तत्राविरतसम्यग्दृष्टेरष्टाविंशतिबन्धकस्याष्टावप्युदयस्थानानि, तानि तिर्यङ्मनुष्यानधिकृत्य । तत्रापि पञ्चविंशतिसप्तविंशत्युदयौ वैक्रियतिर्यङ्मनुष्यानधिकृत्य, एकैकस्मिन्नुदयस्थाने द्विनवत्यष्टाशीत्यात्मके द्वे द्वे सत्तास्थाने । एकोनत्रिंशद्द्विधा देवगतियोग्या नरगतियोग्या च। तत्र देवगतियोग्या जिननामसहिता, तां च मनुष्या एव बध्नन्ति। तेषामुदयस्थानानि सप्त, तद्यथा—एकविंशतिः पञ्चविंशत्यादीनि त्रिंशदन्तानि च, मनुष्याणामेकत्रिंशन्न संभवति । एकैकस्मिन्नुदयस्थाने त्रिनवत्येकोननवत्यात्मके द्वे द्वे सत्तास्थाने । मनुष्यगतिप्रायोग्यां चैकोनत्रिंशतं बध्नन्ति देवनैरयिकाः । तत्र नैरयिकाणामुदयस्थानानि पञ्च, तद्यथा—एकविंशतिः पञ्चविंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशच्च । देवानां पञ्च तावदेतान्येव, षष्ठं तु त्रिंशत्, सा चोद्योतवेदकानामवसेया । एकैकस्मिन् द्वे द्वे सत्तास्थाने द्विनवतिरष्टाशीतिश्च । मनुष्यगतिप्रायोग्यां त्रिंशतमविरतसम्यग्दृष्टयो देवा नैरयिकाश्च बध्नन्ति । तत्र देवानामुदयस्थानानि षट्, तानि चानन्तरोक्तान्येव, तेषु प्रत्येकं द्वे द्वे सत्तास्थाने त्रिनवतिरेकोननवतिश्च । नैरयिकाणामुदयस्थानानि पञ्च, तेषु प्रत्येकं सत्तास्थानमेकोननवतिरेवैकं, तीर्थकराहारकसत्कर्मणो नरकेष्वनुत्पादात् । तदेवं सामान्येनैकविंशत्यादिषु त्रिंशदन्तेषूदयस्थानेषु सत्तास्थानानि प्रत्येकं चत्वारि–९३–९२–८९–८८ । एकत्रिंशदुदये द्वे–९२–८८ इति, सर्वसङ्ख्यया त्रिंशत् ।

अथ देशविरतस्य बन्धादिस्थानान्युच्यन्ते–देशविरतस्य द्वे बन्धस्थाने अष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशच्च । तत्राष्टाविंशतिर्मनुष्यस्य तिर्यक्पञ्चेन्द्रियस्य वा देशविरतस्य देवगतिप्रायोग्यं बध्नतो वेदितव्या । तत्राष्टौ भङ्गाः । सैव तीर्थकरसहितकोनत्रिंशत्, सा च मनुष्यस्यैव, तिरश्चस्तीर्थकरनामकर्मबन्धाभावात्, अत्राप्यष्टौ भङ्गाः । षडुदयस्थानानि, तद्यथा—पञ्चविंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोन-

त्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशच्च । तत्राद्यानि चत्वारि वैक्रियतिर्यङ्मनुष्याणां, अत्रैकैक एव भङ्गः, सर्वपदानां प्रशस्तत्वात्। त्रिंशत्स्वभावस्थानामपि तिर्यङ्मनुष्याणां, अत्र भङ्गानां चतुश्चत्वारिंशं शतं १४४ । तच्च षड्भिः संस्थानैः षड्भिः संहननैः सुस्वरदुःस्वराभ्यां प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिभ्यां च जायते । दुर्भगानादेययशःकीर्त्तीनामुदयो गुणप्रत्ययादेव न भवतीती तदाश्रिता विकल्पा न प्राप्यन्ते । एकत्रिंशत्तिरश्चां, तत्रापि त एव भङ्गाः । चत्वारि सत्तास्थानानि—त्रिनवतिर्द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिश्च । तत्र योऽप्रमत्तोऽपूर्वकरणो वा तीर्थकराहारकनाम्नी बध्ध्वा परिणामहासेन देशविरतो जातस्तस्य त्रिनवतिः, शेषाणां भावनाऽविरतसम्यग्दृष्टेरिव कर्त्तव्या । सम्प्रति संवेध उच्यते—तत्र मनुष्यस्य देशविरतस्याष्टाविंशतिबन्धकस्य पञ्चोदयस्थानानि, तद्यथा—पञ्चविंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशत् । एतेषु प्रत्येकं द्वे द्वे सत्तास्थाने—द्विनवतिरष्टाशीतिश्च । एवं तिरश्चोऽपि, नवरं तस्यैकत्रिंशदुदयोऽपि वाच्यः, तत्रापि चैते एव द्वे सत्तास्थाने । एकोनत्रिंशद्बन्धो मनुष्यस्य देशविरतस्य, तस्योदयस्थानान्यनन्तरोक्तान्येव पञ्च, तेषु प्रत्येकं द्वे द्वे सत्तास्थाने—त्रिनवतिरेकोननवतिश्च । तदेवं देशविरतस्य पञ्चविंशत्यादिषु त्रिंशदन्तेषूदयेषु चत्वारि चत्वारि सत्तास्थानानि, एकत्रिंशदुदये च द्वे इति सर्वसङ्ख्यया द्वाविंशतिः ।

अथ प्रमत्तसंयतस्य बन्धादिस्थानान्यभिधेयानि—तत्र प्रमत्तसंयतस्य द्वे बन्धस्थाने—अष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशच्च, ते च देशविरतस्येव भावनीये । पञ्चोदयस्थानानि, तद्यथा—पञ्चविंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशत् । एतानि सर्वाण्यप्याहारकसंयतस्य वैक्रियसंयतस्य वा ज्ञातव्यानि । त्रिंशत्स्वभावस्थसंयतस्यापि । तत्र वैक्रियसंयतानामाहारकसंयतानां च पञ्चविंशतिसप्तविंशत्युदययोः प्रत्येकमेकैको भङ्गः, अष्टाविंशतावेकोनत्रिंशति च द्वौ द्वौ, त्रिंशति चैकः, सर्वसङ्ख्यया चतुर्दश । त्रिंशदुदयः स्वभावस्थस्यापीति,

तत्र चतुश्चत्वारिंशं शतं भङ्गानां १४४। तच्च देशविरतस्येव भावनीयं। सर्वसङ्कलनयाऽष्टपञ्चाशं शतं १५८। चत्वारि सत्तास्थानानि—त्रिनवतिर्द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिश्च। सम्प्रति संवेध उच्यते—अष्टाविंशतिबन्धकस्य पञ्चस्वप्युदयस्थानेषु प्रत्येकं द्विनवत्यष्टाशीत्यात्मके द्वे द्वे सत्तास्थाने। तत्राहारकसंयतस्य द्विनवतिरेव, आहारकसत्कर्मा ह्याहारकशरीरमुत्पादयतीति। वैक्रियसंयतस्य तु द्वे अपि, तीर्थकरनामसत्कर्मा चाष्टाविंशतिं न बध्नातीति त्रिनवतिरेकोननवतिश्च न प्राप्यते। एकोनत्रिंशद्बन्धकस्य पञ्चस्वप्युदयस्थानेषु प्रत्येकं द्वे द्वे सत्तास्थाने—त्रिनवतिरेकोननवतिश्च। तत्राहारकसंयतस्य त्रिनवतिरेव, तस्यैकोनत्रिंशद्बन्धकस्य नियमतस्तीर्थकराहारकसद्भावात्, वैक्रियसंतस्य तु द्वे अपि। तदेवं प्रमत्तसंयतस्य सर्वेष्वप्युदयस्थानेषु प्रत्येकं चत्वारि चत्वारि सत्तास्थानानि प्राप्यन्ते इति सर्वसङ्कलनया विंशतिः ॥

अधुनाऽप्रमत्तसंयतस्य बन्धादीन्युच्यन्ते—अस्य चत्वारि बन्धस्थानानि—अष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशच्च। तत्राद्ये द्वे प्रमत्तस्येव भाव्ये। सैवाष्टाविंशतिराहारकद्विकसहिता त्रिंशत्, तीर्थकराहारकद्विकसहिता त्वेकत्रिंशत्। एतेषु चतुर्ष्वपि बन्धस्थानेषु भङ्ग एकैक एव वेदितव्यः, अस्थिराशुभायशःकीर्त्तीनामप्रमत्ते बन्धाभावात्। द्वे उदयस्थाने—एकोनत्रिंशत्त्रिंशच्च। तत्रैकोनत्रिंशत्तस्य प्राप्यते यो नाम पूर्वं संयतः सन्नाहारकं वैक्रियं वा निर्वर्त्त्य पश्चादप्रमत्तभावं याति। अत्र द्वौ भङ्गौ—एको वैक्रियस्यापर आहारकस्य। त्रिंशदुदयेऽपि प्राग्वद्द्वौ भङ्गौ। तथास्वभावस्थस्याप्यप्रमत्तसंयतस्य त्रिंशदुदयो भवति। अत्र भङ्गाश्चतुश्चत्वारिंशं शतं १४४। सर्वसङ्कलनयाऽष्टचत्वारिंशं शतं १४८। सत्तास्थानानि चत्वारि—त्रिनवतिर्द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिश्च। अथ संवेध उच्यते—अष्टाविंशतिबन्धकस्य द्वयोरप्युदयस्थानयोरेकैकं सत्कर्म—अष्टाशीतिः। एकोनत्रिंशद्बन्धकस्यापि द्वयोरप्युदयस्थानयोरेकैकं सत्तास्थानं—

त्रिनवतिः । यस्य हि तीर्थकरमाहारकं वा सत् स नियमात्तद्बध्नातीत्येकैकस्मिन् बन्धे एकैकमेव सत्तास्थानं । सर्वसङ्कलयाऽष्टौ ।

अथापूर्वकरणस्य बन्धादीन्युच्यन्ते—अस्य पञ्च बन्धस्थानानि अष्टाविंशत्यादीन्येकत्रिंशदन्तान्येका च । तत्राद्यानि चत्वार्यप्रमत्तसंयतवत् ज्ञेयानि, एका तु यशःकीर्त्तिः सा च देवगतिप्रायोग्यबन्धव्यवच्छेदे । एकमुदयस्थानं त्रिंशत् । अत्राद्यसंहननसंस्थानषट्कस्वरद्विकखगतिद्विकैर्भङ्गाश्चतुर्विंशतिः । अन्ये त्वाचार्या ब्रुवते—आद्यसंहननत्रयान्यतमसंहननयुक्ता अप्युपशमश्रेणिं प्रतिपद्यन्ते । तन्मतेन भङ्गा द्विसप्ततिः ७२ । एवमनिवृत्तिबादरसूक्ष्मसम्परायोपशान्तमोहेष्वपि द्रष्टव्यं । चत्वारि सत्तास्थानानि—त्रिनवतिर्द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिश्च । अथ संवेध उच्यते—अष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्रिंशदेकत्रिंशद्बन्धकानां त्रिंशदुदये सत्तास्थानानि यथाक्रममष्टाशीतिरेकोननवतिर्द्विनवतिस्त्रिनवतिश्च । एकविधबन्धकस्यापि त्रिंशदुदये चत्वार्यपि सत्तास्थानानि, अष्टाविंशत्यादि २८–२९–३०–३१ बन्धकानां प्रत्येकं देवगतिप्रायोग्यबन्धव्यवच्छेदे सत्येकविधबन्धकभावात्, अष्टाविंशत्यादिबन्धकानां च यथाक्रममष्टाशीत्यादिस्थानसद्भावात्, एकविधबन्धे चतुर्णामपि प्राप्तेः ।

अथानिवृत्तिबादरस्य बन्धादिस्थानान्युच्यन्ते—अस्यैकं यशःकीर्त्याख्यं बन्धस्थानं । एकत्रिंशदात्मकमुदयस्थानं । अष्टौ सत्तास्थानानि—त्रिनवतिर्द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिरशीतिरेकोनाशीतिः षट्सप्ततिः पञ्चसप्ततिश्च । तत्राद्यानि चत्वार्युपशमश्रेण्यां, क्षपकश्रेण्यामपि नामत्रयोदशकाक्षयपर्यन्तं क्षीणे च तस्मिन्नुपरितनानि चत्वार्येव भवन्ति । अत्र बन्धोदयस्थानभेदाभावात्संवेधाभावः । सूक्ष्मसम्परायस्य बन्धादिस्थानान्यनिवृत्तिबादरवज्ज्ञेयानि, अत ऊर्ध्वं बन्धाभावः । तत्रोपशान्तमोहे उदयस्थानं त्रिंशदात्मकमेकं, सत्तास्थानानि च त्रिनवत्यादीनि ९३–९२–८९–८८ चत्वारि । क्षीणकषायस्यैकमुदयस्थानं त्रिंशत् । अत्र भङ्गाश्चतुर्विंशतिरेव, आद्य-

संहनिन एव क्षपकश्रेण्यारंभसंभवात् । तत्रापि तीर्थकरनामसत्कर्मणः क्षीणमोहस्य सर्वं संस्थानादि प्रशस्तमेव । सत्तास्थानान्यशीत्यादीनि ८०–७९–७६–७५ चत्वारि । तत्रैकोनाशीतिः पञ्चसप्ततिश्चातीर्थकरसत्कर्मणो, अशीतिः षट्सप्ततिश्च तीर्थकरसत्कर्मणः ।

सयोगिकेवलिनः अष्टावुदयस्थानानि—विंशतिरेकविंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशच्च । एतानि सामान्यचिन्तायां सप्तपञ्चं विवृतानीति न भूयो विव्रियन्ते । चत्वारि सत्तास्थानानि—अशीतिः षट्सप्ततिरेकोनाशीतिः पञ्चसप्ततिः । अथ संवेधो वाच्यः, स च प्राग्वज्ज्ञेयः । अयोगिकेवलिनो द्वे उदयस्थाने—नवाष्टौ च । तत्राष्टोदयोऽतीर्थकृदयोगिनः, नवोदयश्च तीर्थकृदयोगिनः । षट् सत्तास्थानानि—अशीतिरेकोनाशीतिः षट्सप्ततिः पञ्चसप्ततिर्नवाष्टौ च । तत्राष्टोदये त्रीणि सत्तास्थानानि—एकोनाशीतिः पञ्चसप्ततिरष्टौ च । तत्राद्ये द्वे द्विचरमसमयं यावल्लभ्येते, चरमसमयेऽष्टौ । नवोदये त्रीणि सत्तास्थानानि—अशीतिः षट्सप्ततिर्नव च । तत्राद्ये द्विचरमसमयं यावत्, चरमसमये नव । तदेवं गुणस्थानेषु नाम्नो बन्धोदयसत्तास्थानानि प्रपञ्चितानि ॥

अथ गतिषु प्रपञ्च्यते—तत्र नैरयिकाणां द्वे बन्धस्थाने–एकोनत्रिंशत्त्रिंशच्च । तत्रैकोनत्रिंशन्मनुष्यगतिप्रायोग्या तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्या वा, त्रिंशत्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्या सोद्योता, मनुष्यगतिप्रायोग्या तु जिननामसहिता । भङ्गाश्च प्रागुक्ताः सर्वेऽपि द्रष्टव्याः । उदयस्थानानि पञ्च—एकविंशतिः पञ्चविंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत् । एतानि सप्तभेदानि प्राग्वद्वाच्यानि । त्रीणि सत्तास्थानानि—द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिश्च । एकोननवतिर्बद्धजिननाम्नो मिथ्यात्वगतस्य नरकाभिमुखस्यावसेया । त्रिनवतिस्तु न संभवति, जिनाहारकसत्कर्मणो नरकेष्वनुत्पादात् । अथ संवेध उच्यते—नैरयिकस्य तिर्यग्गतिप्रायोग्यामेकोनत्रिंशतं बध्नतः

पञ्चोदयस्थानानि, तानि चानन्तरमेवोक्तानि । तेषु प्रत्येकं द्वे सत्तास्थाने—द्विनवतिरष्टाशीतिश्च । तीर्थकरसत्कर्मणस्तिर्यग्गतिप्रायोग्यबन्धासंभवादेकोननवतिर्न लभ्यते । मनुष्यगतिप्रायोग्यामेकोनत्रिंशतं बध्नतः पञ्चस्वप्युदयस्थानेषु त्रीण्यपि ९२-८९-८८ सत्तास्थानानि भवन्ति । जिननामसत्कर्मा नरकेषूत्पन्नो यावन्मिथ्यादृष्टिस्तावदेकोनत्रिंशतं, सम्यक्त्वं तु प्रतिपन्नस्त्रिंशतं बध्नाति, जिननाम्नोऽपि बन्धात् । तिर्यग्गतिप्रायोग्यां सोद्योतां त्रिंशं बध्नतः पञ्चस्वप्युदयस्थानेषु प्रत्येकं द्वे सत्तास्थाने—द्विनवतिरष्टाशीतिश्च । एकोननवत्यभावभावना प्राग्वत् । मनुष्यगतिप्रायोग्यां जिननामसहितां बध्नतः पञ्चस्वप्युदयस्थानेषु प्रत्येकमेकं सत्तास्थानं एकोननवतिः । सर्वबन्धोदयस्थानापेक्षया सत्तास्थानानि त्रिंशत् ।

अथ तिरश्चां बन्धादिस्थानान्युच्यन्ते—तत्र तिरश्चां षट् बन्धस्थानानि—त्रयोविंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशच्च । एतानि प्राग्वत्सभेदानि वाच्यानि । केवलमेकोनत्रिंशत्त्रिंशच्च तीर्थकराहारकद्विकसहिता न वाच्या, तिरश्चां तद्बन्धासंभवात् । नवोदयस्थानानि--एकविंशतिश्चतुर्विंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशच्च । एतान्येकेन्द्रियविकलेन्द्रियसवैक्रियतिर्यक्पञ्चेन्द्रियानधिकृत्य सभेदानि प्राग्वद्वाच्यानि । पञ्च सत्तास्थानानि, तद्यथा--द्विनवतिरष्टाशीतिः षडशीतिरशीतिरष्टसप्ततिश्च । तीर्थकरसम्बन्धीनि क्षपकसम्बन्धीनि च सत्तास्थानानि न संभवन्ति, तीर्थकरनाम्नः क्षपकश्रेण्याश्च तिर्यक्ष्वभावात् । सम्प्रति संवेध उच्यते--त्रयोविंशतिबन्धकस्य तिरश्च एकविंशत्यादीनि नवोदयस्थानानि, तानि चानन्तरमेवोक्तानि । तत्राद्येषु चतुर्षु २१-२४-२५-२६ प्रत्येकं पञ्च सत्तास्थानानि--नवतिरष्टाशीतिः षडशीतिरशीतिरष्टसप्ततिश्चेति । इहाष्टसप्ततिस्तेजोवायूंस्तद्भवादुद्धृत्तान् वाऽधिकृत्य ज्ञेया। शेषेषु तु सप्तविंशत्यादिषु पञ्चसूदयस्थानेष्वष्टसप्ततिवर्जानि चत्वारि चत्वारि सत्ता-

स्थानानि, सप्तविंशत्याद्युदयेषु हि नियमेन मनुष्यद्विकसंभवात् अष्टसप्ततिर्नावाप्यते । एवं पञ्चविंशतिषड्विंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशद्बन्धकानामपि वाच्यं, नवरमेकोनत्रिंशतं मनुष्यगतिप्रायोग्यां बध्नतः सर्वेष्वप्युदयस्थानेष्वष्टसप्ततिवर्जानि चत्वारि चत्वारि सत्तास्थानानि । अष्टाविंशतिबन्धकस्याष्टावुदयस्थानानि, तद्यथा—एकविंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशच्च। तत्रैकविंशतिषड्विंशत्यष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशदूदयाः पञ्चोदयाःक्षायिकसम्यग्दृष्टीनां वेदकसम्यग्दृष्टीनां वा द्वाविंशतिसत्कर्मणां पूर्वबद्धायुषामवगन्तव्याः। एकैकस्मिंश्च द्वे द्वे सत्तास्थाने द्विनवतिरष्टाशीतिश्च ति। पञ्चविंशतिसप्तविंशत्युदयौ वैक्रियतिरश्चां ज्ञेयौ, तत्रापि ते एव द्वे द्वे सत्तास्थाने । त्रिंशदेकत्रिंशदुदयौ सर्वपर्याप्तिपर्याप्तानां सम्यग्दृष्टीनां मिथ्यादृष्टीनां वाऽवसेयौ । एकैकस्मिंश्च त्रीणि त्रीणि सत्तास्थानानि—द्विनवतिरष्टाशीतिः षडशीतिश्च । षडशीतिर्मिथ्यादृष्टीनां ज्ञेया, सम्यग्दृष्टीनामसंभवात्, तेषामवश्यं देवद्विकादिबन्धभावात् । तदेवं सर्वबन्धोदयस्थानापेक्षया सत्तास्थानानां द्व शते अष्टादशाधिके २१८ । तथाहि—त्रयोविंशतिपञ्चविंशतिषड्विंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशद्बन्धेषु चत्वारिंशत्सत्तास्थानानि, अष्टाविंशतिबन्धे चाष्टादश ।

अथ मनुष्यगतौ बन्धादिस्थानान्युच्यन्ते—मनुष्याणामष्टौ बन्धस्थानानि—त्रयोविंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशदेका च । सर्वाण्यप्येतानि प्राग्वत्सभेदानि वाच्यानि, मनुष्याणां चतुर्गतिकप्रायोग्यबन्धसंभवात् । एकादशोदयस्थानानि—विंशतिरेकविंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशन्नवाष्टौ च । एतानि च स्वभावस्थमनुष्यवैक्रियमनुष्याहारकसंयततीर्थकरातीर्थकरसयोग्ययोगिकेवलिनोऽधिकृत्य प्राग्वद्भावनीयानि । एकादश सत्तास्थानानि—त्रिनवतिर्द्विनवतिरेकोनवतिरष्टाशीतिः षडशीतिरशीतिरेकोनाशीतिः षट्सप्ततिः पञ्चसप्ततिर्नवाष्टौ च । अष्टसप्ततिस्तु न संभवति,

मनुष्याणामवश्यं मनुष्यद्विकसंभवात् । अथ संवेध उच्यते—तत्र मनुष्यस्य त्रयोविंशतिबन्धकस्य सप्तोदयस्थानानि—एकविंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशत् (च) , शेषाः केवल्युदया इति न घटन्ते। पञ्चविंशतिसप्तविंशत्युदयौ वैक्रियकारिणो वेदितव्यौ । एकैकस्मिंश्चत्वारि सत्तास्थानानि–द्विनवतिरष्टाशीतिः षडशीतिरशीतिश्च, नवरं पञ्चविंशत्युदये सप्तविंशत्युदये च द्वे द्वे सत्तास्थाने––द्विनवतिरष्टाशीतिश्च । शेषाणि तु सत्तास्थानानि तीर्थकरक्षपकश्रेणिकेवलिशेषगतिप्रायोग्यानीति न संभवन्ति, सर्वसङ्ख्यया चतुर्विंशतिः । एवं पञ्चविंशतिषड्विंशतिबन्धकानामपि वाच्यं । मनुजगतिप्रायोग्यां तिर्यग्गतिप्रायोग्यां चैकोनत्रिंशतं त्रिंशतं च बध्नतामप्येवमेव । अष्टाविंशतिबन्धकानां सप्तोदयाः––एकविंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत् त्रिंशत् (च)। तत्रैकविंशतिषड्विंशत्युदयावविरतसम्यग्दृष्टेः करणापर्याप्तस्य । पञ्चविंशतिसप्तविंशत्युदयौ वैक्रियसंयतस्याहारकसंयतस्य वा । अष्टाविंशत्येकोनत्रिंशतावविरतसम्यग्दृष्टीनां वैक्रियकारिणामाहारकसंयतानां च । त्रिंशत्सम्यग्दृष्टीनां मिथ्यादृष्टीनां । एकैकस्मिन् द्वे द्वे सत्तास्थाने––द्विनवतिरष्टाशीतिश्च, आहारकसंयतस्य द्विनवतिरेव । त्रिंशदुदये चत्वारि सत्तास्थानानि–द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिः षडशीतिश्च । तत्रैकोननवतिर्नरकगतिप्रायोग्यामष्टाविंशतिं बध्नतो मिथ्यादृष्टेरवसेया । सर्वसङ्ख्याऽष्टाविंशतिबन्धे षोडश सत्तास्थानानि । देवगतिप्रायोग्यामेकोनत्रिंशतं तीर्थकरसहितां बध्नतः सप्तोदयस्थानानि, तानि चाष्टाविंशतिबन्धकानामिव ज्ञेयानि । नवरमिह त्रिंशदुदयः सम्यग्दृष्टीनामेव वाच्यः । सर्वेष्वपि चोदयस्थानेषु द्वे द्वे सत्तास्थाने—त्रिनवतिरेकोननवतिश्च, तत्राहारकसंयतस्य त्रिनवतिरेव । सर्वसङ्ख्यया चतुर्दश । आहारकसहितां त्रिंशतं बध्नतो द्वे

उदयस्थाने—एकोनत्रिंशत्त्रिंशच्च । तत्र यो नामाहारकसंयतोऽन्तिमकालेऽप्रमत्तस्तं प्रतीत्यैकोनत्रिंशत्, (अन्यत्रैकोनत्रिंशति) आहारकबन्धहेतोर्विशिष्टसंयमस्याभावात् । द्वयोरप्युदयस्थानयोः प्रत्येकमेकं सत्तास्थानं द्विनवतिः । एकत्रिंशद्बन्धकस्यैकमुदयस्थानं त्रिंशत्, एकं सत्तास्थानं त्रिनवतिः । एकविधबन्धकस्यैकमुदयस्थानं त्रिंशत् । अष्टौ सत्तास्थानानि—त्रिनवतिर्द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिरशीतिरेकोनाशीतिः षट्सप्ततिः पञ्चसप्ततिश्च । सर्वबन्धोदयस्थानापेक्षया सत्तास्थानानि शतमेकोनषष्ट्यधिकं (१५९) । अबन्धे उदयसत्तास्थानयोर्मिथः संवेधः सामान्यसंवेधचिन्तायामिव ज्ञेयः ।

अथ देवानां बन्धादिस्थानानि वाच्यानि—तत्र तेषां चत्वारि बन्धस्थानानि—पञ्चविंशतिः षड्विंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशत् । तत्र पञ्चविंशतिः षड्विंशतिश्च पर्याप्तबादरप्रत्येकसहितामेकेन्द्रियप्रायोग्यां बध्नतो ज्ञेया । अत्र स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिभिरष्टौ भङ्गाः । षड्विंशतिरातपोद्योतान्यतरसहिता भवति, ततोऽत्र भङ्गाः षोडश । एकोनत्रिंशन्मनुष्यगतिप्रायोग्या तिर्यग्गतिप्रायोग्या च सभेदाऽवसेया । त्रिंशत्पुनस्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्या सोद्योताऽष्टोत्तरषट्चत्वारिंशच्छत (४६०८) सङ्ख्यभेदोपेता प्राग्वद्वाच्या । या तु मनुष्यगतिप्रायोग्या तीर्थकरनामसहिता तत्र स्थिरास्थिरशुभाशुभयशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिभिरष्टौ भङ्गाः । षडुदयस्थानानि—एकविंशतिः पञ्चविंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशत् । एतानि प्रागेव सप्तपञ्चमुक्तानीति न भूय उच्यन्ते । चत्वारि सत्तास्थानानि—त्रिनवतिर्द्विनवतिरेकोननवतिरष्टाशीतिः । शेषाणि तु कानिचिदेकेन्द्रियसम्बन्धीनि कानिचित्क्षपकसम्बन्धीनीति देवानां न संभवन्ति । अथ संवेध उच्यते—देवानां पञ्चविंशतिबन्धकानां षट्स्वप्युदयस्थानेषु प्रत्येकं द्वे सत्तास्थाने—द्विनवतिरष्टाशीतिश्च ।

१ आहारकमोक्षकाले । २ अप्रमत्तं विहाय ।

एवं षड्विंशत्येकोनत्रिंशद्बन्धकानामपि ज्ञेयं। सोद्योतां तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रायोग्यां त्रिंशतमपि बध्नतामेवमेव, तीर्थकरसहितां पुनस्त्रिंशतं मनुष्यगतिप्रायोग्यां बध्नतः षट्स्वप्युदयस्थानेषु प्रत्येकं द्वे सत्तास्थाने—त्रिनवतिरेकोननवतिश्च । सर्वसङ्कलया सत्तास्थानानि षष्टिरिति ।

अथेन्द्रियेषु विचार्यते—एकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु प्रत्येकं त्रयोविंशत्यादीन्यष्टाविंशतिहीनानि पञ्च पञ्च बन्धस्थानानि २३–२५–२६–२९–३० । तत्र देवगतिप्रायोग्यामेकोनत्रिंशतं त्रिंशतं च वर्जयित्वा शेषाणि सर्वाण्यपि सर्वगतिप्रायोग्यानि सप्रभेदानि वाच्यानि । पञ्चेन्द्रिये त्रयोविंशत्यादीन्यष्टौ बन्धस्थानानि २३-२५–२६–२८–२९–३०–३१–१ । एतानि सर्वाण्यपि सर्वगतिप्रायोग्यानि सप्रभेदानि वाच्यानि । उदयस्थानान्येकेन्द्रियाणामेकविंशतिश्चतुर्विंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिश्चेति पञ्च । एतानि च सप्रभेदानि प्राग्वद्वाच्यानि । विकलेन्द्रियाणां षट्, तद्यथा—एकविंशतिः षड्विंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशच्चेति । एतान्यपि यथाऽधस्तादुक्तानि तथैव वाच्यानि । पञ्चेन्द्रियाणामेकादश, तद्यथा—विंशतिरेकविंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिरष्टाविंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशन्नवाष्टौ च । एकेन्द्रियविकलेन्द्रियसम्बन्धीन्युदयस्थानानि मुक्त्वा शेषाणि सर्वाण्यपि पञ्चेन्द्रियाणां सप्रभेदानि वाच्यानि । सत्तास्थानान्येकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणां पञ्च, तद्यथा—द्विनवतिरष्टाशीतिः षडशीतिरशीतिरष्टसप्ततिश्च । पञ्चेन्द्रियाणां च द्वादशापि सत्तास्थानानि ।

अथ जीवस्थानेषु बन्धोदयसत्तास्थानानि प्रतिपाद्यन्ते—तत्र ज्ञानावरणान्तरायदर्शनावरणानां बन्धोदयसत्तास्थानेषु ये भङ्गा मिथ्यादृष्टौ भवन्ति त एव पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियवर्जेषु शेषेषु त्रयोदशसु जीवस्थानेषु ज्ञेयाः । तत्र ज्ञानावरणस्यान्तरायस्य च प्रत्येकं

पञ्चविधो बन्धः पञ्चविध उदयः, पञ्चविधा सत्ता। दर्शनावरणस्य नवविधो बन्धश्चतुर्विध उदयो नवविधा सत्ता, यद्वा नवविधो बन्धः पञ्चविध उदयो नवविधा सत्ता। संज्ञिपर्याप्ते तु ये गुणस्थानोक्ता भङ्गास्त एवान्यूनानतिरिक्ता वेदितव्याः। वेदनीयस्याद्येषु त्रयोदशसु जीवस्थानेष्वादिमाश्चत्वारो भङ्गाः, तद्यथा—असातस्य बन्धोऽसातस्योदयो द्वे सती, यद्वाऽसातस्यस्य बन्धः सातस्योदयो द्वे सती, यद्वा सातस्य बन्धोऽसातस्योदयो द्वे सती, यद्वा सातस्य बन्धः सातस्योदयो द्वे सती इति। गोत्रस्य त्रयो भङ्गाः, तद्यथा—नीचैर्गोत्रस्य बन्धो नीचैर्गोत्रस्योदयो नीचैर्गोत्रं सत्, एष विकल्पस्तेजोवायुकायिकेषु लभ्यते। तद्भवादुद्धृत्तेष्वपि कियत्कालं। नीचैर्गोत्रस्य बन्धः नीचैर्गोत्रस्योदयो द्वे सती, यद्वोच्चैर्गोत्रस्य बन्धो नीचैर्गोत्रस्योदयो द्वे सती। शेषास्तु भङ्गा न भवन्ति, तेषूच्चैर्गोत्रस्योदयाभावात्। आयुर्विचारे तिर्यगायुरुदये ये नव भङ्गास्ते सर्वेऽप्यसंज्ञिपर्याप्ते द्रष्टव्याः, तेषां सर्वेषामपि तस्मिन् संभवात्। एकेन्द्रियाणां विकलेन्द्रियाणां च पर्याप्तापर्याप्तानां त एव सुरनारकाश्रितभङ्गचतुष्टयरहिताः पञ्च भङ्गा द्रष्टव्याः, तेषां देवनारकायुर्बन्धाभावात्। असंज्ञिन्यपर्याप्ते तिरश्चि मनुष्ये चैत एव पञ्च पञ्च भङ्गा अन्यूनानतिरिक्ता द्रष्टव्याः। तथा मनसा पर्याप्तेऽष्टाविंशतिरप्यायुषो भङ्गा ज्ञेयाः। मनसाऽपर्याप्ते संज्ञिनि पञ्च मनुष्ये पञ्च तिरश्चीति सर्वसङ्कलया दश भङ्गाः, एते लब्ध्यपर्याप्तके। तथा देवनारकाणां करणापर्याप्तानामेकैको भङ्गः। सर्वसङ्कलयाऽपर्याप्ते संज्ञिनि द्वादश। मोहनीयस्य बन्धोदयसत्तास्थानानि संज्ञिनः पर्याप्तस्य सर्वाण्यपि सप्रभेदानि यथाऽधस्तादुक्तानि तथा वाच्यानि। बादरैकेन्द्रियविकलेन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेष्वादिमौ द्वौ बन्धौ—द्वाविंशतिरेकविंशतिश्च। इमौ च यथाऽधस्तादुक्तौ तथा ज्ञेयौ। नवरमेकविंशतिः करणापर्याप्तावस्थायां द्रष्टव्या। पर्याप्तापर्याप्तसूक्ष्माप-

१ असंज्ञिनि मनुष्ये मनुष्यायुष्योदयसहिता पञ्च ज्ञातव्याः।

र्याप्तबादरद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिरूपेष्वष्टसु जीवस्थानेषु द्वाविंशतिरेवैको बन्धः। स च सप्तभेदः प्राग्वद्वाच्यः। एतेष्वेवाष्टसु त्रीण्युदयस्थानानि भवन्ति, तद्यथा—अष्ट नव दश चेति। यस्तु सप्तकमुदयस्थानमनन्तानुबन्ध्युदयरहितं तन्न प्राप्यते, तेषामवश्यमनन्तानुबन्ध्युदयसहितत्वात्। वेदश्च तेषामुदयागतो नपुंसकवेद एव, न स्त्रीनृवेदौ। ततोऽष्टोदयेऽष्टौ भङ्गाः, नवोदये षोडश, दशोदयेऽष्टौ, सर्वसङ्कलया प्रत्येकं द्वात्रिंशद्भङ्गाः। एतान्येव त्रीणि सप्तकयुतानि पर्याप्तबादरैकेन्द्रियविकलेन्द्रियासंज्ञिरूपेषु पञ्चसु चत्वार्युदयस्थानानि ७–८–९–१०। तत्र सासादने सप्ताष्टौ नव चेति त्रीणि। मिथ्यादृष्टावष्टादीनि त्रीणि। वेदश्चैतेषामुदयप्राप्तो नपुंसकवेद एव। ततश्चतुर्विंशतिस्थाने भङ्गानामष्टकं द्रष्टव्यं, तेन सासादने मिथ्यादृष्टौ च प्रत्येकं द्वात्रिंशद्भङ्गाः। एतेषु पञ्चकाष्टकरूपेषु त्रयोदशसु जीवस्थानेषु त्रीणि त्रीणि सत्तास्थानि—अष्टाविंशतिः सप्तविंशतिः षड्विंशतिश्च। तत्रापि बादरैकेन्द्रियादिषु पञ्चसु सासादनभावापन्नेषु अष्टाविंशतिरेवैकं सत्तास्थानं। संज्ञिनि तु करणापर्याप्ते कस्मिंश्चित्सप्तदशबन्धोऽपि षडादीनि च चत्वार्युदयस्थानानि चतुर्विंशत्येकविंशतिरूपाण्यपि च सत्तास्थानानि ज्ञेयानि। नामकर्मणः संज्ञिनि पर्याप्तेऽष्टावपि बन्धस्थानानि, तानि च प्राग्वद्वाच्यानि। असंज्ञिनि पर्याप्ते आदिमानि षड् बन्धस्थानानि २३–२५–२६–२८–२९–३०। असंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्तानां हि नरकगतिदेवगतिप्रायोग्यबन्धोऽपि भवतीत्यष्टाविंशतिरपि बन्धस्थानं लभ्यते। तान्येवाष्टाविंशतिहीनानि २३–२५–२६ २९–३० पञ्च पर्याप्तापर्याप्तविकलेन्द्रियबादरसूक्ष्मैकेन्द्रियेषु भवन्ति। असंज्ञिसंज्ञिनोरपि लब्ध्यपर्याप्तयोरेतान्येव पञ्च बन्धस्थानानि, अपर्याप्तानां सर्वेषां तिर्यङ्मनुष्यप्रायोग्यस्यैव बन्धात्। तानि च पञ्च बन्धस्थानानि तिर्यङ्मनुष्यप्रायोग्याणि यथाऽधस्तादुक्तानि तथा भाव्यानि। सूक्ष्मबादरैकेन्द्रिययोरेकविंशतिश्चतुर्विंशतिश्चेति द्वावुदयौ। तत्र सूक्ष्मापर्याप्तस्यैकविंशतिरियं—तिर्यग्द्विकं तैजस-

कार्मणे अगुरुलघु वर्णचतुष्टयं एकेन्द्रियजातिः स्थावरसूक्ष्मापर्याप्तानि स्थिरास्थिरे शुभाशुभे दुर्भगमनादेयमयशःकीर्त्तिनिर्माणमिति । एषा चापान्तरालगतिस्थस्याप्यते । अत्र चैक एव भङ्गः, अपर्याप्तस्य परावर्त्तमानशुभप्रकृतीनामनुदयात् । बादरपर्याप्तस्याप्येषैवैकविंशतिः, नवरं सूक्ष्मस्थाने बादरं वाच्यं, तत्राप्येक एव भङ्गः । उभयोरपि तस्यामेकविंशतौ औदारिकशरीरहुण्डोपघातप्रत्येकसाधारणैकतररूपप्रकृतिचतुष्टयप्रक्षेपे तिर्यगानुपूर्व्याश्चापनयने चतुर्विंशतिः । अत्र प्रत्येकसाधारणाभ्यां सूक्ष्मापर्याप्तस्य बादरापर्याप्तस्य च प्रत्येकं द्वौ भङ्गौ । विकलेन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञिनां चापर्याप्तानामिमे द्वे उदयस्थाने—एकविंशतिः षड्विंशतिश्च । तत्रैकविंशतिरपर्याप्तद्वीन्द्रियाणामियं—तैजसं कार्मणमगुरुलघु स्थिरास्थिरे शुभाशुभे वर्णादिचतुष्टयं निर्माणं तिर्यग्द्विकं द्वीन्द्रियजातिस्त्रसबादरपर्याप्तानि दुर्भगानादेययशःकीर्त्तय इति । एता चैकविंशतिरन्तरालगतिस्थानां ज्ञेया । इयं च सर्वाऽप्रशस्तपदेत्येक एव भङ्गः । ततः शरीरस्थस्यौदारिकद्विकहुण्डसेवार्त्तोपघातप्रत्येकलक्षणप्रकृतिषट्कप्रक्षेपे तिर्यगानुपूर्व्याश्चापनयने षड्विंशतिः । अत्राप्येक एव भङ्गः । एवं त्रीन्द्रियादीनामपि वाच्यं । तदेवमपर्याप्तद्वीन्द्रियादीनामुदयस्थानाश्रितौ द्वौ द्वौ भङ्गौ, केवलमपर्याप्तसंज्ञिनश्चत्वारः, यतो द्वावपर्याप्तसंज्ञिनस्तिरश्चो द्वौ च मनुष्यस्येति । तथा पर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियाणां चत्वार्युदयस्थानानि—एकविंशतिश्चतुर्विंशतिः पञ्चविंशतिः षड्विंशतिश्च । तत्रैकविंशतिरियं—तैजसं कार्मणमगुरुलघु स्थिरास्थिरे शुभाशुभे वर्णादिचतुष्टयं निर्माणं तिर्यग्द्विकं एकेन्द्रियजातिः स्थावरसूक्ष्मपर्याप्तदुर्भगानादेययशःकीर्त्तय इति । एषा चैकविंशतिः सूक्ष्मपर्याप्तस्यापान्तरालस्थस्य, अत्रैको भङ्गः, प्रतिपक्षपदविकल्पाभावात् । अस्यां हुण्डोपघातौदारिकशरीरप्रत्येकसाधारणैकतरलक्षणप्रकृतिचतुष्टयक्षेपे तिर्यगानुपूर्व्यपनयने चतुर्विंशतिः, सा च शरीरस्थस्य, अत्र प्रत्येकसाधारणाभ्यां द्वौ भङ्गौ । ततः शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य पराघाते क्षिप्ते पञ्चविंशतिः,

अत्रापि तावेव द्वौ भङ्गौ। ततः प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्ते षड्विंशतिः, अत्रापि तावेव द्वौ भङ्गौ। सर्वसङ्कलया सूक्ष्मपर्याप्तस्य सप्त भङ्गाः। पर्याप्तबादरैकेन्द्रियाणामुदयस्थानान्येकविंशत्यादीनि पञ्च २१-२४-२५-२६-२७। तत्रैकविंशतिरियं —तैजसं कार्मणमगुरुलघु स्थिरास्थिरे शुभाशुभे वर्णादिचतुष्टयं निर्माणं तिर्यग्द्विकमेकेन्द्रियजातिः स्थावरबादरपर्याप्तदुर्भगानादेयानि यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरेकतरेति। एषा चैकविंशतिरपान्तरालस्थस्य, अत्र यशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिभ्यां द्वौ भङ्गौ। ततः शरीरस्थस्यौदारिकहुण्डोपघातप्रत्येकसाधारणैकतरलक्षणप्रकृतिचतुष्टयक्षेपे तिर्यगानुपूर्व्यपनयने चतुर्विंशतिः। अत्र प्रत्येकसाधारणयशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिभिश्चत्वारो भङ्गाः। वैक्रियं कुर्वतस्तु बादरवायुकायिकस्यैकः, यतस्तस्य साधारणयशःकीर्त्ती उदये नागच्छतः। अन्यच्च वैक्रियवायुकायिकचतुर्विंशतावौदारिकशरीरस्थाने वैक्रियशरीरं वाच्यं, शेषं तथैव। सर्वसङ्कलया चतुर्विंशतौ पञ्च भङ्गाः। ततः शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्य पराघाते क्षिप्ते पञ्चविंशतिः, अत्रापि तथैव पञ्च भङ्गाः। ततः प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्ते षड्विंशतिः, अत्रापि तथैव पञ्च भङ्गाः। अथवा शरीरपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासेऽनुदिते आतपोद्योतान्यतरस्मिंस्तूदिते षड्विंशतिः, अत्रातपेन प्रत्येकयशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिपदैर्द्वौ भङ्गौ। साधारणस्यातपोदयाभावात्तदाश्रितविकल्पाभावः। उद्योतेन प्रत्येकसाधारणयशःकीर्त्ययशःकीर्त्तिपदैश्चत्वारः। सर्वसङ्कलया षड्विंशतावेकादश भङ्गाः। ततः प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वाससहितायां षड्विंशतावातपोद्योतयोरन्यतरस्मिन् क्षिप्ते सप्तविंशतिः। अत्राप्यातपेन द्वौ उद्योतेन सह चत्वार इति सर्वसङ्कलया सप्तविंशतौ षट्। बादरपर्याप्तस्य सर्वे भङ्गा एकोनत्रिंशत्। संज्ञिपर्याप्तस्य चतुर्विंशतिवर्जानि सर्वाण्यप्युदयस्थानानि। चतुर्विंशत्युदय एकेन्द्रियाणामेवेति तत्प्रतिषेधः। उदयस्थानभङ्गाश्च देवनारकतिर्यङ्मनुष्यानधिकृत्य यथाऽधस्तादु-

क्तास्तथैवात्रापि भाव्याः । पर्याप्तद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिनामेकविंशतिषड्विंशत्यष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशद्रूपाः षडुदया भवन्ति । तत्र द्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां यथाऽधस्ताद्भङ्गास्तथात्रापि भाव्याः । यथा च सामान्यतिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणामधस्तादुक्तास्तथाऽसंज्ञिनामपि । नवरं सर्वेषामप्येकविंशतौ षड्विंशतौ च प्रत्येकमपर्याप्तपदाश्रितो य एकैको भङ्गः स इह न वाच्यः, पर्याप्तानामेवेह चिन्त्यमानत्वात् । सत्तास्थानान्याद्येषु त्रयोदशसु जीवस्थानेषु पञ्च पञ्च, तत्र त्रीण्यध्रुवसंज्ञानि द्विनवतिरष्टाशीतिश्च, तत्राष्टसप्ततिः सूक्ष्मबादरैकेन्द्रियेषु तेजोवायुष्वाद्येषु चतुर्नूदयेषु, तेजोवायुभवादुध्वृत्तेषु चैकविंशतिचतुर्विंशत्युदययोः, द्वीन्द्रियादिषु तु तेजोवायुभवादुद्वृत्तेषु एकविंशतिषड्विंशत्युदययोः प्राप्यते, न शेषेषूदयेषु । संज्ञिनस्तु गुणस्थानक्रमेण द्वादशापि सत्तास्थानानि नान्नः प्रागुक्तदिशा भावनीयानि ।

अथ गत्यादिषु बन्धादिस्थानविषयसत्पदप्ररूपणा क्रियते । तत्र नारकतिर्यक्सुरगतिषु कर्माणि बध्यन्ते सप्ताष्टौ वा, तत्रायुर्बन्धकालेऽष्टौ, शेषकालं सप्त । उदये च अष्टावेव । उदीर्यन्ते सप्ताष्टौ वा, तत्र स्वस्वायुःपर्यन्तावलिकायां नोदीर्यत इति सप्त, शेषकालं त्वष्ट उदीरणानि । संति चैतासु तिसृषु गतिष्वष्टैव प्राप्यन्ते, न तु कदापि सप्त चत्वारि वा, तत्र श्रेण्यादिप्रतिपत्त्यभावात् । मनुष्यगतावेन्द्रियद्वारे पञ्चेन्द्रियाणां कायद्वारे त्रसानां गुणस्थानाभिहितं द्रष्टव्यं, तच्चेदं—मिश्रं वर्जयित्वा सप्तमगुणस्थानं यावत्सप्तानामष्टानां वा बन्धः । तत्रायुर्बन्धकाले सप्तानां, शेषकालं त्वष्टानां । मिश्रापूर्वकरणानिवृत्तिबादरेषु सप्तानामेव, तेषामतिविशुद्धत्वेनायुर्बन्धासंभवात् । सूक्ष्मसम्पराये षण्णां बन्धः, तत्र मोहस्याप्यबन्धात् । ततः परं त्रिषु गुणस्थानेष्वेकस्यैव वेदनीयस्य बन्धः । तथा सूक्ष्मसम्परायं यावदष्टानामुदयस्तत्तः । उपशान्तमोहे सप्तानामुदयोऽष्टानां सत्ता । क्षीणमोहे सप्तानामेवोदयः सत्ता

च । सयोग्ययोगिकेवलिनोश्चतुर्णामुदयसत्ते । तदा षष्ठं गुणस्थानं यावत्सप्तानामष्टानां वोदीरणा । तत्र यदायुः पर्यन्तावलिकाप्राप्तं भवति तदा तस्योदीरणाऽभावात्सप्तानामुदीरणा, शेषकालं त्वष्टानां । मिश्रगुणस्थाने तु सदैवाष्टानामेव, आयुःपर्यन्तावलिकायां वर्त्तमानस्य मिश्रगुणस्थानासंभवात् । अप्रमत्तापूर्वकरणानिवृत्तिबादरेषु वेदनीयायुर्वर्जानां षण्णामुदीरणा, तेषु वेदनीयायुषोरुदीरणाभावात् तद्योग्याध्यवसायस्थानासंभवात् । सूक्ष्मसम्पराये षण्णां पञ्चानां वोदीरणा, तत्र प्रथमतः षण्णां, सा च तावद्यावदावलिका गुणस्थानस्य शेषा न भवति, आवलिकायां तु शेषीभूतायां मोहनीयमप्यावलिकाप्रविष्टमिति तस्योदीरणाया अभावात्पञ्चानामुदीरणा । एतेषामेव पञ्चानामुपशान्तमोहेऽपि । क्षीणमोहे पञ्चानां तावदुदीरणा यावत्स्वावलिका शेषा न भवति । आवलिकायां तु शेषीभूतायां ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणामप्यावलिकाप्रविष्टत्वेनोदीरणाया अभावात् द्वयोर्नामगोत्रयोरुदीरणा । सयोगिकेवलिन्यपि तयोरेव द्वयोरुदीरणा । अयोगी तु योगाभावादेव न किंचिदुदीरयति । एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां कायद्वारे स्थावरकायानां सप्तानामष्टानां वा बन्धोदीरणे, अष्टानामुदयसत्ते । तथा योगद्वारे मनोयोगिनो वीतरागच्छद्मस्थपर्यवसाना इव वेदितव्याः, मनोयोगिनां क्षीणमोहगुणस्थानकं यावत्संभवात् । काययोगिनो वाग्योगिनश्च सयोगिकेवलिपर्यन्ता इव द्रष्टव्याः, काययोगवाग्योगयोः सयोगिकेवलिगुणस्थानं यावत्संभवात् । वेदद्वारे त्रिवेदाः कषायद्वारे त्रिकषाया नवगुणस्थानतुल्या, वेदत्रयस्य कषायत्रयस्य चानिवृत्तिबादरसम्परायं यावत्संभवात् । लोभे सूक्ष्मसम्परायान्ता इव वाच्याः, लोभस्य सूक्ष्मसम्परायं यावत्संभवात् । ज्ञानद्वारे मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानेषु मिथ्यादृष्ट्यादिषु सम्यङ्मिथ्यादृष्टिपर्यन्तेष्विव । मतिश्रुतावधिज्ञानेष्वविरतसम्यग्दृष्ट्यादिषु क्षीणमोहपर्यन्तेष्विव । मनःपर्यवज्ञाने प्रमत्तसंयतादिषु क्षीणमोहपर्यन्तेष्विव । केवलज्ञाने सयोग्ययोगिकेवलिनोरिव । संयमद्वारे सामा-

यिकच्छेदोपस्थापनयोः प्रमत्तसंयतादिष्वनिवृत्तिबादरपर्यन्तेष्विव। परिहारविशुद्धिके प्रमत्ताप्रमत्तयोरिव। सूक्ष्मसम्पराये सूक्ष्मसम्परायगुणस्थान इव। यथाख्यातसंयमे उपशान्तमोहक्षीणमोहसयोग्ययोगिकेवलिनामिव। देशसंयमे देशविरतगुणस्थान इव। असंयमे प्रथमगुणस्थानचतुष्टयस्थानामिव। दर्शनद्वारे चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोर्मिथ्यादृष्ट्यादीनां क्षीणमोहान्तानामिव। अवधिदर्शनेऽविरतसम्यग्दृष्ट्यादीनां क्षीणमोहान्तानामिव। केवलदर्शने सयोग्ययोगिकेवलिनोरिव। लेश्याद्वारे आद्यासु पञ्चसु लेश्यासु मिथ्यादृष्ट्यादीनामप्रमत्तसंयतान्तानामिव। शुक्ललेश्यायां मिथ्यादृष्ट्यादीनां सयोगिकेवलिपर्यन्तानामिव वाच्यं। भव्यद्वारे भव्येषु सर्वगुणस्थानतुल्यं। अभव्येषु मिथ्यादृष्टेरिव। सम्यक्त्वद्वारे क्षायोपशमिकसम्यक्त्वेऽविरतसम्यग्दृष्ट्यादीनामप्रमत्तसंयतान्तानामिव। औपशमिकसम्यक्त्वेऽविरतसम्यग्दृष्ट्यादीनामुपशान्तमोहान्तानामिव। क्षायिकसम्यक्त्वेऽविरतसम्यग्दृष्ट्यादीनामयोगिकेवलिपर्यन्तानामिव। मिथ्यात्वे मिथ्यादृष्टेरिव। सासादने सासादनस्येव। मिश्रे मिश्रस्येव। संज्ञिद्वारे संज्ञिषु मनुष्यगताविव। असंज्ञिषु मिथ्यादृष्टिसासादनयोरिव। आहारकद्वारेऽनाहारके मिथ्यादृष्टिसासादनाविरतसम्यग्दृष्ट्य (ष्टिसयोग्य) योगिकेवलिनामिव। आहारके मिथ्यादृष्ट्यादीनां सयोगिकेवलिपर्यन्तानामिव सत्पदप्ररूपणा कर्तव्या। तदेवं सप्ततिकार्थोऽपि सम्बन्धाधिकारे प्रसक्तानुप्रसक्तः प्ररूपितः।

१ आद्यासु तिसृषु लेश्यासु मिथ्यादृष्ट्यादीनां प्रमत्तसंयतान्तानामिव, तेजःपद्मयोरपप्रमत्तसंयतान्तानामिव।

×(य० उ०२१) तथाहि—करणाष्टकादिपरिज्ञानवन्तस्तथापरिणामयुक्तं कर्मजालमेव दुरन्तदुःखज्वलनज्वालावलीढसंसारकारणं निश्चिन्वन्तस्तत्क्षयाय पारमेश्वरीमाज्ञामास्थाय सम्यग्यतमाना इच्छायोगशास्त्रयोगपरिपाकोपनतशुद्धात्मस्वभावलाभास्तदनन्तरप्रसृमरसामर्थ्ययोगातिशयदहनदग्धनिःशेषान्तरायाः परमधर्मसन्न्यासपवित्रा महात्मानः क्षपकश्रेणिमपि प्रारभन्ते, तत्र चायं क्रमः—

इह यः क्षपकश्रेणिप्रस्थापकः सोऽवश्यं मनुष्यो वर्षाष्टकस्योपरि वर्त्तमानः उत्तमसंहननी शुभध्यानोऽविरतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानामन्यतमः, केवलं यद्यप्रमत्तसंयतः पूर्ववित्तदा शुक्लध्यानोपगतः, शेषस्तु सर्वोऽपि धर्मध्यानोपगतः, तत्र क्षपकश्रेणिमारोहन् प्रथमतोऽनन्तानुबन्धिनः क्षपयति, तद्विधिश्च निःशेषः प्रागुक्त (पृ०२६६) एवेति न भूय उच्यते। क्षीणसप्तकश्चाबद्धायुश्चारित्रमोहनीयक्षयाय यतमानो यथाप्रवृत्तादिकरणत्रयं करोति । तत्र यथाप्रवृत्तकरणमप्रमत्तगुणस्थाने, अपूर्वकरणमपूर्वकरणगुणस्थाने, अनिवृत्तिकरणमनिवृत्तिबादरसम्परायगुणस्थाने, तत्रापूर्वकरणे स्थितिघातादिभिर्मध्यमकषायाष्टकं तथा क्षपयति यथाऽनिवृत्तिकरणाद्धाप्रथमसमये तत्पल्योपमासङ्ख्येयभागमात्रस्थितिकं भवति, अनिवृत्तिकरणाद्धायाश्चासङ्ख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्सु स्त्यानर्द्धित्रिकनरकद्विकतिर्यग्द्विकाद्यजातिचतुष्टयस्थावरातपोद्योतसूक्ष्मसाधारणानां षोडशप्रकृतीनामुद्बलनासंक्रमेणोद्वल्यमानानां पल्योपमासङ्ख्येयभागमात्रा स्थितिर्भवति । ततो बध्यमानासु प्रकृतिषु तानि षोडशापि कर्माणि गुणसङ्क्रमेण प्रतिसमयं प्रक्षिप्यमाणानि निःशेषतोऽपि क्षीणानि भवन्ति । इह मध्यमकषायाष्टकं प्रागेव क्षपयितुमारब्धं, परं तन्नाद्यापि क्षीणं, केवलमपान्तराल एव पूर्वोक्तं प्रकृतिषोडशकं क्षपितं, ततः पश्चात्तदपि कषायाष्टकं मुहूर्त्तमात्रेण क्षपयति, एष सूत्रादेशः । अन्ये त्वाहुः—षोडशकर्माण्येव पूर्वं क्षपयितुमारभते, केवलमपान्तरालेऽष्टौ कषायान् क्षपयति, पश्चात् षोडश कर्माणीति । ततोऽन्तर्मुहूर्त्तमात्रेण नवानां नोकषायाणां चतुर्णां च संज्वल-

नानामन्तरकरणं करोति। अन्तरकरणं च कृत्वा नपुंसकवेददलिकमुपरितनस्थितिगतमुद्वलनाविधिना क्षपयितुमारभते, तच्चान्तर्मुहूर्त्तमात्रेण पल्योपमासङ्ख्येयभागमात्रं भवति। ततः प्रभृति बध्यमानासु प्रकृतिषु गुणसङ्क्रमेण तद्दलिकं प्रक्षिपति। तच्चैवं प्रक्षिप्यमाणं प्रक्षिप्यमाणमन्तर्मुहूर्त्तमात्रेण निःशेषं क्षीयते, अधस्तनस्थितिदलिकं च यदि नपुंसकवेदेन क्षपकश्रेणिमारूढस्ततोऽनुभवतः क्षपयति, अन्यथा त्वावलिकामात्रं तत्, तच्च वेद्यमानासु प्रकृतिषु स्तिबुकसङ्क्रमेण संक्रमयति। तदेवं क्षपितो नपुंसकवेदः। ततोऽन्तर्मुहूर्त्तेन कालेन स्त्रीवेदोऽप्यनेनैव क्रमेण क्षप्यते, ततः षड् नोकषायान् युगपत्क्षपयितुमारभते। ततः प्रभृति तेषामुपरितनस्थितिगतं दलिकं पुंवेदे न संक्रमयति, अपि तु संज्वलनक्रोधे। एवं चान्तर्मुहूर्त्तेन नोकषायषट्कोपरितनदलिकं निःशेषतः क्षीणं, तत्समय एव च पुंवेदस्य बन्धोदयोदीरणोच्छेदः समयोनावलिकाद्वयबद्धं मुक्त्वा शेषदलिकक्षयश्च, इदं च पुंवेदिनः प्रारंभकस्य ज्ञेयं। यदा तु नपुंसकवेदी प्रारम्भकस्तदा प्रथमं स्त्रीवेदनपुंसकवेदौ युगपत्क्षपयति, तत्क्षयसमय एव च पुंवेदबन्धादित्रयव्यवच्छेदः। ततः पुंवेदहास्यषट्के युगपत्क्षपयति। यदा तु स्त्रीवेदी क्षपकश्रेणिप्रारम्भकस्तदा प्रथमं नपुंसकवेदं ततः स्त्रीवेदं क्षपयति, तत्क्षयसमकालमेव च पुंवेदबन्धव्युच्छेदः। ततः पुंवेदहास्यषट्कयोर्युगपत्क्षयः। अथ पुंवेदिनः प्रस्तुतमभिधीयते—क्रोधं वेदयमानस्य पुंवेदिनः क्रोधाद्धाया भाग त्रयं भवेत्—अश्वकर्णकरणाद्धा किट्टिकरणाद्धा किट्टिवेदनाद्धा च। तत्राश्वकर्णकरणाद्धायां वर्त्तमानः प्रतिसमयमनन्तान्यपूर्वस्पर्धकानि संज्वलनचतुष्कस्याप्यन्तरकरणेनोपरितनस्थितौ करोति। अस्यां चाद्धायां वर्त्तमानः पुंवेदमपि समयोनद्व्यावलिकारूपेण कालेन क्रोधे गुणसङ्क्रमेण संक्रमयन् चरमसमये सर्वसङ्क्रमेण संक्रमयति। एवं क्षीणपुरुषवेदः अश्वकर्णकरणाद्धासमाप्त्यनन्तरं किट्टिकरणाद्धायां प्रविष्टः सन् संज्वलनचतुष्कस्योपरितनस्थितिगतदलिकस्य किट्टिः करोति, ताश्च परमार्थतोऽनन्ता अपि स्थूरजातिभेदापेक्षया द्वादश कल्प्यन्ते, एकैकस्य कषायस्य

तिस्रस्तिस्रः प्रथमा द्वितीया तृतीया चेति । इदं च क्रोधेन क्षपकश्रेणिं प्रतिपन्नस्य दृश्यं । मानेन तु तां प्रतिपद्यमानस्य प्रागुक्तोद्वलनविधिना क्रोधे क्षपिते सति शेषत्रयस्य प्राग्वत् नव किट्टीः करोति । मायया तु प्रतिपन्नस्य पूर्वं क्रोधमानयोरुद्वलनविधिना क्षयं कृत्वा शेषद्विकस्य प्राग्वत् षट् किट्टीः करोति । लोभेन तु प्रतिपन्नस्योद्वलनविधिना क्रोधादित्रिकक्षयं कृत्वा लोभस्य किट्टित्रिकं करोति। एष किट्टीकरणविधिः। किट्टिकरणाद्धायां निष्ठितायां क्रोधेन प्रतिपन्नः क्रोधस्य प्रथमकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयते च तावद्यावत्समयाधिकावलिकामात्रं शेषः।ततोऽनन्तरसमये द्वितीयकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयते च तावद्यावत्समयाधिकावलिकामात्रं शेषः । ततोऽनन्तरसमये तृतीयकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयते च तावद्यावत्समयाधिकावलिकामात्रं शेषः । तिसृष्वपि चामूषु किट्टिवेदनाद्धासूपरितनस्थितिगतं दलिकं गुणसङ्क्रमेणापि प्रतिसमयमसङ्ख्येयगुणवृद्धिलक्षणेन संज्वलनमाने प्रक्षिपति । तृतीयकिट्टिवेदनाद्धायाश्चरमसमये संज्वलनक्रोधस्य बन्धोदयोदीरणानां युगपद्व्यवच्छेदः, सत्कर्मापि च तस्य समयोनावलिकाद्विकबद्धं मुक्त्वाऽन्यन्नास्ति, सर्वस्य माने प्रक्षिप्तत्वात् । ततोऽनन्तरसमये मानस्य प्रथमकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयते च तावद्यावदन्तर्मुहूर्तं, क्रोधस्यापि च बन्धादौ व्यवच्छिन्ने सति तस्य सम्बन्धि दलिकं समयोनावलिकाद्विकमात्रेण कालेन गुणसङ्क्रमेण सङ्क्रमयन् चरमसमये सर्वं सङ्क्रमयति । मानस्यापि च प्रथमकिट्टिदलिकं प्रथमस्थितीकृतं वेद्यमानं समयाधिकावलिकाशेषं जातं। ततोऽनन्तरसमये मानस्य द्वितीयकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयते च तावद्यावत्समयाधिकावलिकामात्रं शेषः। ततोऽनन्तरसमये तृतीयकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयते च तावद्यावत्समयाधिकावलिकामात्रं शेषः । तस्मिन्नेव च समये मानस्य बन्धो-

दयोदीरणानां युगपद्व्यवच्छेदः, सत्कर्मापि च तस्य समयोनावलिकाद्विकबद्धमेव, शेषस्य मायायां प्रक्षिप्तत्वात् । ततो मायायाः प्रथमकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयते च तावद्यावदन्तर्मुहूर्त्तमात्रं । संज्वलनमानस्य च बन्धादौ व्यवच्छिन्ने तस्य सम्बन्धि दलिकं समयोनावलिकाद्विकमात्रेण कालेन गुणसङ्क्रमेण मायायां सर्वं प्रक्षिपति । मायाया अपि च प्रथमकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतं प्रथमस्थितीकृतं वेद्यमानं समयाधिकावलिकाशेषं जातं । ततोऽनन्तरसमये मायाया द्वितीयकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयते च तावद्यावत्समयाधिकावलिकामात्रं शेषः । ततोऽनन्तरसमये तृतीयकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयते च तावद्यावत्समयाधिकावलिकामात्रं शेषः । तस्मिन्नेव च समये मायाया बन्धोदयोदीरणानां युगपद्व्यवच्छेदः, सत्कर्मापि च तस्याः समयोनावलिकाद्विकबद्धमात्रमेव, शेषस्य गुणसङ्क्रमेण लोभे प्रक्षिप्तत्वात् । ततोऽनन्तरसमये लोभस्य प्रथमकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयते च तावद्यावदन्तर्मुहूर्त्तं । संज्वलनमायायाश्च बन्धादौ व्यवच्छिन्ने तत्सम्बन्धि दलिकं समयोनावलिकाद्विकमात्रेण कालेन गुणसङ्क्रमेण सर्वं लोभे संक्रमयति । संज्वलनलोभस्य च प्रथमकिट्टिदलिकं प्रथमस्थितीकृतं वेद्यमानं समयाधिकावलिकामात्रशेषं जातं । ततोऽनन्तरसमये लोभस्य द्वितीयकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयते च, तां च वेदयमानस्तृतीयकिट्टिदलिकं गृहीत्वा सूक्ष्मकिट्टीः करोति तावद्यावत् द्वितीयकिट्टिदलिकस्य प्रथमस्थितीकृत्य वेद्यमानस्य समयाधिकावलिकामात्रं शेषः । तस्मिन्नेव च समये संज्वलनलोभस्य बन्धबादरकषायोदयोदीरणा नवमगुणस्थानकालानां युगपद्व्यवच्छेदो जायते। ततोऽनन्तरसमये सूक्ष्मकिट्टिदलिकं द्वितीयस्थितिगतमाकृष्य प्रथमस्थितिं करोति वेदयते च, तदानीमसौ सूक्ष्मसम्पराय उच्यते, प्रागुक्ताश्चावलिकास्तृतीयकिट्टिगताः शेषीभूताः

सर्वा अपि वेद्यमानासु परप्रकृतिषु स्तिबुकसङ्क्रमेण सङ्क्रमयति, प्रथमद्वितीयकिट्टिगताश्च यथास्वं द्वितीयतृतीयकिट्टयन्तर्गता वेद्यन्ते, सूक्ष्मसम्परायश्च लोभस्य सूक्ष्मकिट्टीर्वेदयमानः सूक्ष्मकिट्टिदलिकं समयोनावलिकाद्विकबद्धं च प्रतिसमयं स्थितिघातादिभिस्तावत् क्षपयति यावत्सूक्ष्मसम्परायाद्धायाः सङ्ख्येया भागा गता भवन्ति, एकोऽवशिष्यते, ततस्तस्मिन् सङ्ख्येयभागे संज्वलनलोभं सर्वापवर्त्तनयाऽपवर्त्य सूक्ष्मसम्परायाद्धासमं करोति, सा चाद्याप्यन्तर्मुहूर्त्तमाना, ततः प्रभृति च मोहस्य स्थितिघातादयो निवृत्ताः, शेषकर्मणां तु प्रवर्त्तन्त एव, तां च लोभस्यापवर्त्तितां स्थितिमुयोददीरणाभ्यां वेदयमानस्तावद्गतो यावत्समयाधिकावलिकामात्रं शेषः। ततोऽनन्तरसमये उदीरणा स्थिता। तत उदयेनैव केवलेन तां वेदयते यावच्चरमसमयः। तस्मिंश्च चरमसमये ज्ञानावरणपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कयशःकीर्त्युच्चैर्गोत्रान्तरायपञ्चकरूपाणां षोडशकर्मणां बन्धव्यवच्छेदो मोहनीयस्योदयसत्ताव्यवच्छेदश्च भवति। ततोऽसावनन्तरसमये क्षीणकषायो जायते। तस्य च शेषकर्मणां स्थितिघातादयः प्राग्वत् प्रवर्त्तन्ते यावत् क्षीणकषायाद्धायाः सङ्ख्येया भागा गता भवन्ति, एकः सङ्ख्येयो भागोऽवतिष्ठते। तस्मिंश्च ज्ञानावरणपञ्चकान्तरायपञ्चकदर्शनावरणचतुष्कनिद्राद्विकरूपाणां षोडशकर्मणां स्थितिसत्कर्म सर्वापवर्त्तनयाऽपवर्त्य क्षीणकषायाद्धासमं करोति, केवलं निद्राद्विकस्य स्वरूपापेक्षया समयन्यूनं सामान्यतः कर्मरूपतया तु तुल्यं। ततो द्विचरमसमये निद्राद्विकस्य स्वरूपसत्तापेक्षया क्षयश्चतुर्दशानां प्रकृतीनां चरमसमये क्षयः। ततोऽनन्तरसमये केवली जायते, स च भगवान् जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतश्च देशोनपूर्वकोटिं यावद्विहृत्य सर्वोऽपि समुद्घातादवर्गायोजिकाकरणमारभते। तत्करणानन्तरं च कश्चित् कर्मणां समीकरणार्थं समुद्घातं गच्छति, यस्य वेदनीयादि कर्म आयुषः सकाशादधिकतरं भवति, अन्यस्तु न करोत्येव। अथ कुतोऽयं नियमो यद्वेदनीयाद्येवायुषः सकाशादधिकस्थितिकं भवति, न तु कदाचिदपि वेदनीयादेरायुरिति ?

उच्यते—तथारूपजीवपरिणामस्वाभाव्यात्। इत्थंभूत एव ह्यात्मनः परिणामो येनास्यायुर्वेदनीयादेः समं भवति न्यूनं वा, न तु कदाचनाप्यधिकं। यथा तस्यैवायुषोऽध्रुवबन्धस्वभावः, शेषकर्माणि हि सर्वदैव बध्यते, आयुस्तु प्रतिनियत एव काले स्वभवत्रिभागादिरूपे, न चेदृग्बन्धवैचित्र्ये स्वभावादृतेऽपरः कश्चिदस्ति हेतुः। एवमायुषो वेदनीयादेराधिक्याभावेऽपि स्वभावविशेष एव नियामको द्रष्टव्यः।

अथ समुद्घात इति कः शब्दार्थः ? उच्यते—सम्यक् अपुनर्भावेन उत्प्राबल्येन घातो वेदनीयादिकर्मणां विनाशो यस्मिन् क्रियाविशेषे स समुद्घातः, तं च कुर्वन् केवली प्रथमसमये बाहल्यतः स्वशरीरप्रमाणमूर्ध्वमधश्च लोकान्तपर्यन्तमात्मप्रदेशानां दण्डमारचयति। द्वितीये समये पूर्वापरं दक्षिणोत्तरं वा कपाटं, तृतीये मन्थानं, चतुर्थेऽवकाशान्तरपूरणं, पञ्चमेऽवकाशान्तराणां संहारं, षष्ठे मथः, सप्तमे कपाटस्य, अष्टमे स्वशरीरस्थो भवति। तत्र दण्डसमयात्प्राग् या पल्योपमासङ्ख्येयभागमात्रा वेदनीयनामगोत्राणां स्थितिरासीत्तस्या बुद्ध्याऽसङ्ख्येया भागाः क्रियन्ते। ततो दण्डसमये दण्डं कुर्वन्नसङ्ख्येयान् भागान् हन्ति, एकोऽसङ्ख्येयो भागोऽवतिष्ठते। यश्च प्राक् कर्मत्रयस्यापि रस आसीत्तस्याप्यनन्ता भागाः क्रियन्ते, ततस्तस्मिन् दण्डसमयेऽसातवेदनीयाद्यवर्जसंस्थानपञ्चकाद्यवर्जसंहननपञ्चकाप्रशस्तवर्णादिचतुष्कोपघाताप्रशस्तविहायोगत्यपर्याप्तकास्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेयायशःकीर्तिनीचैर्गोत्ररूपाणां (२५) पञ्चविंशतिप्रकृतीनाम(नुभागस्या)नन्तान् भागान् हन्ति, एकोऽनन्तभागोऽवशिष्यते। तस्मिन्नेव च समये सातवेदनीयदेवद्विकमनुजद्विकपञ्चेन्द्रियजातिशरीरपञ्चकाङ्गोपाङ्गत्रयप्रथमसंस्थानप्रथमसंहननप्रशस्तवर्णादिचतुष्टयागुरुलघुपराघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगतित्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकातपोद्योतस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तिनिर्माणतीर्थकरोच्चैर्गोत्ररूपाणामेकोनचत्वारिंशतः(३९) प्रकृतीना-

१ यद्यपि आतपोद्योतौ नवमगुणस्थाने क्षपितौ तथापि तयोः पुनरत्राभिधानं तद्बहुश्रुतगम्यम्॥

मनुभागोऽप्रशस्तप्रकृत्यनुभागमध्ये प्रवेशनेनोपहन्यते । समुद्घातमाहात्म्यमेतत् । तस्य चोद्धरितस्य स्थितेरसङ्ख्येयभागस्यानुभागस्य चानन्ततमभागस्य पुनर्बुद्ध्या यथाक्रममसङ्ख्येया अनन्ताश्च भागाः क्रियन्ते । ततो द्वितीये कपाटसमये स्थितेरसङ्ख्येयान् भागान् हन्ति, एकोऽवशिष्यते, अनुभागस्य चानन्तान् भागान् हन्ति, एकं मुञ्चति । अत्राप्यप्रशस्तप्रकृत्यनुभागमध्यप्रवेशनेन प्रशस्तप्रकृत्यनुभागघातो द्रष्टव्यः । पुनरप्येतस्मिन् समयेऽवशिष्टस्य स्थितेरसङ्ख्येयभागस्यानुभागस्य चानन्ततमभागस्य बुद्ध्या यथाक्रममसङ्ख्येया अनन्ताश्च भागाः क्रियन्ते । ततस्तृतीये समये स्थितेरसङ्ख्येयान् भागान् हन्ति, एकं मुञ्चति, अनुभागस्य चानन्तान् भागान् हन्ति, एकमनन्ततमभागं मुञ्चति । अत्रापि प्रशस्तप्रकृत्वनुभागघातोऽप्रशस्तप्रकृत्यनुभागमध्यप्रवेशनेनावसेयः । ततः पुनरपि तृतीयसमयावशिष्टस्य स्थितेरसङ्ख्येयभागस्यानुभागस्य चानन्ततमभागस्य बुद्ध्या यथाक्रममसङ्ख्येया अनन्ताश्च भागाः क्रियन्ते । ततश्चतुर्थसमये स्थितेरसङ्ख्येयान् भागान् हन्ति, एकस्तिष्ठति, अनुभागस्याप्यनन्तान् भागान् हन्ति, एकोऽवशिष्यते । प्रशस्तप्रकृत्यनुभागघातश्च पूर्ववदवसेयः । एवं स्थितिघातादि कुर्वतश्चतुर्थसमये स्वप्रदेशापूरितसमस्तलोकस्य भगवतो वेदनीयादिकर्मत्रयस्थितिरायुषः सङ्ख्येयगुणा जाता, अनुभागस्त्वद्याप्यनन्तगुणः । चतुर्थसमयावशिष्टस्य च स्थितेरसङ्ख्येयभागस्यानुभागस्य चानन्ततमभागस्य भूयोऽपि बुद्ध्या यथाक्रमं सङ्ख्येया अनन्ताश्च भागाः क्रियन्ते । ततोऽवकाशान्तरसंहारसमये स्थितेः सङ्ख्येयान् भागान् हन्ति, एकं सङ्ख्येयभागं शेषीकरोति, अनुभागस्य चानन्तान् भागान् हन्ति, एकं मुञ्चति। एवमेतेषु पञ्चसु दण्डादिसमयेषु प्रत्येकं सामयिकं कण्डकमुत्कीर्णं, समये समये स्थितिकण्डकानुभागकण्डकघातात् (घातनात्) । अतः परं षष्ठसमयादारभ्य स्थितिकण्डकमनुभागकण्डकं चान्तर्मुहूर्त्तेन कालेन विनाशयति । षष्ठादिषु च समयेषु कण्डकस्यैकैकं शकलं तावदुत्किरति यावदन्तर्मुहूर्त्तचरमसमये सकलमपि तत्कण्डकमुत्कीर्णं भवति ।

एवमान्तर्मौहूर्तिकानि स्थितिकण्डकान्यनुभागकण्डकानि च तावद् घातयति यावत्सयोग्यवस्था चरमसमयः । सर्वाण्यपि चामूनि स्थित्यनुभागकण्डकान्यसङ्ख्येयान्यवगन्तव्यानि । अयं च समुद्घातविधिरावश्यकचूर्ण्यनुसारेणाभिहितः । यस्य तु केवलिनो वेदनीयादिकर्मत्रयमायुषा सह समस्थितिकं स समुद्घातं न गच्छति । गत्वाऽगत्वा वा समुद्घातं लेश्यानिरोधार्थं योगनिमित्तबन्धनिरोधार्थं च योगनिरोधमवश्यं कुरुते । उक्तं च—"स ततो योगनिरोधं करोति लेश्यानिरोधमभिकाङ्क्षन् । समयस्थितिं च बन्धं योगनिमित्तं विनिरुरुत्सन् ॥ १ ॥ समये समये कर्मादाने सति संततेर्न मोक्षः स्यात् । यद्यपि हि विमुच्यन्ते स्थितिक्षयात् पूर्वकर्माणि ॥ २ ॥ नोकर्मणा हि वीर्यं योगद्रव्येण भवति जीवस्य । तस्यावस्थानेन तु सिद्धः समयस्थितिर्बन्धः ॥ ३ ॥" अत्र बन्धस्य समयमात्रस्थितिकता बन्धसमयबहिर्भावेन द्रष्टव्या । योगनिरोधं कुर्वन् प्रथमतो बादरकाययोगबलादन्तर्मुहूर्त्तमात्रेण वाग्योगं निरुणद्धि । तन्निरोधानन्तरं चान्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा बादरकाययोगोपष्टम्भादेव बादरमनोयोगमन्तर्मुहूर्त्तमात्रेण निरुणद्धि । उक्तं च—"बादरतन्वा पूर्वं वाङ्मनसे बादरे स निरुणद्धि । आलम्बनाय करणं तदिष्यते तत्र वीर्यवतः ॥ १ ॥" बादरमनोयोगनिरोधानन्तरं च पुनरप्यन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वोच्छ्वासनिश्वासावन्तर्मुहूर्त्तमात्रेण निरुणद्धि । ततः पुनरप्यन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा सूक्ष्मकाययोगबलाद्बादरकाययोगं निरुणद्धि, सति बादरयोगे सूक्ष्मयोगस्य निरोद्धुमशक्यत्वात् । आह च—"बादरतनुमपि निरुणद्धि ततः सूक्ष्मेण काययोगेन । न निरुध्यते हि सूक्ष्मो योगः सति बादरे योगे ॥ १ ॥" केचिदाहुः—"बादरकाययोगबलाद्बादरकाययोगं निरुणद्धि, यथा कारपत्रिकः स्तम्भे स्थितस्तमेव स्तम्भं छिनत्ति" । तदत्र तत्त्वमतिशयिनो विदन्ति । बादरं च काययोगं निरुन्धानः पूर्वस्पर्धकानामधस्तादपूर्वस्पर्धकानि करोति । तत्र यानि तस्मिन् भवे पर्याप्तिपर्यायपरिणतेन सता जीवेन पूर्वं कायादिव्यापारनिष्पादनार्थं कृतानि तानि

पूर्वस्पर्धकान्यभिधीयन्ते । तानि च स्थूलानि । यानि पुनरधुना कर्तुमारभते तानि सूक्ष्माणि । न चैवंभूतान्यनादौ संसारे कृतानि, ततोऽपूर्वाणीत्युच्यन्ते । तत्र पूर्वस्पर्धकानामधस्तन्यो याः प्रथमादिवर्गणाः सन्ति तासां ये वीर्याविभागपरि(ली)च्छेदास्तेषामसङ्ख्येयान् भागानाकर्षति, एकमसङ्ख्येयं भागं मुञ्चति । जीवप्रदेशानामपि चैकमसङ्ख्येयं भागमाकर्षति, शेषं सर्वं स्थापयति । एष बादरकाययोगनिरोधप्रथमसमयव्यापारः । तथा च कर्मप्रकृतिप्राभृतं—"पढमसमए अपुव्वफड्डगाणि करेइ पुव्वफड्डगाणं हेट्ठा आइवग्गणाण अविभागपरिच्छेयाणमसंखेज्जे भागे ओकड्डइ जीवपएसाणं च असंखेज्जइमं भागमोकड्ढ इत्ति"। ततो द्वितीयसमये प्रथमसमयाकृष्टजीवप्रदेशासङ्ख्येयभागादसङ्ख्येयगुणं भागं जीवप्रदेशानामाकर्षति तावतोऽसङ्ख्येयान् भागानाकर्षतीत्यर्थः । वीर्याविभागपरिच्छेदानामपि प्रथमसमयाकृष्टाद्भागात्सङ्ख्येयगुणहीनं भागमाकर्षति । एवं प्रतिसमयं समाकृष्य समाकृष्य तावदपूर्वस्पर्धकानि करोति यावदन्तर्मुहूर्त्तचरमसमयः । कियन्ति पुनः स्पर्धकानि करोतीति चेदुच्यते—श्रेणिवर्गमूलस्यासङ्ख्येयभागमात्राणि अपूर्वस्पर्धककरणान्तर्मुहूर्त्तानन्तरसमय एव च किट्टीः कर्तुमारभते । ताश्चान्तर्मुहूर्त्ते यावत्करोति । उक्तं च—"नाशयति काययोगं स्थूलं सोऽपूर्वफड्डकीकृत्य । शेषस्य काययोगस्य तथा किट्टीश्च स करोति ॥ १ ॥" अथ किट्टिरिति कः पदार्थः ? उच्यते—एकोत्तरवृद्धिं च्यावयित्वाऽनन्तगुणहीनैकैकवर्गणास्थापनेन योगस्याल्पीकरणं । तत्र पूर्वस्पर्धकानामपूर्वस्पर्धकानां च याः प्रथमादिवर्गणास्तासां येऽविभागपरिच्छेदास्तेषामयमसङ्ख्येयान् भागानाकर्षति एकमसङ्ख्येयभागं स्थापयति। जीवप्रदेशानामपि चैकमसङ्ख्येयभागमाकर्षति, शेषं सर्वं स्थापयति ।

एष किट्टीकरणप्रथमसमयव्यापारः । ततो द्वितीयसमये प्रथमसमयाकृष्टवीर्यविभागपरिच्छेदभागादसङ्ख्येयगुणहीनं वीर्यविभागपरिच्छेदानां भागमाकर्षति । जीवप्रदेशानां तु प्रथमसमयाकृष्टजीवप्रदेशासङ्ख्येयभागादसङ्ख्येयगुणभागं तावतोऽसङ्ख्येयान् भागानाकर्षतीत्यर्थः । एवं तावत् किट्टीः करोति यावदन्तर्मुहूर्त्तचरमसमयः । तत्र प्रथमसमयकृताभ्यः किट्टिभ्यो द्वितीयसमयकृताः किट्टयोऽसङ्ख्येयगुणहीनाः । गुणकारश्च पल्योपमासङ्ख्येयभागः । एवं शेषेष्वपि समयेषु भावनीयं । तथा चोक्तं कर्मप्रकृतिप्राभृते—"इत्थं अंतोमुहुत्तं किट्टीओ करेइ असंखेज्जगुणहीणाए सेढीए जीवपएसे य असङ्खेज्जगुणाए सेढीए ओकड्डइ, किट्टीगुणकारो पलिओवमस्स असङ्खेज्जइभागो त्ति" । प्रथमसमयकृताश्च किट्टयः श्रेण्यसङ्ख्येयभागप्रमाणाः । एवं द्वितीयादिसमयेष्वपि प्रत्येकमवगन्तव्याः । सर्वा अपि च किट्टयः श्रेण्यसङ्ख्येयभागप्रमाणाः पूर्वस्पर्धकानामपूर्वस्पर्धकानां चासङ्ख्येयभागमात्राः । किट्टिकरणावसानानन्तरं च पूर्वस्पर्धकान्यपूर्वस्पर्धकानि च नाशयति । तत्समयादारभ्य चान्तर्मुहूर्त्तं यावत् किट्टिगतयोगो भवति । तथा चोक्तं—"किट्टिकरणे णिट्ठिए तओ से काले पुव्वफड्डगाणि अपुव्वफड्डगाणि च णासेइ अंतोमुहूत्तं किट्टिगयजोगो भवइ त्ति" । न चात्र किञ्चिदपि करोति । ततोऽनन्तरसमये सूक्ष्मकाययोगोपष्टम्भादन्तर्मुहूर्त्तमात्रेण सूक्ष्मवाग्योगं निरुणद्धि । ततो निरुद्धसूक्ष्मवाग्योगोऽन्तर्मुहूर्त्तमात्रं नान्यसूक्ष्मयोगनिरोधं प्रति प्रयत्नवान् भवति । ततोऽनन्तरसमये सूक्ष्मकाययोगोपष्टम्भात् सूक्ष्ममनोयोगमन्तर्मुहूर्त्तमात्रेण निरुणद्धि । ततः पुनरप्यन्तर्मुहूर्त्त-

मात्रमास्ते । ततः सूक्ष्मकाययोगबलात्सूक्ष्मकाययोगमन्तर्मुहूर्त्तेन निरुणद्धि । तं च निरुन्धानः सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानमारोहति, तत्सामर्थ्याच्च वदनोदरादिविवरपूरणेन संकुचितदेहत्रिभागवर्तिप्रदेशो भवति । आह च—"सूक्ष्मेण काययोगेन ततो निरुणद्धि सूक्ष्मवाङ्मनसे । भवति ततोऽसौ सूक्ष्मक्रियस्तदा किट्टिगतयोगः ॥ १ ॥ तमपि स योगं सूक्ष्मं निरुरुत्सन् सर्वपर्ययानुगतम् । सूक्ष्मक्रियमप्रतिपात्युपयाति ध्यानममनस्कम् ॥ २ ॥" इत्यादि । सूक्ष्मकाययोगं च निरुन्धानः प्रथमसमये किट्टीनामसङ्ख्येयान् भागान्नाशयति, एकस्तिष्ठति । द्वितीयसमये तस्यैवैकस्य भागस्योद्धरितस्य सम्बन्धिनोऽसङ्ख्येयान् भागान्नाशयति एक उद्धरति एवं समये समये किट्टीस्तावन्नाशयति यावत्सयोग्यवस्थाचरमसमयः । तस्मिंश्च चरमसमये सर्वाण्यपि कर्माण्ययोग्यवस्थासमस्थितिकानि जातानि । येषां च कर्मणामयोग्यवस्थायामुदयाभावस्तेषां स्थितिं स्वरूपं प्रतीत्य समयोनां विधत्ते सामान्यतः सत्ताकालं प्रतीत्यायोग्यवस्थासमानामिति । तस्मिंश्च सयोग्यवस्थाचरमसमये सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानं सर्वाः किट्टयः सद्वेद्यबन्धो नामगोत्रयोरुदीरणा योगः शुक्ललेश्या स्थित्यनुभागघातश्चेति सप्त पदार्था युगपद्व्यवच्छिद्यन्ते। ततोऽनन्तरसमयेऽयोगिकेवली भवति । स च कर्मक्षपणाय व्युपरतक्रियमनिवृत्तिध्यानमारोहति । असावयोगिकेवली स्थितिघातादिरहितो यान्युदयवर्त्तीनि कर्माणि तानि स्थितिक्षयेणानुभवन् क्षपयति । यानि तु तदानीमनुदयवन्ति तानि वेद्यमानासु प्रकृतिषु स्तिबुकसङ्क्रमेण संक्रमयन् वेद्यमानप्रकृतिरूपतया च वेदयमानस्ता-

वद्यति यावदयोग्यवस्थाद्विचरमसमयः । तस्मिंश्च द्विचरमसमये देवद्विकशरीरपञ्चकबन्धनपञ्चकसङ्घातपञ्चकसंस्थानषट्काङ्गोपाङ्गत्रयसंहननषट्कवर्णादिविंशतिपराघातोपघातागुरुलघूच्छ्वासविहायोगतिद्विकस्थिरास्थिरशुभाशुभसुस्वरदुःस्वरदुर्भगप्रत्येकानादेययशःकीर्त्तिनिर्माणापर्याप्तकनीचैर्गोत्रसातासातान्यतरानुदितवेदनीयरूपाणि (७२) द्विसप्ततिः कर्माणि स्वरूपसत्तामधिकृत्य क्षयमुपगच्छन्ति, चरमसमये स्तिबुकसङ्क्रमेणोदयवतीषु मध्ये सङ्क्रम्यमाणत्वात् । चरमसमये चान्यतरवेदनीयमनुष्यत्रिकपञ्चेन्द्रियजातित्रससुभगादेययशःकीर्त्तिपर्याप्तबादरतीर्थकरोचैर्गोत्ररूपाणां त्रयोदशप्रकृतीनां सत्ताव्यवच्छेदः । अन्ये त्वाहुः—'मनुष्यानुपूर्व्या द्विचरमसमये व्यवच्छेद उदयाभावात्, उदयवतीनां हि स्तिबुकसङ्क्रमाभावात् स्वरूपेण चरमसमये दलिकं दृश्यत एवेति युक्तस्तासां चरमसमये सत्ताव्यवच्छेदः । आनुपूर्वीणां च चतसृणामपि क्षेत्रविपाकतयाऽपान्तरालगतावेवोदय इति न भवस्थस्य तदुदयसंभव इत्ययोग्यवस्थाद्विचरमसमय एव मनुष्यानुपूर्व्याः सत्ताव्यवच्छेदः'। तन्मते द्विचरमसमये त्रिसप्ततेः, चरमसमये च द्वादशानां सत्ताव्यवच्छेदः, ततोऽनन्तरसमये कर्मबन्धविमोक्षलक्षणसहकारिसमुत्थस्वभावविशेषादस्पृशद्गत्योर्ध्वलोकान्तं गच्छति । तत्र च गतः सन् भगवान् परमानन्दमयः शाश्वतं कालमवतिष्ठते । तदेवमनया प्रणाल्याऽस्य शास्त्रस्य मोक्षजनकत्वादस्मिन् शास्त्रे निरन्तरमभ्यासः कार्यः, कृत्वा च यथाशक्ति संयममार्गे यतितव्यं, तत्र यतमानेन च यथोपायं संक्लिष्टाध्यवसायपरिहारः कार्य इति तात्पर्यम् ॥